Acc
28772

'संगीत' का विशेष प्रकाशन

भातखण्डे संगीत शास्त्र

(हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति)

चौथा भाग

मूल लेखक

पं० विष्णुनारायण भातखण्डे (विष्णु शर्मा)





सम्पादक और प्रकाशक

लक्ष्मीनारायण गर्ग (सम्पादक 'संगीत')

ने मराठी से हिन्दी भाषा में अनुवाद कराकर—

संगीत कार्यालय

हाथरस (उ० प्र०)

द्वारा प्रकाशित की।

मार्च १९५७  मूल्य १५) रु०

संगीत प्रेस हाथरस में मुद्रित।

PUBLISHED BY L. N. GARG
SANGEET KARYALAYA HATHRAS. (India)
AND
PRINTED BY C. S. SHARMA
AT THE 'SANGEET PRESS' HATHRAS.

प्राक्कथन

स्व० पं० विष्णुनारायण भातखण्डे की विशाल और अद्वितीय ग्रन्थमाला "हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति"(मराठी) के चौथे भाग का हिन्दी अनुवाद सङ्गीत जिज्ञासुओं के समक्ष "भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र" के रूप में प्रस्तुत है।

सङ्गीतशास्त्र की विधिवत विस्तृत चर्चा इस ग्रन्थ में जिस क्रम से की गई है, वह अनूठी है और उसका अन्तरंग ग्रन्थ की सूची से स्वमेव प्रगट हो जाता है। अल्प जीवनकाल में स्वर्गीय भातखण्डे जी ने संगीत पर जो कलश भर कर भावी संगीत पीढ़ी के लिये रख दिये, उससे एकमेव यही निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान सङ्गीत को अमृत दान देने के लक्ष्य से ही उनका जन्म हुआ।

भातखण्डे के जीवन काल में सङ्गीत संजीवनी बूटी की भांति था। अर्थात् उसे प्राप्त करने के लिये विद्यार्थी वर्ग को द्रव्य के साथ जीवन का मूल्य भी चुकाना पड़ता और तब कहीं वह एक साधारण गायक कहलाने योग्य बनता था। असाधारण इसलिये नहीं बनाया जाता था कि घरानेदार बरखुर्दारों के पिछड़ने का भय बना रहता। अतः कला अपनों के लिये थी, परायों के लिये नहीं। क्रियात्मक सङ्गीत का यह हाल था और शास्त्रीय पक्ष आचार्यों की बपौती थी, अतः हमारे संगीत का सत्य विभिन्न वाचनालयों में सील बन्द होकर कराह रहा था। शाश्वत सिद्धान्त यवन संस्कृति के वज्र प्रहारों से दबोच कर विकृत कर दिये गये, जिनका न कोई नाम लेवा था, न पानी देवा। राजा-महाराजाओं की छत्र-छाया में कुछ श्रद्धेय संगीत पर लेखनी उठा भी पाये तो वह केवल स्वर्णाक्षरों से युक्त मजबूत जिल्दों में बांध कर यश के निमित्त। ऐसे स्वार्थी और सामंती युग में भातखण्डे जन्मे! उनकी आत्मा कराह उठी और उसे सशक्त सम्बल मिला-नारदीय शिक्षा, भरत नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर, रागविबोध, संगीत पारिजात आदि ग्रन्थों के अवलोकन से।

आर्य संगीत की अवहेलना अशिक्षित संगीतकारों (उस्तादों) द्वारा बड़े रौब-दौब से की जाती थी, क्योंकि उनमें परम्परागत अकड़ और दरबारी ऐंठ थी। भ्रान्त कल्पनायें संगीत वर्ग में उदित होकर उसे गर्त्त की ओर ले जा रही थीं। उधर मत-मतान्तरों का झगड़ा ५७ के गदर की भांति बढ़ गया था। इन सब बातों से भातखण्डे जी उद्विग्न हो उठे और उन्होंने अपनी संगीत यात्रा का शुभ संकल्प संजोलिया। बीकानेर, जोधपुर, इलाहाबाद, बनारस, जूनागढ़, सूरत, बड़ौदा, अहमदाबाद, सिन्ध, कच्छ, भावनगर, लाहौर, मथुरा, लखनऊ, आगरा, दिल्ली, मद्रास,तंजावर, मैसूर, मदुरई, त्रिवेन्द्रम,त्रिचनापल्ली, बंगलौर, कलकत्ता आदि विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और अपनी डायरी को सङ्गीत की आख्यायिकाओं से भर लिया। प्राचीन परम्परा के जो गायक-वादक उस समय आपको मिले उनसे संगीत शास्त्र पर विस्तार से चर्चा की और घर आकर अपनी डायरी में लिपिबद्ध किया। इसी प्रकार सहस्त्रों प्राचीन गायनों को स्वरबद्ध करने के उद्देश्य से रिकार्ड भरे तथा व्यवस्थित रूप से परिमार्जित कर खुली पुस्तक के प्रांगण में उनको ला खड़ा किया,फलस्वरूप 'क्रमिक पुस्तक मालिका' के ६ भाग प्रकाशित हुए।

गायन उत्तेजक मंडली, बम्बई के सदस्य बनकर भातखण्डे जी को सङ्गीत का शास्त्रीय अखाड़ा मिल गया और उसमें आपने सङ्गीत नेता के रूप में अपने रोचक वृत्तांतों तथा शास्त्र चर्चा को रक्खा, फलस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थ "हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति" के चार भागों का जन्म हुआ।

अपने सङ्गीत को वैज्ञानिक कसौटी पर रखकर सुव्यवस्थित रूप देने वाले भातखण्डे प्रथम मनीषी थे। इस प्रकार अनेक दुर्लभ सङ्गीत ग्रन्थों का प्रकाशन तथा उनका निचोड़ एकत्रित करके एक सुगम ढांचा भावी पीढ़ी के लिये वे खड़ा कर गये, जिसका अध्ययन और मनन आज के प्रत्येक संगीतजीवी मानव का कर्तव्य है। ज्ञानसिंधु में गोता लगाकर चन्द मोती खोजकर लाने वाला कभी यह दावा नहीं करता कि सारे मोती उसने पा लिये हैं; इसीलिये भातखण्डे जी ने भी कभी यह गर्व नहीं किया कि उन्होंने संपूर्ण संगीत सार्वजनिक हितार्थ व्यवस्थित करके रख दिया है; अपितु इतने परिश्रम के बावजूद भी उन्हांने कई स्थलों पर स्पष्ट कहा है कि 'साम गायन' तथा 'वैज्ञानिक गायन' आदि कई विषय अभी खोज के हैं।

यथार्थ में जो कुछ भी भातखण्डे जी द्वारा सङ्गीत के लिये हो सकता था, उन्होंने जीवन अर्पण करके अर्पित कर दिया और उसी के सहारे चलकर हम कुछ पाने की आशा भी कर सकते हैं। उनको निंदा की दृष्टि से देखने वाले महापापी हैं, अतः उनका अनुसरण छोड़कर हमें नवीन अनुसन्धानात्मक कार्यों में दत्त चित्त हो जाना चाहिये। आज जो भी भातखण्डे का निन्दक सङ्गीत पर कुछ लिखता है तो उसके ज्ञान का स्रोत इन्हीं पुनीत प्रकाशनों द्वारा फूटता है, यह भी कैसा आश्चर्य है?

निश्चय ही स्व० भातखण्डे संगीत की क्लिष्टतम पद्धति तथा विभिन्न मतावलम्बियों के पक्ष में नहीं थे, इसी कारण सङ्गीत को उलझन की दृष्टि से देखने वाले सभ्य समाज में प्रचरित करने के उद्देश्य से उन्होंने मंथन करके और अपनी एक सरलतम पद्धति का निर्माण करके, इस प्रगतिमय संगीतवाङ्मय का सृजन किया। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण भी वाल्मीक रामायण से सरल होने के कारण ही इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई। ज्ञान का अन्त नहीं, अतः शाश्वत सत्य की खोज करनी है तो इन्हीं ग्रन्थों का अवलोकन करना होगा और वह भी इस युग में होना दुष्कर है; क्योंकि अभी तो केवल सङ्गीत के प्रति थोड़ी-थोड़ी दिलचस्पी जन समाज में प्रारम्भ हुई है। दिलचस्पी जब अध्ययन का मुख्य अंग बन जायगी तभी शाश्वत सत्य की खोज को जिज्ञासु दौड़ेंगे और दूसरे युग में जाकर उसका प्रतिष्ठापन संभव हो सकेगा। अन्यथा सङ्गीत के प्रति रुचि समाप्त होकर आज से भी गया बीता संगीत अपना एक अलग सरल साहित्य स्थापित करके संगीत शास्त्रियों को पीछे धकेल देगा और फिर उन वंदनीय संगीताचार्यों की आत्मा रोने की सामर्थ्य भी खो देगी; संगीत सुगीत होकर केवल स्वरविहीन काव्य रह जायगा।

आपने जीवनकाल में स्व० भातखण्डे ने लगभग छै हजार पांच सौ पृष्ठों के मुद्रित तथा प्रकाशित ग्रन्थ सङ्गीत जगत को दिये। अनेक हस्तलिखित प्रतियां अभी कुछ उनके

निकट रहने वाले सङ्गीत विद्यार्थियों की संकुचित मनोवृत्ति के कारण उनके संग्रह में अपने स्वरूप को धूल के आवरण से प्रच्छन्न कर रही हैं। हमें विश्वास है कि उनका प्रकाशन न किया गया तो वे नष्ट होकर ही रहेंगी। मराठी के ग्रन्थ भी धीरे-धीरे समाप्त होने जा रहे थे, किन्तु "सङ्गीत कार्यालय" की दृष्टि उन्हें खींच लाई और बचा लिया। संभव है स्व० भातखण्डे जी की आत्मा अब संतुष्ट होगी। उनकी बांधी हुई पूजा सरस्वती का सौन्दर्य बढ़ा रही है। सरस्वती के इस पुजारी को हमारा शतशः प्रणाम! भातखण्डे अमर हों !!

अन्त में अपने स्नेही महानुभावों श्री प्यारेलाल श्रीमाल संगीतरत्न, श्री मनोहरदेव संगीतालंकार, श्री गोपाल लक्ष्मण गुणे संगीतालंकार, श्री रघुनाथ तलेगांवकर सङ्गीतरत्न, तथा श्री के० एम० वाकणकर आदि को भी कैसे विस्मित किया जा सकता है, जिनकी सहायता से मराठी का यह वृहद ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनूदित होकर इस विशाल सङ्गीत उद्यान को सींचने में समर्थ हो सका है। प्रूफ रीडिंग के विशाल एवं दायित्व-पूर्ण कार्य को निभाने में श्री मधुसूदन शरण 'बेदिल' ने अत्यन्त लगन और उत्साह से इस कार्य को निभाया है, अतः उन्हें भी हार्दिक धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य है।

"रंगभरनी-एकादशी"
सम्वत् २०१३
दिनांक १२-३-१९५७



प्रभूलाल गर्ग
(संचालक 'संगीत')

मराठी संस्करण की प्रस्तावना

लोकाभिरुचि पर अवलम्बित होने के कारण सङ्गीत सदैव परिवर्तनशील रहा है। यह प्रकट ही है कि लोगों की अभिरुचि परिवर्तित होती रहती है । इस बात के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। अभी हम भरत तथा शार्ङ्गदेव के ग्रन्थों को छोड़ दें, कारण उन ग्रन्थों का स्पष्टीकरण होना बाकी है । किन्तु मध्यकालीन लेखक लोचन, अहोबल, हृदय, पुंडरीक, श्रीनिवास, श्रीकंठ आदि जो उत्तर के ग्रन्थकार हैं उनके ग्रन्थों में हमारे आज के प्रचलित रागों के स्वरूप भिन्न प्रकार से उल्लिखित किये हुए दृष्टिगोचर होते हैं । इसमें आश्चर्य की भी कोई बात नहीं । गत तीन सौ वर्षों के में तथा आज के आचार-विचार में क्या बहुत कुछ परिवर्तन नहीं हो गया है ? इतना ही नहीं, वरन् भिन्न-भिन्न प्रान्तों में एक ही नाम के रागों के स्वरूप भिन्न-भिन्न दिखाई देंगे । ऐसी दशा में यदि कोई प्रचलित सङ्गीत पर ग्रन्थ लिखना चाहे तो उसे क्या करना चाहिये ? यह एक प्रश्न सामने आता है। मेरे मतानुसार इस प्रश्न का यही समाधान है कि प्रत्येक लेखक को अपनी गुरुपरम्परा के अनुसार रागस्वरूप का वर्णन करना चाहिये और फिर जो भी भिन्न-भिन्न मत उसके सुनने में आये हों, उनकी प्रमाणिकता का उल्लेख अपने ग्रन्थों में करना चाहिये। तत्पश्चात् उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों के मत सरल-सुबोध भाषा में अपने ग्रन्थों में उद्धृत करने चाहिये। ऐसा करने से प्रत्येक राग के प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास की जानकारी पाठकों को हो जायगी। इस (हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति) ग्रन्थ में मैंने वैसा ही प्रयत्न किया है । उत्तर एवं दक्षिण के कौन-कौन से ग्रन्थ कहां-कहां उपलब्ध हो सकते हैं, पहले यह बताकर फिर उन ग्रन्थों में हमारे प्रचलित रागों का कैसा वर्णन किया गया है, यह मैंने बताया है । इतना करने के पश्चात् उन रागों के स्वरूप अपनी गुरुपरम्परा के आधार पर सविस्तार समझा कर प्रत्येक राग का स्वरविस्तार तथा तत्सम्बन्धी संस्कृत के आधार श्लोक कहे हैं। उसी प्रकार प्रवास काल में अनेक गायक-वादकों से चर्चा करते समय, उनके मुख से सुनी हुई कई आख्यायिकाओं को तथा दन्तकथाओं को भी प्रस्तुत ग्रन्थ में सम्मिलित किया है । यह कहना तो कठिन है कि इस ग्रन्थ में उल्लिखित सारे मत समस्त पाठकों को ग्राह्य होंगे, फिर भी इस ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ करने के पूर्व मुझे कितना परिश्रम करना पड़ा, इसकी संक्षिप्त जानकारी पाठकों को देना मेरी समझ से अनुपयुक्त न होगा।

सङ्गीत विषय का मेरा अनुभव लगभग पचास वर्षों का है। इस अवधि में देश के अनेक सुप्रसिद्ध गायक-वादकों से मेरा सम्पर्क रहा है। मैंने जिन नामी गुणी कलाकारों को सुना, उनमें से अधिकांश के नाम इस ग्रन्थ में दिये गये हैं । उसी प्रकार ग्रन्थ रचना आरम्भ करने से पूर्व नैपाल को छोड़ कर अन्य तमाम प्रान्तों में प्रवास करके वहां के गायक-वादकों से सङ्गीत चर्चा करके तथा प्रवास में जो भी उपयोगी ग्रन्थ मुझे दिखाई दिये, वे सम्पादित करके मैंने उन सब का भली प्रकार मनन किया है । इतना ही नहीं वरन् अनेक ख्याति प्राप्त गायकों के सन्निकट स्वयं बैठकर उनसे ख्याल-ध्रुपद के हज़ार-

पन्द्रह सौ गीत सीखे और उनके नोटेशन भी तैयार किये। उनमें से अधिकांश तो मैंने अपने विशिष्ट शिष्यों को सिखा भी दिये हैं। सारांश यह कि इतनी पूर्व तैयारी कर लेने के पश्चात ही मैंने यह ग्रन्थ लिखने का कार्य हाथ में लिया।

सर्व प्रथम मैंने समाज में प्रचलित वर्तमान तमाम रागों का सूक्ष्मरूप से निरीक्षण किया। उनमें मुझे ऐसा दिखाई दिया कि समाज में आज सवा सौ-डेढ़ सौ से अधिक राग नहीं गाये जाते हैं। यह भी देखने में आया कि स्थूल दृष्टि से ये सारे राग मुख्यतः निम्न तीन वर्गों में विभाजित करने योग्य हैं:—

१—जिन रागों में रे ध तथा ग स्वर तीव्र रहते हैं।

२—जिन रागों में रे कोमल तथा ग, नि तीव्र रहते हैं।

३—जिन रागों में ग तथा नि कोमल रहते हैं।

यह भी मुझे दिखाई दिया कि प्रचार में कुछ रागों में द्विरूपी स्वर आते हैं, परन्तु कुल मिलाकर उन रागों के चलन एवं रचना को देखते हुए मेरी समझ से उनके पृथक वर्ग करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। ये वर्ग निश्चित हो जाने के पश्चात् इन तमाम रागों के वर्गीकरण के हेतु निम्नांकित दस मेल अथवा थाटों को मैंने हिन्दुस्तानी सङ्गीत की नींव मानना पसन्द किया:—

१—यमन	६—मारवा
२—बिलावल	७—काफी
३—खमाज	८—आसावरी
४—भैरव	९—भैरवी
५—पूर्वी	१०—तोड़ी

तोडी थाट में ग कोमल है तथा कुछ तोड़ी प्रकारों में ग, नि कोमल हैं। अतः मैंने उस थाट को ग, नि प्रयुक्त वर्ग में ही लिया है। इस प्रकार से समस्त रागों को इन दस थाटों में वर्गीकृत करके, प्रचलित सङ्गीत पर मैंने "लक्ष्यसङ्गीत" नामक सूत्ररूपी ग्रन्थ संस्कृत में लिखकर प्रकाशित किया। वह ग्रन्थ लोगों को बहुत पसन्द आया। 'लक्ष्यसंगीत' संस्कृत में तथा संक्षेप में होने कारण कई पाठक एवं स्नेही मित्रों ने मुझे सुझाव दिया कि इस ग्रन्थ पर एक विस्तृत टीका मराठी भाषा में लिखी जानी चाहिये। प्रस्तुत "हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति" ग्रन्थ उसी सुझाव का मूर्तरूप है। "पद्धति" ग्रन्थ चार भागों में लिखा गया है। प्रथम भाग में यमन, बिलावल तथा खमाज इन तीन थाटों से उत्पन्न होने वाले लगभग ४५ रागों पर विचार किया गया है। दूसरे भाग में पहले समाज में प्रचलित श्रुति-स्वर प्रकरण की कुछ चर्चा करके फिर भैरव थाट के लगभग २० रागों पर विचार किया है। तीसरे भाग में पूर्वी तथा मारवा थाटोत्पन्न २५ रागों का उल्लेख किया गया है। सङ्गीत पद्धति के ये तीन भाग (मराठी भाषा में) सन् १९१० से १९१४ ई० में प्रकाशित हुए* तत्पश्चात् यह अन्तिम चतुर्थ भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने को था, परन्तु

*इन सब मराठी ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद 'भातखण्डे संगीत शास्त्र' के नाम से संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा प्रकाशित हो चुका है। —अनुवादक

बीच में अन्य कुछ महत्वपूर्ण काम आ जाने से यह भाग मैं हाथ में न ले सका। वे काम यह थेः—

१—प्रवास में जिन प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को प्राप्त किया था, उनको प्रकाशित करना।

२—'अर्वाचीन कला' भी सङ्गीत का एक महत्वपूर्ण अङ्ग होने से उस कला पर ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित करना।

३—'अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद्' को सफल बनाने के कार्य में भाग लेना।

४—कुछ बड़े बड़े शहरों में अपनी पद्धति के विद्यालय तथा महाविद्यालय स्थापित करना, आदि।

पाठकों द्वारा समादरित इस चौथे भाग में काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी थाटों से उत्पन्न होने वाले अनेक रागों का सविस्तार वर्णन किया गया है। यह "सङ्गीत पद्धति" ग्रन्थ विशेष रूप से गुरु शिष्य संवाद के रूप में लिखा है; कारण इस शैली से पाठकों को तुरन्त एवं भली प्रकार बोध हो जाता है, यह मुझे अनेक वर्षों के सङ्गीत शिक्षण देने के अनुभव से विदित हो चुका है।

विद्वान एवं विज्ञ पाठकों के लिये यह ग्रन्थ उपयोगी एवं आनन्ददायक सिद्ध हुआ तो मेरा परिश्रम सार्थक हो गया, ऐसा मैं मानूंगा। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का यह चौथा भाग प्रकाशित करने के लिये श्रीमंत ग्वालियर दरबार तथा श्रीमंत बड़ौदा दरबार ने उदार वृत्ति का परिचय दिया, एतदर्थ मैं उनका बहुत-बहुत आभार मानता हूँ। वैसे ही मेरे पुराने स्नेही श्री शंकरराव ना. कारनाड, हाइकोर्ट वकील तथा पूना के श्री दत्तात्रय केशव जोशी, जिन्होंने ग्रन्थ लिखते समय मुझे समय-समय पर मार्मिक सम्मतियां दीं—श्री जोशी ने तो मेरे कई ग्रन्थों के प्रूफ निःस्वार्थ भाव से देखे, अतः इन दोनों का मैं आभार मानता हूं।

पाठकों की गुणग्राहकता के कारण मैं उनका सदैव आभारी रहूँगा, यह कहने की आवश्यकता ही नहीं।

अन्त में मेरी इस कल्पना को मूर्तरूप देकर, यह सब कार्य मेरे हाथों से पूर्ण करवाया तथा मेरी इस ढलती उम्र में भी जिसने यह ग्रन्थ सम्पूर्ण करवाया, उस काशी विश्वेश्वर को नमस्कार करके पाठकों से आज्ञा लेता हूँ।

—विष्णु नारायण भातखंडे

भातखण्डे संगीत शास्त्र (हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति)

भाग चौथा

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ



स्व० विष्णुनारायण भातखण्डे

जन्म—१० अगस्त १८६० :: मृत्यु—१६ सितम्बर १९३६

* श्री *

भातखण्डे संगीत शास्त्र

(हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति)

भाग चौथा

प्रिय मित्रो ! पूर्वी व मारवा इन दो जनक थाटों से उत्पन्न होने वाले रागों पर हम पहिले प्रसंगों में सविस्तार विचार कर चुके हैं, अब शेष चार थाटों (काफी, आसावरी, भैरवी, तोड़ी) के प्रसिद्ध रागों पर विचार करेंगे। इन चार थाटों के प्रसिद्ध रागों का परिचय हो जाने पर तुम्हें हिन्दुस्थानी-संगीत-पद्धति का पर्याप्त ज्ञान हो जायगा। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अब कुछ सीखने के लिये बाकी नहीं रहा, संगीत तो समुद्र के समान अथाह है इसमें सर्वांगीण निपुणता प्राप्त करना सरल कार्य नहीं है। मेरे कहने का सारांश इतना ही है कि जो जानकारी मैं दे रहा हूँ, इससे तुम्हारा मार्ग दर्शन होकर भविष्य में ज्ञान-संपादन में सहायता प्राप्त होगी। "संगीत" शब्द में तीन कलाओं का समावेश होता है, लेकिन हम केवल गायन कला पर ही विचार कर रहे हैं, वह भी एक सीमित क्षेत्र तक। किसी भी विषय का अध्ययन करने के लिये उसके मूल तत्व या मूल सिद्धांतों की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है। यह विधान संगीत कला के लिये भी लागू है। इन मूल तत्वों की ओर विशेष ध्यान देने के लिये मैं बारम्बार संकेत करता रहा हूँ, तुमने भी इस ओर ध्यान दिया होगा। पहिले हमने भैरव, पूर्वी व मारवा इन संधिप्रकाश थाटों के रागों पर विचार किया था, इनमें कोमल ऋषभ तथा तीव्र गांधार, निषाद उन रागों के मुख्य चिन्ह हैं, इतना ही नहीं अपितु हमारी हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति के सब रागों का मुख्यतः तीन वर्गों में समावेश किया जा सकता है, यह तुम्हें बताया ही जा चुका है।

प्रश्न—हां, यह बात हमारे ध्यान में है। आपने कहा था कि हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति के सब रागों का स्थूल दृष्टि से तीन समुदाय या वर्ग में विभाजन है, उन रागों में प्रयुक्त होने वाले स्वरों के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में रिषभ, धैवत, गंधार, तीव्र या शुद्ध होते हैं। दूसरे वर्ग में संधिप्रकाश समय में गाने योग्य सब राग आते हैं अर्थात् उसमें रिषभ कोमल व गांधार, निषाद तीव्र होंगे। तीसरे वर्ग में गांधार व निषाद कोमल वाले राग हैं। तोड़ी में गांधार कोमल होने से वह थाट तीसरे समुदाय में ही रखना चाहिये, ऐसा आपने कहा था ?

उत्तर—हां, एक महत्वपूर्ण बात और भी कही थी कि इस वर्गीकरण का सम्बन्ध रागों के समय से भी है।

प्रश्न—वह भी हमारे ध्यान में है। आपने कहा था कि सभी संधिप्रकाश राग सूर्यास्त व सूर्योदय के प्रहर में गाने चाहिये। इनके बाद रात्रि के पूर्व भाग में रिषभ, गांधार, धैवत स्वर तीव्र वाले राग व दिन के पूर्व भाग में भी उसी प्रकृति के राग अर्थात् गांधार, निषाद कोमल स्वर वाले राग मध्य रात्रि व मध्याह्न में गाये जायेंगे। आपने यह भी कहा था कि राग रात्रि का है या दिन का, इसे निश्चित करने के लिये 'मध्यम' स्वर का अधिक उपयोग होता है, मध्यम की इस विशेषता के कारण ही इसे "अध्व दर्शक" स्वर भी कुछ लोग कहते हैं।

उ०—इसे तुम भली भांति समझ गये होगे। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सूर्यास्त से सूर्योदय तक एक काल्पनिक रेखा अपने मनमें खींचें, उसके ऊपर व नीचे की ओर राग समुदाय लिखें, एक सिरे पर प्रथम सायंगेय संधिप्रकाश राग, फिर रेखा के ऊपर की ओर प्रथम रात्रिगेय 'रे, ग, ध 'तीव्र स्वर वाले राग व इससे आगे 'ग, नि' कोमल स्वर वाले राग लिखें। फिर दूसरे सिरे पर प्रातर्गेय संधिप्रकाश राग लिखे जांयगे। इस क्रम के विपरीत दिशा में, क्रम से रेखा के दूसरी ओर प्रथम प्रातर्गेय रे, ग, ध तीव्र स्वर वाले राग फिर ग, नि कोमल स्वर वाले राग लिखने होगें, इसके आगे पुनः सायंगेय संधिप्रकाश राग आवेंगे। इस प्रकार एक महत्व पूर्ण राग मंडल का चित्र तैयार होगा। इसी राग मंडल या वर्गीकरण को निम्न श्लोकों द्वारा ठीक से समझा जा सकता है:—

स्वरविकृत्यधीनाः स्युस्त्रयो वर्गा व्यवस्थिताः।
रागाणामिह मर्मज्ञैर्गानसौकर्यहेतवे ॥
रिगधतीव्रका रागा वर्गेऽग्रिमे व्यवस्थिताः।
संधिप्रकाशनामानः क्षिप्ता वर्गे द्वितीयके ॥
तृतीये निहिताः सर्वे गनिकोमलमंडिताः।
व्यवस्थेयं समीचीना गानकालविनिर्णये ॥
प्रातर्गेयास्तथा सायं गेया रागाः समंततः।
संधिप्रकाशवर्गे स्युरिति सर्वत्र संमतम् ॥
ततः परं समादिष्टं गानं लक्ष्यानुसारतः।
रिगधतीव्रकाणां तद्रागाणां भूरिरक्तिदम् ॥
गनिकोमलसंपन्ना रागा गीता विशेषतः।
मध्याह्ने च तथा मध्यरात्रे संगीतविन्मते ॥

अभिनवरागमंजर्याम्।

प्र०—यह राग व्यवस्था बहुत सुन्दर है। श्लोकबद्ध होने से पाठान्तर में भी यह सुविधाजनक रहेगी।

उ०—अब इसी वर्गीकरण की सहायता से बुद्धिमान विद्यार्थियों को भविष्य में हिन्दुस्थानी रागों की एक और भी मनोहर व्यवस्था की कल्पना हो सकती है, इस विषय पर मैं पहिले भी संकेत कर चुका हूँ, शायद तुम्हें याद होगा ?

प्र०—आपका संकेत क्या अर्वाचीन दृष्टि से 'राग रागिणी पुत्र' व्यवस्था की ओर है ?

उ०—नहीं, वह तो अन्तिम व्यवस्था होगी, लेकिन उसके पहिले भी एक व्यवस्था और रह जाती है और उसे भी कोई अवश्य करेगा। संक्षेप में उसे कहता हूँ। सायंकाल और प्रातःकाल के संधिप्रकाश राग और पूर्व रात्रि व पूर्व दिवस में गाये जाने वाले राग, तीव्र रे, ध व ग युक्त राग व इसके आगे मध्य रात्रि व मध्य दिन में ग नि कोमल वाले राग, इनमें साधर्म्य-वैधर्म्य का शोधन कर एक नियम व सम्बन्ध कायम करना है। यह कार्य कोई कर सका तो इससे हमारी संगीत पद्धति का गौरव ही बढ़ेगा। रागों के साधारण स्वरूप की मार्मिकता की ओर देखने से प्रतीत होता है कि इनमें ऐसा सम्बन्ध आवश्यक है। पूर्व राग व उत्तर राग किसे कहते हैं, यह तुम्हें पहिले बताया ही जा चुका है।

प्र०—हां, दोपहर १२ से मध्य रात्रि १२ बजे तक जो राग गाये जाते हैं, उन्हें पूर्व राग व मध्य रात्रि के पश्चात् दोपहर १२ बजे तक जो राग गाये जाते हैं, उन्हें उत्तर राग कहते हैं।

उ०—ठीक है, अब पूर्वोत्तर रागों में जो सम्बन्ध हैं, उनका भी संशोधन कर उनको नियमित करने का कार्य भी आवश्यक है, संक्षेप में वह इस प्रकार से होगाः—

पूर्वरागास्तथोत्तररागा जाता समंततः ।
सर्वेभ्य एव मेलेभ्य इति लक्ष्यविदां मतम् ॥
रागा उत्तरपूर्वास्ते भवेयुः प्रतिमूर्तयः ।
स्वस्वपूर्वाद्यरागाणामिति मर्मविदो विदुः ॥

प्र०—हां, अब समझ में आया कि आपने जो संकेत किया था वह ठीक था, फिर ऐसा प्रयत्न क्यों नहीं किया गया ?

उ०—भाई, तुम जितना समझते हो, उतना यह कार्य सरल नहीं है, अब तो इस ओर अपने कुछ विद्वानों का ध्यान आकर्षित होने लगा है; किन्तु उसमें भी अनेक बाधाएँ हैं। हमारा देश बहुत विस्तृत है, राग स्वरूप सम्बन्ध में अनेक मतभेद हैं। यह विद्या भी अधिकांशतः अशिक्षित संगीत व्यवसायी लोगों के पास रही है, यह लोग अनुदार वृत्ति के होने के कारण नवीन कल्पना से चौंकते हैं और उन्हें उसमें अपना अपमान प्रतीत होता है, लेकिन शिक्षित लोगों के मत उनको आगे चलकर मानने होंगे इसमें कोई संशय नहीं। गत १०-२० वर्षों में राग नियमों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित होने लगा है। केवल समाज ही नहीं, अपितु गायक-वादक भी इस ओर ध्यान देने लगे हैं कि कहां किस प्रकार गाना चाहिए एवं वे सुशिक्षित लोगों द्वारा प्रचारित नियमों की ओर भी देखने लगे हैं। इसी प्रकार यह सुधार धीरे-धीरे होगा।

हमारे यहां प्रातः प्रथम प्रहर वाले बिलावल के १०-१२ प्रकार गाये जाते हैं। अब यह प्रकार किस तरह उत्पन्न हुए? इस पर विचार करना है। कुछ विचारकों का मत है कि प्रातः बिलावल को प्रधान राग मानकर उसमें रात्रि से प्रथम प्रहर के राग मिश्रित कर बिलावल के अनेक प्रकारों का निर्माण हुआ, इसे हमारे गायक भी स्वीकार करते हैं। बिलावल को प्रातः का कल्याण भी कहते हैं, ऐसा मैंने पहिले भी एक बार कहा था।

प्रश्न—हां याद है, कल्याण के अनेक प्रकार आपने बताये थे। उन्हें बिलावल से मिश्र करके ही अन्य प्रकार बनाये गये होंगे? क्या उनपर भी प्रकाश डालेंगे?

उत्तर—यह विवादग्रस्त प्रश्न है। बिलावल के प्रकारों के विषय में तुमसे कह चुका हूँ। देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न नामों से यह प्रकार सुनाई देते हैं, इसलिये बिलावल में रात्रि का कौनसा राग मिलाने पर कौनसा बिलावल बना? यह विवादग्रस्त प्रश्न ही है। मूल तत्व तो सर्वमान्य है ही, लेकिन घटक अवयवों के नाम निर्देशन में विभिन्न मत होंगे। फिर भी हमें निराश नहीं होना है, आज नहीं तो भविष्य में कभी तो एकमत इस सम्बन्ध में निश्चित होगा। मेरे एक मित्र ने भी बिलावल के मुख्य प्रकारों के विषय में ऐसा निर्णय किया है:—

हंमीरो हेमकश्चैव यदास्यातां सुमिश्रितौ।
तदाल्हैया भवेल्लक्ष्य इति मर्मज्ञसंमतम् ॥
शुद्धस्वरसमुत्पन्ना शुद्धवेलावली मता।
कल्याणे मनकेदारा मिलंत्यस्यां विदांमते ॥
गौडसारंगसंयोगाल्लच्छाशाखसमुद्भवः।
जयावंतीसुयोगेन ककुभाया भवेज्जनुः ॥
शुद्धकल्याणयोगे तु देवगिरिः समुद्भवेत्।
भूपालीयोगतश्चासावौडुवाख्या मता जने ॥
केदारनाटयोगेन शुक्लवेलावली भवेत्।
नटवेलावलीयोगान्नटाव्हा लक्ष्यविन्मते ॥
मिश्रणादिमनाख्यस्य वेलावल्यां समुद्भवेत्।
वेलावलीमनीसंज्ञा विहंगिनीमथो ब्रुवे ॥
विहंगस्य सुसंयोगे सैवस्याद्रक्तिदायिनी।
सर्पर्दा संमता लक्ष्ये झिंझूटीयोगसंभवा ॥

प्रश्न—ऐसा प्रयत्न विद्वानों ने किया है। यह श्लोक हमारे बड़े काम के हैं। आपने जो बिलावल के प्रकार बताये हैं वे भी कुछ इसी प्रकार के हैं, उनमें कहीं-कहीं भेद हो सकता है, फिर भी यह मत ग्राह्य प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'प्रतिमूर्ति' न्याय से दूसरे रागों की भी श्लोक रचना की गई हो तो हमें बताने की कृपा करेंगे?

उ०—नहीं, मेरे देखने में इस प्रकार की रचना नहीं आई है। आजकल तुम काफी वगैरह थाट के राग सीख रहे हो, इन्हें सीख लेने पर उन रागों के साधर्म्य-वैधर्म्य के अनुसार इस ओर तुम भी यत्न कर सकोगे। यातायात के सुलभ साधनों के कारण अब विभिन्न प्रान्तों के गायकों के मतों का निरीक्षण करना अधिक सरल होता जायगा और ऐसा होने पर यह कार्य अधिक सुसम्मत व लोकप्रिय हो सकेगा।

प्र०—परन्तु मतभेद रहा तो बड़ी कठिनाई होगी ?

उ०—कठिनाई कैसी ? अगर किसी का मत तुमसे मेल नहीं खाता है तो उसके मत का भी स्पष्ट उल्लेख करना होगा। एक ही राग भिन्न स्थानों में भिन्न प्रकार से गाया जाता है, तो अपना ही मत सर्वमान्य हो, ऐसा हट क्यों रखना चाहिये ? चतुराई और विद्वत्ता का ठेका हमने ही ले रक्खा है क्या ? हमें तो प्रान्तों के प्रकारों का उल्लेख करते हुए आगे बढ़ना चाहिये। इस प्रकार का महत्वपूर्ण कार्य अवश्य होना चाहिये, इस बारे में पहिले भी मैं कह चुका हूँ।

प्र०—किस बारे में आपने कहा था ?

उ०—प्रचार में जो राग हम गाते-बजाते हैं, उनका सम्बन्ध रागों के रसों से सयुक्तिक व सुबोध रीति से स्थापित करने का कार्य कठिन है और सुशिक्षित सङ्गीत विद्वान ही यह कार्य कर सकते हैं, आजतक अनेक कारणों से यह कार्य नहीं होसका।

प्र०—हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने स्वर व रागों का रस-सम्बन्ध क्या है, यह स्पष्ट नहीं किया तो उसी आधार पर यह कार्य क्या नहीं हो सकेगा ?

उ०—साधारण जानकारी से यह कार्य पूर्ण नहीं हो सकेगा, कारण किस स्वर का किस व्यक्ति पर किस स्थान में, किस विशेष प्रसंग पर क्या परिणाम होगा ? यह सिद्ध करना बड़ा कठिन कार्य है। केवल "सरी वीरेऽद्भुते रौद्रेधो वीभत्से भयानके। कार्यौ गनी तु करुणे हास्यशृङ्गारयोर्मपौ" कह देने से अथवा "राग का रस उसके वादी स्वर पर निर्भर है", इतना कह देने मात्र से सब कार्य सिद्ध नहीं होगा। यह मंत्र बहुत पुराना है, उसमें सुधार करके आज के अनुरूप बनाना होगा, अस्तु। हम अभी तो राग के रसों पर विचार नहीं कर रहे हैं, इसलिये उसकी विशेष चर्चा यहां नहीं कर सकेंगे। लेकिन मूल विषय की ओर विचार करने के पूर्व एक बात तुमसे कहता हूं, इस पर विचार करना।

कुछ दिन हुए एक विद्वान ने नवरसों पर एक निबन्ध पढ़ा था, इस निबन्ध में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया था कि शृङ्गार, वीर, करुण, रौद्र, हास्य, भयानक, वीभत्स, अद्भुत व शांत, यह जो नवरस हमारे पंडितों ने माने हैं, इनमें भी मुख्य रस तीन ही हैं—शृङ्गार, वीर व करुण। बाकी के रस इन तीन रसों में अन्तर्भूत होजाते हैं। उक्त विद्वान का यह विधान मुझे बड़ा मनोरंजक एवं विचारणीय प्रतीत हुआ। हमारे हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति के सब रागों के स्थूल वर्ग, स्वरों के अनुसार हम तीन ही करते हैं, इसलिये मैं सोचता हूं कि इन तीन स्थूल वर्गों का सम्बन्ध उक्त तीन रसों से जोड़ा जाय और वह सर्व मान्य होजाय, तो इससे हमारी पद्धति का गौरव ही बढ़ेगा और नवीन पद्य रचना व रंगमंच (नाटक) सङ्गीत पद्य राग योजना में भी बड़ा लाभ होगा।

उदाहरणार्थ शांत व करुण रस ही लीजिये, हमारे संधिप्रकाश रागों के स्वर अगर करुण व शांत रसों के पोषक सिद्ध होगये तो यह कितना सुविधाजनक होगा। हम स्वरों की योग्यायोग्यता के विषय पर विचार कर रहे हैं, करुण व शांत रसों के प्रयोग संधिप्रकाश के समय होते हैं, ऐसा मेरा कहना नहीं है। रागों में भिन्न-भिन्न स्वर-वाक्य होते हैं व राग सर्व वाक्यों से मिलकर रस उत्पन्न करते हैं। लेकिन कोई यह भी कह सकता है कि प्रातःकाल व सायंकाल यह दोनों समय ऐसे हैं कि इस समय मनुष्य की चित्तवृत्ति इन रसों की ओर अधिक होती है, उसी प्रकार रे, ध, ग तीव्र स्वरयुक्त रागों का सम्बन्ध अगर शृङ्गार रस से लगाया जाय तो वह भी एक इष्ट कार्य ही होगा। अब रह जाता है ग, नि कोमल वाले रागों का वर्ग। इसका सम्बन्ध वीर व उसके अङ्गभूत रसों की ओर होगा। यद्यपि ऊपरी दृष्टि से यह कल्पना स्वीकार नहीं की जा सकती, तथापि इस पर विचारपूर्वक प्रयोग करके अनुभव करना चाहिये।

लेकिन मित्र! अब हम इस शुष्क चर्चा को यहीं छोड़कर अपने इस मुख्य विषय पर आते हैं कि काफी थाट से कितने व कौनसे राग निकलते हैं?

प्र०—अच्छा, ऐसा ही करिये। यह चर्चा हमारे लिये बहुत मनोरंजक होगी। काफी थाट के हमको कितने व कौनसे राग आप बतायेंगे?

उ०—यह सब थाटों में बड़ा थाट माना जाता है, कारण तीस से अधिक राग इससे उत्पन्न होते हैं। इनमें से पच्चीस-तीस रागों का परिचय तुम्हें कराऊँगा। इस थाट के रागों में कुछ चमत्कारिक प्रयोग तुम्हें देखने को मिलेंगे।

प्र०—कृपया पहिले उनका ही परिचय कराइये।

उ०—इस थाट के रागों में कई बार दोनों निषादों का प्रयोग तुम्हें दिखाई देगा।

प्र०—इस में कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसे प्रयोग खमाज थाट में हमने देखे हैं। तीव्र निषाद आरोह में क्षम्य है, ऐसा मानकर हम चलते हैं।

उ०—काफी थाट के रागों में अगर इसी नियम को स्वीकार करके चलेंगे तो सरल होगा, लेकिन एक विशेष ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि इस थाट में गंधार कोमल होने से उत्तरांग में 'आरोह' में 'कोमल निषाद' का प्रयोग दिखाई दे, तो तुम्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

प्र०—अचम्भे की कोई बात नहीं, पूर्वाङ्ग में तीव्र गांधार वाले खमाज थाट के रागों में हमने ऐसे प्रयोग देखे हैं और यह तो कोमल गंधार वाला ही थाट है।

उ०—यह ठीक है कि आरोह में हमें तीव्र निषाद लेने के लिये गायकों को सुविधा दी गई है। किन्तु यह बातें स्वरसङ्गति पर अवलम्बित हैं। नियमित स्वरों के विन्यास में निषाद नियमित स्थान पर ही होगा। वैसे तो हमारे कान ही ऐसे प्रयोग स्वीकार नहीं करते हैं।

स्वर सङ्गति का यह नियम एक चमत्कार ही है, यह नियम केवल निषाद के लिये ही लागू है, ऐसा नहीं, दूसरे स्वरों के लिये भी यह नियम लागू है। नि॒रे॒सा, गरे॒ग, गरे॒सा, मरे॒सा, ग, नि॒रे॒सा, यह स्वरसमुदाय एक राग में गाकर देखो, कोमल रिषभ कानों को कैसा लगता है? शायद रागों में सूक्ष्म स्वरों का मिश्रण देखकर १२ मुख्य स्वरों पर राग कायम करने की पद्धति पसन्द की होगी।

प्र०—यह भी सत्य है। एक राग में स्वरसङ्गति के योग से एक ही स्वर के भिन्न रूप उत्पन्न होने लगें तो बड़ी कठिनाई होगी ?

उ०—लेकिन इस कठिनाई पर हमें विचार करने की आवश्यकता ही क्या है ?

प्र०—यह भी ठीक है। अच्छा तो अब काफी थाट के रागों में जो विशेष बातें हों उनका भी परिचय कराइये ?

उ०—अच्छा तो एक दो बातें कहता हूं। काफी थाट के कुछ रागों में ख्याल-गायक कभी-कभी कोमल धैवत का अल्प प्रयोग विवादी के नाते करते हैं। इसे आगान्तुक स्वर समझना चाहिये। कुछ रागों में दोनों गंधारों का प्रयोग भी दिखाई देगा, कहीं तीव्र गंधार विवादी के नाते लगेगा, तो कहीं वह राग के अङ्गभूत स्वर के रूप में दिखाई देगा।

प्र०—सम्भवत: दो गंधार के राग इसी प्रकार से प्रसिद्ध हैं। मुख्य चलन में गन्धार कोमल होगा तो काफी थाट के रागों की योजना होगी, कल्याण थाट में दो-दो मध्यमों के राग माने गये हैं, वही प्रकार यहां भी है; लेकिन तीव्र गंधार आरोह में या अवरोह में ?

उ०—वह आरोह में होगा, लेकिन उसका प्रयोग अल्प परिमाण में ही होगा और जहां होगा भी, वहां मध्यम स्वर के तेज से ढँका हुआ। इस काफी थाट में से जितने रागों का परिचय तुमको कराना है, उनकी तालिका नीचे लिखे अनुसार है:—

१-काफी	१२-सूहा	२३-लंकदहन सारंग
२-सेंधवी	१३-सुघराई	२४-मल्लार (शुद्ध)
३-धनाश्री	१४-देवसाख	२५-गौड़ मल्हार
४-धानी	१५-पीलू	२६-मेघ मल्हार
५-भीमपलासी	१६-बहार	२७-मीया की मल्हार
६-हंसकंकिणी	१७-बिंद्रावनी सारंग	२८-मीरा मल्हार
७-पटदीपकी	१८-मध्यमादि सारंग	२९-नट मल्हार
८-पटमंजरी	१९-बड़हंस सारंग	३०-सूर मल्हार
९-वागीश्वरी	२०-सामंत सारंग	३१-चरजू मल्हार
१०-शहाना	२१-मियां की सारंग	३२-चंचलसस मल्हार
११-नायकी	२२-शुद्ध सारंग	(इ०-इ०)

इसमें अन्तिम दो मल्हार अप्रसिद्ध हैं। इन रागों को ध्यान में रखने के लिये 'लक्ष्य सङ्गीत' व 'अभिनवरागमंजरी' इन दो ग्रन्थों के कुछ श्लोक कहता हूं:—

धनाश्रीः सैंधवी काफी धानी भीमपलासिका।
बहारो मध्यमादिश्च वागीश्वरी ह्यडाणकः॥
हुसेनी मेघमल्लारो मीयांमल्लारनामकः।
सूहा नीलाम्बरी सूरमल्लारः पटमंजरी॥
प्रदीपकी शहाना च देशाख्या हंसकंकणी।
वृन्दावनस्तथा पीलुः कौशिको नायकी पुनः॥
मीयांपूर्वकसारंगः सुघ्राई स्याद्गुणिप्रिया।
इत्येते काफिकामेलजन्यरागाः प्रकीर्तिताः॥

लक्ष्यसङ्गीते।

अभिनवरागमंजरीकार ने यही नाम नीचे लिखे अनुसार दिये हैं:—

धनाश्रीः सैंधवी काफी धानी भीमपलासिका।
पटमंजरिका पटदीपकी हंसकंकणी॥
वागीश्वरी सहाना च सूहा सुघ्राइका तथा।
कर्णाटो नायकी देवसागः पीलुर्बहारकः॥
वृन्दावन्याख्यसारंगो मध्यमादिस्ततः परम्।
सामंतपूर्वसारंगः शुद्धसारंग इत्यपि॥
मीयांपूर्वकसारंगः सारंगो बडहंसकः।
मल्लारः शुद्धपूर्वः स्यान्मीयामल्लारनामकः॥
गौंडमल्लारको मेघः सूरमल्लारसंज्ञितः।
सप्तविंशतिरागास्ते काफीमेले समीरिताः॥

इन दोनों ग्रन्थों में राग नाम प्रायः समान ही हैं। लक्ष्यसङ्गीत में एक दो मल्हार छोड़ दिये हैं। गौड़मल्हार का वर्णन मैं पहिले कर ही चुका हूं। मीरा मल्हार, चरजू-मल्हार, चंचलसस मल्हार यह प्रचार में कम सुनाई देते हैं; तथापि समयानुसार ऐसे २–३ रागों के साधारण स्वरूप भी तुम्हें बताऊंगा। लक्ष्यसङ्गीत में 'कौशिक' का उल्लेख है उसे काफी थाट का कौशिककानड़ा समझना चाहिये। दूसरा एक कानड़ा आसावरी थाट का भी है, उसे कौंसीकानड़ा कहते हैं, अस्तु। अब प्रश्न यह है कि यह सब राग किस प्रकार सिखाये जायेंगे? उन्हें सिखाने के लिये हमारे पण्डितों ने उचित युक्ति भी बतलाई है।

प्रश्न—वह कौनसी है? क्या इनका भी वर्गीकरण किया जा सकता है?

उ०—हां, अवश्य, उसका वर्णन भी मैं करूंगा। जिस प्रकार तुमको काफी थाट से निकलने वाले अनेक राग ध्यान में रखने पड़ेंगे, उसी प्रकार ऐसा एकाध वर्गीकरण भी तुम्हारे लिये उपयोगी सिद्ध होगा। उसकी रचना गूढ़ तत्वों पर आधारित न होकर रागों के मुख्य चलन या अङ्ग पर आधारित है।

प्र०—यहां 'अङ्ग' शब्द का क्या अर्थ है ?

उ०—'अङ्ग' अर्थात् ऐसा भाग जो रागों में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। किसी राग के आरोह में नियमित स्वर छोड़ना, किसी के आरोह या अवरोह विशेष प्रकार के रखना, किसी राग की स्वर रचना विशिष्ट प्रकार की रखना आदि। यह उदाहरण प्रत्यक्ष रूप में तुम्हारे सामने रखे जायंगे।

प्र०—अच्छा तो, काफी थाट के रागों का वर्गीकरण 'अङ्ग दृष्टि' से किस प्रकार का होगा ?

उ०—सब रागों का वर्गीकरण पांच अङ्गों से किया जा सकता है। (१) काफी अङ्ग (२) धनाश्री अङ्ग (३) कानड़ा अङ्ग (४) सारङ्ग अङ्ग (५) मल्हार अङ्ग।

प्र०—राग नामों से हमें थोड़ी बहुत कल्पना हो गई है कारण, उपांग राग नामों से उनकी कल्पना का आभास हो जाता है, लेकिन प्रत्येक अङ्ग में कौन-कौन राग रखे जायँगे ?

उ०—हां, देखो:—

(१) **काफी अङ्ग**–(१) काफी (२) सैंधवी (सिंदूरा) (३) पीलू

(२) **धनाश्री अङ्ग**–(१) धनाश्री (२) धानी (३) भीमपलासी (४) हंसकंकणी (५) पटदीपकी (प्रदीपकी)

(३) **कानड़ा अङ्ग**–(१) बहार (२) बागेश्री (३) सूहा (४) सुघराई (५) नायकी (६) सहाना (७) देवसाग (८) कौशिक

(४) **सारंग अङ्ग**–(१) शुद्ध सारंग (२) मधमाद (३) बिंद्रावनी सारंग (४) बड़हंस-सारंग (५) सामंत सारंग (६) मीयां की सारंग (७) लंक दहन (८) पटमंजरी (काफी मेल जन्य प्रकार)

(५) **मल्हार अङ्ग**–(१) शुद्ध मल्हार (२) गौड़ मल्हार (३) मीयां की मल्हार (४) सूर मल्हार (५) मेघ मल्हार (६) रामदासी मल्हार (७) चरजू की मल्हार (८) चंचलसस मल्हार (९) मीरा की मल्हार। अब इस वर्गीकरण को श्लोक रूप में भी कहता हूँ, जिससे पाठांतर में सुविधा होगी:—

हिंदुस्थानीयपद्धत्यां रागाः काफ्याह्वमेलजाः।
पंचांगेषु विभक्ताः स्युर्लक्ष्यमार्गानुसारतः॥
काफ्यंगं प्रथमं प्रोक्तं धनाश्र्यंगं द्वितीयकम्।
सारंगांगं तृतीयं स्याच्चतुर्थं कानडाह्वयम्॥

स्यात्पंचमं मलाराख्यं भूरिरक्तिप्रदायकम् ।
अथो वक्ष्ये क्रमाद्रागांस्तान् पंचांगानुसारतः ।
काफी सिंदूरकः पीलू रागाः काफ्यंगमंडिताः ।
धनाश्रीर्धानिका भीमपलासी हंसकंकणी ॥
प्रदीपकी मता एता धनाश्र्यंगं परिष्कृताः ।
वागीश्वरी बहारश्च सूहा सुघ्राइका तथा ॥
नायकी साहना तद्वद् शाख्यः कौशिकाह्वयः ।
रागाः प्रकीर्तितास्तज्ज्ञैः कानडांगसुशोभनाः ॥
शुद्धसारंगसामंतौ मध्यमादिस्तथैव च ।
वृन्दावनी वृद्धहंसो मीयासारंगनामकः ॥
लंकाद्यदहनः पटमंजरी काफिमेलजा ।
रागा एते मता अष्टौ सारंगांगविभूषिताः ॥
मल्लारः शुद्धपूर्वोऽथ मीयांमल्लारकाभिधः ।
गौंडमल्लारको मेघः सूरमल्लारसंज्ञितः ॥
रामदासी तथा चजू चंचलाख्यौ च धूलिया ।
मीरामल्लारकः प्रोक्ता मल्लारांगप्रदर्शिनः ॥

प्र०—यह श्लोक पाठांतर के लिये अति उत्तम हैं हम इनका पाठ अवश्य करेंगे । अब आप इसी क्रम से इनका वर्णन भी करेंगे क्या ?

उ०—हां, ऐसा करना उचित ही होगा । प्रथम हम काफी थाट से ही आरम्भ करते हैं । काफी थाट के स्वर तुम जानते ही हो, इस थाट को दक्षिण के ग्रन्थों में 'खरहर-प्रिया' 'हर प्रिया' 'श्री राग मेल' कहते हैं । हमारे यहां श्रीराग पूर्वी थाट में गाते हैं । दक्षिण में, इसमें ग, नि कोमल होते हैं । पूर्वी राग के विषय में तुम्हें 'एक बात' ध्यान में रखनी चाहिये कि इस राग में उत्तर भारत की ओर दोनों धैवतों का प्रयोग दिखाई देगा । आरोह में धैवत तीव्र, व अवरोह में कोमल, यह प्रकार कुछ गायकों से सुना भी जाता है, लेकिन हम अपने मतानुसार ही चलेंगे ।

प्र०—हम इस मत को भी ध्यान में रक्खेंगे । आप काफी राग पर बोल रहे हैं इसलिये काफी के स्वरों का पुनः स्पष्टीकरण करें ।

उ०—काफी थाट के स्वर आन्दोलन दृष्टि से कौन से होवे हैं, यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ, किन्तु पुनः संक्षेप में कहता हूँ कि हमारे काफी थाट जैसा शुद्ध मेल उत्तर के चार ग्रन्थकारों ने वर्णित किया है, वे हैं रागतरंगिणीकार लोचन पंडित, हृदय प्रकाशकार-हृदयनारायण देव, पारिजातकार अहोबल व रागतत्वविबोधकार श्रीनिवास पंडित ।

इन ग्रन्थकारों ने अपने स्वर स्थान वाद्य के तारों की लम्बाई के आधार पर वर्णित किये हैं, इस लिये शंका के लिये वहां स्थान नहीं रहता। तुम काफी थाट के स्वरों के तुलनात्मक आन्दोलन ध्यान में रखो। सा=२४० रे=२७० ग=२८८ म=३२० प=३६० ध=४०५ नि=४३२

हमारे कुछ पंडित रे, ग, ध, नि इन चार स्वरों के आन्दोलन क्रमशः २६६⅔, ३०० ४०० इ० इस प्रकार से मानते हैं जोकि गलत हैं। उन्होंने आन्दोलन मेजर, मायनर व सेमिटोन इन पाश्चात्य स्वरांतरों को चतुःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक व द्विश्रुतिक स्वरांतरों के पर्याय स्वीकार करके निश्चित किये हैं। यह विचारधारा हमारे संस्कृत ग्रन्थों की दृष्टि से भी गलत है। ग्रन्थों में इनके मत को कोई आधार प्राप्त नहीं है।

प्र०—लेकिन आप ही ने एक बार कहा था कि इन विद्वानों ने पारिजात व राग-विबोध ग्रन्थों को छोड़कर, अपनी श्रुतियों का भरत व शार्ङ्गदेव के ग्रन्थाधार पर प्रतिपादन किया है।

उ०—हां, तुमको ठीक याद आई। मैंने उस समय कुछ विशिष्ट कारणों से ऐसा कहा था कि उनकी श्रुतियां भरत, शार्ङ्गदेव के ग्रन्थानुसार नहीं हैं, अब उसको भी स्पष्ट किये देता हूँ:—

प्र०—भरत, शार्ङ्गदेव अपने श्रुतिस्थान किस प्रकार कायम करते थे, इसकी भी जानकारी देंगे?

उ०—श्रुति स्वर वर्णन पं० शार्ङ्गदेव ने रत्नाकर में लिखा है। वह २२ श्रुतियां मानते थे, लेकिन वह उनके ग्रन्थ की नहीं हैं।

प्र०—ठहरिये! तो फिर इसका यह अर्थ मालुम होता है कि रत्नाकर में श्रुति कायम करने के लिये जो श्लोक ग्रन्थकार ने दिये हैं उनका अर्थ लगाने में हमारे पंडित गलती कर रहे हैं!

उ०—तुम्हारा कहना सही है। मेरे मत से इसमें पंडितों की थोड़ी बहुत भूल अवश्य हुई है।

प्र०—वह श्लोक कौनसे हैं, उनका खुलासा करेंगे?

उ०—अवश्य! वह तो हमारे परिचित श्लोक हैं।

व्यक्तये कुर्महे तासां वीणाद्वंद्वे निदर्शनम्।
द्वेवीणे सदृशे कार्ये यथा नादः समो भवेत्॥
तयोर्द्वाविंशतिस्तंत्र्यः प्रत्येकं तासु चादिमा।
कार्या मंद्रतमध्वाना द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक्॥
स्यान्निरंतरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यन्तराश्रुतेः॥

रत्नाकरे प्र० अ०।

प्र०—इन दो श्लोकों में शार्ङ्गदेव ने अपनी श्रुति रचना का सब रहस्य वर्णित कर दिया है, इन श्लोकों से हम भली प्रकार परिचित हैं, लेकिन यह इतने महत्वपूर्ण हैं, इसकी कल्पना हमको नहीं थी।

उ०—वस्तुतः इन दो श्लोकों में शार्ङ्गदेव ने अपनी श्रुति रचना का निचोड़ दे दिया है। वर्णन संक्षिप्त अवश्य है, लेकिन विचारवान के लिये पर्याप्त है।

प्र०—एक शंका है, क्या शार्ङ्गदेव प्रत्यक्ष में इसी प्रकार २२ श्रुतियों को रखकर फिर इन पर स्वर स्थिर करते थे ?

उ०—यह प्रश्न एक बार पहिले भी किया था, ऐसा मुझे ध्यान है परन्तु इस पर पुनः विचार करने में कोई हानि नहीं। तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मैं "नहीं" कहकर दूँगा। आज के हमारे गायक वादक प्रथम श्रुति कायम कर फिर उस पर स्वर कायम नहीं करते हैं; कुछ ग्रन्थकारों ने तार की भिन्न-भिन्न लंबाई पर स्वर स्थान निश्चित किये हैं, लेकिन हमारे गायक-वादक केवल अपने कानों की सहायता मात्र से स्थान स्थिर करते हैं, यह हम प्रत्यक्ष में देखते ही हैं। यही प्रकार शार्ङ्गदेव के समय में भी होगा। परंपरागत स्वर वह जानते ही होंगे, उसी आधार पर वह अपनी वीणा मिलाया करते होंगे, लेकिन ग्रन्थ लिखते समय श्रुति-स्वरों का बोध किस प्रकार कराया जाय, यह समस्या अवश्य उनके सामने उपस्थित हुई होगी। उसका भी स्पष्टीकरण उन्होंने श्लोक में किया है, यह स्पष्टीकरण भी उन्होंने अपनी बुद्धि से ही किया है। अब इस से उत्पन्न होने वाली श्रुतियों या स्वरों का उपयोग वह स्वतः करते भी थे या नहीं, यह प्रश्न विचाराधीन है।

प्र०—आपका कथन है कि यह विचार उन्होंने दूसरे प्राचीन ग्रन्थकारों से लेकर उसके आधार पर अपने श्लोक रचे हैं ?

उ०—ऐसा मान लेने के लिये पर्याप्त कारण भी है, लेकिन मित्र ! शार्ङ्गदेव के श्लोकों का जो अर्थ हमारे पंडित आज कर रहे हैं, वह ठीक नहीं है। पंडित शार्ङ्गदेव प्रत्यक्षतः कौन से श्रुतिस्वर काम में लाते थे, यह प्रश्न अभी हमारे विचाराधीन नहीं है, अपितु श्रुति किस प्रकार स्थिर करनी चाहिये इस पर उन्होंने जो वर्णन दिया है, उसका अर्थ हमारे पंडितों ने ठीक से नहीं किया, ऐसा मैंने कहा था। कल्लिनाथ पंडित ने इस श्लोक पर जो टीका की है, उससे भी मेरे मत का समर्थन होता है।

प्र०—तो फिर इस श्लोक का स्पष्टीकरण करेंगे क्या ?

उ०—अवश्य करूंगा, लेकिन संक्षेप में। क्योंकि इससे हमारा प्रत्यक्षतः कोई लाभ नहीं होगा। रत्नाकर में वर्णित श्रुति व स्वर का आज के प्रचार में कोई उपयोग नहीं है।

प्र०—परन्तु हमारे पंडित तो स्पष्ट कहते हैं कि आज के प्रचलित संगीत की श्रुतियां व स्वर शार्ङ्गदेव के ही हैं।

उ०—वे कहते अवश्य हैं, लेकिन इसके लिये आधार क्या है ? शार्ङ्गदेव के विचारों का महत्व आज केवल ऐतिहासिक दृष्टि से अपने उत्तर भाग में है, दक्षिण

की तरफ तो आज भी ऐसे कहने वाले हैं कि शार्ङ्गदेव के श्रुति व स्वर कर्नाटकी संगीत में आज भी प्रचलित हैं। दक्षिण में इसके विरोधी भी हैं, लेकिन मतभेदों की योग्यायोग्यता पर विचार न करते हुए, हमें तो शार्ङ्गदेव के श्लोकों का रहस्य देखना है।

प्र०—अवश्य !

उ०—प्रथम ऐसी कल्पना करें कि कहीं भी मंद्रतम (जहां से नीचे जाना संगीत दृष्टि से सम्भव नहीं है) ध्वनि से आरम्भ करके क्रमशः उच्चतम ध्वनि तक (एक सप्तक में) २२ नाद संगीतोपयोगी मानें । श्रुति की व्याख्या 'श्रूयते इति श्रुति' यह है, फिर भी इसके अर्थ को संकुचित या मर्यादित करना, या जो नाद कान से स्पष्ट पहिचान में आसके, उसको "श्रुति" को संज्ञा दी जाय, इस प्रकार एक से दूसरा 'कुछ ऊँचा' उत्तरोत्तर रचित नाद बाईस से अधिक नहीं हो सकते, इसे ही प्रमाण मानकर चलना होगा। बाईस के आगे के नाद निचले सप्तक के नाद की पुनरावृत्ति ही है, अर्थात् प्रत्येक सप्तक में बाईस नाद ही सङ्गीत दृष्टि से ग्राह्य होंगे। मन्द्र सप्तक के बाईस नाद ही मध्यसप्तक में पुनरावृत्त होंगे। यहाँ ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये कि बाईस से अधिक नाद संभव हैं २३ वाँ नाद फिर प्रथम मंद्रतम नाद की ही पुनरावृत्ति होगा, लेकिन अब हम शार्ङ्गदेव की श्रुतिरचना पर स्वतन्त्र पर विचार कर रहे हैं, उसको समझना कोई कठिन कार्य नहीं है। पंडित कहते हैं, 'एवं कंठे तथा शीर्षे श्रुतिद्वाविंशतिर्मता' अर्थात् मंद्र, मध्य व तार के प्रत्येक स्थान में २२ श्रुतियों की श्रेणी समझनी चाहिये। यहां केवल 'हृदि मंद्रोऽभिधीयते। कंठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तरः ॥ इस नाद नियम को ध्यान में रखना चाहिये; अब २२ श्रुतियां उत्तरोत्तर एक दूसरे से ऊंची किस प्रकार स्थिर करेंगे तो "कार्या मन्द्रतमध्वाना द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक्। स्यान्निरन्तरताश्रुत्योर्मध्येध्वन्यन्तराश्रुतेः ॥ इस श्लोक से स्पष्ट होता है।

प्र०—तनिक ठहरिये, तो आपके भाषण का अर्थ यही है कि शार्ङ्गदेव भी श्रुति का नियत परिमाण मानते थे ?

उ०—स्पष्ट है। शार्ङ्गदेव की भाषा पर विचार करने पर हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि वे 'श्रुति' का निश्चित परिमाण मानते थे । अब हम उनकी शैली पर भी विचार करें, वह कहते हैं:—

व्यक्तये कुर्महे तासां वीणाद्वंद्वे निदर्शनम् ।
द्वे वीणे सदृशे कार्ये यथा नादः समो भवेत् ॥
तयोर्द्वाविंशतिस्तंत्र्यः प्रत्येकं तासु० इ०

किसी कुशल कलाकार द्वारा दो समान नाद की वीणा तैयार कराकर, उनपर २२ खूटियां व २२ तार लगाना सरल साध्य है। वास्तविक विचार तो निम्न श्लोकों पर ही करना है—'प्रथमा मंद्रतमध्वाना कार्या। द्वितीया उच्चध्वनिर्मनाक। लेकिन यही क्यों "स्यान्निरंतरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यन्तराश्रुतेः ।

प्र०—किन्तु पहिला मन्द्रतम नाद कौनसा व किस प्रकार निश्चित किया जाय ?

उ०—यह कोई बड़ी समस्या नहीं है। तार जितना अधिक शिथिल व ढीला रखा जायगा उतना ही अधिकाधिक मन्द्रनाद उत्पन्न होगा। अगर वह एक विशिष्ट परिमाण से अधिक ढीला करदिया जायगा, तो नाद निकलना बन्द हो जायगा।

प्र०—इसका तो यही अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी कर्णेन्द्रिय की शक्ति के आधार पर निम्नतम नाद कायम करना चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति इसे सहज ही कायम कर सकता है। हमें याद है कि इसकी चर्चा श्रुतिस्वर चर्चा के समय भी हो चुकी है, परन्तु 'द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक्' इसके आगे हम नहीं जा सके थे।

उ०—ठीक है। उस समय मैंने "रत्नाकर" के श्रुति प्रकरणों को विशेष कारणवश नहीं समझाया था, अपितु शार्ङ्गदेव के 'द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक' शब्द से जो शंकायें उत्पन्न होगई थीं अब उनका भी स्पष्टीकरण करता हूं:—

मंद्रतम स्वर में तार मिलाना कठिन नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी कर्णेन्द्रिय की सुविधानुसार इस प्रकार के स्वर लगा सकता है। प्रत्येक का स्वर भिन्न होने पर भी उसमें कोई बाधा नहीं होगी। अब इसके आगे कैसे बढ़ना चाहिए ? यह समस्या रहजाती है, उसके लिये "उच्चध्वनिर्मनाक्" ऐसा पंडित कहते हैं, वह भी कठिन नहीं है। प्रथम नाद से दूसरा नाद कुछ ऊँचा अर्थात् स्पष्ट प्रथक नाद होना चाहिये, इस प्रकार का तार आसानी से लगाया जा सकता है।

प्र०—लेकिन कुछ ऊँचा, यानी कितना ऊँचा ? यह भी तो स्पष्ट होना चाहिये।

उ०—प्रथम ध्वनि से दूसरी कुछ ऊँची यानी जो अलग स्पष्ट सुनाई दे, दूसरे तार को प्रथम से कुछ अधिक तानने पर यह भेद स्पष्ट होगा। इन दो तारों को मिलाने में कुछ भी अड़चन नहीं होगी। दूसरे तार का परिमाण "इतना" होना चाहिये ऐसा भी पंडित का कहना नहीं है। अगर पहिले व दूसरे तार की ध्वनि से भिन्न ध्वनि इन दो तारों के बीच में निकलती है, तो यह ध्वनि ही वस्तुतः दूसरे नम्बर की श्रुति है।

प्र०—अर्थात् प्रथम व द्वितीय, यह नाद मिलाने वाले की श्रवण शक्ति पर ही निर्भर है ?

उ०—ऐसा भी मान लें तो भी कोई हानि नहीं होगी। मुख्य बात तो तीसरे नाद व श्रुति से आगे ही है। दूसरा तार मिला लेने पर तीसरा किस प्रकार मिलाना चाहिये, यह समस्या है। यहां फिर "उच्चध्वनिर्मनाक्" वाला प्रमाण आवश्यक है लेकिन एक नियम भी है कि 'स्यान्निरन्तरता श्रुत्योः मध्येध्वन्यन्तराश्रुतेः। अर्थात् दूसरी व तीसरी श्रुति के मध्य का परिमाण (Ratio) सम्बन्ध प्रथम व द्वितीय श्रुति के मध्य के परिमाण से भिन्न नहीं होना चाहिये। उदाहरणार्थ प्रत्येक दो श्रुति का Ratio अथवा आंदोलन परिमाण पहिली व दूसरी श्रुति से भिन्न नहीं होना चाहिये। इस दृष्टि से विचार करने पर दूसरी व तीसरी, तीसरी व चौथी, चौथी व पांचवीं अर्थात कोई सी दो श्रुतियों का (Ratio) आंदोलन परिमाण, पहिली व दूसरी श्रुति के परिमाण से भिन्न नहीं होना चाहिये।

प्र०—तो फिर इसका यही भावार्थ हुआ कि प्रथम व द्वितीय नाद के आंदोलन परिमाण किन्हीं भी दो श्रुतियों में दृष्टिगोचर होंगे ?

उ०—बिलकुल ठीक समझ गये। इसीलिये 'ध्वन्यन्तरा श्रुतेः' ऐसा ग्रन्थकार कहता है। इससे स्पष्ट होजाता है कि शार्ङ्गदेव की श्रुति का निश्चित परिमाण है तथा नाद-परिमाण दृष्टि से उसकी सर्वश्रुतियां समान थीं, वह नीचे से ऊपर निश्चित परिमाण से बढ़ती जाती हैं। यही कल्लिनाथ का भी मत है। वह टीका में कहता है 'वीणयोः प्रत्येकं द्वाविंशतौ तंत्रिषु, आदिमा प्रथमा तंत्री, कर्त्रपेक्षया संनिहिता मंद्रतमध्वाना अतिमंद्रस्वना, उत्तरोत्तरापेक्षया मंद्रत्वे संभवत्यपि सर्वापेक्षया इयं मंद्रा इति तम प्रयोगः। अतिमंद्रस्वनत्वं च तंत्र्याः अतिशिथिलीकरणेन भवति। ततोऽपि शिथिलीकरणे यथा अनुरंजकान्यमंद्रध्वन्यसंभवः तथा कार्या इत्यर्थः। द्वितीया मनागुच्चध्वनिः कार्या। मनागुच्चध्वनित्वस्यैव व्यवस्थापकं स्यान्निरंतरता इति।

प्र०—तो पहिले 'मनागुच्चध्वनिः' नाद को ही, सब श्रुति व्यवस्था का प्रमाण मानना चाहिये, एवं इसी आधार पर सब श्रुतियों को कायम करना होगा।

उ०—तुम्हारी समझ में अब ठीक से आगया। कल्लिनाथ ने स्पष्ट कहा है, श्रुत्योः पूर्वोत्तरतंत्र्युत्पन्नयोर्मध्ये ध्वन्यन्तराश्रुतेर्ध्वन्यन्तरस्य, पूर्वोत्तरश्रुतीविलक्षणस्य, पूर्वश्रुतेः किंचिदुच्चस्योत्तरश्रुतेः किंचिन्नीचस्य अन्यध्वनेरश्रुतिश्रवणम्। मध्यगतध्वन्यन्तराश्रवणं निमित्तीकृत्य श्रुत्योर्निरन्तरता यथा स्यात्तथा तंत्री किंचिद्दृढीकरणेन मनागुच्चध्वनिः कार्या इत्यर्थः। अत्र नैरंतर्यं ध्वन्योरेव। तंत्र्योर्दंडादि षुमध्ये अवकाशो दृश्यते इति तत्र ध्वन्यंतरसंभवो न शंकनीयः।

प्र०—कारण, वीणा पर तारों के बीच में अलग तार लगाये जा सकते हैं। हमारे मत से शार्ङ्गदेव के श्लोक का और कोई दूसरा अर्थ सम्भव नहीं है। 'ध्वनि परिमाण' से उसकी श्रुतियां समान ही हैं। कल्लिनाथ ने रत्नाकर के श्लोकों का स्पष्टीकरण उत्तम प्रकार से किया है, इन दोनों ग्रन्थों को हम आदरपूर्वक मानते हैं।

उ०—ठहरिये, लेकिन यह विचारधारा शार्ङ्गदेव की अपनी ही होगी, यह प्रतीत नहीं होता। भरत इसके पहिले हो चुका था, भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में श्रुतिव्यवस्था बहुत कुछ इसी प्रकार की है, परन्तु भिन्न दृष्टि से व भिन्न शब्दों में वर्णन की है। पहिले श्रुति प्रकरण पर बोलते हुए मैंने भरत के कुछ श्लोकों पर प्रकाश डाला था, अब हम उसी पर विस्तृत रूप से विचार करेंगे।

प्र०—इन प्राचीन ग्रन्थकारों ने श्रुति कायम करने के सम्बन्ध में कौनसी पद्धति अपनाई है, यही हम जानना चाहते हैं। उनके स्वर आज अपने प्रचलित संगीत में उपयोगी नहीं होंगे, ऐसा आपने ही कहा था, लेकिन वह क्यों उपयोगी नहीं होंगे? यही हम जानना चाहते हैं। श्रुति प्रकरण पर बोलते हुए भरत, शार्ङ्गदेव की श्रुतियों व स्वरों का अधिक स्पष्टीकरण किसी विशिष्ट कारण से आपने छोड़ दिया था, वह कारण हम जानना चाहते हैं।

उ०—उस समय वह चर्चा करना मैंने ठीक नहीं समझा क्योंकि उस समय हमारे विद्वान भरत, शार्ङ्गदेव के श्रुति स्वरों का स्पष्टीकरण करने में लगे हुए थे। लेख, पुस्तक रूप में व अखबारों में प्रकाशित हो रहे थे, इतना ही नहीं अपितु वे शार्ङ्गदेव के रागों का स्पष्टीकरण करने में भी लगे हुए थे। इस लिये उन लेखों से क्या भावार्थ निकलता है यह देखने के लिये मैं उस समय ठहर गया था। अपना संभाषण मैंने अधिकांशतः पूर्वपक्ष से निश्चित किया, यद्यपि मैं जानता था कि उनका कथन सुव्यवस्थित नहीं है तथापि उन लेखकों का शौक पूरा होने पर इस विषय पर कुछ अधिक कहा जायगा इसी लिये मैं ठहर गया, फिर ऐसा मुझे प्रतीत हुआ कि शायद इन विद्वानों ने ऐसे भी ग्रन्थ देखे होंगे जो मुझे देखने को नहीं मिले और उसी आधार पर भरत-शार्ङ्गदेव के ग्रन्थों का स्पष्टीकरण करने का इन्होंने साहस किया। अस्तु अब इन कारणों पर विशेष ध्यान न देकर हम भरत की श्रुति व्यवस्था पर विचार करेंगे।

प्र०—ठीक है, ऐसा ही करिये।

उ०—प्रथम भरत की श्रुति व उसके स्वर समझने के लिये उन ग्रन्थों के जो श्लोक ध्यान में रखने योग्य हैं, उन्हें पुनः एक बार कहता हूँ:—

षड्जश्चतुःश्रुतिर्ज्ञेय ऋषभस्त्रिश्रुतिस्तथा।
द्विश्रुतिश्चैव गांधारो मध्यमश्चचतुःश्रुतिः॥
चतुःश्रुतिः पंचमः स्याद्धैवतस्त्रिश्रुतिस्तथा।
निषादो द्विश्रुतिश्चैव षड्जग्रामे भवन्ति हि॥
चतुःश्रुतिस्तु विज्ञेयो मध्यमः पंचमः पुनः।
त्रिश्रुतिर्धैवतस्तु स्याच्चतुःश्रुतिक एव च॥
निषादषड्जौ विज्ञेयौ द्विचतुःश्रुतिसंभवौ।
ऋषभस्त्रिश्रुतिश्च स्याद्गांधारो द्विश्रुतिस्तथा॥

प्र०—इसमें नवीन कुछ नहीं है 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः। द्वे द्वे निषाद गांधारौ त्रिस्त्रीरिषभधैवतौ' यह नियम भरत भी मानता था, इतना ही इस श्लोक से स्पष्ट होता है, इसी प्रकार दो ग्राम का भेद पंचम स्वर से होता है इसे भी वह मानता था, दूसरे शब्दों में:—

षड्जग्रामे पंचमे स्वचतुर्थश्रुतिसंस्थिते।
स्वोपान्त्यश्रुतिसंस्थेऽस्मिन्मध्यमग्राम इष्यते॥

यह नियम भी भरत मानता था।

उ०—यह तुम समझ गये, लेकिन इसमें एक बाधा है कि श्लोकों से भरत के श्रुति स्वरों का बोध, ध्वनि दृष्टि से किस प्रकार होगा? जिस रचना में १७ वीं श्रुति पर पंचम होता है, वह रचना 'षड्जग्राम' व जिसमें वही स्वर १६ वीं श्रुति पर होगा, वह रचना

'मध्यम ग्राम' है, इतना ही भरत का कहना है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उस काल में षड्ज व मध्यम ग्राम के शुद्ध स्वर-सप्तक लोगों में प्रसिद्ध थे, तथा इन दो ग्रामों में दो भिन्न पंचम लोगों में प्रचलित थे। इतना ही नहीं, इन दो पंचमों के ध्वन्यंतर एक ही श्रुति के थे यह भी वह लोग जानते थे; अर्थात् एक बार षड्ज कायम कर लेने पर उसी आधार से दो ग्रामों के दो पंचम गुणीजन कायम कर लेते थे, यही मानना होगा। इसे ध्यान में रखकर आगे जो मैं कहता हूँ उसपर विशेष ध्यान देना, भरत कहता है:—

'मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमः कार्यः। पंचमश्रुत्युत्कर्षादपकर्षाद्वा यदन्तरं मार्दवादायतत्वाद्वा तत्प्रमाणश्रुतिः।'

भावार्थः—मध्यम ग्राम का पंचम (तारपर) मिलाने के लिये षड्जग्राम के पंचम को, एक श्रुति नीचे उतारना चाहिए। अर्थात् उस षड्जग्राम के पंचम को एक श्रुति कोमल करना, उसी परिमाण से मध्यम ग्राम के पंचम को षड्ज ग्राम का पंचम बनाना यानी उसे एक श्रुति ऊपर चढ़ाना। यह जो एक श्रुति कम करके मध्यम ग्राम का पंचम बनाना अथवा मध्यमग्राम के पंचम को एक श्रुति चढ़ाकर षड्जग्राम का पंचम बनाना कहा है, इसे ही मेरा 'श्रुतिप्रमाण' या नाप समझना चाहिये।

प्र०—इससे तो यह संकेत मिलता है कि भरत अपनी श्रुति का नियत परिमाण मानता था। तथा इसी आधार से उसकी श्रुतियां एक के बाद एक रखनी हैं। कोई सी भी दो श्रुतियों में यही 'ध्वनि-परिमाण होना चाहिये।

उ०—तुम भली प्रकार समझ गये। प्राचीन काल में श्रुति का नियत परिमाण नहीं था, ऐसा मानने वाले ग्रन्थकारों का मत भरत, शार्ङ्गदेव के मत से विसंगत होगा, लेकिन इस विचारधारा से यह भी सिद्ध होता है कि भरत की श्रुति 'ध्वनि दृष्टि' से समान थी, अर्थात् Geometrical progresion के अनुसार चढ़ती थी, आज हमारे तुलनात्मक आन्दोलन पद्धति की भाषा में षड्जग्राम के पंचम की आन्दोलन संख्या से मध्यमग्राम के पंचम की आन्दोलन संख्या में भाग देने पर जो Ratio आयगा वही भरत की एक श्रुति का माप या परिमाण है, भरत अर्वाचीन आन्दोलन शास्त्र से परिचित नहीं था, लेकिन अपनी श्रुतियां समान हैं, अर्थात् एक नियत परिमाण में एक के बाद दूसरी रखते हैं, यह समझाने के लिये उसने अति उत्तम निदर्शन किया है, इसके विषय में मैंने पहिले भी कहा था लेकिन उसका उपयोग उस समय मैंने स्पष्ट नहीं समझाया था।

प्र०—दो समान वीणा लेकर···आदि जो आपने कहा था वही ?

उ०—हां, वही ! मेरे मत से वह अति महत्वपूर्ण है, उसे विस्तारपूर्वक समझ लेना बड़ा उपयोगी होगा।

प्र०—तो उसे विस्तार से समझाने की कृपा करें।

उ०-हां हां, अवश्य। लेकिन पहिले मैं भरत की भाषा में उसीके अनुसार कहता हूँ।

अथ ग्रामौ—षड्जग्रामोमध्यमग्रामश्च। तत्र वा द्विविंशातिः श्रुतयः। यथा

तिस्रो द्वे च चतस्रश्च चतस्रस्तिस्र एव च।
द्वे चतस्रश्च षड्जाख्ये ग्रामे श्रुतिनिदर्शनम्॥

मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमः कार्यः। पंचमश्रुत्युत्कर्षादपकर्षाद्वा यदन्तरं मार्दवादायतत्वाद्वा तत्प्रमाणश्रुतिः। निदर्शनं त्वासामभिव्याख्यास्यामः। यथा—द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतंत्र्युपवादनदंडमूर्छने षड्जग्रामाश्रिते कार्ये। तयोरेकतरस्यां मध्यमग्रामिकीं कृत्वा पंचमस्यापकर्षे श्रुतिं तामेव पंचमवशात् षड्जग्रामिकीं कुर्यात्। एवं श्रुतिरपकृष्टा भवति।

प्र०—ठहरिये, पहिले इतने का ही अर्थ समझा दीजिये ?

उ०—ठीक है, श्लोक में ३, २, ४, ४, ३, २, ४ इन श्रुतियों से षड्जग्राम की रचना बताई है। इसके आगे "मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमः कार्यः इ० इ० प्रमाण श्रुतिः" यहां तक का भाग अभी मैंने स्पष्ट किया ही है। आगे ग्रन्थकार कहता है।

द्वे वीणे…इ०। भावार्थ—दोवीणा ऐसी लीजिये, जिनमें तार, डांडी व मूर्छना 'तुल्यप्रमाण' होने चाहिये।

प्र०—यहां 'मूर्छना' का भावार्थ स्पष्ट करेंगे क्या ?

उ०—दोनों वीणा के स्वरोत्पादक क्षेत्र (Compass) बिल्कुल समान हों, इस प्रकार की लेनी चाहिये, यह भावार्थ है। जितने स्वर सप्तक एक पर होंगे उतने ही दूसरी पर होने चाहिये, यही आशय उक्त पंडित का है। इस प्रकार की वीणा लेकर दोनों पर षड्जग्राम के स्वर स्थापन करने चाहिये "तयोरेकतरस्यां इ०" इन दो वीणाओं में से एक वीणा "मध्यमग्रामिकी" करनी चाहिये।

प्र०—उसे मध्यमग्राम स्वरवाचक करने के लिये उसके पंचम को एक श्रुति नीचे (मृदु) करना होगा, यही न ?

उ०—हां, पंचम प्रयोग करने वालों को यह मालूम है, ऐसा समझ कर ही ग्रन्थकार चल रहा है। एक वीणा षड्ज ग्राम में मिलाई हुई व दूसरी मध्यम ग्राम में मिलाई हुई, यह एक प्रकार हुआ। अब षड्जग्राम की वीणा को एक ओर रखकर मध्यमग्राम की वीणा को लेकर उस पर जो पंचम है वह 'षड्जग्रामिक' वीणा का (चतुःश्रुतिक) है ऐसा मानकर उस वीणा को 'षड्जग्रामिकी' बनावे।

प्र०—ठहरिये, ऐसा करने के लिये उसके बाकी के सब स्वर एक-एक श्रुति नीचे उतारने पड़ेंगे, अर्थात् सा, रे, ग, म, ध, नि यह सब एक श्रुति नीचे उतरेंगे, ऐसा होने पर 'मध्यम ग्रामिक' वीणा षड्जग्रामिक किस प्रकार होगी ? कारण, पंचम तो हिलने वाला नहीं (अचल) है !

उ०—तुम ठीक समझ गये। इसलिये ग्रन्थकार कहता है कि पहिली सारणा से, एक वीणा जो अलग रखी है वह षड्जग्रामिक वीणा से 'एक श्रुति' नीचे उतरी हुई दिखाई देगी। 'श्रुतिरपकृष्टा भवति' कहकर आगे ग्रन्थकार कहता है "पुनरपि तद्वदेवापकर्षात् गांधारनिषादवन्तौ स्वरौ इतरस्यां धैवतर्षभौ प्रविशतः। द्विश्रुत्यधिकत्वात्। भावार्थः—इसी प्रकार पुनः एक बार सारणा करने पर इस सारणा की हुई वीणा पर जो गांधार व निषाद स्वर हैं वह अलग रखी हुई "षड्जग्रामिक" वीणा के रिषभ व धैवत स्वरों में प्रवेश करेंगे। अर्थात् इन गंधार व निषाद स्वरों की ध्वनि उस षड्जग्रामिक वीणा के रिषभ व धैवत स्वरों से हूबहू मिलेगी।

प्र०—यानी पहिले जो एक श्रुति अपकृष्ट वीणा थी, उसे षड्जग्रामिक समझनी चाहिये तथा फिर पंचम पुनः एक श्रुति नीचे उतारकर उसे "मध्यम ग्रामिक" बनाना चाहिये, और इस नई "मध्यम ग्रामिक" वीणा का पंचम उसी प्रकार रखकर अन्य स्वर एक-एक श्रुति नीचे उतारकर उसे "षड्ज ग्रामिक" बनाना चाहिये, यही अर्थ है न? लेकिन फिर यह वीणा उस एक ओर रखी वीणा से दो श्रुति नीचे बोलेगी।

उ०—भरत का यही तो इष्ट है। गांधार व निषाद यह ऋषभ व धैवत स्वरों से दो-दो श्रुति क्रम से ऊँचे हैं, इसलिये नई सारणा से वह ऋषभ व धैवत स्वरों से अवश्य मिलेंगे।

प्र०—तो फिर हम भी एक सारणा इसी प्रकार की बनावें तो ऋषभ व धैवत यह स्वर षड्ज व पंचम इस षड्ज ग्रामिक वीणा के स्वरों में प्रवेश करेंगे और इसी प्रकार आगे भी एक सारणा हम करें तो हमारी यह चल वीणा उस एक ओर रखी 'षड्ज-ग्रामिक' वीणा की दृष्टि से चार श्रुति नीची बोलेगी अर्थात् उसके षड्ज मध्यम व पंचम स्वर, षड्ज ग्रामिक वीणा के निषाद, गांधार व मध्यम स्वरों में प्रवेश करेंगे, ठीक है न ?

उ०—सही है। अब आगे ग्रन्थकार कहता है—

"पुनस्तद्वदेवापकर्षाद्धैवतर्षभावितरस्यां पंचमषड्जौ प्रविशतः। श्रुत्यधिकत्वात्। तद्वत्पुनरपकृष्टायां तस्यां पंचममध्यमषड्जा इतरस्यां मध्यमगान्धारनिषादवंतेषु प्रवेक्ष्यन्ति। चतुःश्रुत्यधिकत्वात्। एवमनेन श्रुतिनिदर्शनेन द्वै ग्रामिक्यो द्वाविंशतिः श्रुतयः प्रत्यवगन्तव्याः।

प्र०—यहां एक बात पूछनी रह गई, कि दो वीणाएँ जो ली जायँगी, उन पर कितने तार लगाये जायँगे ?

उ०—प्रत्येक वीणा पर सात-सात तार लगाने से कार्य चलेगा; लेकिन पहिले वे शुद्ध स्वर में मिला लेने चाहिये फिर 'पंचम' के आधार से सब तार मिलाने होंगे; भरत के शुद्ध स्वर कौनसे थे तथा दो ग्रामों के पंचम कौनसे थे, यह उस काल में जिस रूप में प्रसिद्ध थे, वैसे ही मानकर चलना होगा। यहां एक बात न भूलें कि सारणा श्रुति व

स्वरों के स्थान कायम करने का उल्लेख ग्रन्थकार ने नहीं किया है। श्रुति परिमाण का वर्णन करके फिर उसी परिमाण के आधार पर जो २२ श्रुतियों की स्थापना हुई है, उनके स्थान ठीक हैं या नहीं, इसकी जांच के लिये यह 'सारणा' की योजना की गई है, इस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

प्र०—आगे बढ़ने से पहिले एक छोटा सा प्रश्न और भी पूछलूँ क्या?

उ०—निःसंकोच, अवश्य पूछो!

प्र०—आपके विवेचन से ऐसा समाधान हुआ है कि भरत श्रुति सर्वत्र समान मानता था, अर्थात् कहीं छोटी कहीं बड़ी, इस प्रकार अनियत परिमाण उसका नहीं, यही मानना चाहिये न? अगर इन्हें नियत परिमाण की नहीं मानें तो वीणा की दो श्रुतियां नीचे उतारने पर गंधार व निषाद स्वर ऋषभ में प्रवेश कर जायँगे। तीन श्रुतियाँ नीचे उतारने पर रे, ध स्वर षड्ज व पंचम में प्रवेश करेंगे तथा चार श्रुतियां उतारने पर षड्ज, मध्यम, पंचम यह स्वर इसके नीचे नि ग म स्वरों में प्रवेश करेंगे, ऐसा मानने में कोई बाधा तो नहीं है?

उ०—लेकिन श्रुति नियत परिमाण की नहीं है, ऐसा किसने कहा? भरत श्रुति का परिमाण मानता था व उसी आधार से "एक से दूसरी ऊँची" इसी क्रम से अपनी २२-श्रुतियों की रचना की है। हमारी सर्व श्रुतियां नियत परिमाण की हैं, इसे सिद्ध करने के लिये मैंने भरत के कथन को तुम्हारे सामने रखा है। शार्ङ्गदेव पंडित ने यही निदर्शन वीणा पर २२ तार लगाकर स्पष्ट किया है, यही अन्तर है।

प्र०—शार्ङ्गदेव ने २२ तार लगाना ही क्यों पसन्द किया? भरत के अनुसार दो ग्रामों के पंचम की ध्वनि दृष्टि से जो अन्तर है वही मेरा श्रुति प्रमाण मान लेना चाहिये, ऐसा उसने कहा होता तो ठीक था न?

उ०—उसने ऐसा क्यों किया, इसका स्पष्टीकरण उसने अपने ग्रन्थ में भी नहीं किया है, लेकिन हम उसे तर्क के आधार से समझ सकते हैं। कदाचित उस समय दो ग्रामों के दो पंचम प्रचलित नहीं थे, अथवा उसने सोचा कि प्रथम तार "मन्द्रतम्" ध्वनि में मिलाकर दूसरा उससे कुछ ऊँचा (मनागुच्च ध्वनिः) मिलाने पर दो ध्वनि के बीच में विशिष्ट ध्वन्यतंर स्वभावतः उत्पन्न होगा, उसे ही 'श्रुति प्रमाण' मानकर बाकी शेष श्रुतियां सहज निश्चित की जा सकती हैं। इसे ही ठीक से जांचने के लिये उसने चार सारणा दी हैं, षड्ज ग्रामिक वीणा को प्रथम मध्यम ग्रामिक करिये, फिर इस मध्यम ग्रामिक वीणा को ही उसके सर्व स्वर एक श्रुति नीचे उतार कर पुनः षड्ज ग्रामिक करिये, इस गुत्थी को उसने कुशलता पूर्वक टाला है, उस काल में मध्यम ग्राम प्रचार में नहीं होगा, ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है, अगर यह प्रचार में होता तो भरत का मत उसने स्वीकार किया होता। २२ तार (श्रुति वाचक) वीणा पर लगाकर श्रुतियां ठीक प्रमाण में, ठीक स्थान पर लगी हैं या नहीं, इसे जांचने के लिये ही उसने अपने साधन का वर्णन भिन्न प्रकार से किया है। देखो वह कहता है—

अधराधरतीव्रास्तास्तज्जो नादः श्रुतिर्भवेत् ।
वीणाद्वये स्वराः स्थाप्यास्तत्र षड्जश्चतुःश्रुतिः ॥
स्थाप्यस्तंत्र्यां तुरीयायामृषभस्त्रिश्रुतिस्ततः ।
पंचमीतस्तृतीयायां गांधारो द्विश्रुतिस्ततः ॥
अष्टमीतो द्वितीयायां मध्यमोऽथ चतुःश्रुतिः ।
दशमीतश्चतुर्थ्यां स्यात्पंचमोऽथ चतुःश्रुतिः ॥
चतुर्दशीतस्तुर्यायां धैवतस्त्रिश्रुतिस्ततः ।
अष्टादश्यास्तृतीयायां निषादो द्विश्रुतिस्ततः ।
एकविंश्या द्वितीयायां वीणैकाऽत्र ध्रुवा भवेत् ।
चलवीणा द्वितीया तु तस्यां तंत्रीस्तु सारयेत् ॥

शाङ्गदेव ने भरत के अनुसार ही दो वीणा "तुल्यप्रमाणतंत्र्युपवादनदण्डमूर्छने" लेने को कहा है, यह तुम्हें मालूम ही है। उसमें से एक वीणा पर २२ तार लगाकर, उन पर शुद्ध सप्त स्वर लगाकर इसे 'ध्रुववीणा' मानकर एक ओर रख देनी चाहिये। दूसरी वीणा पर सारणीयां लगाना है, इसलिये उसे 'चलवीणा' संज्ञा दी है। दोनों पर प्रथम दो श्रुतियों के 'मनागुच्चध्वनिः' यह 'ध्वन्यन्तर' प्रमाण मानकर बाकी की सर्व श्रुतियों की उसने रचना की है, और इसी ध्वनि अन्तर को सर्वत्र स्पष्ट करने के लिये 'स्यान्निरंतरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यन्तराश्रुतेः' स्पष्ट कहा है। इससे अधिक स्पष्ट और वह क्या कह सकता था? सारणा के सम्बन्ध में कल्लीनाथ कहता है 'श्रुतिस्वरद्वयत्तापरिज्ञानार्थं चलवीणायां सारणां विदधाति' 'सारणा' शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए कल्लीनाथ कहता है:--"स्वस्वतंत्र्यु-त्थितान् स्वरात् तत्तच्छ्रुतिस्थानात् प्रच्याव्य श्रुत्यन्तराणि तंत्रीः प्रापयेत्ः। इत्यर्थः।" इस प्रकार उसकी व्याख्या स्पष्ट हो जाती है। शाङ्गदेव की सारणा में भी नाद अधिका-धिक उतारते जाना है, भरत ने भी वैसा ही कहा है। प्रथम ध्रुव व चल इन दो वीणाओं पर अर्थात् प्रत्येक श्रुतिवाचक तारों पर उसने शुद्ध सप्त स्वर रचे हैं। चौथे तार पर षड्ज, सातवें पर रिषभ, नवें पर गांधार, तेरहवें पर मध्यम, सत्तरहवें पर पंचम, बीसवें पर धैवत व बाइसवें पर निषाद। उसके बाद, पहिली सारणा इस प्रकार है—

स्वोपान्त्यतन्त्रीमानेयास्तस्यां सप्तस्वरा बुधैः ।

भावार्थ—प्रत्येक स्वर को अपने उपान्त्य, अर्थात् पिछले, तंत्री (श्रुति) पर लाना चाहिये, यानी सप्तस्वर इस सारणा से--

ध्रुववीणास्वरेभ्योऽस्यां चलायां ते स्वरास्तदा ।
एकश्रुत्यपकृष्टाः स्युः ।

प्र०—स्वरों को पीछे ले जाने पर सा तीसरी पर, रे छटी पर, ग आठवीं पर, म बारहवीं पर, प सोलहवीं पर, ध उन्नीसवीं पर तथा नि इक्कीसवीं पर आयेंगे।

उ०—अब तुम्हारी समझ में ठीक से आ गया है। इसी प्रकार कल्लिनाथ पंडित कहता है:—

'ते स्वरास्तदा एकश्रुत्यपकृष्टाः स्युरिति अत्र ते इति ध्रुवायामिव चतुःश्रुतिकत्वादि-लक्षणानां षड्जादीनां परामर्शात्।

यहां यह दिखाई देगा कि चल वीणा के स्वर ध्रुव वीणा से एक-एक श्रुति नीचे उतरे दिखाई देंगे। तथापि चलवीणा की दृष्टि से सब यथाशास्त्र षड्जग्राम के ही रहेंगे, यानी उनकी रचना 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' इस नियमानुसार होगी।

प्र०—यह ठीक है, इससे यही स्पष्ट होता है कि चलवीणा केवल एक श्रुति नीचे मिलाई है।

उ०—हां! अब शार्ङ्गदेव कहता है:—

एवमन्यापि सारणा। श्रुतिद्वयलयादस्यां चलवीणागतौ गनी। ध्रुववीणोपगतयो रिधयोर्विशतः क्रमात्।

प्र०—यह भी हम समझ गये। इस दूसरी सारणा से चलवीणा, ध्रुववीणा से अब दो श्रुति नीचे मिलाई गई है, इसलिये ग, नि यह द्विश्रुतिक स्वर अब ध्रुववीणा के रे, व ध इन स्वरों में प्रवेश अवश्य करेंगे।

उ०—तुम बिलकुल ठीक समझे। कल्लिनाथ कहता है—

'अस्यां द्वितीयसारणायां चलवीणागतौ स्वस्वोपांत्यतंत्रीस्थितौ गनी गांधारनिषादौ ध्रुववीणोपगतयोर्ध्रुववीणायां स्वस्वाधारश्रुतिस्थयो रिधयोॠषभधैवतयोः क्रमात्, रिषभे गांधारः धैवते निषादश्च श्रुतिद्वयलयात् प्रातिस्विकश्रुतिद्वयस्य परित्यागात् विशतः लीनौ भवतः। ध्वनि साम्यादेकाकारतां भजतः इति यावत्।' इसका अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है। आगे ग्रन्थकार बताता है कि तीसरी सारणा किस प्रकार होगी:—

तृतीयस्यां सारणायां विशतः सपयो रिधौ।

अर्थ—तीसरी सारणा चलवीणा पर करने से उसके रिषभ व धैवत यह त्रिश्रुतिक स्वर क्रम से ध्रुववीणा के षड्ज व पंचम स्वरों में एकाकार होंगे।

इसी प्रकार चौथी सारणा करने पर निगमेषुचतुर्थ्यां तु विशन्ति समयाः क्रमात्॥ अर्थात् इस सारणा से षड्ज, मध्यम, व पंचम यह स्वर क्रम से नि, ग, म इन स्वरों में लीन होंगे।

प्र०—तनिक ठहरिये! अपनी वीणा पर षड्ज से हमने श्रुति स्वरों की रचना की है, अर्थात् षड्ज प्रथम श्रुति से हमने आरम्भ किया है, इसलिये षड्ज को निषाद से

यथाकार करने के लिये स्थान ही नहीं है !

उ०—तुम्हारा प्रश्न बड़ा मार्मिक है। इसी शंका का कल्लिनाथ पंडित ने नीचे लिखे अनुसार समाधान किया है:—

"ननु चतुर्थसारणायां मंद्रषड्जस्य निषादे प्रवेश उच्यते। तत्कथमुपपद्यते। कार्या-मंद्रतमध्वाना इति षड्जादिमश्रुतेरारंभात्तत्पूर्वध्वन्यसंभवेनोपान्त्यतंत्र्यसंभवात्। तथाऽपि मंद्रस्वरसप्तकस्यावृत्तौ षड्जनिषादयोः संन्निधानान्निषादाधारश्रुतेः उपान्त्यत्वं कल्पयित्वा प्रवेशः पर्यवस्यतीति उपपन्नम्। अथवा स्थानान्तरावृत्तस्य तस्यैव षड्जस्य पूर्वं निषादसंभ-वात्तस्मिन् प्रवेशो द्रष्टव्यः।"

प्र०—यह विधान ठीक है। आवृत्ति की योजना या कल्पना से वैसा किया जा सकता है। एक पर एक सप्तक हम मानते ही हैं और प्रत्येक में २२ श्रुतियां भी मानते हैं।

उ०—अब तुम्हारा समाधान हो गया। सोमनाथ पंडित ने अपनी श्रुतिवीणा पर चार तार षडज के चार श्रुतियों में लगाकर आगे २२ परदे लगाए थे, यह तुम्हें याद होगा। उस समय तुमसे प्रश्न किया था कि १८ वीं सारणी पर निषाद आ जाने से आगे चार सारणियां किस लिये ? इसका भी समाधान स्वयं सोमनाथ पंडित ने किया है—

ध्वनिशुद्धिनिश्चयार्थं विकृतन्यर्थं च सश्चतुःश्रुतिकः।
पुनरुक्त इति मतं मे श्रुतिस्वरावगमनाय लघु ॥

सारांशतः इस प्रकार की आवृत्ति अथवा पुनरुक्ति मानना दोषपूर्ण नहीं है। षड्ज के पहिले निषाद होना ही चाहिये, इसलिये षड्ज अपनी पहिली श्रुति से पहिले श्रुति जाने पर निषाद में प्रवेश करेगा ही। अब इन चार सारणों से कौनसी फलोत्पत्ति हुई, उसके बारे में पंडित कहता है—

श्रुतिद्वाविंशतावेवं सारणानां चतुष्टयम्।
ध्रुवाश्रुतिषु लीनायाम् "इयत्ता" ज्ञायते स्फुटम् ॥

इस प्रकार इस सारणा से चलवीणा पर २२ श्रुति ध्रुववीणा की श्रुतियों में मिलाने पर श्रुतियों का वर्ग स्पष्ट होता है। आगे टीकाकार कहता है, "इत्थमियत्तया निश्चिताभ्यः श्रुतिभ्यश्च स्वराणां निष्पत्तिमाह। श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभगांधारमध्यमाः। ३० ।"

प्र०—लेकिन यह सब, श्रुतियों के माप या परिमाण समान होने पर अर्थात् वह सब समान माप की हों तभी संभव हो सकेगा ?

उ०—हां, इसी आधार पर ही शार्ङ्गदेव पंडित ने सारणों का प्रयोग दिया है। इसमें उसे दो बातें स्पष्ट करनी हैं, एक तो श्रुति नियत प्रमाण की मानना व दूसरी एक

सप्तक में २२ समान श्रुतियां ही मानना। इस प्रकार के विचार सोमनाथ पंडित के "रागविबोध" ग्रन्थ में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

प्र०—वे सब ध्यान में हैं। रत्नाकर व रागविबोध ग्रन्थों में श्रुति 'समान' यानी ध्वनि दृष्टि से समान मानी गई हैं, इसमें अब हमारी शंका नहीं है। भरत का मत भी इसी प्रकार का है।

उ०—वह ठीक ही हुआ। सिंह भूपाल ने रत्नाकर के श्लोकों पर टीका करते हुए कहा है—"यथा नादः समो भवेत् इ०। यथाः नादः समानः भवतीति तदुक्तं। द्वे वीणे तुलिते कार्ये समस्तावयवैस्तथा। एक वीणेव भासेते यथा द्वे अपि शृण्वतः। तयोः प्रत्येकं द्वाविंशतिस्तंत्र्यः स्थापनीयाः। तासु आद्या मंद्रतमध्वाना कर्तव्या। स मंद्रः यस्मात् हीनो मंद्रोऽन्यो नादो रंजको न निष्पद्यते। द्वितीयां तस्याः सकाशात् मनाक् किंचिदुच्चध्वनिः। किंचिदित्यनेनैवोक्तमर्थं विषदयति। "मध्ये ध्वन्यंतराश्रुतेः। अधराधरतीव्राः इ०। स्यान्निरंतरताश्रुत्योः इ०।" यथा मध्ये विसदृशं ध्वन्यन्तरं नोत्पद्यते तथा नैरंतर्यं विधेयम्। तदुक्तं "द्वितीया तु ततस्तीव्रध्वनिस्तंत्री विधीयते। तथा यथा तयोर्मध्ये तृतीयो न ध्वनिर्भवेत्। श्रुतेः प्रमाणमुक्तं मतंगेन। ननु श्रुतेः किं प्रमाणं (मानं)? उच्यते। पंचमस्तावद्ग्रामद्वयस्थो लोके प्रसिद्धः। तस्योत्कर्षणापकर्षणाभ्यां मार्दवादायतत्वाद्वा यदन्तरं तत्प्रमाणश्रुतिरिति।"

प्र०—अधिक आगे जाने की आवश्यकता नहीं है, हम समझ चुके हैं। हमारे जो अर्वाचीन पंडित कहते हैं कि भरत शार्ङ्गदेव के ग्रन्थों के आधार पर श्रुतियां भिन्न-भिन्न माप की हैं, उनका कथन यथार्थ नहीं है. और इसे सहज ही सिद्ध किया जा सकता है। लेकिन यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि इस विचारधारा से ग्रन्थकारों के सप्तस्वर, आंदोलन द्रष्टि से किस प्रकार होंगे?

उ०—हां, उसे भी तुम्हें समझा देता हूँ। इस प्रश्न का उत्तर एक विद्वान लेखक ने पहिले ही लिख रखा है। उसने भरत की विचारधारा पर पूर्णतः विचार करके तदनुसार वीणा पर ग्रामों के आधार पर सारणा करके उनके श्रुति स्वरों पर अपना निर्णय इस प्रकार दिया है, देखो—

"It will, I suppose, be readily conceded after this explanation that the process described above would be possible only on the hypothesis that the shruti interval is practically the same throughout the octave. Bharata says "all the seven swaras would be lowered by one shruti at once by the conversion of the Madhyama Gramik Vina to Shadja Gramic, with the changed Pancham. It is, therefore, quite plain that Bharata (& Sharangdeva agrees with him) accepted the shruti as his unit of measurement in determining the ratios between the several swaras, in other words the ratio of the first to the second shruti is equal to the ratio between any two consecutive shrutis. The shrutis are 22

in all & if we take the starting point to be the shruti of Nishad in the lower octave & as equal to one, the 22 nd shruti that is that of Nishad is 2. This rule is universally admitted. There are twenty two intervals between the two & therefore each interval is equal to the 22 nd root of 2. This root to 8 decimal places may be written 1.03200828. The 22 nd power of this would be 2.000000010. We may therefore. practical purposes assume that the value found for the shruti is Exact. The shrutis may be so arranged:—

(1) 1.03200828	(2) 1.06504109
(3) 1.099131223	(4) 1.134312523
(5) 1.170619916	(6) 1.208089446
(7) 1.246758311	(8) 1.286664900
(9) 1.327848830	(10) 1.370350987
(11) 1.414213565	(12) 1.459480108
(13) 1.506195556	(14) 1.554406285
(15) 1.6044160157	(16) 1.655550656
(17) 1.708496483	(18) 1.763182517
(19) 1.819618957	(20) 1.877861830
(21) 1.937968957	(22) 2.000000010

I have arranged the following octave with shadja as the foundation or fundamental note equal to 1.

I have given the length of the wire (the whole wire being 36) at which the several swaras will emanate. I have also calculated the Comparative Vibrations and cents of each of the Swaras to enable any body to comapare them with the notes of any other known Scale. Thus:—

Name of Swara	Length of wire	Vibrations	Cents
Shadja-sa	36	240	
Rishab-Ri	32.73	$263\frac{4}{5}$	$10\frac{3}{8}$
Gandhar-Ga	29.9	$280\frac{4}{5}$	$272\frac{8}{11}$
Madhyama-Ma	27.16	$318\frac{2}{5}$	$490\frac{10}{11}$

Panchama–Pa	23.9	$361\frac{2}{5}$	$709\frac{1}{11}$
Dhaiwata–Dha	21.8	$397\frac{1}{3}$	$872\frac{8}{11}$
Nishad–Ni	20.4	$423\frac{1}{16}$	$981\frac{9}{11}$
Tara–Sa	18	480	1200

I may here mention that Sharangdeva has in his Sangeet Ratnakar arrived at the same conclusion though he has used a somewhat more detailed process with Vinas having 22 wires. Since equality of shrutis is the essential to stand the test given by Bharata any proposed scale which supposes or accepts inequality in the shrutis would fail to satisfy the test and must be rejected as one not meant by either Bharata or Sharangadeva.

प्र०—इस विद्वान का मत हम ग्राह्य मानते हैं, कारण श्रुति का नाप निश्चित कर उसे समान मानने पर गणित की दृष्टि से उस विद्वान के कथनानुसार परिमाण निश्चित ही है, इस विद्वान का मत अन्य किसी मत से मिलता है, क्या ?

उ०—भरत के बाद के प्राचीन ग्रन्थकारों के मत नहीं मिलेंगे, कारण पश्चात् स्वरस्थान बदलते गये हैं, लेकिन रत्नाकर के श्रुति सम्बन्ध में दक्षिण के प्रसिद्ध विद्वान का यही मत था, उसे भी कहता हूँ:—

"It seems that from the time of Pythagoras, the Greek philosopher, who visited India about 2500 years ago for purposes of obtaining information, the system of determining the Swaras of an octave by the principle of Sa–Pa & Sa–Ma began. We know it that the Sthayi never comes to an end while adopting either of the measurements. The fact that the series of swaras obtained by the principle of $\frac{2}{3}$ (i. e. Sa-Pa) extends a little beyond the octave, while the series obtained by Sa–Ma or $\frac{3}{4}$ falls a little short of the octave, was the cause of difference of opinion among the writers as regards the *Swara Sthanas*. Many writers in India have written treatises as regards the theories of swara sthanas which they have arrived at after a strenuous labour. The works of Bharat, (who is looked upon as a pioneer of music,) & Sharangadeva (the author of Ratnakar)

are held in very high esteem at the present day as standard works on India Music. The above writers, Bharat and Sharangdev,–speak of twenty two shrutis, in the octave. But they never give the measurements either by the Sa–Pa or the Sa–Ma process. Sharangdeva gives directions as to how these shrutis of an octave should be derived. Speaknig about the progression of sound in the sthayis (Octaves) he says that the one of Mandra sthayi becomes two in Madhya sthayi & four in Tara sthayi, thus gradually proceeding upwards in a particular definite ratio. As regards Shrutis he says that the 22 shrutis of an Octave are a gradually ascending series with a uniform ratio without admitting any other possible sound between. Then as regards change of Graham (the saranas) ha says that when out of the four shrutis of Sa two are lessened, the Ga & Ni become Ri & Dha, & when three shrutis are so lessened the Ri & Dha become Sa & Pa. Puttiug all these directions together we see plainly that he derives the 22 surutis in the Octave by the Geometrial progression. This is the only right method by which shrutis of Sharangadeva can be derived in accordance with his shlokas. The change of Graham can be made possible only if this method is adopted. No matter where we commence the Swarasthanas, the change of Graha will be possible only if the pitch of sounds be uniform according to Sharangdeva. This clearly implies that the shrutis should be of equal intervals. On the other hand many give measurements of shrutis with unequal intervals quite contrary to Sharangadevs theory & try to palm them off as those of Sharangadeva. There is not the slightest resemblance between the theory of Sharangadeva & those of the writers who write of swaras & shrutis at present."

प्र०—यह मत अधिक स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन शार्ङ्गदेव के श्रुति स्वर स्थान कौनसे थे ? क्या, इसका स्पष्टीकरण दक्षिण के पंडितों ने किया है ?

उ०—हां, उन्होंने स्पष्ट किया है, लेकिन अपनी सुविधा के लिये वीणा के तार ३२" माने हैं। मुख्य बात यह है कि श्रुति एक नियत परिमाण से यानी Ratio से एक पर एक रखनी है, ऊँच व नीच इन शब्दों का प्रयोग मैं प्रचार की दृष्टि से यहां कर रहा हूं; ऊँचाई व नीचाई यह आंदोलन की छोटी बड़ी संख्या पर निर्भर है। उस आंदोलन में ऊँचाई-नीचाई क्या होगी ? यह एक प्रचार है। उस पण्डित ने निम्नलिखित नक्शा तैयार किया है, उसे देखो:—

TABLE

Showing the 22 shrutis of Indian Music according to Sharangadeva.

No. of Swar. or shruti.	Name of Swar or shruti	Vibrations of swaras Sa = 540	Lengths of String	Cents	Cents for each interval
1	2	3	4	5	6
0	S1	540	32 inches	] 0	54.54½ Cents interval by which each Shrutis rises
1	S2	557.28432	31.007501	54.55	
2	S3	575.12268	30.045792	109.09	
3	S4	593.53128	29.113904	163.64	
4	R1	612.52848	28.210918	218.18	
5	R2	632.1348	27.335442	272.73	
6	R3	652.3686	26.488104	327.27	
7	G1	673.2493	25.666560	381.82	
8	G2	694.8000	24.870413	436.36	
9	M1	717.0379	24.099130	490.91	
10	M2	736.989	23.351680	545.45	
11	M3	763.67556	22.627418	600	
12	M4	788.1192	21.925616	654.55	
13	Pa 1	813.34584	21.245584	709.09	
14	P2	839.37924	20.586640	763.64	
15	P3	866.2464	19.948128	818.78	
16	P4	898.9732	19.329430	872.73	
17	D1	922.5878	18.729920	927.27	
18	D2	952.1183	18.149000	981.82	
19	D3	882.5948	17.586099	1036.36	
20	Ni 1	1014.04548	16.040559	1090.91	
21	N2	1046 50272	16 512128	1145.45	
22	S	1080.00000	16.000000	1200	

प्र०—इन आंकड़ों का झंझट ध्यान में किस प्रकार रखा जायगा ? इससे तो अर्वाचीन पंडितों के छोटे से अपूर्णाङ्क ही सरल हैं।

उ०—इन आंकड़ों को कंठस्थ करके रखना ही चाहिये, यह कौन कहता है ? भरत शार्ङ्गदेव के श्रुतिस्थान कौन से थे ? यही तुम्हें जानना था। हम आज जो स्वर गाने बजाने में, व्यवहार में लाते हैं वे प्रथक हैं और नवीन ग्रन्थों के अनुरूप हैं, यह मैंने कहा ही था। हमारे पंडित व्यर्थ ही में अपना सम्बन्ध इन ग्रन्थकारों से लगाते हैं, इसीलिये यह सब विवाद खड़े होते हैं। उनकी विचारधारा नवीन है, यह निर्भयतापूर्वक स्वीकार कर लेने पर सब वितंडावाद समाप्त हो जाता है।

प्र०—लेकिन भरत, शार्ङ्गदेव व सोमनाथ इस प्रकार श्रुति उत्पन्न करके फिर उस पर स्वर रचना करके, किस प्रकार अपने राग उत्पन्न करते होंगे ?

उ०—वे अमुक प्रकार करते होंगे, यह कैसे कहा जा सकता है। प्रथम बड़े स्वरांतर व्यवहार में लेकर फिर छोटे भाग की ओर गायक वादकों का ध्यान आकृष्ट हुआ होगा, ऐसा कहने वाले विद्वान भी बहुत हैं। अस्तु, अब हम इस चर्चा को छोड़कर काफी राग पर चर्चा करें, लेकिन एक बात फिर कहता हूँ कि दक्षिण की ओर भी श्रुति स्वरों पर बड़ा वाद-विवाद चल रहा है, वह कब मिटेगा और सर्व देश के श्रुतिस्वरों के वाद का कब निर्णय होगा, यह कहना कठिन है। वहां के संगीत के जो आधार ग्रन्थ हैं, वह भी भरत शार्ङ्गदेव के पश्चात् के हैं व उनकी श्रुतियां भी समान नहीं हैं, लेकिन दक्षिण की ओर एक मत निश्चित करना वहां के ही विद्वानों का कार्य है, कारण उनके रागों के स्वर किस प्रकार लगाये जायंगे ? इसे वे ही अधिक समझ सकते हैं। अपने १२ स्वरों के विषय में, हमारे मनमें अगर शंका नहीं होगी तो हमें अन्य प्रान्तों की पद्धति पर विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

प्र०—अपने काफी थाट के शुद्ध स्वरों के विषय में अब विशेष झंझट नहीं है, लेकिन इस थाट के रागों में कहां तीव्र 'ग' व 'नि' कहां कोमल 'रे' व 'ध' लगेंगे, उनके स्थान समझ लेने हैं।

उ०—इसे भी मैं कह चुका हूँ। पारिजात में बताये हुए तीव्र गंधार के तुलनात्मक आंदोलन $301\frac{1}{4}\frac{7}{3}$ होते हैं। हमारे पंडित पाश्चात्य विद्वानों की खोज के आधार पर ३०० मानते हैं। एक सैकिंड में होने वाली इतनी बड़ी संख्या में से $1\frac{1}{4}\frac{7}{3}$ आंदोलन छोड़ देने पर भी मैं समझता हूँ काम चल सकता है। इसलिये तीव्र 'ग' के ३०० व तीव्र 'नि' के ४५० यह मानकर चलना मेरे मत से ठीक होगा। एक बार गंधार के ३०० आंदोलन स्वीकार कर लेने पर उसके पूर्व के अर्थात् कोमल 'रे' के २५६ होंगे तथा कोमल 'ध' के ३८४ होंगे, लेकिन यह भाग ग्रन्थों पर नहीं लादना चाहिए, यह तो नवीन खोज का परिणाम है।

प्र०—यह सब तो ध्यान में आ गया। अब काफी राग के सम्बन्ध में चर्चा करें। "काफी" नाम ही कुछ विचित्र सा मालूम होता है, यह क्या पुराना नाम है ?

उ०—बहुत पुराना; यानी भरत शार्ङ्गदेव के समय में न होगा, लेकिन लोचन पंडित के तरंगिणी में एक जगह यह नाम आया है, इससे यह तो मानना ही होगा कि लगभग ४०० वर्ष से तो हमारे संगीत में यह राग है। 'काफी' फारसी या यावनिक राग होगा ऐसा मेरा मत है।

प्र०—लोचन पंडित ने इसका स्वर वर्णन किस प्रकार किया है, किस थाट में इसे माना है ?

उ०—काफी राग के स्वरों का उल्लेख तरंगिणी में नहीं मिलता, लेकिन इसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं क्योंकि इस ग्रन्थ में और भी कहीं-कहीं रागों के नाम आये हैं उनकी लोचन ने विशेष जानकारी नहीं दी है।

प्र०—ऐसा क्यों ? हम तो समझते थे कि इनका ग्रन्थ बड़ा उपयोगी एवं स्पष्ट है।

उ०—ग्रन्थ वास्तव में उत्तम व सुबोध है. परन्तु "राग तरंगिणी" ग्रन्थ लोचन ने साहित्यशास्त्र पर लिखा है, यह मैंने कहा ही था, इसीलिये उसमें सब रागों की जानकारी न होना आश्चर्य की बात नहीं है। राग "संकर" अथवा 'मिलाप' के अन्तर्गत अनेक अज्ञात राग नाम आगये हैं, उनमें कुछ यावनिक भी हैं। यहां एक तर्क और भी संभव है, लोचन ने तरंगिणी में कहा है:—

एतेषां प्रपंचस्तु मत्कृतरागसंगीतसंग्रहेऽन्वेष्टव्यः। इसी तरह आगे मेल जन्य राग कहकर कहा है "एवं तत्तद्रागस्वरारोहावरोहास्त्वन्यत्र द्रष्टव्याः" इससे उसने उस राग-संग्रह ग्रन्थ में कदाचित् अज्ञात रागों का वर्णन किया होगा।

प्र०—वह ग्रन्थ शायद अब उपलब्ध नहीं है !

उ०—मेरे देखने में नहीं आया। कलकत्ता की ऐशियाटिक सोसायटी के ग्रन्थालय में 'संगीत संग्रह' नामक ग्रन्थ है, ऐसा वहां से पूछने पर उत्तर प्राप्त हुआ है; लेकिन वह अपूर्ण है। उक्त ग्रन्थ के लेखक तथा उसके लेखनकाल का स्पष्टीकरण कराने के हेतु वहां के क्यूरेटर को मैंने पत्र लिखा है, देखें क्या उत्तर मिलता है ? अगर वह लोचन का ग्रन्थ होगा तो कुछ उपयोगी जानकारी हमें मिल सकेगी।

प्र०—काफी के विषय में लोचन का क्या मत है ?

उ०—कुछ मुख्य रागों के समय का उल्लेख करते हुए उसने ऐसा कहा है:—

शंकरादौ वराडी च गेया गायकनायकैः।
दिवा तृतीयप्रहरे गातव्यासावरी जनैः॥
काफी मध्याह्नमध्ये तु सारंगोऽपि च गीयते॥

प्र०—सारंग प्रकार आपने काफी थाट में लिये हैं और उनका समय भी मध्याह्न बताया है, इसलिये काफी में गंधार व निषाद कोमल लिया जाता था, यह तर्क उपस्थित नहीं होता क्या ?

उ०—हां, वैसा तर्क तुम कर सकते हो। हमारे किये हुए वर्गीकरण के अनुसार काफी मध्यरात्रि या मध्य दिन के समय में गाना ही उचित होगा, लेकिन काफी राग बहुधा सर्व कालिक मानने का व्यवहार है, ऐसा तुमने देखा होगा।

प्र०—काफी राग का आधार संस्कृत ग्रन्थों में मिलना अधिक संभव नहीं है। इतना पुराना राग होकर भी ग्रन्थकारों ने उसे क्यों छोड़ दिया ? यह समझ में नहीं आया।

उ०—आश्चर्य की बात अवश्य है; लेकिन उससे भी अधिक एक आश्चर्य की बात और है।

प्र०—वह कौनसी ?

उ०—"काफी" उत्तर की ओर का साधारण व लोकप्रिय राग होकर भी ग्रन्थकार उसका वर्णन नहीं करते और दक्षिण की ओर विशेष प्रचलित न होकर भी दक्षिण के ग्रन्थकार उसका स्पष्ट उल्लेख करते हैं।

प्र०—उधर के कौनसे ग्रन्थ में इसका वर्णन है ?

उ०—दक्षिण के 'राग लक्षण' नामक ग्रन्थ में उसका वर्णन इस प्रकार है:—

अधिकारिखरहरप्रियमेलात् सुनामकः ।
काफिरागक इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम् ॥
आरोहेऽप्यवरोहे च संपूर्ण इति विश्रुतः ॥
सारेगमपधनिसां । सांनिधपमगरेसा

"हरप्रिय" अथवा "खरहरप्रिय" मेल यानी हमारा काफी थाट है, यह मैंने पहिले भी कहा था।

प्र०—यह आधार ठीक है। इससे भी "संन्यासं सांशकग्रहम्" यह पद है ?

उ०—इस विषय पर मैंने कहा था कि इन क्रियाविशेषणों से हमारा कुछ भी हानि लाभ नहीं होता, इसका इतना ही अर्थ लेना है कि इस राग के आरोहावरोह षड्ज से शुरू करते हैं, दक्षिण के ग्रन्थकार भी स्पष्ट कहते हैं, उदाहरणार्थ:—

सर्वेषामथ रागाणां ये येऽनुक्रमतः स्वराः ।
तेषु सर्वस्वरेष्वाद्यः षड्ज इत्यभिधीयते ॥

रागतरंगिण्याम् ।

षड्जः सर्वत्र रागे च ग्रहो हि निषपादयः ।
वर्णमात्राः प्रयोज्या ये रक्त्याधिक्याय ते स्वराः ।
अशेषा मूर्छनाः प्रोक्ताः षड्जस्थाने मुनीश्वरैः ॥

रागमालायाम् ।

सर्वत्र षड्जो ग्रह एव रागे । रक्त्यैकहेतोर्निषपादयो ये ।
वर्णाः प्रयोज्या न तु ते स्वराश्च । ता मूर्छनाः षड्जभवा ह्यशेषाः ॥

चन्द्रोदये ।

साधारणतः व्यवहार में किसी के पूछने पर कि अमुक राग का आरोहावरोह कैसे है ? तो हम बहुधा षड्ज से आरम्भ करते हैं। उक्त श्लोक से ऐसा नियम नहीं समझना कि काफी राग के सब गीत षड्ज से ही आरम्भ होंगे या वहीं आकर समाप्त होंगे। रागलक्षण में प्रत्येक राग की व्याख्या देकर फिर उसके नीचे मूर्च्छना देने का प्रयत्न किया गया है।

काफी राग का उल्लेख दक्षिण के एक और भी ग्रन्थ में दिखाई देता है, वह ग्रन्थ है व्यंकटमखी पंडित का "चतुर्दन्डिप्रकाशिका"। मैं इस पंडित के राग नाम बताने वाले श्लोक पहिले कह चुका हूँ, लेकिन उनमें सैकड़ों नाम हैं, इसलिये काफी राग का उल्लेख तुम्हारे ध्यान में नहीं होगा।

प्र०—हां सच है, उसे फिर से कहेंगे क्या ?

उ०—चतुर्दंडि में व्यंकटमखी ने ७२ मेल राग कहकर उनको "रागांग राग" संज्ञा दी है, यह उसके प्रथम श्रेणी के राग हैं। मूल के ग्रामराग, देशी सङ्गीत में से मूलस्वरूप में उपलब्ध नहीं थे। आगे उसने "उपांग राग" बताये हैं और किन थाटों से कौन-कौन से राग निकलते हैं, इसका वर्णन किया है। वर्णन करते हुए वह कहता है:—

अथ श्रीरागमेले तु मणिरंगस्ततः परम्।
स्यात्सालगभैरवी च शुद्धधन्यासिरागकः ॥
रागः कंनडगौलश्च शुद्धदेशी ततः परम्।
देवगांधाररागश्च मालवश्रीत्युपांगकाः ॥

ये उपांग राग बताकर फिर उसने भाषांग राग इस प्रकार बताये हैं:—

भाषांगश्रीरंजनी च काफीरागो हुशानिका।
वृन्दावनी सैंधवी च कान्रा माध्वमनोहरी ॥
स्यान्मध्यमावती देवमनोहरी ततः परम्।
नाटकुरंजिरागश्च ह्येते भाषांगसंज्ञिकाः ॥

प्र०—यह भाषांग राग वे ही हैं, जो उधर के सङ्गीत में अन्य प्रान्तों से समाविष्ट होते गये ?

उ०—हां ! यहां काफी राग का थाट 'श्री' कहा है तथा श्री मेल का वर्णन पंडित इस प्रकार करते हैं:—

षड्जश्च पंचश्रुतिकऋषभाख्यस्वरः परः।
साधारणाख्यगांधारः शुद्धौ पंचममध्यमौ ॥
पंचश्रुतिर्धैवतश्च कैशिक्याख्यनिषादकः।
एतैः सप्तस्वरैर्जातः श्रीरागाख्यस्य मेलकः ॥

प्र०—इससे स्पष्ट है कि काफी राग में गंधार व निषाद कोमल हैं व अन्य स्वर शुद्ध हैं।

उ०—हां ठीक है। सङ्गीतसारामृतकार तुलाजीराव भोंसले भी अपने ग्रन्थ में ऐसा ही कहते हैं:—

मेलोद्भवेषु रागेषु श्रीरागोऽत्र चिरंतनैः ।
ग्रामराग इति प्रोक्तो रागांगमिति कैश्चन ॥
श्रीरागो रागराजोऽयं सर्वसंपत्प्रदायकः ।
इत्युच्यते तु तल्लक्ष्म तुलजेंद्रेण धीमता ॥
श्रीरागः परिपूर्णः सग्रहांशन्याससंयुतः ।
गेयः सायाह्नसमये ह्यथतानविवर्जितः ॥
शुद्धाः श्युः समपाः पंचश्रुती रिषभधैवतौ ।
साधारणाख्यगांधारः कैशिक्याख्यनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तो यो मेलस्तत्र चादिमः ।
श्रीरागस्तन्मेलजातानुद्दिशामीह कांश्चन ॥
श्रीरागो रागराजोऽथ रागः कंनडगौलकः ।
देवगांधारकाख्यश्च तथा सालगभैरवी ॥
तथा स्याच्छुद्धदेशी च माधवाद्यमनोहरी ।
मध्यमग्रामरागश्च सैंधवी काफिकाव्हयः ॥
हुसेनी चेति संपूर्णा अत्र रागा उदीरिताः ॥

यहां मैंने अनेक मेलजन्य रागों का वर्णन कर दिया है, कारण आगे हमें उस पर विचार करना पड़ेगा।

प्र०—अब काफी राग के विषय में शंका ही नहीं रही, लेकिन यह उत्तर का प्रसिद्ध राग होते हुए भी इधर के ग्रन्थकारों ने इसे छोड़ दिया, यह बड़ा आश्चर्य है ?

उ०—हां ऐसा हुआ अवश्य है, 'तरंगिणी' में जितना उल्लेख है बस उतना ही है। राग संकर का वर्णन करते हुए लोचन ने दो-चार जगह 'कापि' शब्द डाला है, परन्तु वह पादपूर्णार्थ है, उसमें सन्धि 'का + अपि' इसी प्रकार छोड़ना पड़ेगा। एक जगह उसने कहा है:—

वराडीगौरिकाचेत्यः श्रीपूर्वरमणोऽपि च ।
एतेषां संकरात्कापि विचित्रानामरागिणी ॥

यह देखकर मुझे पहिले ऐसा प्रतीत हुआ कि ग्रन्थकार के मन में 'काफी' विचित्र प्रकार की है, लेकिन फिर प्रतीत हुआ कि 'विचित्रा' नामक रागिणी का वर्णन वह कर रहा होगा और वही सत्य निकला।

प्र०—ऐसा निश्चय क्यों करना पड़ा ?

उ०—Captain Willard साहब ने अपनी राग संकर तालिका में 'विचित्रा' रागिनी व उसके घटक अवयव श्रीरमण, चेती, गौरी व बरारी बताए हैं।

प्र०—फिर तो वह 'विचित्रा' ही है, इसमें शंका नहीं। श्रीरमण राग यानी आपकी बताई हुई 'तिरवण' या त्रिवेणी तो नहीं है ?

उ०—नहीं, नहीं, लोचन ने उसको श्रीरमण कहा है। कैप्टन साहब की तालिका के संकर, लोचन के संकर से भली प्रकार मिलते हैं, यह मैं कह चुका हूँ। उस समय वह ग्रन्थ उत्तर में उपलब्ध होगा। वे स्वतः 'बांदा' राज्य में नौकर थे, इसलिये उनको ग्रन्थ की नकल प्राप्त करना संभव हुआ होगा। अभी तो तुमको केवल. इतना ही ध्यान में रखना है कि काफी राग हमारे यहां ३००–४०० वर्ष से प्रचलित है, और उसमें ग, नि कोमल हैं।

सवाई प्रतापसिंह के "सङ्गीतसार" ग्रन्थ में इसका वर्णन इस प्रकार है—

"शिवजी ने उन रागन में सों विभाग करिवे को। अपने मुखसों राग गाइके वाको "काफी" नाम कीनो। अथ काफी राग को लच्छन लिख्यते ! जाके आलाप में गांधार निषाद मध्यम कोमल होय। और रिषभ धैवत तीव्रतर होय। जाको निषाद सों आरम्भ होय और जाकी षडज समाप्त में होय। ऐसो जो राग ताहिं 'काफी' जानिये। शास्त्र में तो याको गुनी सात स्वरन में गावें हैं। नि सा रे ग म प ध नि सां रें सां। यानें संपूर्ण है। याको चाहो तब गावो। याकी आलापचारी सात सुरन में किये राग बरतें। उदाहरणार्थ नि सा रे ग म ग म रे सा, रे ग म प, नि ध प म, प म रे ग, म ग रे सा।

काफी राग का वर्णन और यह उदाहरण तुम अवश्य ध्यान में रखना, हमारे गायक-वादक भी इस नाद समुदाय को काफी ही कहेंगे। 'काफी' यह सर्वकालिक राग है।

प्र०—हां, इस राग का वादी स्वर कौनसा है ?

उ०—बहुमत से वादी पंचम व संवादी षडज है। कोई काफी में ग वादी व 'नि' संवादी मानते हैं। प्रचार में 'प' पर बारम्बार विश्रांति देखकर इसी स्वराधार से श्रोताओं को 'काफी' राग पहिचानने की आदत सी पड़ गई है। हम काफी में वादी स्वर 'पंचम' मानेंगे। काफी सरल व सम्पूर्ण राग है, तथा सर्वत्र लोकप्रिय है और छोटे बड़े सर्व गायक इसे गाते हैं। प्रचार में इस राग का नियत समय नहीं माना है तथापि संधिप्रकाश के समय अधिकतर इसे नहीं गाया करते। अपने मत से तो रात्रि के या दिन के प्रथम प्रहर में इसका गाना ठीक नहीं होगा अपितु यह राग मध्यरात्रि या दिन के मध्य भाग में गाने पर अधिक शोभा देता है। इसे दिन के तीसरे प्रहर में पीलू इत्यादि राग गाने के पूर्व अथवा रात्रि को कानड़ा प्रकार गाने के पूर्व गाना चाहिये, ऐसा मेरे गुरु कहा करते थे।

प्र०—काफी के पहिले कौनसे राग गाते हैं ?

उ०—आज के सङ्गीत में ऐसा कोई नियम नहीं है। काफी सर्वकालिक माना जाता है, अगर तुम इस राग का उचित समय नियत करना चाहते हो तो मेरे मत से गारा, जयजयवन्ती आदि राग गाने के बाद काफी गाना ठीक होगा। इसके बाद फिर कानड़ा प्रकार आवेंगे। कानड़ा के कुछ प्रकारों में ग, नि कोमल हैं, तथा 'ध' भी कोमल

है लेकिन यहां हम इसकी चर्चा नहीं करेंगे। दिन व रात के मध्य भाग में किसी भी समय काफी राग गाना चाहिये इतनी चर्चा पर्याप्त है।

प्र०—ठीक है, अब काफी किस प्रकार गाना चाहिये यह भी बता दीजिये ?

उ०—वही कहता हूँ। काफी सरल सम्पूर्ण राग है, इससे यह स्पष्ट होता है कि इस राग के स्वर क्रमशः बोलने मात्र से ही इस राग की छाया स्पष्ट दिखाई देगी। उदाहरण:- "सा सा रे रे ग॒ ग॒ म म प", केवल इस छोटे से टुकड़े में राग के प्राण आगये, यह टुकड़ा कानों में पड़ते ही तुम 'काफी' कह उठोगे।

प्र०—इसके आगे कैसे चलेंगे ?

उ०—आगे म, प ध नि॒ सां, नि॒ ध प म ग॒, रे, यह सारे टुकड़े काफी के बिलकुल शुद्ध हैं। मेरे कहने का सारांश इतना ही है कि इस काफी राग को आरोहावरोह में सरलतापूर्वक फिराने में विशेष अड़चन नहीं होती। इसका विस्तार करते समय, अत्यन्त संभालकर जीवस्वरों को उत्तम स्वर समुदाय के साथ, राग गाना पड़ता है। अगर इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया तो राग भ्रष्ट तो नहीं होगा, लेकिन उसकी सुन्दरता नष्ट हो जायगी। इस राग में वादी स्वर पंचम है, यह मैंने कहा ही था, इसलिये इस स्वर का बाहुल्य सर्वत्र दिखाई देना चाहिये। जिस स्वर को चमकता रखना हो उसके आस-पास के स्वरों को थोड़े ढँके रखने से मुख्य स्वर का उठाव अच्छा आता है, यह तथ्य तो तुम जानते ही हो।

प्र०—इसमें तो कुछ कुछ फोटोग्राफी या चित्रकला के समान ही बात दिखती है। जो चीज अधिक स्पष्ट दिखानी हो उसके आस-पास की वस्तुओं को कुछ धुँधली दिखाने की प्रथा इन कलाओं में पाई जाती है।

उ०—हां, कुछ देर के लिये वैसे ही समझ लीजिये। काफी में हमको पंचम स्वर आगे लाना है, उसे हम किस प्रकार लाते हैं सो देखो। वैसा करते समय 'ग॒ रे' यह दो स्वरों का छोटा सा टुकड़ा ठीक-ठिकाने कैसा काम देता है इस बात के ऊपर ध्यान देना। कभी-कभी इस टुकड़े को इतना अधिक महत्व प्राप्त हो जाता है कि 'ग॒' यही राग का प्रमुख स्वर है, ऐसा आभास होने लगता है।

प्र०—क्या इसी लिये इस स्वर को वादित्व देने की बात कोई-कोई करते हैं ?

उ०—हां, ऐसा ही है। किन्तु वस्तुतः वैसा करने की आवश्यकता नहीं। राग में पूर्वाङ्ग तथा उत्तरांग रहते हैं, यह तुम्हें मालूम ही है। पूर्वाङ्ग में जैसा 'ग॒ रे' स्वरों का उपयोग कुशलता से करते हैं वैसा ही उत्तरांग में 'नि॒ ध' स्वरों का होता है। सा, म, प इन स्वरों का उपयोग, राग में विश्रांति स्थानों के रूप में तथा तानप्रवाह को भिन्न-भिन्न दिशाओं में ले जाने के लिये होता है। सा, म, प इन स्वरों को अधिक आगे लाने से राग का गांभीर्य अधिक प्रगट होता है, ऐसी विद्वानों की राय है। धुन या क्षुद्र प्रकृति के रागों में स्वरों का चलन अधिक विलम्बित गति से नहीं होता तथा मध्यम स्वर को मुक्त नहीं रखते, यह तथ्य अनेक रागों में तुमने देखा ही होगा।

प्र०—क्या यह काफी राग क्षुद्र गीतों के योग्य है ?

उ०— हां इस राग में छोटी चीजें जैसे कि ठुमरी, गजल टप्पा अधिकतर गाते हैं। वैसे ही फाल्गुन मास में इस राग में होरी आदि गाने का रिवाज है।

प्र०—अच्छा तो काफी में पंचम स्वर को किस प्रकार आगे लाना चाहिये, यह बता दीजिये ?

उ०— सा सा रे रे ग ग म म प; यह एक टुकड़ा तो पहिले ही बता चुका हूँ। अब हम और टुकड़ों को उससे जोड़ें—ग ग सा रे प, म प, नि ध प, म प ध म प, ग, रे, रे ग रे, म ग रे सा, नि ध म प ध म ग रे, रे ग रे, म ग रे ऩि सा, सा सा रे रे ग ग म म प।

राग की बढ़त करते समय एक एक स्वर से आगे बढ़ते हैं। एक एक स्वर को चुन कर उसके ऊपर बहुत सी तानों को समाप्त करते हैं।

प्र०—ऐसा करने से वादी स्वर का महत्व तथा बहुत्व कैसे कायम रहेगा ?

उ०–ऐसी बढ़त करते समय,जिनमें वादी स्वर का प्राधान्य है ऐसे टुकड़ों को बीच-बीच में उचित स्थानों पर स्थापित करते हैं ताकि वादी स्वर को सुशोभित करने के लिये ही यह सब स्वर विस्तार है, ऐसा आभास हो। अब मैं इसी को प्रत्यक्ष करके दिखाता हूँ प, गरे, रे ग रे, म ग रे, ध प म प, ग रे, नि नि ध प म प ध प, म प ग रे, ध़ ऩि सा रे ग रे, सा रे ग रे, रे ग रे, म ग रे, प म ग रे, सां, नि ध प, नि नि ध प, ध प, म प ग रे, रे ग रे म ग रे सा, सा सा रे रे ग ग म म प।

अब इस प्रकार समझो कि 'प' की बढ़त हमको करनी है तो कैसे करेंगे ? छोटे मोटे स्वर समुदायों को बड़ी कुशलता से तथा विसंगति न हो, ऐसी सावधानी से 'पंचम' पर समाप्त करना आवश्यक है। यह कार्य विशेष कठिन नहीं, क्योंकि यह राग बड़ा सरल तथा सम्पूर्ण है।

प्र०—अच्छा देखिये कोशिश करते हैं—ऩि सा रे ग, सा, रे प, म प, ध प, नि नि ध प, म प ध नि ध प, म प, ध प, म प ग रे, प, ध प, म प, नि ध प, म प, सां नि ध प, रें सां, नि ध प, म प नि नि ध प, म प ध प, ग रे, प, म प, ग रे, सा रे ग, सा, रे प। ऐसा चलेगा क्या ?

उ०—राग दृष्टि से यह प्रकार बुरा न होगा। और इन टुकड़ों को देखो। सा, रे ग, सा, रे प, प, म प, ग रे, प, ग रे, ध़ ऩि, ग रे, प, म प, नि ध प, सां, नि ध प, म प ध नि ध प, म प ग रे, रें सां, नि ध प, सां, नि ध प, म प ध प म प, ग रे, रे ग रे म ग रे सा, सा, रे ग, सा, रे प।

प्र०—कुछ तानें हमें मंद्र स्थान के स्वरों में लेनी हों तो कैसे करेंगे ?

उ०—इस राग में मन्द्र सप्तक में विशेष काम नहीं होता तथापि वहां पर भी इस प्रकार के स्वर लेने में कोई हर्ज नहीं—म प ग, रे, सा रे ऩि सा, ध़ ऩि सा, ऩि ध़ ऩि सा,

म़ म़ प़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा नि़ सा, रे ग़ रे, प म ग़ रे, म म ग़ रे, नि नि ध प म प ध प म प ग़ रे, ध़ नि़ ग़ रे, प, ग़ रे, रे ग़ रे म ग़ रे, नि़ सा, सा रे रे ग़, सा, रे प। अब तानों के अंत में षड्ज को रख कर थोड़ा सा विस्तार करो तो देखूं ?

प्र०—अच्छा, करता हूं—सा, नि़ सा, ध़ नि़ सा, प़ ध़ नि़ सा, म़ म़ प़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, रे सा, ग़ ग़ रे सा, म ग़ रे सा, प म ग़, रे सा, नि ध म प ध नि ध प, म प ध प, म ग़ रे सा, सां नि ध प म ग़ रे सा, रें सां, नि ध प म ग़ रे सा, सा रे रे ग़, सा, रे प। ये अच्छा दिखेगा न ?

उ०—हां, मुझे तो इसमें कुछ बुरा नहीं दिखता। अब अपने यहां के गायक एक स्वर को लेकर कभी दो या कभी तीन स्वरों के साथ तथा कभी कभी उससे ज्यादा स्वरों के साथ उस स्वर का विस्तार करने लगे हैं, यह भी एक दृष्टि से अच्छा लक्षण है। शुरू से ही तान के छर्रे अच्छे नहीं लगते और आगे चलकर उनकी पुनरुक्ति भी अरुचिकर होती है। आलाप के विषय में बताते समय, 'रागस्थापना' कैसी करनी चाहिये यह बात मैंने कही थी, वह तुम्हें याद होगी। शार्ङ्गदेव का एक श्लोक मैंने उद्धृत किया था—

"स्तोकस्तोकैस्ततः स्थायैः प्रसन्नैर्बहुभंगिभिः ।
जीवस्वरव्याप्तिमुख्यै रागस्य स्थापना भवेत् ॥

प्र०—हां वह तो याद है। उस समय आपने देवदत्त का उदाहरण दिया था। बीच-बीच में समप्राकृतिक स्वरों से राग का तिरोभाव होना और पुनश्च उसके जीवभूत स्वरों की स्थापना होने के पश्चात् उस राग का आविर्भाव, ये सब कार्य राग रक्ति को बढ़ाते हैं, यह अच्छी तरह से हमारे ध्यान में है।

उ०—तो फिर उसके बारे में अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। बीच में आवाज की मधुरता कायम रखकर, मुंह आदि टेढ़ा न करते हुए गमक अलंकार आदि का समुचित प्रयोग करके राग को बढ़ाना चाहिये, यह प्रमुख तत्व है। इस काफी थाट में काफी राग जैसा सीधा और सरल आरोहावरोह का दूसरा राग नहीं है। दूसरे जन्य रागों के अपने अपने स्वतंत्र नियम होते हैं। मल्हार, कानड़ा, सारंग और धनाश्री ये चार अंग बिलकुल स्वतन्त्र अर्थात् अलग रूप से पहिचानने योग्य हैं। वे अङ्ग अच्छी तरह न सम्हालने से गायक का काफी राग में आना संभव है। अतः इस राग को 'आश्रय राग' भी कभी कभी कहते हैं।

प्र०—काफी का अन्तरा हम किस प्रकार आरम्भ करें ?

उ०—इस प्रकार म म, प ध, नि, सां, नि, सां रें सां नि ध, रें गं़ रें सां, नि, सां रें सां नि ध, प ध नि सां, नि ध, सां नि ध प मप म ग़ रे सा; यहां भी सरलत्व रखना आवश्यक है, जैसे, म म प ध नि, सां, नि, सां, रें सा, गं़ रें सां, मं गं़ रें सां, सां रें सां नि ध प सां नि ध प म प म ग़ रे सा, सा सा रे रे ग़ ग़ म म प।

प्र०—अच्छा, आपने कहा था कि काफी में कहीं कहीं तीव्र गांधार का प्रयोग भी होता है, वह किस प्रकार ?

उ०—यह देखो—सा सा रे रे ग ग म म, प, म, प ध नि सां नि ध प म ग ग रे रे, रे नि ध नि प ध म प, ग ग म प म, सा नि सा ग रे म ग रे सा नि सा सा रे रे ग ग सा रे प। तीव्र गंधार लेने से छोटे छोटे स्वर समुदाय इस प्रकार बनाये जाते हैं:— ग, म प, गम, ग रे, नि ध म प ग म, ग रे। नि ध नि रे ग रे, ग, म ग रे, नि ध, म, प ध ग रे, म ग रे सा, सा रे रे ग, सा, रे प। अब कोमल धैवत थोड़ा सा लेकर दिखायेंगे। नि नि ध, सां, नि ध, ग रे, ध नि ग रे, प ग रे, नि ध, म प ध म प ग रे, म ग रे सा, सा रे रे ग, सा, रे प। इसमें तीव्र गंधार तथा कोमल ध को विवादी जानना।

प्र०—हां, यह ध्यान में आगया। काफी राग से मिलने वाले राग सैंधवी और पीलू यही हैं न ? और ये भी काफी अंग के हैं, ऐसा आपने कहा था।

उ०:—इन दोनों में से सैंधवी राग काफी का समप्राकृतिक है, इसमें संदेह नहीं। पीलू में दो चार रागों की छाया तुमको दिखेगी। उसमें काफी की छाया भी है, अतः उसको काफी अङ्ग में रखा है। अन्य कारण यह है कि पीलू को दूसरे चार अङ्गों में रखना मुझे सुविधाजनक मालूम नहीं हुआ। सिन्दूरा और पीलू राग आगे आयेंगे।

प्र०:—सिंदूरा व सैंधवी, यह एक राग के ही नाम हैं न ?

उ०—हम एक ही राग नाम से उनको मानेंगे। Captain Willard ने अपने Treatise on the music of Hindusthan ग्रन्थ में शंकराभरण तथा गौरी रागों को काफी के घटक विभाग कह के सम्बोधित किया है। उनका मत भी अपनी जानकारी के लिये रहने दो। अपनी सुविधा के लिये 'काफी' का स्वतन्त्र रूप मानना ही ठीक होगा। काफी से कानड़ा का जब संयोग होता है तब उस मिश्र राग को "काफीकानड़ा" कहते हैं।

प्र०—थोड़ी ही देर पहले आपने कानड़ा अङ्ग के राग बताये थे, उनमें यह राग था ही नहीं।

उ०—हां, नहीं था। और कानड़े के अन्य प्रकार भी मैंने नहीं कहे थे। उदाहरण के लिये, खमाजीकानड़ा, सोरटीकानड़ा जयजयवंतीकानड़ा, गाराकानड़ा आदि।

प्र०—इन रागों में गंधार और निषाद स्वरों का योग होता दिखाई देता है। संभव है इसी कारण से उनको कानड़ा अङ्ग के रागों में विभक्त करना सुविधाजनक होता हो ?

उ०—हां, वैसा भी समझा जा सकता है, किन्तु उन रागों के विषय में अभी कुछ न कहूँगा। जब कानड़ा प्रकारों पर विचार करेंगे, तब इस विषय पर आगे कहेंगे।

प्र०—अच्छा, हम भी आग्रह नहीं करेंगे, आगे चलिये।

३०—अब काफी राग के विषय में अर्वाचीन ग्रन्थों का मत कहते हैं। इन श्लोकों को याद करने से तुम्हें इन रागों के विषय में अच्छी जानकारी प्राप्त होगी।

हरप्रियाख्यमेलोऽसौ लक्ष्येऽत्र काफिसंज्ञितः।
काफीरागस्तदुत्थः स्यादिति लक्ष्यविदां मतम् ॥
पंचमः संमतो वादी संवादीषड्जनामकः।
केचिद्गांधारमाहुस्ते वादिनं गानकोविदाः ॥
मध्यरात्रोचितो मेलो यथाऽयं गनिकोमलः।
मध्याह्नार्हस्तथैवासौ को न जानाति मर्मवित् ॥
दरबार्यादिकान्रागान् नक्तं गीत्वा धकोमलान्।
तीव्रधैवतसंपन्नान् गायंति गायकाः क्रमात् ॥
आसावर्यादिकान् गीत्वा दिवा धैवतकोमलान्।
सारंगाख्यादिकान् लोके गायन्ति शुद्धधैवतान् ॥
संभवेयुरवश्यं तेऽपवादा लक्ष्यवर्त्मनि।
साधारणो मया प्रोक्तो नियमस्तत्वदर्शिनाम् ॥
यतः सम्पूर्णरागोऽयमारोहे चावरोहणे।
लोक आश्रयरागत्वं काफीरागस्य संमतम् ॥
काफीत्याधुनिकं नाम पारसीकं परिस्फुटम्।
स्वीकृतं यत्पुराणैस्तन्नैवास्माभिरुपेक्षितम् ॥
दाक्षिणात्यमते काफीरागः श्रीरागमेलजः।
श्रीरागः कीर्तितस्तत्र गनिकोमलमंडितः ॥
हिंदुस्थानीयपद्धत्यां श्रीरागः पूर्विमेलजः।
इति मया समाख्यातं पूर्वमेव सविस्तरम् ॥
न्यासः पंचमके काफ्यां सुस्पष्टं रागवाचकः।
श्रोतारोऽपि सुखं तेन कुर्वन्ति रागनिर्णयम् ॥
अनुलोमगतः क्षम्यः प्रयोगस्तीव्रनेर्मनाक्।
काफीमेलोत्थरागेषु गानसौकर्यहेतवे ॥
क्षुद्रगीतार्हता काफ्या लोके सर्वत्र संमता।
शृङ्गाररसभूयिष्ठां काफीं शंसंति पंडिताः ॥

लक्ष्यसंगीतशास्त्रे ॥

काफीरागो भुवनविदितः कोमलाभ्यां गनिभ्याम् ।
अन्यैस्तीव्रैः परममधुरः पंचमो वादिरूपः ॥
सम्वादी स्यात्स इह कतिचिद्वादिनं गं वदन्ति ।
सांद्रस्निग्धं सरसमतिभिर्गीयतेऽसौ निशायाम् ॥

कल्पद्रुमांकुरे ॥

मृदू गमौ रिधौ तीव्रावुभौ नी पंचमोंऽशकः ।
यत्र षड्जस्तु सम्वादी काफी सा निशि गीयते ॥

चन्द्रिकायाम् ॥

मृदु मध्यम गांधार है मृदुतीवर हु निखाद ।
काफी सुन्दर राग है पसवादी सम्वाद ॥

चन्द्रिकासारे ॥

निसौ रिगौ मपौ धनी सनिधपा मगौ रिसौ ।
काफी पूर्णा भवेन्नक्तं पंचमांशसमन्विता ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ॥

प्र०—इन श्लोकों द्वारा काफी राग के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त हो जाती है। हम इन्हें याद कर लेंगे। अब इस राग के बारे में कुछ और आवश्यक बात कहने को न हो तो कृपया इसका विस्तार करके दिखा दीजिये। और फिर अगला राग बताइये ?

उ०—अच्छा ! ऐसा ही करेंगे। सुनोः—

सा, रे नि़ सा, रे ग, रे, पमग रे, सा रे नि़ सा, ग रे, नि धमपगरे, मग, रेसा, सा रे ग, सा, रे प ।

नि़ ध़ नि़ सा, ग रे, मगरे, पमग, रे, धपमपगरे, निधमपधमपगरे, ध़ नि़ सा रे ग रे, धमप गरे, सां, नि ध, मपधमपगरे, पग रे, मग रे, सा रे नि़ सा, रेग, सारे प ।

नि़ ध़ म़ प़ ध़ नि़ सा, ध़नि़सा, नि़सा, रेग रे, मग रे, पमग रे, धपमपग रे, नि ध मपधमपगरे, सां, नि ध, मपधमपगरे, पग रे, मग रे, ग रे, सारे नि़सा, रेग, सा, रे प ।

सा, नि़ सा, ध़नि़सा, रेग रे, गमपगमग रे, निध, सांनि धप, मप नि धप, मपग रे, निनिधप मपग रे, पग रे, गग मप धमप गम गरे, ध़नि़ सारे गरे, नि धमपगरे, पगरे, मगरे, सारे नि़ सा, रेग, सा, रे प ।

नि़सा, मगरेसा, नि़सा, ध़नि़सा, रेगरे, मगरे, पमगरे, धपमगरे, निधमपधमपगरे, सा, सारेगसा, रे प ।

सा, रेसा, नि़ध़नि़सा, ध़नि़सा, म़ध़नि़सा, म़प़ध़नि़सा, ध़नि़सा, ग, रे, म, ग, रे, प, म, प, ग, रे, सांरेंसांनिधप, सांनिधमपधमपगरे, रेगरेमगरेसा, सारेरेग, सारे प ।

इस प्रकार चाहे जितनी नई-नई तानों की रचना की जा सकती है। "सा, ग, प" इन तीन स्वरों के ऊपर अनेक तान आकर समाप्त होती हैं। जैसे:—

सारेग सा, रेप, मप, धप, निधप, सां, निधप, सांनि, धप, मपधप, गरे, गरे, निसां रेंसांनिधपमपधपगरे, पगरे, धपगरे, रेगरेमगरेसा, सासारेरेगगममप।

अगर मध्यम को मुक्त रखना हो, तो गन्धार तीव्र लेना होगा। जैसे:—

सा, ग, म, पग, म, धपग, म, निधमपधमपग, म, सांनिधप, मपधमपग, म, सांनिधप, मपधमपग, म, पगरे, मगरेसा, सारेग, सारे, प।

अब और आगे चलें:—

सारेरेग, सा, रेप, मप, मपधनिसां निधपमपगरे रेनिधनि पधमप मगमप म, सानि, सागरे मगरेसा, सारेरेग, सा, रेप।

सांनिधप, निधपम, धपमग, मगरेसा, सारेरेग, सा, रेप।

गंगं रेंसां, रेंरेंसांनि, सांसांनिध, निनिधप, धधपम, पपमग, ममगरे, मगरेसा, सारेमप धनिसांरेंसांनिधप मगरेसा, सारेरेग, सा, रेप।

प्र०—अब अन्तरे की दो तानें बताइये ताकि अधिक स्वर विस्तार की आवश्यकता न हो। यह राग हमें बड़ा ही सरल दिखता है।

उ०—अच्छा, यह भी लो:—

म, पध, नि नि सां, नि नि सां रें सां नि ध, सां रें सां नि ध नि ध प म प ध प ग ग रे रे, गं गं रें सां रें नि ध, म प ध प, ग ग रे रे, रे ग रे म ग रे सा सा रे रे ग, सा, रे प।

प्र०—अब आगे न जाइये। यह राग ठीक समझ में आ गया है।

उ०—ठीक है। अब इसी अङ्ग का दूसरा राग लेंगे। लेकिन उससे पहले काफी की एक प्रसिद्ध सरगम और कहे देता हूँ। यह बहुत सीधी और रागवाचक है, देखो:—

सरगम-त्रिताल.

सा	सा	रे	रे	ग	ग	म	म	प	ऽ	ऽ	म	प	ध	नि	सां
०				३				×				२			
नि	ध	प	म	ग	ग	रे	रे	रे	प	म	प	म	ग	रे	सा।
०				३				×				२			

अन्तरा—

म	म	प	ध	नि	नि	सां	ऽ	रें	गं	रें	सां	नि	ध	नि	ऽ
०				३				×				२			
ध	ध	प	प	प	ध	प	म	प	ऽ	ऽ	म	प	ध	नि	सां
०				३				×				२			
नि	ध	प	म	ग	ग	रे	रे	रे	प	म	प	म	ग	रे	सा।
०				३				×				२			

प्र०—अब सैंधवी राग समझायेंगे न ?

उ०—हां, अब उसपर ही विचार करेंगे। आगे चलने से पहले इस राग नाम के विषय में जो मत भेद सुनने में आते हैं, उनका विचार करेंगे। सैंधवी नाम अपने प्राचीन ग्रन्थों में देखने में आता है, अतः इस राग के प्राचीन होने में कोई संदेह नहीं; किन्तु अपने गायक-वादक जो प्रकार गाते हैं, उसे वे सैंधवी नहीं कहते।

प्र०—वे क्या कहते हैं ?

उ०—'सिंदूरा' अथवा 'सिंधूड़ा' या 'सिंधोग' कहते हैं। इन नामों से कुछ ऐसा भ्रम होता है कि यह एक ही राग है या अलग-अलग राग हैं। और अगर ये भिन्न-भिन्न माने जांय तो इनमें भेद कहां और कैसे रखेंगे !

प्र०—हां, ठीक है। सैंधवी का अपभ्रन्श रूप ही 'सिंधोड़ा' या सिंदूरा नाम से प्रचलित हुआ होगा, ऐसा आप नहीं मानते क्या ?

उ०—हां, मुझे वैसा अवश्य प्रतीत होता है। और यह मानने के लिये कुछ आधार भी मिलेगा; किन्तु प्रचार में क्या समझते हैं, यह भी बताना उचित होगा।

प्र०—अपभ्रन्श मानने के लिये आधार हैं, ऐसा आपने कहा था। तो वह आधार कौनसे ग्रन्थ में है ?

उ०—वह आधार सोमनाथ पंडित के "राग विबोध' ग्रन्थ में है। 'सैंधवी' राग का वर्णन करते हुये 'सैंधवी सिंधोडा इति भाषायाम्' ऐसा स्पष्टतया वह कहता है।

प्र०—फिर तो संदेह की बात ही नहीं रही। सोमनाथ पण्डित के मतानुसार 'सैंधवी' को ही 'सिंधोडा' मानकर आगे चलेंगे।

उ०—वैसा समझने में कोई हर्ज नहीं, तथापि वहां पर भी एक भेद रहता है उसे भी बताऊंगा। सैंधवी राग बहुत प्राचीन है, यह मैंने पहले ही बताया था। यह काफी थाट का प्रसिद्ध राग है और इसकी प्रकृति 'काफी' के समान है। आरोह में गन्धार तथा निषाद वर्ज्य करने के लिये प्रायः सभी ग्रन्थों में बताया है। इस राग के आरोह में गन्धार को वर्ज्य करना तो आज सर्वसंमत है, किन्तु वैसा काफी में नहीं होता। अतः यह एक महत्वपूर्ण भेद इन दोनों रागों में स्पष्ट है।

प्र०—हां, ठीक है। निषाद के वर्ज्यत्व के विषय में मतभेद हैं, ऐसा दिखता है।

उ०—हां, यह मानना पड़ेगा। सिंदूरा के गीतों में ऐसा प्रकार तुमको अनेक बार दिखेगा:-म प नि सां रें गं॒, रें सां, नि॒ ध म प, ग॒, रे सा। यही क्या, कोई-कोई तो इनको 'सिंदूरा के' जीवभूत टुकड़े ही मानते हैं।

प्र०—उनके इस कथन में कुछ तथ्य है भी या नहीं ?

उ०—हां, तथ्य जरूर है। सुनने वाले प्रायः इन्हीं स्वरों के समुदाय से सिंदूरा को अलग पहिचान लेते हैं। 'म प नि सां रें गं॒ रें सां' यह सिंदूरा का प्रसिद्ध अङ्ग है ऐसी धारणा हो गई है, तथापि गन्धार और निषाद को वर्ज्य रखकर 'सिंदूरा' गाने वाले भी आपको बहुत मिलेंगे।

प्र०—इनमें से प्रामाणिक मत कौन सा मानना चाहिए ?

उ०—यही तो एक उलझन बतानी थी। अब एक ही मार्ग है कि 'सैंधवी' नामक ग्रन्थोक्त राग को 'सिंदूरा' राग से भिन्न समझना चाहिए।

प्र०—आपका कहना ऐसा है कि शुद्ध 'सैंधवी' इस ग्रन्थोक्त राग को गाना हो तो आरोह में गन्धार और निषाद वर्ज्य करके निषाद आरोह में लेने की सहूलियत रखनी चाहिये। लेकिन सोमनाथ जब सैंधवी को ही स्पष्ट रूप से 'सिंधोड़ा' कहता है तो अपना मन अस्थिर क्यों रखा जाय ?

उ०—इसलिये कि, प्रचार में निषाद का प्रयोग आरोह में दिखाई देता है। उस प्रयोग को 'काफी' तो कह नहीं सकते, क्योंकि आरोह में तीव्र गन्धार नहीं लिया जाता। और यदि उसे पीलू कहें तो भी उस राग का स्वरूप भिन्न मालूम होता है।

प्र०—हां, यह तो एक समस्या है। यह मतभेद हम ध्यान में रखेंगे। गान्धार और निषाद आरोह में वर्ज्य करने वाले कुछ लोग हैं, यह भी अच्छा ही हुआ। हम तो ऐसा कहेंगे कि सैंधवी को ही प्रचार में सिंदूरा या सिंधोड़ा कहते हैं, लेकिन कभी-कभी आरोह में निषाद वर्जित करने का नियम भंग किया हुआ दिखता है। वैसा निषाद लेने से आश्रय राग काफी का मिश्रण होता है, क्यों ठीक है ?

उ०—हां, ऐसा ही होगा। प्रचार में 'सिन्धु काफी' ऐसा भी एक प्रकार गाया जाता है; किन्तु वहां काफी का अन्श स्पष्ट रूप से रहता है। आरोह में गान्धार को बचाकर, सा, रेग़रे, मप, मग़रे, सारे ऩिसा; सा, रे, म प, ध, ऩि सां नि सां, ऩिधप, मऩि-धप; इस तरह विस्तार किया जाता है। अन्तरा लेते समय प, ध, नि, सां, निसां, धनिसां, सां, रेंसांऩिध, पम, ऩिध ऐसा भी किया जाता है। इस देशी सङ्गीत में यह एक बात बड़ी ध्यान देने योग्य है कि बहु संमत 'लक्ष्य' को तिरस्कृत नहीं करना चाहिये। यदि कुछ बातें अनियमित तथा नियम विरुद्ध भी प्रतीत होती हों और उनको नियम में बांधना भी आवश्यक हो, तो भी जनमत को अपनी पद्धति में स्थान देना उचित होगा। आगे चलकर पढ़े लिखे विद्वान् धीरे धीरे शुद्ध तथा अशुद्ध का निर्णय करें तब जो अच्छा होगा वही कायम रहेगा। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आरोह में निषाद लेना कोई बुरा नहीं दीखेगा, बल्कि उसके प्रयोग से गाने में सुविधा ही होगी।

प्र० —अच्छा तो हम ये दोनों प्रकार ध्यान में रखेंगे, अब आगे चलिये।

उ०—सैंधवी अवरोह में सम्पूर्ण होने से उसकी जाति औडुव-सम्पूर्ण होगी। इसमें एक बड़ी मनोरंजक बात ऐसी है कि किसी गायक से आप 'सिंदूरा' के आरोहावरोह के विषय में पूछें तो वह आपको 'सारेमपधसां। सांऩिधपमग़रेसा' प्रायः ऐसा ही आरोहावरोह बतायेगा। प्रत्यक्ष गीत गाते समय कभी कभी निषाद लेगा, वह भी नियमित स्वर विन्यास, में इससे सिद्ध होता है कि यह स्वर बाद में लेने की प्रथा आरम्भ हुई होगी। 'म, पधनि, सां' ऐसा सरल आरोह वे कभी नहीं करेंगे, क्योंकि वहां काफी स्पष्ट रूप से दिखती है। प्रायः वे 'मपनिसां, रेंग़रेंसां' ऐसा ही करेंगे। उनके गायन में निषाद आरोह में गौण रहेगा, ये भी हम कहेंगे।

प्र०—फिर वह निषाद 'प्रच्छन्न' या 'मनाक् स्पर्श' ऐसा ही कुछ माना जायगा। अच्छा तो इस राग का वादी स्वर कौनसा रहा ?

उ०—कोई षड्ज को वादी मानते हैं तो कोई पंचम को। हम षडज को वादी तथा पंचम को सम्वादी मानेंगे। पंचम को विशेष आगे लाने से श्रोताओं को काफी का आभास अधिक होगा।

प्र०—इस राग का समय भी 'काफी' राग का होगा ?

उ०—हां, उसका समय या तो मध्य रात्रि अथवा मध्य दिन ही समझना चाहिये। काफी की तरह इस राग को भी सर्वकालिक मानने वाले विद्वान् मौजूद हैं, यह भी ध्यान में रखना। प्रचार में काफो और सिंदूरा राग मिले-जुले से दिखेंगे और वह मिश्रण सुनने में बुरा भी नहीं लगता।

प्र०—आपका मतलब यही है कि 'परज-कालिंगड़ा' 'देश-सोरठ' इनका मिलाप विद्वान् लोग जैसे करते हैं, उसी प्रकार 'काफी-सिंदूरा' यह मिश्रण भी प्रचार में सुनने में आता है ? हम तो कहेंगे कि ऐसे राग मिश्रणों की बहुत आवश्यकता है। रागरक्ति को अच्छी तरह सम्हाल सके और अवयव रागों का समुचित ढङ्ग से समन्वय करने की क्षमता हो तो उसमें अनुचित क्या है ? 'रंजनाद्रागता' यह तो कहा ही है। फिर यह 'मार्ग सङ्गीत' भी नहीं है जिसमें कि नियमों का उल्लंघन करना शास्त्र विरुद्ध समझा जाता है।

उ०—यद्यपि तुम्हारा कहना दुरुस्त है, तथापि 'सङ्गीत रत्नाकर' में जाति गान के सम्बन्ध में ऐसा कहा है। "ब्रह्मप्रोक्तपदैः सम्यक् प्रयुक्ताः शंकरस्तुतौ। अपि ब्रह्महणं पापाज्जातयः प्रपुनंत्यमूः॥ ऋचो यजूंपि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा। तथा सामसमुद्भूता जातयो वेदसंमिताः॥' ऐसे प्रकार देशी सङ्गीत में नहीं। यहां पर तो-देशेदेशे जनानां च यत् स्याद्धृदयरंजकम्। गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते॥' प्रचार का दबाव तो अपने ग्रन्थकारों को भी मानना पड़ा है। सोमनाथ पंडित जन्य रागों के वर्णन में कहता है—

यद्यपि देशी रागा देशेदेशेऽन्यवेलाख्याः।
पूर्णौडवखाडवतास्वंशन्यासग्रहेषु चानियताः॥
तदपि ग्रहादि पूर्णत्वादि च बहुमतजमनुसृत्य॥
इत्यादि॥ ४ र्थविवेके॥

प्र०—यह ध्यान में आ गया। 'कामाचारप्रवर्तित्वं देशीरागस्यलक्षणम्' ऐसा कहने के बाद किसी बात का डर ही नहीं रहता। "रंजयतीति राग." यह स्थूल नियम मानना होगा।

उ०—हां, यह भी सच है। यद्यपि आज ऐसी ही स्थिति है तथापि अपने सङ्गीत को नियम में बांधने का प्रयत्न तो हम कर ही रहे हैं। समाज में जब प्रगति होगी, नये-नये राग रूपों की खोज होगी, वर्तमान नियम जब लोक रुचि के अनुसार परिवर्तित होने लगेंगे, तब भावी सङ्गीत प्रेमी आज के नियमों को ही आधार मानेंगे। अस्तु, अब यह राग किस प्रकार गाते हैं यह देखेंगेः—सा रे म प ध सां। सां नि ध प म ग रे सा। यह आरोहावरोह सिंदूरा राग का हुआ।

प्र०—यह राग कहां से और कैसे शुरू करना चाहिए ?

उ०—प्राय: 'रेमपधसां' अथवा 'ममपधसां' इस प्रकार से प्रारंभ करना अच्छा रहता है। कुछ गीतों का आरम्भ तार षड्ज से ही किया हुआ दिखता है। जैसे-सांनिध, पध, सां, निधमपधगुरे, मगु, रेसा, रेम, पध, रेंसां, निध, मपसां। यह अच्छा भी लगता है। और क्वचित् ऐसा भी करने में आता है—मगुसा, रेमप, ध, सां, रें, मं, गुं, रें सां, निसांनिध, म, पगु, रेसा। इन सब प्रकारों में आरोह में गंधार को बचाने का यत्न स्पष्ट रूप से दिखाई देगा। अब इस राग का विस्तार और आगे करके देखें—:

"म गु रे सा,म प, ध सां, रेंगुं रेंसां, रेंसां,नि ध, म प, सां,नि ध, म प ध गु रे, नि ध, सां, नि ध, म प, गु रे, प गु रे, म, गु रे सा, रे म प ध सां। सां, ध सां, रेंगुं रेंसां पं गुं रें सां, रेंसां,प ध सां, नि ध, नि ध, म प, गुंरें, सां, नि ध म प, नि ध, म प, गु, रे,प गु,रेसा, रे म प ध सां। रे म प ध सां, म प सां, ध सां, ध सां रेंगुं, रेंसां, पध सां, ध सां रें सां, नि प, सां, नि प, म प गु रे, रे म रे गु रें सा, रे म प ध सां। रे म पध सां, ध सां, सां रें सां, प प ध रें सां, रें गुं रें सां, सां, नि ध, म प, ध सां, नि ध, म प ध, गु रे, प गु रे, रे गु सा, रे म प ध सां।

प्र०—अन्तरा कहां से शुरू करना होगा ?

उ०—वह इस प्रकार होगा—म, प ध सां, ध सां रें गुं रें सां, रें सां, नि ध, म म प ध सां, नि ध, रें सां गुं, रें सां, सां रें सां, नि ध, म प ध, सां, नि ध, सां रें गुं रें सां, सां, नि ध, म प ध, गु रे, रें रें सां नि ध, म प ध सां, नि ध, म प ध गु रे, नि नि ध, म, प ध म प, गु रे, म गु, रे, सा।

इस राग की बढ़त करते समय कुछ मार्मिक भाग ध्यान में रखने योग्य हैं। 'मप-ध नि, सां' ऐसा होने से काफी राग होगा। "सां, नि ध, मधनिधम" इस तरह पंचम वर्ज करने से 'बागेश्री' नामक काफी जन्य राग का आभास होगा। 'म गु रे सा' यह छोटा सा टुकड़ा काफी और सिन्दूरा दोनों रागों में आ सकेगा, किन्तु काफी में इसका आधिक्य होने से "निध, मपगु, रेसा" ऐसा जगह-जगह करना पड़ता है। 'धसां, निधम, गु, रेसा' इस प्रकार से अवरोह भी किया जाता है। 'सांनिधप मगुरेसा' इस प्रकार की सरल तान सिन्दूरा में अशुद्ध नहीं मानी जाती; क्योंकि उसका अवरोह सम्पूर्ण है, किंतु तिरोभाव करते समय ही उसका प्रयोग होना चाहिये।

प्र०—आपने बताया था कि निषाद आरोह में लेने में आता है। कृपया उस प्रकार का स्वर समुदाय बनाकर कहें तो ठीक होगा।

उ०—हां, देखो:—म प नि सां, रें गुं रें सां, सां, नि ध, म प गु, रे, म गु, रे सा, रे म प ध, सां, रें सां नि, प ध, म प नि सां, रें गुं रें सां। म प, सां सां, रें सां, गुं रें सां, सां, नि ध, नि ध, म प ध, गु रे, प गु रे, सा रे नि सा। म प नि सां रें गुं रें सां।

सिन्दूरा में "मपध, गु रे" ऐसा टुकड़ा बार बार सामने आयेगा। 'मगुरेसा' यह भाग इतनी सरलता से न आ पाये, इस युक्ति से सम्हालने में ही सब कुशलता है। अब मेरे बताये हुये प्रकार से सिन्दूरा की बढ़त अथवा आलाप करके बताओ।

प्र०—अच्छा, कोशिश करता हूँ।

सा, रे, ग रे, प ग रे, म ग रे, नि ध, म प ध, ग रे, रे, सा; ध़ सा प़ ध़ सा, म़ प़ ध़ सा, रे म प ध ग रे, प ग रे, म ग रे, ग रे, रेसा, रे म प ध सां। सा, रे म, प ध म प, ध, नि ध, सां, रें सां, नि ध, प ध सां, नि ध, रें गं रें सां, नि ध, म, प ध सां, नि ध, नि प, म प ग रे म प ध नि ध प, सां, नि ध, प, ग, रे, ध ग रे, म, रे ग रे सा, रे म, प ध सां। सां रें गं गं रें सां ,रें रें सां, प प ध रें सां, सां. नि ध, म प ध रें सां, नि ध, म प ध ,ग, रे, प ग रे, म ग रे, रे ग सा, रे म प ध सां।

इस प्रकार चलेगा न ? भिन्न-भिन्न टुकड़ों को इकट्ठा करके यह प्रकार बनाया है। एक एक स्वर का विस्तार कैसे करेंगे, यह बात अभी अभी ध्यान में आई है। वह ऐसे करेंगे:—

प, म प, ध प, नि ध प, सां नि ध प, सां, नि ध प, ध सां, नि ध प, रें गं रें सां, नि ध प, प प ध रें सां, नि ध प, म प नि ध प, म प ग रे, नि ध, म प, ग, रे, ध ग, रे, प ग रे, म ग, सा रे, नि़ सा, रेम, प ध सां।

अब धैवत को आगे लेंगे:—ध, नि ध, म, प ध, नि ध, सां, नि ध, म प ध सां, नि ध, रे म प सां, नि ध; रें सां, नि ध, सां रें गं सां नि ध, म, प सां नि ध, म प ध नि ध, म, प, ध ग रे, म ग, रे, सां नि ध, म प ध, ग रे, रे, सा। रे म प ध सां।

अब तार षड्ज की तानें हम इस प्रकार लेकर दिखायेंगे:-मपधसां, धसां, म, पधसां, रेंसां, रेंगंरेंसां, सां, नि ध, गंगं रेंसां, रेंसां, प ध सां. निध, मपध, गरे, रेंसां, निध, म, नि ध, मपध, गरे, पगरे, रेग, रेसा। रेमपधसां। ये प्रकार आपको कैसे लगे ?

उ०—ये सब शुद्ध ही हैं। अब राग विस्तार का तत्व धीरे धीरे तुम्हारे ध्यान में आने लगा है, यह अच्छा ही हुआ। इससे तुम एक ही राग को बड़ी देर तक गा सकोगे। बड़े बड़े ख्याल गायक लम्बी तानें लेने से पहिले छोटे, छोटे स्वर समुदायों द्वारा राग की बढ़त करते हैं। एक-एक निश्चित स्वर को लेकर उसको अन्य स्वरों से सजाकर, विसंगति तथा पुनरुक्ति दोषों से बचाते हुए अनेक स्थायों की रचना करते हैं। उनका यह कार्य सुनने लायक होता है। अतः अच्छा ख्याल गाना बड़ा कठिन है, ऐसा कहते हैं। विलम्बित लय में ख्याल गाना बड़ा ही कुशलता का काम होता है। कौन से राग की कौनसी चीज की लय, कितनी धीमी या द्रुत रखनी चाहिए, इसका भी ज्ञान गायक को होना आवश्यक है। जिस काम को द्रुत लय में करना चाहिये, उसे प्रारम्भ से ही विलंबित लय में करने से चीज का गांभीर्य, रस तथा शोभा नष्ट हो जाती है। अस्तु! सिंदूरा की प्रकृति प्रायः काफी के समान होती है। उसमें मींड का काम विशेष शोभा नहीं देता। वैसा करने से बागेश्री, पीलू आदि रागों का आभास होगा। सिंदूरा में ध्रुपद, होरी, धमार ये गीत गाये जाते हैं—ख्याल तो क्वचित् ही सुनने में आते हैं। मुझे जो एक-दो ख्याल उसमें आते हैं, उन्हें मैं तुम्हें बताऊँगा। इस राग में 'सादरे' झपताल तथा 'सूलफाक' तालों के गीत बड़े मधुर लगते हैं। अब इस राग के स्वर सम्बन्ध में ग्रन्थकार क्या लिखते हैं, यह देखेंगे।

प्र०—आपने कहा था कि यह राग बड़ा प्राचीन है, तब 'रत्नाकर' में इसका उल्लेख तो होगा ही ?

उ०—हां, शाङ्र्गदेव ने यह राग तो बताया है; किन्तु इसके स्वरों के विषय में समाज में भिन्न मत होने से उसका स्पष्टीकरण कोई किस प्रकार करेगा ? वहां पर क्या लिखा है ? केवल इतना ही बता सकेंगे। किन्तु उसका कुछ उपयोग अभी नहीं होगा। रागाध्याय में शाङ्र्गदेव पंडित ने 'सैंधवी' के विषय में लिखा है:—

चतुर्धा सैंधवी तत्र टक्कभाषा रिपोज्झिता ।
सन्यासांशग्रहा सांद्रा गमकैर्लंघितस्वरैः ॥
सगतारा षड्जमंद्रा गेया सर्वरसेष्वसौ ।
सैंधवी पंचमेऽप्यस्ति ग्रहांशन्यासपंचमा ॥
रिपापन्याससंयुक्ता रम्या सगमकैः स्वरैः ।
नीतरै रिबहुस्तारपा पूर्वविनियोगिनी ॥
मालवे कैशिकेऽप्यस्ति सैंधवी मृदुपंचमा ।
समंद्रा निगमैर्मुक्ता षड्जन्यासग्रहांशिका ॥
प्रयोज्या सर्वभावेषु श्रीसोढलसुतोदिता ।
सैंधवी भिन्नषड्जेऽपि न्यासांशग्रहधैवता ॥
उद्दीपने नियोक्तव्या धमंद्रा रिपवर्जिता ।

सैंधवी के ऐसे चार प्रकार रत्नाकर में कहे हैं। यह भाग "अधुना प्रसिद्ध" देशीराग लक्षणम्-इस शीर्षक से वहां लिखा है। सैंधवी के सब प्रकार "भाषाराग" शीर्षक के नीचे दिये हैं। जिन रागों से वे उत्पन्न होते हैं, वे तो श्लोक में बताये ही हैं वर्णन श्री सुबोध है। हर एक लक्षण में मन्द्र तथा तार की सीमा बतलाई है।

सोमनाथ ने अपने 'रागविबोध' में सैंधवी इस प्रकार वर्णित की है:—

सैंधव्यगनिर्नित्यं सांशन्यासग्रहा लसद्गमका ।

टीका:—"सैंधवी सिंधोडेति भाषायाम्। अगनिर्गांधारनिषादरहिता सांशन्यासग्रहा षड्जग्रहांशन्यासालसद्गमकं वक्ष्यमाणवादनभेदः यस्यां सा नित्यं गेया। श्रीरागमेले।"

उनका श्रीराग मेल तो तुमको मालूम होगा ही ! वह इस प्रकार है:—

श्रीरागमेलके रिस्तीव्रः साधारणोऽथ धस्तीव्रः ।
कैशिक्यपि शुचिसमपा मेलादस्माद्भवन्त्येते ॥
श्रीरागमालवश्रीधन्याश्यो भैरवी तथा धवला ।
सैंधव्याद्याश्चान्ये देशविशेषैर्विभिन्नाख्याः ॥

यहाँ पर साधारण ग और कैशिक नि तीव्र रे और तीव्र ध कहे हैं, अतएव यह थाट काफी होगा। सैंधवी को तो 'सिंधोडा' कहा ही है। "धवला" के विषय में ग्रन्थकार कहता है। "धवलाया एव मेवाडा इति देशनाम"। मेवाड प्रांत में उदयपुर शहर उसकी राजधानी है, ये तो तुम्हें विदित होगा ही।

प्र०—इससे यह भी प्रमाणित होता है कि सोमनाथ उत्तरी सङ्गीत से परिचित था।

उ०—वह उत्तर की तरफ आया होगा, यह मैंने पूर्व प्रसङ्ग में ही कहा था। वह राजमहेन्द्री का निवासी था। उत्तर भारत में भी उसने कुछ दिनों तक प्रवास किया था अतः उसके ग्रन्थों में तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मृदु इत्यादि स्वरों के पर्याय नाम आये हुए दिखते हैं। उत्तर के बहुत से राग भी उसने लिखे हैं।

प्र०—किन्तु सोमनाथ के कथनानुसार सैंधवी को "अगनिः" (गनि वर्जित) कहा है अतः उसके आरोह तथा अवरोह में गनि वर्ज हैं, ऐसा दिखता है।

उ०—हाँ, यह ठीक है। हम सब उन्हें अवरोह में लेते हैं, यही भेद है। दक्षिण के 'रागलक्षण' ग्रन्थ में सैंधवी को श्रीरागमेल में यानी खरहरप्रिय मेल में इस प्रकार कहा है:-

अधिकारिखरहरप्रियमेलात् सुनामकः।
सैंधवी राग इत्युक्तः संन्यासं सांशकग्रहम् ॥
आरोहेऽप्यवरोहे च मध्यमो हि विधीयते ॥ ?

यहाँ थाट काफी ठीक दिखता है। 'मध्यमो हि विधीयते' यह वाक्य यहां गलती से आया होगा, ऐसा मालूम होता है। इसका अर्थ ठीक या स्पष्ट नहीं लगता। यह वाक्य उसमें कैसे आया, इसका निर्णय, दूसरी प्रति न मिल जाय तब तक होना असंभव है।

इस व्याख्या के नीचे स्वरयुक्त मूर्छना भी नहीं दी है। इसलिये प्रतिलिपि में ही दोष रह गया हो, ऐसा सम्भव है। 'विधीयते' के स्थान पर 'विहीयते' होगा, यह भी निश्चित नहीं कह सकते। 'काफी' राग के चर्चा प्रसङ्ग में 'संगीतसारामृतकार' का मत मैंने कहा था। तुलाजीराव ने काफी, सैंधवी, धन्यासी आदि रागों को श्रीराग मेल में ही माना है, ऐसा मैंने कहा था। उसमें सैंधवी का वर्णन इस प्रकार है:—

श्रीरागमेलसंभूतः सैंधवीराग ईरितः।
संग्रामकर्मणि जयप्रदः सायं प्रगीयते ॥
संपूर्णस्वरसंयुक्तः षड्जन्यासग्रहांशकः ॥

प्र०—तो फिर इसमें गांधार और निषाद आरोहावरोह में लेने होंगे?

उ०—इनको वर्ज करने के लिये तो उन्होंने नहीं कहा, किंतु 'सैंधवी' का उदाहरण स्वरों के द्वारा उन्होंने दिया है। "अस्य रागस्यारोहावरोहयोरुदाहरणम्—सा रे रे सा रे सा नि ध नि सा रे सा रे म प ध प नि ध प। सां नि ध प म प म ग रे म ग ग रे सा। इत्येवं रीत्यास्याःस्वरगतिः।"

प्र०—यहां उन्होंने गंधार तो आरोह में लिया ही नहीं ?

उ०—हां नहीं लिया। अब अपने उत्तर के ग्रन्थों का मत देखिये। रागतरंगिणी और हृदयकौतुक ग्रन्थों में सैंधवी नहीं बतलाई। कौतुकग्रन्थ हृदयनारायणदेव का है, यह तुम्हें मालूम ही होगा। हृदयनारायण का 'हृदयप्रकाश" द्वितीय ग्रन्थ है, उसमें 'सैंधव' राग इस प्रकार दिया है:—

शुद्धसप्तस्वरे मेले सैंधवो भैरवीत्यपि।
नीलांबरी च तत्र स्यात्सैंधवो धैवतादिकः।
आरोहे गनिवर्ज्यो यः स्फुरितेन युतो मुहुः।

ध सा रे म म प प ध ध सा नि ध प ध म प म ग रे सा। ध सा रे म म ग रे ग रे प रे नि नि ध प म प प म ग रे रे ग ग रे सा। ध ध सा नि ध प ग ग रे सा। ध ध सा नि ध प म प ग ग ग रे सा रे रे सा सा नि ध प प म प ध नि ध म प ग ग रे सा। इतिसैंधवः।

प्र०—यह आधार ठीक रहा। हृदयकौतुक ग्रन्थ भी जब इन पंडित का ही रचा हुआ है, तो उसमें सैंधव का नाम क्यों नहीं दिया, यह भी आश्चर्य की बात है!

उ०—तुम भूल कर रहे हो। अपना तर्क मैंने एक बार तुमसे कहा था, कि 'हृदय-प्रकाश' ग्रन्थ 'हृदयनारायणदेव' ने "पारिजात" ग्रन्थ का अवलोकन करने के बाद लिखा होगा?

प्र०—हां याद है। 'पारिजात' में तार की लंबाई से स्वरस्थान बताये हुए देखकर हृदयदेव ने 'कौतुक' ग्रन्थ लिखने के पश्चात् 'हृदयप्रकाश' ग्रन्थ लिखा है, ऐसा आपने कहा था। कौतुक ग्रन्थ तो तरंगिणी का अनुयायी है और इन दोनों में ही स्वर स्थान तार की लंबाई से नहीं बताये, इस बात को हम पहले ही देख चुके हैं।

उ०—उसी प्रकार 'तरंगिणी' में सैंधव राग न होने से हृदयदेव ने 'कौतुक' में वह नहीं दिया, किन्तु जब सङ्गीत पारिजात में यह स्पष्ट लिखा हुआ मिल गया तब उसने अपने नये ग्रन्थ 'हृदयप्रकाश' में उसे सम्मिलित किया हो, ऐसा अनुमान करना स्वाभाविक होगा।

प्र०—सङ्गीत परिजात में सैंधव का कैसा वर्णन किया है?

उ०—वहां पर इस प्रकार है:—

शुद्धमेलोद्भवः पूर्णो धैवतादिकमूर्छनः।
आरोहे गनिवर्ज्यः स्याद्रागः सैंधवनामकः।
आम्रेडितस्वरैर्युक्तः स्फुरितेन च शोभितः॥

ध सा रे म म प प ध ध। सा नि ध ध प म प म ग ग रे सा। ध सा रे म म ग रे ग रे प म ग रे। नि नि ध म प म ग रे। प प म ग रे ग ग ग रे सा। इति सैंधवः सर्वकालिकः।

प्र०—हृदयनारायण देव ने अपना सैंधव पारिजात से ही लिया है, इसमें संदेह नहीं। स्वरस्वरूप भी वैसे ही हैं। यहां धैवत से प्रारम्भ "धैवतादिकमूर्छनः" इस सिद्धान्त से किया है, ऐसा लगता है। 'स्फुरित' शब्द भी वहां का ही है। वहां पर 'आम्रेडित' कहा है और इन्होंने "युतो मुहुः" ऐसा कहा है।

उ०—हां, प्राचीन काल में मूर्छना का प्रयोग कैसे किया करते थे, यह निश्चित करना कठिन कार्य है; किन्तु लोचन, हृदय, श्री निवास ये पंडित मूर्छना का प्रयोग कैसा करते थे? यह बात उक्त उदाहरण से स्पष्ट होती है। 'स्फुरित', 'गमक और मुहुः इन शब्दों की ओर तुम्हारा ध्यान गया यह अच्छा ही हुआ। अब श्री निवास का मत देखेंगे।

प्र०—श्री निवास पंडित का समय कौनसा है? और उसने सैंधवी के विषय में क्या कहा है?

उ०—श्री निवास पंडित का इतिहास उसके ग्रंथ में न होने से वह कहां और कब हुआ, यह निश्चित रूप से कहना असंभव है। किन्तु वह अहोवल पंडित का अनुयायी था, इतना निश्चित है। उसका स्वर स्थानों का वर्णन पारिजात के अनुसार है और राग वर्णन भी वहाँ से लिया हुआ है। 'पारिजात' के बाद का लेखक होने से उसने समाज में कुछ तत्कालीन प्रसिद्ध बातों का अपने ग्रन्थों में जो उल्लेख करके अच्छा ही किया है।

प्र०—वे कौन सी बातें?

उ०—पारिजात में "मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान्" ऐसी मेल की व्याख्या बताकर आगे उसके संपूर्ण, षाडव और औडुव प्रकार होते हैं, ऐसा कहा है। उन प्रकारों की संख्या जानने के लिये "एवं मेलस्त्रिधा प्रोक्तो विकृतैश्च स्वरैरिह। शुद्धसंपूर्णमेलस्यभेद एक उदाहृतः॥ तत्रैकैकस्वरत्यागात् षाडवः षड्विधो मतः। पंचाधिकदशात्वंहि स्वरद्वयवियोगतः॥" यह तो श्री निवास ने भी बताया है। इसके पश्चात् वह आगे कहता है:—

षाडवेषु च पूर्णेषु मेलेषु. सकलेषु च
आरोहे चावरोहे च स्वरत्यागसमन्विताः॥
मूर्छनाभेदसंपन्ना गमकादिव्यवस्थया।
व्यवस्थिताः श्रुतिस्थानयोग्यजातिभिदायुजः।
रागा अप्यमिताः प्रोक्ता लक्ष्यलक्षणकोविदैः।
युगपद्द्वयविश्लिष्टाः स्वरयोरौडुवा यदि।
न तथा रंजकास्ते स्युस्तथाप्यत्र मयोदिताः॥

प्र०—मेल के नौ प्रकार और उनसे अनेक प्रकार उत्पन्न करने की विधि उत्तर पद्धति में बहुत प्राचीन थी, ऐसा दिखता है।

उ०—यह तो सारे देश में प्रचलित थी। गणित शास्त्र का प्रयोग तो सब जगह अबाध ही रहेगा। मेल और तज्जन्य रागों के सम्बन्ध में, शास्त्र नियम निश्चित होने के

पश्चात् उनका प्रयोग कितने प्रमाण में, कहाँ और कैसे होना चाहिये ? यह तथ्य विद्वान् लोगों के चातुर्य पर निर्भर होता है। यही नहीं, बल्कि 'चतुर्दंडिकार' ने तो गणित द्वारा प्रसिद्ध १२ स्वरों में से ७२ मेल निर्माण किये जा सकते हैं, यह सिद्ध कर दिया है। उसके जो बारह स्वर थे अब वही उत्तर भारत में हमारे यहां उपयोग में लाये जाते हैं और हमारे यहां भी थाटों से ही रागों की उत्पत्ति कही है। तो फिर गणित का सिद्धान्त उत्तर पद्धति में भी तो माननीय रहेगा। और यदि कोई कहे कि वही सिद्धान्त उत्तर पद्धति पर भी लागू होता है तो यह कथन भी अनुचित न होगा। मुझे याद है कि मैंने जब यह बात अपने कुछ पण्डितों से कही तो उन पण्डितों ने मेरी मूर्खता पर बड़ी दया दिखाई।

प्र०—क्यों, इसमें मूर्खता का अन्श कहां देखने में आया ?

उ०—उन्होंने कहा, 'जी आप क्या बोल रहे हो ? आप तो उत्तर विभाग के एक 'सङ्गीत शास्त्री' हो, और व्यंकटमखी तो बेचारा दक्षिण देश का एक मामूली आदमी था। आप क्या दक्षिणी सङ्गीत को अपने सुन्दर उत्तर भारतीय सङ्गीत में घुसेड़ देने की बात कर रहे हो ? यह मेल थाट और प्रस्तार क्या लेकर बैठे हो ? अपने छै राग, छत्तीस रागनी उनके पुत्र, पुत्रवधू, उनकी सहेलियां, पुत्र के मित्र ऐसा रंगीला संसार छोड़कर इस शुष्क और नीरस गणित का क्या करोगे ? अपने यहां वादी-संवादी के थाट कितने सुन्दर हैं ? अहा हा ! कहां अपना सङ्गीत और कहां वह दक्षिण का प्राथमिक सङ्गीत शास्त्र।'

प्र०—लेकिन अपने यहां के बारह स्वर वही हैं ? और रागों की उत्पत्ति थाट से ही तो है ? तथा वर्तमान रागों का स्वरूप भी वही रखना है ? फिर ये उलट पुलट किस लिये ?

उ०—स्वर वही बारह और राग भी थाट से ही उत्पन्न करने हैं, इसमें संदेह नहीं। किन्तु वह '७२ संख्या' कहने से ही उत्तर पद्धति वालों को दक्षिण की दूषित गंध आती है। उनको अपने थाट उत्तरीय नामों से ही कायम करने हैं और राग नियम उत्तर के अनुसार ही रखने हैं; लेकिन ७२ थाट बारह स्वरों से उत्पन्न होते हैं तथा उनका गणित अपनी पद्धति के लिये भी ठीक है, इस बात को वे कभी न मानेंगे।

प्र०—किन्तु पाश्चात्य Major, Minor, और Semitone की विचार पद्धति और $\frac{9}{8}$, $\frac{10}{9}$, $\frac{16}{15}$, $\frac{25}{24}$, $\frac{81}{80}$ ये प्रमाण उनको कैसे लगते होंगे, यह भी तो गणित ही है न ?

उ०—हां, मैं उनसे बहस करने के चक्कर में नहीं पड़ा। उनका इस विषय का ज्ञान तो सीमित ही था और ग्रन्थों के अध्ययन की बाबत तो पूछो ही मत। राग भार्या और पुत्रों के दिन बीत चुके हैं, यह बात वे क्यों मानेंगे ?

प्र०—किन्तु प्रत्येक मेल से उत्पन्न होने वाले षाडव-औडुव प्रकार तो उत्तर के ग्रन्थों में भी हैं न ? पारिजातकार तथा श्रीनिवास ऐसा ही कहते हैं, यही तो आपने अभी-अभी बताया था ?

उ०—हां मैंने बताया और भावभट्ट पंडित भी ऐसा ही कहता है, देखो:—

रागस्तु नवधा प्रोक्तो ग्रामजश्चोपरागजः ।
भाषाख्यश्च विभाषाख्योऽन्तरभाषाख्य एव च ।
रागो रागांगभाषांगौ क्रियांगोपांगकौ नव ।
शुद्धच्छायालगौ चैव संकीर्णश्च त्रिधा मतः ॥
षाडवौडुवपूर्णाख्यास्त्रिधा रागाः परे जगुः ।
रागस्तु नवधा प्रोक्तः पूर्णः स्यात् सप्तभिः स्वरैः ॥
षड्भिः षाडवसंज्ञः स्यादौडुवः पंचभिर्भवेत् ।
यथार्थनामकाः षट्स्युर्भेदा भावप्रभाषिताः ॥
पूर्णौडुवकसंज्ञस्तु पूर्णषाडवसंज्ञकः ।
तथौडुवकपूर्णः स्यात्षाडवाद्यस्तु पूर्णकः ॥
षाडवौडुवकश्चापि तथौडुवकषाडवः ।
प्रोक्तो नवविधो रागः श्रीजनार्दनसूनुना ॥

प्र०—मेल के नौ प्रकार और उनकी सहायता से हरएक मेल से उत्पन्न होने वाली राग संख्या, ऐसा क्रम आपने पहिले कहा ही था। अब आगे कुछ बताइये ?

उ०—हमारे पण्डित तो कहेंगे कि यह सब दक्षिण का कूड़ा करकट है। उनकी राय में तो उत्तर की ही पवित्र व्यवस्था है।

प्र०—पवित्र का मतलब ?

उ०—थोड़ी देर के लिये ऐसे ही समझ लो:—

सद्योजातोद्भवः शुद्धभैरवो वामदेवतः ।
हिंदोलो देशिकाराख्यस्त्वघोरात्तत्पुरुषतः ॥
श्रीरागः शुद्धनाटाख्योऽपीशानवदनोद्भवः ।
नटनारायणो रागो गिरिजामुखजस्ततः ॥

और आगे 'गंगाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः' इ० भैरव राग और 'स्फटिकरचित पीठे रम्यकैलासशृंगे', ऐसी वह भैरव की वारांगना भैरवी ! इससे अधिक पवित्र कौनसी राग व्यवस्था हो सकती है। मेल और तज्जन्य रागव्यवस्था ! हरे हरे !! वह तो इस बात के लिये राजी न होंगे। 'वादी सम्वादी ?' क्या बतायेगा वह मारवा थाट ! एक तरफ कोमल रिषभ और दूसरी तरफ धैवत तीव्र ! यह कौनसा शास्त्र है ? आप थाट थोड़े से ही चुन लो, किन्तु पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग का सम्वाद तो कायम रक्खो ? फिर आपके वे राग अपवाद स्वरूप चाहे जितने आने दीजिये, हमारा कोई हर्ज नहीं। प्रचार में जितने राग हैं उतने तो गाइये। फिर एक अर्ध में कल्याण और दूसरे अङ्ग में भैरवी, आसावरी काफी चाहे जो आने दो, हम उस ओर देखेंगे भी नहीं। एक राग में स्वर के दो-दो रूप

भले ही आजांय पर 'वादी-सम्वादी' तत्व के थाट पसन्द कीजिये तो बस, हमें कुछ कहना ही नहीं है। किन्तु शास्त्र में उलटा सीधा हम नहीं चलने देंगे।

प्र०—क्या क्या विवाद करने वाले मिलते हैं। सर्वमान्य और व्यवहार में प्रचलित बातों में भी कितनी बाधायें हैं, ऐसे लोगों का समाधान भी कैसे करें? प्राचीन ग्रन्थकारों ने ऐसा कहा है, यह बताने पर भी उनकी तुष्टि न होगी।

उ०—प्राचीन मत का आधार दिखाने पर वे कहेंगे कि अर्वाचीन मत अधिक शास्त्रीय है। और अर्वाचीन मत आप स्वीकार करेंगे, तो वे कहेंगे कि आप प्राचीन परम्परा को ठुकराते हैं।

प्र०—तो फिर इनसे कैसे निबटा जाय?

उ०—सबकी बातें सुननी, लेकिन स्वयं के प्रामाणिक मतानुसार कार्य करना। अपने मत के भी कोई न कोई मिलेंगे ही, यह समझकर कर्तव्य पालन करना। सबको राजी रखने का प्रयत्न करें तो 'बूढ़ा और उसका बैल' इस कहावत का सा हाल होगा। जिन बातों को प्राचीन ग्रन्थों का आधार है और जो बातें प्रत्यक्ष व्यवहार में वैसी ही दिखती हैं, उन पर कायम रहने से कार्य की हानि न होगी। भिन्न मतानुयायी लोगों को अपने मत प्रकाशित करके समाज में प्रसिद्ध करने का तथा लोकप्रिय करने का अधिकार है और उनको वैसा करना भी चाहिये।

प्र०—ग्राम्य भाषा में कहा जाय तो 'Dogs bark but caravan proceeds' ऐसा ही मामला दिखता है, क्यों?

उ०—हां, यही बात है। श्रीनिवास पण्डित ने रागतत्व विबोध ग्रन्थ में कौनसी नई बात कही है, यह हम देख रहे थे?

प्र०—हां, उससे ही मेल और मेलजन्य रागों का विषय निकला था। अब उसने क्या लिखा है वह कहिये?

उ०—वह कहता है:—

श्रुतयो द्वादशैवात्र स्वरस्थानतयोदिताः।
तथोक्तवारिताः सर्वाऽस्वरस्थानतयादिशेत् ॥

प्र०—यह श्लोक तो बड़ा ही उपयोगी है। २२ श्रुतियों में से केवल १२ स्वर ही लेकर रागोत्पादन के लिये स्वीकार करने चाहिये, ऐसा ही निर्णय होता है न?

उ०—हां यही तो कहता है। इतना ही क्यों? वह आगे कहता है:—

न श्रुतिस्थस्वरोत्पन्नप्रस्तारप्राप्तमेलजान्।
युक्तोद्ग्राहयुजो रागान् कल्पयंतु मनस्विनः ॥

अर्थात् बारह स्वरों के बीच की श्रुतियों से मेल उत्पन्न करने का कोई यत्न करे तो उसका प्रयत्न अनुचित होगा। श्रीनिवास ही क्या और लोगों का भी यही अभिमत है।

सुगम और सुबोध पद्धति ऐसी ही रहेगी। श्रुति संख्या यद्यपि २२ है, तो राग व्यवहार के लिये स्वर संख्या 'इससे कम होगी ही कारण, स्वरांतर द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक तथा चतुःश्रुतिक होने चाहिये, ऐसा अपने यहां नियम था।

प्र०—अच्छा तो स्वरों के बीच बीच में आने वाली श्रुतियों का राग में व्यवहार करने के लिये स्वरांतरों को पंडित लोग किस प्रकार सम्हालते हैं?

उ०—वहां पर षड्ज का स्थान परिवर्तन करना होगा। यानी वहां पर Tuning ट्यूनिंग की आवश्यकता होगी। वहां वाद्यों का सम्बन्ध स्थापित होकर गवैये को अलग षडज में गाना होगा। वाद्य की सङ्गत होने से षड्ज परिवर्तन करके चाहे जौनसी श्रुति अलंकार के रूप में गायक निकाल सकेगा। इस तरह २२ श्रुतियों वाले वाद्य पर कोई भी श्रुति निकाल सकेगा; किन्तु वहां मेल रचना के तत्व की हानि होगी। परन्तु इस झंझट में हम अभी नहीं पड़ेंगे। श्रीनिवास आगे क्या कहता है सो देखो:—

संवादिनौ न चेदुक्तस्थानगौ शुद्धकोमलौ।
तौ यवार्धयवाभ्यां हि कार्यौ न्यूनौ विचक्षणैः॥
भरतादिमुनींद्राणामभिप्रायविदा मया।
लक्षणानि कृतान्यस्मिन् सूरिसंमोदसिद्धये॥

इसका मर्म तुम्हारे ध्यान में आसानी से नहीं आयेगा इसलिये मैं कहता हूँ। श्री निवास 'पारिजात' ग्रन्थ का अनुयायी है। अहोबल को रिषभ और धैवत तार की लम्बाई से बनाने में कुछ असुविधा उत्पन्न हो गई थी, यह तो तुम्हें याद ही होगा। उसने कहा था:—

सपयोः पूर्वभागेच स्थापनीयोऽथ रिस्वरः।
सपयोर्मध्यदेशेतु धैवतं स्वरमाचरेत्॥

यहां पर 'सपयोः पूर्व भागे' इस वचन से पूर्व भाग कितना होना चाहिये? ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है। इसलिये षड्ज का पंचम और उस पंचम का पंचम लेकर उसे तार सप्तक की जगह मध्य सप्तक में लाने से उचित स्थान पर वह बैठता है, ऐसा मैंने कहा था। उसका आधार भी षड्ज पंचम भाव से लिया था। वहां और एक विशेषता है कि पहले श्लोक का आधार पिछले श्लोक से जोड़ने पर वही परिणाम होगा, जैसे:—

त्रिभागात्मकवीणायां पंचमः स्यात्तदग्रिमे।
षड्जपंचमयोर्मध्ये गांधारस्य स्थितिर्भवेत्।
सपयोः पूर्वभागे च स्थापनीयोऽथ रिस्वरः॥

प्र०—जी हां, समझ गया। उसमें "त्रिभागात्मक" यह विशेषण स्वीकार करके "पूर्वभागे रिस्वरः" ऐसा लेने को कहते होंगे?

उ०—तुम ठीक समझे। तब रिषभ तो मिल ही गया, अब रही धैवत की बात, उसमें इस इष्ट धैवत की दूरी ग्रन्थकारों को सरल रीति से अर्थात् दो अथवा तीन स्पष्ट एवं

सुन्दर भाग करके कहते बनी है, इस कारण "सपयोर्मध्यदेशे" केवल ऐसा कहना पड़ा। यह उक्ति आगे के ग्रन्थकारों ने वैसे ही चलने दी। वस्तुतः उनको उसके सम्बन्ध में कुछ तो कहने के लिये चाहिये ही था, कारण "सपयोर्मध्यदेशे" इस उक्ति का वाच्यार्थ पाठक आसानी से कर लेंगे, यह उनको विदित था।

प्र०—उसमें उन्होंने "षड्ज पंचमभावेन" ऐसा कहा था, जो ठीक मिलता है। सम्भवतः उन्होंने समझा होगा कि पाठक इस नियम के आधार पर आसानी से आगे बढ़ेंगे और ऐसा करने के लिये वे धैवत को तनिक उतार कर उसको योग्य स्थान पर स्थिर करेंगे।

उ०—ऐसा उनके मन में अवश्य होगा। अहोबल कोई साधारण व्यक्ति नहीं था, किन्तु इस त्रुटि को दूर करने के लिये श्रीनिवास ने अच्छी युक्ति बताई, तथा उसको स्पष्ट भी किया है। धैवत स्वर षड्ज पंचम भाव से लगाना चाहिये, यह अहोबल के मन का विचार उसने मालूम करके धैवत का स्थान "यवार्द्ध यव" नीचे करके सम्वाद साधना चाहिये, ऐसा लिख दिया। निदान, उसके श्लोक से ऐसा करने के लिये प्रेरणा मिली, यह कहना ही पड़ेगा।

प्र०—हमारी समझ से श्रीनिवास ने यह बहुत अच्छा किया। कारण, उसके योग से धैवत को उचित स्थान पर लाने के लिये आधार मिल गया। परन्तु फिर हमारे अर्वाचीन पण्डित षड्ज पंचमभाव से आने वाले तीव्र गन्धार को (अर्थात् 303⅛ आन्दोलन के गन्धार को) ३०० आन्दोलन का करने के लिये यह आधार नहीं लेंगे क्या?

उ०—नहीं, ऐसा वे कैसे कर सकते हैं? उसमें श्रीनिवास अपनी शर्त ऐसी रखता है, "सम्वादिनौ न चेदुक्तस्थानगौ शुद्ध कोमलौ" तो "यावर्धयव"स्वर नीचे लाकर "संवाद" साधें। तुम सम्वाद मोड़ने के लिये श्लोक का उपयोग कर रहे हो, परन्तु ध के लिये उसकी क्या आवश्यकता है? पाश्चात्य विद्वानों की शोध का लाभ उठाकर ३०० का "ग" लेने के लिये मैंने अनुमति दे दी है न? हमारा तो इतना ही कहना है कि उसको ग्रन्थों पर मत लादो। नवीन शोध जो योग्य दिखाई दे, उसको अवश्य स्वीकार करो।

प्र०—हां, आपका यह कहना प्रारम्भ ही से है तथा यह ठीक भी है। अच्छा, श्रीनिवास पण्डित और क्या कहते हैं?

उ०—वे आगे कहते हैं:—

नव त्रयोदशाप्यन्ये श्रुतीर्मध्ये व्यवस्थिताः।
आहुः सम्वादिनां चेत्रविवेकज्ञानसंभवाः॥

यह समझने योग्य है। सम्वादी स्वरों के बीच में ८ अथवा १२ श्रुति होंगी ऐसा कहते हैं, तथा कोई कहते हैं कि ९ व १३ होंगी। इस पण्डित ने इस मतभेद को दृष्टिकोण में रख कर ही कहा है। इस मुद्दे पर सिंहभूपाल ने ऐसी टीका की है:—

श्रुतयो द्वादशाष्टौ वा ययोरंतरगोचराः।
मिथः संवादिनौ तौ स्तः ×× इत्यादि॥

टीका—दंतिलेनाप्युक्तं । मिथः सम्वादिनौ ज्ञेयौ त्रयोदश नवान्तरौ । तथाहि । मतंगेनोक्तं 'सम्वादित्वं पुनः समश्रुतिकत्वे सति त्रयोदशनवान्तरत्वे चान्योन्यं बोध्यम् । तत्कथं । श्रुतयो द्वादशाष्टौ वा ययोरन्तरगोचराः । इति उच्यते ।

ययोः श्रुत्योः स्वरौ अवस्थितौ ते श्रुती विहाय मध्यस्थाः श्रुतयः द्वादशाष्टौ वा यदि पतंति तदा तयोः सम्वादित्वमिति अभिप्रायः । मतंगादिभिस्तु यो यस्य सम्वादी तस्य अवस्थानश्रुतिमपि मध्ये गणयित्वा त्रयोदश नवान्तर इत्युक्तं । इति न कश्चित् विसम्वादः ॥"

प्र०—यह हम समझ गये, उसमें कोई विसङ्गति नहीं । वहां तो इतना ही प्रश्न है कि आधार श्रुति नापी जायें अथवा नहीं ।

उ०—हां, तुम यह ठीक समझे । अच्छा, आगे चलें । श्रीनिवास कहता है:-

चतुर्भिस्तौ सरी प्रोक्तौ गनी द्वाभ्यां व्यवस्थितौ ।
चतुर्भिः पमधा युक्ता एवं श्रुतिविनिर्णयः ॥

प्र०—हूँ, यह नई कल्पना है । रे तथा ध चार श्रुति के मान लिये तो श्रुति २४ होगी ।

उ०—ठीक, यह उसी मत का उल्लेख है । हमारे कुछ पण्डित भी वैसा कहते हैं ! परन्तु यह पण्डित कहता है:-

अन्यांश्च विकृतान् कुर्यात् श्रुतिक्षेत्रविभागतः ।
प्रत्यक्षमानसिद्धार्थे शाब्दबोधपटुर्भवेत् ॥
एवं चोभयपक्षज्ञातमेलसमुद्भवाः ।
अनन्ता अपि रागा स्युर्गमकोद्ग्राहभेदतः ॥

प्र०—इसमें क्या संशय ? हम भी यही कहते । श्रीनिवास पण्डित बहुत बुद्धिमान प्रतीत होता है ।

प्र०—हां, सचमुच वह ऐसा ही था । उसका ग्रन्थ यद्यपि पारिजात का अनुयायी है तथापि वह उत्तर सङ्गीत के आधार ग्रन्थों में सम्मिलित करने योग्य है, इसमें संदेह नहीं ।

अभी अभी श्रीनिवास पण्डित के सैंधव लक्षण का वर्णन करते समय उसमें "मूर्च्छना" शब्द आया था । उसके सम्बन्ध में मैंने कहा था कि ये मध्यकालीन पण्डित मूर्च्छना का उपयोग कैसा करते थे, यह उस लक्षण से ज्ञात होता है । इस विषय में यदि दो शब्द और भी कहदूँ तो कोई हानि नहीं होगी । एक बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि इन मध्यकालीन पण्डितों के समय में "ग्राम" एक ही मानते थे । एवं प्राचीन ग्राम, मूर्च्छना, जाति का प्रपंच भी प्रचार में नहीं था । ग्राम तथा मूर्च्छना ये शब्द तो प्रचार में थे, परन्तु इनका उपयोग नवीन परिस्थिति के अनुरूप होता था । राग कैसे गाते थे, इस सम्बन्ध में श्रीनिवास कहता है:—

अथ शुद्धस्वरैरेव शुद्धैर्ये विकृतैरपि।
निर्मिता विकृतैरेव तेषां लक्षणमुच्यते॥
आदावुद्गृह्यते येन स तानोद्ग्राहसंज्ञकः।
आद्यंतयोश्चानियमस्ताने यत्र प्रजायते॥
स्थायी तानः स विज्ञेयो लक्ष्यलक्षणकोविदैः।
संचारी स तु विज्ञेयः स्थाय्यारोहविमिश्रितः।
यत्र रागस्य विश्रांतिः समाप्तिद्योतको हि सः॥

पहिला ही उदाहरण उसने सैंधवा का दिया है, तथा उसमें इन चारों भागों के नाम देकर वर्णन किया है, जैसे:—

शुद्धमेलोद्भवः पूर्णो धैवतादिकमूर्छनः।
आरोहे गनिवर्ज्यः स्याद्रागः सैंधवनामकः॥

धसारि मपम गरेसा निध धसा। इति उद्ग्राहः।

धसारि ममग रिरि प प्प मग रि रि निधपमग रिरिग रिसनिध धस। इति स्थायी।

धससरिस ममपपधसा मगरिरिगरिसा निधपधमप धमपमा गरिस रिममग रिरिपप मगरिरि पमगरि मगरिगरिस रिस निध धससा। इति संचारी।

सास्स धसा। रिमप निधप मप धम पामपमगरि। गारिग रिसरी सानिधधसा। इति मुक्तायी॥

अब इस लक्षण में "धैवतादिक मूर्छन" कहकर पहला उद्ग्राह भाग अर्थात् धैवत से प्रारम्भ की गई मूर्छना है। जैसे:—धसारे म प म। ग रे सा नि ध ध सा। इसमें राग लक्षण के अनुसार आरोह में ग तथा नि वर्ज्य किये हैं। यही प्रकार प्रत्येक राग की व्याख्या में दृष्टिगोचर होता है, जैसे:—

नीलांबरी तु संपूर्णा षड्जपूर्वकमूर्छना।
शुद्धमेले समुद्भूता बहुकंपमनोहरा॥

सरेगमपधनिसां। निधपमगरेस। उद्ग्राहः।

गम्गगरे। ममरे ग ग गा रेगरेसा रेस।। सासा पप्पम पप्प मपधनिधप मपधनिसा निधपमप धनिधप मपधनि मागगरेरे सारेसा। स्थायी इत्यादि। इस व्याख्या में पहिली उद्ग्राह तान, राग की मूर्छना समझनी चाहिये, ऐसा प्रकार दृष्टिगत होता है। दूसरा "रक्तहंस" राग देखो:—

गहीनो रक्तहंसः स्यात् आरोहे निस्वरोज्झितः।
अवरोहे धवर्ज्यः स्यात् षड्जपूर्वकमूर्छनः॥

स रे म प ध सा। स नि प म रे स। इति उद्ग्राहः। अहोबल भी हूबहू यही व्याख्या तथा यही मूर्छना कहता है। "आदावुद्गृह्यते येन सतानोद्ग्राहकारकः।" उसी का यह वाक्य श्रीनिवास ने लिया है। "मेल" मूर्छना के पहले की स्थिति है, अर्थात् मूर्छना का आधार "मेल", है मेल का आधार ग्राम, ग्राम का आधार शुद्ध स्वर तथा स्वरों का आधार श्रुति है, ऐसी शृंखला थी। राग मेल से निकलते थे तथा वे सम्पूर्ण, षाडव एवं औडुव ऐसे तीन प्रकार के होने से, मेल के लिये भी ये तीन रूप धारण करना आवश्यक थे। परन्तु "मेल" को सदैव षड्ज से षड्ज तक का विस्तार प्राप्त था तथा उसको वर्ण अथवा रंजकता का बन्धन नहीं था। इस कारण बीच में मूर्छना की योजना हुई होगी। मूर्छना की व्याख्या "आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा। तां मूर्छना तदा लोके आहुर्ग्रामाश्रयां बुधाः।" यहां "क्रमात्-स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्" इस प्राचीन मूर्छना की व्याख्या में थोड़ा सा अन्तर दिखाई देगा। मूर्छना को तब सात स्वर प्राप्त नहीं थे। इससे सहज ही तुम्हारे ध्यान में आयेगा कि प्रथम मेल अपने स्वरांतर, तीव्र कोमल स्वर व्यवस्था कायम करके देते थे, फिर आगे मूर्छना प्रारम्भ करने का स्वर निश्चित करके वर्ज्यावर्ज्य नियमों से आरोहावरोह कायम करते थे और तब राग निश्चित करते थे। उद्ग्राह तान कान में पड़ते ही राग कौनसा है, यह पहिचान लिया जाता था। फिर उसकी पूर्ति अंशादि स्वरों से होती थी। और फिर कुछ समय बाद यह बन्धन भी शिथिल हो गये, ऐसा दिखता है। यदि मूर्छना सम्पूर्ण हुई तो उत्तरमंद्रा, रंजनी आदि नाम स्वीकार करने में पण्डितों का कोई हर्ज नहीं था। यह नई मूर्छनाएं, प्राचीन मूर्छनाओं की तरह एक एक स्वर नीचे जाकर, अर्थात् नि, ध, प इस क्रम से नहीं की जाती थीं, कारण प्राचीन मूर्छनाओं का प्रयोजन भिन्न था। अब उस "मध्यषड्जं समारभ्य तदूर्ध्वस्वरमाव्रजेत्। पूर्वैकैकस्वरं त्यक्त्वा त्वारोहादिकमूह्यताम्॥" इस विचार शृंखला से ऐसा दिखाई देगा कि मेल अथवा स्वरांतर कायम होने के पश्चात उसी पंक्ति से केवल मूर्छना बदल कर अर्थात् विभिन्न ग्रह स्वर मान कर, वर्ज्यावर्ज्य नियम के के आधार पर गाने से राग बदल सकते थे।

प्र०—फिर आगे चलकर ये सब कैसे नष्ट होते गये?

उ०—यह निश्चय पूर्वक कैसे कहा जा सकता है? मूर्छना से ग्रह स्वर यद्यपि पृथक स्वीकार किया, तथापि उस स्वर को षड्जत्व प्राप्त नहीं था। मेल का भी स्वरूप नहीं बदलता था और उद्ग्राह तान में तो केवल वर्ज्यावर्ज्य नियम शेष रहता था। सारांश यह कि मेल का षाडवौडुवादिक स्वरूप, उसके तीव्र कोमलादिक स्वर तथा वर्ज्यावर्ज्य स्वर नियमों पर ही वस्तुतः सारा रागत्व अवलम्बित रहने लगा। इस कारण आगे चलकर उद्ग्राह तानों का इतना महत्व नहीं रहा, ऐसा दिखाई देता है।

प्र०—जब, सब कुछ राग मेल तथा वर्ज्यावर्ज्य स्वरों पर ही आधारित रहा तो फिर मूर्छना का कार्य?

उ०—मूर्च्छना मेल में विलीन होगई। सब रागों के आरोहावरोह वर्ज्यावर्ज्य स्वर-नियम के अनुसार षड्ज से निश्चित होने लगे, इस प्रकार धीरे धीरे "मूर्छना" का पर्याय "मेल होने लगा। यथा:—

मूर्छनाशब्दपर्यायो लक्ष्ये मेलः समादृतः॥ अभिनवरागमंजर्याम्।

नवीन परिस्थिति को लक्ष्य कर के ही यह कहा गया है।

प्राचीन काल में जब जाति का गायन था तब भी तो प्रथम ग्राम की स्वर पंक्ति, फिर मूर्छना, उसके बाद जाति, ऐसा क्रम था। उस समय मूर्छना की स्वर पंक्ति से ग्रहांशादि पसन्द करके जाति का गायन प्राप्त होता था, ऐसा अनुमान होता है। इस सम्बन्ध में हमारे अर्वाचीन पण्डित कहते हैं कि वाद्यों की सुविधा के लिये ऐसा करना पड़ा था। संभव है ऐसा हो, परन्तु इस अर्थ से तो सारा प्रसङ्ग ही उलट-पलट हो जायगा। सभी राग षड्ज से उत्पन्न होने निश्चित हुए, गायकों वादकों को सुविधा का ध्यान रखने की चिन्ता मिटी, प्राचीन पारिभाषिक शब्दों में निराली विशेषता पैदा हुई, ऐसा मानना पड़ेगा। सङ्गीत परिवर्तनशील है, अतः उसको अधिकाधिक सुलभ करने की प्रवृत्ति कलावन्तों में होनी स्वाभाविक ही है, यह मैं समय-समय पर कहता ही आया हूँ। अब हम सैंधवी पर और कुछ ग्रन्थमत देखें ?

प्र०—हां, अवश्य देखिये। मूर्छना के सम्बन्ध में जहां कहीं और आवश्यकता प्रतीत होगी वहां उस पर विचार कर लेंगे।

उ०—पुण्डरीक विट्ठल ने रागमंजरी में "सैंधवी" राग मालवकौशिक मेल में लिया है। उस मेल का वर्णन उसने इस प्रकार किया है:—

एकैकगतिकौ रिधौ निगौ मालवकैशिके।
अस्मिन् मेले मालवश्रीर्धन्नासी सैंधवी तथा॥

और राग की व्याख्या इस प्रकार की है:—

सत्रिका त्वरिपा नित्यं सैंधवी गमकैर्युता॥

हम रि, प वर्ज्य नहीं करते हैं, यह दीखता ही है। यह प्रकार हमारा नहीं, काफी थाट का ही है, ऐसा कह सकते हैं। पुंडरीक ने "काफी" का वर्णन नहीं किया है।

"रागमाला" नामक अपने ग्रन्थ में पुंडरीक "सैंधवी का उल्लेख इस प्रकार करता है:—

भैरव्यामेलजाता स्वरसकलयुता सत्रिका चन्द्रवक्त्रा
तन्वंगी पद्मनेत्रा विपुलसुजघना मत्तमातंगयानी।
मंदं मंदं वदन्ती बहुविधगमकैः सैंधवी रक्तवस्त्रा
युद्धे योधेश्वराणां विमलतरयशः प्रार्थयंती सदा सा॥

अर्थात् उसने "सैंधवी" भैरवी थाट में लिखी है। पुनः भैरवी वर्णन देखें तो वहां वह कहता है:—

धन्नासी मेलजाता स्वरसकलयुता चादिमध्यान्तषड्जा।
× × × ×
नृत्यन्ती गीयमाना द्रविडजनरता भैरवी सा प्रभाते।

तब "धन्नासी मेल" भी देखना पड़ेगा। वह मेल इस प्रकार कहा है:—

सर्वांगे भूषणाढ्या धनिरिग "विधुगा" सत्रिकास्तारिधाभ्याम्।
दुर्वाश्यामा × × ×
नेत्रांतर्बाष्पयुक्ता धवलसहचरी पूर्वजेराकनाम्नः ॥
पश्यंती गीतवर्त्मोषसि बहुधनदा धन्यधन्नासिका सा।

इससे "धनिरिगविधुगा" यह विशेषण हमारे लिये उपयोगी है। इससे धन्नासीमेल में रिध तीव्र तथा गनि कोमल निश्चित होते हैं, यह तुम समझ ही गये होगे क्योंकि पुण्डरीक के स्वर किस प्रकार पहचानने चाहिये, यह मैं पहले बता ही चुका हूँ।

प्र०—जी हाँ, स्थिति एवं गति का आपने जो स्पष्टीकरण किया था, वह हमें याद है। पुण्डरीक मूलतः दक्षिण का विद्वान होने के कारण उसने अपना शुद्ध मेल दक्षिण पद्धति का अनुसरण करके लिखा, ऐसा आपने कहा था। "धनिरिग" ये चार स्वर "विधुग" एक-एक गति चढ़े तो हमारा "काफी" थाट ही होगा।

उ०—ठीक कहा। "सैंधवी" का समय "सदा" शब्द में कहा है। 'सङ्गीत दर्पण' में दामोदर पण्डित ने इस प्रकार वर्णन किया है:—

षड्जग्रहांशकन्यासा संपूर्णा सैंधवी मता।
मूर्छनोत्तरमंद्राद्या कैश्चित् षाडविका मता।
रिहीना तु भवेन्नित्यं रसे वीरे प्रयुज्यते ॥

ध्यानम्।

त्रिशूलपाणिः शिवभक्तियुक्ता
रक्तांबरा धारितबंधुजीवा।
प्रचंडकोपा रसवीरयुक्ता
सा सैंधवी भैरवरागिणीयम्

मूर्छना ॥

सा रि ग म प ध नि स। अथवा। स ग म प ध नि स।

दर्पण के स्वरों के सम्बन्ध में मैं पहले बोल ही चुका हूँ। उसने स्वराध्याय'रत्नाकर' से लेकर रागाध्याय नया जोड़ दिया है, यह मैंने पहिले कहा था, वह उन्हें याद ही होगा। भावभट्ट पण्डित ने "सैंधवी" का वर्णन किया है, किन्तु उसने रत्नाकर, दर्पण, रागमाला, पारिजात इन ग्रन्थों की व्याख्या अपने ग्रन्थ में सम्मिलित करदी है, इस सम्बन्ध में बहुत कुछ मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ।

राजा सवाई प्रतापसिंह ने अपने "सङ्गीत सार" ग्रन्थ में "सैंधवी", "सैंधव" तथा "सिंधड़ा" ऐसे तीन प्रकार कहे हैं। "सैंधवी" भैरव की रागिनी कहकर उसका "जन्त्र" अर्थात् स्वरस्वरूप इस प्रकार बताया है:—

भैरव राग की पांचवी रागनी सैंधवी (संपूर्ण) धु प धु नि धु प धु म प रे ग रे सा।

यह ग्रन्थकार नये पुराने सब राग—(यावनिक हों, वे भी) शिवजी के मुख से वर्णन करवाता है। वह लिखता है:—"शिवजी नें उनरागनी में सों विभाग करिवे को। अघोर मुख सों गाय के पांचवी सैंधवी नाम रागिनी। भैरव की छाया जुक्ति देखि भैरवको दीनि। याको लौकिक में "सिंधू" कहत हैं। हाथ में त्रिशूल है शिवजी के भक्तो में जाको चित्त आसक्त है।

प्र०—ठहरिये? आपने जो दर्पण का श्लोक कहा था, यह उसका वर्णन हिन्दी भाषान्तर ही प्रतीत होता है?

उ०—हां, यह उसी का भाषान्तर है। तो फिर उसे नहीं कहेंगे। भैरव यदि अघोर मुख से निकला तो सैंधवी का वहां से निकलना ठीक ही है। भैरव जैसी रागिनी ही उससे निकलेगी। दर्पण में दो प्रकार से मूर्छना बताई है, अर्थात् राजा साहेब कहते हैं, "शास्त्र में तो यह सात स्वरन सों गाई है। स रि ग म प ध नि स। यातें सम्पूर्ण है। अथवा स ग म प ध नि स। यातें षाडव हूँ है। याको दिन के दूसरे प्रहर की दूसरी घड़ी में गावनो।" फिर अन्तिम आधार का वर्णन करते हुये कहते हैं, अनूपविलास में प्रशंस धैवत न्यासषड्ज।" अथात भावभट्ट ने दर्पण से वर्णन लिया, ऐसी परम्परा समझनी चाहिये।

प्र०—समझ गये। परन्तु सैंधवी के तीव्र कोमल स्वर कैसे तथा किसने निश्चित किये? राजा साहेब ने तो सैंधवी भैरवी थाट में कही है।

उ०—यह प्रश्न तुमको खूब सूझा। इसका स्पष्टीकरण राजासाहेब ने अनूपविलास का सन्दर्भ देकर किया है। भावभट्ट ने प्राचीन अर्वाचीन मतों की व्यवस्था भैरव का नादस्वरूप बताते हुए कैसे की थी, यह मैं तुमको भैरव राग समझाते समय बता चुका हूँ। तुम भूल गये हो तो पुनः स्मरण कराये देता हूँ। देखो:—

रत्नाकरमते प्राह भैरवस्तत्समुद्भवः।
धांशो मान्तो रिपत्यक्तः प्रार्थनायां समस्वरः॥
धैवतांशग्रहन्यासः संपूर्णः स्यात्समस्वरः।
तारमंद्रो यथा षड्जो गांधारः शुद्धभैरवः॥
रत्नाकरे द्विधा प्रोक्तः पूर्णौडुवप्रभेदतः।
तत्रौडुवेन हिंदोले तत्वभेदः प्रकथ्यताम्॥
जन्यजनकभेदोऽपि भो संगीतविशारदाः।
पारिजातस्यमतवत् श्रीनिवासमते मतः॥
भैरवे तु रिपौ न स्तो धैवतादिकमूर्छनः।

तत्रोक्तौ च गनी तीव्रौ कोमलो धैवतः स्मृतः ॥
रागार्णवमतेऽपि स्यात् रिपहीनोऽथ मांतगः ।
धैवतो विकृतो यत्र चौडुवः परिकीर्तितः ॥
दामोदरकृते ग्रंथे दर्पणेऽपीदमेव च ।
नृत्यादिनिर्णयमतं प्राह भावः प्रसन्नधीः ।
तत्र विट्ठलभट्टेन पूर्णषाडवभेदतः ॥

इस प्रकार आसानी से "रागमाला", "चन्द्रोदय", "राग विबोध" आदि ग्रन्थों के मत भाव भट्ट ने संकलित किये हैं, परन्तु उसके मन में फिर भी शंका रह गई, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि आगे वह कहता है:—

प्रसिद्धरागभाषाख्यलक्षणे समुदाहृते ।
ग्रहांशन्यासकल्पत्वे रिपहीने च भैरवे ॥
भिन्नषड्जेन रागेण कथं भेदः प्रतीयते ।
अभेदे पुनरुक्तिः स्याद्भावभट्टेन कीर्तिता ॥
विरोधोऽस्ति नवीनैस्तु हिंदोलभिन्नषड्जयोः ॥
कोमलत्वे धैवतस्य श्रीनिवासमते कथम् ।
नृत्यनिर्णयकारेण पंचमग्रहणं कृतम् ।
रिहीनत्वं कथं प्रोक्तं तस्य मूलं न दृश्यते ॥
पूर्णत्वे न विरोधोऽस्ति मतं तत्सर्वसंमतम् ॥

यह सब घोटाला है ! ऐसा तुम्हें प्रतीत होगा । परन्तु उस पण्डित को अपनी परिस्थिति मालूम थी । रत्नाकर, दर्पण आदि ग्रन्थ मेरी समझ में नहीं आये, ऐसा भला वह कैसे कह सकता था ? ग्रन्थकारों द्वारा ऐसा तो प्रायः होता ही आया है । दर्पण तथा रत्नाकरकार ने भी कहीं कहीं ऐसा नहीं किया है क्या ? इतना ही नहीं, हमारे वर्तमान ग्रन्थकार भी कहीं कहीं ऐसा नहीं करते क्या ? मेरी समझ से इसमें जो भाग उपयोगी हो उसे ग्रहण करलो तथा शेष जो अपनी बुद्धि के परे हो, उसको छोड़ दो । तुम तो यह जानना चाहते हो कि आज हम सैंधवी अथवा सिन्दूरा कैसे गाते हैं । ग्रन्थमत तो उस राग का पूर्व इतिहास है । उसमें कुछ सुबोध, कुछ दुर्बोध एवं कुछ कुबोध ऐसा होगा ही । भावभट्ट को पुण्डरीक के ग्रन्थ का अच्छा आधार प्राप्त था, इसके अतिरिक्त "पारिजात" तथा "हृदयप्रकाश" भी उसके पास थे । ये ग्रन्थ उसके समझने योग्य थे । तीनों ग्रन्थों में भावभट्ट के स्वतः के विचार दिखाई नहीं देंगे । शुद्ध भैरव को भैरवी थाट का पुण्डरीक ने कहा, तब सैंधवी को उसने भी कहा, ऐसा समझना चाहिये ।

प्र०—ठीक है, यह ध्यान में आगया । अब प्रतापसिंह का "सैंधव" राग कहिये ?

उ०—"सैंधव" राग, यह श्री राग का पहिला पुत्र "सङ्गीतसार" में कहा है। दर्पण में रागिनियों तक ही प्रपंच था। पुत्रों का वर्णन करते समय यह मेषकर्ण की "रागमाला" की ओर बढ़गये। उसमें वर्णन इस प्रकार मिलाः—

अश्वारूढः प्रवीरो दृढधृतकवचो रोषितः खड्गधारी
दुर्गादेव्येकसक्तो विशदपटधरो लोहिताक्षो बलीयान्।
सिंधूरागः प्रवीरान् प्रहरति समरे कोपितान् भूपतीनाम्।
एतादृग्लोकमध्ये प्रदिशतु सततं मंगलं सज्जनानाम्॥

रागमाला में स्वर आदि कुछ बताये नहीं गये, इसलिये राजा साहब ने 'यह राग सुन्यो नहीं' ऐसा स्वीकार किया है। यदि उनका अभिमत जानने की आवश्यकता हो तो वे कहते हैं:—

"शास्त्र में तो यह सात सुरन सों गायो है। स रे ग म प ध नि स। यातें संपूर्ण है। याको तिसरे पहर दिन को गावनों। यह तो याको वख्त है। संग्राम में चाहो तब गावो। आलापचारी सात सुरन में किये बरते।"

अब तुम पूछोगे कि यह शास्त्र कौन सा? इसका उत्तर उनके पास नहीं। अब उनका 'सिंधडा' नामक तीसरा प्रकार सुनिये। उस राग का रंगरूप छोड़कर केवल जंत्र ही हम देखेंगे। वह इस प्रकार है:—

नि़ रे, म प, ध नि़ ध प, ध म, ध प नि़ ध प, म रे ग़ रे सा।
नि़ सा, रे म प नि़ ध प म रे ग़ सा।

प्र०—इसी जन्त्र को उन्होंने अपने प्रचार में लिया है, ठीक है न?

उ०—हां, वैसा ही दिखता है। प्रचार की उपेक्षा करने से काम कैसे चलेगा? समय के सम्बन्ध में राजा साहब कहते हैं "याको रात्रिसमें गावनो। यह तो याको वख्त है। और दिन रात्रि में चाहो तब गावो" राजा साहब सुरेन्द्रमोहन टागोर ने अपने 'संगीतसार' में सैंधवी वा सिंधू नामक राग का स्वरूप इस प्रकार बताया है:—(नि़)सा (नि़)सा, सा (रे)रे ग़, सा रे म प, (प)प ध, म प म ग़ (रे)रे, सा नि़ ध प म, म ग़ रे सा। यह स्वरूप अपने प्रचार से मिलता जुलता है। उन्होंने शास्त्राधार भी इस प्रकार दिये हैं:—"षड्जग्रहांशकन्यासा पूर्णा सैंधविका मता। दर्पणे संपूर्णा सैंधवी ज्ञेया ग्रहांशन्यास पंचमा। मध्यान्हात्पूर्वतो गेया श्रृङ्गारे करुणेऽपि च। सङ्गीतसारे। सङ्गीत नारायण में भी सैंधवी संपूर्ण ही बतलाई गई है। उनके ग्रन्थों में शास्त्राधार तथा प्रचलित स्वरूप में बहुत जगह विसंगति प्रतीत होती है। यह बात मैंने उनसे प्रत्यक्ष मुलाकात में भी कही थी तो उन्होंने कहा "संगीतसार ग्रन्थ में जो कुछ संशोधन है वह उनके गुरु जी (कै. क्षेत्रमोहन स्वामी जी) का है। स्वयं राजा साहब का ग्रन्थ ज्ञान सीमित था, अतः वैसा ही उन्होंने कहा था। उनका दिया हुआ रागस्वरूप अपने प्रचार से बहुत कुछ मिलता है।

प्रिय मित्र ? राग चर्चा के प्रसंग में जिन जिन बातों की चर्चा मैंने प्रथम की है, उन्हीं को बारबार दोहराना पड़ता है। इसलिये तुम क्षमा करना। ऐसा मुझे करना ही पड़ता है, इसका कारण यह है कि मेल और तज्जन्य रागों की चर्चा में जो श्लोक बताना आवश्यक होता है, उस श्लोक का पुनरुच्चार प्रत्येक जन्यराग के कथन के समय में होता रहता है। रागों के भी कुछ साधारण नियम होते हैं। उन नियमों का उपयोग करते समय मूल श्लोक को दोहराना जरूरी होता है। सब कुछ तुम्हारी स्मृति पर छोड़ने की बजाय पुनरुक्ति करना मुझे सुविधाजनक मालूम होता है। मैंने ऐसा भी सोचा है कि तुम्हारी स्मृति जागृत करने के लिये हिंदुस्थानी सङ्गीत के स्थूल साधारण नियमों की संक्षिप्त आलोचना पुनः एक बार तुम्हारे सामने रखूँ ताकि आगे चलकर तुम्हें उससे अच्छी मदद मिले। नियम तो पुराने ही हैं, उन नियमों से तो तुम परिचित ही होगे। भिन्न-भिन्न प्रसङ्गों पर वे मैंने तुम्हें बताये ही हैं।

प्र०—फिर उनको अब बताने में क्या हर्ज है। हम तो बारम्बार इसके लिये आपसे आग्रह करेंगे। पुनरुक्ति की तो बात ही छोड़िये। इस विषय को समझाने के लिये आपने जो शिक्षण प्रणाली अपनाई है और जिससे हमें पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है, उसमें पुनरुक्ति होगी ही। एक ही श्लोक में जब बहुत से रागों का उल्लेख होता है, तब उन सबको विभिन्न प्रकारों में समझाने से पुनरुक्ति होती ही है, और उसमें हानि भी क्या है? हमें तो उससे लाभ ही होगा। अब आप साधारण नियम अवश्य कहियेगा। यह सिंदूरा वा सिंधोड़ा राग हमारी समझ में अच्छी तरह आ गया है।

उ०—अच्छा तो कुछ साधारण नियम बताता हूँ, सुनोः—परन्तु उनका कोई विशिष्ट क्रम है, ऐसा नहीं समझना। जैसे-जैसे सूझेंगे, वैसे ही कहता जाऊंगा। ग्रन्थाधार भी सब जगह नहीं बताऊंगा।

साधारण नियम

(१) राग में कम से कम पांच स्वर होने ही चाहिये। राग के वर्ग तीन ही मानते हैं। (१) औडुव (२) षाडव (३) सम्पूर्ण।

(२) किसी राग के आरोह में पांच या छः स्वर और अवरोह में सात स्वर अथवा इसके विरुद्ध भी स्वर होंगे, तो भी कोई-कोई ग्रन्थकार ऐसे रागों को 'सम्पूर्ण' कहते हैं।

(३) दो, तीन अथवा चार स्वरों के समुदाय को तान कहेंगे, राग नहीं।

(४) औडुवत्व, षाडवत्व तथा सम्पूर्णत्व ये सब प्रकार आरोह और अवरोह में होते हैं, इसीलिये प्रत्येक थाट अथवा मेल के नौ-नौ प्रकार सम्पूर्ण-सम्पूर्णादिक क्रम से होंगे।

(५) किसी भी राग में मध्यम और पंचम ये दोनों स्वर एक ही समय प्रायः वर्जित नहीं होंगे।

(६) सप्तक के पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग ऐसे दो भाग होते हैं। पूर्वाङ्ग का विस्तार क्षेत्र 'सा से प' तक और उत्तराङ्ग का 'म से सां' तक रहता है।

(७) हिन्दुस्थानी पद्धति के सब रागों के प्रमुख तीन वर्ग स्वरों के अनुसार किये गये हैं। जैसे:—(१) सन्धिप्रकाश राग (२) रे ध ग तीव्र लेने वाले राग (३) ग नि कोमल लेने वाले राग, इन वर्गों का राग समय से घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है।

(८) संधिप्रकाश रागों को सूर्योदय तथा सूर्यास्त के अवसर पर गाने का व्यवहार है। इसी लिये उनको संधिप्रकाश राग कहते हैं। इन रागों के पश्चात् 'रे ग ध' स्वर तीव्र लेने वाले राग और तत्पश्चात् ग नि कोमल लेने वाले रागों को गाया जाता है। संधिप्रकाश दो बार आता है, इसलिये राग क्रम भी दिन और रात में समान दिखाई देता है।

(९) हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति में मध्यम स्वर बड़ा ही वैचित्र्यदायक (महत्वपूर्ण) माना जाता है। उसकी सहायता से राग समय तो निश्चित होता ही है लेकिन उसके उपयोग से राग की प्रकृति (character) भी परिवर्तित की जा सकती है। मध्यम के इस गुण के कारण उसे 'अध्व दर्शक स्वर' ऐसी संज्ञा कभी-कभी देते हैं।

(१०) तीव्र मध्यम लेने वाले दिनगेय रागों की अपेक्षा रात्रिगेय राग ही अपने सङ्गीत में अधिकतर होते हैं।

(११) दोपहर के १२ बजे से रात के १२ बजे तक जो राग गाये जाते हैं, उनको 'पूर्वराग' और रात के १२ बजे से दोपहर के १२ बजे तक जो राग गाये जाते हैं, उनको उत्तर राग, ऐसी संज्ञा दी जाती है।

(१२) राग अपने-अपने नियत समय में गाने से ही उनकी शोभा बढ़ती है, ऐसा अपने समाज में समझते हैं। तथापि राज सभा और रंग मंच पर उन रागों को गाने के लिये छूट दी गई है।

दशदंडात्परं रात्रौ सर्वेषां गानमीरितम्।
रंगभूमौ नृपाज्ञायां कालदोषो न विद्यते॥

परन्तु,

यथाकाले समारब्धं गीतं भवति रंजकम्।
अतः स्वरस्य नियमाद्रागेऽपि नियमः कृतः॥

तात्पर्य यह है कि विशिष्ट समय पर विशिष्ट स्वर अधिक रंजक होंगे, ऐसा समझने से उन स्वरों के अनुसार राग का समय भी निश्चित होता है।

(१३) पूर्व रागों में प्रायः पूर्वाङ्ग का कोई स्वर वादी होता है। उत्तर रागों में वही उत्तरांग के पांच स्वरों में से वादी होगा। यह एक स्थूल नियम है। इसीलिये पूर्व रागों को पूर्वाङ्ग वादी राग तथा उत्तर रागों को उत्तरांग वादी राग कहते हैं।

(१४) सा म और प दोनों अङ्गों में होने से ये स्वर जहां-जहां वादी-सम्वादी होते हैं, उन रागों को सर्वकालिक राग कहते हैं।

(१५) राग को इन बातों की आवश्यकता है (१) थाट (२) आरोहावरोह (३) वादी (४) समय (५) रंजकत्व।

(१६) हर एक राग में वादी स्वर एक ही तथा सम्वादी स्वर एक ही होगा। वादी पूर्वाङ्ग में हो तो सम्वादी उत्तराङ्ग में होगा तथा सम्वादी पूर्वाङ्ग में हो तो वादी उत्तराङ्ग में रहेगा। इन दोनों में कम से कम चार स्वरों का अन्तर होता है। समश्रुतिक स्वर आपस में सम्वाद करते हैं, यह सामान्य नियम है। वादी और सम्वादी स्वरों को छोड़ कर बचे हुये स्वरों को उस राग में अनुवादी स्वर कहते हैं। राग में वर्जित होने वाले स्वरों को विवादी समझते हैं। विवादी स्वरों का रागरक्ति वर्धन के लिये उचित स्थान पर नियत प्रमाण से उपयोग करने की सुविधा रक्खी गई है। तानों में टेढ़े-मेढ़े खंड न आयें इसीलिये विवादी स्वर का उपयोग गायक करते हैं। प्रायः अर्धान्तरित स्वर अवरोह में विवादी के नाते लिये हुये दिखाई देते हैं। री के आगे ग॒, ग के आगे म, म के आगे मं, ध के आगे नि॒ ऐसे विवादी दिखेंगे। ऐसे स्वर कभी-कभी एक श्रुतिक भी होंगे। राग में वर्ज्य किये हुये स्वर का 'कन' नियत स्वर को देने से भी राग हानि नहीं होती।

(१७) यथा संभव एक ही स्वर के दो प्रकार (तीव्र और कोमल) एक के आगे दूसरा, ऐसे क्रम से लेने में नहीं आते। ऐसे रूप क्वचित् आये भी तो वे अपवाद स्वरूप समझने चाहिये।

(१८) हिन्दुस्थानी रागों की मार्मिक आलोचना करने से ऐसा दीखता है कि जिन रागों में 'म' तीव्र होता है, उनमें निषाद कोमल नहीं होता। दोनों 'म' तथा दोनों 'नि' लेने वाले राग भी हो सकते हैं।

(१९) संधिप्रकाश राग शांत और करुण तथा तदंगभूत रसों का परिपोषण करते हैं, ऐसा विद्वानों का अभिप्राय है। रे, ध ग तीव्र लेने वाले राग शृङ्गार और हास्य तथा तदंगभूत रसों को बढ़ाते हैं। कोमल ग नि वाले राग वीर, रौद्र व भयानक आदि रसों का पोषण करते हैं। इस सम्बन्ध में आजकल समाज में प्रयोग हो रहे हैं।

(२०) जिन रागों में सा, म, प, इन स्वरों को वादित्व प्राप्त है, ऐसे राग प्रायः अधिक गंभीर प्रकृति के समझे जाते हैं।

(२१) स्थूल दृष्टि से देखने में हिन्दुस्थानी पद्धति के रागों की रचना ही कुछ ऐसी होती है कि एक प्रहरोचित राग में से दूसरे पहर के राग में प्रवेश करते समय, पूर्व प्रहर के अन्त में गाये जाने वाले रागों में धीरे धीरे द्विस्वरूप स्वर आने लगेंगे। उदाहरणार्थ, कोमल गनि लेने वाले रागों में प्रवेश करते समय खमाज थाट के रागों में दोनों गन्धार निषाद लगने वाले राग आयोजित करने में आते हैं। ऐसे मध्यवर्ती रागों को ही 'परमेलप्रवेशक' यानी आगे के मेल में प्रवेश करने वाले राग कहने का व्यवहार है।

(२२) पूर्व राग और उत्तर राग पारस्परिक 'Counterpart' 'Reflexes' जवाब होते हैं; ऐसा जानकारों का मत चला आता है। गायक-वादकों की भाषा में 'बिलावल' दिन का कल्याण तथा 'सारंग दिन का कानड़ा, कभी-कभी सुनने में आता है। अभीतक राग स्वरूपों के विषय में विद्वानों का अनेक कारणों से एक मत नहीं मिलता। इसी कारण सिद्धांतरूप से यह सम्बन्ध निश्चित नहीं हुआ। किन्तु कुछ काल में ऐसा होना सम्भव होगा।

(२३) प्रत्येक थाट में से पूर्व तथा उत्तर राग उत्पन्न होते हैं। वादी और सम्वादी का परिवर्तन होने से एक अंग का राग दूसरे अंग में परिवर्तित करना संभव है। ऐसे रागों के स्वरूपों में भिन्नता अवश्य होगी।

(२४) प्रातर्गेय रागों में कोमल रे ध स्वरों का प्रावल्य होता है। वैसे ही सायंगेय रागों में तीव्र ग और तीव्र नि का होता है।

(२५) सायंगेय संधिप्रकाश रागों में कोमल मध्यम अल्प प्रमाण में होता है। वैसे ही, दिनगेय संधिप्रकाश रागों में तीव्र म का प्रमाण अल्प होता है।

(२६) रागों में स्वरों के अल्पत्व तथा बहुत्व के प्रमाण के आधार से अर्थात् उनके कम ज्यादा लगने से ही, स्वरों को प्रबल, दुर्बल अथवा सम कहते हैं। दुर्बलत्व का अर्थ वर्ज्यत्व नहीं होता।

(२७) रागविस्तार में तिरोभाव करके, रागरक्ति को बढ़ाने के लिये वादी स्वर के अतिरिक्त अन्य स्वरों को बीच-बीच में अंशत्व देते हैं। सावधानी से यह कार्य करने से रंजकत्व बढ़ता है। हिन्दुस्तानी सङ्गीत में कण का बड़ा महत्व होता है। कभी-कभी कणों से रागभेद भी दिखाया जाता है।

(२८) रात्रि के पहले प्रहर में गाये जाने वाले रागों में जब दोनों मध्यमों का प्रयोग किया जाता है, तब शुद्ध मध्यम का प्रयोग आरोह में और अवरोह में भी होता है। तीव्र मध्यम का प्रयोग केवल आरोह में और कम प्रमाण में होता है। ग्रन्थों में तो ये राग शुद्ध स्वर मेल में ही वर्णित किये हुये हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में, एक ही राग में दोनों मध्यमों का प्रयोग नहीं बताया, क्वचित् हुआ भी होगा तो उनके नाम भिन्न होंगे।

(२९) रात के पहले प्रहर के दोनों मध्यम वाले रागों में 'आरोहे तु निवक्र' स्याद्वरोहे गवक्रितम' ऐसा साधारण नियम देखने में आता है। ऐसे रागों में अवरोह में निषाद का दुर्बलत्व होता है।

(३०) द्विमध्यम रागों के अन्तरे में बहुत साम्य रहता है। उनकी परस्पर भिन्नता आरोह में ही स्पष्ट दिखाई देती है। सुनने वाले इन रागों को आरोह से ही तुरन्त पहिचान लेते हैं।

(३१) उत्तर रागों में अवरोह से रागस्वरूप जल्दी पहिचाना जाता है। पूर्व रागों में वही आरोह से स्पष्ट होता है। यह साधारण और स्थूल नियम समझना चाहिये।

(३२) "नि़ सा रे़ ग" इस स्वरसमुदाय को सुनते ही श्रोतागण संधिप्रकाश राग की कल्पना कर बैठते हैं और मध्यम स्वर की ओर बड़ी सावधानी से देखते रहते हैं।

(३३) सायंगेय रागों में तारषड्ज का बहुत्व दु:सह होता है। इसके विरुद्ध वही बहुलत्व प्रभात समय में रक्तिदायक होता है।

(३४) दोपहर के बारह बजने के बाद क्रमश: सा, म और प इन स्वरों का प्राबल्य बढ़ता है। यह क्रम मध्यरात्रि के पश्चात् पुन: देखने में आता है। अपरान्ह-कालीन रागों के आरोह में रि ध दुर्बल अथवा वर्ज्य होते हैं। दोपहर में रिषभ और निषाद प्रबल रहते हैं।

(३५) पूर्व रागों में 'सा व प' इन स्वरों का जो महत्व होता है वही उत्तररागों में 'प व सां' इन स्वरों का होता है। पूर्व रागों के पूर्वचतु:स्वरी (सा रे ग म) का कार्य उत्तरांग में उत्तरचतु:स्वरी (प ध नि सां) को सौंप दिया गया है।

(३६) मंद्र सप्तक में ही जिन रागों का विस्तार सराहनीय दिखता है उन रागों की प्रकृति गंभीर होती है। क्षुद्रगीतार्ह रागों में मंद्र सप्तक का विशेष कार्य भी नहीं होता और शोभादायक भी नहीं रहता, ऐसा गुणीजन भी कहते हैं।

(३७) राग में ध और प इन स्वरों की वृद्धि से राग पर प्रात:काल की छाया नजर आती है। उत्तरांग प्रधान रागों में वे स्वर अति वैचित्र्य प्रगट करते हैं। उनका महत्व कम करने के लिये पूर्वांग के गंधार से उनका योग अथवा संगति रखनी पड़ती है।

(३८) कोमल धैवत व तीव्र गंधार लेने वाले राग पंचम क्वचित् ही वर्ज्य करते हैं। तथापि जिन रागों में पंचम वर्जित होता है, उनमें प्राय: दोनों मध्यम लेने का व्यवहार दिखाई देता है।

(३९) कोमल निषाद लेने वाले रागों के आरोह में तीव्र निषाद का प्रयोग भी बार-बार किया हुआ दिखता है। यह प्रयोग काफी और खमाज रागों में अधिकतर किया जाता है।

(४०) तीव्र मध्यम लेने वाले रागों का अन्तरा प्राय: गंधार स्वर से ही आरम्भ किया हुआ दिखता है।

मित्रो! ऊपर बताये गये सामान्य नियम फ़िलहाल काफी हैं। आगे चलकर और कुछ कहेंगे। अपने संगीत में रागों की पहचान स्वरसंगति के ऊपर निर्भर होती है। स्वरसंगति से ही स्वरस्थान सूक्ष्म प्रमाण से आप ही आप आगे पीछे होते रहते हैं। यह बात मैंने पहले भी बीच-बीच में कही होगी। ऐसी स्वरसंगति आगे दिखाई देगी ही।

प्र०—अच्छा, तो अब क्या कहेंगे?

उ०—अब प्रचलित सिंधूरा अथवा सिंधोड़ा राग के विषय में कुछ ध्यान में रखने योग्य व्याख्या अर्वाचीन ग्रन्थों के अनुसार कहेंगे।

काफीमेलसमुत्पन्ना सैंधवी कथ्यते जने ।
आरोहणे गनित्यक्ता संपूर्णा चावरोहणे ॥
सपयोरेव संवादः कैश्चित्स रिधयोर्मतः ।
गानमस्याः समादिष्टं प्रायशः सार्वकालिकम् ॥
वैमत्यं दृश्यते लोके निषादपरिवर्जने ।
प्रयोगस्तत्स्वरस्येह चम्यते रोहणे मनाक् ॥
लक्ष्ये तु गायनाः प्रायः काफीमिश्रितरूपकम् ।
प्रदर्शयन्ति सैन्धव्या लोकरंजनवांछिनः ॥
सिंधोडानामिका सैव सैंधवीति परिस्फुटम् ।
रागपूर्वविबोधे स्यात्सोमनाथेन कीर्तितम् ॥
अगनिः सैंधवी प्रोक्ता स्वग्रंथे तेन सूरिणा ।
प्रतिलोमे तु संपूर्णा पारिजाते समीरिता ॥
काफीमेलसमुत्पन्नः सैंधवोधैवतादिकः ।
आरोहे गनिवर्ज्योऽपि हृदयेशेन कीर्तितः ॥

लक्ष्यसंगीते ।

काफीमेले सिंधुरोऽस्ति प्रसिद्धः ।
आरोहे गांधारवर्ज्योऽवरोहे ॥
पूर्णः षड्जो वाद्यमात्यः प एव ।
प्रेक्षावद्भिर्गीयते सर्वकालम् ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

कोमलाः स्युर्गमनय आरोहे गनिवर्जनम् ।
षड्जपंचमसंवादः सिंधुरो गीयतेऽनिशि ॥

चंद्रिकायाम् ।

अथ रागः सिंधुरोऽत्र षड्जांशक उदीरितः ।
पंचमस्वरसंवाद्यारोहे गांधारवर्जितः ॥
कैश्चिद्धैवतसंवादी ऋषभांशो निगद्यते ।
अयं षाडवसंपूर्णाः सर्वकालेषु गीयते ॥
धैवतर्षभकौ तीव्रौ मृदू गांधारमध्यमौ ।
उभावपि निषादौ स्तस्तीव्रकोमलसंज्ञकौ ॥

संगीत सुधाकरे ।

मपौ निसौ रिगौ रिश्च सनी धपौ मगौ रिसौ ।
सिंधुरा गीयते लोके पांशाऽऽरोहे गवर्जिता ॥
सरी मपौ धसौ रिश्च निधौ पमौ गरी च सः ।
सैंधवी कीर्तिता शास्त्रे सपसंवादशोभना ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

काफीकेही मेलमें चढत गनी नहिं होइ ।
पस संवादीवादि हैं रागसिंदूरा सोइ ॥

चंद्रिकासार ।

सिंदूरा राग का स्वरूप तो पहिले तुम्हें बताया जा चुका है । अब उसे दोहरायेंगे नहीं ।

प्र०—यह तो ठीक है । वह स्वरूप हमारे ध्यान में अच्छी तरह आगया है । अब आगे चलिये । लेकिन तनिक ठहरिये, इस सिंदूरा राग में एक छोटीसी सरगम भी बतादें तो बड़ी सुविधा होगी ?

उ०—बताता हूँ:—

सरगम—त्रिताल

म						नि						म			
रे	म	प	ध	सां	ऽ	ध	सां	ऽ	नि	ध	प	ग	ग	रे	रे
३				×				२				०			
रे	ग	रे	म	ग	रे	सा	ऽ	सां	नि	ध	प	म	ग	रे	सा।
३				×				२				०			

अन्तरा—

म	म	प	ध	सां	ऽ	ध	सां	ऽ	रें	गं	रें	सां	ऽ	नि	ध
३				×				२				०			
रें	सां	नि	ध	सां	नि	ध	प	म	प	ध	प	ग	ग	रे	रे
३				×				२				०			
रे	ग	रे	म	ग	रे	सा	ऽ	सां	नि	ध	प	म	ग	रे	सा।
३				×				२				०			

प्र०—यह सरगम तो ठीक है। अब आगे चलिये ?

उ०—मित्रो, अब काफी अङ्ग के तीन रागों में से अन्तिम राग 'पीलू' लेंगे। "पीलू" नाम किस भाषा से आया है यह बताना तो आसान नहीं। प्राचीन ग्रन्थों में मैंने इसकी खोज की किंतु वहां भी पता नहीं चलता। और अन्य बहुत से फ़ारसी राग संस्कृत ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, परन्तु उनमें 'पीलू' का निर्देश नहीं। मैंने अपने गुरुजी से भी पूछताछ की। उन्होंने कहा कि यह प्रकार अधिक प्राचीन नहीं। इतना ही नहीं, अपितु हम इसे राग न कहते हुये एक 'धुन' ही समझते हैं। जिस समय मैं रामपुर गया था, उस समय वहां के गुणी लोग इस राग में होरी और ध्रुपद भी गाते हुये सुने। मुझे तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं मालुम हुआ। झिंझोटी, काफी आदि रागों में ध्रुपद-धमार का अस्तित्व होता है तो 'पीलू' में ऐसे गीत प्रकार क्यों न होंगे ? इतना तो मानना पड़ेगा कि पीलू को राग कहने में बड़े-बड़े गायक-वादक मुँह टेढ़ा करते हैं। पीलू को राग मानने में हमारा तो कोई हर्ज नहीं। यह प्रकार विशेष लोकप्रिय हुआ है और इसका स्वरूप भी पहचानने में सुगम है तथा इसमें रंजकता भी काफी है, तो फिर "रंजयतीति रागः" इस आधार पर इसे रागत्व हम अवश्य देंगे।

प्र०—हां यह भी ठीक है। आपने 'मांड' नाम की धुन को रागत्व दिया ही था ?

उ०—हां ठीक है। जब इस प्रकार को व्यवस्थित नियमों से बांधकर हम समाज में गायेंगे और पहचानेंगे तो वैसा करना उचित ही होगा। पीलू एक आधुनिक प्रकार है और यावनिक है, ऐसा बहुत से लोगों का मत है। Captain Willard साहब ने कुछ ईरानी रागों के नाम बताये हैं,उनमें से एक नाम है "Puhluvee" किन्तु उसके स्वर आदि कुछ बताये नहीं। इसी के आधार पर हमारे संगीत में इस प्रकार को अपनाया हो या नहीं, यह कहना इस समय तो असम्भव है।

प्र०—खैर, अब इस राग को कैसे गायेंगे, इतना समझलें तो पर्याप्त होगा !

उ०—हां यह भी ठीक है। अब इस पीलू के विषय में एक स्वतन्त्र और विचारणीय मत तुमको बताता हूँ, ध्यान से सुनना ! रामपुर के कै० नवाब सादत-अलीखां साहब शाहजादे ने पीलू का स्वरूप तानसेन की परम्परा से प्राप्त, इस प्रकार समझाया था—

"सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि सां। सां नि ध॒ प म ग॒ रे॒ सा ॥"

प्र०—तनिक ठहरिये। यहां पर तो आधी भैरवी और आधा भैरव ऐसा ही कुछ प्रकार दिखता है न ? और ऐसा हुआ भी तो व्यंकटमखी पंडित के ७२ मेलों में से यह एक हो सकता है, ऐसा हमें लगता है।

उ०—मैं भी यही बात कहने वाला था। ऐसा मेल तो उस पंडित के संग्रह में अवश्य है। वहां पर उसका नाम 'ध्वनिभिन्नषड्ज' अथवा भिन्नषड्ज ऐसा है। उसका क्रमांक ९ है और उसके स्वर भी जो मैंने तुम से अभी-अभी कहे थे उसी प्रकार के हैं। दक्षिण के 'रागलक्षण' ग्रन्थ में इसी मेल को 'धेनुका' नाम से कहते हैं। यह

ग्रन्थ वहां पर प्रमाणिक समझा जाता है, यह तो तुम्हें मालूम होगा ही। उस ग्रन्थ में इस मेल के अन्तर्गत 'भिन्नषड्ज' 'शोकवराली' और ढक्का ऐसे तीन राग बताये हैं और उनके आरोह-अवरोह भी दिये हैं।

प्र०—वे किस प्रकार कहे हैं ?

उ०:—भिन्न षड्ज के आरोहावरोह इस प्रकार-सा रे ग रे प म प नि सां। सां नि ध प म ग रे सा। ध वर्ज्यं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे समग्रकम्। ऐसा लक्षण कहा है। शोक-वराली के आरोहावरोह-सा ग म ध नि सां, सां नि ध प म ग रे सा। आरोहे रिपवर्ज्यं चाप्यवरोहे समग्रकम्। ऐसा कहा है और ढक्का राग के आरोहावरोह:-सा ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा। ऐसे बताये हैं। लक्षण "रिवर्ज्यं वक्रमारोहेऽप्यवरो समग्र-कम्" ऐसा दिया है।

प्र०—ये तीनों नये राग हैं और इनके आरोहावरोह को देखा जाय तो ये प्रचार में बड़ी आसानी से लाये जा सकते हैं।

उ०—हां ठीक है। समय मिले तो तुम इस कार्य का प्रयत्न करना। रामपुर का मत मैंने बताया, अब अपनी ओर पीलू जैसा गाते हैं, वैसा ही मैंने उनको गाकर बताया। उनको यह प्रकार ज्ञात था, लेकिन उन्होंने इसे 'जिला पीलू' कहा। यह रंगीला मिश्रण केवल मनोरंजनार्थ कुछ मीरासी लोगों ने बनाया है, ऐसा उनका कहना है।

प्र०—आपने कौनसा प्रकार गाया था ?

उ०—वही, जो कि समाज में आजकल गाया जाता है। सुनकर तुम्हें बड़ा आश्चर्य होगा कि पीलू के इस सार्वजनिक प्रकार में बारह स्वरों का उपयोग करते हैं।

प्र०—लेकिन बारह स्वर एक के आगे एक इस क्रम से कैसे गाये जा सकते हैं ? और यह कार्य क्या अच्छा लगेगा ?

उ०—नहीं नहीं, एक के आगे एक, ऐसे वे नहीं आयेंगे। भिन्न-भिन्न टुकड़ों में ही उनको लाना पड़ेगा।

प्र०—फिर राग की पहिचान कैसे होगी ? हर टुकड़ा भिन्न स्वरों का होने से पीलू का टुकड़ा यह है, ऐसी पहिचान करनी तो मुश्किल होगी। यह कार्य तो कठिन ही दीखता है गुरू जी !

उ०—तुम तो व्यर्थ घबरा गये। पीलू एक अति सुगम और मधुर प्रकार समझते हैं। भिन्न-भिन्न टुकड़े उसमें जब लिये जाते हैं तब भिन्न-भिन्न रागों का आभास अवश्य होता है। वहां पर 'पीलू' को भिन्न-भिन्न रागों के रंग से सजा हुआ जानकर उस क्रिया की जानकार लोग प्रशंसा ही करते हैं।

प्र०—पीलू कौन से राग के रंगों से प्रायः सुशोभित करने में आता है ?

उ०—उसमें भैरवी, गौरी, भीमपलासी, खमाज आदि राग मिले हुए दीखेंगे किंतु उचित स्थान पर 'पीलू का' अंग और स्वरूप प्रकट करने से उस राग की स्थापना होती है। किन्तु मैंने अभी तक पीलू का मुख्य अंग तुम्हें बताया ही नहीं, इसलिये उसको अब कहता हूँ। पीलू राग में ऩिसा और ग॒ इन तीन स्वरों का बड़ा ही महत्व है, यह एक छोटा सा नियम अच्छी तरह याद कर लेना। पीलू का विस्तार मंद्र तथा मध्य सप्तकों में अधिकांश रहता है। तार सप्तक में जाते नहीं बनता ऐसा तो नहीं, लेकिन वहां पर मंद्र और मध्य सप्तक में किये हुए काम की पुनरावृत्ति ही रहती है। यद्यपि स्थान भेद से वह अच्छी लगती है, लेकिन इससे कोई विशेष वैचित्र्य वहां नहीं होता। गवैये लोग पीलू की बढ़त आलापों के ढंग से करते हैं और वह मीठी भी लगती है। खास बात तो पीलू में यह है कि "ऩि सा रे॒ ग॒" इस स्वर समुदाय को जहां तक हो सके टालने की कोशिश करते रहें।

प्र०—द्रुत गायन में तो ऐसा करना बड़ा ही कठिन होगा, ठीक है न?

उ०—हां, यह तो ठीक है, लेकिन उसका एक यह भी कारण है कि वैसा करने से आपका राग टोड़ी जैसा दिखने लगेगा। पीलू को टोड़ी से बचाने की बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है। कभी-कभी गवैया टोड़ी में इतना प्रवेश कर जाता है कि फिर उचित पीलू ढंग से बाहर आना उसके लिये मुश्किल हो जाता है।

प्र०—ऐसा कौन से स्वरों के कारण होगा?

उ०—आरोह में रिषभ लेने से वैसा होता है। 'ऩि, सा रे॒ ग॒ यह टुकड़ा टोड़ी राग को तुरंत सामने लाता है।

प्र०—हां, यह टुकड़ा बड़ा विचित्र है। गंधार तीव्र करने से तो पूर्वी राग का आभास होगा?

उ०—हां, तुमने ठीक ध्यान में रखा है। कहने का मतलब इतना ही है कि 'ऩि सा रे॒ ग॒' ऐसा प्रयोग पीलू में नहीं करना। पीलू की छाया थोड़े से ही स्वरों में दिखानी हो तो—ग॒, ऩिसा, सा ऩि, ध़ प़, ध़ ऩि सा" इस प्रकार दिखाना।

प्र०—क्या यही स्वर दूसरे रागों में नहीं आ सकते?

उ०—क्यों नहीं। किन्तु वे गौण स्थान में आयेंगे। मुख्य रागांग से उनका सम्बन्ध नहीं होगा। पीलू में निषाद का बड़ा महत्व है। बहुत सी तानें इसी स्वर के ऊपर समाप्त करने में आती हैं और वे उस राग का वैचित्र्य भी बढ़ाती हैं। ऩि सा और ग॒ इन स्वरों को तान के अन्त में लाकर विविध स्वरविन्यास इस राग में लाये जाते हैं। तुम को वैसी रचना बनाने के लिये मैं भी कहूँगा। आगे चलने से पहले इतनी बात जरूर कहूँगा कि रामपुर के कलाकारों का बताया हुआ यह स्वरूप अच्छी तरह याद करने से और दूसरे रागों के साथ मिश्रण करते समय उचित स्थान पर दिखाने से तुम्हारा राग बड़ा सुन्दर लगेगा। वह स्वरूप इस प्रकार है:—

"सा, ऩि सा, ग॒, ऩि सा, ऩि, ध़, ऩि सा, ग॒, म ग॒, प म ग॒, ऩि सा, ऩि सा, रे॒ सा, ऩि ध़, प़, प़ ध़ ऩि सा, ग॒, ऩि सा"

प्र०—इसमें 'रि' स्वर असत्प्राय सा नहीं दिखता क्या ? अवरोह में होते हुए भी इसका अल्पत्व क्यों है ?

उ०—अवरोह में इसको ग, रे सा, नि सा ग रे सा, नि, धृ नि सा, इस प्रकार लिया जाता है। इस स्वरूप में रिषभ का प्रमाण अन्य स्वरों की अपेक्षा बहुत ही कम होता है, इसमें संदेह नहीं। रामपुर के स्वरस्वरूप का महत्व इतना ही है कि किसी भी राग के साथ मिश्रण करने के पश्चात् पीलू की पुनः स्थापना करने के लिये इस स्वरूप में से किसी भी भाग का आविर्भाव करना आवश्यक होता है।

प्र०—तो फिर हम रामपुर के इस स्वरूप को ही पीलू के लिये स्वीकार करके चलें तो क्या हर्ज है ?

उ०—बाधा तो कोई नहीं,वैसे भी तुम उसे गाओ तो तुम्हारे राग को पीलू ही कहेंगे। किंतु प्रचार में पीलू नाम का और जो एक मिश्र प्रकार है, वह भी तुम्हारे संग्रह में होना आवश्यक है। मैं तुम्हें दोनों प्रकार बताऊंगा। आरोह में रिषभ न लाने की कोशिश तो करना ही, लेकिन और भी एक विशेषता देखना "नि सा, ग"ऐसा करने के पश्चात् "रे सा" अथवा "ग सा" इस तरीके से षड्ज से न मिलना। वहां पर 'ग' से फिर निषाद को लेकर षड्ज से मिलना अधिक सुविधाजनक होगा। नि, सा, ग, सा, नि सा। रे, ग रे सा, यह अशुद्ध नहीं है। पर मैं खास रागवाचक टुकड़ों से तुम्हारा प्रथम परिचय करा देता हूँ। ग, रे सा इस टुकड़े से तान अधूरी है, ऐसा आभास सुनने वालों को होगा। स्वभावतः जानकारों की वहां ऐसी कल्पना होगी कि गवैया अब मंद्र सप्तक में जायेगा।

प्र०—वहां श्रोताओं के मन में स्वरों का कौन सा भाग आयेगा ?

उ०—वह तो मैंने अभी कहा था। देखो वह इस प्रकार है-"नि सा, ग, रे सा, नि, सा, रे सा नि धृ, प, प, धृ नि सा, नि, सा, ग, नि सा" इतना होने के पश्चात् वह तान पूर्ण मालूम होगी।

प्र०—अच्छा तो रामपुर के मतानुसार राग विस्तार करके दिखायेंगे तो ठीक होगा ?

उ०—ठीक है ऐसा ही करूंगा। अब इस विस्तार में "सा, ग और नि इन स्वरों की बढ़त कैसे होती है इसे ध्यान से देखो:—

सा, नि, सा, ग, नि, सा, धृ, नि सा, सा, ग नि सा, प धृ नि सा, धृ नि सा, सा ग, नि सा। सा, सा नि, धृ नि, प धृ नि, सा, प धृ नि सा, म प धृ नि सा, नि, धृ नि, ग, नि, सा। नि धृ प, धृ, नि सा, धृ, नि धृ, ग नि, सा, नि, सा रे सा नि धृ प, ग, म ग, प ग, नि, सा। धृ नि सा ग रे सा, ग, रे सा, रे नि सा, धृ नि, प धृ नि, नि, सा, ग, रे, सा।

प्र०—यह स्वरूप बड़ा ही मनोरंजक प्रतीत होता है, और फिर यह स्वतंत्र भी तो है न ?

उ०—हां यह स्वतन्त्र है इसमें कोई सन्देह नहीं। यह स्वरूप सब जगह प्रसिद्ध होगा तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मेरे परम स्नेही मरहूम शाहजादे नवाब सादत अली खां ने इस राग में कुछ ध्रुपद और धमार इन्हीं नियमों से गाकर बताये थे और वे मुझे पसन्द भी आये थे। उन्हें मैं तुमको आगे चलकर सिखाऊंगा।

प्र०—अच्छा, अब मध्य और तार सप्तक की ओर जाना हो तो क्या करना पड़ेगा ?

उ०—वहां पर आरोह में रिषभ को छोड़कर चलना। रिषभ को आरोह में वर्जित करने का नियम स्पष्ट रूप से रामपुर वाले बताते नहीं, किन्तु तुम वैसा नियम सम्हालकर चलो तो तुम्हारा राग स्वरूप ज्यादा शुद्ध रहेगा। षड्ज के आगे इस प्रकार चलना—

म
नि़ सा, ग म प, म प ध प, ध प ध म प ग, प ग, नि सां गं, नि ध प, ध म प ग, प ग, नि़, सा नि़, सा रे सा नि़ ध़ प़, प़ ध़ नि़, सा, ग नि़, सा। यहां पर तार सप्तक में पहुँचने के लिये कितनी खींचातानी करनी पड़ती है, देखा ?

प्र०—ठीक है गुरु जी! यह स्वर विभाग अशुद्ध तो नहीं था, फिर भी अच्छा नहीं लगता, ऐसा क्यों हुआ ?

उ०—पीलू के स्वरूप में उसकी खास आवश्यकता नहीं है। गवैया सीधे तौर से और आसानी से उसमें नहीं चल सकता। इसीलिये मैंने कहा था कि मध्य और तार सप्तक में पीलू का विस्तार करने का मतलब यही है कि मन्द्र सप्तक में किये हुये कामों की केवल पुनरावृत्ति करना।

प्र०—अच्छा, यह करने के पश्चात् फिर नीचे के स्वरों से आकर कैसे मिलें ?

उ०—कुशल गायक मन्द्र सप्तक में स्वरों का विस्तार सुचारु रूप से करते हैं और तत्पश्चात् गान्धार पर ठहरते हैं। गान्धार से बड़े सफाई से तार सप्तक के गांधार से जाकर मिलते हैं और मन्द्र सप्तक में किये हुये काम को ही मध्य और तार सप्तक में दोहराते हैं। जब वे मध्य सप्तक के पंचम पर आते हैं, तब पंचम तथा गान्धार की संगति दिखाकर पुनश्च मन्द्र सप्तक में आकर मिलते हैं। अथवा जैसे मध्य ग से तार ग की तरफ जाते हैं, वैसे ही मध्य ग की ओर लौटकर आते हैं।

प्र०—यह प्रत्यक्ष करके बतायेंगे तो अच्छी तरह याद रहेगा।

उ०—अच्छा तो लो। पहले मन्द्र का विस्तार देखो:—

सा, नि़ सा, ग, नि़ सा, नि़, ध़, नि़ सा, ग, म ग, प ग, ध़ नि़ सा, ग, नि़ सा, नि़, सा रे सा, नि़ ध़, प़ प़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, म़ प़ ध़ नि़ सा, नि़ सा, ग, मग, पग, पग, ग, प ग, गं, नि, सां, नि, सां रें सां नि ध प ध नि सां, गं, ग, ध म प ग, नि़, सा।

प्र०—हां, अब ठीक-ठीक समझ में आया। अब आगे चलिये ?

म

उ०—यहां एक बात पर ध्यान रखना कि 'नि़ सा ग म प, मप' ऐसा करते समय गान्धार को मध्यम का कण देने से गान्धार आप से आप अपने उचित स्थान पर लगेगा।

प्र०—क्या यहां पर कोई स्वर संगति का वैचित्र्य है ?

म

उ०—हां, केवल नि़ सा ग ऐसा कहना और 'नि़ सा ग' ऐसा कहना इसमें थोड़ा

म

अन्तर है। 'नि़ सा ग म प, म प' यह भाग ध्यान से देखो, यह काफी थाट के उत्तरांग को सूचित करता है।

प्र०—आपका मतलब धनाश्री अङ्ग से तो नहीं ? वैसा हो तो वह अङ्ग अभी तक कितनी दूर और कहां था ?

उ०—वह मैं बाद में कहूँगा। आरोहावरोह में धैवत को छिपाने से धनाश्री अंग आप ही आप लुप्त हो जाता है। धैवत को आरोह में न लेने से पीलू अङ्ग बिगड़ कर रहेगा, किन्तु वही धैवत धनाश्री अङ्ग में आया, तो धनाश्री अङ्ग बिगड़ जायेगा।

प्र०—यह बड़ा मजा है। फिर पीलू को एक परमेलप्रवेशक राग कहना ही ठीक होगा ?

उ०—हां वैसा समझने में कोई हर्ज नहीं। अब पीलू का प्रचार में जो रूप है, उसको देखो। इस स्वरूप में दोनों रिषभ, दोनों गंधार, दो मध्यम, दोनों धैवत और दोनों निषाद उपयोग में लाते हैं।

प्र०—हां, आपने तो पहले ही कहा था कि इसमें बारह स्वरों का बड़ी कुशलता से प्रयोग गवैये लोग करते हैं। इस प्रयोग के कुछ नियम आदि हैं क्या ?

उ०—स्थूल नियम तो ऐसा है कि तीव्र निषाद और गन्धार को प्रायः आरोह में ही लिया जाता है।

प्र०—किन्तु आपने तीव्र निषाद अवरोह में लिया था न ?

उ०—वह स्वरूप अलग था। और जब वैसी तान इस मिश्र स्वरूप में लेने में आती है तब निषाद तीव्र होता है। यह पीलू प्रकार अलग-अलग टुकड़ों से बना हुआ है, ऐसा मैं बार-बार कहता रहा हूँ, याद है न ?

प्र०—हां आपने कहा था। और आपने यह भी बताया कि बीच-बीच में दूसरे दूसरे प्रकार गाकर भी पीलू का शुद्ध स्वरूप हर वक्त श्रोताओं के आगे उपस्थित करना जरूरी है। अच्छा तो तीव्र गन्धार और निषाद लेकर पीलू गाकर दिखायेंगे क्या ?

उ०—दिखाऊंगा ! तीव्र रिषभ भी किस तरह लेने में आता है देखो:—

नि़ सा ग, रे ग, म ग, प म ग, प ध म प ग, प ग, नि ध प, ध म प ग, प ग, नि़ सा, रे नि़, सा नि़ ध़, प़ ध़ नि़, ध़ नि़, सा, ग, नि़, सा। नि़ सा ग म प, ध प, ग, म,

धु प, नि ध प, म प, ग, नि़ सा, नि़, सा रे सा नि़ धु़ प़, म़ प़ धु़ नि़ सा, ग सा, प म प, ग, नि़ सा। नि़ सा ग म प ध प, नि नि ध प, सां नि ध प, सां, प ध प, ग, म, प ग, नि़ सा, सां, प, ध प, ग म ध प, ग, नि़ सा, नि़ नि़ सा रे सा नि़ धु़ प़, प़ धु़ नि़, धु़ नि़ सा।

प्र०—इस स्वरूप में रि, ग, ध, नि इन स्वरों के दोनों रूप आये हैं, किन्तु तीव्र मध्यम अभी तक दिखाई नहीं दिया।

उ०— वह बहुत अल्प रहता है। उसे लेकर दिखाता हूँ:—

नि़, सा, ग, रे, ग, प ग, धु, म प ग, नि़, सा, ग रे सा, नि़, सा रे सा, नि़, धु़ प़, मं़ धु़ नि़, धु़ नि़, सा, प ग, नि़, सा। तीव्र मध्यम को लेकर "मं प धु मं प मं ग" करने से तोड़ी का स्वरूप आगे आयेगा। प मं ग मं ग करने से मुलतानी नामक राग दीखेगा। "मं़ धु़ नि़ सा, धु़ नि़ सा, रे नि़ सा' ये पूर्वी थाट के स्वर हैं। 'नि़ सा ग म प, ग म प, ध प, नि ध प, सां, नि, ध प' ये स्वर खमाज के नहीं दीखते क्या? इसके आगे चलकर कोई गायक "ध प, ग म ग" ऐसा तिरोभाव करते हुये दिखते हैं।

प्र०—फिर तो सबका सब खमाज ही होगा। वहां से पीलू में लौटकर कैसे आवें?

उ०—वह तो सीधा है। आगे ऐसे चलते हैं 'ध प, ग म ग, सा ग, नि़, सा, ग, म, प ग, नि़, सा' अर्थात् 'प ग' संगति उनके काम आती है। 'प ग' संगति से पूर्व भाग में जो कुछ हुआ होगा उसका सम्बन्ध टूट जाता है। अब यह एक भाग देखो। 'नि़ सा ग म प, ग म प, धु प, नि धु प, ग म प धु म प, ग म ग, सा ग, म प ग, नि़, सा' और ये सब भुला देने के लिये पीलू का खास अङ्ग 'नि़, सा रे सा, नि़ धु़ प़, मं़ प़, धु़ नि़ धु़ नि़ सा, ग नि़ सा। पुनः यह सुनोः—'नि़ सा ग म प, धु प, नि धु प, धु म प ग' वे कौनसा भाग है?

प्र०—यह सब भैरवी थाट है न?

उ०—थाट ही क्या, सब भैरवी राग ही है। अपने यहां के गवैये इसमें छोटे-छोटे टुकड़े न लेतेहुए उसे भैरवी होने से बचाते हैं।

प्र०—कौन से टुकड़े?

उ०—'धु प, नि धु प' इसके आगे 'सां नि धु प' यह टुकड़े टालते हैं वैसे ही 'धु प, नि धु प, धु म प ग' इसके आगे 'रे सा' यह भाग भी छोड़ देते हैं।

प्र०—तो फिर इसका अर्थ यह है कि पीलू जितना मनोरंजक है, उतना ही गाने में मुश्किल है, यही न?

उ०—मेरे बताये हुये भागों को अच्छी तरह याद करने से और तिरोभाव अधिक होने के समय पीलू के खास अङ्ग का आविर्भाव करने से कोई मुश्किल न होगी, अपितु तुम्हारी प्रशंसा ही होगी। अपने यहां के छोटे-मोटे गवैये हमेशा पीलू गाते हैं और अच्छा गाते हैं। कोई गवैये व्यर्थ ही राग में ज्यादा समय बरबाद करते हैं और पीलू की खूबियां भी नहीं सम्हाल सकते। लेकिन ऐसे लोग बहुत कम हैं।

प्र०—यह ध्यान में आया। इस पीलू राग का अन्तरा किस प्रकार आरम्भ करते हैं? तार सप्तक में कैसे चलते हैं, इस तथ्य को हम सावधानी से देखना चाहते हैं।

उ०—प्रथम तो यह बता देता हूं कि गवैया अनेक बार तार सप्तक को छूता तक नहीं। सच पूछिए तो मन्द्र सप्तक के पञ्चम से लेकर मध्य पंचम तक ही इस राग की सारी खूबी है। ऊपर में 'धप, निधप' ऐसे छोटे-छोटे टुकड़े आए भी तो वे पञ्चम के विस्तार के नाते से आयेंगे, ऐसा समझने में कोई हर्ज नहीं। अब अन्तरा कैसे गाते हैं, देखो:—

नि सा, ग म प, प ध प, ग, म, ध प, प ग, नि सा, प, प, नि ध प, म प ग, नि सा ग म प, नि नि ध प, म, प ग सा ग म, प ग, नि, सा, नि ध प, ध नि सा, ग, नि सा। ऐसे भी टुकड़े कभी-कभी आयेंगे; सां, ध प, नि ध प, ग म ग, रें सां, नि ध प, ध प ग म ग, सा ग, म, ध प, ग, नि सा, प ध प ध नि नि सा, प ग, नि सा।

कभी-कभी मन्द्र सप्तक से ही गवैया अपना चीज प्रारम्भ करता है जैसे—प ध प ध, नि नि सा, नि सा ग नि सा, प ग, नि सा, नि, सा रे सा, नि ध प, ग, म ग, प ग, ध प म प ग, नि ध प, म प ग, प ग, नि सा, रे नि ध प, म प, ध प ध नि सा, ग नि, सा। अब मेरे बताये हुए सब नियमों को तथा खूबियों सम्हाल कर इस राग का विस्तार करके मुझे दिखाओगे?

प्र०—हां, कोशिश करके देखेंगे।

सा, नि सा, ग, नि सा, सा नि, ध नि सा, नि ध नि सा, प प ध नि सा, ध नि, प ध

नि सा, म प ध नि, ध नि सा, नि सा, ध, सा, ग रे सा, नि, रे नि ध, नि ध, म ध नि, ध नि सा, नि सा, सा ध, सा, ग, सा, प ग, सा, नि, सा रे सा नि ध प, ध ग, प ग, नि, सा, नि रे सा। नि सा ग, सा ग ध नि सा, ग, प, म प, ग, ध नि सा, ध म प ग, नि सा। ध प ध नि सा, ध सा, म प ध नि सा, ग, ग रे ग म प ग, प ग, ध,

प ध म प ग, नि ध प ध म प ग, प ग, ग, रे सा, नि, सा रे सा नि ध प, म प ध नि सा, ग, नि सा। नि सा ग, रे ग, म, ग, प म ग, ध ध प ध म प ग, नि नि ध प ध म प ग, प ग, सां, ध प ध म प ग, प ग, रे सा, नि, सा ग रे सा, नि, सा नि ध प, प ध नि सा, ग, नि सा। नि सा ग म प, ग म प, म प ध प नि ध प, सां नि ध प, नि ध प, ध प, ग, म, प ग, म, नि सा ग म, म, प ग, म, सां प ध प, ग, म, ध प, ग, नि सा। प ध नि सा, ध नि सा, नि सा, नि सा, म ग, नि सा, प, ग, म प ग, नि सा, नि नि सा रे सा नि ध प, म ध नि, ध नि, सा, ग, नि, सा। नि सा ग, म, ग, म, प ग, म, नि सा, ग म प ग, म, नि ध प, ग, म, सां नि ध प, नि ध प, सां रें सां नि ध प, नि ध प, ध प, ग, म, प ग, म, प ग, नि सा। सां, प ध प, ग म प, ग नि, सा, सां रें सां नि ध प ग म प, ग निं, सा। नि, सां, गं, नि, सां, नि सां गं, रें गं, मं गं, पं गं, नि सां, पं गं, नि, सां रें सां, नि ध प, मं ध नि, ध नि सां, गं, नि, सां, ग, नि, सा। ठीक तो है न?

उ०—मुझे ऐसा लगता है कि यह राग तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आगया है। क्योंकि यह एक आधुनिक प्रकार है, अतः प्राचीन संस्कृत ग्रन्थाधार के अभाव में प्रचलित संगीत के ऊपर लिखे गये ग्रन्थों का मत उद्धृत करता हूँ:—

काफीमेलसमुत्पन्नः पीलूरागो गुणिप्रियः।
आधुनिकस्तथैवासौ पारसीकोऽपि संमतः॥
गांधारः संमतो वादी संवादी सप्तमो भवेत्।
गानं चास्य समादिष्टं तृतीयप्रहरे दिने॥
मते केषांचिदप्येष भिन्नषड्जसुमेलजः।
आरोहे ऋषभत्यक्तो गनिसंवादमंडितः॥
यथायोगं मिलंत्यत्र स्वरास्तीव्राश्च कोमलाः।
संकीर्णं रूपकंत्वेतन्नित्यं स्याज्जनमोहनम्॥
काफी गौरी तथा भीमपलासी भैरवी क्वचित्।
रागेऽस्मिन् संमिलंत्याहुर्लक्ष्यलक्षणकोविदाः॥
प्रायस्तीव्रस्वराणां स्यात्प्रारोहे सुप्रयोजनम्।
विलोमे कोमलानां तन्नियमो भाति मे स्फुटः॥
क्षुद्रगीतार्हता पीलूरागस्य संमता जने।
मिश्ररूपेण रागोऽयं नित्यं सहजसुन्दरः॥

लक्ष्यसंगीते।

मतः पीलूरागः सकलमृदुतीव्रस्वरयुतो
मृदुगांधारोंऽशः सहचरति तीव्रस्तु निरिह।
प्रसिद्धः सर्वत्र प्रचुरतरसंचाररुचिरः
सदागेयः सर्वार्भकतरुणवृद्धैः परिचितः॥

कल्पद्रुमांकुरे।

सर्वेस्युः कोमलास्तीव्रा वादी तु मृदुगो मतः।
संवादी यत्र निस्तीव्रः पीलूरागः स सर्वदा॥

चंद्रिकायाम्।

कोमल तीवर सबहि सुर जहं गावत लग जाइ।
गनिवादी संवादितें पीलू राग बताइ॥

चंद्रिकासार।

निसौ गरी निसौ पमौ पगौ निसौ रिनी धपौ ।
पीलुर्लक्ष्ये श्रुता गांशाऽपराह्णे भूरिरक्तिदा ॥
निसौ गरी सनी सश्च निधौ पधौ निसौ च गः ।
धेनुकामेलनोत्पन्नाऽपरा पीलुर्गवादिनी ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—अब धनाश्री अङ्ग के राग लेंगे ?

उ०—हां, अब उन्हीं को लेंगे। इस अङ्ग के पांच राग मैंने पहले ही कहे थे, वे इस प्रकार हैं:—धनाश्री, धानी, भीमपलासी, पटमंजरी और प्रदीपकी। उनमें से पहले भीमपलासी राग का स्वरूप देखेंगे। कारण यह है कि 'धनाश्री' राग संस्कृत ग्रन्थों में स्पष्टतया बताया गया है, तथापि अपने यहां के संगीत व्यवसायी गायक उससे विशेष परिचित नहीं हैं। भीमपलासी नाम तो सबका परिचित है ही।

प्र०—अच्छा तो उसी को प्रथम बताइये ?

उ०—वहां पर भी एक मजे की बात यह है कि आप धनाश्री जब गायेंगे तब श्रोता आपके राग को भीमपलासी कहेंगे।

प्र०—तो फिर ये दोनों राग आपस में मिले-जुले हैं, ऐसा है ?

उ०—हां, अपने स्थूल स्वरूप में और चलन में समान ही दिखाई देते हैं। कैसे, सो देखो ! धनाश्री, धानी और भीमपलासी इन तीनों को दिन के तीसरे प्रहर में गाने का रिवाज है। प्रायः ये राग संधिप्रकाश रागों के पहले गाये जाते है। इन रागों में प्रवेश कराने वाला पीलू राग अभी-अभी तुमको सिखाया था। इन रागों के पूर्व अनेक सारंग प्रकार गाये जाते हैं। तीसरे प्रहर के रागों का एक महत्वपूर्ण चिन्ह है, आरोह में रिषभ और धैवत वर्जित करना।

प्र०—इन रागों के पूर्व, सारंग प्रकार गाये जाते हैं, ऐसा आपने कहा था। उन प्रकारों में से इन रि ध वर्जित करने वाले रागों में प्रवेश करने के लिये कौनसा राग बीच में रखा गया है ?

उ०—क्या तुम परमेलप्रवेशक राग के बारे में पूछते हो ? वैसा राग काफी थाट का पटमंजरी भी हो सकेगा। उसमें सारंग भी थोड़ा है और आगे आने वाले रागों की सूचना भी मिलती है।

प्र०—आपने काफी थाट का 'पटमंजरी' कहा, यह कोई और प्रकार है क्या ?

उ०—हां, एक पटमंजरी बिलावल थाट की भी सुनने में आती है। अच्छा छोड़ो उसे। सारंग में जैसा आरोह में रिषभ आता है, वैसा ही काफी थाट की पटमंजरी में भी आता है। इस राग के विषय में फिर कभी कहेंगे। आरोह में रिषभ और धैवत का वर्ज्य होना, यह एक लक्षण सदा के लिये ध्यान में रखो। जिन रागों में यह लक्षण होता है, उनमें और भी एक नियम दिखाई देता है।

प्र०—वह कौनसा ?

उ०—उन रागों में सा, म, प इन स्वरों का प्राबल्य दिन के तीसरे प्रहर में गाये जाने वाले रागों जैसा ही दिखता है। वैसे ही रात के तीसरे प्रहर में गाये जाने वाले रागों में दिखेगा; किंतु वहां पर षड़ज तार सप्तक का होगा।

प्र०—दिन के तीसरे प्रहर के रागों में वादी स्वर इन तीन स्वरों में से ही एक होगा न ?

उ०—हां, प्राय: उनमें से ही एक होगा। किसी धुन प्रकृति के राग में वह नहीं भी होगा। सा, म, प इन तीन स्वरों के वादित्व से ही राग की प्रकृति अधिक गंभीर होती है, ऐसी धारणा है। अब पहला सवाल ये है कि भीमपलासी नाम कैसे और कहां से आया !

प्र०—हां, यही तो हम पूछने वाले थे।

उ०—इस नाम के विषय में अपने कुछ गायक ऐसा कहते हैं कि यह संयुक्त नाम है और 'भीम' तथा 'पलासी' इन दो रागों के नाम से बना हुआ है।

प्र०—फिर ये दोनों राग भिन्न-भिन्न प्रकार से गाकर बतायेंगे न ?

उ०—राग को भिन्न करके बताना कोई मुश्किल नहीं। भीमपलासी राग के सर्वमान्य नियम तोड़ने से कुछ नया प्रकार तो उत्पन्न होगा ही। भीम और पलासी को जुदा-जुदा रखने की कुछ कोशिश होती रहती है। मेरे गुरु ने तो ऐसा यत्न नहीं किया, उन्होंने मुझे भीमपलासी राग पहले सिखाया था। पहले हम 'भीमपलासी' नाम को देखेंगे। मुझे लगता है कि यह नाम किसी देश विभाग का हो सकता है।

प्र०—परन्तु ऐसा नाम हमारे सुनने में आज तक नहीं आया ?

उ०—हां, मान लिया। फिर भी अपने संगीत में कानड़ा, सौराष्ट्र, मुलतानी, बंगाल आदि राग मुल्क के नामों से कायम हुये हैं। कोश देखने से पता चलता है कि 'पलाश' यह नाम 'मगध' और वराड़ प्रांतों का था, 'भीम' उसका विशेषण होगा। 'भीम' का अर्थ है शूर, पराक्रमी। भीम को अलग राग मानने वाले गुणी लोग बहुत थोड़े हैं। अब इस राग को भिन्न समझने वालों के दो मत देखिये। एक गवैये ने ऐसा बताया कि आरोह में तथा अवरोह में केवल कोमल निषाद को ही उपयोग में लाना, यह शुद्ध भीम का लक्षण है। उसीको फिर आरोहावरोह में तीव्र रखने से 'पलासी' राग होता है। दोनों निषाद अर्थात् आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल लेने से भीम-पलासी राग होगा।

प्र०—यह भेद उन्होंने अपनी कल्पना से ही किया होगा, ऐसा लगता है।

उ०—हां, मेरा भी यही मत है। मुझे याद आता है कि एक सङ्गीत समारोह में मधमाद और बिन्द्रावनी सारङ्ग रागों की चर्चा के समय निषाद का ही भेद खासकर बताया गया था। वहां संयुक्त नाम का तो कुछ सवाल ही नहीं था, किंतु बड़ी ही सूक्ष्मता से दोनों रागों का भेद निकालने की कोशिश हो रही थी। सारंग की चर्चा चलते समय

हम इस विषय में कुछ और कहेंगे। केवल निषाद की भिन्नता से ही भीम और पलासी के स्वरूप अलग-अलग हो जायेंगे, ऐसा कहना मेरी राय में उचित न होगा। वैसे भिन्न स्वरूप क्वचित् तुम्हारे देखने में आयेंगे।

और एक मत सुनने में आता है कि 'पलासी' राग में 'धैवत' स्वर को आरोह तथा अवरोह दोनों में वर्जित करना चाहिए।

प्र०—इस मत के अनुसार राग स्वरूप कैसे प्रदर्शित करें? जिनका यह मत है उन्होंने किस आधार पर अपना यह मत कायम किया है?

उ०—ग्रन्थाधार उन्होंने नहीं दिया। किन्तु गया से कुछ ही अन्तर पर छपरा नाम का गांव है। वहां के मठाधिकारी महन्त के पास एक पुराने संग्रह की नकल मैंने देखी। उस नकल में 'भीम' और 'पलासी' के अलग-अलग गीत थे, उनमें 'पलासी' के गीत में धैवत वर्जित था। उस गीत के स्वर ऐसे थे:—(सा रे ग॒ म प नि॒)

(सा) नि॒̣	सा	(म) ग॒	ऽ	म	प	ऽ	प	ऽ	प
०		३			×		२		
म	म	प	ग॒	म	प	म	ग॒	रे	सा
नि॒̣	सा	ग॒	ऽ	म	प	नि॒	प	नि॒	सां
प	म	ग॒	म	प	म	ग॒	रे	सा	ऽ।
०		३			×		२		

अन्तरा—

ग॒	म	प	नि॒	नि॒	सां	ऽ	रें	नि॒	सां
नि॒	सां	रें	सां	सां	नि॒	सां	प	म	प
रें	सां	नि॒	सां	ऽ	प	म	प	ग॒	म
प	म	ग॒	म	प	म	ग॒	रे	रे	सा।

प्र०—धैवत न रहने से यह एक स्वतंत्र प्रकार होगा, ऐसी मेरी राय है।

उ०—हां, तुम्हारी राय ठीक है। इस संग्रह में भीम राग के दो गीत उन्होंने दिखाये थे। एक गीत के शीर्षक के ऊपर स्वर लिखे थे 'सा रे ग॒ म प ध नि॒'।

प्र०—यह थाट काफी जैसा लगता है। किन्तु वर्ज्यावर्ज्य स्वरों का वहां पर क्या नियम बतलाया है?

उ०—वहां नियम कोई नहीं बताया, किन्तु लेखक ने आरोह में रिषभ और धैवत वर्जित किये थे। अवरोह में वे लिये गये थे। उस गीत के स्वर इस प्रकार थे:—

त्रिताल—

प															
ध़	म़	प़	प़	नि॒	सा	ऽ	सा	रे	नि॒	सा	सा	सा	नि॒	सा	ऽ
०				३				×				२			
म								म	म						
ग॒	म	प	म	प	ग॒	म	प	ग॒	ग॒	रे	सा	रे	नि॒	सा	ऽ
												म			
नि॒	सा	ग॒	म	प	ऽ	ध	प	प	ऽ	ध	प	ग॒	ऽ	म	प
								म	म						
नि॒	सा	म	म	म	ग॒	म	प	ग॒	ग॒	रे	सा	रे	सा	नि॒	सा।

यह एक नमूना बताया है। गीत के शब्द जानबूझकर छोड़ दिये हैं। और एक 'भीम' प्रकार उस संग्रह में था। उसमें दोनों गंधार थे। उस प्रकार के विषय पर बाद में विचार करेंगे। हाल में हम 'भीमपलासी' राग के बारे में ही बोलेंगे। 'भीम' 'पलासी' और 'भीमपलासी' ऐसे तीन भिन्न प्रकार मानने वाले लोग तुमको दिखाई देंगे। इतना ही अभी ध्यान में रखो। मेरे कहे हुए प्रकारों को मानने वाले तथा गाने वाले लोग तुमको बहुत कम मिलेंगे, इसमें कुछ संदेह नहीं। हम आज जो भीमपलासी का स्वरूप गाते हैं, उसकी जाति औडव-संपूर्ण है, यह मैंने कहा ही था। कारण उसके आरोह में रे, ध स्वर पूर्णतया वर्जित होते हैं। भीमपलासी राग में वादी स्वर मध्यम और सम्वादी षड्ज होता है।

प्र०—भीमपलासी किस प्रकार प्रारम्भ होता है?

उ०—वह इस प्रकार से शुरू करने में अच्छा दीखता है:—

नि॒ सा, म, म, म ग॒, प ग॒ म, ग॒ प, म, ग॒ रे सा; नि॒ सा, प़ नि॒, सा, म ग॒ रे सा, नि॒ सा, म, नि॒ सा म, पम, पग॒, म, नि॒ सा ग॒ म, प ग॒ म ग॒ रे सा। नि॒ ध प, म प, ग॒, म, सा म, ग॒ म, प ग॒, म ग॒ रे सा। म़ प़ नि॒, प़ नि॒, सा, नि॒ ध़ प़, म़ प़, ग॒ म़, प़ नि॒,

प़ ऩि सा, ऩि सा, म ग़ रे सा, ऩि सा, म। सा, ऩि सा, प़ ऩि, सा, म़ प़ ऩि, सा, ग़, रे सा, ऩि सा, म ग़ म प ग़ म, म़ प़ ऩि सा, म़, प़ ऩि सा, म पम, ध प म, नि ध प, ध म, प ग़, म, ऩि सा ग़, म प, ग़, म ग़ रे सा। सा ऩि, प़ ऩि, म़ प़ ऩि, प़ ऩि, सा, ऩि सा ग़ म प ग़, म ग़ रे सा।

प्र०—यह तो ठीक से समझ गये। अब अन्तरा कैसे शुरू होगा ?

उ०—वह प्रायः पंचम से या मध्यम से शुरू होता है।

जैसेः—प ग़ म, प नि, प नि, सां अथवा "म, प ग़ म, प नि प नि सां" उसके आगे ऐसे चलते हैं, नि सां, मं ग़ं रें सां, नि, सां, नि ध प, सां, प, ध प म, प ग़ म, ऩि सा, म, मं ग़ं रें सां, रें सां नि ध प, ध प, म प, ग़ म, सा ग़ म, नि ध, प, म, प ग़, म प ग़ रे सा।

अन्तरा के पश्चात् संचारी तथा आभोग आते हैं वे इस प्रकार हैं:—

सां सां सां सां सां सां

सा, नि नि, ध प, म प ग़ म, प नि प नि सां नि सां ग़ं रें सां, नि, सां नि ध प म, प ग़ म, ऩि सा, म, प ग़, म, प नि ध प, म प ग़ म, प ग़ रे सा।

म सां सां

प, ग़, म, प, नि, प नि, सां, नि सां ग़ं मं पं, ग़ं मं ग़ं रें सां, रें सां, नि ध प, सा, प ध प, म, प ग़ म, मं ग़ं रें सां, रें सां, नि ध प, म प ग़ म, प नि ध प, ग़ म, सा ग़ म, प ग़ म, प ग़, म ग़ रे सा।

संभवतः इतने विस्तार से तुम यह राग समझ गये होगे ?

प्र०—हां ! इसकी विशेषताऐं हमारे ध्यान में आ गई हैं। बीच-बीच में मध्यम स्वर को मुक्त रखने में बड़ी कुशलता प्रतीत होती है। यह राग मन्द्र सप्तक में अच्छा खुलता है यह भी हमने अनुभव किया है। जैसा कि आपने कहा था वैसे ही इस राग में सा, म, प इन तीन स्वरों का स्वरूप बड़ा ही चित्ताकर्षक है। और भी एक बात हमने देखी कि अवरोह में यद्यपि ऋषभ और धैवत स्वर दुर्बल थे तथापि उनका अस्तित्व न होने से भी काम चल सकता था। हमारे इस कथन में कुछ तथ्य है या नहीं ?

उ०—तथ्य बहुत है। तुम्हारी दृष्टि अब रागों के विषय में मार्मिक होती जारही है, यह देखकर मुझे बड़ा संतोष होता है। भीमपलासी राग में सा, म, प और नि इन चार स्वरों पर सब वैचित्र्य है। इसमें मध्यम मुक्त रखने की बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। "ऩि सा, म" ऐसा टुकड़ा लेकर 'म' पर विश्राम लेने से राग का मुख्य अङ्ग प्रादुर्भूत होता है। उसके आगे म ग़, ग़ म, प म, ग़, म प म, ग़, म ग़ रे सा, ऐसा करके तान समाप्त करने से भीमपलासी की रचना स्पष्ट होगी। फिर भिन्न-भिन्न स्थानों से मध्यम के ऊपर आकर ठहरने से राग विस्तार खुलने लगेगा।

प्र०—यह कैसे होगा, थोड़ा बतायेंगे क्या ?

उ०—हां, देखिये, म, ग़ म, नि़ सा, म, प, म, म़ प़ नि़ सा, म, ग़ म़ प़ नि़ सा,

म नि ध प, नि ध प ग़ म, नि़ सा म, सां प ध प, म, प ग़ म, प ग़, म ग़ रे सा।

जहां-तहां मध्यम को ही प्रधानता देने की कोशिश करनी है। निषाद स्वर यद्यपि विस्तार से आता है, तो भी वह उन चतुःश्रुतिक स्वरों की तुलना में अल्प ही होता है और वह स्वर राग की पूर्ति करने में भी असमर्थ है। इसलिये, वहां श्रोताओं के मन में ऐसी उत्कंठा रहती है कि गायक को अभी अपना संगीत वाक्य पूरा करना है।

प्र०—वास्तव में सङ्गीत कला बड़ी नियमबद्ध और गूढ़ है।

उ०—यही माना जायगा। कोई सी भी चीज लेलो, उसमें सङ्गीत के वाक्य सुव्यवस्थित रीति से गुथे हुए ही दिखाई देंगे। चाहे जिस तरह और चाहे जिस राग में मन चाहे स्वर लगा देने से 'सङ्गीत' नहीं हो जाता। प्रत्येक राग को समझने के लिये उसका स्थूल रूप कैसा है? उसके अवयव कैसे और कहां रखने चाहिए, उसमें आने वाले स्वर और उनकी सङ्गति, उसमें आने वाले मुक्त स्वर, गीत का प्रारम्भ कौनसे स्वर से होना चाहिये तथा कल्पना की पूर्ति के लिये कितने स्वरों के वाक्य आवश्यक हैं, विश्राम स्थान कौन से स्वर पर रखना, कौनसा वाक्य कितना लम्बा होना, चीज के शब्दों का मिलाप स्वर वाक्यों से किस प्रकार होना चाहिये, ताल के कौन से ठेके पर वह खंड आना चाहिये, आदि सब तथ्यों की ओर मार्मिक श्रोताओं को ध्यान देना आवश्यक है। दीर्घ अनुभव से ही ये बातें प्राप्त होती हैं। केवल उपदेश से इनका ज्ञान होना असंभव है।

कक्षा में गीत की शिक्षा देते समय गीत के वाक्यों का पृथक्करण (Analysis) करके छात्रों को धीरे-धीरे समझा देना चाहिये। गीत के मध्य भाग में जहां षड्ज पर कुछ देर तक न्यास करना जरूरी है, वहां पर स्वर वाक्य कैसे समाप्त हुआ यह बात भी बतानी होती है। वहां से नवीन वाक्यों का आरम्भ और गीत के अन्तिम वाक्य की समाप्ति, इनका मेल कैसे हुआ यह भी बताना आवश्यक है। किस राग का अन्तरा कैसे शुरू करने से अच्छा दिखेगा, इस विषय में कुछ साधारण नियम, उस राग के दसपांच गीतों का उदाहरण देकर मैं तुम्हें अवश्य समझाऊंगा। गीत की रचना व्यवस्थित रूप से अच्छे कलाकार द्वारा हुई है, इस तथ्य को जानकार लोग तुरन्त पहचान लेते हैं। कोई-कोई गुणी लोग तो शुरू के एक-दो सङ्गीत वाक्यों से ही गीत के आगामी खण्ड, तुरन्त कागज पर लिखकर दिखा सकते हैं।

प्र०—फिर तो अपने सङ्गीत में "Laws of musical composition" (वाग्गेयरचना नियम) पर एक छोटा सा शास्त्र तैयार किया जा सकता है, ठीक है न?

उ०—मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। प्रत्येक राग के रागांग वाचक भाग कौनसे हैं, यह समझे बिना अच्छी गीत रचना नहीं होती। इस भीमपलासी को ही देखिये, इसमें सा, म, प यह स्वर प्रबल हैं। लेकिन म और प यह दोनों स्वर समप्रमाण में लिये तो श्रोताओं को भ्रम होगा। वास्तव में वहां 'मध्यम' स्वर को अधिक आगे लाना है। वस्तुतः 'नि़ सा, ग़ म प नि, ध प, नि सां नि ध प म प म ग रे सा' इतने स्वरों से ही राग

के शास्त्रीय नियम की पूर्ति होती है ! किन्तु मध्यम को वादित्व देने के लिये उसको स्थान स्थान पर मुक्त रखकर अन्तरमार्ग (बीच-बीच के स्वरों के छोटे-छोटे समुदाय) रचना करनी होती है। इस कार्य के लिये 'नि़ सा, म, म ग़, म, प म, नि़ ध प म प ग़ म, नि़ सा, म ग़ रे सा म, नि़ सा म, प, ग़ म, प ग़, म ग़ रे सा' ऐसा चलना पड़ेगा। सा, म, नि़, सा, म, म़ प़ नि़ सा, ध प ग़ म, सा, प, ध प, ग़ म, नि़, ('सा' को जान बूझकर आगे लाना) म़ प़, नि़ सा, प़ नि़ सा, ग़ रे सा, नि़ सा, ग़ म, प ग़, रे सा, म, प ग़, रे सा (फिर मध्यम को आगे लाना) म, नि़ सा म, प म, ध प म, प नि़, ध प म, ग़ म, प ग़, म ग़, रे सा। प म ग़ रे सा ऐसी सरल स्वरावली मैंने आलाप करते समय जानबूझ कर टाल दीं। अन्तरा गाते समय ग़ म प नि़, सां ऐसा एक दम करना शोभा नहीं देता। वहां म प ग़, म, प नि़, नि़ सां, ऐसा करना होगा।

प्र०—आपका कहना ठीक है। इन्हीं बातों से तो रचना की अच्छाई बुराई का भेद सामने आता है। इसी प्रकार समय-समय पर सार्थक विवेचन रचना के साथ आप हमें समझाते रहेंगे तो हम उस विषय को अच्छी तरह से याद रखेंगे।

उ०—बीच-बीच में मैं वैसा अवश्य करूँगा। अब भीमपलासी के बारे में एक-दो मतभेद भी कह दूं। कोई कहेंगे कि भीमपलासी में रिषभ और धैवत स्वर कोमल होते हैं।

प्र०—ठहरिये ! उनके मतानुसार तो यह राग भैरवी थाट में डालना चाहिए ?

उ०—यह बात तुम उनसे स्पष्टतया पूछोगे तो वे उत्तर देने में कुछ हिचकिचायेंगे। भैरवी का नाम सुनते ही वे घबड़ायेंगे। भैरवी का स्पष्ट अवरोह करके आपने पूछा कि यही भीमपलासी का अवरोह है क्या ? तो भी वे चक्कर खाजायंगे, किन्तु सभी ऐसे होंगे सो बात नहीं।

प्र०—वे ऐसा क्यों करते हैं पंडित जी ? जबकि रि ध कोमल हैं और अवरोह में उनको लेने की आज्ञा है, तो फिर हां कहने में संकोच क्यों ?

उ०—राग ज्ञान यथार्थ न होगा तो वे जरूर हिचकिचायेंगे। लेकिन जिनको अवरोह में रि ध स्वरों का प्रमाण और उनका महत्व कम करने की क्षमता प्राप्त है वे नहीं घबड़ाते।

प्र०—कोमल रि ध मानने वाले लोगों के मत का कोई आधार है क्या ?

वे ऐसा किस आधार पर कहते हैं इस बातको मैं धनाश्री के विवेचन में कहूँगा। यहां विषयान्तर न करते हुये मैं एक मत भीमपलासी के बारे में और बताऊंगा। इस मत के अनुयायी लोगों का कहना है कि भीमपलासी में 'रिषभ और धैवत' न तो तीव्र हैं न कोमल।

प्र०—यानी फिर वही त्रिशंकु स्थानों की बात आई ?

उ०—हां, वे तो कहते हैं कि ये स्वर तीव्र स्थानों से थोड़े नीचे और कोमल स्थानों से कुछ ऊपर हैं।

प्र०—यानी २६६⅔ और ४०० आंदोलन के रि, ध स्वर। यही आपका मतलब है न ?

उ०—उनके कहने का यही अर्थ होगा। लेकिन वे स्वर उनको 'खड़े' लगाकर बताओगे तो उनको संतोष हो जायगा, इसकी आशा नहीं। वास्तव में यह रहस्य स्वरसंगति का है। रिध स्वरों का अवरोह में अल्पत्व होने से उनके ऊपर न्यास अच्छा नहीं होता "ग, रे, सा" अथवा "नि, ध, प" ऐसा करना वहाँ शोभा नहीं देता। म ग रे सा अथवा नि ध प ऐसे स्वर लगने से उनका स्थान कानों में स्थिर नहीं रहता।

प्र०:—तो फिर इस मत के बारे में हम क्या निर्णय करें ?

उ—तुम्हारी शंका कौन सी है ? अपनी पद्धति बारह स्वरों की है न ? आप भीमपलासी के रिध को तीव्र मान लीजिये। बात ऐसी है कि इन "त्रिशंकु" स्थान के 'रि ध' कहने वाले जब नि ध प, सां प ध प ऐसे टुकड़े जायेंगे तब वहां पर भी ये स्वर तीव्र ही होंगे। यह बात कहने में बड़ी विचित्र सी लगेगी; किन्तु प्रत्यक्ष में अनुभव करके देखिये ! यह एक मतभेद तुम्हें बताया है।

प्र०—और एक प्रकार आपने उस ग्रन्थ में देखा था, जिसमें दोनों गंधार और दोनों निषाद थे ?

उ०—हां, किन्तु वह प्रकार मेरी दृष्टि से उचित न होगा। वैसा प्रकार समाज में किसी के द्वारा 'भीम' कहकर गाया हुआ मैंने सुना नहीं। जिस गीत में दोनों गंधार लेने की कोशिश की थी वह भी भीमपलासी का बड़ा प्रसिद्ध गीत था। उस गीत में दोनों गंधार कभी सुनने में नहीं आये। काफी थाट के कुछ रागों में दोनों गंधार और दोनों निषाद का प्रयोग है; लेकिन वे स्वतन्त्र राग हैं, उन्हें मैं आगे चलकर बताने वाला हूँ।

प्र०—अच्छा, तो ये दो गंधार वाला भीम अपने काम का नहीं, ऐसा ही समझकर हम चलेंगे। आरोह में ध रि, वर्ज्यत्व का नियम तो सबको मान्य है ही, यह बात सदा ध्यान में रखने योग्य है।

उ०—हां, आरोह में तीव्र निषाद का प्रयोग क्षम्य होता है, यह मैंने कहा था। अब भीमपलासी के प्रमुख लक्षण देखो:—

यह काफी थाट का प्रसिद्ध राग है। इसके आरोह में रिषभ और धैवत वर्ज्य हैं तथा अवरोह सम्पूर्ण है। इसकी जाति औडुव-संपूर्ण है। वादी स्वर मध्यम है और स्थान स्थान पर उसको मुक्त (खुला) रखने से राग में रंजकत्व बढ़ता है तथा रागच्छाया स्पष्ट दीखती है। यह राग दिन के तृतीय प्रहर में गाया जाता है। आरोह में रि ध स्वरों का अभाव भी भीमपलासी के समय का एक लक्षण है। इस राग में 'प ग' और "म ग" स्वरसंगतियां बड़ी कुशलता से व्यक्त करने में आती हैं। "ग म" इस टुकड़े से मध्यम आसानी से मुक्त होता है। कोई गुणीजन "भीम" और "पलासी" को भिन्न-भिन्न स्वरूप मानते हैं। वैसी स्थिति में 'भीम' में धैवत वर्ज्य करते हैं। कोई कहते हैं कि

भीम में निषाद कोमल लेना चाहिये और भीमपलासी इस संयुक्त राग में दोनों निषाद लेने चाहिये; किन्तु यह मत अच्छा होते हुये भी सर्वमान्य नहीं है। प्रचार में 'भीमपलासी' नाम ही सुनने में आता है और उसमें दोनों निषाद रहते हैं। कभी-कभी गायक आरोह में भी कोमल 'नि' लेते हैं, ऐसा कृत्य नियम विरुद्ध भी नहीं होगा, क्योंकि यह काफी थाट का राग है। इसमें तीव्र निषाद का प्रयोग क्षम्य है। यही नियम खमाज थाट के रागों में लगता है, यह तुम्हें मालूम होगा ही। इस राग का निकटवर्ती राग "धनाश्री" है।

प्र०—वह तो हमें अभीतक नहीं बताया ?

उ०—आगे उसीको कहने वाले हैं। उसका विवरण अब संक्षिप्त रूप में करना होगा क्योंकि उसका भीमपलासी से बहुत निकटवर्ती सम्बन्ध है इसीलिये यह धनाश्री अङ्ग होते हुये भी मैंने सर्व प्रथम भीमपलासी का स्वरूप बताया है। भीमपलासी में ऋषभ, धैवत के विषय में कभी-कभी मतभेद होगा; किन्तु प्रचार में ख्यालियों के ख्यालों में वे स्वर तीव्र ही दिखाई देंगे। कोई तंतकार वे स्वर त्रिशंकु रूप में लगाने का प्रयत्न भी करेंगे, किन्तु तुमको अपने बताये हुए मत के अनुसार ही चलना चाहिए।

प्र०—ऋषभ और धैवत स्वर उतरे हुए लगाने की प्रवृत्ति क्यों होती है ? इसमें आपकी क्या राय है ?

उ०—यह बात तो तर्क से ही बताई जा सकेगी। कुछ ग्रन्थों में धनाश्री के वर्णन में उन स्वरों को कोमल कहा है।

प्र०—और कोई तीव्र कहते हैं क्या ?

उ०—हां ! आपको ऐसा लगेगा कि जब धनाश्री के स्वर चाहे जैसे हों तो भीमपलासी में उनको कोमल करने की क्या आवश्यकता है ? इस प्रश्न का उत्तर संक्षेप में देना हो तो हम यही कहेंगे, कि ग्रन्थोक्त 'धनाश्री' को ही हम भीमपलासी कहने लगे। यद्यपि यह उत्तर सर्वथा सन्तोषजनक नहीं है तथापि इस विषय पर हम आगे चर्चा करेंगे। अब भीमपलासी राग के बारे में प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थकार क्या कहते हैं, वह देखेंगे। भरत शार्ङ्गदेव के ग्रन्थों को देखने की तो आवश्यकता ही नहीं। दर्पण ग्रन्थ में भी भीमपलासी का उल्लेख नहीं। यह राग खास उत्तर का है, ऐसा मानते हैं। दक्षिण की ओर धनाश्री प्रसिद्ध है ही। उस प्रदेश में भी अब भीमपलासी गाने लगे हैं, किन्तु वहां उसे अभिनव प्रकार समझते हैं। राग तरंगिणी में भीमपलासी और धनाश्री यह दोनों राग स्पष्टतया भिन्न-भिन्न बताये हैं। उत्तर की तरफ यह राग कम से कम तीन चार सौ वर्ष से परिचय में होगा, ऐसा अनुमान है। किन्तु राग का मूल स्वरूप परिवर्तित हो गया है। लोचन पंडित के अनेक रागों का स्वरूप आज परिवर्तित हुआ दिखता है, यह मैंने पहले ही कहा था। लोचन पंडित ने "भीमपलासी" राग केदार संस्थान में बताया है।

प्र०—यानी अपने आज के बिलावल थाट में ?

उ०—हां, वैसा समझने में कोई हर्ज नहीं। केदार मेल लोचन ने इस प्रकार बताया है।

शुद्धसप्तस्वरास्तेषु गांधारो मध्यमस्य चेत्
गृह्णाति द्वे श्रुती गीता कर्णाटी जायते तदा ॥

अर्थात् शुद्ध स्वरमेल में से (काफी थाट से) उसने गंधार तीव्र करके पहले यह "कर्नाटी" मेल उत्पन्न किया। उसमें अभीतक निषाद शुद्ध यानी कोमल ही रहा, वह आगे बदला:—

एवं सति निषादश्चेत् काकली भवति स्फुटम् ।
वीणायां व्यक्तिमाधत्ते केदारसंस्थितिस्तदा ॥

प्र०—हां, यह तो अपना बिलावल थाट ही होता है। आपने यह हमें दुबारा बता दिया यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि आगे चलकर बारम्बार काम आयेगा। अच्छा अब आगे ?

उ०—आगे वह पंडित केदार मेल के रागों के नाम कहता है:—

केदारस्वरसंस्थाने श्रुतः केदारनाटकः ।
× × ×
छायानाटश्च भूपाली ज्ञेया भीमपलासिका ॥
× × ×

लोचन ने रागों के स्वरूप तरंगिणी में नहीं बतलाये। वे हृदयनारायण देव ने कहे हैं। संभवतः हृदयदेव ने 'लोचन' के 'संगीत संग्रह' ग्रन्थ में से उनको उद्भृत किया होगा। हृदय भीमपलासी के विषय में कहता है:—

गमौ पनी ससनिपा मगौ रिसनिसास्तथा ।
षाडवी भाव्यतां भव्यैर्भव्या भीमपलासिका ॥
ग म प नि स स नि प म ग रि स नि स ।

यहां पर स्वर केदार संस्थान के हैं, यही भेद है।

प्र०—किन्तु इस स्वरूप में धैवत नहीं दिखता। यह राग षाडव है, ऐसा ग्रन्थकार कहता है। इस स्वरूप में गंधार तथा निषाद कोमल करने से 'भीमपलासी' षाडव-षाडव स्वरूप की काफी थाट की रागिनी न होगी क्या ? वैसा एक प्रकार आपने कुछ समय पूर्व बताया भी था। वहां वह केवल 'भीम' इस नाम से था। अच्छा, हृदय ने 'पलासी' नाम का कुछ प्रकार दिया है क्या ?

उ०—नहीं, उसके ग्रन्थ में कहीं भी ऐसा प्रकार नहीं मिलता। इस श्लोक से इतना ही समझ में आता है कि भीमपलासी का एक षाडव स्वरूप था। आगे यह राग संपूर्ण

अवरोह का हो गया, तब से षाडव स्वरूप को भीम और षाडवसंपूर्ण स्वरूप को भीमपलासी कहने लगे, ऐसा अनुमान होता है।

प्र०—मूल स्वरूप में गंधार निषाद तीव्र थे और आगे वे कोमल हो गये इसलिये नये स्वरूप को "पलाश" देश का 'भीम' राग और शुद्ध भीम को भिन्न मानकर दोनों गंधार और निषाद मानने लगे होंगे ?

उ०—"क्या और कैसे हुआ" इस पर तर्क करने के लिये कौन मना करता है ? किन्तु हमें प्रचार की तरफ ध्यान देना है। तुम कहते हो वैसा किसी को अवश्य सूझा होगा ? केदार में मध्यम मुक्त रहता है तथा गंधार-निषाद दुर्बल रहते हैं, यह प्रसिद्ध ही है। काफी थाट के भीम में किंचित् केदार मिश्र करने से एक नया स्वरूप उत्पन्न होता है, उसे भी किसी ने गाया होगा। आज तो भीमपलासी में तीव्र गंधार कोई लेते नहीं। दोनों गंधार लेकर कोई भीमपलासी गाये तो उसे 'भीम' तो नहीं कहेंगे। किन्तु छोड़ो इन बातों को। हृदयप्रकाश में क्या कहा है यह मैंने ऊपर बताया। लोचन पंडित ने अपने 'राग संकर' नामक प्रकरण में भीमपलासी के अवयव रागों का वर्णन इस प्रकार किया है:—

धनाश्रीपूरियाभ्यां च भवेद्भीमपलासिका।

प्र०—इससे क्या ऐसा अनुमान नहीं होता कि हम भीमपलासी के स्वरूप के समीप आ रहे है ?

उ०—नहीं ! क्योंकि लोचन की धनाश्री कोमल गंधार की नहीं थी। प्रचार में जिसे हम 'पूरिया धनाश्री' कहते हैं, उस प्रकार की वह थी।

प्र०—पूरिया और धनाश्री मिलकर भीमपलासी होती है, ऐसा श्लोक में कहा है। 'भीमपलासी' तो शुद्ध स्वरों के केदार थाट में, हृदयदेव ने बताई है। हृदय, लोचन का अनुयायी है, ऐसा आपने कहा ही था। लोचन भी यही कहता है।

उ०—वहां जैसा कहा है, वह मैंने बताया। राग संकर के विषय में जो मतभेद हैं वह अब भी विवाद ग्रस्त हैं। अमुक राग के मिश्रण से अमुक राग होता है, केवल इतना कहने से अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। मिश्रण किस प्रकार होगा ? स्वरों में साम्य होगा या नहीं ? साम्य की सीमा केवल वादी स्वर तक रहेगी अथवा आरोहावरोह के स्वरूप तक सीमित होगी ? षडज परिवर्तन से भिन्न-भिन्न राग मुख्य राग में प्रदर्शित हो सकते हैं या नहीं ? भिन्न-भिन्न रागों के छोटे-छोटे टुकड़े रंजकत्व के लिये वहां मिलाये जा सकते हैं या नहीं ? मिश्रण के लिये भिन्न-भिन्न अंश बीच-बीच में बताते हैं या नहीं ? इत्यादि प्रश्न पैदा होते हैं। अपने ग्रन्थकार इसके बारे में मौन साध लेते हैं। ये मिश्रण सब ग्रन्थकार नहीं बताते, ऐसा भी कहना उचित होगा। कुछ रागों में ऐसे प्रकार अपने गायक करके दिखाते हैं किन्तु इन प्रयोगों के लिये उनकी कल्पना के सिवा दूसरा आधार नहीं दिखाई देता। यह संकर-कल्पना आगे उपयुक्त हुई तो अपने प्रचलित रागों के ढंग पर एक नया 'संकीर्ण प्रकरण' लिखना होगा। पिछले संकर (मिश्रण) मानकर उनकी सहायता से प्रचलित रागों का संशोधन करना तो अनुचित एवं अन्याय ही होगा।

सङ्गीत पारिजात, रागतत्व विबोध, रागमाला, राग मंजरी, सद्रागचन्द्रोदय, राग-लक्षण, स्वरमेल कलानिधि, राग विबोध, अनूपविलास, अनूपरत्नाकर आदि ग्रन्थों में भीमपलासी राग बताया नहीं। पं० व्यंकटमखी ने अपने चतुर्दण्डिप्रकाश में उपराग, धनराग, रक्तिराग, देशीराग ऐसे अनेक प्रकार लिखे हैं। उसमें कुछ परशियन नाम भी हैं, किन्तु 'भीमपलासी का' नाम नहीं। अतः प्राचीन ग्रन्थों में खोज करने से कोई लाभ नहीं। अब नये ग्रन्थों की ओर देखने से पहले प्रतापसिंह जी के 'सङ्गीत सार' की ओर झुकना होगा।

प्र०—उन्होंने भीमपलासी शिवजी के मुख से बताई है न?

उ०—इस प्रश्न का, उत्तर 'हां' कहकर देना पड़ेगा। और इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जब सभी रागों के उत्पादक 'शिवजी' हैं तो उनके भक्तगण उनके वश में होंगे ही, इसमें सन्देह की क्या बात है? किन्तु 'सङ्गीत सार' में जो भीमपलासी बतलाई है उसकी ओर तनिक ध्यान से देखिये। उसमें 'रि और ध' स्पष्टतया कोमल कहे हैं।

प्र०—फिर तो इस मत को आधार प्राप्त है, ऐसा कहना होगा। यह मत बिल्कुल काल्पनिक नहीं था?

उ०—मैंने उसे काल्पनिक नहीं कहा। उसका आधार प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में नहीं मिलता, इतना ही मैंने कहा था। अब तुम भीमपलासी का नियम पूछोगे। इस भीमपलासी को हम जयपुर मत की उतरी 'भीमपलासी' कहेंगे और क्या? तुम यह मत-भेद अपने संग्रह में रक्खो।

प्र०—लेकिन 'उतरी भीमपलासी' यह नाम सुनकर न जाने लोग क्या कहेंगे?

उ०—मैं नहीं समझता कि इस नाम से वे इतने विचलित होंगे। प्रचार में जब "उतरी बागेसरी" (कोमल बागेश्री), उतरी रामकली, कोमल भैरव, कोमल देसी, कोमल बसन्त,ऐसे नाम मौजूद हैं,और फिर बागेश्री, रामकली, भैरव, देसी, बसन्त ये नाम भी गुणीजनों में आदरणीय हैं, तब कोमल भीमपलासी क्यों नहीं मानी जायगी? मैं तो खुशी के साथ उसे अपने संग्रह में रखूंगा और तुम भी वैसा ही करो।

प्र०—तो कोई हर्ज नहीं। हां तो, प्रतापसिंह ने भीमपलासी कैसी बताई है?

उ०—वे कहते हैं। शिवजी ने उन रागन में सों विभाग करिवे को। अपने मुख सों बिहाग संकीर्ण धनाश्री गाई के। वांको भीमपलासी नाम कीनो।

प्र०—ठहरिये। इसमें बिहाग कैसे मिला? आरोह में रि, ध वर्ज्य तथा अवरोह सम्पूर्ण होने से ऐसा हुआ क्या?

उ०—यह उन्होंने नहीं बताया।" आगे भीमपलासी का स्वरूप बताया है उसमें उसके अलंकार, फूलों की माला आदि लिखे हैं। अनन्तर "शास्त्र में तो यह सात सुरन सों गाई है। सारेगमपधनि" "वह कौनसा शास्त्र है, यह पूछने की जरूरत नहीं।" "या को दिन में चौथे पहर में गावनी यह तो या को बखत है। और चाहो तब गावो।

या की आलापचारी सात सुरन में किये रागनी बरते। सो जंत्र सों समझिये।" जन्त्र इस प्रकार है।

प म, ध प म, गरे, ग, मगसा, निप, निसा, गमगसा।

कुछ भी कहो, यह स्वरूप स्वतन्त्र है, इसमें संदेह नहीं। उन्होंने तो कहा है कि भीमपलासी राग सम्पूर्ण है। अन्त में 'गमगसा' यह टुकड़ा भी खूब है।

प्र०—बीच में जो ऋषभ आया है उसे "धपमगरे" इस अवरोह के क्रम में समझना चाहिये न?

उ०—हां, वैसा ही समझना उचित है। अच्छा, आगे फिर "गम गसा" ये तान भिन्न प्रकार की हो जायेगी। ऐसा बहुत जगह करना पड़ता है। उदाहरण के लिये;:- श्रीराग गाते समय ऐसे कुछ टुकड़े आते हैं। मंप, धप नि, सां, निसां रें सां नि रें सां, निध, निधप, मंप निसांरें, रेंसा। यहां "ध निधप" ऐसा आरोह उद्दिष्ट नहीं। 'रेंसांनिध' यह वहां अवरोही तान रहती है। वैसा न करें तो नीचे पंचम पर आना पड़ेगा और फिर ऐसा होने से सङ्गीत का वाक्यक्रम भंग हो जायेगा और आगे के 'निधप' इस सुन्दर टुकड़े की आवश्यकता ही प्रतीत न होगी तथा गायक की कल्पना भंग हो जायेगी।

राजा साहब टागोर ने 'भीमपलासी' को सम्पूर्ण बताया है और उसके आधार रूप में विश्वावसू निर्मित "ध्वनिमंजरी" और कोहल पंडित का नाम दिया है। किन्तु उनके संस्कृत श्लोक न देने से वह आधार उचित है या नहीं? यह नहीं कह सकते।

प्र०—वे राजा साहब 'रि ध' स्वर कौन से मानते हैं?

प्र०—उनके राग विस्तार से, वे स्वर तीव्र प्रतीत होते हैं। उनका विस्तार इस प्रकार है—निसा, मग (रे) मप, सांनिधप, ममगमप, नि ध प म म (रे म ध), ग म, गग (रे), रे, सा, नि सा। म ग म ग (रे) रे, सा। यदि कोई स्वर राग में वर्ज्य भी हो तो उसका सूक्ष्म कण (Grace note) अगले स्वर को लगाने से राग हानि न होगो, ऐसा साधारण नियम ध्यान में रखना। ऐसे कण सूक्ष्म होने से खप जाते हैं और इनके संयोग से अन्य स्वरों की शोभा बढ़ती है। अपने सङ्गीत में खड़े स्वर अच्छे नहीं लगते, ऐसी एक धरणा है। अब मैं भीमपलासी के आधार कहता हूँ। इन श्लोकों को याद रखना:—

काफीमेलसुसंजाता प्रोक्ता भीमपलासिका।
आरोहे रिधहीनं स्यादवरोहे समग्रकम्॥
मध्यमांशग्रहन्यासा मुक्तमध्यममण्डिता।
गानमस्याः समीचीनमपराह्णे सुसंमतम्॥
वादित्वान्मध्यमस्यात्र धन्याश्रीर्नैव संभवेत्।
पूर्णत्वं प्रतिलोमे यद्धानीशंका कुतो भवेत्॥

मते केषांचिदप्येषा रिधकोमलमंडिता ।
केचिद्रिवर्जनं प्राहुरन्ये धैवतवर्जनम् ॥
एकैकश्रुत्यपकृष्टौ क्वचिद्रिधौ समीरितौ ।
लक्ष्यमार्गमनुसृत्य बुधः कुर्याद्यथोचितम् ॥
समतं श्रुतिभिन्नत्वे रक्तिभिन्नत्वमंजसा ।
मते मे वादिभिन्नत्वं पर्याप्तं लक्ष्म भेदकम् ॥
ग्रंथेषु रागभेदास्तु श्रुत्यायत्ता न लक्षिताः ।
तद्विधानं न चावश्यं रागभेदोपलब्धये ॥

लक्ष्यसङ्गीते ॥

प्रोक्ता भीमपलाशिका गमनिभिर्या कोमलैर्मंडिता
प्रारोहे रिधवर्जिता प्रकथिता पूर्णावरोहे पुनः ।
वादी मध्यम ईरितो भवति संवादी तु षड्जस्वरो
यामे चेह तृतीयकेऽहनि बुधैर्गीता मनोज्ञस्वरैः ॥

कल्पद्रुमांकुरे ॥

मनी तु कोमलौ गोऽपि समौ संवादिवादिनौ ।
आरोह न रिधौ साऽपराह्णे भीमपलासिका ॥

चंद्रिकायाम् ॥

तोखे रिध कोमल गमनि आरोहत रिधहीन ।
सम संवादीवादितें भीमपलासी चीन्ह ॥

चन्द्रिकासार ॥

निसौ मगौ मपनिमा निधौ पमौ गरी च सः ।
पलासी भीमपूर्वा स्यान्मध्यमांशाऽपराह्णगा ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ॥

'सुर तरङ्गिनी' नामक छोटे से हिन्दी ग्रन्थ के विषय में मैंने कुछ समय पूर्व कहा ही था। उसमें इनायत खां ने भिन्न-भिन्न स्थलों से "राग रागनी पुत्र वधू" इनका संसार संग्रहीत किया है। किसी भी राग के स्वर वहां स्पष्ट नहीं बताये, इसलिये ऐसे ग्रन्थों का सङ्गीत में कोई प्रत्यक्ष उपयोग नहीं होगा, तथापि उसने भीमपलासी के बारे में दो-तीन जगह जो कुछ लिख रक्खा है, उसका उपयोग स्थूल कल्पना के लिये कोई कर सकता है। वह कहता है:—

भैरवके द्वितीय मत सों पुत्रनके बर्नन–
ललित बसंतीके मिलै होइ पंचम राग।
ललितसु पंचमके मिलै पंचमललित सुहाग॥
षटरागरुकामोद मिल तिलक कहत अतिमोद।
मालसिरी रु बिलावरो कहिविभासहू कोद॥
जेतसिरी लहियत जहां मुलतानी हू जान।
भीमपलासी जानिये प्रगट सुहोमें मान॥

मालकोश परिवार

मारु शंकरभरनपुनि अरु केदार नट जान।
गंधारो बडहंस पुनि मालकोश सुत मान॥
जेतासिरी तिरवन कहे गौडगिरी उर आन।
भीमपलासी अरु कही गंधारी रस खान॥
मालकोशकी सुतवधू बरनी पंच बिचार।
मानुकुतूहल में कही लखि लीजे निरधार॥

"मानकुतूहल" ग्रन्थ में क्या है? यह जानने की मुझे विशेष इच्छा है, किन्तु अभी मुझे वह ग्रन्थ मिला नहीं है। वह लखनऊ के नवाब जानीसाहब के पास पर्शियन भाषा में है, उसकी प्रतिलिपि भी मुझे अभी नहीं मिली है। कदाचित् "दूर के ढोल सुहावने" ऐसा भी हो सकता है किन्तु एक बार ग्रन्थ देखने की इच्छा जरूर है। राजा मान की इच्छानुसार वह गवालियर में संस्कृत भाषा में लिखा गया था, ऐसा लोगों का विचार है। उसको देखना आवश्यक ही है सो बात तो नहीं, किन्तु उसे केवल ऐतिहासिक अन्वेषण की दृष्टि से ही देखना है। सुरतरंगिणी में अनेक रागों के जो संकर बतलाये गये हैं, उनकी उस ग्रन्थकार ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से केवल नकल की है, ऐसा स्पष्ट विदित होता है। उसका स्वराध्याय रत्नाकर के स्वराध्याय का हिन्दी अनुवाद है और विशेष कुछ नहीं है। सङ्गीतकल्पद्रुम में "भीमपलासी" के बारे में ऐसा कहा गया है:—

वीणां दधाना कमलायताक्षी गंभीरनादा सुरपुष्पगंधी।
कलामयी सा कमनीयमूर्तिभीमापलासी कथिता मुनींद्रैः॥
धनाश्रीधानिसंयुक्ता जेतश्री मिश्रता पुनः।
भीमापलासिका जायेत (जाता) करुणारौद्रसंयुता॥
पंचमांशग्रहन्यासा रिषभवर्जितस्वरा।
षाडवाऽसौ तु विज्ञेया सुष्टुभीमपलासिका॥

प नि सा ग प म ग सा मग सा नि ग री सा नि प नि सा ग प म ग सा। नि सा नि सा ग रे सा ग रे सा नि प म प नि सा नि प म ग रे सा नि प नि सा। इसमें धैवत वर्ज्य किया हुआ है। संभवतः इस उदाहरण को किसी और ग्रन्थ से लिया गया हो। मेरी राय में अब भीमपलासी के विषय में और कुछ कहना नहीं है।

प्र०—तो अब हम धनाश्री राग के बारे में विचार करेंगे।

उ०—हां, अब मैं उसी को कहूँगा। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि भीमपलासी राग की सविस्तार व्याख्या करने के बाद धनाश्री के ऊपर कुछ विशेष व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी; क्योंकि ये दोनों राग एक दूसरे के लगभग समान ही हैं; किन्तु आगे कुछ कहने से पूर्व एक महत्व की बात यह ध्यान में रखनी है कि धनाश्री माने पूरिया-धनाश्री नहीं है। पूरियाधनाश्री राग मैं तुम्हें पहले बता चुका हूँ। वह पूर्वी थाट का राग है। हम अब काफी थाट के धनाश्री राग पर विचार कर रहे हैं। तुमको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इस काफी थाट के धनाश्री राग को प्रारम्भ करते ही श्रोतागण उसको "भीमपलासी" कहने लगेंगे।

प्र०—तो ये दोनों राग एक दूसरे के इतने निकटवर्ती हैं क्या ?

उ०—हां वे ऐसे ही हैं; कुछ लोगों का तो यह मत है कि प्राचीन जो धनाश्री राग काफी थाट का था, उसी का नाम प्रचलित सङ्गीत में "भीमपलासी" पड़ा है।

प्र०—उनके इस कथन को कुछ प्रमाणिक आधार प्राप्त है क्या ?

उ०—यह बात तो सच है कि अपने गायक वादकों से कोई यदि धनाश्री गाने या बजाने की फरमाइश करे तो वे तत्काल पूरियाधनाश्री गाने लगते हैं; किन्तु वे काफी थाट का स्वरूप नहीं गाते। कुछ प्राचीन हिन्दू गायक धनाश्री कोमल गंधार और निषाद लेकर गायेंगे; किन्तु फिर उनको पृथक "भीमपलासी" गाते नहीं बनेगी। तथा उन दो रागों में भेद कहां और कैसा है इस तथ्य को भी वे नहीं बता सकेंगे क्योंकि वादी-संवादी का तत्व उनको किसी ने समझाया नहीं। अस्तु, अब धनाश्री का वर्णन आगे करने से पूर्व उसके दूसरे नामों के विषय में भी बतलाना चाहिये। धनाश्री को कहीं कहीं धन्याश्री, धन्नासी, धन्नासिका ऐसे नाम भी दिये गये हैं। ये नाम एक ही रागिनी के हैं, ऐसा हमेशा ध्यान में रखना चाहिये। कभी-कभी श्लोक छन्द पूर्ति के लिये एक दो अक्षर घटाने-बढ़ाने पड़ते हैं। धनाश्री व भीमपलासी में जो समानता है उसे अब बतलाता हूँ। धनाश्री राग दिन के तृतीय प्रहर में गाते हैं। उसके आरोह में रिषभ व धैवत वर्ज्य हैं; क्योंकि उस प्रहर के सब रागों का यह एक विशेष लक्षण है। अवरोह संपूर्ण है; अर्थात् धनाश्री का आरोहावरोह नि॒ स ग॒ म प नि॒ सां। सां नि॒ ध प म ग॒ रे सा, ऐसा है। इस राग का विस्तार तीनों सप्तकों में होता है। जो काम मन्द्र व मध्य सप्तक में हम लोग करते हैं; उसी को आगे मध्य और तार सप्तक में किया जाता है। अब भीमपलासी प्रथक कैसे होगी उसे भी तुम पूछना चाहोगे ?

प्र०—हां, उसी को पूछने का विचार था ?

उ०—उसका उत्तर "वादिभेदे रागभेदः" इस वाक्य में मौजूद है, और इस भेद को समझने के लिये इन दोनों रागों के अन्तरमार्ग कुछ अलग-अलग रखने पड़ेंगे। "अन्तरमार्ग" यह नाम भी प्राचीन ही है। जब प्राचीन काल में राग पहचानने के लक्षण मैंने बताये थे उसी समय अन्तरमार्ग का भी एक लक्षण बताया था। अन्तरमार्ग को राग का पूर्ण चलन समझकर चलने में कुछ कठिनाई होगी, ऐसा मुझे नहीं प्रतीत होता।

अन्तरमार्ग के लक्षण कल्लिनाथ पंडित इस प्रकार बताते हैं:—

न्यासादिस्थानमुज्झित्वा मध्ये मध्ये ऽल्पतायुजाम्।
स्वराणां या विचित्रत्वकारिण्यंशादिसंगतिः॥
अनभ्यासैः क्वचित्क्वापि लंघनैरेव केवलम्।
कृता साऽन्तरमार्गः स्यात् प्रायो विकृतजातिषु॥

रत्नाकरे।

राग के चलन में जो हम छोटे-छोटे स्वरविन्यास बनाते हैं, उन्हें तुम देखते ही हो। और कभी कभी कुछ स्थानों पर कुछ स्वर छोड़कर जो तानें बनाई जाती हैं वे भी सब तुम्हें मालूम ही हैं। वस्तुतः वहां वे स्वर वर्ज्य नहीं होते, अपितु वह कृत्य वैचित्र्य बढ़ाने के लिए हम लोग करते हैं। प्राचीन समय में ग्रह-न्यास के नियम बहुत कड़े थे, उनको अपने अपने स्थानों पर प्रबन्धों में प्रयोग करना पड़ता था, इसलिये श्लोक और टीका में उनका उल्लेख है; परन्तु प्रकृति सङ्गीत में अर्थात् अपने देशी सङ्गीत में वे नियम शिथिल हो जाने के कारण अन्तरमार्ग को न्यासापन्यासादिकों का बन्धन अब नहीं रहा, अतः वह भाग छोड़ देना पड़ेगा। "अन्तरमार्ग" प्रत्येक राग में स्वतः होता था, जैसे हम रागविस्तार करने लगें तो वहां भी अन्तरमार्ग अपने आप होगा ही। अर्थात् रागों के विशिष्ट लक्षण, से वादी सम्वादी का विचार, भिन्न-भिन्न स्वरसङ्गति, भिन्न भिन्न स्वरों का जोड़ना तथा छोड़ना, यह सब कृत्य ही अन्तरमार्ग है, और क्या?

प्र०—यह हमारे ध्यान में आ गया। ऐसा संकेत पहिले भी थोड़ा सा आपने दिया था। हर एक राग के चलन में स्वरसमुदाय तथा वादी-संवादी को बार-बार प्रयोग करने से ऐसा होगा ही, इसे हम भली भांति समझ गये। अब आगे बताइये?

उ०—धनाश्री का वादी स्वर पंचम व संवादी षडज है। पंचम वादी होने से मध्यम, जो उसके पास का स्वर है, उसको मर्यादित करना ही पड़ेगा।

प्र०—इन दोनों रागों में आने वाली अनेक तानें लगभग एक सी ही होती होंगी?

उ०—वे होंगी ही! किन्तु एक महत्व की बात ध्यान में यह रखनी चाहिये कि धनाश्री में जहां तक बने वहां तक 'मध्यम' स्वर को मुक्त नहीं रखना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से पंचम स्वर गौण होने लगता है। मध्यम स्वर वर्ज्य न होने से और तीसरे पहर का राग होने से यदि मध्यम कुछ अधिक लगने वाला हो, तब भी सब राग का मार्गदर्शक उसीको बनाना ठीक न होगा। प ग़ और म ग़ संगति इस राग में भी

दिखाई देंगी, किन्तु फिर भी उसमें 'प ग' संगति अधिक आगे आनी चाहिये। 'म ग रे स' ऐसी सम स्वरों की तान दोनों रागों में आवेंगी। 'नि सा ग म प' ये तान भी दोनों रागों में आवेगी 'नि ध प, सां नि ध प' ये स्वरसमुदाय तो साधारण हैं ही।

प्र०—तो फिर इन दोनों रागों को अलग-अलग रखने में बहुत कुशलता की आवश्यकता होगी, ऐसा प्रतीत होता है। मध्यम को गौणत्व देना हमको तो मुश्किल पड़ेगा पंडित जी! यह राग भेद बहुत ही सूक्ष्म दिखलाई देता है। इसे कैसे साधते होंगे? यह तो सुनने से ही समझ में आ सकता है।

उ०—मैं वही अब प्रत्यक्ष करके तुम्हें दिखा रहा हूँ। ध्यान दो। भीमपलासी प्रारम्भ करते समय ऐसे चलना चाहिये:—नि, सा, म, म, ग, म, प म, प ग, म ग रे सा, नि सा म। इसमें मैंने मध्यम का कितना अधिक प्रयोग किया है, उसे देखा? प ग, संगति 'म ग रे सा' स्वरसमुदाय की सुविधा के लिये मैंने की। वहां 'म ग रे सा' एकदम भी मैं ले सकता था, किन्तु वह उतना स्वाभाविक और सुन्दर न दीखता। अब मध्यम गौण करने का प्रयत्न करते हैं, देखो। 'नि सा, ग, रे सा, प ग, रे सा, नि सा ग म प, म प, ध प, ग, प ग, नि ध प, म प, ग, नि सा ग, प ग, म ग रे सा' यहां वह मुक्त मध्यम नहीं है, देखा न? नि सा, ग रे सा, प ग रे सा, ये स्वर प्रारम्भ की केवल तैयारी थी। मुख्य भाग 'नि सा ग म प' से प्रारम्भ होता है। निषाद पर भी नहीं ठहरना है, तभी पञ्चम स्थान अधिक स्पष्ट दिखाई देगा। 'नि, सा' ऐसा जोड़ते ही आगे मध्यम आने की सूचना मिलती है। यह गूढ़ रहस्य हैं। किसी विशिष्ट स्वर को महत्व देने के लिये उसके पहले किसी स्वर से तैयारी करनी पड़ती है; फिर आगन्तुक स्वर का तेज कितने समय तक कायम रखना, उसके पास के स्वर को किस प्रकार से छिपाना, मुख्य स्वर को किस स्वर की कितनी संगति देना इत्यादि तथ्यों का अच्छी तरह से साधना ही वस्तुतः कला है। शतरंज के खेल में जैसे मुहरे और प्यादों को चलते समय उनके ऊपर भिन्न-भिन्न प्रकार से खेलने वालों को जोर देना पड़ता है, वैसे ही संगीत रचना का रहस्य है। 'नि सा ग म प' यह तान प्रस्तुत की तो पञ्चम की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करने के लिये 'म प, ध प, नि ध प म प, ग, नि सा ग, प ग म ग रे सा नि सा ग म प' ऐसा किया हुआ बहुत अच्छा दिखाई देता है 'नि, सा' ऐसा बीच में कहीं किया जाय तो भी चलेगा। परन्तु उसमें मध्यम को आगे लाने की जो सूचना है उसे दूर करने के लिये, 'नि, सा, म ग रे सा, प, ग, म प ग, म ग रे सा, नि सा ग म प' ऐसा करना होगा।

प्र०—तो फिर इस राग को थोड़ा सा गाकर भी दिखाइये?

उ०—ठीक है सुनो:—"नि सा ग, म प, प, म प, म ग, ग म प नि ध प, म प ग, प ग, म ग रे, सा, नि सा ग म प। अथवा नि सा ग म प, म प, ध प, म प ग, सा ग, म प, ग, प, नि, सा, प म प, ग, नि नि ध प, म प ध प, म प ग, प, ग, म ग, रे, सा, नि सा ग म प। प, म प, ग, प, नि ध प, म प नि ध प, म प ग, सा ग, म प ग, म, ग रे, सा। नि, सा, म ग रे सा, नि सा, ग म प. ग, रे सा, नि, सा, नि, ध, प, म प

नि़ सा, प़ नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, म ग रे सा, नि़ सा ग म प ग, रे सा, नि़ सा ग म प नि नि ध प, सां नि ध प, म प, नि ध प, म प ध प, म प ग, सा ग, प ग, ध प, म प ग, नि़ सा ग, म प ग, म ग, रे, सा। इसमें मध्यम को छिपाते समय गान्धार पर आकर मुझे विश्रान्ति लेनी पड़ती है, वह देखा ? वहां दूसरे एक निकटवर्ती राग की झलक भी दिखाई देती है, यह मैं मानता हूँ परन्तु मध्यम का महत्व मुझे कम करना है।

प्र०—वह निकटवर्ती राग कौनसा है ?

उ०—वह 'धानी' राग है। किन्तु उसके नियम अलग होने से राग भेद स्पष्ट रहेगा। अच्छा तो अब यह धनाश्री राग तुम कैसे गाओगे ? मुझे प्रत्यक्ष गाकर दिखलाओ। मैंने जैसा अभी गाया है, वैसा ही तुमको गाना चाहिये, ऐसी बात नहीं।

प्र०—हम विभिन्न समुदाय तो कहां से बनायेंगे, किन्तु फिर भी, पिछले आगे और आगे पिछले ऐसा कुछ करके दिखा सकते हैं। जैसे:—नि़ सा ग, म प ग, म ग रे सा, नि़ सा रे सा, नि़ सा, ध़, प़, म़ प़ सा, प़ सा, म ग, प, म प, नि़ सा ग म प, म प ग, प ग, म ग, रे, सा. नि़ रे सा। सा, नि़ सा, प़ नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, सा नि़ ध़, प़, नि़ ध़, प़, म़ प़ ग, म़ प़, नि़, सा, नि़ सा म ग रे सा, नि़ सा ग म प, ग म प, म प, नि ध प, म प सां नि ध प, म प ध प, म प ग, प ग, नि़, सा, प़ नि़ सा, प म प ग, सा, प, म प ग, म प नि सां, प, म प ग, प ग, म ग, रे, सा, नि़ रे सा। ऐसा चलेगा क्या ?

उ०—मालुम होता है यह बहुत कुछ ठीक है। तुमने उस मध्यम को बड़े अच्छे ढङ्ग से मर्यादित किया है। किन्तु ऐसा होते हुए भी तुम्हारे गाने को गायक-वादक "भीमपलासी" कहेंगे।

प्र०—फिर तो हमारा दुर्भाग्य ही कहना चाहिये। किन्तु राग भेद उनको क्यों नहीं दीखेगा ?

उ०—उसका कारण मैंने तुम्हें पहले ही बताया था न ? ये दोनों राग एक दूसरे में बिल्कुल घुल-मिल जाते हैं। यह धनाश्री प्रकार मुसलमान गायक तो जानते ही नहीं।

प्र०—हां ! आपने कहा था कि 'धनाश्री' का नाम सुनते ही वे फौरन उसे पूरिया-धनाश्री समझने लगते हैं।

उ०—उनकी बात भी रहने दो। अपने कुछ संस्कृत ग्रन्थकारों ने धनाश्री राग स्पष्ट पूर्वी थाट का बताया है; किन्तु मैंने तुम्हें जब पूरियाधनाश्री राग बताया तब वहां धनाश्री सम्बन्धी ग्रन्थाधार नहीं बतलाया था क्या ? उसे अब पुनः बतलाने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि अब हम जो प्रकार गायेंगे वह बिल्कुल भिन्न है। हमको काफीमेल जन्य धनाश्री के आधार देखने पड़ेंगे। अपने इस धनाश्री को दक्षिण के कुछ कलाकार शुद्ध धनाश्री भी कहते हैं।

प्र०—आपका यह कथन मेरी समझ में अच्छी प्रकार से आगया। अब इस धनाश्री का अन्तरा हम कैसे और कहां से शुरू करें, उसे बताइये ?

उ०—अन्तरा तुम पञ्चम से शुरू करोगे तो अच्छा लगेगा। मैं उसे कैसे करता हूं, सो देखो:—प, म प ग म, प नि, प नि, सां, नि सां, मं गं रें सां, रें सा, नि ध, प, म प, सां, नि ध, प, ध प, म प ग, नि़, सा, ग म प ग, प ग, ग रे, सा। आगे फिर संचारी आभोग में जाते समय ऐसे करना चाहिये:—

सा, नि, नि सां, नि ध प, नि ध प, म प ग म, प नि, प नि, सां, नि सां, मं गं रें सां, नि सां, नि ध प, नि ध प, म प ग, म, प, नि ध प ग, प ग, म ग रे सा। प, प, म प ग म, प नि, प नि, सां, नि सां गं रें सां, मं गं रें सां, पं, मं पं, गं, मं गं रें सां, नि सां, रें सां, नि ध प, प रें सां रें, नि सां, नि ध प, सां नि ध प, म प ग, नि़ सा ग, प ग, म ग रे सा, नि़ सा ग म प।

अब मुख्य स्वरों की बढ़त करेंगे। उसमें भीमपलासी का कुछ भाग तिरोभाव के लिये लायेंगे:—नि़ सा, प़ नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, ग म़ प़ नि़ सा, प़ नि़ सा, नि़ सा, म ग रे सा, नि़ सा ग रे सा, नि़ सा, ध़ प़, सा, ध़ प़, ग, प ग, ग म प, ध प ग, प ग, म ग रे सा। नि़ सा ग म, प ग, म प ग, नि ध प, सां नि ध प म प ग, नि़ सा ग म प ग, ध प ग, नि ध प, म प नि ध प ग, प ग, म ग रे सा। नि़ सा, प, म प, ग म प, नि़ सा ग म प, ध प, सां, ध प, नि ध प, रें सां, नि ध प, नि नि ध प, म प नि ध प, म ग, नि़ सा ग म प ग, नि प ग, प ग म ग रे सा। ग म प नि, नि, सां, नि नि सां, नि सां गं रें सां, मं पं गं रें सां, नि सां गं गं रें सां नि सां, नि ध प, सां नि ध प म प ग, म, सां, नि ध प, म प नि ध प, ध प, म प ग, नि़ सा ग, म प ग, म ग रे सा। अब इस राग का सारा चलन तुम्हारे ध्यान में आगया होगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। काफी और सिन्दूरा जैसे एक दूसरे में मिल जाते हैं, वैसे ही कुछ कुछ इसे समझो। इससे सुगमता भी होगी। गाते समय भीमपलासी और धानी ये तिरोभाव के लिये राग होंगे। कोई-कोई गुणी हमको ऐसा सुझाव भी देते हैं कि धनाश्री के रे और ध स्वर बिल्कुल स्पष्ट तीव्र रखे जांय और वे ही स्वर भीमपलासी में कुछ थोड़ी कोमलता की ओर झुके रखे जांय तो इन दोनों रागों का भेद अपने आप स्पष्ट हो जायगा। किन्तु इस प्रकार के स्वरविशेषों की सहायता से राग भिन्नत्व दिखाने की अपेक्षा "वादी भेदे राग भेदाः" तथ्य जो सर्वमान्य है, उसी विचार धारा के अनुसार चलना मुझे अधिक पसंद है। मैंने तुम से कहा ही है कि रागों की परस्पर भिन्नता ग्रन्थकार श्रुतियों पर निर्धारित नहीं करते। किन्तु अलंकारिक प्रकार के रूप में यदि तुमने रे ध स्वरों को अपनी जगह से कुछ नीचे उतारा और उतने से यदि तुम्हारे श्रोता संतुष्ट होते हों, तो वैसा कर सकते हो, किन्तु मैंने अपने विचार स्पष्ट कर दिये हैं। मजे की बात तो यह है कि गायक तानों की भरमार से जब अपना राग विस्तार करने लगता है, तब वह सूक्ष्म स्वर भेद छोड़कर स्वतः अपने ही नियमों का उल्लंघन करता हुआ दिखाई देगा और यह स्वाभाविक बात है, क्योंकि उन तानों में स्वरस्थान कौन से और कैसे लग रहे हैं, इसकी ओर ध्यान देने का समय ही उसको नहीं मिलेगा। वहां सारा खेल नैसर्गिक स्वरसंगति पर रहेगा। ऐसी संगति से स्वरस्थान किंचित आगे-पीछे हो ही जाते हैं, यह रहस्य अब तुम जैसे जिज्ञासुओं की समझ में आसानी से आ जायगा।

प्र०—उसे बताने की आवश्यकता नहीं, इस विषय पर आपने पहले भी हमको बताया था। पूरिया, मारवा, जोगिया, विभास, भैरव, इत्यादि रागों के विषय की चर्चा करते समय इन सूक्ष्म स्वरों के विवाद पर आपने समझाया ही था।

उ०—हां! तुमने खूब ध्यान में रखा। सूक्ष्म स्वर किसी को लगाना ही नहीं आयेगा या उन्हें रागों में कोई लगाता नहीं है, अथवा उनको लगाने से कोई बड़ा भारी पाप होगा, यह हम कभी नहीं कहेंगे। वह सब हम लोग भी कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य तो यही है कि ऐसी बातों को शास्त्रकारों पर मत लादिये, उनके वाक्यों के अर्थों को गलत मत समझिये। ग्रन्थ क्या है, उसे केवल हमने ही समझा है, और दूसरे लोग आजतक अन्धकार में ही रहे, ऐसी हास्यास्पद बातें मत कीजिये। नवीन प्रचार, नया शोध यदि आवश्यक हो, तो उसे जरूर स्वीकार करना चाहिए। और वह भाग नया है ऐसा सप्रमाण बताकर फिर लोगों के विचारार्थ प्रस्तुत करो। उसे यदि किसी ने पसन्द नहीं किया, तो वहां तत्काल क्रोधावेष में आकर झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं। जो बात प्रचार में दिखलाई दे और योग्य होगी तो उसे लोग अवश्य स्वीकार करेंगे और यदि उनको आवश्यकता न होगी तो उसे छोड़ देंगे। वहां लड़ने और वाद-विवाद से क्या लाभ? गाते समय और भी कुछ चमत्कार सूक्ष्मदर्शी लोगों के सामने आते हैं, फिर वहां नियम को किस प्रकार से मानें, ऐसा प्रश्न उत्पन्न हो जाता है। नियम बद्ध शास्त्रों की सामग्री हमेशा सुविधाजनक, सुबोध और सहज साध्य होनी चाहिये। अस्तु, अब इस मसले को कुछ समय के लिये हम छोड़ दें।

प्र०—अपने धनाश्री राग के कौन से ग्रन्थाधार हैं, उन्हें अब बतायेंगे?

उ०—हां, अब उन्हीं को बतला रहा हूं। उत्तर और दक्षिण के ग्रन्थ उन रागों के विषय में क्या-क्या कहते हैं, उसे अलग-अलग देखेंगे। जहां पूर्वी थाट की धनाश्री होगी उस ग्रन्थोक्ति की चर्चा हम बिल्कुल नहीं करेंगे। उत्तर के ग्रन्थ तरंगिणी, हृदय कौतुक, हृदय प्रकाश, पारिजात और रागतत्वविबोध यह माने जाते हैं। वैसे ही पुन्डरीक विट्ठल पन्डित के प्रसिद्ध चार ग्रन्थ और भावभट्ट के तीन ग्रन्थ भी उत्तर के ही माने जाते हैं, यह तुमको विदित ही है। रसकौमुदी काठियावाड़ में जामनगर के एक पन्डित द्वारा लिखी होने से उसे भी उत्तर का ही ग्रन्थ समझते हैं। दक्षिण के ग्रन्थ 'राग विबोध, स्वरमेलकलानिधि, रागलक्षण, चतुर्दण्डिप्रकाश और सारामृत' हैं। इन सब ग्रन्थों के विषय में मैंने यथा स्थान चर्चा की ही है। अब इस अवसर पर हमें बहुत से रागों की चर्चा करनी है; इस लिये तुमको बार-बार यह ग्रन्थ उत्तर का है या दक्षिण का, इसे बताने की जरूरत न पड़े, इस अभिप्राय से मैंने यह बात दोहरा दी है।

प्र०—कोई बात नहीं है, जो किया वह एक हिसाब से ठीक ही है। अब उसको हम नहीं भूलेंगे। पहले हमें, उत्तर के ग्रन्थ क्या कहते हैं यह बताइये?

उ०—हां, बताता हूं। राग तरंगिणी के लोचन जिस धनाश्री के विषय में कहते हैं वह हमारे काम नहीं आयेगी, क्योंकि उसमें रे ध स्वर कोमल और मध्यम तीव्र बतलाया गया है। हृदय कौतुक में, हृदय पण्डित ने तरंगिणी का ही अनुवाद किया है, अतः उनकी

यह धनाश्री पूर्वी थाट की है, इसलिये उसे भी हमें छोड़ ही देना पड़ेगा। उन्होंने अपने धनाश्री के जन्यराग धनाश्री और ललित बतलाये हैं, इससे उनके ग्रन्थ का आधार भी हम नहीं ले सकते। हृदयप्रकाश में हृदय ने 'मुल्तानी धनाश्री' एक प्रकार बताया है और उसके स्वरों के विषय में निम्नलिखित विवरण दिया है:—

रिधयोः कोमलत्वात्तु गन्योस्तीव्रतरत्वतः।
चतुर्भिर्विकृतैर्गौरी मुलतानीधनासरी ॥

इसमें मध्यम तीव्र नहीं बताया है। इसका शुद्ध थाट हमारे काफी के समान था, यह तुम्हें मालुम ही है। तो फिर ये धनाश्री किस प्रकार की होगी, यह स्पष्ट हो ही जायगा।

प्र०—ये हमारा भैरव थाट ही होगा न?

उ०—हां वही होगा। यह भी प्रकार हमारे काम का नहीं। हमको तीव्र ग और तीव्र नि ये स्वर नहीं चाहिये। वे दोनों ग्रन्थ हमारे लिये उपयोगी नहीं।

प्र०—किन्तु 'हृदय' ने यह ग्रन्थ पारिजात देखने के पश्चात् लिखा होगा, ऐसा आपने कहा था। तो फिर अहोबल ने धनाश्री ऐसी ही बताई है क्या?

उ०—नहीं, अहोबल ने जो धनाश्री बताई है वह बिल्कुल हमारी आज की धनाश्री है। उसका भी शुद्ध थाट काफी का ही था। उसकी व्याख्या सुनो:—

आरोहे रिधहीना स्यात्पूर्णा शुद्धस्वरैर्युता।
गांधारस्वरपूर्वा स्याद्धनाश्रीर्मध्यमान्तिका ॥

आगे मूर्छना इ० सुनो:—'ग॒ म प नि॒ सां। रें सां नि॒ ध प म। ग॒ म प म ग॒ रे सा। ग॒ म म नि॒ प नि॒ सां। रें सां नि॒ सां नि॒ ध प म। ग॒ म प म प म ग॒ म ग॒ रे सा। ग॒ म ग॒ म प नि॒ प नि॒ सां गं॒ सां म। प म प ग॒ म ग॒ रे सा, नि॒ ध प म। ग॒ म प म, पग॒ रेसा प़ नि़॒ सा रे सा नि़॒ सा।

प्र०—यह स्वरविस्तार भीमपलासी के लिये उपयुक्त नहीं था क्या? इसमें खुला मध्यम है और विशेष रूप से प्रयोग में आया है।

उ०—तुमने बहुत मार्मिक दृष्टि से उसे पहिचान लिया। ऐसा तुमने गाया तो लोग फौरन तुम्हारे राग को भीमपलासी कहेंगे। मैंने पहिले ही कहा था कि ये राग एक दूसरे में इतने घुले-मिले हैं कि उनका अलग-अलग दिखलाना बहुत कठिन हो जाता है। फिर भी अब इन दोनों रागों का भेद अच्छी प्रकार तुम्हारे ध्यान में आ गया है। अब तुमको वह पञ्चम वादी स्वर ठीक-ठिकाने, योग्य रीति से आगे लाने के लिये कुछ कठिनाई नहीं पड़ेगी।

श्री निवास पन्डित अहोबल के ही अनुयाई होने के कारण उन्होंने भी अहोबल का ही श्लोक धनाश्री के लक्षण बताते हुए दिया है। वह श्लोक ऐसा है 'आरोहे रिधहीना स्यात् पूर्णा शुद्धस्वरैर्युता ॥' इ० यहां "पूर्णा" ऐसा कहा गया है, आरोह में रे ध वर्ज्य बतलाये हैं, इस पर ध्यान दिया?

प्र०--वह हमारे ध्यान में आगया है। राग को हमेशा आरोह-अवरोह की आवश्यकता होती है, बल्कि इन दोनों को मिलाकर ही राग बनता है। वस्तुतः धनाश्री की जाति औडुव-सम्पूर्ण ही कहनी चाहिये, ठीक है न ?

उ०--हां ! किन्तु यह भेद अब तुम्हारी समझ में आ गया है तो इस सम्बन्ध में अधिक बताने की जरूरत नहीं है। श्रीनिवास ने धनाश्री की उद्ग्राह तान ऐसी दी है। ग म प नि सां गं रें सां, नि ध प म ग। ग म प म। ग म ग रे सा। अब अपने पुण्डरीक विट्ठल का ग्रन्थ क्या कहता है, उसे देखें। सद्रागचन्द्रोदय में उस पण्डित ने 'धन्नासी' राग बताया है और उसको श्रीराग मेल में डाला है। यथाः—

चतुःश्रुती यत्र रिधौ भवेताम्। साधारणो गोऽपिच कैशिकी निः।
तथा विशुद्धाः समपा भवंति श्रीरागकस्याभिहितः समेलः॥

उक्त श्लोक के आधार से यह अपना काफी थाट ही रहा। आगे वह पण्डित जन्य-राग इस प्रकार कहता है:—

श्रीरागकोऽस्मादपि मालवश्रीर्धन्नासिका भैरविका तथैव।
अन्येऽपि रागाः कतिचित्प्रसिद्धा भवंति सैंधव्यभिधादयश्च॥

इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट ही है, आगे:—

षड्जग्रहान्ता रिधवर्जितेष्टा। धन्नासिका सांशवती प्रभाते।

प्र०—इन्होंने 'प्रभाते' कहा है। उस पण्डित के समय में ऐसा ही प्रचार था क्या ?

उ०—संभव है, ऐसा हो। सैंधवी और धन्नासी इन रागों का काफी थाट है, इतना ही हमें अभी देखना है। पुण्डरीक ने अपनी रागमाला में ऐसा वर्णन किया है:—

सर्वांगे भूषणाढ्या धनिरिंगविधुगा मत्रिकास्ता रिधाभ्याम्।
दूर्वाश्यामा विचित्रांबररचिततनुर्दाडिमीपुष्पहस्ता॥
नेत्रांतर्बाष्पयुक्ता धवलसहचरी पूर्वजेराकनाम्नः।
पश्यंती गीतवर्त्मोषसि बहुधनदा धन्यधन्नासिका सा॥

इस श्लोक का अर्थ आसानी से समझ में आजायगा, "धवल धनाश्री" नाम का एक प्रकार सोमनाथ ने अपने राग विबोध में बताया है। ईराक (Mesopotamia) तुमको मालूम ही है। धनाश्री और ईरान का सम्बन्ध राग मंजरी में भी बताया है, वहां जो १०-१२ "पारसीकेय राग" कहे गये हैं, उनमें "धनास्यां च इरायिका," ऐसा उल्लेख है। इराइके का स्वरूप धनाश्री के समान ही था क्या ? ये नहीं कहा जा सकता। इससे पूर्व सिन्दूरा बताते समय मैंने कहा था कि वह राग मन्जरी में "मालव-कौशिक" मेल में लिखा गया है। धन्नासी भी उसी मेल में रखा गया है। उस मेल के

स्वर "एकैकगतिकौ रिधौ निगौ मालवकौशिके। अस्मिन् मेले मालवश्रीर्धन्नासी सैंधवी तथा ॥" इस प्रकार बताया है और धन्नासी की जानकारी इस प्रकार दी है:—सत्रिधा रिध वर्ज्याचधन्नासी प्रातरेवहि।

भावभट्ट के आधार हृदय, पुन्डरीक और अहोबल हैं। इसलिये उसके ग्रन्थों में कुछ विशेष जानकारी मिलने की सम्भावना नहीं है। वह पण्डित रत्नाकर और दर्पण का भी उल्लेख करता है किन्तु वे ग्रन्थ उसकी समझ में नहीं आये, इसलिये उन उल्लेखों से हमें कोई लाभ नहीं। यहाँ एक बात यह ध्यान में रखने योग्य है कि पुण्डरीक ने मंजरी ग्रन्थ में धन्नासी श्रीराग मेल में नहीं रखी, उसका कारण तुम्हें श्रीराग मेल के लक्षण से तत्काल विदित हो जायगा। वह कहता है "धरिन्येकैक गतिका गस्तुतीय-गतिर्यदा। श्रीरागमेल एष स्यात् श्रीरागाद्या अनेकशः॥" इस प्रकार गन्धार तीन गति का होगा, यानी वह तीव्र होगा और वह उसे नहीं चाहिये। श्रीराग का गान्धार तीव्र कैसे होने लगा, यह नहीं बताया गया। किन्तु तरङ्गिणी में कर्नाट संस्थान (खमाज मेल) कहा गया है, उसी के जन्य राग में "श्रीरागश्च सुखावहः" ऐसा भी उल्लेख है। 'हृदय' ने अपने "कौतुक" में तरंगिणी के मत के अनुसार श्रीराग को कर्नाट संस्थान में रखा है, किन्तु वहीं आगे "हृदय प्रकाश" ग्रन्थ में उसी श्रीराग के रि ध कोमल और ग नि तीव्र बताये हैं, यह उसने क्यों और कैसे किया, ये बताना सम्भव नहीं। तुम कहोगे, उसने पारिजात से यह बदला हुआ राग लिया होगा, किन्तु वैसा भी नहीं है; क्योंकि अहोबल ने "श्रीरागस्तीव्रगान्धार आरोहे रिधवर्जितः। ऐसे श्री के लक्षण दिये हैं। अर्थात् उसका श्रीमेल, कर्नाट यानी खम्माज ही था, तो फिर पारिजात व हृदयप्रकाश के समय में काफी अन्तर था क्या? हृदय का समय ई० स० १६६७ का होना चाहिये ऐसा पुरातत्व विभाग का मत है। व्यंकटमखी का समय लगभग ई० स० १६६० बताते हैं। एक पण्डित ने ऐसा भी तर्क किया था कि अहोबल ने अपना पारिजात, चतुर्दण्डिप्रकाश के बाद लिखा होगा।

प्र०—उसने वह तर्क कैसे किया?

उ०—उसका किया हुआ तर्क उचित है कि नहीं, यह मैं नहीं कह सकूँगा। फिर भी वह कैसे किया, यह बताता हूँ। व्यंकटमखी पण्डित ने "सिंहरव" राग बतलाकर उसका वर्णन "रागः सिंहरवो नामः षड्जन्यास ग्रहांशकः। सोयमस्माभिरून्नीतः सम्पूर्णो गीयते सदा" इस प्रकार किया है। अर्थात् इस राग को मैंने स्वयं निकाला है, ऐसा भाव श्लोक से निकल सकता है। यह सिंहरव राग सङ्गीत पारिजात में अहोबल ने भी बताया है, इसलिये उस पण्डित का यह तर्क कि पारिजात, चतुर्दण्डि के बाद लिखा गया होगा अकाट्य प्रमाण नहीं कहा जा सकता; किंतु मैंने एक मत बताया है।

सोमनाथ पण्डित ने "धन्याशी" श्रीराग मेल में बताई है, उस मेल का वर्णन इस प्रकार है:—

श्रीरागमेलके रिस्तीव्रः साधारणोऽथ धस्तीव्रः।
कैशिक्यपि शुचिसमपा मेलादस्माद्भवंत्येते॥

यह काफी थाट ही हुआ। प्रत्यक्ष रागलक्षण इस प्रकार हैं:—

धन्याशिका रिधोना सांशन्यासग्रहा प्रातः ॥

यह मत पुण्डरीक के मत से मिलता-जुलता है, ऐसा दीखता ही है। स्वरमेल कलानिधि में रामामात्य ने धनाश्री श्रीराग मेल में ही (यानी काफी थाट में ही) बताई है और उसका वर्णन इस प्रकार किया है:—

रागो धन्यासिसंज्ञोऽयं बहुशो रिधवर्जितः।
गेयःप्रातरसौ तज्ज्ञैः सन्यासांशग्रहौडवः ॥

रागलक्षणकार ने शुद्ध धन्नासी नाम का राग खरहरप्रिय मेल में बताया है और उसके लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

अधिकारिखरहर प्रियमेलात् सुनामिका।
शुद्धधन्यासिका प्रोक्ता संन्यासं सांशकग्रहम् ॥

× × ×

सा ग म प नि प सां। सां नि प म ग सा।

हम अवरोह में रे ध स्वर लेते हैं। उसने और एक इसी नाम का प्रकार 'नटभैरवी मेल' में बताया है, जो इस प्रकार है:—

नठभैरविरागाख्यमेलाज्जातः सुनामकः।
शुद्धधन्यासिरागश्च संन्यासं सांशकग्रहम् ॥
आरोहेऽप्यवरोहे च रिधवर्जितमौडुवम् ॥
सा ग म प नि सां। सां नि प म ग सा

ऐसा ही एक राग हम भी गाते हैं, उसे आगे बताऊँगा। रागलक्षण में और भी एक रागिनी "मारुधन्यासी" नाम की बताई है, उसके आरोहावरोह इस प्रकार दिये हैं:—

सा ग म ग प ध प ध सां। सां नि ध प ध म प ग रे सा। उसके लक्षण इस प्रकार बताये हैं।

अधिकारिखरहरप्रियमेलात् सुनामकः।
मारुधन्यासिरागश्च संन्यासं सांशकग्रहम्।
रिनिवर्जं वक्रपूर्वं वक्रपूर्णावरोहकम् ॥

ये नाम और प्रकार अपने यहां कोई नहीं जानता। वे वहाँ दिखाई दिये, इसलिये केवल उल्लेख कर दिया। चतुर्दण्डिप्रकाशिका ग्रन्थ में धन्यासी श्रीमेल में ही यानी काफी मेल में ही बताई है, उसका वर्णन इस प्रकार है:—

धन्यासिरागो रागांगो जातः श्रीरागमेलतः ।
रिधलोपादौडुवोऽयं प्रातर्गीतः शुभप्रदः ॥

मैंने जो मत बताये हैं, उनमें धन्यासी में रि ध स्वरों का समूल लोप और उसका समय प्रातःकाल कहा है, ये तुम्हें मालूम ही हुआ होगा। अपने यहां पहिले धनाश्री, भीमपलासी से अलग थोड़े ही गायेंगे और जो गायेंगे, वे उसे संधिप्रकाश से पहले गायेंगे। अच्छा मित्र! अब इस राग के लिये अधिक ग्रन्थाधार ढूँढना व्यर्थ है। उत्तर और दक्षिण के समस्त प्रसिद्ध ग्रन्थ तो हम देख ही चुके हैं,उन ग्रन्थों में "ग्रहांशन्यास" बताये हैं किन्तु उन स्वरों के नियम अब अपने देशी सङ्गीत में बदल गये हैं, यह तुमको मालूम ही है।

प्र०—हां, यह बात हम जानते हैं। इस ग्रन्थ में धन्यासी का मेल अर्थात् उसमें कौन कौन से स्वर लगते थे, यह हमें देखना है। उसके पश्चात् फिर वर्ज्यावर्ज्य स्वर देखने हैं। यदि पुराना नियम आज भी प्रचार में हो तो ठीक ही है और यदि वह बदला होगा तो उन परिवर्तनों को ध्यान में रखना है। तरंगिणी के अनेक रागों के थाट भी बदले हुए हैं, यह हम देख ही चुके हैं। राजाप्रतापसिंह के सङ्गीतसार में धनाश्री के बारे में क्या लिखा है?

उ०—उन्होंने धनाश्री को श्री राग की रागनी बताया है और उसके दो प्रकार कहे हैं। वे दोनों हमारे उपयोग में नहीं आ सकते; क्योंकि उनमें "रिषभ उतरी" और "गांधार चढ़ी" ऐसा उल्लेख है। धैवत के बारे में तो और भी मनोरंजक वर्णन है।

प्र०—कैसा?

उ०—पहले प्रकार में उन्होंने "धैवत अन्तर" कहा है। "अन्तर" यानी न उतरी न चढ़ी। गायक लोग ऐसा ही बतलाते हैं। दूसरे प्रकार में "धैवत उतरी" कहा है और उस प्रकार को "मियां की धनाश्री" नाम दिया है। मध्यम दोनों में तीव्र है।

प्र०—तो उस प्रकार के विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं। तो फिर कोमल गन्धार की धनाश्री उनके समय में प्रचार में नहीं थी, ऐसा प्रतीत होता है?

उ०—उन्होंने एक मुलतानी धनाश्री भी बताई है, उसमें गन्धार कोमल रे ध स्वर कोमल और दोनों मध्यम हैं; किन्तु वह अपना प्रकार नहीं है।

प्र०—तो फिर अब प्रचलित प्रकार के समर्थन में भी कुछ आधार हमको बता दीजिये?

उ०—हां! बताता हूं, सुनोः—

काफीमेलसमुद्भूता धन्याश्रीः कथिता जने ।
आरोहे रिधहीनाऽसौ संपूर्णा प्रतिलोमके ॥
पंचमः संमतो वादी मंत्री षड्जः समीरितः ।
लक्ष्ये सुसंमतं गानं तृतीयप्रहरे दिने ॥

ग्रहः प्रायो निषादः स्यान्न्यासः स्यात् पंचमाव्हयः ।
संगतिः पगयोश्चित्रा विलोमे तद्विदां मते ॥
वादित्वे मध्यमस्यात्र लसेद्भीमपलासिका ।
आरोहे रिधसंत्यक्ता मध्यमांशसमन्विता ॥
तृतीययामगेयेषु रागेषु परिदृश्यते ।
दौर्बल्यं रिधयोः प्रायोऽनुलोमे लक्ष्यविन्मते ॥
दुर्बलत्वात्तयोस्तत्र प्राबल्यं समपेषु तत् ।
पवादित्वे धनाश्रीः स्यान्मांशत्वे स्यात्पलाशिका ॥
शुद्धमेलसमुत्पन्ना आरोहे रिधवर्जिता ।
धनाश्रीः कीर्तिता तत्र पारिजाताख्यग्रंथके ॥
ग्रंथेषु केषुचित्प्रोक्ता धनाश्रो रिधवर्जिता ।
प्रातर्गेया तथा षड्जग्रहांशा काफिमेलजा ॥
नित्यं पमुद्रिता प्रोक्ता रिधोना सांशिका तथा ।
धनाश्रीर्धवलाद्यासौ विबोधे रागपूर्वके ॥

लक्ष्यसङ्गीते ।

स्वरास्तु मृदवोऽखिला ऋषभधौ च नारोहणे-
वरोहसमये भवेयुरथ यत्र सर्वेऽपि च
समुन्लसति पंचमोंऽश इह षड्जसंवादिना-
पराह्नसमयेषु निग्रहयुता धनाश्रीरियम् ॥

कल्पद्रुमांकुरे ॥

कोमलाः स्युः स्वराः सर्वे वादिसंवादिनौ पसौ ।
नारोहणे रिधौ यत्र सापराह्ने धनाश्रिका ॥

चन्द्रिकायाम् ॥

चढत रिखभ धैवत नहीं सब कोमल सुर जान ।
सप संवादी वादितें धनासिरी पहिचान ॥

चन्द्रिकासार ॥

निसौ गमौ पधौ पश्च निधौ पगौ पगौ रिसौ ।
अपराह्ने धनाश्रीः स्यात् पांशाऽऽरोहे रिधोज्झिता

अभिनवरागमंजर्याम् ॥

कोई रिषभ और धैवत धनाश्री में कोमल मानते हैं, ये मैंने बताया ही है। मुझे याद है कि तुलाजीराव ने अपने संगीतसारामृत ग्रन्थ में 'शुद्ध धन्यासी' ऐसी बताई है:— 'धनाश्री रागो रागांगं जातः श्रीराग मेलतः। रिधलोपादौडुवोऽयं प्रायर्गेयःशुभप्रदः॥' इसके बाद वह कहता है:—अस्या आरोहावरोहयोः स्वरगतिर्वक्रा। उदाहरणम्। म ग़ सा ऩि सा ग़ म प। प ऩि प ऩि सां। उद्ग्राहः। ऩि प ऩि ऩि सां ऩि प म ग़ सा। इतितारषड्जतान प्रयोगः प म ग़ सा, ग़ म प म ग़ सा, ग़ म प ऩि प मा ग़ म प म ग़ सा, ग़ म प ऩि प ऩि ऩि सां ऩि प प ऩि प म ग़ म प म प म ग़ ग़ सा। इतिठाय (स्थाई) प्रयोगः। यह भाग तुम ध्यान में रखो। मैं अब जो आगे 'धानी' नाम का राग बताने वाला हूं, उसमें इसका थोड़ा बहुत उपयोग हो सकेगा।

प्र०—ठीक है, इसे ध्यान में रखेंगे। किन्तु एक विचित्र विचार मनमें ऐसा आता है कि यह धनाश्री राग अपने यहां प्राचीन काल से इतना प्रसिद्ध था, जिसका वर्णन प्रायः सब संस्कृत ग्रन्थों में मिलता है, वह आज एकदम नष्ट होकर उसका स्थान भीमपलासी ने कैसे ले लिया ?

उ०—हां, ऐसा ही तो हुआ है। जिस श्रीरागमेल से यह राग उत्पन्न होता है, उस श्री राग का मूल स्वरूप भी आज बदला हुआ प्रतीत नहीं होता क्या ? ऐसे परिवर्तन तो होते ही हैं, किन्तु हमें तो इतना ही देखना है कि पहिले क्या था और अब क्या है। तर्कों से कारण क्यों खोजने बैठें ? संभव है श्रीराग जब पूर्वी थाट में था उस समय उसका जन्यराग धन्याशी भी उसी थाट में गया हो और उसका स्पष्टीकरण करने के लिये उसको 'पूर्वीधनाश्री अथवा 'पूरियाधनाश्री' ऐसा नाम दिया गया हो !

फिर भी यह काफीमेलजन्य स्वरूप भी सुन्दर होने से उसकी जगह भीमपलासी को मिली होगी। तरंगिणी में 'धनाश्री पूरियाभ्यांच भवेत भीमपलासिका' ऐसा कहा गया है। यह भी विचार करने योग्य है। उसी ग्रन्थ में भीमपलासी केदारमेल में रखी गई है, किन्तु उस मेल के कुछ रागों के ग और नि ये स्वर आगे कोमल हुए ही होंगे। उदाहरणार्थ 'मालकौशिक' राग को देखो। इसके बाद फिर 'गदिर्धहीना षड्जादिर्गेया भीमपलासिका' प्रत्यक्ष उदाहरण में अवरोह में रिषभ है ही।

प्र०—अच्छा ! अब अगला 'धानी' राग ले लीजिये ?

उ०—बताता हूँ। पहले अपने सामने ऐसा प्रश्न उपस्थित होता है कि "धानी" राग बहुत प्राचीन है क्या ? मेरी समझ में "धानी" ये नाम प्राचीन किसी भी संस्कृत ग्रन्थकार ने नहीं बताया। तो फिर यह कहां से और किस प्रकार प्रचार में आया होगा ? मेरी समझ से तो ये नाम धनाश्री पर ही आधारित होगा। आजकल वह प्रचार में है इसमें कोई शंका नहीं है और हमें भी उसे रखना ही पड़ेगा, इसमें भी कोई संशय नहीं है। पहले धानी राग के लक्षण मैं तुमको बतलाता हूँ, ताकि तुमको भी विचार करने में सुविधा हो, वह इस प्रकार हैं। धानी राग काफी थाट से उत्पन्न होता है। ऐसा आज कल गुणी लोगों का मत है। इसके आरोह अवरोह में रे ध स्वर वर्ज्य हैं, अतः इसकी जाति औडव औडव मानते हैं। इसका वादी स्वर गन्धार और सम्वादी निषाद है और यह सर्वकालिक रागों में से है; ऐसा कहा जाता है। फिर भी इसमें रे ध वर्ज्य होने

से इसका समय दिन का तीसरा प्रहर मानना अधिक शास्त्रसङ्गत होगा। इस राग में छोटी चीजें अधिक मिलेंगी; इसलिये इसको "क्षुद्रगीतार्ह" राग मानने की प्रथा है।

म और प इस राग में गौण रहते हैं। मुख्यतः मध्यम का उपयोग कम प्रमाण में होता है; अतः इस राग में गाम्भीर्य नहीं आ सकता। पंचम का प्रयोग मध्यम की अपेक्षा अधिक होता है। "नि़ सा ग, ग, ग म, प ग," इतने स्वर कहते ही श्रोता तुम्हारे राग को 'धानी' समझने लगेंगे और उत्तरांग में आगे "पनि पम, ग" ऐसा किया तो उनके मन में कोई शंका ही न रहेगी। इस राग में गन्धार को आगे लाने में सारी खूबी है, इसमें मींड का काम अधिक नहीं करते। मन्द्र स्थान में इस राग का चलन (विस्तार) अधिक नहीं होता। बहुधा प्रचार में इस राग के गीत चलती हुई लय में ही दिखाई देते हैं; फिर भी इसे व्यापक नियम बनाने की आवश्यकता नहीं है। रिषभ और धैवत स्वर यदि आरोहावरोह में नहीं आयेंगे तो यह राग दूसरे समप्रकृतिक रागों से इसी एक सिद्धान्त से अलग हो जायगा। इस राग के स्वरूप के बारे में अब एक दो मतभेद बताता हूँ, इनको भी तुम ध्यान में रखना। पहला सर्वसम्मत एक नियम है कि धानी के आरोह में रे ध स्वर हमेशा वर्ज्य होंगे ही।

प्र०—तो फिर अब प्रश्न केवल अवरोह का ही बाकी रहा। वहां कोई कहते होंगे कि अवरोह में धैवत छोड़ देना चाहिए और रिषभ रखना चाहिए तथा कोई कहते होंगे कि अवरोह में धैवत लेकर रिषभ को छोड़ देना चाहिए, ऐसा ही है न?

उ०—हां! यह तुमने बिल्कुल ठीक बताया, ऐसा ही मतभेद वहां है।

प्र०—तो फिर इनमें से हम कौन सा मत मानें?

उ०—क्यों? तुमको मैंने अपना मत पहले ही बता दिया है न? हम औडव-औडव प्रकार मानेंगे, अतः इन दोनों में से कौनसा स्वीकार करने योग्य है, इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। मालूम होता है यदि धैवत बिल्कुल वर्ज्य करके अवरोह में थोड़ा सा रिषभ का स्पर्श रहे तो विशेष हानि नहीं होगी, तथापि यह भाग हमेशा प्रचार पर आधारित रहेगा।

प्र०—आपका यह कथन हमें भी ठीक प्रतीत होता है; क्योंकि इस राग में गन्धार वादी होने से अवरोह में रिषभ स्वर का थोड़ा सा प्रयोग उस स्वर के तेज में सहज ही ढँक जायगा। अच्छा तो यह 'धानी' राग प्रारम्भ कहां से और कैसे करना चाहिये?

उ०—कहता हूँ सुनो। धनाश्री में जैसा हमने प्रारम्भ किया था, वैसा ही यहां करने में कोई हानि नहीं है; जैसे:—नि़ सा ग, म ग, प ग, ग म, प नि प म, ग, प ग, सा; नि़ सा, म ग सा, प ग, म, प ग, सा, नि़ सा, प़ नि़ सा. म़ प़ नि़ सा, ग ग सा, नि प, म प, ग म, प नि, प म ग, सा, नि़ सा, ग, सा, प़ नि़ सा ग सा, प ग, प नि प, सां, नि प, म प ग, म प नि प म ग, प ग, म ग, सा। सा, नि़ सा, प़ नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, ग ग सा, प ग, सा, प, म प, ग, म, प नि प म ग, सा।

प्र०—इसके आगे अन्तरा हम कैसे शुरू करें?

उ०—उसे भी बताता हूँ।

प, म प, नि, सां, नि सां, मं गं, सां, नि, सां, गं मं पं गं, सां अथवा, प, म प ग, म, प, नि सां, नि, सां, नि सां गं मं पं गं मं गं सां, गं गं सां, सां, नि सां, गं सां, नि नि प, म प ग, नि़ सा, ग म प, नि सां, गं सां, नि नि प, सां, नि नि प, म प ग, म, प ग, म ग, सा, इस प्रकार अन्तरा लेते हैं। इसमें मध्यम कहीं कहीं बिल्कुल स्वच्छन्द प्रतीत होता है; किन्तु इस राग में रिषभ और धैवत अवरोह में भी वर्ज्य होने से उस मध्यम से राग के सामूहिक स्वरूप को कोई बाधा नहीं पहुँचती, बल्कि उसका वैचित्र्य ही बढ़ता है। यदि तुम केवल ऐसे स्वर गाने लगो:—"नि़ सा ग ग सा, ग म, प नि प म ग," तो श्रोतागण एक दम कहने लगेंगे कि तुम धानी गा रहे हो, इसमें कोई संशय नहीं। उत्तरांग में "र, प, म प, ग म, नि नि प म ग," ऐसा टुकड़ा धानी वाचक स्पष्ट होगा। अब इतने परिचय से इस राग का विस्तार तुम करके दिखाओगे क्या ?

प्र०—हां ! प्रयत्न करता हूँ:—

सा, नि़ सा, म ग, सा, नि़, सा, नि़, प़, म़ प़ नि़ सा, ग, म ग, प ग सा, नि़ सा ग म प ग, म ग, प म ग, प ग, सा, नि़ सा ग ग सा, म ग सा, प, नि प, म प, ग, ग, प नि प सां, नि प, ग, म, प नि प म ग, प ग, नि़ सा। म़ प़ नि़ सा, प़ नि़ सा, सा म ग सा, प, म प, नि नि प म ग, प ग, नि़ सा ग, सा, नि प, म प, ग म, प नि प म ग, नि़ सा। नि़ सा म ग सा, नि़ सा ग म प ग, सा, नि़ सा ग म प नि प ग, सा, नि़ सा ग म प नि सां। नि प म प ग, सा, नि़ सा ग, म, प ग, म, नि़, सा, म़ प़ नि़, सा, प़ नि़ सा, ग ग सा, नि़ सा ग म प ग, म ग, सा, सां, प, नि नि प म ग, प म ग, प ग, नि़ सा ग, म़ प़ नि़ सा ग, म ग, प ग, ग, सा। प, म प, ग, म प, नि, सां, गं सां, नि सां, मं पं गं, मं गं, सां, नि, सां, प नि सां, सां, नि प, ग, प ग, नि नि प म ग, प ग, नि़, सा। ऐसा ठीक है क्या ?

उ०—राग दृष्टि से यहां मुझे कोई अशुद्धि दिखाई नहीं देती। यह राग आलाप योग्य न होने से इसमें मींड का काम विशेष नहीं होता और वह शोभा भी नहीं देता, यह मैं बतला ही चुका हूँ। भीमपलासी जैसा गाम्भीर्य इसमें नहीं है। फिर भी इस तथ्य को तुम समझ गये हो कि यह राग गाया कैसे जायगा। इसकी विशेषता यही है कि जब यह राग तुमको गाना हो तब एकदम धनाश्री की तरह इसकी शुरूआत करदो और उसमें से रिषभ व धैवत छोड़ते जाओ तथा आते-जाते गांधार पर ठहरते जाओ, फिर तुम्हारा धानी राग स्पष्ट दिखाई देने लगेगा।

प्र०—हां ! यह खूबी आपने खूब बताई, अब हम आसानी से ऐसा कर सकेंगे। देखिये:—

नि़ सा ग म प, ग, म प ग, नि प, म र नि नि प म ग, प ग, नि़, सा, प़, नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, ग,सा, नि़ सा ग म प ग, सा, सां, नि, प, म प नि नि प म ग, प ग,नि़, सा।

उ०—यह ठीक है। पीछे मैंने कहा था कि धानी राग नाम आधुनिक है और यह पुराने ग्रन्थों में हमको नहीं मिलता। मैंने यह भी कहा था कि यह नाम "धनाश्री" से ही निकला होगा। ऐसा मैंने क्यों कहा, इसका कारण भी बताता हूँ। अहोबल ने अपने सङ्गीत पारिजात में धनाश्री राग के लक्षण पहले बता कर आगे ऐसा कहा है:—

आरोहे रिधहीना स्यात् पूर्णा शुद्धस्वरैर्युता ।
गांधारस्वरपूर्वा स्याद्धनाश्रीर्मध्यमान्तिका ॥
धनाश्रीश्च धहीना सा रिधहीनाऽपि संमता ॥

प्र०—तो फिर धनाश्री और यह दोनों प्रकार नये ही हैं और उनमें से "रिधहीनापि" प्रकार को अपनी "धानी" कहने में कोई हर्ज नहीं है ? "धहीना" यह भी प्रकार हमें अभी अभी आपने बताया ही था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थाधार अच्छा ही रहेगा ?

उ०—हाँ, ऐसा मानकर चलो तो कुछ विशेष आपत्ति नहीं। श्रीनिवास पंडित तो अहोबल के ही अनुयायी हैं। अतः उन्होंने सङ्गीत पारिजात के ही श्लोक अपने तत्वबोध ग्रन्थ में उद्धृत किये हैं, उनको फिर से अब बताने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने षाडव धनाश्री की उद्ग्राहतान ऐसी बतलाई है:—

ग म प नि सां नि प म ग प नि प म ग ग म ग रे सा। ग म प ग म ग रे सा ग रे सा रे सा। प नि सा ग रे सा रे नि सा इत्युद्ग्राहः—

प्र०—यहां एक शंका यह उत्पन्न होती है कि धनाश्री राग के बारे में जो ग्रन्थमत आपने बताये थे, उनमें कुछ ठिकानों पर 'रि ध हीना' इतना ही कहा गया है। वहां वे स्वर अवरोह में लिये जायंगे या नहीं ? ये कुछ भी नहीं कहा है। तो फिर शंका यह होती है कि उस समय 'धनाश्री' नाम से आज की अपनी 'धानी' गाते थे क्या ?

उ०—तुम्हारी इस शंका का समाधान करना वास्तव में कठिन ही होगा। यदि ग्रन्थकार ने अवरोह में रे ध लेने को नहीं कहा है तो भी ये स्वर वहां लेते होंगे, ऐसा मैं भला किस आधार पर कह सकता हूं ? उन ग्रन्थकारों ने जहां प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं दिये हैं, वहां परम्परा और तर्क के आधार पर ही चलना हितकारी होगा। आज प्रचार में औडव सम्पूर्ण प्रकार को 'धनाश्री' और औडुव-औडुव अथवा षाडव-षाडव प्रकार को 'धानी' कहते हैं, यह बिल्कुल निश्चित रूप से कहा जा सकेगा। कोई कहते हैं कि दक्षिण के राग लक्षण आदि ग्रन्थों में 'शुद्ध धन्यासी' जो कही गई है, वह अपनी आज की 'धानी' स्पष्ट ही होगी।

प्र०—तो फिर 'धनाश्री' उधर किस प्रकार गाते हैं ?

उ०—वहां आजकल धनाश्री मानकर जो प्रकार गाते हैं, उसमें आरोह में रिषभ और धैवत नहीं लेते, केवल अवरोह में लेते हैं तथा वे स्वर कोमल लेने का प्रचार है।

प्र०—तो फिर वे अपनी धनाश्री भैरवी थाट में मानते हैं, यही कहिये न ?

उ०—हां ! राग लक्षणकार कहता है:—

हनुमत्तोडिमेलाच्च जातो धन्यासिनामकः ।
संन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ।
आरोहे रिधवर्ज्यं चाप्यवरोहे समग्रकम् ॥
सा ग म प नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।

प्र०—तो फिर यह भेद हमें ठीक प्रतीत होता है; परन्तु अपने यहां धनाश्री में रे ध तीव्र हैं और पुनः भीमपलासी का स्वरूप भी लगभग वैसा ही है, तो इससे कठिनाई उत्पन्न होगी कि नहीं ?

उ०—अब तुम्हारे ध्यान में यह सब ठीक आ गया। अपने को प्रचार के अनुसार हमेशा चलना है। जो मत जहां पर बहुत मान्य होगा उसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। यह सब मुख्य तथ्य है। कोमल रे ध लेकर उस प्रकार को धनाश्री और वे ही स्वर तीव्र लेकर भीमपलासी अच्छी प्रकार कोई गाकर दिखलाये तो उसकी निन्दा करने का कोई कारण नहीं। साथ ही इन दोनों रागों में वादी स्वर का भेद अच्छी प्रकार सम्हालकर कोई रागभेद करके दिखावे तब भी उसको हम बुरा नहीं कहेंगे।

"धानी राग" में रे ध बिल्कुल वर्ज्य करना उत्तम पक्ष है, परन्तु अवरोह में रिषभ थोड़ा सा कोई ले तो उस पर हंसने का कोई कारण नहीं है। वहां ऐसा समझ लेना चाहिए कि वह औडव-षाडव धनाश्री अथवा 'धानी' गाता है, बस।

प्र०—आपके कथन का सारांश यही है कि जो हम करें, वह सोच समझकर करें। और यदि कोई हम से इसका कारण पूछ बैठे तो उसे समझाने की हमारी तैयारी रहनी चाहिए, यही न ?

उ०—खूब समझे ! तो अब मेरी समझ में इस 'धानी' के विषय में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रही। अब अपने प्रचलित 'धानी' का समर्थन करने वाले कुछ आधार तुम्हें बतला देता हूं, वे इस प्रकार हैं:—

हरप्रियाख्यमेलाच्च धानीति संज्ञिता जने।
रागिणी स्यात्समुत्पन्ना सुरसा सार्वकालिका ॥
आरोहे चावरोहेऽपि वर्जितर्षभधैवता।
गांधारोऽत्र मतो वादी निषादोऽमात्यसंनिभः ॥
औडुवषाडवा चापि विलोमे रिषभान्विता।
क्वचित्समीचिता लक्ष्ये इति प्रज्ञा वदंति ते ॥
रिहीना रिधहीना वा साहोबलेन कीर्तिता।
तथैव तत्त्वबोधेऽसौ श्रीनिवासविनिर्मिते ॥
रागलक्षणके ग्रन्थे शुद्धधन्नासिकेरिता।
हरप्रियाह्वये मेले रिषभधैवतोज्झिता ॥
कदाचित्सैव लक्ष्येऽत्र धानिसंज्ञा समीरिता।
इत्याहुः पंडिताः केचिल्लक्ष्यलक्षणकोविदाः ॥
वादमूले तथाप्यत्र विषये तत्त्वदर्शिभिः।
लक्ष्यगतमनुल्लंघ्य कार्यं नित्यं स्ववर्तनम् ॥

समपानां तु दौर्बल्ये ह्यभावे रिधयोस्तथा ।
कुतो गांभीर्यसंप्राप्तिर्भवेन्नैव सतां मते ॥

लक्ष्यसङ्गीते ।

धानी प्रोक्ता मृदुगमनिका वर्जिता धर्षभाभ्या-
मारोहेऽस्याः सगमपनयः स्युस्त एवावरोहे ॥
वादी गांधार इह निसरवः प्रोच्यते ह्यौडुवेयं ।
चंचच्चारुस्वरसुरुचिरं गीयते सर्वकालम् ॥

कल्पद्रुमांकुरे ॥

कोमलाः स्युर्गमनयो वादिसंवादिनौ गनी ।
वर्जितौ धर्षभौ यत्र धानी सा गीयते सदा ॥

चंद्रिकायाम् ॥

रिखब नहीं धैवत नहीं कोमल गमनि बखानि ।
गनि वादी संवादितैं राग कहावत धानि ॥

चन्द्रिकासार ॥

निसौ गमौ पनी सश्च सनी पमौ गसौ तथा ।
धानी लोकप्रसिद्धा स्याद्‌गांधारांशा रिधोज्झिता ॥

अभिवनरागमंजर्याम् ॥

प्र०—यह धानी राग तो हम समझ गये। अब किस राग को लेना है ?

उ०—अब हम "हंसकंकणी" राग पर विचार करेंगे। यह 'हंस कंकणी' राग अपने यहां बिलकुल एक अप्रसिद्ध प्रकार समझते हैं। किन्तु यह आजकल प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में इसका कहीं नाम भी नहीं मिलता। अपने विद्वानों के मत से यह एक नया ही प्रकार अपने गायकों द्वारा प्रचार में लाया गया है। यह प्रकार स्वतन्त्र है, यह भी स्वीकार करना पड़ेगा। अब इसे सब पसन्द करने लगे हैं तो इसका विचार हमें करना ही पड़ेगा। हंसकंकणी राग किस प्रकार गाते हैं, इसके लक्षण क्या हैं; आओ, इन बातों पर विचार करें। इस राग को पहिले मेरे गुरु जयपुर के मुहम्मद अली खां ने मुझे बताया था, उन्होंने कहा--इस राग को दोपहर के बाद गाना उचित है। दूसरे शब्दों में हम यह कहेंगे कि इस राग को दिन के तीसरे प्रहर में गाना चाहिए।

प्र०--तो फिर इसके आरोह में रि, ध स्वरों का वर्ज्य होना तथा स, म, प इन स्वरों का प्राबल्य होना; ये ही लक्षण होंगे क्या ?

उ०—हां, ऐसा ही होगा। मैंने जो अभी कहा था कि यह राग नया ही प्रचार में आया है, इसका अर्थ यह मत समझना कि इस प्रकार को गत दस-बीस वर्ष के अन्दर ही किसी ने निकाला है। "हंसकंकणी" राग का नाम जयपुर के प्रतापसिंह द्वारा निर्मित सङ्गीतसार ग्रन्थ में भी हमें मिलता है।

प्र०—तो फिर पिछले सौ वर्षों से यह राग अपने यहां प्रचलित है, ऐसा कहना चाहिए ?

उ०—हां, ऐसा कहें तो भी ठीक है। फिर भी इस राग के स्वर आज वैसे नहीं हैं, जैसे कि प्रतापसिंह ने अपने ग्रन्थ में बताये हैं। इस तथ्य को भी ध्यान में रखना है।

प्र०—प्रतापसिंह इस राग को किस थाट का मनाते हैं ?

उ०—उनकी रचना "थाट व उनके जन्यराग" इस आधार पर नहीं है, इसे तुम भूल गये क्या ?

प्र०—तो फिर वे, इस राग में कैसे स्वर बताते हैं ?

उ०—बताता हूँ:—प्रथमत: "शिवजी ने उन रागन में सों विभाग करिवे को। अपने मुख सों चैती संकीर्ण आसावरी गाईके। वाको हंसकिंकनी नाम दीनो।" ऐसा बतलाकर फिर उस रागिनी का चित्र "गोरो जाको रंग है, इ०" बतलाया है। अन्त में "शास्त्र में तो यह सात सुरन में गाई है नि स रे ग म प ध स। याते सम्पूर्ण है। यातें संध्या समें गावनी यह तो याको बखत है। और राति के प्रथम प्रहर में गावनी। याकी आलापचारी सात सुरन में किये रागनी वरते। सो जंत्र सों समझिये।" ऐसा कहने के पश्चात् स्वरजंत्र उन्होंने इस प्रकार बतलाया है:—

नि़ स प ध॒ प म ग म। प म ग सा रे॒ सा।

वस्तुत: ये सब स्वर भैरव थाट के हैं। आज हम जो "हंसकंकणी" गाते हैं, वह काफी थाट का है। अर्थात् उसमें रि ध स्वर कोमल नहीं लग सकते।

प्र०—किन्तु "हंसकंकणी" और "हंसकिंकिणी" यह दोनों अलग-अलग नाम हैं, ऐसा कोई माने तो ?

उ०—वैसा मानने के लिये कोई आधार नहीं दिखाई देता।

"किंकणी" और कंकणी इन दोनों ही का अर्थ "पैरों में पहनने के छोटे घुंघरू" ऐसा है। तो "हंसकिंकणी" और "हंसकंकणी" में कोनसा बड़ा भेद हो सकता है भला ? इसकी अपेक्षा यदि हम यह समझकर चलें कि प्रतापसिंह के समय में इस राग को भैरव थाट का समझ कर गाते होंगे और वही फिर काफी थाट में डाला गया होगा। प्रतापसिंह द्वारा भी इस राग को पुत्र भार्या आदि की सूची में डाला हुआ प्रतीत नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि उन्हें यह राग ग्रन्थों में कहीं नहीं मिला होगा, ऐसा हम कह सकते हैं। अत: उनको वह कहां से प्राप्त हुआ, इसे मैं भी कैसे बता सकूँगा ?

किन्तु एक बात यहां कहे देता हूँ, वह यह है कि प्रतापसिंह ने अपने ग्रन्थ के अन्त में झिंझोटी, पीलू, हिजेज, भटियार, काफी, परदीपकी, सिन्दूरा, ईराक इत्यादि जो राग बताये हैं, उनमें इसे भी बताया है। सङ्गीत पारिजात में "कंकण" राग बताया गया है और "हंस" ऐसा भी एक अलग प्रकार दिया है।

प्र०—तो फिर "हंस" और "कंकण" ये नाम और ये राग अपने यहां प्राचीन ही हैं, ऐसा प्रतीत होता है और यदि ऐसा हो तो इन दोनों के संयोग से "हंसकंकण" अथवा "हंसकिंकिणी" प्रकार उत्पन्न हुआ होगा, ऐसा भी कोई कह सकता है ?

उ०—हां, ऐसा कौन कह सकेगा, परन्तु उन दो रागों के स्वर पारिजात में कैसे कहे हैं, यह पहले बताये देता हूँ। "कंकण राग" अहोबल ने इस प्रकार कहा है:—

शंकराभरणे मेले रागः कंकणसंज्ञकः।
पहीनो गादिराख्यातो बहुमध्यमसंगतः॥

इस राग का स्वरस्वरूप उसने आगे ऐसा कहा है। ग म नि सा रे सा नि सां नि ध नि ध म ग म म म ग म म ग रि सा रि सा रि सा नि स ध नि स। इ०।

हंस का वर्णन तथा स्वर पारिजात में इस प्रकार हैं:—

गनिभ्यां वर्जितो हंसो रिधकोमलसंयुतः।

उदाहरण:—सा रि म प ध ध प म रि रि म प प म रि रि म रि सा रि सा ध सा म। इ०।

प्र०—इससे यह कौन कह सकेगा कि राजा प्रतापसिंह ने जो "हंसकिंकिणी" अपने ग्रन्थ में दी है, उसमें अहोबल पंडित के इन दोनों रागों का मिश्रण उस राजा के अधीनस्थ पण्डितों ने किया होगा। आपका क्या विचार है?

उ०—मेरी समझ से तुम्हारा यह तर्क अनुचित नहीं है क्योंकि तर्क करने का सबको समान अधिकार है। हमारा प्रश्न यह है कि हम आज जो प्रकार गाते हैं उसके लिये क्या इस पारिजात की व्याख्या उपयोगी होगी? परन्तु मित्र! अभी तक प्रचलित हंसकिंकिणी का नाद स्वरूप मैंने नहीं बताया है। इसलिये उस स्वरूप की तुलना ग्रन्थ लक्षण से तुम कैसे कर सकोगे?

प्र०—हां, आपका यह कहना भी यथार्थ है। एक बार हम अपने हंस कंकणी का स्वरूप अच्छी तरह सीख लें, फिर देखें कि उस स्वरूप का सम्बन्ध अहोबल पण्डित के उस राग लक्षण से मिलता है क्या? हंस में रे, ध स्वर कोमल कहे हैं, यह कठिनाई तो पहले ही स्पष्ट दिखाई देती है।

उ०—तो फिर 'हंसकंकणी' राग आज हमारे गायक कैसा गाते हैं, वह सुनाता हूँ।

यह राग काफी थाट का होने से इसमें गन्धार तथा निषाद दोनों स्वर कोमल होंगे ही। उसी प्रकार ऋषभ तथा धैवत तीव्र होना स्वाभाविक ही है। काफी थाट के रागों के आरोह में स्वर संगति के नियम से कभी-कभी निषाद तीव्र होता है और वह क्षम्य भी है, यह तुमको विदित ही है। यदि वह निषाद आरोह में कोमल लिया जाय तो वह उस नियम के अनुसार होगा, यह बात भी मैंने कही थी। अब एक मुख्य तथा ध्यान देने योग्य बात यह है कि हंसकंकणी में दोनों गन्धारों का प्रयोग होता है। तीव्र गन्धार सदैव आरोह में आता है।

प्र०—परन्तु इसमें क्या आश्चर्य? काफी में भी तीव्र गन्धार आरोह में कभी-कभी लेते हैं, ऐसा आपने कहा ही था?

उ०—हां, यह मैंने कहा था; परन्तु वहां वह स्वर विवादी के नाते लिया जाता है, ऐसा भी मैंने कहा था। तीव्र गन्धार बिलकुल न लिया जाय तो भी काफी राग अच्छी तरह गाया जा सकता है।

प्र०—हां ! अब समझ में आया। हंसकंकणी में तीव्र गन्धार नहीं लिया जाय तो वह राग "हंसकंकणी" नहीं होगा, ऐसा कहना चाहिए ?

उ०—हां, यह एक मोटा भेद पहले ध्यान में रखो। हंसकंकणी राग का समय दिन का तीसरा प्रहर मानते हैं।

प्र०—तो फिर आरोह में ऋषभ तथा धैवत स्वर इसमें वर्ज्य होंगे ही एवं षडज, मध्यम तथा पंचम स्वर प्रबल होंगे, ठीक है न ?

उ०—हां, ठीक है। तो इस राग का आरोहावरोह मुख्यतः नि सा ग म प नि सां। सां नि ध प म ग रे सा। यह निश्चित हुआ। अब आगे तीव्र गन्धार की व्यवस्था करनी रही। अच्छा बताओ इस तीव्र गन्धार को कैसे व कहां प्रयुक्त करना चाहिये ?

प्र०—यह कार्य इतना कठिन नहीं दीखता। हम ऐसा कर सकते हैं, नि सा, ग म प, नि सां। सां नि ध प म ग रे सा। बस, इस प्रकार करने से "हंसकंकणी" होगा न ?

उ०—केवल इतना ही करने से तुम्हारे राग को कोई "हंसकंकणी" कहेगा, सो तो नहीं कह जा सकता, परन्तु आरोहावरोह कुछ अन्शों तक ठीक है। इस राग में "धनाश्री" अङ्ग अधिक है तथा "पग" सङ्गति सुन्दरता से चमकती हुई रखनी पड़ती है। इस में तीव्र गन्धार जहां आयेगा वहां कुछ रुकना पड़ेगा, कारण वह उस थाट का स्वर नहीं है, और वहां ठहरते हुए मध्यम कहीं कहीं स्वतन्त्र रखना पड़ेगा। इसका कारण यह है कि ऐसा किये बिना वह उतना टुकड़ा पृथक होकर स्पष्ट नहीं दिखाई देगा।

प्र०—तो फिर इस राग में बहुत उलझन जान पड़ती है। हमको यह राग किस प्रकार आरम्भ करना चाहिये, यह आप ही बतायेंगे तो अच्छा होगा।

उ०— ठीक है, कहता हूँ। इस राग में धनाश्री अङ्ग जहां तहाँ दिखाना चाहिये। अतः नि सा, ग म प, म प, ध प, ग, म, प ग, रे सा, नि, सा म ग रे सा ग, म प ग, रे सा, ऐसा उठाव किया हुआ अच्छा दीखेगा। कोई कोई तीव्र गन्धार से ही यह राग प्रारम्भ करते हैं, जैसे—"ग, ग म प, ग, रे सा, नि सा ग, म प, ग, प म ग।" इसमें वैचित्र्य इतना है कि "प ग, रे सा" का यह टुकड़ा श्रोताओं की दृष्टि में जितनी जल्दी आये उतना ही अच्छा।

प्र०—वह शीघ्र ही दृष्टि में नहीं आया तो संभवतः लोगों को खमाज आदि रागों का आभास हो सकता है ?

उ०—हां, ऐसा होने की थोड़ी सी सम्भावना है, परन्तु आरोह में आगे धैवत वर्ज्य होने से खमाज उतना नहीं दिखेगा तथा धनाश्री अङ्ग भी नहीं, और जब तक यह नहीं दीखेगा तब तक श्रोता यह निर्णय नहीं कर सकते कि तुम कौनसा राग गा रहे हो। हम कौनसा राग गा रहे हैं, यह लोगों के सामने रखने का सदैव अच्छे गुण

लोग प्रयत्न करते हैं, यह मैंने तुमको बताया ही है। हम धनाश्री गा रहे हैं तथा उसमें दोनों गन्धार ले रहे हैं, यह श्रोताओं को दिखाना चाहिये। अब इस राग का साधारण चलन कैसा है, सो देखो:—

नि़ सा ग, म प ग॒, रे सा, नि़ सा, ग, म, सा ग, म प ग म, प, नि॒ ध प, ग, सा ग, म प ग॒, रे सा। नि़, सा, प़ नि़ सा, नि़ सा म ग॒ रे सा, प, ध प, नि॒ ध प, सां रें सां नि॒ ध प, प सां, नि॒ ध प, ध प, ग म, प ग॒, रे सा। नि़ सा, प़ नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, ग़, म़ प़, नि़ सा, ग, सा ग, म, नि॒ ध प, सां नि॒ ध प, ग, म, प ग॒, रे सा। मं गं॒ रें सां, रें सां, नि॒ ध प ग म प, सां नि॒ ध प, सां, नि॒ ध प, ध प, ग, म, सा ग, म. प ग॒, रे, सा। नि़ सा म ग॒ रे सा, नि़ सा ग, सा ग म, प नि॒ ध प म प ग, म, प ग॒ रे, सा। नि़ सा ग॒ म प, म प, नि॒ ध प, सां नि॒ ध प, रेंसां, नि॒ ध प, ध प, ग, म, रें रें सां, नि॒ ध प, ग, म, सा ग, म, प ग॒, रे सा। ध्यान में आगया न?

प्र०—इसमें कहीं कहीं "पीलू" राग का आभास हमें क्यों होता है?

उ०—यह तुम्हारे ध्यान में खूब आया। प ग॒ सङ्गति पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। पीलू में हम "प ग॒, नि़, सा" ऐसा करते हैं, वैसा इसमें नहीं होता। पीलू में भीमपलासी राग के अङ्ग हैं, इस कारण उसमें भी तिरोभाव को स्थान है, परन्तु इस राग में "ग, म प ग॒, रे, सा" ऐसा करने से धनाश्री अङ्ग आगे आयेगा। इसके पश्चात् फिर "नि़, सा, ग, म प, प ग," ऐसा किया तो धनाश्री पृथक् होगी।

प्र०—अब आया ध्यान में। आगे फिर अन्तरा कहां से प्रारम्भ होता है? कारण उत्तरांग में कंकणी का विशिष्ट भाग कुछ भी नहीं है।

उ०—वहां उसकी आवश्यकता नहीं, परन्तु उसमें तीव्र निषाद सुन्दर स्पष्ट दिखाई दे, ऐसा रखते हैं। ऐसा करने से धनाश्री कुछ झलकती है। यह किस प्रकार किया जाता है, सो देखो:—

म प, नि, नि सां, निसां, म प नि सां गं॒ रें सां, नि॒ ध प, ध प, ग, ग, म, प म, ग, सा ग, म प, ग॒ रे। अब इस भाग से धनाश्री की कितनी झलक मिलती है, यह देखा न?

प्र०—वास्तव में उसकी बहुत झलक मिलती है। इस तीव्र गन्धार में बड़ा ही चमत्कार है। अब अपनी कल्पना से इस राग का थोड़ा सा विस्तार करके मैं दिखाता हूँ, यह कैसा रहता है, देखिये:—

सा, ग, ग, म प, ग॒ रे सा। नि़, सा, ग, सा ग म प ग, म, ग, ग, म, प ग॒, रे, सा। नि़ सा, प़ नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, सा ग, म, प ग, म प, ध प, नि सां प, ग म प ग॒, रे सा। सां, प ध प नि॒ ध प, सा ग म, नि॒ ध प, प ग, म, प ग॒, रे सा। नि़ सा, प़ नि़ सा, नि़ सा ग म प, ग, प ग॒, रे सा। प ग, म प ग, सा ग म प, ध प नि॒ ध, प, ग म, सां नि॒ ध प, नि॒ ध प ध प, ग, म, प ग॒ रे सा। नि़ सा ग म प, ग म प, ध प, ग म नि॒

ध प, सां प, नि ध, प, रें सां, नि ध प, ध प, म प ग, म, प ग, रे, सा। नि सा म ग रे सा, प ग रे सा, नि सा ग रे सा, नि, सा, नि ध प, म प नि सा, ग, म, ध प, सां, ध प, ग, म प, ग, रे सा।

प, म प, ग म, प, नि सां, म प नि सां, गं रें सां रें सां, नि ध प, सां, प, नि ध प, गं, रें सां, नि ध प, सां नि ध प, ध प, ग, म, ध प ग रे सा, नि सा ग म प ग, म, ध प, ग, रे सा। इस प्रकार यदि हम करें तो राग कैसा दिखाई देगा ?

उ०—मेरी समझ से वह अशुद्ध नहीं दीखेगा। परन्तु कहीं कहीं नि सा ग, सा ग आदि हम करते हैं वहां "ग सा" यह भाग अवरोही तान का ही न समझना।

प्र०—नहीं, वह हमारे ध्यान में है। 'ध प म ग सा' अथवा 'प म ग सा' ऐसा कोई स्वरसमुदाय हम लेने लगें तो वह पहले हमको स्वयं ही कंकणी का नहीं जान पड़ेगा, 'नि सा ग, ग' यह आरोह का भाग है, ऐसा सदैव मानकर चलना चाहिये। तीव्र ग तथा तीव्र नि स्वर केवल आरोह में लेने चाहिये, यह नियम हम सदैव ध्यान में रखकर चलेंगे।

उ०—तो फिर ठीक है। अभी-अभी मैंने बताया था कि सङ्गीत पारिजात में 'हंस' तथा 'कंकण' इन दोनों रागों का कैसा वर्णन किया गया है। इन दोनों रागों के आरोहावरोह उसके वर्णन से इस प्रकार निर्धारित होते हैं:—

(१) सा रे म प ध सां	सां ध प म रे सा	हंसः।
(२) सा, ग म ध नि सां	सां नि ध म, ग रे सा	कंकणः ॥

प्र०—'हंस' राग आज के हमारे गुणकरी जैसा ही एक प्रकार होगा, ऐसा दिखता है ?

उ०—तुमने ठीक कहा। अब ये दोनों राग मिलाये जांय तो भी हमारे काफी थाट का 'हंसकंकणी' नहीं होता। कारण, हमको गन्धार तथा निषाद कोमल एवं ऋषभ तथा धैवत तीव्र चाहिये।

प्र०—आपका कहना सही है। हमारे धनाश्री में तीव्र ग, नि आरोह में लेकर ही किसी ने यह नया प्रकार तैयार किया, यही मानना हमको अधिक युक्तियुक्त जान पड़ता है। यह प्रकार सुन्दर है, इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। ठीक है न ?

उ०—वास्तव में ऐसा ही है। इस राग में एक छोटी सी 'सरगम' तुमको बताता हूं। इसे तुम कण्ठस्थ कर लो तो यह राग सदैव तुम्हारे ध्यान में रहेगा।

राग हंसकंकणी—झपताल.

×		२			०		३		
सा	ग	ग	म	प	ग॒	ऽ	रे	सा	ऽ
नि़	नि़	सा	ग	ऽ	म	प	प	म	ग

अन्तरा.

×		२			०		३		
म	प	नि	ऽ	नि	सां	ऽ	प	नि	सां
म	प	नि	सां	गं॒	रें	सां	नि॒	ध	प
प	नि॒	ध	प	ऽ	म	ग	ग	प	म
सा	नि़	सा	ग	ऽ	ग	म	प	म	ग
ग	ग	ग	म	प	ग॒	ऽ	रे	सा	ऽ

प्र०—वाह वा ! इस सरगम में तो इस राग के सभी अङ्ग स्पष्ट ही दिखाई देते हैं ।

उ०—हां, अब अपने प्रचलित हंसकंकणी के आधार बता कर यह राग पूरा करता हूँः—

काफीमेलसमुत्पन्ना रागणी हंसकंकणी ।
लक्ष्याध्वनि बुधैर्गीता तृतीयप्रहरे दिने ॥
आरोहे रिधहीना स्यात् संपूर्णा प्रतिलोमके ।
धनाश्र्यंगप्रगीताऽसौ भूरिरक्तिप्रदायिका ॥
गांधारद्वययोगोऽत्र कौशल्येन प्रदर्शितः ।
रोहणे तीव्रगो युक्तो विलोमे कोमलाव्हयः ॥
पंचमः संमतो वादी संवादी षड्ज ईरितः ।

धनाश्र्यंगप्रधानत्वं रागेऽस्मिन् सर्वसंमतम् ॥
विचित्रमप्रसिद्धं च रूपमेतदसंशयम् ।
गीयते लक्ष्यमार्गेऽत्र केवलं गायनोत्तमैः ॥

लक्ष्यसंगीते ।

हरप्रियामेलभवा पवादिनी
रिधौ षरित्यज्य समारुहन्ती ।
पूर्णावरोहा किल हंसकंकणी
द्विगा तृतीयप्रहरेऽह्नि गीयते ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

द्विगा मृदुनिमा चैव प्रारोहे रिधवर्जिता ।
षड्जपंचमसंवादाऽपराह्णे हंसकंकणी ॥

चन्द्रिकायाम् ।

चढत रिखब धैवत नहीं, दोउ गंधार दिखाय ।
तीवर रिध कोमल गमनि हंसकंकणी गाय ॥

चन्द्रिकासार ।

सगौ मपौ गरी सश्च निसौ गमौ पमौ पगौ ।
पांशाऽपराह्णगा लक्ष्ये कीर्तिता हंसकंकणी ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—यह राग अब हमारी समझ में आगया । अब इस अङ्ग का 'प्रदीपकी' लेंगे ?

उ०—हां, अब वही लेना होगा । सर्व प्रथम एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि प्रचार में तुमको यह राग क्वचित् ही सुनने को मिलेगा । इसके स्वरूप के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है । प्राचीन ग्रन्थों में "प्रदीपकी" राग दृष्टिगोचर नहीं होता । दक्षिण के "रागलक्षण" में एक "सुप्रदीप" नाम का प्रकार कहा है, परन्तु उसमें 'सा रे ग म प ध नि सां' ऐसे स्वर हैं । हमारे प्रकार में ऋषभ तीव्र है ।

प्र०—तो फिर अब 'लक्ष्यमार्गमनुसृत्य बुधः कुर्यात् स्वनिर्णयम्' ऐसा कहने की नौबत आयेगी ?

उ०—मैं भी यही समझता हूँ । इस राग के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक मत हैं । हम इसे काफी थाट में मानते हैं । रामपुर में यह राग बिलावल मेल में स्पष्टतया गाया हुआ मैंने सुना था । सुनने वालों को वह बिलावल के किसी प्रकार जैसा स्पष्ट दीखेगा । इस प्रकार का भी हम तिरस्कार नहीं कर सकते, कारण गया के पास "छपरा" गांव के एक महन्त के संग्रह में भी ऐसे ही स्वरों का एक गीत 'प्रदीपकी' अथवा 'परदीपकी' राग नाम मेरे देखने में आया था ।

प्र०—रामपुर में आपने जो सुना, वह गीत किस प्रकार का था और वह आपने किन से सुना ?

उ०—वह गीत स्वयं रामपुर के नवाब साहेब ने मुझे सिखाया था। उसके स्वर इस प्रकार थे, देखो:—

ग	म	प	ऽ	म	ग	ऽ	सा	ऽ	ऽ
×		२			०		३		
सा	सा	सा	ग	सा	(ग)म	ग	(री)ग	ऽ	सा
सा	सा	ग	ऽ	म	प	प	नि	ऽ	(ध)नि
सां	सां	सां	प	ऽ	प	(म)प	(प)ग	म	प।

अन्तरा.

प	प	नि	नि	नि	सां	सां	सां	ऽ	सां
×		२			०		३		
(मं)गं	मं	गं	ऽ	सां	ऽ	प	ग	ऽ	म
×		२			०		३		
ग	म	प	ऽ	म	ग	ऽ	सा	ऽ	सा।
×		२			०		३		
प	प	सां	ऽ	सां	सां	ऽ	सां	ऽ	सां
×		२			०		३		
सां	सां	गं	ऽ	मं	गं	गं	सां	ऽ	सां
×		२			०		३		

ग		म	ग	ऽ	म	प		ऽ	नि	ऽ	सां
×			२			०			३		
सां		ऽ	प	गम	प	ग		ऽ	म	ग	ऽ
×			२			०			३		

नवाब साहेब ने यह भी कहा था कि यह स्वरूप उन्होंने खां साहेब वजीर खां के गुरु से प्राप्त किया है। इस गीत के बोल (शब्द) उन्होंने इस प्रकार कहे थे। "पारन पायो। दूजे पंडत कहायो। धुरपद गीत गुनि। मेरे जिया नगलायो॥ पाछे गुपत पाछे परगट। ब्रह्मा विद्या चुरायो। सारङ्ग बोरायो" कहे मियां तानसेन। सुनहो गोपाल नायक। जिनही दिये सो। तिन ही लुकायो।" यह गीत झपताल में था। वजीर खां साहेब तानसेन के वंशज तथा एक सुप्रसिद्ध सङ्गीत विद्वान हैं।

प्र०—इस गीत में रिषभ तथा धैवत ये दोनों स्वर वर्ज्य हैं तथा वे आरोह एवं अवरोह दोनों में नहीं हैं, यह विशेषता है। इन दोनों स्वरों के अभाव से यह स्वरूप कहीं कहीं विहाग जैसा तथा कहीं कहीं बिलावल जैसा अवश्य दीखता है। अच्छा तो उस छपरा के गीत में तथा इसमें क्या कुछ साम्य है?

उ०—छपरा के प्रकार में सबसे बड़ा अन्तर तो यही है कि उसके अवरोह में रिषभ तथा धैवत स्वर लिये हैं। जब कि रामपुर के प्रकार में वे बिलकुल वर्ज्य हैं।

प्र०—तो फिर छपरा का स्वरूप हमारे विहाग से पृथक कैसे होगा?

उ०—क्यों भला? "वादिभेदे रागभेदः" यह भी तो हमारा एक प्रसिद्ध नियम है न? अवरोह में ये रि, ध स्वर कुछ बढ़ाकर दिखाये कि राग पर विहाग की छाया की अपेक्षा बिलावल की ही छाया विशेष पड़ेगी।

प्र०—हां, यह स्वीकार है। तो फिर वह छपरा का प्रकार स्वरों में बोलकर हमें बताइये न?

उ०—हां, कहता हूँ। सुनो:—

प		ऽ	ध	म	ग	रे		ऽ	सा	रे	सा
×			२			०			३		
नि़		नि़	सा	ऽ	ग	रे		सा	नि़	ध़	प़
×			२			०			३		
प़		प़	नि़	ऽ	नि़	सा		ऽ	सा	रे	सा
×			२			०			३		
सा		ग	ग	म	प	ग		म	ग	रे	सा।
×			२			०			३		

अन्तरा.

प ×	प	नि २	सां	सां	सां ०	ऽ	सां ३	रें	सां
नि	सां	नि	ऽ	नि	सां	नि	ध	ध	प
ग	म	प	ग	म	ग	रे	सा	रे	सा
ग	म	प	नि	ऽ	सां	गं	रें	सां	ऽ
प	सां	प	ध	म	ग	म	ग	रे	सा।

प्र०—अब ये दोनों प्रकार हम ध्यान में रखेंगे । इनके अतिरिक्त और कौनसे मत हैं ?

उ०—अभी अभी मैंने तुमसे कहा कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों में अर्थात् रत्नाकर से लेकर रागतत्वविबोध तक तमाम ग्रन्थों में "प्रदीपकी" दृष्टिगोचर नहीं होता, यह तुम्हें स्मरण ही होगा । इसके पश्चात् क्षेमकर्ण की रागमाला में यह राग हमें दिखाई देता है ।

प्र०—उस पण्डित ने इस राग का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उ०—वह कहता है "प्रदीपकी" दीपक की एक रागिनी है तथा उसका वर्णन वह इस प्रकार करता है:—

अथ प्रदीपिका ।

रक्तांबरा रक्तसुलोचना च सूर्यप्रभा सूर्यमुखी मनोज्ञा ।
कांते समीप कमनीयकन्ठा प्रदीपकी दीपकरागिणीयम् ॥
धैवतांशग्रहन्यासा ऋषभस्वरवर्जिता ।
तृतीययामे दिवसे प्रदीपा सा प्रगीयते ॥
ध नि सा ग म प सा सा प म ग सा ध नि ध सा ग सा ध ।
पलासीधानिसंयुक्ता जयंतश्रीश्च मिश्रिता ।
प्रदीपा जायते विद्वन् तृतीयप्रहरात्परम् ॥

प्र०—परन्तु ये स्वर किस थाट के हैं, इस सम्बन्ध में उसने क्या स्पष्टीकरण किया है ?

उ०—इसमें ही तो सारी कठिनाई है। स्पष्टीकरण उसने पाठकों पर छोड़ दिया है। कदाचित् "धैवतांशग्रहन्यासा" इस संकेत से उसका स्पष्टीकरण हो सकेगा।

प्र०—अर्थात् "ध नि सा रे ग म प" यह मूर्छना ग्रन्थकार कहता होगा। परन्तु पहले शुद्ध सात स्वरों का ग्राम जान लें तो फिर उससे यह मूर्छना क्या कोई पाठक नहीं निकाल सकता ?

उ०—हां, अवश्य निकाल सकता है। मैंने यह उद्धरण सङ्गीतकल्पद्रुम से दिया है। कल्पद्रुम में "रागमाला," "सङ्गीत दर्पण," "सङ्गीतोदधि" आदि ग्रन्थों के उद्धरण हैं, यह मैं पहले कह चुका हूँ। परन्तु वे उद्धरण हमारे कुछ चालाक गायक वादकों के काम में आते हैं, वे उनका उपयोग अपनी इच्छानुसार करके अपने शिष्यों की आंखों में धूल झोंक सकते हैं ?

प्र०—वह कैसे ?

उ०—एक उदाहरण ही दिये देता हूं। 'इसरारे करामत' नामक एक पुस्तक खां साहेब करामतउल्ला ने उर्दू में प्रकाशित की है। इन खां साहेब की तथा मेरी भेंट इलाहाबाद में कै० प्रीतमलाल गोस्वामी के घर सन् १९०८ में हुई थी और उसी समय उन्होंने इस पुस्तक की एक प्रति मुझे भेंट की थी। वे स्वयं 'सरोद' बजाते हैं तथा एक नामी गुणी हैं। उनकी पुस्तक विशेषरूप से मैंने एक उर्दू के जानकार से पढ़वा कर सुनी थी। उस पुस्तक में उन्होंने क्षेमकर्ण की रागमाला में वर्णित सारे राग, रागिनी, पुत्र, भार्या की रचना उद्धृत करली है तथा उन राग-रागिनी पुत्रादि में तीव्र कोमल आदि स्वर अपने नवीन ढङ्ग से लगा दिये हैं, ऐसा उस पुस्तक में किया हुआ दिखाई दिया। कुछ राग तो प्रसिद्ध ही हैं, इसलिये उनके स्वर लगाना तो आसान ही था। कुछ पुत्र तथा उनकी वधुओं में अपनी कल्पना से स्वर लगा कर एक ग्रन्थ उन्होंने तैयार कर दिया।

प्र०—यह वे कैसे कर पाये होंगे जी ?

उ०—चालाक मनुष्य के लिये इतना करना कठिन नहीं। अब इस प्रदीपकी को ही देखो न। 'धैवतांशग्रहन्यासा' कहा है न ? तब इस रागिनी की मूर्छना, 'ध नि सा रे ग म प' हुई अर्थात् बिलावल शुद्ध मेल स्वीकार करके ध—नि+सा—रे—ग+म—प—ध ऐसा खां साहेब ने किया और तीवर मा—रे+ग—म—प ध—नि—सां ऐसे स्वर दिये हैं।

प्र०—तो यह आसावरी थाट नहीं होगा क्या ?

उ०—अवश्य होगा। अब खां साहेब ने प्रदीपकी के आरोहावरोह कैसे कहे हैं, वह देखो। सा रे ग (तीवर तर) म प ध (सकारी)+ मां। परन्तु यह मेरा एक तर्क है, हां ! मैंने उनसे उनकी विचारधारा नहीं पूछी, लेकिन 'रागमाला' ग्रन्थ संस्कृत में है अतः उनके लिये वह समझना सम्भव नहीं। कै० प्रीतमलाल के यहां आकर वे यह पूछते रहते थे कि संस्कृत ग्रन्थ में क्या-क्या कहा है तथा उनसे कभी-कभी पुराने ध्रुपद सुन लेते थे, ऐसा कै० गोस्वामी ने मुझे बताया था। खां साहेब सरोद बजाते थे, तब यदि मूर्छना

का अर्थ 'क्रमात् स्वराणां सप्तानां" इत्यादि उन स्वामी ने इनसे कहा होगा तो उसके अनुमान से नये राग के स्वर किसी तरह बिठा लेना इनके लिये सम्भव था।

प्र०—परन्तु पहले शुद्ध स्वर कायम होंगे तब आगे कार्य चलेगा, ठीक है न?

उ०—हां, बिलकुल ठीक है। ग्रन्थकारों के शुद्ध स्वर कौनसे हैं, यह उन गोस्वामी को भी पता नहीं था, कारण मैंने उनसे कई बार चर्चा की थी।

प्र०—इन तमाम मनोरंजक बातों से तो हमको ऐसा दिखता है कि इन गायक-वादकों ने हमारे ही संस्कृत ग्रन्थों से किसी अधकचरे संस्कृतज्ञ व्यक्ति से सुन-सुनाकर उसमें अपने स्वर जोड़ दिये तथा उन स्वरों के आधार से नये गीत तैयार किये अथवा पुराने गीतों में नये-नये स्वर लगा दिये और ये नये गीत फिर हमको ही पुराने रागनाम से सिखाये! क्या घोटाला है जी? इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?

उ०—कुछ अन्शों में तुम्हारा कहना ठीक है, यह कहना पड़ेगा। जब हमारे यहां ग्रन्थों के अध्ययन की प्रथा वर्षों से बन्द है तो ऐसा हाल होगा ही। परन्तु अब धीरे-धीरे इस विषय में सुशिक्षित वर्ग का ध्यान जा रहा है, जिससे सर्वत्र जागृति हुई है। शासकीय एवं व्यक्तिगत विद्यालयों में सङ्गीत विषय को स्थान मिलने लगा है। अतः सङ्गीत की समुन्नति अवश्यंभावी है। इन पुराने ग्रन्थों की पर्याप्त छानबीन की जाकर उनके सुबोध भागों का उपयोग किया जायगा तथा उनसे नवीन पद्य रचना होगी। नये-नये राग उत्पन्न होंगे, पुराने रागों की पद्धति के अनुसार सुन्दर व्यवस्था होगी जिसके कारण आगामी पीढ़ी को कोई कठिनाई नहीं रहेगी, ऐसा मुझे विश्वास है। कला की वर्तमान स्थिति जो आज हम देखते हैं, यही आगे इसी प्रकार रहेगी, ऐसा कदाचित् नहीं कहा जा सकता। वैसे ही, यदि यह परिस्थिति नहीं रही और उसके स्थान पर कोई नई परिस्थिति उत्पन्न हुई तो वह बुरी होगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। मुझे सङ्गीत के विषय में पचास वर्षों से अभिरुचि है, इस अवधि में नये पुराने सैंकड़ों गायकों को मैंने सुना, उनसे इस विषय पर चर्चाऐं कीं। मैंने जिन कलावन्तों को बाल्यावस्था में सुना, उनमें तथा आज के कलावन्तों में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। कुछ बातें मुझे पुराने कलावन्तों में बहुत अच्छी दिखाई दीं तो कुछ मुझे नये लोगों में भी वैसी दिखाई दीं। और कुछ वर्षों बाद इनसे भी निराला प्रकार होगा, फिर भी वह प्रकार उस समय के श्रोता अवश्य पसन्द करेंगे। हमको आधुनिक प्रकार पसन्द है ही न? आज हमारे गायक-वादक स्वयं थाट, स्वर, आरोह, अवरोह, वादी-सम्वादी स्वर इनकी चर्चा करने लगे हैं तथा यह बातें हमारे नये ग्रन्थकार अपने ग्रन्थों में लिखने लगे हैं, उसी दृष्टि से श्रोतागण गायक-वादकों के गुण दोष परखने लगे हैं। सङ्गीतशालाओं में इस दृष्टिकोण से ही छोटे बच्चों को शिक्षण दिया जा रहा है, ये सारी बातें होनी ही चाहिये। एवं इनके होने में आश्चर्य की कोई बात नहीं। अच्छा मित्र! अब हम इस विषयान्तर को छोड़कर अपने "प्रदीपकी" राग पर ही विचार करें।

प्र०—हां, ठीक है। अच्छा तो प्रदीपकी के सम्बन्ध में आगे चलिये। क्षेमकर्ण ने इस रागिनी के बारे में जो कुछ कहा है, वह अभी हमने समझ ही लिया है। राग रागिनी-पुत्र-पुत्रवधू इस पद्धति की उत्तर के लेखकों पर बहुत ही सनक सवार रहती है।

उ०—यह मैं तुमसे कई बार कह चुका हूं। ब्रह्मा, सोमेश्वर, शिव, पिंगल, हनुमान कल्लिनाथ, विष्णु, गणेश ऐसे अनेक मतों ने बड़ी उलझन पैदा करदी थी, परन्तु इस "जन्य जनक" नई राग पद्धति ने यह सारी उलझन दूर करके विद्यार्थियों का उत्तम एवं सुबोध मार्ग-प्रदर्शन किया है, यह बहुत अच्छा हुआ है! तुमसे जो कोई पुत्र भार्यादि की बात करे उससे तुम निम्नानुसार एक दो प्रश्न स्पष्ट पूछलो:—

(१) आपका मत कौनसा है?
(२) उसका कौनसा ग्रन्थ है तथा उसको किसने, कब एवं कहां लिखा?
(३) उसके मुख्य सात स्वर-शुद्ध-कौनसे हैं? और वे ऐसे क्यों हैं?
(४) किन तत्वों के आधार पर राग, रागिनी एवं पुत्र पृथक किये जायें?
(५) तुम्हारा मत आजकल कौनसे प्रान्त में चल रहा है?

ये प्रश्न पूछे कि वे अवश्य गड़बड़ा जायेंगे। क्योंकि जो कुछ वे कहेंगे वे ग्रन्थ अब छपकर तैयार हैं तथा उनके सामने वे ग्रन्थ तुम तुरन्त ही खोलकर दिखा सकते हो।

जयपुर के 'सङ्गीतसार' ग्रन्थ में भी एक 'परदीपकी' स्वरूप कहा है।

प्र०—उसमें वह कौनसे स्वरों में कही गई है?

उ०—उसमें ग्रन्थाधार तो नहीं दिये हैं। परन्तु 'परदीपकी' का स्वरूप जो उसमें दिया है वह विशेष सुन्दर नहीं। वह महाराज अपने मत का कार्यकारण भाव से स्पष्ट करने का बिलकुल भी प्रयत्न नहीं करते हैं। वह कहते हैं, 'शिवजी ने उन रागन में सों विभाग करिवे को अपने मुखसौं काफी संकीर्ण धनाश्री गायके वाको परदीपकी नाम कीनों'। आगे उसका चित्रण करके कहते हैं—'शास्त्र में तो यह सात स्वरन में गाई है। नि रि ग म प ध नि यातें सम्पूर्ण है। याको दिन के तीसरे पहर में गावनी। यह तो याको वखत है। और दुपहर उपरांत चाहो तब गावो। याकी आलापचारी सात सुरन में किये रागनी बरते।'

परदीपकी रागनी-संपूर्ण।

नि़ सा, प ध प, म ग, म, प, सा ग, सा रे़ सा।

प्र०—ऐसे व इतने स्वरूप से प्रदीपकी के चलन का बोध कैसे हो सकता है? यह हमको अपर्याप्त जान पड़ता है।

उ०—तुम्हारा कहना गलत नहीं। ग्रन्थकारों का मत इसमें 'काफी एवं धनाश्री' इन दो रागों का योग करने का दीखता है। उनके प्रत्यक्ष दिये हुए स्वरूप में ऋषभ कोमल तथा ग एवं नि तीव्र हैं, उसमें संस्कृत ग्रन्थकारों द्वारा कही गई संधिप्रकाश स्वरूप की धनाश्री दिखती है। सा, म, प ये स्वर काफी के कहे जायंगे। फिर भी यह स्पष्टीकरण समाधानकारक तो नहीं होगा।

अब हम 'प्रदीपकी' या 'परदीपकी' अथवा 'पटदीपकी' किस प्रकार गायेंगे, यह भी बताता हूं। हमारी प्रदीपकी को दोनों गन्धार की 'भीमपलासी' मान कर चला जाय तो कोई विशेष हानि नहीं। हंस कंकणी में भी दोनों गन्धार हैं, यह तुमने देखा ही था।

परन्तु उसमें मुख्य अङ्ग धनाश्री का था तथा प्रदीपकी में वही भीमपलासी का है, ऐसा समझलो। जो कठिनाई धनाश्री एवं भीमपलासी पृथक पहचानने में पड़ती है, वही हंसकंकणी तथा प्रदीपकी को पहचानने में पड़ेगी। इस काफी अङ्ग की अथवा थाट की प्रदीपकी तुमको क्वचित् ही सुनाई देगी।

प्र०—तो फिर इस प्रदीपकी में वादी मध्यम होगा। ठीक है न?

उ०—हां, वादी मध्यम है तथा उसका गाने का समय दिन का तीसरा प्रहर है। आरोह में रे एवं ध स्वर वर्ज्य हैं। अवरोह सम्पूर्ण है तथा तीव्र ग एवं तीव्र नि स्वर केवल आरोह में प्रयुक्त होते हैं। कोई प्रदीपकी में वादी षड्ज तथा सम्वादी मध्यम मानते हैं।

प्र०—ऐसी दशा में यह राग प्रारम्भ किस प्रकार किया जाय, तथा इसका इकट्ठा चलन कैसा निश्चित किया जाय, यह प्रत्यक्ष गाकर दिखाने से ही हमारी समझ में तुरन्त यह राग आ जायेगा?

उ०—ठीक है, तो सुनो:—

नि़, सा, म ग़ रे सा, नि़, सा, नि़ ध़ प़, नि़ नि़ सा, म, म, प ग, म, नि़, सा, ग म, प ग़, म ग़ रे, सा, नि़ रे सा।

नि़, प़ नि़, सा, म़ प़ नि़, सा, म, ग़, नि़ सा, म, प ग म, प, ध प, म प ग म, नि़, सा म ग़, म प, म, प ग़, रे, सा, नि़, रे सा।

नि़ सा म, ग म, प म, ध प, म, प ग, म, नि ध प, सां, नि ध प, ध प, ग, म, प ग़, रे, सा, नि़, सा, म ग़ रे सा, प म ग़ रे सा, नि ध प, ध प, म ग म, प ग़, रे, सा, नि़ रे, सा।

नि़, प़ नि़, म़ प़ नि़, ग़ म़ प़ नि़, प़ नि़ सा, नि़ सा, म, नि ध प, ध प, ग म, ध प, नि ध प, ग, म, नि़ सा ग, म, प ग, म, सां, प, ग म, रें सां, नि ध प, सां, नि ध प, ध प, ग, म प म, नि़, सा, ग, म, प ग़, रे, सा, नि़ रे सा।

आगे अन्तरा इस प्रकार करना चाहिये:—

म, प ग़ म, प, नि, प नि सां, नि, सां, गं़ रें सां, मं गं़ रें सां, रें सां, नि ध प, म, प ग, म, प नि प नि, सां, मं, मं गं़, मं पं, मं, मं गं़ रें सां, सां, नि ध प, ध प, म प ग, म, प ग़ रे, सा, नि़ रे सा।

नि, नि, सां, नि ध प, म प ग म, सां, नि ध, प, म, प ग, म, नि़ सा ग, म, प, ग म, ध प, ग़ म, प ग़, म ग़, रे सा।

म, प ग़ म, प, नि, प नि, सां, नि सां, मं गं़ रें सां मं गं रें सां, रें सां, नि ध प, सां, प ध प म, ग म, नि़, सा, ग, म, प ग़, रे सा, नि़ रे सा।

इस प्रकार से यदि तुम यह राग गाते गये तो तुम हंसकंकणी से यह स्वरूप बिलकुल पृथक रख सकोगे। इस राग के बीच-बीच में, 'नि ध प, ग, म, 'नि़ सा ग, म'

ये भाग आगे लाने में तथा योग्य स्थानों पर 'म ग॒ रे सा' स्वरों की तान पूरी करने में सारा वैचित्र्य है, यह ध्यान में रखो। अब तुम थोड़ा सा इस राग का विस्तार करके दिखाओगे क्या ?

प्र०—कोशिश करके देखता हूँ:—

नि̤, सा, म ग॒ रे सा, प̤ नि̤ म̤ प̤, नि̤, सा, रे नि̤, म̤ प̤ नि̤, नि̤, सा, सा म, म ग॒, म ग॒ रे सा, नि̤ ध̤ प̤, सा, प̤ नि̤, सा, ग, सा ग, म, प, म प ग, म, नि̤, सा म, ग॒, म प, ग॒ म ग॒ रे सा, । नि̤ सा, म ग॒, म प, म प, प, ध प, नि ध प, प, ग म, प म, प ग॒, रे सा, नि̤ सा, म ग॒ रे सा। नि̤, प̤ नि̤, सा, सां, प, ध प, म प ग, म, नि ध, प, म प, ग॒, नि̤, सा, म ग॒, प म प, ग॒, म ग॒ रे सा।

उ०—और आगे जाने की आवश्यकता नहीं। अब यह स्वरूप तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आगया, ऐसा प्रतीत होता है। परन्तु यह प्रदीपकी का स्वरूप तुम्हें बहुत कम देखने को मिलेगा, यह मैं कह ही चुका हूँ। अब यह एक छोटी सी सरगम इस राग की सीख लो तो तुम्हें यह राग भली भांति अवगत हो जायेगा:—

प्रदीपकी–सरगम–चौताल

स्थायी.

नि̤ सा ×	म	ग॒ ०	रे	सा २	ऽ	सा नि̤ ०	सा नि̤	प̤ ३	नि̤	सा ४	ऽ
सा नि̤	सा	म	ऽ	म	ग॒	प	म	ग॒	रे	सा	ऽ
सा नि̤	सा	म	ऽ	म	ऽ	प	प	ग	ग	प	म
सां	नि॒	ध	प	ग	म	प	ग॒	म	ग॒	रे	सा

——

अन्तरा·

म	ऽ	म	प	ग	म	प	नि॒	ऽ	नि॒	सां	ऽ
×		०		२		०		३		४	
नि॒	सां	ग॒ं	रें	सां	ऽ	रें	सां	ऽ	नि॒	ध	प
म	म	प	ग	ऽ	म	प	नि॒	सां	ग॒ं	रें	सां
सां	नि॒	ध	प	म	ग	सा	ग	म	प	ग	म

अब अपने प्रचलित 'प्रदीपकी' राग के स्वरूप सम्बन्धी एक दो आधार भी कह कर इस राग को पूरा करें।

स्यात्काफीमेलसंजाता प्रदीपकी सुसंमता ।
आरोहे रिधहीनं स्यादवरोहे समग्रकम् ॥
मंजरीं रागिणीं गीत्वा यदैषारभ्यते पुनः ।
किंचिद्वर्णनीयं तद्वैचित्र्यमनुभूयते ॥
मंद्रमध्यस्वरैः सैव पलाशिकां प्रसूचयेत् ।
पलाशी मांशिका नित्यं सांशिकेयं मता जने ॥
मते केषांचिदप्येषा मध्यमस्वरवादिनी ।
प्रतिलोमगतो रिःस्यादसत्यायोऽतिदुर्बलः ॥
ईषन्मृदू समादिष्टौ कैश्चिदत्र गिधैवतौ ।
एतन्मर्मपरिज्ञानं केवलं विदुषां भवेत् ॥
तीव्रगांधारयोगोऽत्र कौशल्येन सुसाधितः ।
विश्लिष्टो मध्यमोऽपिस्यात् कंकणीभेददर्शकः ॥
लक्ष्यसंगीते ॥

पगौ मगौ रिसनिसा गमौ पगौ मनी धपौ ।
मगौ मगौ रिसौ पटदीपकी षड्जवादिनी ॥
अभिनवरागमंजर्याम् ॥

इस प्रकार इस धनाश्री अङ्ग के कुल पांच राग हुए। ये सब ध्यान में रहेंगे न ?

प्र०—यह सब कुछ अच्छी तरह से हमारी समझ में आ गया है। हम इस राग को संक्षेप में इस प्रकार ध्यान में रखेंगे:—

प्रथम 'भीमपलासी' ध्यान में रखें। यह राग बिलकुल साधारण है। इसको धनाश्री से पृथक रखने में सावधान रहने की आवश्यकता है। धनाश्री एवं भीमपलासी एक दूसरे से मेल खाते हैं। इनमें वादी स्वर से अन्तर रखना पड़ता है। भीमपलासी में वादी मध्यम तथा धनाश्री में पंचम है। इस वादी के कारण विशिष्ट संगति होती है, यह ध्यान में रखना चाहिये। 'नि सा म, ग, म ग रे सा, म' ऐसा कहा कि भीमपलासी सामने आयेगा और 'नि सा ग म प, म प, नि ध प, प ग, प ग, म ग रे सा' बोलते ही धनाश्री सामने आयेगा। 'भीम' एवं 'पलासी' पृथक करने का जो एक मत आपने बताया था, वह भी हमारे ध्यान में है। धैवत स्वर वर्ज्य करके 'पलाशी' पृथक करना चाहिये, ऐसा वह मत था। भीमपलासी में रि, ध कुछ उतरे हुए तथा कुछ के मत से कोमल लेने चाहिये, ऐसा भी आपने कहा था; किन्तु इस झगड़े में हम नहीं पड़ेंगे, जबकि हम वादी भेद से ही राग पृथक कर सकते हैं। ग्रन्थकारों द्वारा कही गई भीमपलासी आज प्रचार में नहीं है। केवल धनाश्री को उत्तम आधार प्राप्त है। इन दोनों रागों के आरोह में रि, ध छूटते हैं, कारण ये तीसरे प्रहर के राग हैं। धानी में रि, ध स्वर बिलकुल नहीं हैं तथा वादी गन्धार होने से वह राग स्वतन्त्र ही है। अब रहे हंसकंकणी एवं प्रदीपकी। इन दोनों रागों में दोनों गन्धार एवं दोनों निषाद हैं। इसलिये धनाश्री, भीमपलासी एवं धानी से इनका बचाव हो ही जायगा तथा हंसकंकणी में पंचम वादी एवं प्रदीपकी में मध्यम वादी है, इस भेद से भी राग पृथक होंगे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि धनाश्री के विस्तार में 'ग, ग म प, ग, म ग रे सा, प, ग, म प ग, प ग, रे सा' ऐसे टुकड़े बीच में लिये तो हंसकंकणी होगी, एवं 'सा, ग; म, प म, नि सा ग, म, नि ध प, ग, म, म ग रे सा' ऐसे टुकड़े लिये गये तो प्रदीपकी होगी। इसके अतिरिक्त प्रदीपकी का एक शुद्ध स्वरों का अप्रसिद्ध प्रकार रामपुर में आपने जो सुना था, वह भी हमारे ध्यान में है।

उ०—मेरी समझ से यह राग तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ गया, अब आगे चलने में कोई हानि दिखाई नहीं देती।

प्र०—अब कौन सा राग लेंगे?

उ०—अब हम तीसरे अङ्ग के राग लेंगे। वे इस प्रकार हैं, देखो:—

वागीश्वरी बहारश्च सुहासुघाइका तथा।

नायकी साहना तद्वद् शाख्यो लक्ष्यविश्रुतः।

रागाः प्रकीर्तितास्तज्ज्ञैः कानडांगसुशोभिताः।

प्र०—तो फिर पहले वागीश्वरी राग लेना चाहिए, ऐसा प्रतीत होता है?

उ०—हां, पहले वही लेना सुविधाजनक होगा। काफी थाट के रागों में कुछ 'कानड़ा' अङ्ग के राग हैं, यह मैंने कहा ही था। वागीश्वरी को एक कानड़ा प्रकार ही

हमारे गायक-वादक मानते हैं। कोई उसी में एक भेद यह बताते हैं कि 'वागीश्वरी' तथा 'वागीश्वरीकानड़ा' ये दोनों पृथक-पृथक राग मानने चाहिये।

प्र०—परन्तु ऐसा कहने वाले स्वरों की दृष्टि से इस राग में भेद किस प्रकार रखते हैं?

उ०—यह हम अभी देखने ही वाले हैं। 'वागीश्वरी' का अपभ्रन्श 'बागेश्री' अथवा 'बागेसरी' ऐसा प्रचार में दिखाई देता है। यह बागेश्री राग हमारे यहां बहुत पुराना है, इसमें संशय नहीं। यह अत्यन्त लोकप्रिय है तथा बहुत से गायक-वादकों को आता है। यह राग हमारे संस्कृत ग्रन्थों में अवश्य मिलता है, परन्तु उस समय के स्वरूप में और आज के स्वरूप में बहुत अन्तर हो गया है।

प्र०—आप यदि उसका आज का स्वरूप हमको पहले बतायें तो अच्छा होगा?

उ०—कहता हूँ! 'बागेश्री' राग काफी थाट से उत्पन्न होता है। इस राग में पंचम स्वर लेना चाहिये अथवा नहीं, इस विषय पर कभी-कभी मतभेद उत्पन्न हो जाता है। कोई कहते हैं कि बागेश्री में पंचम आरोह तथा अवरोह दोनों में वर्ज्य किया जाय। दूसरे कहते हैं कि यह स्वर अवरोह में थोड़ा सा लेने में आ जाय तो राग हानि नहीं होगी। तीसरे मत वाले कहते हैं कि पंचम स्वर आरोह तथा अवरोह इन दोनों में भी लिया जाय तो कोई हर्ज नहीं।

प्र०—इस मतभेद ने तो हमें उलझन में डाल दिया। तो फिर हमें कौनसा मत अपनाना चाहिये?

उ०—मेरी समझ से हमें ये तीनों मत स्वीकार करने होंगे। आजकल नवीन पद्य रचना में पंचम वर्ज्य अथवा आरोह में न लेने की प्रथा चल पड़ी है, परन्तु कुछ पुराने ख्याल तथा पुराने ध्रुपदों में यह स्वर आरोहावरोह में स्पष्ट लिया हुआ दिखाई देगा, यह स्वीकार करना पड़ेगा। यहां कुछ चतुर लोग हमको ऐसी एक युक्ति सुझाते हैं कि 'पंचम' का इस प्रकार (आरोहावरोह दोनों में) प्रयोग होने वाले राग को 'बागेश्वरी-कानड़ा' कहना चाहिये ताकि भेद सहज ही दिखाया जा सके।

प्र०—यह भेद आपको कैसा प्रतीत होता है?

उ०—मुझे इसमें कोई विशेष अर्थ नहीं दिखाई देता। भेद उत्पन्न करने के लिये कुछ न कुछ किया ही जाय, इस बात में मुझे विशेष महत्व नहीं जान पड़ता। यद्यपि कुछ ख्यालों में पंचम स्पष्ट है तथापि वहां भी उसको चलाने के लिये अवरोह में रखने का प्रयत्न किया गया है, ऐसा मर्मज्ञ लोगों को दिखाई देता है। कभी जलद तानों के अथवा दो तीन स्वरों के छोटे टुकड़ों के आरोह में वह दिखता है, परन्तु वह प्रयोग तानों की सुविधा के लिये किया हुआ दीखता है। फिर भी इस प्रकार को भी एक पृथक मत मानकर चलना मुझे अधिक हितकारी जान पड़ता है, यद्यपि ऐसे गीत थोड़े ही होंगे। पंचम रहित बागेश्री राग ही भलीभांति पृथक पहिचाना जा सकता है, यह भी ध्यान में रखने की बात है :

प्र०—हां, ऐसा पंचम रहित एक प्रकार प्रचार में है, यह आपने कहा ही था।

उ०—तो सारांश यह निकला कि पंचम समूल वर्ज्य किया जाने वाला तथा वह स्वर अवरोह में थोड़ा सा लिया जाने वाला, ऐसे बागेश्री के दो मुख्य भेद तुमको हमेशा ध्यान में रखने चाहिए। आरोहावरोह में पंचम लिये जाने वाले गीत भी कभी-कभी दृष्टिगोचर होंगे, परन्तु वे बिलकुल शास्त्रसंमत नहीं हैं, ऐसा निश्चय नहीं कर लेना चाहिये। अब आगे चलें। सा, रे ग॒, म ध, नि॒ सां। सां, नि॒ ध, म ग॒, रे, सा। यह बागेश्री का आरोहावरोह हो सकेगा। अब पंचम स्वर को अवरोह में कैसे लेते हैं, वह देखो। सां, नि॒ ध, म ध नि॒ ध, म प ग॒, रे, सा। जिन गीतों के आरोह में पंचम लिया हुआ दिखता है उनमें "सा रे, रे ग॒, प म, प, म ग॒, ध नि॒ ध," "म प ध नि॒, ध म, प ध ग॒, म ग॒ रे सा" इस प्रकार किया जाता है।

प्र०—बागेश्री में वादी स्वर कौनसा है?

उ०—वादी मध्यम तथा सम्वादी षड्ज है। इस राग का समय रात्रि का तीसरा प्रहर मानते हैं।

प्र०—इस राग में पंचम क्यों लेते हैं?

उ०—बागेश्री में "धनाश्री तथा कानड़ा" इन दो रागों का योग है, ऐसा समझा जाता है। इसीलिये कदाचित् ऐसा मानते होंगे। बागेश्री का वास्तविक अङ्ग इसके आगे के स्वरसमुदाय में है:—"म ध, नि॒ ध म, ग॒" आते-जाते जहां-जहां यह भाग दीखेगा, वहां-वहां बागेश्री का स्वरूप स्पष्टतया श्रोताओं के सम्मुख चित्रित हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके आगे "म ध नि॒ सां, ध नि॒ सां, रें सां, नि॒ ध, म ध सां, नि॒ ध, म ग॒, म ग॒ रे सा" ऐसा किया कि राग के सम्बन्ध में कोई शंका ही नहीं रहेगी।

प्र०—तो फिर इस राग का थोड़ा सा चलन बतादें तो अच्छा होगा?

उ०—हां, वह भी सुनो:—

सा, रे सा, नि॒ ध, सा, म ग॒, म ध, म ग॒, म ग॒ रे सा, नि॒ रे सा।

सा, रे सा, नि॒ ध, नि॒ सा, म ग॒, म ध नि॒ ध, म ग॒, म ग॒ रे सा।

सा, नि॒ ध, नि॒ सा, म ध नि॒ सा, ध नि॒ सा, म ग॒, म ध नि॒ ध, म ग॒, सां, नि॒ ध, म ध नि॒ ध, म ग॒, म ग॒ रे सा। सा, नि॒ सा, म ग॒ रे सा, नि॒ सा, रे सा, नि॒ ध, नि॒ सा, म ग॒, म ध नि॒ ध, म ग॒, सां, नि॒ ध, म ध नि॒ ध, म ग॒, ध, म ग॒, म ग॒ रे सा।

नि॒ ध नि॒ सा, म ध नि॒ सा, ध नि॒ सा, म, म ग॒, ध म ग॒, नि॒ नि॒ ध, म ग॒, सां, नि॒ ध, म ध नि॒ ध म ग॒, ध म ग॒, म ग॒, म ग॒ रे सा।

नि़ सा म, ग॒, म, ध, म, नि॒ ध, म, रें सां, नि॒ ध, म, मं गं॒ रें सां, नि॒ ध, म, म ध नि॒ सां, नि॒ ध, म, नि॒ ध, म, ध म ग॒, म ग॒ रे सा।

नि़ सा म ग॒ रे सा, नि़ सा म ग॒ म ध म ग॒ रे सा, नि़ सा म ग॒ म ध नि॒ ध म ग॒ रे सा, नि़ सा म ग॒ म ध नि॒ सां नि॒ ध म ग॒ म ग॒ रे सा, नि़ सा म ग॒ म ध नि॒ सां रें सां नि॒ ध म ग॒ रे सा।

ग॒ म ध, म ध, नि॒ ध, सां, नि॒ ध, रें सां, नि॒ ध, मं गं॒ रें सां, रें सां, नि॒ ध, म ध नि॒ सां, नि॒ ध, सां नि॒ ध, म ध नि॒ ध, म ग॒, म ग॒ रे सा।

ग॒ म ध नि॒ सां, ध नि॒ सां, नि॒ सां, रें सां, मं गं॒ रें सां, नि॒ सां मं गं॒ रें सां, नि सां रें सां, नि॒ ध, म, ग॒, म, मं गं॒ रें सां, नि॒ सां रें सां, नि॒ ध, म ध, सां, नि॒ ध, म ग॒, म ग॒ रे सा।

प्र०—हमारी समझ से इतना प्रस्तार पर्याप्त है! अब इस राग का चलन हमारे ध्यान में भली भांति आगया है।

उ०--ठीक है, तो फिर कहना चाहिए कि इस राग का चलन तुम्हारी समझ में आगया। इसमें सारा वैचित्र्य मध्यम तथा धैवत स्वरों को सङ्गति पर अवलम्बित है। केवल "म ध नि॒ ध, म" इतने स्वर तुमने कहे कि तुम बागेश्री गा रहे हो, ऐसा श्रोता समझने लगते हैं। यह सङ्गति बिलकुल स्वतन्त्र है, इस कारण इसको तुम यदि कण्ठस्थ ही कर लोगे तो अच्छा होगा। यह राग इस सङ्गति पर अवलम्बित होने के कारण इसमें पंचम स्वर आगे नहीं लाया जाता। "नि॒ ध प म ग॒ रे सा" ऐसे स्वर एक दम गाये तो वहां काफी जैसा प्रकार तुरन्त ही दीखने लगेगा। "ग॒ म प ध नि॒ सां" यह स्वरपंक्ति भी बागेश्री राग में सुन्दर प्रतीत नहीं होगी।

प्र०--ठीक है। "म ध नि॒ ध, म, प ग॒, म ग॒ रे सा" वहां ऐसा ही करना पड़ेगा। परन्तु अभी अभी आपने कहा कि इस राग में "धनाश्री तथा कानड़ा" ये दोनों राग मिलते हैं, वह कैसे?

उ०—वह मैंने ग्रन्थकारों का मत कहा था। फिर भी "सा, म, म ग॒, म ध, म ग॒, प ग॒ म ग॒ रे सा" यह भाग भीमपलासी जैसा अवश्य दीख सकेगा। धनाश्री एवं भीमपलासी ये दोनों एक दूसरे के बहुत निकटवर्तीय राग हैं, यह तुमको पता ही है। "नि़, सा, रे ग॒, रे, सा, नि़ सा नि़ ध़, नि़ सा, ^म^ग॒, रे, सा," यह भाग कानडा का हो सकता है। इसमें धैवत तीव्र है, वही यदि कोमल होता तो यह तान "दरबारी कानड़ा" की भी हो सकती है। परन्तु ग्रन्थों के राग मिश्रण, प्रत्येक राग में समझा कर बताने का हमारा उद्देश्य नहीं है, यह तुम जानते ही हो। बागेश्री में मन्द्र सप्तक में मध्यम स्वर तक जाते हैं। पहले थोड़ी तानें मन्द्र धैवत से मध्य धैवत तक के क्षेत्र में लेकर फिर नीचे मन्द्र मध्यम तक जायें। उदाहरणार्थ, सा नि़ ध, नि़ सा, रे सा, म ग॒, म ध म ग॒, रे, सा;

रे सा नि़ ध़, सा, म, ध, म, ग़, ध़ नि़ सा, म, म ग़, म ध, नि ध, म ग़, म ग़ रे, सा; ध़, नि़ सा, म़ ध़, नि़ सा, म, प ग़, म, ध, म, ध, नि ध, म, ग़, म ग़ रे सा। परन्तु इस राग में और एक स्वर समुदाय "म ग़ रे सा" की ओर तुम्हें ध्यान देना होगा। यह भाग इस प्रकार से कानड़ा में नहीं आता। यह भीमपलासी, धनाश्री आदि रागों में अवश्य आता है।

प्र०—तो फिर एक अर्थ में जैसी दिन की भीमपलासी, वैसे ही बागेश्री रात्रि की भीमपलासी होगी, ऐसा ही कहें न ?

उ०—परन्तु वहां एक मुख्य बात तुम भूल रहे हो, वह यह कि जैसे भीमपलासी के आरोह में रिषभ तथा धैवत स्वर वर्ज्य हैं वैसे बागेश्री में नहीं। अतः ऐसा व्यापक सिद्धान्त बनाने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु केवल इतना कहा जा सकता है कि बागेश्री में थोड़ा सा भाग भीमपलासी का दिखाई दे सकता है। बागेश्रीं राग का अन्तरा कोई गन्धार से प्रारम्भ करते हैं, तो कोई उसे मध्यम से प्रारम्भ करते हैं। अर्थात् कोई उसे "ग़ म ध, नि सां नि सां" इस प्रकार आरम्भ करते हैं और कोई "म, ध नि सां, नि सां" इस प्रकार करते हैं। कभी कभी, "म नि ध, नि सां" ऐसा भी वह प्रारम्भ किया हुआ दिखेगा। परन्तु अन्तरा में बहुधा पंचम नहीं लेते। यदि लिया भी तो वह अन्तरा समाप्त होते समय "प ग़ रे, सा" इस प्रकार से थोड़ा सा लेते हैं। यह बात नहीं कि पंचम की वहां आवश्यकता है। देखना यह होता है कि पंचम वहां ठीक भी रहता है या नहीं। बहुत सी चीजों के अन्तरा में ऐसे दो तीन भाग रहते हैं, देखो—म ध, नि सां, नि सां। नि, सां रें सां, रें सां नि ध। और अन्त में फिर, "म ध नि ध, म ग़ रे सा"। मेरी समझ से इस राग के चलन के सम्बन्ध में अब और कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। बागेश्री बहुत सरल राग है, ऐसी मान्यता है। तार सप्तक में मध्यम से आगे जाने की आवश्यकता नहीं।

प्र०—यदि कोई आगे जाना चाहे तो "मं पं गं़, मं गं़ रें सां" ऐसा करके वहां से नीचे आना पड़ेगा, ठीक है न ?

उ०—हां, यह तुमने बिलकुल ठीक कहा ! कारण उसमें "मं धं निं धं मं" इतना ऊँचा जाना अत्यन्त कठिन होगा। तुमने इस राग का अलाप करते समय "सा, नि़ ध़, नि़, सा, म, ग़, रे सा।" ऐसा यदि आरम्भ किया तो वह नहीं चलेगा। परन्तु इस राग में मध्यम वादी होने के कारण तथा उसको मुक्त रखने से विशेष सुन्दर दीखेगा। अतः कोई 'नि़ सा, म, म ग़' ऐसा भी प्रारम्भ करते हैं !

प्र०—परन्तु अमुक राग अमुक स्थान से ही प्रारम्भ होना चाहिये, ऐसा नियम आजकल के संगीत में नहीं है। अतः कौनसी चीज कहां से व कैसे प्रारम्भ की जाय, यह चीज की बन्दिश पर ही निर्भर रहेगा, ठीक है न ?

उ०– हां, तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु इस राग की चीजें कैसे व कहां से प्रारम्भ होती हैं, उनका अन्तरा कहां से, कैसे जाता है, यह कह देना विद्यार्थियों के लिये हितकारक होगा, यह सोच कर कहना पड़ा है। अस्तु, अब इस राग के सम्बन्ध में हमारे ग्रन्थकार क्या कहते हैं, वह हम देखें; परन्तु ऐसा करने से पूर्व यह भी कह देना चाहता हूँ कि यह 'बागेश्री राग' सभी प्राचीन ग्रन्थकारों ने नहीं बताया है। शार्ङ्गदेव के रत्नाकर में इसका उल्लेख नहीं है। दर्पण में भी इसका वर्णन नहीं मिलता।

प्र०—परन्तु इन दोनों ग्रन्थों में बागेश्री बताई होती तो भी न बताने के ही बराबर है?

उ०—इनके स्वरों में उलझन पड़ गई थी, ऐसा कहते हैं, यह भी सही है। इनके बाद के ग्रन्थों में अर्थात् 'तरंगिणी' 'कौतुक' 'हृदयप्रकाश' में इसका वर्णन मिलता है, देखो:-

षाडवः कानरोरागो देशीविख्यातिमागतः।
वागीश्वरीकानरश्च खंमाइची तु रागिणी॥

कर्णाटसंस्थितौ।

अर्थात् वागीश्वरीकानड़ा राग 'कर्णाट' थाट में अर्थात् हमारे 'खमाज' थाट में कहा गया है।

प्र०—कदाचित इसीलिये आपने अभी-अभी जो वागीश्वरी गाकर दिखाई, उसमें हमको खमाज का भास होता था।

उ०—वैसा भास होना बिलकुल स्वाभाविक है। खमाज का गन्धार कोमल किया कि बागेश्री हुई। वर्ज्या-वर्ज्य नियम इन दोनों रागों के अवश्य भिन्न हैं, परन्तु इन दोनों रागों में कुछ स्वरसमुदाय अवश्य सामान्य होंगे। उदाहरणार्थः—'म ध, नि सां, नि सां रें सां, नि ध, म ध, नि ध, सां, नि ध, रें सां नि ध, म ध, नि ध' ये सारे स्वर खमाज में तथा बागेश्री में सामान्य हैं। आगे 'म ध, नि ध, म ग' ऐसा किया कि खमाज हुआ तथा म ध, नि ध, म ग' किया तो बागेश्री होगा।

प्र०—परन्तु यह भाग रागेश्री में भी नहीं आयेगा, क्या?

उ०—हां, वह उसमें भी आयेगा। परन्तु यहां हमारा कहने का तात्पर्य इतना ही था कि इस राग में खमाज जैसा भाग क्यों दीखता है? अस्तु, तरंगिणी के कुछ रागों के स्वर आगे बदल गये हैं, यह मैंने कहा ही था। मेरी समझ से 'कानड़ा' राग के स्वर जब बदल गये तब ऐसा हुआ होगा। कानड़ा में अब कोमल गन्धार सर्वत्र लिया जाता है, यह प्रसिद्ध ही है। अच्छा, आगे 'हृदयनारायण' अपने हृदयकौतुक में 'वागीश्वरी' कैसी कहता है, वह देखो:—

कर्णाटस्थितिमध्ये तु येषां संस्थितयो मताः।
तेषां नामानि कथ्यन्ते श्रुत्वा सद्योऽवधारय॥
षाडवः कानरो रागो देशीविख्यातिमागतः।
वागीश्वरीकानरश्च खंबाइची तु रागिणी॥

प्र०—बस अब आगे जाने की आवश्यकता नहीं। यह उस तरंगिणी का ही अनुवाद है। परन्तु वहां उसने वागीश्वरी का नादस्वरूप कैसा वर्णित किया है, वह भी कहिये?

उ०—उसने हृदयकौतुक में उसका वर्णन न करके अपने 'हृदयप्रकाश' ग्रन्थ में इस प्रकार किया है:—

गौकस्तीव्रतरे मेले कर्णाटः ककुभाभिधः ।
खंबावती जिजावंती सौराष्ट्री सुघरायिका ॥
कामोदश्चाप्यडानाख्यस्तथा वागीश्वरीत्यपि ।

× × ×

अर्थात् ये सारे राग खमाज थाट में हैं, ऐसा कहकर फिर वह कहता है:—

गादिर्वागीश्वरी मांशा पहीना षाडवेषु तत् ।
ग म ध ध नि सां, नि ध म ग रे सा, नि ध ध नि सा ॥

प्र०—तो फिर यह हमारे पंचम वर्ज्य बागेश्री के लिये एक अच्छा आधार होगा, ठीक है न ? केवल गन्धार तीव्रतर कहा है, वह आगे कोमल हो गया, ऐसा समझकर चलें तो बस काम बन गया।

उ०—हां, ऐसा मानकर चलने के लिये यह आधार उत्तम होगा, इसमें संशय नहीं। तरंगिणीकार लोचन पंडित ने बागेश्री के अवयव राग इस प्रकार कहे हैं:–'धनाश्रीकानडा-योगात् वागीश्वर्याख्यरागिणी' परन्तु यह अवयव राग अभी-अभी मैंने बताये ही थे।

दक्षिण के राग लक्षण ग्रन्थ में 'वागधीश्वरी' इस नाम का मेल है। उसका नम्बर ३४ है।

प्र०—तो फिर उस मेल के स्वर 'सा ग ग म प ध नि सां' ऐसे होंगे, कारण वह छठे चक्र में का चौथा मेल होगा।

उ०—बिलकुल ठीक कहा ! इस मेल में हमारा तीव्र ऋषभ नहीं, यह तुमने देखा न ? 'वागधीश्वरी' यह मेलनाम है, परन्तु इस मेल के जन्य रागों में 'वागधीश्वरी' नाम का राग नहीं कहा है। कदाचित् आगे उस तीव्र ग को निकाल कर ऋषभ अवरोह में लेने लगे होंगे। किन्तु यह केवल तर्क है। वागीश्वरी जैसा यह एक नाम दिखाई दिया, इस कारण यह मैंने कह दिया। तुम्हारे प्रचलित बागेश्री के लिये यह आधार है, ऐसा नहीं समझना।

प्र०—नहीं, हम एकदम ऐसा कैसे समझ सकते हैं ? परन्तु इस प्रकार में से वह तीव्र ग क्षणभर के लिये निकाल दिया तो शेष भाग आज के बागेश्री जैसा दिखना चाहिये, ऐसा हमको प्रतीत होता है। अच्छा, और किसी ने इस राग का उल्लेख किया है क्या ?

उ०—कल्पद्रुमकार ने कहीं से बागेश्री का ऐसा वर्णन उद्धृत कर लिया है। देखो:-

"वीणाविनोदीसुन्दरगात्रकमलनयनी कल्पतरूमूले स्थित। नितंब बिंबोष्ठभूषण रत्नविचित्रै वाघेश्वरी रात्रौ द्वितीयप्रहरार्ध समये कौशिक रागिणीयम्।"

धनाश्री कानडायुक्ता नायकी मिश्रित स्वरा ।
वागीश्वर्युत्पत्तिः निशायां गीयते बुधैः ॥

यह गद्य है कि पद्य, यही तुम पहले विचार करोगे। परन्तु उधर ध्यान न दिया जाय तो भी चलेगा। यह उसने कहां से उतार लिया, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु बागेश्री में धनाश्रीकानड़ा तथा नायकी रागों का मिश्रण दीखेगा, यह विशेष बात ध्यान में रखने योग्य है। बागेश्री के अन्य विशेषण उसको संभवतः अनेक स्थानों से प्राप्त हुए होंगे। इन विशेषणों की हमें ऐसी क्या आवश्यकता है? ये सब यदि हम छोड़ दें तो भी कोई हर्ज नहीं दीखता।

अब राजा प्रतापसिंह अपने संगीतसार ग्रन्थ में 'वागीश्वरी' के विषय में क्या कहते हैं:—'शिवजी ने अपने मुखसों धनाश्री संकीर्ण कानड़ो गाइके वाको वागीश्वरी नाम कीन्हो।' आगे रागिनी का चित्रण करके कहते हैं, 'शास्त्र में तो यह सात सुरन में गाई है। नि ध प म ग री री सा सा री ग म प ध नि। यातें संपूर्ण है। याको रात के दूसरे प्रहर में गावनी। जंत्र सों समझिये।' शिवजी अवयवी भूत राग अच्छे कहते हैं, अतः वह भाग मैं कहता हूँ।

वागीश्वरी (संपूर्ण) (कान्हड़ाकोभेद)

सा, नि सा, ध, सा, नि रे सा, ग, रे, सा, नि सा, ग, म ध, प ध नि, ध प म ग रे, सा। इस स्वरूप में पंचम कुछ अच्छी जगह पर आयेगा तो ठीक होगा। Captain Willard ने भी बागेश्री में धनाश्री तथा कानड़ा का योग है, ऐसा कहा है।

तुम अब इस 'बागेश्री' राग के सम्बन्ध में क्या जानकारी अपने ध्यान में रखोगे, यह एक बार कह सुनाओगे क्या?

प्र०—हां! वह हमने अपने ध्यान में इस प्रकार रखा है। यह राग काफी थाट से उत्पन्न होता है। इसका समय रात्रि का तीसरा प्रहर मानते हैं। इसमें वादी स्वर मध्यम तथा संवादी षड्ज है। कोई पंचम बिलकुल वर्ज्य करते हैं और कोई उसे अवरोह में लेते हैं। कोई उसे आरोह तथा अवरोह दोनों में भी लेते हैं। हम पहिले दोनों मत विशेष पसन्द करते हैं। तीसरा प्रकार यदि सुनने में आया तो उसको अशास्त्रीय नहीं कहना चाहिये, कारण कुछ उस मत के भी गायक-वादक हैं। इस राग में 'म ध नि ध, म' यह स्वरसंगति बारम्बार दिखेगी, तथा इसीसे इस राग की पहिचान होती है।

बागेश्री राग एक कानड़ा प्रकार है, ऐसा मानते हैं। इसमें 'म ग रे सा' इस तान से षड्ज से जाकर मिलते हैं, तब वहां धनाश्री अथवा भीमपलासी का अङ्ग दिखाई देता है। तरंगिनी तथा हृदयप्रकाश ग्रन्थों के समय में बागेश्री में तीव्र गन्धार लिया जाता था, परन्तु आगे वह स्वर कोमल लिया जाने लगा। उसके स्वरूप में पंचम वर्ज्य है, यह भी एक महत्वपूर्ण बात हमने ध्यान में रखी है। 'सा, नि ध, नि सा, म, ग, म ध नि ध, म, ग, म, ग रे सा' इन स्वरों में यह सम्पूर्ण राग आ जाता है, ऐसा हम ध्यान में रखकर चल रहे हैं।

३०—मेरी समझ से इतनी जानकारी तुम्हारे लिये पर्याप्त होगी। अब बागेश्री के प्रचलित स्वरूप का वर्णन आगे श्लोक में कैसा कहा गया है, वह देखोः—

हरप्रियाव्हये मेले वागीश्वरी मता बुधैः।
आरोहणे पवर्ज्यं स्यात्प्रतिलोमे समग्रकम् ॥
मध्यमः कीर्तितो वादी संवादी षड्ज ईरितः।
गानं सुसंमतं तस्या रात्र्यां तृतीययामके ॥
लंघनं पंचमस्य स्यात् समूलं लक्ष्यके क्वचित।
अल्पत्वं पंचमे युक्तं प्रतिलोमे सतां मते ॥
धनाश्रीकानडायुक्ता वागीश्वरी प्रकीर्तिता।
रागतरंगिणीग्रंथे लोचनेन मनीषिणा ॥
त्यक्ते पंचमके सद्यो ग्रंथोक्ता रागिणी भवेत्।
पवर्जिता तथा मांशा श्रीरंजनीतिनामिका ॥
दाक्षिणात्यमते त्वेषा रीतिगौडाख्यरागिणी।
ग्रंथेषु केषुचित्तत्र वागीश्वरी द्विगा मता ॥

लक्ष्यसंगीते

तीव्रौ रिधौ गमनयो मृदवो हि यस्याम्।
संवादिषड्जसहिता खलु मध्यमांशा ॥
आरोहणे परहिता सकलावरोहे।
वागीश्वरी सुमतिभिः कथितार्धरात्रे ॥

कल्पद्रुमांकुरे

कोमलाः स्युर्गमनयो वादिसंवादिनौ मसौ ॥
तीव्रौ रिधावर्धरात्रे गीता वागीश्वरी बुधैः ॥

चन्द्रिकायाम्

तीवर रिध कोमल गमनि मध्यम वादि बखानि।
खरज जहां सम्वादि है बागेसरी लखानि ॥

चन्द्रिकासार

सनी धनी समौ गश्च मधौ निधौ मगौ रिसौ।
वागीश्वरी मता रात्रौ मांशाऽऽरोहे पवर्जिता ॥

अभिनवरागमंजर्याम्

भावभट्ट पण्डित ने बागेश्री का वर्णन अपने ग्रन्थ में नहीं किया, तथापि कानडा के १४ प्रकार उसने बताये हैं, उनमें बागेश्री का प्रकार भी उसने दिया है तथा उसके सम्बन्ध में उसने कहा है:—बागेसरी धन्नासिरिके मिले मेघ मिले तो अडानोहि मानौ" (अनूप-विलास से)। "अनूपविलास" ग्रन्थ संस्कृत में है, परन्तु उस पण्डित के कानडा के ये १४ प्रकार हिन्दी के "सवैया" नामक पद्य में लिखे हुये दिखाई देते हैं।

प्र०—परन्तु यह वर्णन वह पंडित संस्कृत के श्लोक में सरलता से नहीं लिख सका क्या ? अथवा ये हिन्दी पद किसी ने बाद में उस ग्रन्थ में डाल दिये हों ?

उ०—इस प्रश्न का उत्तर मैं कैसे दे सकता हूँ ? वह विद्वान था, इसमें सन्देह नहीं। वह इन हिन्दी सवैयों का भावार्थ संस्कृत में कर सकता था। कदाचित् यह भाग क्षेपक (बाद में लिया गया) होगा। यहां हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि बागेश्री में कौनसे राग मिलते हैं। अन्त में भावभट्ट के समय में धनाश्री और कानडा का योग उसमें माना गया था, इतना निश्चय किया जा सकता है।

प्र०—बागेश्री राग तो अब हम भली-भांति समझ गये। आगे अब कौनसा राग लेंगे ?

उ०—मेरी समझ से अब "बहार" राग के सम्बन्ध में थोड़ा सा कह देना उचित होगा। "बहार" को कानडा का प्रकार नहीं समझना, यह मैं विशेषरूप से पहले ही कहे देता हूँ।

प्र०—परन्तु आपने उसे कानडा अङ्ग के रागों में लिया है न ?

उ०—हां, यह ठीक है, फिर भी वह कानडा का राग है ऐसा नहीं समझना चाहिये। उसमें एक दो समुदाय कानडा में आने वाले हैं। अतः हम उस राग को कानडा अङ्ग में लेते हैं, ऐसा तुम अभी मानकर चलो तो हर्ज नहीं।

प्र०—तो फिर इस "बहार" राग को अच्छी तरह से समझने की आवश्यकता प्रतीत होती है। अच्छा, लेकिन यह बताइये कि यह राग हमारे सीखे हुए रागों में से किसके निकट आयेगा ? तथा वह उनसे पृथक किस प्रकार रखना चाहिये, यह आप बतायेंगे क्या ?

उ०—तुम्हें अभी मैंने जो राग सिखाया है, यह राग उत्तरांग में कई स्थानों पर उसके जैसा दिखना संभव है।

प्र०—यानी आप बागेश्री के संबन्ध में कह रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है। उसमें "म प ध नि सां" इन स्वरों से इन दोनों रागों में कौनसे भाग समान तथा कौनसे असमान होंगे ?

उ०—वही मैं अब कहता हूँ, सुनो। इन दोनों रागों के आरोह में रिषभ स्वर नहीं लेते। फिर भी बागेश्री में यदि वह अल्प प्रमाण में लेने में आजाय तो इतना विसङ्गत प्रतीत नहीं होगा। यह स्वर बागेश्री के आरोह में वर्ज्य है, ऐसा नहीं मानते

अपितु उसे बहुधा आरोह में लेने से टालते हैं। परन्तु रिषभ स्वर बहार में आरोह में वर्ज्य करने का विशेष रिवाज है। दोनों रागों में यह एक सबसे पहला भेद हुआ। दूसरा भेद ऐसा है कि बहार में "म ग़ रे सा" इस स्वरसमुदाय से षड्ज से नहीं मिलते, जब कि बागेश्री में ऐसा किया जाता है।

प्र०—हां, यह हमको स्मरण है। आपने कहा था कि वह भाग "धनाश्री" अथवा "भीमपलासी" बताने वाला है?

उ०—यह तुमने अच्छा ध्यान में रखा। अब बहार में षडज से मिलने के लिये "ग़ म रे सा" यह स्वरसमुदाय लेना पड़ेगा। यह स्वरसमुदाय अनेक कानड़ाओं में तुमको दिखाई देगा। बागेश्री में "ग़ म रे सा" ऐसा लेकर षडज से नहीं मिलते, उसमें "म प ग़, रे सा," "म प ग़, म ग़ रे सा" ऐसा करना होगा।

प्र०:—तो फिर यह एक बड़ा महत्वपूर्ण भेद हुआ। लेकिन बागेश्री में "पंचम" बिलकुल वर्ज्य अथवा अवरोह में थोड़ा सा लेना चाहिये, ऐसा आपने कहा था न? बहार में इस पंचम के बारे में क्या करना चाहिये? क्या यह स्वर बहार में आता है? यदि यह बहार में लेने में आता होगा तो यह भी एक महत्वपूर्ण बात होगी।

उ०—बहार में कुछ बड़े ख्याल हैं, उनमें पंचम आरोह में लिया हुआ दिखता है, इसमें संशय नहीं; फिर भी ऐसी भी अनेक चीजें दृष्टिगत होंगी कि जिनमें पंचम आरोह में नहीं है।

प्र०—बड़े ख्याल में वह किस प्रकार लिया हुआ दिखता है, यह बतायेंगे क्या?

उ०—एक प्रसिद्ध ख्याल का यह मुखड़ा देखो "म प, नि़ नि़ प म प, म नि़ ध, म ग़" इसमें "पंचम" लेकर फिर "नि़ नि़ प म" ऐसे स्वर लिये गये हैं। वैसे ही कभी-कभी "म प ध प, ग़," ऐसे भी स्वर कुछ गीतों में दृष्टिगोचर होंगे। परन्तु अवरोह में जिनमें पंचम प्रयुक्त है, ऐसी अनेक चीजे तुम्हें दिखाई देंगी। अर्थात् "प ग़, म रे सा" इस प्रकार तुमको बारंबार दिखाई देगा। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि पंचमस्वर अवरोह में अवश्य लिया जाता है तथा वह विशेष सुन्दर दिखता है। क्वचित् अवसरों पर वह आरोह में लिया हुआ भी दिखाई देगा, परन्तु वहां पंचम पर ठहरकर फिर "नि़ नि़ प म प" ऐसी तान लेते हैं, इससे यह स्वर "ग़ म प ध नि़ सां" ऐसी सरल तान में लेने योग्य नहीं।

प्र०—अच्छा, फिर आगे उत्तरांग में बागेश्री जैसा प्रकार दिखाई दे सकता है, ऐसा कहा जाय तो वह प्रकार कैसा होगा?

उ०—वह प्रकार ऐसा है, "म, म ग़, म ध, नि़ सां; म नि़ ध नि सां" यह समुदाय दोनों रागों में आ सकेगा।

प्र०—तो फिर यह कौनसे राग का समुदाय है, यह पहिचानना कठिन होगा ?

उ०—उसके साथ ही "म नि ध, नि सां," ऐसा एक दम तुमने गाया कि तत्काल श्रोताओं के सामने बहार का चित्र अंकित हो जायगा। वैसे ही "म ग म नि ध, नि सां" यह तुमने किया तो बागेश्री की छाया उनके सामने दिखने लगेगी। परन्तु यह इतना सूक्ष्म भेद ध्यान में रखना कुछ कठिन ही होगा। इसके लिये और एक उपाय है।

प्र०—वह कौनसा ?

उ०—वहां "पंचम" स्वर तुम्हारे लिये बहुत उपयोगी होगा। प ग, म ग, रे सा" यह बागेश्री है, तथा "सा म, म ध, नि ध म, प ग, रे सा" यह भी बागेश्री ही होगी।

प्र०—तो इसमें "ग रे सा" तथा "म ग रे सा" यह खास बागेश्री वाचक स्वर समुदाय हैं ?

उ०—हां, यह ठीक है। परन्तु मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि, 'सा म, म प ग म नि
ध, नि सां' ये स्वर तुमने लिये तो वह बहार दिखेगा। अर्थात् पंचम से गन्धार पर आकर फिर ऊपर बढ़े तो बहार और वहां से नीचे 'ग म रे, सा' इस प्रकार षड्ज से मिले तो बहार होगा और 'म प ग, म ग रे सा' अथवा 'म ग रे सा' करने पर बागेश्री होगी।

प्र०—तो फिर इस बहार के आरोहावरोह अलग ही ढङ्ग के हैं, ऐसा निश्चित होता है ?

उ०—हां, ऐसा कहना ही विशेष युक्तियुक्त होगा। इसके आरोहावरोह इस प्रकार
म नि म
हैं, देखोः—नि सा ग म, प ग म, म ध, नि सां। सां, नि प, म प, ग म रे सा।

प्र०—इस अवरोह में 'नि प' यह एक नया ही चिन्ह दिखाई दिया। यह भी बहार की पहिचान करने के लिये एक उपयोगी साधन होगा, ठीक है न ?

उ०—हां, यह अभी मैं कहने ही वाला था। यह चिन्ह कानड़ा अङ्ग सूचक है। बागेश्री में ऐसा कभी नहीं आयेगा।

प्र०—तो फिर पूर्वाङ्ग में 'ग म रे सा' तथा उत्तराङ्ग में 'नि प' ये दोनों चिन्ह बहार कायम करने के लिये दो महत्वपूर्ण साधन हैं, यही कहें न ?

उ०—हां, यह तुमने बिलकुल ठीक कहा। अब जल्द तानें लेते समय कोई गायक 'नि ध प, म प, ग म, नि ध, नि सां' ऐसा किसी प्रसंग पर करेगा तो वहां वह धैवत 'द्रुतगीतो न रक्तिहरः' 'मनाक्स्पर्शः' इस न्याय से आयेगा, यही कहेंगे। मुख्य कानड़ा अङ्ग में धैवत अवरोह में बहुधा नहीं रहता। कुछ कानड़ा प्रकारों में विशेषरूप से भेद दिखाने के लिये यह धैवत अवरोह में दिखाया जाता है, परन्तु उनमें भी यह विशेष रूप से प्रयोग में लाने पर अच्छा नहीं दीखता। यही दशा आरोह में ऋषभ की है। तानों में यह आरोह में क्वचित् आयेगा, फिर भी यह उसमें इतना सुन्दर नहीं दीखेगा।

प्र०—तो फिर अब हम यही निश्चिय करके चलें कि इसको आरोह में लेना ही नहीं। इस राग के आरोह में ऋषभ तथा अवरोह में धैवत का प्रयोग नहीं करना चाहिये, ऐसा नियम मानकर हम आगे चलें। पंचम भी आरोह में जितना नहीं आयेगा उतना ही अच्छा, यह आपने हमको कह रखा ही है। हमारे जितने राग अभी हो गये हैं, उनसे अब इस राग को हम पृथक रख सकेंगे, ऐसा प्रतीत होता है। उसे कैसे पृथक रख सकेंगे? आप आज्ञा दें तो मैं कह सकता हूँ।

उ०—अच्छा तो कहो, देखें?

प्र०—देखिये! 'काफी' राग आरोहावरोह में संपूर्ण है अर्थात् यह आश्रय राग है। यह अन्य तमाम स्वतन्त्र नियमों के रागों से बिलकुल भिन्न ही रहेगा। 'सिंदूरा' अथवा 'सिंधोड़ा' राग के आरोह में ग तथा नि वर्ज्य हैं, इसलिये ग वर्ज्य होने से यह काफी से पृथक होगा। पीलू में एक मत से निषाद के अतिरिक्त सारे स्वर कोमल हैं, ऐसी दशा में यह बिलकुल ही स्वतन्त्र प्रकार होगा। दूसरे मत से पीलू में सारे तीव्र तथा कोमल स्वर लगते हैं, तब भी यह प्रकार पृथक ही हुआ। इन तीनों रागों के आरोह में ऋषभ, पंचम तथा धैवत हैं और ये स्वर अवरोह में भी हैं ही, इसलिये यह बहार राग इन तमाम रागों से निराला होगा ही।

दूसरे अंग के रागों में भीमपलासी, धनाश्री, धानी, हंसकंकणी तथा प्रदीपकी हैं। इन रागों के आरोह में पंचम स्पष्ट है और अवरोह में धैवत स्पष्ट है, इसलिये बहार राग से इन रागों की उलझन होगी ही नहीं। बागेश्री तथा बहार अलग-अलग कैसे होते हैं यह तो आपने अभी बताया ही है।

उ०—शाबाश! ये तथ्य तुमने संक्षेप में तथा बहुत उत्तम रीति से कहे। अब तुम इन रागों को पृथक-पृथक रूप से अच्छी तरह गा सकोगे, ऐसा मुझे विश्वास है। प्रचार में ख्याल गायक कभी-कभी और एक-दो खूबियां करते रहते हैं।

प्र०—वे कौनसी?

उ०—किसी चीज में वे थोड़ा सा कोमल धैवत लगा देते हैं तथा कभी-कभी किसी चीज में वे तीव्र गन्धार भी लगाकर राग बिगड़ने नहीं देते; किन्तु यह व्यक्तिगत विशेषता है।

प्र०—परन्तु इन स्वरों को वे विवादी के नाते लगाते होंगे?

उ०—स्पष्ट ही है। यदि ये नियमित स्वर होते तो इच्छानुसार जगह-जगह लग सकते थे। ये प्रकार बहुत थोड़े कसबी लोगों ने सुने होंगे। ऐसे प्रकार जब गायक प्रत्यक्ष करके दिखाते हैं तब उनकी बड़ी प्रशंसा होती है। विवादी स्वर सुन्दरता से लगाना भी एक कला है, यह मैंने पहिले ही कहा था न?

प्र०—यह सब हम अब अच्छी तरह समझ गये। देशी सङ्गीत में तो यह प्रकार अवश्य ही दीखेंगे। अच्छा, बहार राग में वादी स्वर कौनसा है?

उ०—वादी स्वर मध्यम तथा सम्वादी षड्ज मानने का व्यवहार है। इस राग का समय मध्यरात्रि के पश्चात् का मानते हैं। कोई इस राग को सार्वकालिक भी मानते हैं।

प्र०—परन्तु मध्यम वादी होने से इसे दोपहर के पश्चात् भी गा सकते होंगे, कारण इसमें ग तथा नि स्वर कोमल हैं। परन्तु ठहरिये ! हमें ऐसा प्रतीत होता है कि 'बहार' यह नाम यावनिक होगा ?

उ०—हां, यह यावनिक ही है। यह राग संस्कृत ग्रन्थकारों ने नहीं लिखा है।

प्र०—तो फिर उनके समय में यह राग प्रचार में होगा ही नहीं क्या ?

उ०—यह मैं कैसे कह सकता हूं ? कदाचित् यह राग 'धुन' के रूप में आया होगा, तथा बड़े-बड़े पण्डितों ने अपने ग्रन्थों में उसको सम्मिलित करना उपयुक्त नहीं समझा होगा। परन्तु 'बहार' यह नाम संस्कृत का नहीं, यह स्पष्ट है। Captain Willard ने अपने ग्रन्थ में पर्शियन राग रागिनियों के नाम दिये हैं, उनमें भी 'बहार' नाम नहीं दीखता। फिर भी आजकल हमारे यहां ख्याल गायकों को 'बहार' राग बहुत पसन्द है, यह मानना पड़ेगा। इस राग के लिये कुछ स्वतन्त्र नियम भी हमारे गायकों ने बना दिये हैं तथा यह विशेष लोकप्रिय भी हो गया है, इसी कारण प्रचलित सङ्गीत में इसको उचित स्थान मिला है। इतना ही नहीं, बल्कि बहार राग की और एक खूबी तो कहने से रह ही गई है।

प्र०—वह कौनसी ?

उ०—यह राग अन्य रागों से उत्तम प्रकार से मिलकर और भी नये रागों की उत्पत्ति कर सकता है।

प्र०—यह समझ में नहीं आया।

उ०—मैं उदाहरण देकर समझाता हूँ, इससे तुरन्त तुम्हारी समझ में आ जायेगा। बहार राग, भैरव राग से जब मिलता है तब "भैरव बहार" इस नाम का एक नया राग उत्पन्न होता है; मालंकस राग से मिलता है तब "मालंकस बहार" राग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार बसंत बहार, हिंडोल बहार, बागेश्री बहार, जौनपुरी बहार, अडाना बहार, आदि नये राग प्रचार में आज दिखाई देते हैं तथा वे विशेष लोकप्रिय भी होगये हैं।

प्र०—आपने अभी जो नाम कहे हैं, उनके अन्त में "बहार" नाम क्यों आया है ?

उ०—इसका यह अर्थ समझना चाहिये कि गायक के गाने में अधिक भाग उस मुख्य राग का होना चाहिये तथा कहीं-कहीं थोड़ा सा भाग बहार का उसमें दिखाई पड़ना चाहिये।

प्र०—हम समझे थे कि स्थाई एक राग की और अन्तरा बहार का, ऐसा कुछ प्रकार होगा।

उ०—किसी एकाध चीज में ऐसा भी है, परन्तु वैसा नियमत रूप से नहीं चलेगा। उदाहरणार्थ, भैरव की कोई ऐसी चीज भी दिखाई देगी जिसकी स्थाई में भैरव तथा उसका अन्तरा बहार से प्रारम्भ होकर अन्त में भैरव के स्वरों से स्थाई को जोड़ा गया होगा; पुनः बसन्त बहार की भी ऐसी चीज दीखेगी जिसके स्थाई तथा अन्तरे दोनों जगह बहार का थोड़ा-थोड़ा भाग दीखेगा। अब यहां पर इस विषय में एक व्यापक नियम बना देना

कहां तक उचित होगा ? यह तो सब रचयिता के चातुर्य पर अवलम्बित रहेगा, यही कहना सुविधाजनक होगा।

प्र०—परन्तु क्यों जी ! ऐसे विभिन्न थाटों के राग एकत्र करना बड़ी कुशलता का काम है, साथ ही कठिन भी है ?

उ०—अत्यन्त कठिन है, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह कुशलता का काम अवश्य है। कुछ रागों के स्वर पास-पास होते हैं; उदाहरणार्थ जौनपुरी और बहार, बागेश्री और बहार, मालकौंस और बहार। इन रागों का संयोग करना इतना कठिन नहीं होता। परन्तु भैरव, बसंत, हिन्डोल जैसे भिन्न थाट के रागों से बहार जोड़ने का काम कुछ कठिन होगा। सबसे पहले तो ऐसे संयोग में कौन से स्वर से बहार का भाग बीच में लेना पड़ेगा तथा कौन से स्वर तक जाकर उसे छोड़ देना है और फिर मूल राग में जाना है, यह गायक को सावधानी से देखना होगा। ऐसी जगह पर बहार का भाग बिलकुल स्वतन्त्र रहता है। उसे मूल राग में पुनः लाकर जोड़ देने के लिये कभी कभी दोनों रागों के साधारण स्वरों का उपयोग करते हैं तथा कभी कभी सा, म इन स्वरों में से किसी स्वर पर आकर वहां कुछ ठहर कर मूल राग के कुछ भाग जोड़ देते हैं और फिर उस मूल राग के प्रसिद्ध अंग में मिल जाते हैं। परन्तु यह भाग किसी उदाहरण से ही अच्छी तरह ध्यान में आ सकेगा।

प्र०—आपने बिलकुल हमारे मन की बात कह दी। वैसा कोई उदाहरण देकर हमको समझाइये तो विशेष सुविधाजनक होगा ?

उ०—अच्छा तो ऐसा ही करता हूँ। देखो—प्रचार में "बसंत-बहार" नामक एक संयुक्त राग गाया जाता है, यह मैंने अभी कहा ही था। इन दोनों रागों का संयोग किस खूबी के साथ करते हैं, देखो। "ध सां, नि ध प, प, मं ग, मं ग मं ध, रें, सां, ध नि सां रें नि, सां, नि ध प, मं ग, नि, मं ग, मं ग, रे सा," यहां तक बसंत स्पष्ट ही दीखता है। आगे, "नि सा म, म" यह भाग भी बसंत में है और बहार में भी यह चलने योग्य है, इसलिये यहां से "बहार" जोड़ दिया गया। देखो:—"नि सा म, म, म प, नि नि प म प ग, म ध, नि सां"। यह तार षडज बसंत में जाने के लिये बहुत सुविधाजनक है, इसलिये यहां से तुरन्त ही, "सां, नि ध, प, ध ग, मं ध, सां" ऐसा करके प्रारम्भिक तान में जाकर मिल सकते हैं।

प्र०—वास्तव में यह तो बड़ी मजे की बात है, पण्डित जी ! अच्छा आगे अन्तरा ?

उ०—अन्तरा बिलकुल स्वतन्त्र रहता है, इसलिये कभी-कभी बहार के स्वरों से भी आरम्भ कर देते हैं; जैसे, "सा, ध नि सा, म, म, म प ग, म, नि नि प म प ग म, म नि,

नि म नि
ध, नि म, ध नि सां, रें रें सां नि सां नि ध, म, ग म, ध, नि सां," । यहां पर बसंत का कोई सम्बन्ध नहीं, ठीक है न ?

प्र०—हां पण्डित जी ! इसमें वह राग तो स्वप्न में भी आने योग्य नहीं । परन्तु वह अन्तिम "सां" बड़ी युक्ति पूर्वक उसमें लाकर रखा गया है, ऐसा दीखता है । उसी से बसंत की ओर जाते हैं ।

उ०—तुम ठीक समझ गये । वहां से फिर "सां, ध नि सां, रें, रें रें सां नि सां नि ध, प, मं ध, नि रें नि ध प" ऐसा किया कि तुम अपने मूल बसंत में तुरन्त ही लौट आओगे ।

प्र०—यह मैं बहुत अच्छी तरह समझ गया । परन्तु क्यों जी ! इस राग की बढ़त और फिरत कैसे की जाती है ?

उ०—यह काम विशेष कुशलता का है । इसमें बहुत से गायक कुछ तानें बसंत की लेकर, बीच बीच में बहार की लेते हैं तथा सावधानी से पुनः वसन्त में मिल जाते हैं । कुछ तो इन दोनों रागों को एक दूसरे में मिलाकर गाते हैं । परन्तु उनको भी सुविधाजनक मिलाप स्थान निश्चित कर लेने पड़ते हैं ।

कुछ गीत तो बहार से प्रारम्भ होते हैं और फिर आगे मुख्य राग उनमें जोड़ दिये जाते हैं । ऐसा एक उदाहरण देता हूं, वह सुनो:—

नि म
म, म नि ध, नि सां, सां नि ध प, म ग, म रे, ग, म, प, म ग रे सा सा, रे, सा ग, म, नि ध, नि सां, रें गं, रें, सां, नि ध, म । यह मिश्रण कैसा प्रतीत हुआ, बताओ तो ?

प्र०—इसमें पहिला भाग तो "बहार" का स्पष्ट दीखता है । इसके बाद भैरव का होगा, ऐसा जान पड़ता है ।

उ०—बिलकुल ठीक कहा । यह एक भैरव बहार का नमूना है । परन्तु इसमें मध्यम कैसा आसान हो गया है, यह देखा ? उससे तुरन्त "म, ग म रे, ग म प म ग म रे, सा, किया जा सकता है ।

प्र०—तो फिर जिनमें बहार अच्छी तरह से मिल जाय, ऐसे रागों में "शुद्ध मध्यम" होना आवश्यक है, यह कहना गलत तो नहीं होगा ?

उ०—परन्तु बसंत में तार सां भी वैसा ही उपयोगी स्वर था न ? हां, यह बात अवश्य है कि उसमें भी शुद्ध मध्यम था । परन्तु इतना व्यापक नियम बनाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । बहार का संयोग हिन्दोल से भी होता है, उसमें शुद्ध मध्यम कहां है ?

प्र०—हां, पण्डित जी ! यह कठिनाई अवश्य होगी। फिर उसमें बहार का संयोग कैसे होता होगा ?

उ०—वहां मेरी अभी-अभी कही हुई युक्ति काम आयेगी। अन्तरा बहार से शुरू करना पड़ेगा।

प्र०—और सारा 'बहार' करके फिर हिन्डोल के स्थाई में पुनः तार षडज से आकर मिलना चाहिये, ऐसा जान पड़ता है ?

उ०—स्पष्ट है। परन्तु इतना क्यों ? यह उदाहरण ही देखो नाः—

सां ध नि नि
सां, ध, मं ग, सा ध़ सा, सा ग, मं ग, मं ध सां, सां, (सां) ध मं ग, मं ग सा, सा ग, मं ध, सां, सां मं ध। यह स्थाई हुई अब अन्तरा देखोः—

नि॒, ध नि सां, नि सां, नि रें, सां, रीं रीं सां नि सां नि॒ ध, नि॒ प, नि॒, म प ग॒ म, सा म, प ग॒ म, नि॒ ध, ग॒, म, ध नि सां, रीं रीं सां नि॒ सां नि॒ ध, ग॒ म, ध, सां मं ध सां।

प्र०—वास्तव में गायकों ने कमाल करदिया है पण्डित जी ! इस राग में 'ध सां' ये स्वर उन्होंने कितनी खूबी के साथ काम में लिये हैं, वाह वा ! 'तार सां' वस्तुतः उनके विशेष उपयोग में आया ठीक है न ?

उ०—ऐसा समझने में कोई हर्ज नहीं। जिस राग की बहार होती है उस राग को मुख्य समझ कर उस मुख्य राग के अङ्ग से गायक अपनी फिरत करते हैं, यह ध्यान में रखो। बहार का संयोग रामकली से होता है वहां उस संयुक्त राग को रामकली-बहार कहते हैं। कोई "राम-बहार" भी कहते हैं।

प्र०—परन्तु रामकली का स्वरूप भैरव से बहुत मिलता है, इस कारण उसमें बहार का योग भैरव जैसा ही करना पड़ता होगा, ऐसा प्रतीत होता है ?

उ०—भैरव में एक ही मध्यम होता है, जबकि रामकली में दोनों मध्यम हैं, इसलिये प्रथम रामकली का थोड़ा सा स्वरूप दिखाकर फिर उसमें बहार मिलाना अधिक सरल एवं सुविधाजनक रहता है।

प्र०—तो फिर स्थाई में रामकली तथा अन्तरा बहार का, ऐसा किया तो क्या बुरा रहेगा ? सा, म प, स्वर इन दोनों रागों में बिलकुल स्पष्ट हैं।

उ०—यह तुमने ठीक कहा। अनेक गायक बहुधा ऐसा ही करते हैं। यह एक
ग प
उदाहरण देखोः—सा, म, गम, प, ध॒, प, मं प, ग म, ध॒, सां ध॒ प मं प ग म, रे॒, सा, ध़॒ सा, म, म, नि॒ ध॒ प, ध॒ नि॒ ध॒ प, म। यह भाग रामकली का स्पष्ट ही है। अब अन्तरा

देखोः—म प, ध़, सां, सां, नि सां नि सां, रें नि सां, ऩि ध, ऩि ध प, म प ग़ म। सां, नि सां ध, नि सां रें सां ऩि ध प म प, म ग, म ध़, सां। यहां अन्त में इस मध्यम से पुनः रामकली में कैसे जाते हैं, यह देखा ?

प्र०—हां, यह अब हमारे ध्यान में आ गया है। परन्तु आपने अभी तक हमको बहार का साधारण चलन नहीं बताया है। वह समझ में आने पर हमको विशेष जानकारी हो जायेगी।

उ०—हां, ठीक है। बहार के मुख्य अवयव कौनसे हैं, यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ, अतः यह भाग तुमको समझने में इतना कठिन मालुम नहीं हुआ होगा।

प्र०—नहीं, वह सारा हमारी समझ में अच्छी तरह आ गया है। बस अब हमको बहार के चलन का नमूना बता दीजिये ?

उ०—कहता हूँ सुनोः—सा, ऩि सा, ध़ ऩि सा, म, म प ग़, म, ध, नि सां, सां, ऩि प, म प, ग़ म, रे सा; रे सा, म, प ग़ म, ध, ऩि प, म प ग़ म, सां, ऩि प, म प ग़, म, ध नि सां रें नि सां, ऩि ऩि प म प, सां ऩि प म प, ग़, म, रे, सा; सा रे, सा, ग़ म, रे सा, म प ग़, म, रे सा, ऩि ऩि प, म प ग़ म, ध, नि सां, नि, सां, ग़ं मं रें सां, रें सां, ऩि ध ऩि प, सां, ऩि ध ऩि प, ग़ं मं रें सां, सां ऩि ध ऩि प, म प, ग़ म, सां, ऩि ध ऩि प म प ग़, म रे, सा। इस प्रकार तुम बहार राग के स्थाई का भाग कह सकोगे।

(कण-स्वर: प, म, प, म, ऩि, म, म, म, म, मं, म, म)

इसके पश्चात् अन्तरा इस प्रकार कहना चाहियेः—

ग़ म, ध, नि सां, अथवा ध, ऩि सां रें नि सां, ऩि ध, (ऩि) प, म, प ग़, म, ग़ं ग़ं, मं, रें सां, रें सां, ऩि ध, ऩि प। म प, ग़ म, ध, सां ऩि प म प ग़ म, रे, सा। इस राग में सारा वैचित्र्य 'ऩि प' इस टुकड़े को बीच-बीच में लाकर तथा 'म, ऩि ध, म, प ग़ म, ध, नि सां' इस भाग को योग्य स्थान पर दिखाकर बागेश्री से बहार को पृथक संभालने में है।

प्र०—तो फिर ऐसा प्रकार चलेगा क्या ? जरा देखियेः—'सा म, म प, ग़ म, ध़ ऩि सा, म, ऩि प, प, म प ग़ म, ध नि सां, ग़ं मं रें सां, रें सां, ध नि सां, सां, म ध नि सां, ध नि सां, रें सां, ऩि प, म प ग़ म, सा म, प ग़ म, ध नि सां, ऩि प म प ग़ म रे सा।

उ०—हां, बहार में इसे लेने में क्या हर्ज है ? यह तो खुशी से चलेगा। 'पंचम' स्वर दोनों रागों को पृथक रखने के लिये विशेष उपयोगी होगा। 'म, प ग़, म ग़ रे सा' हुआ तो बागेश्री तत्काल श्रोताओं के सामने खड़ी हो जायेगी।

प्र०—यह हमारे ध्यान में है। 'म ग़ रे सा' ऐसा बहार में नहीं करना चाहिये; बल्कि 'ग़ म, रे, सा' करना चाहिये, यह आपने पहले ही कह दिया है। उसी प्रकार

'ध नि सां रें नि सां' यह टुकड़ा बहार तथा बागेश्री दोनों में चलने योग्य है, यह हमको दीखता है। परन्तु इसमें आगे 'नि ध, म ग म' जोड़ दिया तो बागेश्री होगी और 'नि प, म प ग, म' ऐसा किया तो तुरन्त ही बहार होगा, यह भी हमारे ध्यान में भलीभाँति है। 'ध नि सां रें नि सां' ऐसा बिल्कुल सरल प्रकार बहार में अच्छा दीखेगा, वैसे ही, 'गं गं रें सां रें सां नि सां' यह तान भी बहार में ही अच्छी लगेगी। 'म नि ध, म ग' ऐसा प्रकार बागेश्री में अच्छा दीखेगा। परन्तु बागेश्री में आरोह करते समय कोमल निषाद हमको बहुत अच्छा लगता है तथा वही 'ध नि सां रें नि सां' ऐसा प्रकार बहार में करते समय तीव्र निषाद कानों को बहुत अच्छा लगता है, न मालुम ऐसा क्यों होता है?

उ०—यह तुम्हारे ध्यान में अच्छा आया। परन्तु यह सब हमको अभी स्वरसंगति का प्रभाव ही समझना चाहिये। अमुक स्वर पर रुककर अमुक स्वर लिया तो अमुक तरह का लगना चाहिये, यह नियम स्वरसंगति पर ही अवलम्बित रहेगा। ये दोनों राग काफी थाट के हैं अतः इनमें कोमल नि आरोह में आना ठीक ही है। तीव्र निषाद क्षम्य है, यह तुमको विदित ही है। इसलिये राग पृथक करने के लिये इतना सूक्ष्मभेद निकालने की आवश्यकता नहीं। अब इस बहार राग के सम्बन्ध में विशेष कुछ कहने को नहीं रहा। यह राग हमारे प्राचीन शास्त्रकारों द्वारा कहा हुआ नहीं दीखता, अतः प्रचलित संगीत से ही कुछ आधार कहता हूं:—

हरप्रियाह्वयान्मेलाज्जातो रागो गुणिप्रियः।
आधुनिको बहाराख्यश्चंचलप्रकृतिः सदा॥
मध्यमः संमतो वादी संवादी षड्जनामकः।
गानं नित्यं समादिष्टं वसंततौ सुरक्तिदम्॥
मधयोः संगतिश्चित्रा रिहीनत्वं तु रोहणे।
प्रतिलोमे धहीनत्वमिति मर्मविदां मतम्॥
आरोहे मधसंगत्या बागीश्वर्यंगमावहेत्।
अवरोहे धलुप्तत्वात् तदगं परिमार्जयेत्॥
संयोगः स्याद्बहारस्य नानारागेषु लक्षितः।
यथासंज्ञं बुधः कुर्यात्तत्र स्वरप्रयोजनम्॥

लक्ष्यसङ्गीते।

बहाररागो निगमैस्तु कोमलैरस्मिन्समौ संवदतः परस्परम्।
आरोहणे रिर्न न धोऽवरोहणे ऋतौ वसंते मधुरं स गीयते॥

कल्पद्रुमांकुरे॥

निगमाः कोमला यत्र समौ संवादिवादिनौ।
नावरोहे धैवतोऽसौ बहारः स्याद्वसंतके॥

चन्द्रिकायाम्॥

रिधतीवर कोमल निगम उतरत धैवत टार ।
समसंवादीवादिहै समझो राग बहार ॥
चन्द्रिकासार ।

निसौ गमौ पगमधा निसौ निपौ मपौ गमौ ।
रिसौ भवेद्बहाराख्यो रात्रिगेयोऽथ मांशकः ॥
अभिनवरागमंजर्याम् ।

ये इतने श्लोक तो तुम कण्ठस्थ ही करलो ।

प्र०—हां, हम ऐसा ही करेंगे । अब आगे का राग कहिये ?

उ०—हां, अब हम सुहा-सुघराई राग पर विचार करेंगे ।

प्र०—किन्तु सुहा और सुघराई ये दोनों राग पृथक हैं, ऐसा आपका कहा हुआ याद आता है ।

उ०—हां, ये दोनों राग पृथक अवश्य हैं, परन्तु ये परस्पर इतने निकट हैं कि गायकों को इन्हें प्रत्यत्त पृथक करके दिखाना अत्यन्त कठिन होता है । इन रागों का भेद उन्हें केवल अपनी चीजों के आधार पर ही करना पड़ता है । 'अमुक चीज मुझे सुहा में मिली है और अमुक सुघराई में कही है', वे केवल इतना ही बता सकते हैं ।

प्र०—किन्तु यदि वे अशिक्षित हुए तो थाट आरोहावरोह, वादी-सम्वादी, चलन आदि बातें कैसे बता सकते हैं ? वे प्रायः यही कहेंगे कि यह सब तुम्हीं हमारे गाने में देखलो । परन्तु 'सुहा' तथा 'सुघराई' में भेद तो समझने योग्य ही होगा न ?

उ०—हां, हां, उनमें भेद अवश्य है और उसे मैं अभी कहने ही वाला हूँ । तो फिर सुनो । "सुहा" काफी थाट का राग है । उसे एक कानडा प्रकार ही मानने का व्यवहार है ?

प्र०—यह क्या ? तो कानडा के ऐसे कितने प्रकार हैं ?

उ०—कानडा के कुल मिलाकर सुन्दर प्रकार १८ माने जाते हैं । किन्तु उनमें सर्वथा स्वतन्त्र बहुत कम हैं । कुछ कानडा प्रकारों में दो-दो राग मिश्रित हुए हैं तथा उनको संयुक्त नाम दिया गया है जैसे, "खमाजी-कानडा, सोरटी-कानडा,जयजयवन्ती-कानडा" आदि ।

प्र०—और जो आपने बताये थे वे स्वतन्त्र प्रकार कौनसे हैं ?

उ०—वे इस प्रकार हैं । दरबारी-कानडा, अडाना-कानडा, बागेश्री, नायकी, सुहा, कौंसी, सुघराई, सहाना, इत्यादि । परन्तु क्रमशः हम इन पर भी विचार करेंगे ही । आखिर हमको इन आठ स्वतन्त्र प्रकारों पर विचार करना ही पड़ेगा ।

प्र०—ये सब अति प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कानडा प्रकार जान पड़ते हैं ?

उ०—सभी ऐसे नहीं हैं। उदाहरणार्थ, "नायकी," "कौंसी," "सहाना" ये क्वचित ही तुम्हारे सुनने में आयेंगे। परन्तु ये अप्रसिद्ध हैं, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। बड़े नामी गायकों को एक एक दो-दो चीज तो इन रागों में आती ही हैं, यह सही है। फिर भी हमीर, केदार, बिहाग आदि रागों में जैसे अनेक ढङ्ग की चीजें गायकों को आती हैं, यह बात इन रागों में नहीं है।

प्र०—तो फिर ऐसी कठिनाई इस राग में क्यों उत्पन्न होती होगी, यह संक्षेप में कहने योग्य हो तो अभी कह दीजिये जिससे उसकी ओर हमारा सदैव ध्यान रहे।

उ०—यह कठिनाई लक्ष्यसङ्गीत में इस प्रकार कही है, देखोः—

बहुषु कानडाख्येषु भेदेषु तेषु निश्चितम्।
मतानैक्यं सदा दृष्टं वितंडामूलकं भृशम्॥
प्रायो धैवतगौ तत्र सर्वत्र वादकारणम्।
केवलं लक्ष्यमादृत्य भवेत्तत्र प्रवर्तनम्॥

प्र०—परन्तु गायकों ने अपने अपने मत से स्वरों का विचार करके कुछ तो निश्चय किया होगा न? फिर ऐसे विवाद क्यों उत्पन्न होने चाहिए?

उ०—पहले तो ऐसा मत निश्चित करने वाले गायक ही बहुत कम होंगे। और कुछ विचारशील होंगे भी तो वे अपने मत का विभिन्न प्रकार से स्पष्टीकरण करके उसका यथोचित समर्थन प्राप्त नहीं कर सके होंगे, कारण मैंने बताया ही था किः—

निरक्षरा गायकास्ते रागव्याख्यानिरूपणे।
अवश्यमेव नो शक्ताः सर्वसंभ्रमकारकाः॥

और तो ठीक है, मगर उनसे कोई कार्यकारण भाव की चर्चा करने लगे तो अपनी परीक्षा हो रही है, ऐसा समझकर वे बोलते ही नहीं। वे इतना सूक्ष्म निरीक्षण करके राग नहीं सीखे। उनके गुरू उन्हें केवल चीजें सिखाते हैं तथा वे कौनसे राग की हैं इसकी कभी-कभी जानकारी दे देते हैं।

प्र०—कभी कभी, यानी?

उ०—यानी कुछ चीजें उन गायकों को ऐसी भी आती हैं कि उनके राग का नाम भी उन्हें मालूम नहीं रहता।

प्र०—यह एक आश्चर्यजनक बात है। फिर उनका नामकरण कौन करेगा पण्डित जी?

उ०—कभी कभी बुद्धिमान श्रोता भी यह काम करते हैं। वह चीज श्रोताओं ने अन्यत्र कहीं उनके रागनाम से सुनी हो तो वे सभा में "यह अमुक राग है" ऐसा जोर से बोल उठते हैं अथवा वे उस गायक से तुम्हारा राग अमुक है क्या? ऐसा पूछते हैं।

प्र०—और गायक चुपचाप 'हां' कह देते हैं ?

उ०—वे बहुधा हंसकर "आप समझदार हैं, साहब। यह आपके देखने की बातें हैं; हम क्या कहें, अब इन बातों को कौन पूछता है? अब ऐसे सुनने वाले भी कहां हैं!" ऐसा कहते हुए टाल देते हैं। श्रोता भी यह समझ कर चुप बैठे रहते हैं कि उनकी समझदारी की पर्याप्त प्रशंसा हुई है। परन्तु इस प्रश्न से गायक अपनी चीज का नाम आगे किसी को बताने के लिये अपने मन में निश्चित कर लेते हैं। किन्तु इतना ही क्यों? सुहा और सुघराई राग गायकों से नियमानुसार स्पष्टरूप से पृथक करके दिखाने के लिये तुमने प्रार्थना की तो तुम्हें क्या उत्तर मिलेगा, यह तुम करके देखो।

प्र०—वे क्या कहेंगे भला ?

उ०—वे अमुक उत्तर ही देंगे, यह मैं नहीं कह सकता हूँ। परन्तु कुछ निरर्थक एवं असम्बद्ध सा उत्तर ही देंगे। सारांश यह कि सुहा तथा सुघराई ये राग पृथक-पृथक करके गाना बहुत थोड़े ही गायकों से बन पड़ेगा।

प्र०—अच्छा, लेकिन अभी-अभी आपने कहा कि कानडा के प्रकारों में गन्धार तथा धैवत स्वरों पर विवाद उत्पन्न होता है, वह कैसे ?

उ०—वह ऐसे, कि कोई कोमल धैवत लेने के लिये कहेगा तो कोई उसे तीव्र लेने के लिये, और कोई बिलकुल ही वर्जित करने के लिये कहेगा। इस प्रकार विवाद उत्पन्न होगा।

प्र०—परन्तु चीज का क्या होगा ?

उ०—वे अपनी चीज अपने अपने मत के समर्थनार्थ गायेंगे और सबके राग का नाम एक ही होगा! ग्रन्थ का आधार किसी को भी नहीं है। तो फिर वहां कोई कैसे निर्णय कर सकता है ?

प्र०—क्यों जी! ऐसे प्रसंग बारम्बार आते रहते होंगे ?

उ०—आते थे, यह सही है। परन्तु जान पड़ता है अब आगे ऐसे प्रसङ्ग विशेष नहीं आयेंगे। कारण, अब हमारे विद्वान रागों की अच्छी छानबीन करके यथासम्भव स्पष्ट रागनियम निर्धारित कर रहे हैं। "लक्ष्य सङ्गीत" ग्रन्थ भी तो इसी दृष्टि से लिखा गया है न? परन्तु अब हम पुनः सुहा राग पर विचार करें।

प्र०—हां, अवश्य। हमको 'सुहा' तथा 'सुघराई' ये राग स्पष्टतया पृथक-पृथक समझने हैं, इसलिये इन दोनों रागों के साधारण तथा असाधारण भाग भी हमको अच्छी तरह बताइये। यह भी बताने का कष्ट कीजिये कि क्या ये राग हमारे यहां प्राचीन माने जाते हैं ?

उ०—हां, ये बहुत प्राचीन हैं तथा हमारे कुछ संस्कृत ग्रन्थकारों ने भी इनका उल्लेख किया है; परन्तु यह सब मैं आगे तुम्हें कहने ही वाला हूँ। सर्वप्रथम हम सुहा राग

पर विचार करें। सुहा राग काफी थाट का होने के कारण इसमें गन्धार तथा निषाद कोमल रहेंगे ही। यह राग दिन के द्वितीय प्रहर के अन्तिम समय में प्रायः गाया जाता है। इसमें धैवत स्वर बिलकुल वर्ज्य है, यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये। वादी स्वर मध्यम तथा सम्वादी षडज है। प्रचार में सारंग नामक जो एक राग दोपहर को गाया जाता है उसके पूर्व इसे गाया जाता है। सुघराई राग का भी यही समय है। इन रागों के पूर्व भैरवी, जौनपुरी, गांधारी, आसावरी, देशी आदि राग गाने में आते हैं। इन तमाम रागों में धैवत कोमल है, परन्तु ये सारे राग आगे आयेंगे तब मैं क्रमशः तुमको बताऊंगा ही। 'सुहा' राग में "ग॒ म रे सा" यह भाग पूर्वाङ्ग में है।

प्र०—ऐसा लिया जाना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह कानडा प्रकार है। परन्तु उत्तरांग में?

उ०—उत्तराङ्ग में धैवत वर्ज्य है, इसलिये "नि॒प" ऐसी संगति होगी ही।

प्र०—यह भी तो कानडा अङ्ग का ही चिन्ह जान पड़ता है?

उ०—ऐसा ही समझकर तुम अभी चलो तो विशेष हानि नहीं। "नि॒ प" की सङ्गति सारङ्ग राग में भी है, कारण उसमें भी धैवत स्वर वर्ज्य है। यही कानडा में भी है।

प्र०—तो फिर "सूहा" राग का आरोहावरोह "नि़ सा रे म प नि॒ सां। सां नि॒ प म रे सा" ऐसा करना चाहिये अथवा "नि़ सा ग॒ म, प नि॒ सां। सां नि॒ प म, रे सा" करना चाहिये? बहार में "ग॒ म रे सा" यह कानडा का अङ्ग है तथा उसमें "नि़ सा ग॒ म" इस प्रकार आपने करने को कहा था, इसलिये मैंने पूछा।

उ०—तुमने जो पूछा वह ठीक है 'नि़ सा (म)ग॒ म, प नि॒ सां। सां नि॒ प, म, (म)ग॒ म रे सा" ऐसा सूहा का आरोहावरोह लेना ठीक होगा। आरोह में ऋषभ वर्ज्य है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। कारण, गायक कभी कभी जलद तान लेते समय 'नि़ सा रे म' इस प्रकार से गाते हुए दिखाई देते हैं। कहीं कहीं '(म)रे म रे, प, (प)नि॒ प' ऐसा प्रकार भी लिया हुआ दिखाई देता है, परन्तु इस राग के गीत जो प्रायः हम सुनते हैं उनके आरोह में ऋषभ क्वचित् ही दिखाई पड़ता है।

प्र०—आपने कहा कि 'सूहा' हमारे ग्रन्थकारों ने भी दिया है तो फिर उन्होंने इस राग के स्वरों के सम्बन्ध में क्या कहा है?

उ०—लोचन पण्डित ने 'शुद्धसुहवः' तथा 'देशीसुहवः' ऐसे दो नामों का उल्लेख किया है। ये दोनों राग उसने 'मेघसंस्थान' में लिये हैं। उस मेघ थाट के स्वर उसने इस प्रकार कहे हैं:—

धनिषादौ तु शार्ङ्गस्य कर्णाटस्य गमौ यदि।
भवेतां रागराजन्यो मेघरागः प्रजायते॥

तथा 'शाङ्ग स्य' अर्थात् 'सारंगस्य' अथवा सारंग राग के स्वर उसने इस प्रकार कहे हैं:—

एवं सति च गांधारः शुद्धमध्यमतां व्रजेत् ।
धश्च शुद्धनिषादः स्यात् सारंगो जायते तदा ॥

इस श्लोक में 'एवं सति' ये शब्द आने से और एक श्लोक आगे का लेना उचित जान पड़ता है। अर्थात् यह श्लोक अगले श्लोक पर अवलम्बित है तथा वह आगे का श्लोक इस प्रकार है:—

एवं सति च संस्थाने मध्यमः पंचमस्य चेत् ।
गृह्णाति द्वे श्रुती राग इमनो जायते तदा ॥

प्र०—यह यमन मेल तो हमारा परिचित ही है। यह अपने कल्याण का मेल है। ठीक है न ?

उ०—हां ! इसमें केवल मध्यम तीव्र है तथा शेष सारे स्वर शुद्ध हैं। तो फिर 'मेघ' संस्थान के स्वर क्या निश्चित हुए ? यमन से सारंगमेल करना चाहिये तथा उस सारंगमेल से आगे 'मेघ मेल' उत्पन्न करना चाहिये, अर्थात्:—

सा रे ग मं प ध नि सां इस यमन मेल से गन्धार और दो श्रुति चढ़ाकर उसका 'शुद्ध मध्यम' करना चाहिये तथा उसी प्रकार धैवत का 'शुद्ध निषाद' अर्थात् हिन्दुस्तानी 'कोमल निषाद' करना चाहिये तो 'सारंग मेल' होगा।

प्र०—परन्तु यमन में तीव्र मध्यम तथा तीव्र निषाद स्वर हैं, इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा।

उ०—वह इसलिये नहीं कहा कि वे स्वर जैसे हैं वैसे ही रखने हैं। हां तो, 'सारंगमेल' इस प्रकार होगा:—

सा रे म मं प नि नि सां। पारिभाषिक शब्दों में कहें तो सा रे ग (षट् श्रुतिक) म (षट्श्रुतिक) प ध (दो श्रुति चढ़ाये हुए अर्थात् पंचश्रुतिक) निषाद (चतुःश्रुतिक) ऐसा यह प्रकार होगा। परन्तु मैंने कदाचित् तरंगिणी के सब मेल पहिले समझा दिये थे।

प्र०—किन्तु यह दोहराकर आपने बहुत अच्छा किया। अब यह वर्णन हमारे ध्यान में अच्छी तरह रहेगा। अच्छा तो अब इस सारंग मेल से 'मेघ' करना है न ?

उ०—हां, वहां पण्डित कहता है:—'धनिषादौ च शाङ्ग स्य' अर्थात् ये दोनों निषाद होंगे, कारण सारंग का ध अर्थात् 'शुद्ध निषाद' हमारा आज का कोमल निषाद होगा तथा सारंग का जो निषाद है वही 'यमन' का निषाद है।

प्र०—हां ! अब यह सब जम गया। परन्तु तनिक ठहरिये ! 'कर्णाटस्य गमौ' ये दोनों स्वर रह गये। कर्णाट थाट हमारा 'खमाज' थाट है, ऐसा आपने हमको बताया था।

उ०—यह तुमने अच्छा ध्यान में रखा। तब इसमें 'ग' तथा 'म' ये स्वर खमाज थाट के लेने पड़ेंगे।

प्र०—तो फिर हमारे लिये कुछ गड़बड़ पैदा हो जायगी।

उ०—तुम्हारे ध्यान में सहज ही आजायेगा कि मेघ संस्थान की व्याख्या में 'एवं सति' ये शब्द नहीं हैं और उनके न होने के कारण यह थाट बिलकुल स्वतन्त्र है, इसमें धैवत तथा निषाद सारंग के हैं, ऐसा मानने पर सारंग के धैवत तथा निषाद कौनसे हैं यह हमको देखना पड़ता है। वे दो स्वर मिलने से सारंग मेल से हमारा बिलकुल सम्बन्ध नहीं रहता। तो फिर अब मेघ के स्वर बताओ तो सही ?

प्र०—हमारी समझ से वे इस प्रकार रहेंगे:—'सा रे ग म प नि नि सां' ये सारे खमाज थाट के ही स्वर होंगे। अन्तर इतना ही है कि इसमें केवल धैवत स्वर वर्ज्य है। परन्तु ये स्वर हमारे प्रचलित सुहा राग के तो नहीं होंगे, क्योंकि उसमें तीव्र गन्धार कैसे चलेगा ?

उ०—यह तुमने बिलकुल ठीक कहा। परन्तु ये स्वर उसने 'मेघ' संस्थान के कहे हैं। अब उसने 'शुद्ध सुहव' तथा 'देशी सुहव' इन रागों के सम्बन्ध में क्या कहा है, यह भी देखना पड़ेगा। लोचन पण्डित ने तरंगिणी में जन्य रागों के स्वरूप अर्थात् आरोहावरोहादि नहीं कहे हैं, वे स्वरूप हमको उसके अनुयायी हृदयनारायणदेव के ग्रन्थों से मिल सकते हैं। उदाहरणार्थ, इस 'शुद्ध सूहव' राग का स्वरूप हृदयनारायण ने अपने 'कौतुक' ग्रन्थ में ऐसा दिया है, देखो:—

मपसाः सरिसाः सश्च सधपा ममगा रिसौ।
रिसगा मपगा रिश्च सरिसाः कथिताः स्वराः॥
मपसा सरिसा ससधप ममरिस रिसगमपगरिसरिसा।
षाडवो ज्ञातसंगीतैः शुद्धसूहव उच्यते॥

और 'देशी सूहव' राग का स्वरूप उसने ऐसा दिया है:—

समपाः सनिसा निश्च धपगा मरिसास्तथा।
संगीतज्ञैः स संपूर्णो देशीसुहव उच्यते॥

प्र०—इस स्वरूप में गन्धार कोमल किया जाय तो कुछ-कुछ आज के प्रचलित स्वरूप के निकट यह स्वरूप आ सकेगा। हृदयनारायण के कुछ रागों में ऐसा परिवर्तन हुआ होगा, ऐसा आपने भी कहा था ?

उ०—हां, वास्तव में मैंने ऐसा कहा था। परन्तु इन दोनों रागों में गन्धार तीव्र ही है, यह निर्विवाद है। केवल एक बात बिलकुल निश्चित दीखती है कि इन दोनों प्रकारों में धैवत वर्ज्य है। 'धपगा' ऐसा अवश्य कहा है परन्तु उस धैवत अर्थात् 'शुद्ध निषाद' को हमारा कोमल निषाद समझना चाहिये।

प्र०—हां, यह आपका कहना बिलकुल ठीक है। कारण 'मेघ मेल' है तथा उसमें 'धश्च शुद्धनिषादः स्यात्' ऐसा ग्रन्थकार ने स्पष्ट कहा है, अच्छा तो सुहा राग में दूसरे कौनसे राग मिलते हैं ?

उ०—इस प्रश्न का उत्तर लोचन तथा हृदय के ग्रन्थों से नहीं दिया जा सकता; क्योंकि उन्होंने सुहा के अवयवी भूत राग नहीं बताये हैं। Captain Willard ने अपने ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लेख किया है। सूहू (Soohoo) मालश्री, बिलावल तथा विभास ऐसा कहकर आगे वे कहते हैं Others substitute Shoodha or Bagesree in the place of Bibhas परन्तु Captain साहेब ने किसी भी राग के स्वर नहीं कहे। इसलिये उनके इस कथन का विशेष उपयोग हमारे लिये नहीं दीखता। इस सम्बन्ध में कल्पद्रुमकार के दोहों का कुछ उपयोग हो सकता है अथवा नहीं, यह भी देखो !

प्र०—वह क्या कहता है ?

उ०—वह लिखता है:—

मिले बिलावल कानड़ा, टोड़ी सुरसमभाग।
सुहा राग तब होत है, गावत गुनि अनुराग ॥

अब ये सुर 'समभाग' कैसे मिलाने चाहिये वह पाठकों को ही समझ लेना चाहिये।

प्र०—यह कार्य हम से तो होना सम्भव नहीं है। अच्छा, अब यह बताइये कि राजा प्रतापसिंह ने अपने राधागोविन्द संगीतसार में 'सूहा' के बारे में कुछ कहा है क्या ?

उ०—उन्होंने 'सूहा' ऐसा नाम नहीं कहा, परन्तु 'सुहवी' ऐसे नाम को 'नट राग की रागिनी' बताई है। उसका स्वरूप आदि कहकर तथा 'शास्त्र में तो यह सात सुरन में गाई है' ऐसा कहकर उसे 'प्रभात में गावनी' बताया है। इस रागिनी का स्वरस्वरूप उन्होंने इस प्रकार दिया है:—

नि़ प़, नि़ सा, ग म, ग म रे सा, नि़ सा। ग, म प, सां, नि रें सां ध प, म ग म, ग म रे सा।

प्र०—हमारी समझ से उनके समय में सूहा हमारे आज के स्वरूप की ओर झुकने लगा था, ऐसा इस स्वरूप से दीखता है। परन्तु धैवत कोमल और फिर अवरोह में, यह जरा विसंगत है, ठीक है न ?

उ०—सम्भव है इन राजा साहेब के समय में ऐसा गाते हों। मुझे याद है कि मैं जिस समय रामपुर में था, तब एक गायक ने 'सूहा' गाया था। उसमें उसने स्थाई तथा अन्तरा गाते समय 'धैवत' बिलकुल वर्ज्य किया था। परन्तु आभोग गाते समय धीरे से एक जगह 'सां, ध नि प', ऐसा थोड़ा सा प्रयोग किया था। मैंने तत्काल उससे प्रश्न किया, तब उसने कहा कि इन चीजों में मैंने ऐसा ही सीखा है। उसने एक दो सूहा की चीजें और गाईं, परन्तु उनमें वह धैवत बिलकुल नहीं था। और एक मुसलमान गायक ने भी मुझसे कहा था कि सूहा में मेघ तथा दरबारी का योग है एवं सुघराई में बागेश्री और मधमाद का योग है।

'हृदयप्रकाश' ग्रन्थ में हृदयनारायणदेव ने 'शुद्धसुहवः' तथा 'देशीसुहवः' नाम छोड़ कर केवल 'सुहव' इतना ही लिखा है, सम्भवतः प्रचार में उसको ऐसा ही दिखाई दिया होगा।

प्र०—उसने स्वरों में कुछ अन्तर किया है क्या ?

उ०—उसने सुहा के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

निहीनः षाडवो गादिः सुहवः परिकीर्तितः।

तथा उदाहरण ऐसा दिया है देखोः—प म प सां रें सां सां सां ध प म म रे सा।

प्र०—तो फिर यह हमारे सूहा के बहुत निकट आगये, क्योंकि निषाद तीव्र नहीं था इसलिये उसे छोड़ ही दिया और धैवत अर्थात् कोमल निषाद होगा। उसने यह राग कौन से मेल में लिया है ?

उ०—तुम भूल गये। 'हृदय प्रकाश' ग्रन्थ में तरंगिणी में दिये गये अनुसार राग नाम की थाट रचना नहीं, यह मैंने कहा था न ? उसमें मेल हैं, परन्तु वे स्वरों की विकृति से कहे हैं।

प्र०—हां ठीक है। ऐसा पहले आपका कहा हुआ याद आता है। अच्छा तो इस सुहा राग के स्वरों के सम्बन्ध में ग्रन्थकार क्या कहते हैं ?

उ०—वे इस प्रकार कहते हैं—

त्रिविकृतास्त्रयो मेलाः।

(१) गांधारमध्यमनिषादानां तीव्रतरत्वे प्रथमः।

(२) गांधारधैवतनिषादानां तीव्रतरत्वे द्वितीयः।

(३) गांधारमध्यमनिषादानां तीव्रतमत्वे तृतीयः॥

इनमें से पहिला मेल तो उपयोगी नहीं है, कारण वह इमन का है। दूसरे के सम्बन्ध में वह इस प्रकार कहता है:—

गधैवतनिषादास्तु यत्र तीव्रतराः कृताः।
तत्र मेलेऽभवन् मेघः शुद्धनाटबिलावलौ॥
× × ×
देवाभरणदेशाख्यौ गौडमल्लारसूहवौ॥

अब 'सूहव' राग के स्वर इस उक्ति के अनुसार कौन से होंगे बताओ तो ?

प्र०—वे इस प्रकार होंगे। गन्धार तीव्र, निषाद कोमल तथा तीव्र, क्योंकि ध तीव्रतर यानी कोमल निषाद ही होगा। ठीक है न ?

उ०—हां, यह तुमने ठीक कहा। अब राग व्याख्या जो अभी अभी कही थी, उसे लगाकर देखो।

प्र०—यहां एक शंका उत्पन्न होती है। वहां 'निहीनः कहा, यह ठीक ही है, परन्तु 'गादिः' ऐसा कह कर फिर उसने उदाहरण पंचम से प्रारम्भ क्यों किया ? यह विसंगति नहीं है क्या ?

उ०—हां, वह विसङ्गति अवश्य है। उसमें कदाचित् 'पादिः' मूल में होगा अथवा 'मादिः' ऐसा भी होगा। 'शुद्धसुहवः' कहते समय उसने 'म प सा स रि सा रिश्च' आदि कहा था। परन्तु इस उलझन में पड़ने की हमें आवश्यकता नहीं। अब हम अन्य ग्रन्थों की ओर बढ़ें।

पुण्डरीक विट्ठल पण्डित ने भी 'सुहवी' इस नाम का एक राग दिया है। परन्तु वह केदार मेल में कहा है। वह कहता है:—

रिधौ द्वितीयगतिकौ तृतीयगतिको निगौ।
एष केदारमेलः स्यात् अतो जाताश्च रागकाः॥
× × ×
वेलावली च भूपाली कांबोजी मधुमाधवी।
शंकाभरणः सावेरी सुव्ही नारायणी ततः॥

आगे 'सुहवी' के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

धत्रिः पूर्णा च सुहवी प्रातःकाले सुखप्रदा।

प्र०—यह वर्णन अपनी रागिनी का नहीं। पहले के 'सुहवी' को ही हमारा आज का 'सुहा' राग माना जाय तो उस पुराने स्वरूप में परिवर्तन हुआ है, ऐसा कहना पड़ेगा।

उ०—हां, यह सही है। उसी पण्डित ने अपने 'रागमाला' ग्रन्थ में सुहवी का वर्णन इस प्रकार किया है:-

तन्वी श्यामा मृगाक्षी वरकमलमुखी पीतवस्त्रं दधाना।
प्रौढा सन्मूर्ध्नि वेणीं द्विजवरगमना कंचुकीं कर्बुरां च।
वक्त्रेषद्धास्ययुक्ता दशरसरचिता चामरैर्वीज्यमाना।
सावेरी मेलयुक्ता ह्युषसि तु सुहवी सत्रिका पूर्णरूपा॥
॥ रागमालायाम्॥

प्र०—और सावेरी मेल का वर्णन कैसा किया है ?

उ०—वह इस प्रकार है:—

धाद्यतांशा सपा या नयनगुणगतिश्चात्र धांत्यौ रिगौ स्तः।

प्र०—तो फिर आगे नहीं जायें। यह अपना केदार थाट ही है। यह राग हमारा नहीं होगा। इसमें आगे चलकर ग, नि स्वर कोमल हो गये, ऐसा चाहें तो कह सकते हैं।

इस आधार की अपेक्षा तरंगिणी तथा हृदयप्रकाश ग्रन्थ ही अधिक उपयोगी होंगे ठीक है न ?

उ०—हां, तुम्हारा कथन उचित प्रतीत होता है। परन्तु यह राग प्राचीन काल में तीव्र स्वरों में गाया जाता होगा, ऐसा मानने के लिये यह एक आधार दीखता है। इतना ही नहीं, बल्कि यह यावनिक अथवा 'पर्शियन' राग है, ऐसा भी मानने के लिये आधार है।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—मैंने पहले कहा था कि पुण्डरीक के 'पर्शियन' रागों की सूची में यह राग है, पुण्डरीक कहता है:—'अन्येऽपि पारसीकेया रागाः परदनामकाः ॥' इत्यादि। इसी सूची में 'केदारेऽपिच सूह्वाऽथ धनास्यां च इरायिका।'

प्र०—हां, हां, सचमुच आपने ऐसा कहा था। तो फिर यह राग अवश्य पारसिक है तथा यह तीव्र स्वरों का था। इसको हम कैसे गायें यह आप सोदाहरण समझा दीजिये, जिससे हम इसे भली प्रकार हृदयंगम करलें।

उ०—ठीक है, ऐसा ही करता हूँ। सुनोः—

म म म
सा, नि सा, ग, म, प ग, म रे, सा, नि सा, नि प, सा, म रे. प ग, म. रे सा, सा
म प म म म
ग, म, प, सां, नि प, म प ग, म, प ग, म रे, सा। सा, नि सा। प नि सा. म रे सा, ग म
म प प प म
प, ग, म, नि प, सां, नि प, रें सां, नि प, म प ग, म, रे सा, सा रे सा। सा रे सा, म रे,
म प म प म सा
सा, प ग, म रे सा, नि प म प ग, म, रे सा, सां, नि प म प, ग म, रे सा। नि रे सा। सा म रे,
प म प म म म
प, नि प म प नि प, सां, नि प, म प, ग म, रे, सा, नि प म प, ग म, नि प, ग, म रे सा।
इस तरह से तुम स्वरविस्तार करोगे तो तुम्हारा राग 'सुहा' अवश्य दिखाई देने लगेगा।
प म म म
कभी-कभी कोई नि प, ग म, रे सा, नि सा, रे नि सा. म, प ग म, प, सां, नि प, ग म, ऐसी भी शुरूआत सूहा राग में करते हैं।

प्र०—अच्छा फिर आगे अन्तरा किस प्रकार करना चाहिए ?

उ०—वह बिल्कुल सरल है। देखोः—

प प म मं
म म प, प, नि प, सां, सां, नि सां, सां मं रें सां, सां, नि म प, ग, म प, गं मं, रें
म
सां सां, नि प, म प, ग, म, रे सा। इस प्रकार से अन्तरा गाना चाहिये।

प्र०—अभी अभी आपने कहा था कि कुछ गायक आरोह में ऋषभ लेते हैं। वे उसको किस प्रकार लेते हैं, यह आप बतायेंगे क्या ?

उ०—हां, अवश्य। सुनो—

सा, म री, प, म, नि प, सां, सां, (प)नि प, म प ग म, रे सा, प़ नि़ प़, सा, सा, (म)ग म रे सा। रे म रे, प, प, (प)नि प, सां, नि सां, नि रें सां, (प)नि (ध)नि प, म प (म)ग म, रे सा। यह एक प्रकार हुआ। और भी एक देखो। सा, (म)ग (म)ग, म रे, सा, रे म रे, प नि म प, सां, नि म प, ग म रे म प म रे, रे (सा)सा। म, नि प, सां, सां, रें मं रें सां, रें सां, नि नि प, प म प, ग म, रें सां नि प, म प, ग म, रे सा। यह प्रकार तुमको कैसा लगता है ?

प्र०—हमारी समझ से पहिला प्रकार ही सुन्दर दिखेगा। "रेमरे" का टुकड़ा अच्छा नहीं दिखता।

उ०—तो फिर वह पहिला प्रकार ही तुम गाया करो। सुहा, सुघराई, देवसाख तथा नायकी ये चार राग सदैव गाने वालों तथा सुनने वालों को उलझन में डाल देते हैं। यह एक बार कहने पर उसमें भेद हम कैसे करें, यह भी बताने का मैं प्रयत्न करूंगा, जिससे तुमको उन्हें नियमानुसार पृथक-पृथक रखने में सुभीता होगा। इस सूहा की एक दो सरगम कहता हूँ, उन्हें सीखलो:—

सरगम—सुहा—झपताल

(सा)नि़	सा	(म)ग	ऽ	म	प	प	नि	म	प
×		२			०		३		
सां	ऽ	(प)नि	नि	प	म	प	(म)ग	ऽ	म
म	प	(म)ग	(म)ग	म	रे	रे	सा	ऽ	ऽ
नि़	सा	(म)ग	ऽ	म	प	प	(म)ग	(म)ग	म

———

अन्तरा.

		प							
म	प	नि	नि	प	सां	ऽ	सां	ऽ	सां
×		२			०		३		
सां					सां		प	ध	
नि	सां	रें	रें	सां	नि	सां	नि	नि	प
		म							
म	प	ग	ऽ	म	प	प	सां	ऽ	ऽ
प	ध				म				
नि	नि	प	म	प	ग	म	रे	रे	सा ।

सरगम—सुहा—झपताल.

			म						
नि	नि	प	ग	म	रे	सा	रे	नि	सा
×		२			०		३		
							म		
नि	सा	म	ऽ	म	प	प	ग	ऽ	म
					प		नि		
म	प	सां	ऽ	सां	नि	नि	म	म	प
		प			म				
सां	सां	नि	नि	प	ग	म	रे	रे	सा ।

अन्तरा.

		प	ध				सां	सां	
म	प	नि	नि	प	सां	ऽ	नि	नि	सां
×		२			०		३		
सां							प	ध	
नि	सां	रें	मं	रें	सां	ऽ	नि	नि	प

म	म	म	प	प	सां		ऽ	नि॒	म	प	
रें	सां	प नि॒	म	प	म ग॒		म	रे	रे	सा।	

इनके द्वारा इस राग का चलन अच्छी तरह तुम्हारे ध्यान में आजायेगा, ऐसा मैं समझता हूं।

प्र०—हां, अब हमको इसके समान जो सुघराई राग है वह भी बताइये। परन्तु बताने से पूर्व प्रचलित सुहा का समर्थन करने वाले आधार कह दीजिये ?

उ०—हां, कहता हूँ। सुनोः—

काफीमेलसमुत्पन्नः सुहवो लक्ष्यविश्रुतः।
आरोहे चावरोहेऽपि धैवतो वर्जितस्वरः॥
मध्यमः संमतो वादी सम्वादी षड्जनामकः।
गानं समीरितं लोके द्वितीयप्रहरे दिने॥
यद्यप्युत्तरभागेऽत्र रूपं सारङ्गसंनिभम्।
पूर्वाङ्गे व्यक्तगांधारः कुर्यात्तस्य निवारणम्॥
मध्यमस्य विशिलष्टत्वं नूनं स्यादतिरक्तिदम्।
निपयोः संगतिर्न्यासः समीचीनोहि मध्यमे॥
मेघदर्बारयोर्योगाद्रागोऽयं स्यात्समुत्थितः।
वदन्ति पंडिताः केचिल्लक्ष्यलक्षणकोविदाः॥
सारंगस्य प्रकारेषु नित्यं गांधारवर्जनम्।
न तत्कर्णाटभेदेषु ततस्तद्भित् परिस्फुटा॥

लक्ष्यसंगीते॥

सूहारागः किल गमनिभिः कोमलैर्भाति युक्तः।
आरोहे धैवतविरहितश्चावरोहे तथैव॥
वादी मध्यः प्रविलसतिसंवादकः षड्ज एव।
चंचत्तानैः कुतपसमये गीयते गानधुर्यैः॥

कल्पद्रुमांकुरे॥

कोमलाः स्युर्गमनयः समौ संवादिवादिनौ ।
तीव्रर्षभो धहीनस्तु सूहा कुतप इष्यते ॥

चन्द्रिकायाम् ।

कोमल गमनी तिख रिखब धैवत जामें नाहिं ।
सम संवादीवादितें सूहा राग कहाहिं ॥

चन्द्रिकासार ।

निसौ गमौ पनिमपाः सनी पमौ पगौ मपौ ।
गमौ रिसौ सुहा मांशा द्वितीयप्रहरे दिने ॥
निसौ मरी सनिसगा मपौ पगौ मनी पसौ ।
धनी पमौ पगौ मरी सश्च सूहाऽपरा कचित् ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—यह दूसरा धैवत लेने वाले जिस प्रकार का आपने उल्लेख किया, उसका धैवत तीव्र है अथवा कोमल ?

उ०—कोमल । अभी अभी मैंने कहा था न, कि रामपुर में मैंने एक ऐसा प्रकार सुना था । राजा सुरेन्द्र मोहन टागोर ने भी अपने सङ्गीतसार ग्रन्थ में सूहा राग में कोमल धैवत स्पष्ट लिखा है तथा सूहा का विस्तार भी वैसा ही किया है ।

प्र०—उन्होंने कैसा किया है ?

उ०—इस प्रकार है:—

नि़ नि़ म म प़ नि़ नि॒
सा सा; म रे प प, म ग॒, म, रे, सा, सा रे सा, नि॒ ध॒, नि॒ प़, म़ प़, सा, रे, सा,
रे
म ग॒, म रे, सा । आगे फिर इस प्रकार है:—

प प प नि ग॒ नि म
प नि॒ नि॒ सां, सां, रें सां, सां सां, नि॒ ध॒ नि॒ प, म म, प, सां सां नि॒ ध॒ नि॒ प, प, म,
म
रे, प प, म ग॒, म, रे सा ।

प्र०—उन्होंने प्रारम्भ में ही "रे प" रखा है, तो उनके सुहा का आरोहावरोह नि॒ सा रे म प नि सां । सां नि॒ ध॒ नि॒ प म ग॒ म रे सा । कदाचित इस प्रकार होगा ।

उ०—हां, मैं भी यही समझता हूँ । अच्छा, तो सुघराई राग की ओर चलें ।

प्र०—जी हां, अब वही बताइये । सुहा, सुघराई, देवसाग, नायकी तथा सहाना ये सारे राग परस्पर मिलने योग्य हैं, ऐसा आपने कहा था एवं ये सब बताने के पश्चात्

उन्हें पृथक्-पृथक कैसे पहचानना चाहिए, यह भी आप बताने वाले हैं। ऐसी दशा में और कुछ पूछने को रह जायगा तो फिर पूछ लूंगा। अब सुघराई के सम्बन्ध में कहिये। यह राग पुराना नहीं है क्या ?

उ०—हां, यह राग भी बहुत पुराना है तथा हमारे संस्कृत ग्रन्थकारों ने भी इसका उल्लेख किया है। इसका दूसरा नाम "कुलाई" अथवा "कुडाई" है।

प्र०—अर्थात् ये दोनों नाम एक ही राग के हैं, ऐसा ग्रन्थों में स्पष्ट कहा हुआ जान पड़ता है ?

उ०-हां, भावभट्ट पण्डित ने अपने अनूपविलास ग्रन्थ में ऐसा लिखा है:—

कुडाई।
लोकप्रसिद्धसुघराई इतीयं प्रातः।

उसने अपने अनूपसङ्गीत रत्नाकर में भी ऐसा ही कहा है। Captain Willard साहेब अपने Treatise on the music of Hindusthan ग्रन्थ में पृष्ठ ७२ पर कहते हैं "Culaee" "or" Curaee" or Soogharaee" ऐसा कहकर उस राग के अवयवीभूत राग कौनसे हैं, इसका वर्णन करते हैं। अभी तो इतना ही देखना है कि "कुडाई" अथवा "कुलाई" जो ग्रन्थों में वर्णित है, उसको सुघराई भी कहते हैं।

प्र०—यह ध्यान में आगया। अब सुघराई के सम्बन्ध में आगे चलिये ?

उ०—हां, यह सुघराई राग काफी थाट के जन्य रागों में से ही एक है, यह स्पष्ट ही है। इस राग के आरोह में धैवत स्वर नहीं है, परन्तु अवरोह में थोड़ा सा तीव्र धैवत लेने की चाल है। वह थोड़ा सा बीच बीच में देने का रिवाज होने से इस राग में भी "नि॒ प" की सङ्गति होगी ही। पूर्वाङ्ग में "ग॒ म रे सा" यह कानडा अङ्ग सूहा के अनुसार ही है। सुघराई में वादी स्वर पंचम तथा सम्वादी स्वर षड्ज मानते हैं। इस राग का समय दिन का दूसरा प्रहर है।

प्र०—तो फिर यह राग अधिकांशतः "सुहा" जैसा ही है, यही कहना चाहिये ? इसके अवरोह में थोड़ा सा तीव्र धैवत है और सुहा में वह बिलकुल वर्ज्य है। बस इतना ही भेद है।

उ०—इसके अतिरिक्त वादी स्वर का भी तो भेद है न ? इस राग का आरोहा-वरोह बहुधा ऐसा लिया जाता है—"सारेमपनि॒सां"। सांनि॒प, ध नि॒ प म प ग॒ मरे सा। (प नि॒)

प्र०—तो फिर धैवत अवरोह में वक्र दिखता है ?

उ०—हां, ऐसा मानना विशेष सुविधाजनक होगा; सां नि॒ ध प, म ग॒ रे सा, ऐसा अवरोह सुघराई में नहीं करते। पुनः सां नि॒ ध प म ग॒ म रे सा, ऐसा भी अवरोह

नि　　म
अच्छा नहीं दिखता । फिर भी ध प, ग म, रे सा, ऐसा हो सकता है । "नि सा, रे म
म　　　　म
प, म प, ग म ध प, ग म रे सा" ऐसे स्वर तुम्हारे सुनने में आयेंगे, परन्तु ऊपर के सा से
नि　　　　म
उतरते समय "सां, ध नि प, म प ग म, रे सा," ऐसा किया हुआ दिखेगा ।

प्र०—तो फिर नि सा, रे म, प, ऐसा आरोह सुघराई में तथा नि सा ग म, प ऐसा सूहा में मानकर चलना अच्छा नहीं रहेगा क्या ?

उ०—ऐसा स्थूल दृष्टि से तुम गाते रहे तो विशेष हर्ज नहीं दिखता । परन्तु कभी कभी ये दोनों प्रकार इन दोनों रागों में तुम्हें दिखाई देने संभव हैं । सुघराई में कोमल धैवत अवरोह में "ध नि प" इस प्रकार लेने वाले गायक भी दिखाई देंगे, यह मैंने पहले भी कहा ही था ।

प्र०—परन्तु यह स्वर नियमत रूप से आना ही चाहिये, ऐसा नहीं मानें तो उसे सूहा के अनुसार एक विवादी स्वर चमत्कार मानकर चलें । वैसा स्वर वक्र अवरोह में आये तो भी हमको कोई आश्चर्य नहीं होगा ।

उ०—अच्छा तो, अभी तुम ऐसा समझकर चलो । इन तीन रागों में अर्थात् सुहा, सुघराई और देवसाख में जहां जहां सारङ्ग के अङ्ग आगे आते हैं, वहां उनके ग म रे सा इस टुकड़े से बारम्बार ढँक देना चाहिये । उत्तरांग में "नि प" की सङ्गति भी सारङ्ग की ही है । हम अभी तक सारङ्ग राग के विषय में नहीं बोले हैं; इस कारण सारङ्ग तथा कानड़ा का सम्बन्ध तुम्हारे ध्यान में भलीप्रकार नहीं आयेगा । प्रातःकाल एक बार तोड़ी राग गाया तो गायक का ध्यान सारङ्ग की ओर जायेगा । प्रातःकाल में बिलावल प्रकार का गायन होने पर गन्धार निषाद कोमल होते हैं तथा उसी के अनुसार पहले नि ध कोमल होकर फिर ऋषभ स्वर तीव्र होता है एवं उसके पश्चात् धैवत तीव्र होता है । इसके बाद फिर गन्धार तथा धैवत ये लुप्त हो जाते हैं । ऐसा होने में पहले धैवत लुप्त होता है ।

प्र०—अर्थात् आपका कहना यह है कि सुहा सुहराई का गायन होने पर फिर सारङ्ग राग, जिसमें गन्धार तथा धैवत ये दोनों स्वर वर्ज्य हैं, वह आयेगा, यही न ?

उ०—यह एक स्थूल क्रम मैंने कहा है । अब सुहा पहले गाना चाहिये अथवा सुघराई, इस विषय पर मतभेद होना सम्भव है । परन्तु ये सारे राग प्रभात के द्वितीय प्रहर में गाये जाते हैं तथा सारङ्ग मध्यान्ह में गाया जाता है, इसमें कोई संशय नहीं ।

प्र०—सुघराई कैसा गाते हैं, यह हमको बता दीजिये ?

उ०—रामपुर में "धैवत" लेकर जिसने यह राग गाया था, उसके स्वर इस प्रकार थे, देखोः—

नि नि नि म प म म प म रे नि नि
सा ध, ध नि प, प मरे म, प, नि प, नि सां, ग ग म, नि प, ग म, म रे, ध ध
म सा
नि प, प, ग, म, रे, सा। ऐसी उसने स्थाई गाई।
प प सां सां सां प प प
म प, नि प, नि सां, सां, सां नि रें मं रें, सां, रें सां, नि सां, सां प नि प म प, नि
मं म
प नि सां, रें मं रें सां, प नि प, ग म रे सा। ऐसा अन्तरा गाया।

प्र०—इस प्रकार में धैवत के आने से कितना चमत्कार उत्पन्न हो गया है, देखो! प्रारम्भ में 'रे म', 'प नि प' यह भाग कितने सुन्दर हैं। सुहा में इतने सुन्दर नहीं दीखते। परन्तु यह सुघराई का धैवत अवरोह का ही समझना चाहिये न?

नि
उ०—उसे अवरोह का ही समझना पड़ेगा। कारण ध नि सां, ऐसा नहीं हो सकता और नि ध प ऐसा सरल प्रकार भी नहीं होना है; पुनः अवरोह में भी वह वक्र ही है।

प्र०—परन्तु अवरोह में, ध प ग, म होता है, ऐसा भी आपने कहा था न? वह प्रकार भी हमको बतादें तो अच्छा होगा।

उ०—वह प्रकार ऐसा है, देखोः—

नि म म म प
ध प, रे, सा, रे, नि सा, सा, रे ग ग म, रे, सा, नि सा, रे म, म प, प, नि प, सां,
म
प नि प, म प ग म, प। यह स्थाई हुई, अब अन्तरा देखोः—

प म म
म प, नि सां, सां, नि सां, सां, नि सां, रें, सां, नि प, प म प, नि प, ग ग, म, इत्यादि। और एक यह प्रकार देखोः—

प नि म म म
म, प सां, सां प, नि प, म, प री, म, ग ग, म, रे सा, रे नि सा, रे म, म प, नि म
प
प, नि सां, रें, सां, नि, सां रें, निप। म, प सां। यह स्थाई, और अब अन्तराः—म म, प,
प प प प
नि प, नि सां, सां, नि सां, नि सां रें, सां, नि प, नि प, म म, प, नि प, नि सां, रें, सां सां, नि प, नि, म प सां। इत्यादि

प्र०—इन समस्त प्रकारों में मध्यम की अपेक्षा पंचम ही सर्वत्र आगे लाने में आता है, इसमें संशय नहीं। अब इस अन्तिम प्रकार में यद्यपि धैवत नहीं है तथापि पंचम के कारण वह सूहा से पृथक ही दीखता है, यह मानना पड़ेगा। तो फिर यह धैवत रागभिन्नत्व दिखाने के लिये एक विशेष लक्षण मानकर लेते होंगे। हमको तो वादी भेद भी पर्याप्त
म म सा
जान पड़ता है। पूर्वांग में 'रे म, म प, ग म, रे सा' यह टुकड़ा भी हम अच्छी तरह ध्यान में रखेंगे।

यदि हो सके तो इस प्रकार का और भी कोई विस्तार हमको बता दीजिये, अन्यथा कोई छोटी सी सरगम कह दीजिये ?

उ०—अच्छा, यह एक छोटी सी सरगम ध्यान में रखो। इसमें वादी स्वर पंचम है।

सुघराई—तीव्रा.

प नि प २	म ग म ३	प नि प ×	प म प २	सां ऽ ३	प ध नि नि प ×
प म म	म नि प	म ग ऽ म	प प	म ग म	रे रे सा
सा सा	रें रें	सां ऽ सां	नि सां	रें सां	प ध नि नि प।

अन्तरा—

म प २	प नि प ३	सां ऽ सां ×	प नि प २	नि सां ३	रें रें सां ×
प रें	रें नि सां	प ध नि नि प	म म ग ग	म म	सा रे रे सा

इस तरह से प्रचार मे यह राग तुम्हें गाया हुआ दिखाई देगा। इस सारे प्रकार में पंचम से ऊपर के 'सा' तक कैसे विभिन्न प्रकार से 'म प, सां' 'प सां' लेकर जाते हैं, यह देखा न ? 'म प नि सां' ऐसा एकदम जाने से तुरन्त सारंग दिखाई देने लगेगा, इसलिये वैसा करते हैं। आरोह में निषाद वर्ज्य नहीं है, परन्तु पंचम तथा षड्ज का संयोग करने की स्वतन्त्रता है।

यहां एक मतभेद और तुमको बता देना हितकारी होगा, वह यह कि सुघराई में तीव्र धैवत आरोह तथा अवरोह दोनों में लिया जाता है, यह मत भी तुम्हारे लिये उपयोगी है, इसलिये इसे संग्रह में रखना अच्छा ही होगा।

प्र०—अर्थात् ये कृत्य बागेश्री के पंचम जैसा ही होगा, ऐसा प्रतीत होता है। कोई वह स्वर बिलकुल वर्ज्य करेंगे, कोई उसे अवरोह में लेंगे और कोई तो उसे आरोह तथा अवरोह दोनों में भी लेंगे, यह मत किसका है ?

उ०—यह मेरे लखनऊ के एक विद्वान मित्र का है। वे तानसेन के ही घराने के कै० मोहम्मद अली खां के शिष्य हैं तथा उन खां साहेब की सिखाई हुई चीजों से उन्होंने धैवत का प्रयोग वैसा किया है।

प्र०—तो फिर वह प्रकार भी कह दीजिये ?

उ०—हां, अब ऐसा ही करता हूँ। उनका वह प्रकार ऐसा है, देखो:—

सुघराई–सरगम–एकताल.

						म		नि			
सां	सां	नि	ध	नि	प	ग	म	ध	ऽ	नि	सां
२		०		३		४		×		०	
				ध				म	म	म	
ऽ	रें	सां	ऽ	नि	ध	नि	प	प	ग	ग	प
					नि		नि				
म	ऽ	रे	ऽ	सा	ध	ऽ	ध	नि	सां	रें	निसां

अन्तरा—

म								सां			
ग	म	ध	नि	सां	नि	सां	सां	नि	सां	रें	सां
×		०		२		०		३		४	
मं		सां							म		
गं	ऽ	रें	सां	नि	ध	नि	प	प	ग	प	म
								नि		नि	
प	प	म	रे	सा	ऽ	सा	सा	ध	ध	ध	ऽ
नि	सां	रें	निसां								

प्र०—पता नहीं, इसमें हमको बहार का आभास क्यों होता है?

उ०—कदाचित वह तुम्हें "ग म ध नि सां" इस भाग के कारण जान पड़ता होगा। परन्तु इस प्रकार के पूर्वाङ्ग में "प प। म रे। साऽ" ऐसा प्रकार है, वह बहार में नहीं है।

प्र०—परन्तु सुघराई यदि एक कानड़ा प्रकार हुआ तो उसमें भी तो "ग म रे सा" ऐसा चाहिये न? हमको पहले ऐसा प्रतीत हुआ कि सुघराई कुछ कुछ बहार के समान ही होगा।

उ०—हां, तुम्हारी यह शंका भी ठीक है। परन्तु मुहम्मद अली खां का यह मत भी तुम अपने संग्रह में रखो तो क्या हर्ज है? अब खां साहेब का दूसरा एक निराला ही प्रकार सुनो!

सुघराई—सरगम, झपताल.

	नि	नि̲					म	म	
सा	ध	ध	नि̲	प	म	प	ग̲	ग̲	म
×		२			०		३		
म	म				म	म			
ग̲	ग̲	म	नि̲	प	ग̲	ग̲	म	रे	सा
	नि	नि̲							
सा	ध	ध	नि̲	सां	नि̲	सां	रें	रें	सां
							प	ध	
सां	सां	रें	रें	सां	नि̲	सां	नि̲	नि̲	प

अन्तरा.

म	प	नि̲	सां	सां	सां	ऽ	नि̲	सां	सां
प							प	ध	
नि̲	प	नि̲	सां	रें	सां	सां	नि̲	नि̲	प
					मं				
म	प	नि̲	सां	सां	ग̲ं	मं	रें	रें	सां
							प	ध	
नि̲	सां	रें	सां	सां	सां	ऽ	नि̲	नि̲	प

यह भी ध्यान में रखने योग्य प्रकार है।

राजा सुरेन्द्र मोहन टागोर अपने "सङ्गीतसार" ग्रन्थ में सुघराई का विस्तार इस प्रकार कहते हैं:—

नि̲ नि̲   म   ग̲ प   रे
सा सा, रे रे, रे प म ग̲, ग̲ म रे, सा, म ग̲, म म प, सां, सां, नि̲ ध̲ नि̲ प, म म
म म
प म, ग̲ ग̲ म रे सा। आगे अन्तरा इस प्रकार कहते हैं:—

ग̲ं
म प, प नि̲ प, नि सां, सां, नि सां, रें सां, प नि̲ प, म प नि सां, रें मं मं रें सां, सां,
प   म म
नि̲ प, म, म प, म ग̲ ग̲ म, रे, सा। सुघराई का एक प्राचीन नाम 'कुडाई' था, ऐसा वे भी कहते हैं। मेरी समझ से अब और मत कहने की अधिक आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

प्र०—अच्छा, राधागोविंदसङ्गीतकार इस विषय में क्या कहते हैं ?

उ०—वे कुडाई को देशाख राग की रागिनी मानते हैं। इसका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—"याको लौकिकमें 'सुघराई' कहतें हैं। पार्वतीजीनें अपनें मुखसों 'कुडाई' गाइके देसाखकी-छाया युक्ति देखी। देशाखरागको कुडाई रागनी दीनी। ××याको दिन के दुसरे पहरमें गावनी।" आगे उसका जंत्र इस प्रकार दिया है:—

म
म प, ध नि॒ प, मप, म ग॒ म, धप, मग॒, प म प, ग॒ म रे सा ।

प्र०—यह स्वरूप हमको अभी बताये हुए स्वरूप की अपेक्षा कुछ विशेष सुन्दर जान पड़ता है।

उ०—तो इसे अच्छी तरह से ध्यान में रहने दो। टागोर साहेब ने सुहा राग में कोमल धैवत लिया था, इसलिये उनके मतानुसार यह पृथक राग होगा ही। प्रतापसिंह के समय के 'नगमाते आसफी' कार कहते हैं कि सूहा तथा सुघराई=दोनों मालकंस की रागिनियां हैं तथा उनके स्वरूप मालकंस से थोड़े बहुत मिलते हैं। भेद केवल स्वर रचना में है; कोमल स्वरों में सादृश्य है।' मालकंस राग में ग म ध नि स्वर कोमल हैं। आगे ग्रन्थकार कहता है 'सुहा में प वादी, नि सम्वादी, ग॒, ध, म रे अनुवादी, ग कोमल, ध तीव्र तथा शेष शुद्ध हैं। सुघराई में ध वादी, नि अथवा ग संवादी, प, म अनुवादी हैं।' मेरी समझ से उसकी वादी सम्वादी स्वरों की व्याख्या कुछ निराली है अथवा उसने वह भाग और कहीं से उद्धृत किया है, परन्तु सुहा तथा सुघराई दोनों रागों में धैवत का स्पष्ट ही प्रयोग है। उसने 'आलाप' करने के चार प्रकार अथवा चार भाग कहे हैं।

प्र०—वे अस्ताई, अन्तरा, संचारी तथा आभोग ही हैं न ?

उ०—उन भागों को वह 'बरन' करता है; जैसे 'अस्ताई बरन', 'संचाईबरन', 'आभोग बरन' तथा 'झुलती बरन'।

प्र०—ये नाम नवीन ही दीखते हैं। अन्तिम झुलती बरन तो अवश्य ही नया है। इस 'बरन' के सम्बन्ध में वह क्या कहता है ? 'बरन' हमारे वर्ण को समझना चाहिये न ?

उ०—हां, वह कहता है, 'अस्ताई वर्ण के प्रस्तार में षड्ज स्वर का प्रयोग विशेष होता है।'

प्र०—तो फिर ठहरिये ! यह भाग हम ध्यान से सुन लें। कारण, हमारे मुसलमान गायक अपने आलाप कदाचित् इस प्रकार से आज भी गाते होंगे। अस्ताई वर्ण का उदाहरण उसने दिया है क्या ?

उ०—हां, अवश्य दिया है। परन्तु उसने ये वर्ण भैरव के स्वरों में कहे हैं।

प्र०—कोई हर्ज नहीं वे हमको सुनाइये ?

उ०—ठीक है देखो—'भैरव-अस्ताईबरन'—सा ग रे॒ सा, सा नि़ ध़॒ नि़ सा, रे॒ सा, रे॒ सा, नि़ ध़॒ नि़ सा, रे॒ सा, नि़ ध़॒ नि़ सा, सा, नि़ ध़॒ प़, म़ ध़॒ नि़ सा, म ग रे॒ सा, सा रे॒, ग म प ध॒ प म ग रे॒ सा, सा नि़ ध़॒ नि़ सा, नि़ ध़॒ प़ म़ ध़॒ नि़ सा, रे॒ सा, ।

आगे संचाई बरन सुनो। (इस वर्ण का उच्चार बहुधा धैवत से तथा कभी कभी प एवं म अथवा ग स्वर से होता है) अस्ताई बरन को स्थाई जैसा तथा संचारी वर्ण को अन्तरा जैसा समझना चाहिये। अन्तरा टीप तक अवश्य जाना चाहिये; परन्तु कुछ लोग ऐसा नियम नहीं मानते। मेरे मत से संचाई वर्ण की तानें तार स्थान में अवश्य ले जानी चाहिये। यह नियम क्वचित् ही भंग किया दीखेगा।

प्र०—परन्तु उसने संचाई वर्ण का उदाहरण कैसा दिया है ?

उ०—कहता हूं। धु, नि सां, सां सां, नि सां, सां नि सां सां, धु नि धु प, सां गं रें रें सां इत्यादि। उसने आलाप के अक्षर ऐसे दिये हैं:—ने द्रे त नों-ने तें न आ-न री-ना न तोम्। आभोग वर्ण का उच्चार ग अथवा म से होता है। इस वर्ण की तान टीप में क्वचित ही जाती है। जैसे—म धु धु धु प, धु धु प, धु नि धु प म प प, म ग रे, म प म ग रे, रे रे, सा नि सा। भुजनी बरन, चाहे जिस स्वर से प्रारम्भ हो जाता है। सां सां सां रें सां, धु नि सां, प म ग ग ग म, ग रे सा, नि सा रे रे सा। यह सारा भाग 'नग़माते आसफी' ग्रन्थ का ही है, जो मैंने पिछली बार बताया था, परन्तु उस समय सुघराई तथा सुहा की चर्चा नहीं चल रही थी इसलिये अब पुनः कहा है, और पुनरुक्ति हो जाय तो कोई हर्ज नहीं, यह तुमने मुझ से कह ही रखा है। अस्तु !

मित्र ! अब हम यह देखें कि अपने संस्कृत ग्रन्थकार इस सुघराई अथवा कुडाई राग के सम्बन्ध में क्या कहते हैं। पण्डित लोचन ने राग तरंगिणी में सुघराई राग 'कर्णाट' संस्थान में कहा है।

प्र०—अर्थात् 'खमाज' थाट में ?

उ०—हां, कर्णाट थाट का अर्थ वही होगा। मैंने उस थाट के स्वर पहले कहे ही हैं। परन्तु स्मरणार्थ पुनः एक बार कहता हूँ। वह पंडित कहता है—

शुद्धाः सप्तस्वरास्तेषु गांधारो मध्यमस्य चेत।
गृह्णाति द्वे श्रुती गीता कर्णाटी जायते तदा॥

फिर वह इस थाट के जन्य रागों का वर्णन करता है, जिनमें सुघराई भी एक है।

× × × ×

केदारी रागिणी रम्या गौरः स्यान्मालकौशिकः।
हिंडोलः सुघराई स्यादडानो रागसत्तमः।
गाराकानरनामा च श्रीरागश्च सुखावहः॥

इन्हीं में 'वागीश्वरी' राग भी उसने कहा है, जो मैंने अभी अभी बताया ही था। इस राग में तीव्र गन्धार बाद में कोमल हुआ, ऐसा भी मैंने कहा था।

प्र०—हां, वे सब हमारे ध्यान में हैं। सुघराई का स्वरूप कैसा दिया है ?

उ०—नादस्वरूप तो लोचन ने नहीं दिया है, यह मैंने कहा ही था। हृदयनारायण अपने 'हृदयकौतुक' में सुघराई का इस प्रकार उल्लेख करता है—

गरी गपौ मपौ मो धो निसौ सनी धपौ मपौ ।
गमौ रिसावििति पूर्णा सुघराई सुरागिणी ॥

तथा 'हृदयप्रकाश' में कहता है:--

गैकतीव्रतरे मेले कर्णाटः ककुभाभिधः ।
खंबावती जिजावंती सौराष्ट्री सुघरायिका ॥

× × × ×

यह खमाज थाट ही है । इसमें ही वह अडाना तथा बागेश्री बताकर फिर कहता है:--

सुघराई तु संपूर्णा पांशा गादिकमूर्छना ।
ग रि ग, प म प प ध नि सां नि नि ध प म प ग म रि सा ।

यहां गन्धीर तीव्र है । परन्तु अन्त में 'गमरेसा' है, यह दिखता ही होगा । 'कुलाई' राग के अवयव-राग तरंगिणी में इस प्रकार दिये हैं:—

अडानाकानरावेलावलीभिर्नटपूर्वकात् ।
नारायणात् समाख्याता कुलाई नाम रागिणी ॥

Captain Willard साहेब भी Coolaee or Sughraee ऐसा कह कर उसमें नटनारायण, बिलावल, अडाणा इन तीन रागों का मिश्रण है, ऐसा स्पष्ट कहते हैं ।

अहोबल पण्डित अपने सङ्गीत पारिजात में 'कुडाई' के लक्षण इस प्रकार देते हैं-

कुडाई तीव्रगोपेता चारोहे मनिवर्जिता ।
गांधारोद्ग्राहसंयुक्ता पंचमांशेन शोभिता ।
धयोरन्यतरेणैव यत्रावरोहणं मतम् ।
गांधारेण विहीना साऽप्यवरोहे क्वचिन्मता ॥

प्र०—इससे ऐसा नहीं दिखता है क्या, कि उस समय यह राग विभिन्न प्रकार से गाया जाता था ? तीव्र गन्धार को निकाल देने की प्रवृत्ति हो चली थी, ऐसा भी इस श्लोक से प्रगट होता है; यद्यपि उसे अवरोह से निकालना बताया है फिर भी वह स्वर रुकने लगा था, ऐसा प्रतीत होता है । कदाचित् 'गमरेसा' इस मत को देखकर ही वैसा कहा होगा ?

उ०:—कुछ भी हो, परन्तु वह स्वरूप हमारे आज के सुघराई स्वरूप से बहुत भिन्न है, यह मानना पड़ेगा । दक्षिण के ग्रन्थकार सुघराई अथवा कुडाई के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखते ।

प्र०—यह केवल उत्तर के ही राग होंगे, सम्भवतः इसी कारण इनके विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा होगा ?

उ०—हां, ऐसा मानने में हर्ज नहीं। इनायत खां अपने 'सुरतरंगिणी' ग्रन्थ में 'सुघराई' के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखता है:—

होइ अडाना कान्हरा अरु मल्लारहु संग।
कहत गुनी यों सुघराई इन तीनों मिल संग॥

सुघराई

होइ अडाना कानरा पुनि मलार के संग।
सुघराई को होत है तबै अनूपम रंग॥

सुघरई

नटनारायण मिलत है और अनाडा मान।
कहत बिरावर रूपमिल सुघराई रस खान॥

इन तीनों दोनों में अडाना राग एक अवयव है और वह विशेष महत्व का है, ऐसा समझ लो। अब संगीत कल्पद्रुमकार क्या कहता है, वह सुनो:—

प्रथम अडाना कानरा वृन्दावनि सुर आन।
सुघरई सुन्दरस्वर गुनीजन करत है गान॥

यह मत हमारे प्रचलित स्वरूप के बिलकुल निकट होगा। इसमें जो 'वृन्दावनी' कही है, वह सारंग का नाम है। और सुघराई के समय के सम्बन्ध में क्या कहता है, देखो—

द्वितीयप्रहरार्धेच सुहावेलावली तथा।
सुघराई माधवी माधो गांधारो गुणक्री पुनः॥

सुहा तथा सुघराई, ये कानडा हैं, वह इसको कैसे व्यक्त करता है देखो:—

अष्टादश है कानडा भिन्न भिन्न है नाम।
अडाना कन्हरा नायकी सुहा सुघ्रई धाम॥

राजा सुरेन्द्र मोहन टागोर अपने सङ्गीतसार ग्रन्थ में कानडा प्रकार के सम्बन्ध में कहते हैं:—यावनिक गायक कानडा के ऐसे प्रकार बताते हैं:—दरबारी कानडा, नायकी कानडा, कौशिकी कानडा, मुद्रा कानडा, वागीश्वरी कानडा, नट कानडा, काफी कानडा, कोलाहल कानडा, मंगल कानडा, श्याम कानडा, टंक कानडा तथा नागध्वनि कानडा। इनके अतिरिक्त आगे अः आधुनिक कानडा हैं, जा इस प्रकार हैं:—अडाना, सहाना, सोहा, सुघराई; हुसेनी, मियां का कानडा ऐसे कुल मिलाकर सब १८ कानडे मानने में आते हैं।

प्र०—ठीक है, यह ध्यान में आ गया। अब अपने प्रचलित सुघराई के आधार कहिये?

उ०—अच्छा, कहता हूं:—

हरप्रियाख्यमेलाच्च सुघरायी समुत्थिता ।
आरोहे धैवतोनासौ द्वितीयप्रहरे दिने ॥
पंचमः संमतो वादी संवादी षड्जनामकः ।
कर्णाटस्यैव भेदोऽयं सारंगांगविभूषितः ॥
अडाना कानडा चैव वृन्दावनी तथैव च ।
मिलंत्यत्र यथान्यायमिति केचिद्वदंति ते ॥
सहाना रात्रिगेयोक्ता गेयैषा नित्यशो दिवा ।
नायकीकानडा रात्रौ दिनगेया तथा सुहा ॥
सूहा धैवतहीना स्याद्त्रधो नानुलोमके ।
वृन्दावन्यधगा नित्यं निषादद्वयमंडिता ॥

लक्ष्यसंगीते ।

सुघ्राई स्यान्मृदुगमनिका रोहणे धैवतेन ।
हीनेत्युक्ता पुनरभिहिता चावरोहे धयुक्ता ॥
संवादी तु प्रथित इह सः पंचमोऽस्त्यत्र वादी ।
विष्वक्तानैः कुतपसमये गीयते गीतविद्भिः ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

कोमलाः स्युर्गमनयः सपौ संवादिवादिनौ ।
नारोहे धस्तीव्ररिधा सुघ्राई कुतपे स्मृता ॥

चन्द्रिकायाम् ।

तीवर रिध कोमल गमनि चढ़ते ध नहिं लगाय ।
ससंपवादीवादितें गुनि गावत सुघराइ ॥

चन्द्रिकासार ।

धपौ मरी निसरिगा मरी सनी पमौ च पः ।
गमौ रिसौ भवेत्पांशा संगवे सुघराइका ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

इन आधारों की सहायता से सुहा तथा सुघराई राग तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह से रहेंगे।

प्र०—अब कौनसा राग लेना चाहिये ?

उ०—अब हम 'देवसाग' राग पर विचार करें। मैंने कहा ही था कि दिन के दूसरे प्रहर के रागों में सुहा, सुघराई तथा देवसाग ये तीनों राग सदैव गायकों को तथा श्रोताओं को उलझन में डाल देते हैं, और इसका कारण यह है कि पूर्वाङ्ग में 'ग̲ म रे सा' तथा उत्तराङ्ग में 'नि̲ प' स्वरसमुदाय इन तीनों में एक जैसे ही आते हैं। ऐसी दशा में इन रागों में भेद उत्पन्न करने के लिये हमारे गायक नायकों ने उत्तरांग में धैवत स्वर का प्रयोग योग्य स्थान पर तथा योग्य रीति से करने की अनुमति कुछ रागों में दी है। फिर भी विवाद को स्थान रह गया। किसी ने कहा यह राग प्रारम्भ होने से पूर्व भैरवी, आसावरी, गंधारी आदि कोमल धैवत प्रधान राग होने के कारण इस राग में कोमल धैवत कुछ अल्प प्रमाण में, जैसा कि कानडा में है, रहने देना बहुत अच्छा दीखेगा। किसी ने कहा यदि धैवत 'नि̲ ध̲ नि̲ प,' इस प्रकार लेना है तो वह तीव्र भी लिया जाय तो चलेगा। इन तीनों रागों में पूर्वाङ्ग का वादी म अथवा प हुआ तो अच्छा नहीं दीखेगा। सारांश यह कि धैवत पर हमेशा विवाद उत्पन्न होता है।

प्र०—तनिक ठहरिये ! अभी-अभी आपने 'गायक-नायक' कहा। नायक किसको कहते थे तथा गायक कौन ? इस विषय में हमारे संस्कृत ग्रन्थकार कुछ कहते हैं क्या ? हमने बीच में यह अप्रासंगिक प्रश्न किया है इसके लिये क्षमा कीजिये। आपने पहले गायक, नायक, गुणी, गन्धर्व आदि गायकों के वर्ग बताये थे, वहीं हमको यह प्रश्न पूछना चाहिये था, परन्तु उस समय हमें इसका ध्यान नहीं रहा। अब आपके श्री मुख से 'गायक-नायक' यह नाम निकले, इससे पूछ रहा हूँ ?

उ०—कोई हर्ज नहीं ! तुम कहते हो उसका पूर्णरूपेण समाधनकारक उत्तर देना तो कठिन ही है। किन्तु इस विषय में राजा सौरीन्द्र मोहन टागोर ने अपने संगीतसार ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है:—

विशेषज्ञस्तूर्यत्रितयनिपुणश्चाभिनयवित् ।
रसालंकारज्ञः सकलगुणदोषैकनिकषः ॥
पराभिप्रायज्ञो यशसि बहुमानो धृतशुचिः ।
क्षमी दाता धीरो जगति कथितो नायक इति ॥

संगीतदामोदरे।

शिक्षाकारोऽनुकारश्च रसिको रंजकस्तथा ।
भावुकश्चेति गीतज्ञः पंचधा गायनं जगुः ॥

रत्नाकरे।

अन्येभ्यः शिक्षणे दक्षः शिक्षाकारो मतः सताम् ।
अनुकार इति प्रोक्तः परभंग्यनुकारकः ॥
रसाविष्टश्च रसिको रसज्ञः श्रोतृरंजकः ।
गीतस्यातिशयाधानाद्भावुकः परिकीर्तितः ॥

रत्नाकरे।

रूपवान् नृत्यतत्त्वज्ञो वाद्यवादनवेदितः ।
वाक्प्रबंधरचयिता कुशलो लयतालयोः ॥
कोविदो नृत्यवाद्येषु शिल्पी शिक्षणदक्षकः ।
उपाध्यायः अथवा पंडितः ॥
मार्गं देशीं च यो वेत्ति स गंधर्वोऽभिधीयते ।
षाडवौडुवसंपूर्णगायने जनरंजकाः ।
काकुवर्जितशारीरा गायका राजवल्लभाः ॥

संगीतमकरंदे ।

प्र०—इतना पर्याप्त है ! हां तो, धैवत का विवाद इस राग में सदैव उत्पन्न होता है, ऐसा आप कह रहे थे, उससे आगे चलिये ?

उ०—हां, जो 'कोमल धैवत' सुहा में लेने को कहते हैं उनका राग तो स्पष्ट ही पृथक होगा, इसमें संशय नहीं। उनके राग की उलझन थोड़ी सी अडाना राग से रहेगी। परन्तु उनका राग सुघराई से पृथक अवश्य हो जायगा।

प्र०—किन्तु अभी आपने जो भेद सुहा और सुघराई में बताया कि सुहा में धैवत बिलकुल वर्ज्य करना चाहिये तथा सुघराई में तीव्र ध थोड़ा सा लेना चाहिये, वह क्या बुरा है ?

उ०—नहीं ! उसको बुरा कौन कहता है ? उसमें धैवत कैसा लेना चाहिये, प्रश्न यह है। वह दोनों प्रकार से लेते हैं, ऐसा मैंने सुझाया था, वह याद ही होगा। एक प्रकार 'ध, प, म प, नि प, म रे सा'; ऐसा है तथा दूसरा प्रकार, 'ध, नि प, म प' ऐसा है।

प्र०—वह हमारे ध्यान में है। 'सां नि ध प' ऐसा सरल प्रकार करने से काफी जैसा आभास होगा, ऐसा आपने कहा था। 'सां नि ध नि प, म प' इस प्रकार से वक्र धैवत हो सकता है, यह हमने अपने ध्यान में रखा है; अर्थात् वह उसके अवरोह में वक्र है ऐसा समझना चाहिये।

उ०—यह सब तुमने ध्यान में रखा, यह बहुत अच्छा किया। सुघराई के लक्षण में वह थोड़ा सा अवरोह में लिया जाता है, ऐसा कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि 'सां नि ध प' इस प्रकार से लेने में आता है, मगर नहीं लेना चाहिये। अब धैवत पर तनिक रुक कर पंचम पर गये तो कोमल निषाद का अन्श कुछ आता ही है। तानें लेते समय गायकों को ऐसे धैवत पर रुकना कठिन हो जाता है, वे एकाध बार ऐसी सरल तान ले भी जाते हैं तो वहां तिरोभाव अवश्य होता है, परन्तु आगे पूर्वाङ्ग में 'प ग॒ म, रे सा' से राग स्पष्ट हो जाता है, इस कारण उत्तरांग का वह विसंगत भाग तत्क्षण लुप्त हो जाता है। पूर्वाङ्ग में एक और छोटी सी खूबी है, वह ध्यान में रखो। सूहा में 'सा म, म प म ग॒ म, रे सा' तथा सुघराई में 'सा रे, म रे, प ग॒ म रे' ऐसे स्वरसमुदाय बारम्बार दिखाई देंगे। जहां ये दोनों एक ही राग में दिखाई पड़ेंगे वहां सुहा-सुघराई का योग है,

ऐसा समझने में हर्ज नहीं। सुघराई में भी 'नि प' की संगति जहां-तहां दिखाई देगी ही। परन्तु कहीं-कहीं राग का भिन्नत्व दिखाने के लिये 'नि ध नि प' का टुकड़ा श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया जायेगा। और एक बात ध्यान में रखो कि सूहा की अपेक्षा सुघराई में सारंग राग विशेष रूप से सामने लाने का प्रयत्न गायक करते हैं।

प्र०—इसीलिये सा, रे म, म रे प, म रे सा' यह प्रकार' उसमें आयेगा, ऐसा प्रतीत होता है?

उ०—हां, यह तुम्हारे ध्यान में अच्छा आ गया। वह सारंग फिर 'प म ग म, रे सा' ऐसा मुड़ता है। अच्छा तो अब हम देवसाग राग की ओर बढ़ें। 'देवसाग' नाम देशाक्षी अथवा देशाख्य इस संस्कृत नाम का अपभ्रन्श है, ऐसा कहते हैं। हृदयनारायणदेव अपने ग्रन्थ में 'देशाख' ऐसा नाम देता है।

प्र०—तो फिर यह राग भी बहुत पुराना है, ऐसा दीखता है?

उ०—शार्ङ्गदेव ने रत्नाकर में 'देशाख्य' ऐसा नाम स्पष्ट रूप से कहा है। उसके रागों का वर्गीकरण 'ग्रामराग, उपराग, राग' आदि कहे ही थे। उसने २० राग जो दिये हैं उनमें 'देशाख्य' है। तो फिर यह राग लगभग ७०० वर्ष पुराना निश्चित हुआ। उसने इस राग की व्याख्या भी की है; परन्तु रत्नाकर के रागों का स्पष्टीकरण अभी होना बाकी है, इस कारण उसके लक्षण हमारे लिये उपयोगी नहीं हैं अतः उन्हें कहना व्यर्थ है। 'देशाख्य' राग का उल्लेख दामोदर पण्डित के संगीत दर्पण में भी है। उसमें 'देशाख्या' हिन्डोल की रागिनी मानी है।

प्र०—उसका वर्णन कैसा किया है?

उ०—वह वर्णन भी स्वरों के अभाव में रत्नाकर के समान निरुपयोगी ही समझना चाहिये। परन्तु तुमने पूछा है, इसलिये कहता हूँ:—

देशाख्या षाडवा ज्ञेया गत्रयेण विभूषिता।
ऋषभेण वियुक्ता सा शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता॥
मूर्छना हारिणाश्वाऽत्र संपूर्णा केचिदूचिरे॥

ध्यानम्।

वीरे रसे व्यंजितरोमहर्षा शिरोधराबद्धविलासबाहुः।
प्रांशुःप्रचंडा किल चंद्रागा देशाख्यसंज्ञा कथिता मुनींद्रैः॥

उदाहरणम्

ग म प ध नि सा ग।

अथवा।

ग म प ध नि सा रे ग।

इतना ही नहीं, वरन् इस श्लोक पर टागोर साहब ने नोट्स दिये हैं।

प्र०—क्या मतलब ? स्वरों का तो ठिकाना नहीं, फिर नोट्स कैसे ?

उ०—यही तो मजा है। सुनो !—"वियुक्ता सा इत्यत्र वियुक्ताऽसौ इति पाठांतरम्। हारिणाश्वानाम मध्यमग्रामस्य द्वितीया मूर्च्छना। वीरे रसे व्यंजितः व्यक्तीकृतः रोमहर्षः पुलकः यया सा वीररसानुरागिणीत्यर्थः, शिरोधरायां दयितग्रीवायां बद्धः विलासबाहुः यया सा कान्तकंठासक्तभुजलता इत्यर्थः। चन्द्रस्य राग इव रागो यस्याः शशिकरगौरकांतिः।"

प्र०—बस, बस ! ये क्या नोट्स हैं पण्डित जी ! मेरी समझ से सारे रागाध्याय पर ऐसे ही नोट्स होंगे ?

उ०—बिल्कुल ऐसे ही। ये तुमको पसन्द नहीं आयेंगे, यह मैं जानता ही था। "हारिणाश्वा" यह नाम श्लोक में नहीं था, वह रत्नाकर से लिया है। रत्नाकर में इस प्रकार कहा है:—

तज्जा स्फुरितगांधारा देशाख्या वर्जितस्वरा।
ग्रहांशन्यासगांधारा निमंद्रा च समस्वरा॥

प्र०—परन्तु इस श्लोक में भी "हारिणाश्वा" मूर्च्छना ऐसा स्पष्ट कहा हुआ नहीं दिखता। गांधार की मूर्च्छना दोनों ग्रामों में हो सकती है।

उ०—नहीं, वह इस श्लोक में नहीं कहा गया, परन्तु "तज्जा" कहा है; अर्थात् पिछले ग्राम रागों से इस रागिनी की उत्पत्ति है, ऐसा निश्चित होता है। उस राग का वर्णन इस प्रकार है:—

गांधारीरक्तगांधारीजन्मो गांधारपंचमः।
गांधारांशग्रहन्यासो हारिणाश्वाख्यमूर्छनः॥

प्र०—हां, पण्डित जी ! अब ठीक हुआ। परन्तु धन्य है उन टागोर साहेब को ! अपने ग्रन्थ का उपयोग किसी के लिये कुछ भी नहीं होगा, यह जानकर भी उन्होंने ऐसा करके रख दिया, इसको क्या कहना चाहिये ?

उ०—इसको यह कहना चाहिये:—

श्रीमद्रत्नाकरप्रोक्तरागाध्यायाशयोऽखिलः।
स्वश्लोकैर्ग्रथितः कैश्चिद्ग्रंथकारैरसंशयम्॥
तथाप्येतैस्तदाशयो ह्यवबुद्धो यथार्थतः।
इति तल्लेखतो नैव प्रतिभाति कथंचन॥
यद्गूढं तद्गूढतरभावं प्रापयितुं भृशम्।
नैवोचितं कदापि स्याद्धीमतामिति मे मतिः।

लक्ष्यसंगीते।

परन्तु ।

ज्ञानसामग्र्यभावे तु किं ते ब्रूयुस्तपस्विनः ।

यह भी गलत नहीं, अस्तु । परन्तु दर्पणकार ने तो कुछ और ही किया है ? उसने रत्नाकर के स्वराध्याय में हनुमन्मत के राग जोड़ दिये हैं, यह मैंने कहा ही था । यह ढोंग जो पहिले से चलता आया है वैसा आगे चलने वाला नहीं था, इस कारण फिर राग-रागिनी पुत्र तथा पुत्रबधू इन सबको एकत्रित करके 'जनक-मेल तथा जन्य राग' यह सुव्यवस्थित राग-रचना हुई ।

प्र०—परन्तु उन प्राचीन रागों के स्वरूप ?

उ० वे परम्परा से आये हुए गुणीलोगों ने लिये तथा उनके अनुमान से उन्होंने अपनी-अपनी राग रचना की । इस कारण वे रचनाऐं भी भिन्न-भिन्न हुईं । उस समय देश में रेलगाड़ी नहीं थी, इसलिये एक प्रान्त का प्रचार दूसरे प्रान्त से भिन्न रहा । ग्रन्थ तो उपलब्ध होंगे, किन्तु उनका अधिकांश रहस्य नष्ट हो गया था, ऐसी हम धारणा कर सकते हैं । परन्तु यह दोष स्वयं टागोर साहेब का नहीं बल्कि उनके ग्रन्थ, जिन्होंने लिखे उनका कहना पड़ेगा । संगीतसार ग्रन्थ पर बोलते समय उन्होंने मुझे ऐसा स्पष्ट ही कहा था । रागाध्याय के अन्त में दो चार रागों के सम्बन्ध में जो दर्पण में कहा है, केवल वह उपयोगी है ।

प्र०—वह कौनसा ?

उ०—वह इस प्रकार है, देखो:—

अथ शंकराभरणः ।

वेलावल्याःस्वराःप्रोक्ताःशंकराभरणे बुधैः । इति शंकराभरणः ।

अथ बडहंसः ।

बडहंसे स्वरा ज्ञेयाः कर्णाटसदृशा बुधैः । इति बडहंसः ।

अथ विभासः । अथ रेवा ।

ललितावत् विभासस्तु, रेवा गुर्जरिवत् सदा ।

अथ कुडाई ।

देशाख्यसदृशी ज्ञेया कुडाई सर्वसंमता ।

अथ आभीरी ।

कल्याणरागवज्ज्ञेया बुधैराभीरिका सदा ॥

प्र०—तो फिर बिलावल थाट उस समय प्रचार में आया होगा, ऐसा इस उक्ति से सन्देह नहीं हो सकता क्या ?

उ०—हां, वैसा संशय हो सकता है । परन्तु यह श्लोक हनुमन्मत की समाप्ति के अन्त में ग्रन्थकार ने लिख दिये हैं । ऐसा क्यों किया, यह मैं कैसे बता सकता हूँ ?

उन्होंने अपने ग्रन्थ में ग्राममूर्छना की उलझन डालदी है, इस कारण उनके समय में इस राग का स्वरूप था, तो कैसा था, यह जानना अत्यन्त कठिन हो गया है। हनुमन्मत के राग सर्वथा नवीन हैं तथा उनमें से अनेक राग विभिन्न नियमों के क्यों न हों, पर आज हमारे गायक-वादक, उन्हें गाते-बजाते हैं, यह बिलकुल सही है। प्रत्येक मूर्छना छोड़ने के लिये पहले शुद्ध स्वरमेल कायम करना पड़ता है। किन्तु कुडाई (सुघराई) तथा देशाख्या ये निकट के राग हैं, यह दर्पणकार कहता है, यह बातें अपने ध्यान में रखना! अब हम आगे के ग्रन्थ देखें!

सर्व प्रथम तरंगिणी लें। कुछ श्लोकों की पुनरुक्ति होगी क्योंकि एक श्लोक में विभिन्न प्रकार के राग नाम हैं, इसलिये ऐसा होगा ही।

मेघरागस्य संस्थाने मेघो मल्लार एव च।
गौडसारंगनाटौ च रागो वेलावली तथा॥
अलहिया तथा ज्ञेया शुद्धसुहव एवच।
देशीसुहवदेशाखौ शुद्धनाटस्तथैव च॥

तरंगिण्याम्।

अर्थात् 'देशाख' राग मेघथाट में है। उस थाट के स्वर 'सा रे ग म प नि॒ नि' थे यह मैं कह ही चुका हूँ। अब देशाख राग के लक्षण कहता हूँ; परन्तु ये लक्षण हृदय-कौतुक से कह रहा हूं। हृदय के समय में अन्य कुछ राग, जैसे गौडमल्लार, योगिनी, मध्यमादि आदि इस मेघ थाट में आगये थे। हृदय कहता है:—

रिमौ पमौ सधपमाःपरिगमरिसास्तथा।
देशाखो हि विशेषेण षाडवःकथितो बुधैः॥
रिगमपसां ध प मप री ग म रे सा॥

इति देशाखः।

इसमें गन्धार तीव्र है, यह ध्यान में होगा ही, तथा जो धैवत कहा है, वह कोमल निषाद है।

प्र०—हां, वह ध्यान में है। 'धनिषादौ च शार्ङ्गस्य कर्णाटस्य गमौ यदि' यह मेघ थाट के लक्षण आपने कहे थे। परन्तु इसमें गन्धार यदि कोमल होता तो देशाख का एक उत्तम लक्षण हुआ होता?

उ०—ठीक है। अब हृदय प्रकाश में हृदय पण्डित इस प्रकार कहते हैं:—

गधैवतनिषादास्तु यत्र तीव्रतराः कृताः।
× × ×
देवाभरणदेशाख्यौ गौंडमल्लारसुहवौ॥

इसमें थाट का नाम 'मेघ' नहीं दिया; धैवत को तीव्रतर बताया है।

प्र०—इस पण्डित ने यह विवरण अहोबल के पारिजात से लिया होगा, कारण रे, ध तीव्रतर अर्थात् कोमल ग एवं कोमल नि आपने हमको पहले बताये थे। और हृदय पण्डित ने तार की लम्बाई से स्वर स्थान बताने की युक्ति अहोबल की ली, ऐसा भी आपने कहा था।

उ०—हां, यह तुमने खूब ध्यान में रखा है। यह भाग उसने पारिजात से ही लिया होगा, किन्तु उसके देशाख के लक्षण क्या हैं, यह अभी देखना है। उसके सम्बन्ध में वह इस प्रकार कहता है:—

धहीनः षाडवोगादिर्देशाखःपरिकीर्तितः ।
ग म प सां सां नि प म ग ग म रे सा ॥

प्र०—अभी-अभी कौतुक में "रिमौ पमौ" ऐसा आपने बताया तथा उदाहरण में "रे ग म प" ऐसा कहा है तो वहां कुछ तो विसंगति होगी ही ?

उ०—वहां कदाचित् मूल में, "रिगौ मपौ" होगा। लेखक ने भूल की होगी। हृदय प्रकाश में "गमौ पसौ" ऐसा लिखा है, तब वहां भी तो गन्धार ही मूल में होगा, कौतुक में धैवत है तथा प्रकाश में वह वर्ज्य है।

प्र०—समझ में आ गया। कौतुक का धैवत तो कोमल निषाद है। प्रकाश में जो देशाख कहा है उसमें धैवत ठीक ही छोड़ा है, परन्तु तीव्रतर नि लिया है। और आज के हमारे 'देशाख' में ग व नि कोमल हैं. यही न ?

उ०—हां, यह तुमने ठीक कहा। अब पारिजात में देशाख का वर्णन कैसा किया गया है, देखो:—

रितीव्रतरसंयुक्तो गतीव्रेणापि संयुतः ।
धगवर्ज्योऽवरोहे स्याद्गांधारस्वरमूर्छनः ।
तीव्रो यत्र निषादःस्याद्देशाख्यः स विराजते ॥

इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है:—ग प ध सा सा सा नि प म म म रि सा ग ग प प्पा ग प ध सा म म प सां इत्यादि।

प्र०:—यह हमारे लिये उपयोगी होगा, ऐसा नहीं जान पड़ता। इसमें दोनों गन्धार, निषाद तीव्र आदि स्वर अप्रिय रागस्वरूप उत्पन्न करते हैं, परन्तु यहां एक प्रश्न ऐसा मन में आता है कि आज जिसे हम 'देवसाग' कह कर गाते हैं, वह ग्रन्थों का 'देशाच' अथवा 'देशाख्य' ही है, इसका क्या प्रमाण ?

उ०—यह तुमने अजीब प्रश्न पूछा। इसका अकाट्य उत्तर कैसे दिया जा सकता है ? कारण यह अपभ्रन्श पिछले अनेक वर्षों में हुआ होगा, तो वह इन प्राचीन ग्रन्थों में मिलना सम्भव नहीं है। फिर भी 'देवसाग' अथवा 'देवसाख' ऐसा राग किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में नहीं तथा 'देशाची' अथवा 'देशाख्य' ही केवल है एवं उसका स्वरूप आज

के स्वरूप के थोड़ा बहुत निकट आने योग्य है, यह देखें तो इस प्राचीन 'देशाक्षी' अथवा 'देशाख्य' या 'देशाख' राग का ही नामकरण हमारे गायकवादकों ने 'देवसाख' किया होगा, ऐसा सहज ही अनुमान होता है। ये दोनों नाम यावनिक तो नहीं हैं, यह स्पष्ट दीखता है; परन्तु अन्य ग्रन्थकार क्या कहते हैं, वह भी हम देखलें। प्रथम पुण्डरीक विट्ठल क्या कहता है सुनो:—

लघ्वादिकौ षड्जकमध्यमौ चेद्गांधारकस्त्रिश्रुतिकस्तथा स्यात्।
शुद्धा भवेयुः समपा निषादो देशाक्षिकाया गदितः समेलः॥
सद्रागचंद्रोदये॥

अब यह थाट कैसा हुआ कहो तो सही?

प्र०—यह इस प्रकार होगा। सा <u>ग</u> ग म प ध नि सां

उ०—ठीक है,तो अब देशाक्षी के लक्षण सुनो:—

देशाक्षिकामेलसमुद्भवाश्च। देशाक्षिकाद्याः कतिचिद्भवंति।
गांशग्रहांतामनिमध्यमां वा देशाक्षिकां प्रातरवैहि पूर्णाम्॥

यही पण्डित रागमंजरी में कहता है:—

तृतीयगतिका निगौ रिश्च देशाक्षिमेलके॥
अतोऽपि मेलाद्देशाक्षीप्रमुखाद्या भवन्तिच॥
गत्री रिहीना देशाक्षी प्रातर्गेया विचक्षणैः॥

प्र०—ठहरिये! इसमें थाट तो वही है, परन्तु रागलक्षण में 'रिहीना' कहा है। यह बात अभी-अभी कहे गये लक्षण में नहीं थी, उसमें 'अनिमध्यमां' कहा था।

उ०—पुण्डरीक ने पुनः अपने 'रागमाला' तथा 'नृत्य निर्णय' ग्रन्थों में देशाक्षी का वर्णन इस प्रकार किया है:—

गांधाराद्यंतमध्या गुणगतिरिनिगा धैवतो द्विर्गतिर्या
तांबूलास्यांजनाक्षी कनकमणिमयैर्भूषणैर्भूषितांगी।
नारायण्यंगलग्ना कुसुमयुकबरी कंचुकी चित्रवस्त्रा
देशाक्षी राजकन्या प्रतिदिनमुषसि प्रेक्षती मल्लयुद्धम्॥

प्र०—यहां भी थाट वही दीखता है। कारण 'गुणगति रिनिगा' ऐसा कहा है। गुण अर्थात् तीन तो यह त्रिश्रुतिक रे, नि, ग होगा तथा धैवत पंचश्रुतिक होगा अर्थात् वह हमारा हिन्दुस्तानी तीव्र धैवत हुआ। शेष स्वर सा, म, प शुद्ध हैं, क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। इस थाट के स्वर 'सा <u>ग</u> ग म प ध नि सां' में भी वह तीव्र गन्धार तथा निषाद रुकावट पैदा करेंगे ही, ऐसा दीखता है। यह राग पुराना है इस कारण इसका उल्लेख कदाचित दक्षिण के ग्रन्थों में भी मिलना सम्भव है।

उ०—हां, यह राग उन ग्रन्थों में भी है। स्वरमेलकलानिधि में इस प्रकार कहा है:—

षट्श्रुत्यृषभकः शुद्धषड्जमध्यमपंचमाः ॥
पंचश्रुतिधैवतश्च च्युतषड्जनिषादकः ॥
च्युतमध्यमगांधारश्चेत्येतत्स्वरसंयुतः ।
देशाक्षी मेलकः प्रोक्तो रामामात्येन धीमता ॥
यह थाट कैसा हुआ, बताओ तो ?

प्र०—षट्श्रुति ऋषभ अर्थात् कोमल गन्धार, पंचश्रुति धैवत अर्थात् हमारा तीव्र धैवत, च्युत षड्जनिषाद तथा च्युत मध्यम गन्धार अर्थात् क्रमशः हमारे तीव्र नि तथा तीव्र ग हुए और सा, म एवं प शुद्ध हैं। ऐसी दशा में थाट, 'सा ग ग म प ध नि सां' ऐसा हुआ, अर्थात् वह पुण्डरीक का ही हुआ। तो फिर यह देशाक्षी राग उस समय बहुत प्रसिद्ध था, ऐसा प्रतीत होता है ?

उ०—हां, ऐसा ही मालूम होता है। अब इस राग के लक्षण सुनो:—

सन्यासः सग्रहः पूर्णो देशाक्षीराग उच्यते।
आरोहे मनिवर्ज्योऽसौ पूर्वयामे च गीयते ॥

प्र०:—यहां अवरोह में म, नि आते हैं इसलिये पूर्ण कहा है, यही न ?

उ०—हां, वस्तुतः 'औडुव-सम्पूर्ण' जाति है, परन्तु ऐसे रागों को पूर्ण कहने की प्रथा थी।

रागविबोधकार सोमनाथ पण्डित कहता है:—

गांशन्यासग्रहकाऽऽरोहे तु गतमनिरुषसि देशाक्षी ।

टीका—देशाक्षी आरोहेतु गतमनिः मध्यमनिषादरहिता अवरोहे तु तत्सहिताऽपीत्यर्थः। गांशन्यासग्रहका गांधारग्रहांशन्यासा। उषसि गेया इतिशेषः।

देशाक्षी का थाट उस पण्डित ने इस प्रकार कहा है:—

देशाक्षी मेले शुचि समपास्तीव्रतमरिस्तथामृदुमः ।
तीव्रतरधमृदुसावुत × इत्यादि.

प्र०—इसमें सा म प, शुद्ध, तीव्रतम रि अर्थात् कोमल ग, मृदु म अर्थात् तीव्र ग, तीव्रतर ध अर्थात् हमारा हिन्दुस्तानी तीव्र ध और मृदु सा अर्थात् तीव्र निषाद होगा। तात्पर्य यह कि यह भी वही थाट, 'सा ग ग म प ध नि सां' हुआ। यह मत रामामात्य के मत से बहुत कुछ मिलता जुलता है, ठीक है न ?

उ०—हां, तुम ठीक समझे। अब चतुर्दंडिकार पण्डित व्यंकटमखी का मत देखो:-

षड्जः षट्श्रुतिको नाम ऋषभोऽन्तरसंज्ञकः ।
गांधारस्तु मपौ शुद्धौ पंचश्रुतिकधैवतः ॥
काकल्याख्यनिषादश्चेदेतावत्स्वरसंभवः ।
देशाक्षीनामकः राग: स्यादिति मेलसमाह्वयः ॥

प्र०—यह भी वही थाट है। षट्श्रुतिक रिषभ अर्थात् कोमल ग, आगे अंतर ग यानी तीव्र ग, पंचश्रुतिक ध अर्थात् हमारा तीव्र ध और काकली नि अर्थात् तीव्र नि, ये स्वर हुए, ठीक है न ?

उ०—हां, ठीक है। थाट तो वही होगा, आगे राग के सम्बन्ध में वह पण्डित इस प्रकार कहता है:—

नारायणयाख्यदेशाक्षी देशाक्षीराग एवच ।
नारायणयथ बंगालः कर्णाटश्चेति विश्रुताः ।
चत्वारस्तु इमे रागा गन्यासांशग्रहाः स्मृताः ॥

संगीतसारामृतकार व्यंकटमखी का ही अनुयायी है। वह कहता है:—

शुद्धाः स्युः समपा यत्र ऋषभः षट्श्रुतिस्तथा ।
अंतराख्यानगांधारः पंचश्रुतिकधैवतः ।
काकल्याख्यनिषादश्च स स्याद्देशाक्षिमेलकः ॥
देशाक्षीरागः संपूर्णः स्वमेलोत्थश्च सग्रहः ।
सन्यासः प्रातःकाले तु गेयः संगीतकोविदैः ॥

प्रत्यक्ष उदाहरण में उसने आरोह में मध्यम तथा निषाद वर्ज्य किये हैं।

प्र०—अभी तक ये सारे ग्रन्थकार दो गन्धार तथा तीव्र निषाद मानते आये हैं।

उ०—हां, "संगीत राग लक्षण" में तीन राग देशाक्षी, आंध्रदेशाक्षी तथा देशाक्षरी दिये हैं। उनके स्वर अभी मैं कहता हूं, उन पर ध्यान दो !

"देशाक्षरी" नाम का राग उसने "शूलिनी" नाम से ३५ नम्बर के थाट में दिया है। उसके स्वर इस प्रकार हैं:—

"सा, षट्श्रुति रि, अन्तर ग, शुद्ध म, शुद्ध प, चतुःश्रुति ध, काकली नि"।

प्र०—यह भी वही मेल हुआ, चतुःश्रुति धैवत अर्थात् हिन्दुस्तानी तीव्र धैवत ?

उ०—हां, यह वही थाट हुआ। इसका उदाहरण यानी आरोहावरोह इस प्रकार कहा है:—

शूलिनीति सुमेलाच्च देशाक्षरी समीरिता ।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ॥
आरोहे तु निवर्जं च पूर्णवक्रावरोहकम् ।
स रि ग म प ध सां। सां नि ध प म ग म रे सा ॥

"देशाक्षी" राग उसने "शङ्कराभरण" थाट में कहा है, वह इस प्रकार है:—

मेलाच्च संभवो धीरशङ्कराभरणाच्च वै ।
देशाक्षी राग इत्युक्तः संन्यासं सांशकग्रहम् ॥
आरोहे मनिवर्जं चाप्यवरोहे रिवर्जितम् ।
सा रि ग प ध स । सां नि ध प म ग सा ॥

देशाक्षी का आंध्र (कर्णाटकी) प्रकार उसने खमाज थाट में कहा है तथा उसका उदाहरण इस प्रकार दिया है:— सा रे ग म प ध सां । सां नि ध म ग म रे सा ॥

प्र०—यहां इस राग में कोमल निषाद पहले ही आगया। ऐसा ही आगे वह गन्धार कोमल हुआ होगा। परन्तु इसका कोई आधार नहीं, यह मानना पड़ेगा।

उ०—तुम्हारा कहना ठीक है, फिर भी अनेक रागों में ऐसा परिवर्तन हुआ है, यह भी हम जानते हैं। वागीश्वरी, आडाणा आदि राग पहले खमाज थाट में थे, उनमें अब गन्धार कोमल हम देखते ही हैं। अस्तु! अब कल्पद्रुमकार क्या कहता है वह कहूँ ?

प्र०—कल्पद्रुमकार का स्वतः का तो मत ही नहीं। वह रागमाला से या संगीत-दर्पण में से इसके उद्धरण देता होगा। उसके स्वर पाठकों को स्वयं ही समझ लेने चाहिये। अच्छा, लेकिन वह कहता क्या है, यह भी तो सुना दीजिये ?

उ०—वह कहता है:—

पृथुलतरशरीरो मल्लविद्यासु दक्षः ।
परमबलवरिष्टो बाहुदंडप्रचंडः ॥
अतिशयदृढकक्षो मूर्द्धचूडाविहीनाः ।
प्रचरति नृपशालामेष देशाखरागः ॥

प्र०—यह देखो! इस राग को कैसे गाना चाहिये, इस सम्बन्ध में उसने कैसी जानकारी दी है भला ?

उ०—नहीं, वैसी जानकारी तो इसमें कुछ भी नहीं। सभी पाठक नादविनोदकार जैसे कहां से हो सकते हैं? अच्छा, मगर उसने देशाख का एक और लक्षण दिया है, वह कैसा जँचता है, देखो:—

वीरे रसे व्यंजितरोमहर्षा निरुध्यसंबंधविलासबाहुः ॥ ?

(शिरोभराबद्ध०)

प्रांशुप्रचंड किल इंडरागो। देशाखरागः कथितो मुनींद्रैः ॥

(प्रांशुः प्रचंडा किल चन्द्ररागा)

प्र०—यह उद्धरण संगीतदर्पण का है न? फिर भी इसका क्या उपयोग?

उ०—ठहरो, इतनी जल्दी क्यों करते हो? आगे सुनो:—

गांधारांशग्रहन्यास केचिदृषभ इतिस्मृता।
संपूर्णासंमताज्ञेया शारंगदेवेनभाषिता ॥
कानडासुहासंयुक्तसारंगस्वरमिश्रिता।
देशाख्यो जायते यत्र द्वितीयप्रहरार्धदिने ॥

क्यों, अब थोड़ा बहुत प्रकाश पड़ता है अथवा नहीं, कहो? इस श्लोक की संस्कृत को छोड़ो, परन्तु इस राग में कानड़ा, सुहा तथा सारङ्ग ये तीन राग मिलते हैं तथा इसे दिन के दूसरे प्रहर में गाते हैं, यह विवरण तो उपयोगी है न? उतना ही ले लो, बस! इतनी जानकारी से ही नादविनोदकार ने "देवसाख" राग का स्वरविस्तार इस प्रकार किया है:—

प ध म म म
सा सा नि नि प, नि नि, प ग ग म प ग ग रे सा। स्थाई।

नि म
म म म प प प सां सां, नि सां रें रें सां, म प सां, नि सां, ध प, म ग, म प, ग ग रे सा। अन्तरा।

उसने सुघराई का विस्तार भी ऐसा ही किया है। वह भी सुनो:—

ध ध म
सा, रे म म, प, म प, म प, प, प प, म प, ध ग, ग म प, प, म प, ग ग रे रे सा। स्थाई।

ध
म म, प प, सां, सां नि नि सां, रें रें सां, सां, प प, म म प, नि सां रें सां, रे, रे, सा। अन्तरा।

सुघराई का संस्कृत श्लोक उसने नहीं कहा है। वह उसको कल्पद्रुम में नहीं दिखाई दिया होगा।

अब सुहा राग का विस्तार उसने कैसा किया है, वह भी देखोः—

ध़ म़ प़ नि॒ सा, ग॒ म प, म प म, रे, नि॒ सा, ग॒, रे रे सा। स्थाई होगई। म म प प प, म प, सां सां, नि॒ नि॒ सां, म प नि॒ सां, रें रें, सां, प प रे, सा रे नि॒ सा ग॒, रे रे, रे सा। यह अन्तरा हुआ।

इस विस्तार का भी संस्कृत आधार नहीं बताया, परन्तु उसकी आवश्यकता भी नहीं थी। खैर, इस विस्तार का सार तुमको ग्रहण करना चाहिये। वे घरानेदार वादक थे, यह नहीं भूलना चाहिये। 'घरानेदार संगीतशास्त्री' जैसी उनकी प्रतिष्ठा थी, परन्तु पहले तो समय ही विचित्र था। उस समय हमारे सुशिक्षित लोगों का ध्यान शास्त्रों की ओर इतना नहीं था। गायक-वादकों की ओर हमारे सुशिक्षित लोग हेय दृष्टि से देखते थे। समाज में गायक-वादकों को आजकल के समान आदर नहीं दिया जाता था। ऐसी परिस्थिति में शास्त्रज्ञ तथा विद्वानों, कलाकारों की प्रतिष्ठा होना स्वाभाविक ही था और वैसा हुआ भी। वे स्वयं उत्तम सितार वादक थे, यह मैंने कहा ही है। मेरा उनसे अच्छा परिचय था। लेकिन अब वैसा ढंग नहीं चलेगा। उस समय बड़े-बड़े गायक वादकों से राग का नाम तथा उसके भेद पूछने की हिम्मत व सामर्थ्य किसमें थी? उस समय की परिस्थिति में तथा आज की परिस्थिति में बहुत अन्तर हो गया है। आज इस विषय का ज्ञान लोगों में विशेष है, यह मेरे कहने का तात्पर्य नहीं; परन्तु आजकल संगीत विषय शालाओं में सिखाया जाने के कारण स्वाभाविक रूप से ग्रन्थों की आवश्यकता पैदा हो गई है, लेकिन उन ग्रन्थों में मनमाना लिखा हुआ नहीं चलेगा, इस बात को लेखक लोग समझ चुके हैं। अब तुम्हीं उस कल्पद्रुमकार पर कैसी टीका करते हो? सारांश यह कि जो समझने योग्य नहीं, उस पर आज के समय में लिखना व्यर्थ ही है, ऐसा ही कहना पड़ेगा। मैं यह उदाहरण इसलिये दे रहा हूं कि तुम भी कहीं ऐसा ही कुछ निरर्थक लिखने के मोह में न पड़ो। मतभेद से मत घबराओ, लोग हमारे मत पर हंसेंगे, इसका भय भी मत करो। जो कुछ हम सीखें तथा समझें वह ज्यों का त्यों लोगों के समक्ष प्रस्तुत करने में कोई हानि नहीं। उसमें यदि कोई भूल हो गई हो तो उसका संशोधन करके पुनः लिखो और अपनी पिछली भूलों को चाहो तो स्वीकार करलो। अस्तु,

अब राधागोविन्द संगीतसार में क्या कहा है, वह सुनोः—

प्रतापसिंह ने 'देषाख' तथा 'देसाख' ऐसे दो प्रकार कहे हैं। इनमें से 'देशाख' को भैरव का पुत्र माना है। उसका वर्णन किसी पहलवान जैसा किया है; किन्तु उसका स्वरूप उन्होंने नहीं दिया। केवल इतना कहा है कि, "शास्त्र में तो यह छ सुरनसों गायो है। म प ध नि सा ग। यातें षाडव है। दिनके दुसरें पहर में गावनो। याकी आलापचारी छ सुरन में किये राग वरते। यह राग सुन्यो नहिं।'

दूसरे प्रकार, 'देसाख' को उन्होंने हिन्डोल राग की रागिनी कहा है। उसका वर्णन करके, आगे स्वरूप इस प्रकार दिया हैः—

म म म नि
गु प, म प म गु, प गु म रे, सा, नि़ सा, ग (तीव्र) प सां, धु, प, धु गु, म रे सा।

इसमें जो तीव्र गन्धार कहा है, वह पिछले ग्रन्थकारों से मेल रखने के लिये लिया हुआ दीखता है। मेरी समझ से वह बिलकुल अच्छा नहीं दीखेगा। उनके पास संस्कृत ग्रन्थ थे, परन्तु उनसे साम्य रखने की आवश्यकता थी, ऐसा उनको प्रतीत नहीं हुआ। उनके समय में प्रचार में कोमल गन्धार ही था, ऐसा प्रारम्भिक स्वरों से विदित होता है। कदाचित् उस समय के उनके अधीनस्थ कोई गायक कोमल धैवत लगाते हों, ऐसी कल्पना हम कर सकते हैं।

प्र०—यह सब ठीक हुआ। अब यह राग हमको किस प्रकार गाना चाहिये, वह कहिये?

उ०—अच्छा, सुनो:—

सा सा म म सा प ध प
नि़ सा, म रे सा, नि़ सा, गु, गु, प गु, म रे सा, नि़ सा, नि़ नि़ प़ म़ प़ नि़ सा रे,
म म म म म प म
प गु गु म रे सा। नि़ सा, गु गु, प गु, नि, प म प गु, म रे, सा, नि़ सा रे, सा, म रे सा,
म प ध म म म
प गु, म रे, सा, सा नि नि प, गु गु प गु, म, रे, सा। नि़ सा रे, सा, प़ नि़ सा, रे म रे, प
म सा सा म म प म म म
गु म रे सा, नि़ सा गु, प गु, नि प गु, सां, नि प, म प नि प, गु, गु गु, म, रे, सा। म प
मं मं ध ध मं मं
नि प, सां, सां, सां रें सां, गुं गुं मं रें, सां, नि नि प सां, मं रें सां, नि सां गुं गुं पं गुं मं रें
प ध म म प म म म
सां, नि, नि प, गु गु, प, सां, नि, गु, प गु, म, रे सा। सा, रे सा। म रे सा, गु म रे सा, प
म
गु म रे सा, नि़ प़, म़ प़, सा, रे प गु, म रे, सा, नि़ सा रे म रे, प, म प, सां नि प, म प
म प ध म
गु म, नि नि प, गु म, रे, सा। यह सूहा अथवा सुघराई दोनों से भिन्न अवश्य दिखाई देगा।

इस राग की यह एक छोटी सी सरगम समझ लो, जिससे उसका साधारण चलन तुम्हारे ध्यान में जल्दी आ जाये।

देवसाख—झपताल.

सा नि़ ×	सा	म गु २	म गु	प	म गु ०	म	रे ३	रे	सा
नि़	सा	म	रे	सा	नि़	सा	प नि़	ध नि़	प़

					म	म			
म़	प़	सा	ऽ	सा	ग॒	ग॒	म	रे	सा
प		म	म		म				
नि॒	प	ग॒	ग॒	प	ग॒	म	रे	रे	सा

अन्तरा—

					सां	सां			
म	प	सां	ऽ	सां	नि॒	नि॒	सां	ऽ	सां
×		२			०		३		
सां					मं				
नि॒	सां	रें	रें	पं	गं॒	मं	रें	रें	सां
					सां		प	ध	
प	रें	सां	सां	रें	नि॒	सां	नि॒	नि॒	प
		प	ध		म	म			
सां	ऽ	नि॒	नि॒	प	ग॒	ग॒	म	रे	सा।

अब मेरे कहे हुए स्वरविस्तार तथा सरगम में ध्यान देने योग्य तुम्हें क्या-क्या दिखाई दिया, वह कहो तो देखूं ?

प्र०—एक तो हमको यह दिखाई दिया कि इस राग में मध्यम स्वर आरोह में कुछ दुर्बल रखा गया है। पुनः इस राग में (म)ग॒ (म)ग॒, प (म)ग॒, म रे सा यह भाग विशेष रूप से राग भिन्नत्व के लिये आगे लाने में आया है, सुहा में, 'नि़ सा (म)ग॒, म' ऐसा होता है। इसमें सुघराई की भांति, 'नि़ सा (म)रे म म' ऐसा भी है। परन्तु 'रे प' तथा 'ग॒ प' ये संगतियां इसमें दिखाई दीं।

उ०—यह बात तुमने अच्छी ध्यान में रखी। ये तीनों राग परस्पर विशेष निकट होने के कारण ऐसे ही कुछ सूक्ष्म भेद ध्यान में रखने पड़ते हैं। हमारे कुछ ग्रन्थकारों ने 'मध्यम' तथा 'निषाद' स्वर आरोह में वर्ज्य करने को भी कहा था, यह ध्यान में होगा ही। कदाचित् 'नि़ सा, (म)ग॒, प (म)ग॒ म रे, सा' ऐसा भी करते आये होंगे, परन्तु इस राग में सारंग आने के कारण 'सा रे, म, रे प, नि॒ म प, सां, नि॒ नि॒ प, म प, ग॒, प

म म   म
ग॒ ग॒ प ग॒ म, रे रे सा' ऐसा प्रकार भी करना पड़ा होगा। किन्तु सूहा अथवा सुघराई राग
      म म   म
में 'नि॒ सा, ग॒ ग॒ प, ग॒ म रे रे सा' ऐसा प्रकार नहीं था।

प्र०--परन्तु सुघराई में रे म रे, प म प, नि॒ प, सां ऐसा हो सकता है तथा वैसा भाग इसमें कहीं कहीं दिखाई भी दिया था।

उ०—परन्तु सुघराई में तीव्र धैवत का प्रयोग होने के कारण उसकी इस राग से उलझन नहीं होगी, ऐसा मैं समझता हूँ। इस देवसाख में 'प ग॒, म रे सा' ऐसा भाग
                                   प
बारम्बार दिखाई देगा। इस राग में, 'रे प म प ग॒ म' जो भाग आता है यह मल्लार का
                                                              म
भाग है, ऐसा कहते हैं। 'प रे, म रे सा' यह सारंग है। नि॒ प, म प, ग॒, म, रे सा' यह कानडा है। इस देवासाग में क्वचित तीव्र धैवत का स्पर्श करने का किसी ने प्रयोग किया भी तो वह, 'सां ध नि॒ प' ऐसा नहीं करेंगे। एक गायक द्वारा तो 'प प, म प ध प, सां' ऐसा किया हुआ मैंने सुना था। परन्तु देवसाख में हम वह स्वर बिलकुल वर्ज्य करना पसन्द करेंगे। इससे यह निश्चय हुआ कि सुहा में मध्यम वादी तथा वह योग्य
                                                                        म
स्थान पर मुक्त ही आयेगा। उसमें 'रे प' अथवा 'ग॒ प' की संगति नहीं लेना। 'प ग॒ म, रे सा' यह स्वरावली इन तीनों रागों में साधारण ही है। सूहा में, 'नि॒ सा म, म' अथवा 'नि॒ सा
म
ग॒, म' ऐसा लेना अधिक उपयुक्त होगा। 'प ध नि॒ सां' ऐसा सरल प्रयोग इन तीनों रागों
           प   प ध
में कभी नहीं होगा। 'नि॒ प सां, रें सां, नि॒ नि॒ प' यह प्रयोग इन तीनों रागों में साधारण ही है। तब सूहा राग इस प्रकार होगा, देखो:—

प नि॒	प	म ग॒	म ग॒	म	रे	सा	सा नि़	सा	ऽ
×		२			०		३		
सा नि़	सा	म	ऽ	म	प	प	म ग॒	म ग॒	म
म	म	प	ऽ	प	प नि॒	प	सां	ऽ	सां
प नि॒	प	म ग॒	म ग॒	म	रे	सा	रे	नि़	सा।

अन्तरा—

म	प	(प)नि॒	प	ऽ	सां	ऽ	(सां)नि	सां	सां
×		२			०		३		
(सां)नि	सां	(म)ग॒ं	मं	रें	सां	ऽ	(प)नि॒	(ध)नि॒	प
म	ऽ	म	प	प	सां	ऽ	(प)नि॒	(ध)नि॒	प
रें	सां	(प)नि॒	(ध)नि॒	प	म	प	(म)ग॒	ऽ	म।

सरगम दूसरी—झपताल.

सा	सा	म	ऽ	म	प	प	नि॒	म	प
×		२			०		३		
म	प	नि॒	नि॒	प	म	प	ग॒	ऽ	म
नि॒	प	ग॒	ग॒	म	रे	सा	रे	रे	सा
नि॒	सा	म	ऽ	म	प	प	नि॒	नि॒	प।

अन्तरा—

म	प	सां	ऽ	सां	सां	सां	नि	सां	सां
नि॒	सां	रें	मं	रें	सां	ऽ	नि॒	नि॒	प

नि̱	प	ग̱	ऽ	म	रे	ऽ	रे	रे	सा
म	म	प	सां	ऽ	नि̱	प	ग̱	ऽ	म।

सुघराई के सम्बन्ध में अब पुनः कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। इसमें सारंग अङ्ग विशेष होने के कारण, 'नि̱ सा, रे म रे सा, नि̱ सा, प ग̱ म रे सा, ग̱, म प, रे सा' ऐसा प्रयोग हो सकता है। 'रे प' की संगति इसमें बहुधा नहीं आयेगी, परन्तु कहीं थोड़ी सी आई भी तो 'म रे, प रे सा' इस प्रकार आयेगी। किन्तु उत्तराङ्ग में 'ध प रे, म रे, सा

नि̱

अथवा ध नि̱ प, म प ग̱, म, रे सा' इस प्रकार से धैवत का प्रयोग होगा, तब सुघराई बिलकुल अलग रहेगी। सुहा में कोई कोई क्वचित् कोमल धैवत का प्रयोग कैसा करते हैं यह मैंने बताया ही था, परन्तु वह हमारा मत नहीं है। हम तो धैवत समूल वर्ज्य करते हैं सुघराई में जो धैवत वर्ज्य करते हैं, उनका राग सुहा का निकटवर्ती अवश्य होगा, किन्तु वादी भेद काम देगा ही।

प्र०:—हां, सुहा का वादी मध्यम तथा सुघराई का पंचम है। यह दोनों में स्पष्ट भेद होगा। अब हमको देवसाग के लक्षण बतायेंगे क्या ?

उ०—हां, वे इस प्रकार होंगः—

'देवसाग' अथवा 'देवशाख' या 'देशाख' राग काफी थाट से उत्पन्न होता है। इसमें वादी कोई मध्यम और कोई पंचम मानते हैं। इस राग में गन्धार स्वर सदैव कम्पित रहता है तथा जो धैवत लेते हैं वे भी उसका प्रयोग अतिसूक्ष्म रूप से करते हैं। अतः ग एवं ध स्वर इस राग में दुर्बल हैं, ऐसा माना जाता है। इस राग में कानडा तथा मेघ ये दोनों राग मिलते हैं, ऐसा गुणी लोग कहते हैं। अधिकांश लोग इसमें धैवत लेना पसन्द नहीं करते। जो लेते हैं वे भी उसे 'प्रच्छन्न' ही रखते हैं। अर्थात् उसकी ओर किसी का विशेष लक्ष्य नहीं जाये, इस ढंग से लेते हैं। मध्यम वादी मानने वाले गायक मध्यम बीच बीच में मुक्त रखते हैं। इस राग में गन्धार तथा पंचम की संगति श्रोताओं के सामने बारम्बार लाने का गायक प्रयत्न करते हैं। वह मध्यम जब उसमें मुक्त रहता है, तब सूहा का स्वरूप दीखने लगता है, परन्तु सूहा में 'ग̱ प' संगति नहीं है, यह महत्व-पूर्ण भेद है। इस संगति में मध्यम ढँक जाता है इस कारण कोई पंचम वादी मानते हैं। मध्यम बीच-बीच में मुक्त रहता है,इसलिये मध्यम को भी कोई कोई वादित्व देते हैं। किन्तु पंचम को वादित्व मानना अच्छा है। इस राग का समय प्रातःकाल दस बजे से बारह बजे तक का समझा जाता है। देवसाग में सारंग जैसा भाग भी दीखता है। सुहा, सुघराई तथा देवसाग में जो भेद है उसे अति संक्षेप में ध्यान में रखने के लिये यह पकड़ अच्छी तरह ध्यान में रखना हितकारक होगा।

म प नि प म
नि़ सा, ग म, प, नि म प, सां, नि प, ग म, रे सा—सूहा।

नि नि म
सा, रे नि़ सा, ध, ध, नि, प, म प, ग म रे सा—सुघराई।

म म म प ध म म
नि़ सा, ग ग प, ग म, रे सा, नि़ सा, नि नि प, ग प, ग म रे सा—देवसाग।

कोई सूहा में क्वचित् कोमल धैवत का प्रयोग करते हुए दिखाई देंगे, वे "धनिप" इस प्रकार करेंगे, परन्तु यह हमारा मत नहीं है। ऐसा प्रयोग किया जाने वाला सूहा पृथक ही होगा। आरोह में तीव्र निषाद लेने की अनुमति है ही। इन तीनों रागों में

म
प ग, म रे सा यह टुकड़ा सदैव आता है तथा कुछ अन्शों में यह समयवाचक है।

प प नि
"नि प, नि म प सां" ऐसा तीनों रागों के उत्तरांग में होगा। उस अङ्ग में

म म
धैवत का प्रयोग हुआ तो सुघराई समझना चाहिये। "प नि, प, ग ग, रे, रे सा" इतने स्वर कहते ही उसे रात्रि का राग न समझकर दोपहर का कोई प्रकार श्रोतागण समझने

म म प म म म
लगेंगे। इसके पश्चात् यदि नि़ सा, रे प ग म रे सा, नि प, सां, नि प, ग ग म प ग, म रे सा," किया तो दोपहर का राग निश्चित रूप से कायम होजायगा।

प्र०—अब यह राग हम भली प्रकार पहचान सकेंगे। अब प्रचलित देवसाख का स्वरूप वर्णन करने वाले श्लोक कहिये, ताकि उनको भी हम कण्ठस्थ करलें?

उ०—ठीक है; कहता हूं। सुनोः—

हरप्रियाव्हये मेले जातो रागः सुनामकः।
देशाख इति विख्यातो लक्ष्येऽखिलगुणिप्रियः॥
पंचमः संमतो वादी संवादी षड्जनामकः।
कैश्चित्संवादिनौ प्रोक्तौ तत्र षड्जकमध्यमौ॥
आरोहेचावरोहेऽपि धैवतो वर्जितस्वरः।
दौर्बल्यं धगयोरत्र वर्णयंति पुनः क्वचित्॥
गांधारांदोलनं न्यासो मध्यमे रुचिरो भवेत्।
गपयोः संगतिश्चित्रा रागरूपं समादिशेत्॥
देवसाग इति ख्यातो रागोऽयं लक्ष्यवर्त्मनि।
गानं तस्य समादिष्टं द्वितीयप्रहरे दिने॥

गद्वयो निद्वयश्चापि रिहीनः परिकीर्तितः ।
केषुचिच्छास्त्रग्रंथेषु न तल्लक्ष्येऽत्रलभ्यते ॥

लक्ष्यसंगीते ।

हरप्रियामेलसमुद्भवोऽयम् ।
देशाख्यरागो गधदुर्बलः स्यात् ॥
वाद्यत्र षड्जः सहचारिमध्यमः ।
सारंगभंग्या कुतपेऽभिगीयते ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

हरप्रियामेलभवो देशाख्यो धगदुर्बलः ।
षड्जवादी मसंवादी सारंगांगेन गीयते ॥

चंद्रिकायाम् ।

सब काफी के सुरन में धग को निर्बल राख ।
परिवादी संवादितें सारंगछब देशाख ॥

चंद्रिकासार ।

निसौ मरी पमौ निधौ सनी पमौ पगौ मरी ।
स इत्युक्तो देवसागः संगवे पंचमांशकः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

सूहा, सुघराई व देवसाग यह राग सुनने वालों को ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े गायकों को भी भ्रम में डाल देते हैं। "प प (म)ग म, रे सा, सा रे प ग, ग म रे सा," "नि प ग प, ग म रे सा," यह समयवाचक भाग है। गांधार पर बहुधा आन्दोलन देखकर यह राग दो प्रहर के समय का होना चाहिये, ऐसा प्रतीत होता है। लेकिन इसके आगे वादी स्वर व स्वरसङ्गति की ओर ध्यान देने पर, मध्यम बहुत आगे आने पर तथा बीच में खुला दिखाई देने पर 'सूहा' प्रतीत होने लगता है। ध ध (निनि)नि प, म प, (म)ग म रे सा, इस प्रकार धैवत को लेकर यह टुकड़ा सुनाई देता है, तब सुघराई निश्चित प्रतीत होती है। कारण ध, प, म प, रे रे सा, नि सा, (म)ग (म)ग म, रे सा" यह भी

'सुघराई' का ही टुकड़ा है। तीव्र धैवत भी सुघराई का एक स्वतंत्र प्रकार बतलाता है,

म

इसलिये इसे अवश्य लेना चाहिये। "नि सा ग म, प प, नि म प, सां नि प, म प ग, म" इस प्रकार का मुक्त मध्यम दिखाई देने पर सुहा समझना चाहिये। नि सा, रे सा, म रे सा, ग प, ग म रे सा, यह ग प अथवा कभी-कभी "रे प," की सङ्गति हो तो समझना चाहिये कि गायक देवसाग स्पष्ट करने का यत्न कर रहा है। यह स्थूल नियम हैं, लेकिन इनसे समझने में बहुत कुछ सहायता मिलती है। प्रसिद्ध गायकों की जितनी अधिक चीज़ें सुनोगे, उनसे इस प्रकार के नियमों की खोज करना सरल होता जायगा। कुछ गायक ऐसा भी कहते हैं कि जो रात की 'नायकी' है, वही दिन का 'देवसाग' है और जो रात का अडाणा है वही दिन का 'सुहा' तथा जो रात का 'सहाना' है वही दिन की 'सुघराई' है।

प्र०—अब कौनसा राग लेना है ?

उ०—अब काफी थाट के कानड़ा अङ्ग वाले राग, नायकी कानड़ा, सहाना, कौंसी-कानड़ा यह तीन शेष रहे हैं, इनमें से हम आसावरी थाट से उत्पन्न होने वाला कौंसी-कानड़े का प्रकार देखेंगे।

प्र०—आप जैसा उचित समझें। हमें तो राग समझने हैं। प्रथम नायकी-कानड़ा पर ही प्रकाश डालें ?

उ०—नायकी कानड़ा भी एक विवादग्रस्त प्रकार बन गया है। यह सुहा, अडाणा देवसाग रागों का भ्रम उत्पन्न करता है।

प्र०—यह भ्रम "धैवत" के कारण होता होगा ?

उ०—हां, प्रथम तो यही स्वर उपद्रव करता है, फिर राग के चलन पर भी मतभेद है।

प्र०—किन्तु हमें तो अपनी पद्धति के अनुसार राग के स्वरूप समझा दीजिये ! अपने रागस्वरूपों के नियम अगर हम दूसरों को स्पष्ट प्रकार से बतलाकर तदनुसार गासकेंगे, तो फिर दूसरों के मतों से डरने का कोई कारण ही नहीं है।

उ०:—वैसा न सही, लेकिन जिसे तुम नायकी समझ कर गाओगे, उसे लोग 'सुहा' या देवसाग कहें तो तुम्हारी प्रतिष्ठा को धक्का नहीं लगेगा क्या ?

प्र०—आपका यह कथन हम स्वीकार करते हैं, लेकिन हम अपने प्रकार को गाते हुए रुकेंगे नहीं। बाद में हम यह देखेंगे कि वे लोग धैवत लेकर किस प्रकार गाते हैं ?

उ०—अच्छा, इस राग को बताने से पहिले इसकी बाबत कुछ बातें और कहता हूँ। सुरेन्द्रमोहन टागोर का मत है कि यह राग 'गोपाल नायक' द्वारा प्रचार में आया है, यह उनका प्रिय राग था।

प्र०—अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में अमीर खुसरू से जिनका मुकाबला हुआ था, क्या वही यह गोपाल नायक है ?

उ०—हां, वही। अकबर के यहां भी एक 'गोपाल' गायक थे लेकिन उन्हें 'गोपाल-लाल' कहा करते थे। उनके दरबार में एक 'बैजू गायक' भी थे 'कहे मियां तानसेन सुनो हो गोपाललाल' ऐसा हम कुछ ध्रुवपदों में सुनते हैं। यहां अकबर के जमाने का गोपाललाल समझना चाहिये।

प्र०—यह तो स्पष्ट है कि अकबर के दरबार के गायक शिरोमणि तानसेन सर्वश्रुत हैं। लेकिन क्यों पंडित जी, क्या हमें गायक-नायकों के घराने का इतिहास नहीं मिलेगा ?

उ०—इस विषय पर पहिले भी मैं कह चुका हूँ। जिस प्रकार यूरोप में प्रसिद्ध गायकों के जीवन चरित्र विस्तार पूर्वक लिखे मिलते हैं, उस प्रकार हमारे यहां के गायकों-नायकों के नहीं मिलते। इसके अनेक कारणों में यह भी एक कारण है कि हमारे यहां गायक-नायक प्रायः अशिक्षित होते थे। उनकी चीजें भी लिखी हुई नहीं मिलती हैं, तथा नोटेशन के रूप में उनके गीतों को लिपिबद्ध करने की कल्पना ही नहीं थी। इन गायकों में ऐसे उदारचित्त भी थोड़े से ही होंगे, जो अपने गीत स्वयं ही लिख रखते थे, लेकिन यह अनुभव तो आज भी हमें हो रहा है। किन्तु तुम्हारा प्रश्न तो इनके घराने के इतिहास जानने के लिये है। लगभग दो वर्ष पूर्व एक छोटी सी पुस्तक उर्दू भाषा में लखनऊ से प्रकाशित हुई थी, उससे कुछ जानकारी मिल सकती है। उस पुस्तक का अनुवाद मेरे लखनऊ के एक ताल्लुकेदार मित्र ने करके भेजा है, उसी में से मैं भी तुम्हें कुछ जानकारी देता हूं।

प्र०—उस पुस्तक का क्या नाम है, व लेखक कौन है ?

उ०—पुस्तक का नाम 'मादनुल मौसिकी' है और सन् १८५७ के आसपास 'हकीम मुहम्मद करम इमाम' ने लिखी है। लखनऊ के किसी व्यक्ति के हाथ वह पुस्तक लगगई और उसने वह प्रकाशित करदी।

प्र०—यह हकीम साहब स्वयं गायक-वादक थे, यानी संगीत व्यवसायी थे ?

उ०—नहीं, अपितु वे एक विद्वान ग्रहस्थ थे। सङ्गीत का अध्ययन उन्होंने शौकिया रूप में किया था।

प्र०—तो फिर उनके ग्रन्थ की कुछ जानकारी हमको कैसे मिलेगी ?

उ०—वह लिखते हैं, मेरे दादा (पिता के पिता) लखनऊ में नवाब आसफउद्दौला के पास थे। मुझे छोटेपन से गाने बजाने का शौक था, इसलिये मेरे अभ्यास तथा सैनिक कवायद्-कार्य को संभालते हुए, मेरे पिता दिलावर खां व मेरे मामा अलीमुल्ला खां के पास 'सोजखानी' (मुहर्रम के दिनों में १० दिन का गाना) संगीत सीखा करते थे। वे दोनों संगीतज्ञ थे। जब यह दोनों लखनऊ में थे, तब मेरा परिचय आसफउद्दौला के मामा (नवाब सालारजंग) के पुत्र नवाब हुसेन अलीखां से हुआ। नवाब हुसेन अलीखां संगीतज्ञ थे, इनके सहवास से मेरी रुचि संगीत की ओर बढ़ती गई, और मैं मीर अली

साहब का शागिर्द बना। इनके पास सोजखानी का भी अभ्यास किया। इसी बीच मुझे लखनऊ छोड़ना पड़ा, यात्रा में मेरे समय के अनेक गायक-वादकों से मेरा परिचय होता गया। अवध के राजा नसीरउद्दीन हैदर का देहान्त हुआ, उस समय मैं बांदा की कलक्टरी में सरिश्तेदार था। बांदा में भी एक 'रईस' नवाब जुलफिक़ार बहादुर संगीत में अति प्रवीण थे। इनके आश्रय में भी अनेक प्रसिद्ध गायक-वादक थे। इन लोगों को सुनने का मुझे पर्याप्त अवसर मिला। कई साल तक मैं सुनता रहा और उसी समय मैंने इन ग्रन्थों का अध्ययन भी किया:—

(१) खुलासतउलऐश (२) नग़माते आसफ़ी (३) रिसाला मधनायक (४) रिसाला अमीर खुसरू (५) रिसाला तानसेन, (६) संगीत रत्नमाला (७) संगीत-सार (८) संगीत दर्पण (९) सुरसागर।

प्र०—इससे स्पष्ट होता है कि यह सङ्गीत के बड़े शौक़ीन थे, इनकी जानकारी भी विश्वसनीय होनी चाहिये।

उ०—वह कहते हैं कि 'मेरे अनुभव में मुझे पूर्ण गुणी केवल दो विद्वान मिले, (१) बाबा रामसहाय, इलाहाबाद (२) मीर अली साहब, लखनऊ। यह दोनों विद्वान सङ्गीत की सब शाखाओं में प्रवीण थे। सन् १८५३ में बांदा से नौकरी छोड़कर मैं लखनऊ आ गया था। उस समय वहां नवाब वाजिद अलीशाह राज्य करते थे। इनके श्वसुर नवाब इकरामउद्दौला के यहां मैं नौकर हो गया और उनके पास लखनऊ, अँग्रेजों के कब्जे में जाने तक रहा।' इस प्रकार उन्होंने अपना इतिहास वर्णन करते हुए गायक-वादकों के घरानों पर भी प्रकाश डाला है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जानकारी उन्होंने कुछ पूर्व ग्रन्थाधार से व कुछ स्वयं की जानकारी से लिखी है, यथा:—

प्राचीन नायकों के नाम

(१) भानु, (यह बड़े प्रसिद्ध थे)	(२) लोहंग	(३) डालू	(४) भगवान्
(५) गोपालदास	(६) बैजू	(७) पांडे	(८) चरजू
(९) बक्सू	(१०) धोंडू	(११) मीरा मधनायक	
(१२) अमीरखुसरू			

मीरा मधनायक का असली नाम सैय्यद निजामउद्दीन अहमद था। यह मुसलमानी सन् १०९८ में हुए। बिलग्राम में रहा करते थे। इनके देहान्त के बाद इनका उल्लेख इस प्रकार करते हैं:—

सुरपत दिर्ग सुखत नहीं निस दिन रहे उदास।
मधनायक के मरत ही चहुँदिस भये उपास॥

यह सब 'नायक' ध्रुवपद गायक हो गये हैं। अमीरखुसरू विशेष योग्य था, इसने ही प्रथम ख्याल की प्रणाली प्रचलित की।

प्रसिद्ध ख्यालियों के नाम

(१) अमीर खुसरू, हज़रत, (२) सुलतान हुसेन शर्की–जौनपुर के राजा
(३) चंचलसेन (४) बाज बहादुर (मालवा के अधिपति)
(५) सूरज खां (६) चांद खां
(७) गुलाम रसूल (तत्कालीन लखनऊ निवासी)

प्रसिद्ध टप्पा गायक

(१) गुलामनबी (शोरी) पिता का नाम गुलाम रसूल था (२) गाबू
(३) शादीखां–गाबू के पुत्र, यह ख़याल भी गाते थे।
(४) बाबा रामसहाय–ये अन्य गीत भी गाते थे।
(५) नवाब हुसेन अलीखां, लखनऊ निवासी
(६) मीर अली साहब " "

पूर्व इतिहास

अकबर बादशाह के समय में, दो प्रसिद्ध गायक थे–गोपाललाल व बैजू। अलाउद्दीन के समय के बैजू व गोपाल नायक अलग थे। वह प्राचीन बैजू तो विरक्त थे अतः उन्होंने किसी की नौकरी नहीं की। अकबर बादशाह के आश्रय में चार विद्वान थे, उनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) तानसेन–पितृनाम मकरंद, गौड ब्राह्मण, मूलनिवासी गवालियर के, स्वामी हरिदासजी (वृन्दावन वासी) के शिष्य।
(२) ब्रिजचन्द–जाति ब्राह्मण, निवासी डागुर (देहली के पास का गांव)
(३) राजा समोखनसिंह–जाति राजपूत, खंडार निवासी बीकानेर।
(४) श्रीचन्द–राजपूत, नोहार निवासी।

इन चार विद्वानों की चार 'वाणी' प्रसिद्ध थीं। तानसेन गौड़ ब्राह्मण थे अतः उनकी वाणी 'गौड़ी या गोबरहरी' थी। आज भी इनके वंशज जाफरखां, प्यारखां, बंधुओं की वाणी 'गौरारी या गोवरहरी' है। समोखनसिंह प्रसिद्ध बीनकार थे, मुसलमान हो जाने पर उनका नाम 'नौबादखां' रखा गया, फिर यह तानसेन के जामात (जंवाई) होगये, (यही नौबाद खां रामपुर के नवाब हामिद अली खां के उस्ताद वज़ीर अली खाँ के पूर्वज थे)

प्र०—तो क्या आज भी तानसेन परम्परा चालू है ?

उ०—हां, इतना ही नहीं, एक बात और भी ध्यान में रखें कि यह रामपुर के नवाब मेरे भी गुरू हैं। इन्होंने व वजीरखां ने मुझे कुछ राग सिखाये हैं, अस्तु।

प्र०—क्या वजीरखां के पूर्वजों के नाम नहीं मिल सकते ?

उ०—अब यह परंपरा देखो:—

बड़ेनौबाद खां (समोखनसिंह बीनकार)
|
शेरखां
|
हुसेन खां
|
असत खां
|
लाल खां
|
बेनजीरखां
|
असतखां
|
खुशहालखां
|
लालखां सानी
|
महावतखां—न्यामत खां (सदारंग ख्याल रचयिता)
|
जीवनशाह—प्यारखां
|
छोटेनौबादखां—निर्मलशाह (इनकी कन्या भाई के पुत्र उमराव खां को ब्याही थी)
|
उमरावखां
|
अमीरखां—(गायक व बीनकार)
|
वजीरखां—यह नवाब रामपुर के गुरु थे, इनका देहान्त होगया। इनके बड़े पुत्र प्यारखां भी जीवित नहीं है।
|
प्यारखां

नवाब रामपुर के शिष्य छमनसाहब (शाहजादे सादतअलीखां) लखनऊ के नवाब अलीखां (राजा) तालुकेदार और मैं (भातखण्डे जी)। इनमें से शाहजादे छमन-साहब का देहान्त हो गया है।

प्र०—यह परम्परा तो बहुत अच्छी रही, अब समोखन सिंह बीनकार की परम्परा का परिचय भी देंगे क्या ?

उ०—यह राजपूत घराने के थे तथा किशनगढ़ के राजघराने से दूर के सम्बन्धी थे, ऐसा वजीरखां कहा करते थे। समोखनसिंह की परम्परा इस प्रकार है:—

छत्रसिह—राठौर, सूर्यवंशी, किशनगढ के।
|
लालसिंग
|
छत्रपालसिंग
|
लालसिंग सानी
|
निहालसिंग
|
धरमसिंग
|
समोखनसिंग
|
नौबादखां—मिश्रीसिंग—यह पहिले मुसलमान थे, ऐसा वजीर खाँ कहते थे।

अब हम 'मादनुलमौसिकी' ग्रन्थ में वर्णित इतिहास देखें ! समोखनसिंह की वाणी 'खंडारी' थी।

बज्रचन्द—इनके घराने के यूसुफखां, वजीरखां ध्रुवपदिये आज भी हैं (मैंने वजीर खां को देखा है, यह बम्बई में जीवनलाल महाराज के सामने गाया करते थे, मैं उस समय सङ्गीत का नया शौकीन था)

श्रीचन्द—के वंशज तानरस खां दिल्ली के थे (तानरस खां का १ जलसा बम्बई के 'गायनोत्तेजक समाज' में हुआ था; मैं भी वहां था। इनके देहान्त को ४० वर्ष हो गये, यह निजाम हैदराबाद के आश्रित थे)

अकबर बादशाह के समय 'राग सागर' ग्रन्थ लिखा गया, इसके रागवर्णन 'मान कुतूहल' नामक ग्रन्थ से भिन्न हैं। मेरे मत से अकबर के समय के गुणी लोग राजा मानसिंह (गवालियर) के दरबार के गुणी लोगों जैसे विद्वान नहीं थे। 'मानकुतूहल' ग्रन्थ राजा मान के समय में लिखा गया था (आज भी वह लखनऊ में रामपुर के छमन साहब शाहजादा के भाई जानीसाहब के पास फारसी में लिखा हुआ है) राजा मान के पास कई विद्वान नायक थे, उनके कथनानुसार ही ग्रन्थ में रागों का वर्णन दिया गया है।

प्र०—वह ग्रन्थ आपने देखा है ?

उ०—उसका कुछ भाग मुझे शाहजादा छमन साहब ने पढ़कर सुनाया था, लेकिन वह मुझे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं हुआ। उसका प्रकार 'दर्पण, रागमाला' जैसा ही कुछ प्रतीत हुआ। स्वर व राग के स्पष्टीकरण के विषय में, उसमें कुछ नहीं मिला। हकीम साहब कहते हैं कि 'मेरे मत से अकबर के समय के सर्व गायक 'अताई' थे।

प्र०—आश्चर्य है, क्या तानसेन भी 'अताई' थे ?

उ०—घबराओ नहीं ! हकीम साहब ऐसा क्यों कहते हैं, उसका खुलासा भी वे स्वयं कर रहे हैं। वे कहते हैं–'अताई' उसे कहा जाता है, जिसे शास्त्र ज्ञान नहीं हो। तानसेन अतिश्रेष्ठ गायक थे। कहा जाता है कि हजार वर्ष में भी दूसरा उन जैसा गायक नहीं हुआ।

लेकिन वह संगीत शास्त्र का ज्ञाता नहीं था। सुजान खां, सुरग्यान खां (फतहपुरी) चांदखां, सूरजखां, मायाचंद (तानसेन के शिष्य) तानरस खां बिलासखां (तानसेन के पुत्र) रामदास मुंडिया, दाऊखां धाड़ी, मुल्लाईसाख धाड़ी, खिज्र खां; नौबादखां, हसनखां, यह सब उस समय के 'अताई' थे। बाजबहादुर, नायक चरजू, नायक भगवान, धोंड़ी, सुरतसेन (बिलासखां का पुत्र) लाला, देवी (ब्राह्मण बंधु) आकिल खां (बाक़िर खां का पुत्र) यह कुछ शास्त्र ज्ञाता थे, लेकिन वह भांनू, पांडे, बक्सू जैसे विद्वान नहीं थे।

अकबर काल के गुणी लोगों के पश्चात जो विद्वान हुए, उनके नाम काश्मीर के सूबेदार फकीरउल्ला लिखित 'रागदर्पण' में मिलते हैं।

प्र०—तो क्या यह जानकारी हकीम साहब उसी काश्मीरी ग्रंथ से वर्णन कर रहे हैं? यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो सकता?

उ०—चार-पांच वर्ष पूर्व बड़ौदा की श्री० सौ० महारानी साहिबा के साथ मैं भी काश्मीर गया था। वहां की लाइब्रेरी (जम्मू के रघुनाथ मन्दिर में है) में 'राग दर्पण' फारसी भाषा में देखा, वहां के ग्रन्थाध्यक्ष संस्कृतज्ञ थे। उन्हें फारसी नहीं आती थी, इसलिये ऐतिहासिक जानकारी के विषय में उन्होने अनभिज्ञता प्रकट की। तुम लोग उधर कभी जाओ तो उस ग्रन्थ को अवश्य देखना।

प्र०—उस ग्रन्थालय में आपने नये ग्रन्थ और भी देखे होंगे?

उ०—वहां अधिकतर श्री सुरेन्द्र मोहन टागोर द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ ही मिले। कुछ काव्य ग्रन्थ भी देखे, रत्नाकर भी देखा (सिंह भूपाल की टीका सहित) परन्तु वहां के पिछले राजा रणधीरसिंह जो ग्रन्थ लिख रहे थे, वह अपूर्ण रह गया है। ग्रन्थ उत्तम है, उन्होंने ग्रन्थ में नवीन-पुरातन संगीत का समन्वय करने का प्रयत्न किया है, लेकिन वह ठीक से जमा नहीं।

प्र०—क्यों? उस समय विद्वान व कलाकार नहीं थे?

उ०—मेरी भी यही कल्पना थी, लेकिन नहीं होंगे, यही दिखाई देता है। उनका प्रयत्न कुछ प्रतापसिंह के "राधागोविंद सङ्गीत सार" जैसा तथा कुछ भिन्न प्रकार का दिखाई दिया। ग्रंथ लेखन में सहायक पंजाब के सङ्गीत शास्त्री काकासाईं व इनायत खां थे। इन दोनों ने ही प्राचीन ग्रन्थों को समझा नहीं था। स्वर, राग की व्याख्या 'रत्नाकर, दर्पण' से लेकर उन रागों के ध्यान, पूजा, धूप, दीप, नैवेद्य, जप आदि का वर्णन करके, प्रत्यक्ष सङ्गीत वर्णन मुसलमानी पद्धति से लिखा गया है, इसे कोई प्रशंसनीय नहीं कह सकता। फिर भी उनका यह प्रयत्न सराहनीय था कि प्रत्येक राग चाहे वह नवीन ही क्यों न हो, उसके स्वर, आरोहावरोह का वर्णन करके, उसके आठ-आठ ध्रुपद नोटेशन सहित तैयार करके ३०-३५ राग लिखे गये थे। दुर्भाग्य से उनका देहान्त हो जाने से वह ग्रन्थ अपूर्ण रह गया। अगर तुममें से कोई काश्मीर जाय तो रणधीरसिंह जी के रागदर्पण की प्रतिलिपि प्राप्त करके उसे दरबार की सम्मति से सर्व साधारण के लिये प्रकाशित कराने का भी प्रयत्न करें। अब किल्लीदार के ग्रन्थ की जानकारी देखें।

१—शेख बहाउद्दीन बर्नी—यह शाहजहां बादशाह के समय में हुआ, यह दरवेशी होकर आजीवन अविवाहित रहा, 'मार्ग राग' का जानकार था तथा रबाब और वीणा बजाया करता था। इसने ध्रुवपद, होली, तराने आदि अनेक गीत भी बनाये हैं।

२—शेखशीर मुहम्मद—बर्नी का एक दरवेशी मित्र था, उत्तम गायक था, इसने अनेक तराने व खयालों की रचना की है। इसने "भीमसिरी, संकत" आदि कुछ नवीन राग भी बनाये हैं।

३—मियां दानू धाड़ी- यह प्रसिद्ध घट वाद्य वादक था।

४—लालखां कलावंत- यह बिलास खां का दामाद एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ था।

५—जगन्नाथ कविराज- तानसेन के पश्चात इसके समान गुणी दूसरा नहीं हुआ। जगन्नाथ १०० वर्ष की आयु प्राप्त करके स्वर्गवासी हुआ।

प्र०—आपने पहिले कहा था कि 'भावभट्ट का पिता यही जगन्नाथ था ?

उ०—हां, यही वह जगन्नाथ था, लेकिन भावभट्ट ने उसका नाम जनार्दन कहा है, यह भी मैं कह चुका हूं।

६—सोभालसेन- (तानसेन का नाती) यह कुछ विचित्र हो गया था।

७—सोदास सेन- यह सोभालसेन का पुत्र एक कवि था। आरम्भ में शाहशुजा के पास रहा, फिर कश्मीर के फकीरुल्ला दीवान के आश्रय में रहा (१०८२ हिजरी)

८—मिश्री खां धाड़ी:— बिलास खां का शिष्य,शाहजहां के पुत्र शाहशुजा के आश्रय में बंगाल में रहा करता था।

९—हसन खां कव्वाल:- यह विद्वान नहीं था, तथा इसका रहन-सहन भी अव्यवस्थित था।

१०—गुणसेन:- इसका असली नाम अफजुल था। यह नायक भानू का वंशज था, गीत व संगीत खूब गाता था। मार्ग राग का जानकार था, कश्मीर में इसका देहान्त हुआ।

११—शेख कमाल:- मियां दाऊ धाड़ी का शिष्य, गायक था व फकीरुल्ला के आश्रय में कश्मीर में रहता था।

१२—बरकत खां:- यह कलाकार गुजरात का था।

१३—रंगखां- कलावंत था।

१४—खुशहाल खां- लाल खां का पुत्र, इसे 'गुण समुद्र' उपाधि से विभूषित किया गया था।

१५—गुलाम मोहियुद्दीन- यह तुर्की घराने का एक कवि था।

१६—सावद खां धाड़ी- गायक व कवि, यह फतेहपुर का रहने वाला था।

१७—कान खां कलावंत- शाहशुजा ने बादशाह से इसे मांग लिया था।

१८—वल्ली धाड़ी- आगरे में इसका शरीरान्त हुआ।

१९—सलीमचन्द डागुर- उत्तम गायक था, इसकी रची अनेक चीजें मिलती हैं।

२०—शेख सादुल्ला:-यह लाहौर का प्रसिद्ध गायक था, इसकी आवाज अफीम खाने से खराब हो गई थी ।

२१—पूजा:-शेरमहम्मद का भाई, कश्मीर में फकीरुल्ला के यहां नौकर था ।

२२—महम्मद वागी:-उत्तम गायक व कवि था, अफीम से इसकी भी आवाज खराब हो गई थी ।

२३—बायजिद खां:-कलावंत ।

२४—रुद्रकव्वाल:-कव्वाल

२५—धर्मदास:-कलावंत

२६—रहीमदाद:-धाड़ी

२७—कवज्योत:-धाड़ी

२८—इदेसिंह:-राजा रोज अफजून का पुत्र, अमीरखुसरू के गीत गाया करता था, तराने भी गाता था ।

२९—मीरइमाम:-यह सैय्यद है, कवि है ।

३०—हमीरसेन:-तथा इसका पुत्र सोबालसेन-यह दोनों बड़े कलावंत थे ।

३१—सैय्यद तीव्र:-'मध' नाम से गीत रचता था, इसकी आवाज में मिठास नहीं था ।

३२—सुन्दर घन :-उत्तम कवि व साधारण गायक था ।

३३—वजीरखां नोहार:- सुजानखां का नाती, उत्तम गायक, गीत व ध्रुवपद गाता था । अमीरखुसरू के ख्याल भी अच्छे गाता था ।

प्रसिद्ध वाद्य वादकों (साजिंदों) की तालिका

१—हैयात:-जहांगीर के आश्रय में था, इसे 'सरसमीन' कहते थे ।

२—बायाजिद रबाबी:-यह जितना बड़ा गुणी था उतना ही बड़ा शराबी था ।

३—शिखरसेन कलावंत:-यह बायजिद का शागिर्द तथा रबाब वादन में अद्वितीय है ।

४—साले रबाबी धाड़ी:-कश्मीर के सूबेदार की नौकरी में है ।

५—हयाती रबाबी:-कुशल वादक है ।

६—कर्याई-मार्ग का जानकार-'कश्मीर मृदङ्ग राज' की उपाधि से विभूषित है ।

७—अमानुल्ला:-पखावजी है, कश्मीर में नौकर है ।

८—फिरोज धाड़ी:-पखावजी-लाहौर में इसके जैसा दूसरा नहीं था ।

९—ताहिर:-डफ वादक, अति प्रवीण था ।

१०—अल्लादाद धाड़ी:-सारंगी वादक, जालंधर के पास रहता था ।

११—रसबीन:-इसका असली नाम महम्मद है ।

१२—शौगी:-तंबूरा वादक, हिन्दुस्थानी व फारसी संगीत का जानकार ।

१३—आबू आलूबा:-तंबूरा वादक, (तंबूर, यह एक पर्शियन वाद्य है, अपना हिन्दू 'तंबूरा' नहीं)

१४—ताराचन्द कलावंत:-शौगी का शिष्य था।

१५—भगवान–तानसेन का साथ करता था, पहिले अकबर के पास देहली में रहा, फिर कश्मीर में नौकर हो गया।

१६—अमीर- सुरीला वादक था।

यह सब पुराने गायक-वादक हैं, लेकिन इनमें से अब कोई नहीं है।

अब नवाब शुजाउद्दौला के राज्य में गुणीजनों का परिचय देता हूँ। इनमें से कुछ का देहान्त लखनऊ में हुआ, कुछ नवाब सादतअलीखां के समय ही में नौकरी छोड़ गये थे, कारण इनको संगीत से विशेष रुचि नहीं थी।

ऊपर लिखित गुणियों के पश्चात तथा मेरे समय से पहिले के गुणी लोगों का परिचय इस प्रकार है:—

(१) मियां जानी व मियां गुलाम रसूल-यह बड़े गुणी एवं स्वाभिमानी थे। एकबार यह नवाब हसनरजा खां के घर गाने के लिये गये, वहां इनका ठीक से सन्मान नहीं किया गया, इसलिये नवाब आसफ़उद्दौला की नौकरी छोड़कर चले गये। इनके गाने में ऐसा कमाल था कि बुलबुल आदि पक्षी मोहित होकर आ जाते थे, ऐसी दंत कथा है।

(२) शक्करखां व मक्खनखां–बड़े महम्मदखां कव्वाल, इन्हीं शक्करखां के पुत्र थे। शक्करखां लखनऊ में रहा करते थे, बड़े कलाकार थे।

(३) सोना और मक्खन–क़व्वाल बंधु प्रसिद्ध थे।

(४) मीयां शोरी–प्रसिद्ध टप्पे वाले।

(५) मियां छज्जूखां कलावंत–गौरारी वाणी के तानसेन घराने के थे।

(६) मियाँ जीवनखां–छज्जूखां के भाई–मार्ग व देशी राग गायक थे, एवं रबाब बजाते थे।

७—नवाब सालारजंग–शुजाउद्दौला के साले, यह होरी व ध्रुवपद गायक थे। गमक व आकार इनकी विशेषता थी।

(८) नवाब कासम अलीखां–यह सालारजंग के पुत्र, उत्तम गायक थे।

(९) मियां गम्मू–कव्वाल शोरी का शिष्य, इन्होंने भारत में टप्पे का प्रसार किया, इनके पुत्र शादीखां को राजा नारायणसिंह बनारस ने अपने पास रखा था। मेरे समय में (सन् १८५७ के आसपास) सच्चे गुणी बहुत कम रह गये थे, और शास्त्र ज्ञान का तो लोप ही हो गया था। अब अपने समकालीन गुणीजनों का परिचय देता हूँ:–'धाड़ी' यह शब्द प्राचीन गायक-वादकों के लिये उपयोग में लाया जाता था, ऐसा इतिहास से प्रतीत होता है। धाड़ी लोग गायन–वादन का व्यवसाय करके उदर पूर्ति किया करते थे। यह 'करका' 'Circa' नामक गीत गाया करते थे। आगे चलकर यह लोग मुसलमान हो गये।

इनमें से एक 'नायक' भी बना, जिसका नाम 'बक्सू' था। आज इन 'धाड़ियों' की सब विद्या नष्ट होकर यह लोग नाचने-गाने वाली बाइयों का साथ करने वाले 'सफरदाई' (मीरासी) बन गये हैं।

कव्वाल व कलावंत पहिले बड़े सभ्य व कुलीन होते थे। अलाउद्दीन खिलजी के समय से 'कव्वाल' नाम का प्रचार हुआ। 'कलावंत' यह नाम अकबर के समय से प्रचार में आया। तानसेन के कुछ वंशज आजकल गाते हैं और कुछ रबाब बजाते हैं। प्यारखां, जाफरखां, बासतखां यह तानसेन वंशज हैं। जाफरखां (छज्जूखां का पुत्र) जैसे रबाबिये अब भारत में नहीं मिलेंगे। यह लोग वाजिदअलीशाह, लखनऊ के उस्ताद हैं। प्यारखां ने सुरसिंगार का निर्माण किया। जाफरखां गायक था, जाफरखां का प्रथम पुत्र कासिमअलीखां रबाब बजाता था, और फारसी, अरबी का भी जानकार था। कासिमअली को इरमुद्दौला की उपाधि दी गई थी। जाफरखां का द्वितीय पुत्र 'रहातुद्दीन' व तीसरा 'निसारअली' था। बासतखां के चार पुत्र थे (महम्मदअलीखां से मैंने भी सीखा था)।

प्र०—तो क्या वे अभी तक थे ?

उ०—हां, गत वर्ष ही उनका देहान्त ६५ वर्ष की आयु में हुआ, मुझे भी रामपुर में कुछ चीजें इन्होंने सिखाई थीं। महम्मदअलीखां के बाकरअलीखां, अलीमुहम्मदखां भाई थे, लेकिन इनका देहान्त पहिले ही हो चुका था। अलीमुहम्मदखां बड़े गुणी थे, उनकी चीजों का संग्रह लखनऊ के डा० लक्ष्मण गंगाधर नातू, नादान महाल के पास देखने को मिल सकता है (इनको यह गीतसंग्रह मुहम्मदअलीखां ने दिया था।)

प्र०—यह इनके पास किस प्रकार आया ? गायक तो अपना संग्रह किसी को दिया ही नहीं करते !

उ०—यह डाक्टर, रामपुर अस्पताल में नौकर थे। उस समय मुहम्मदअलीखां भी सरकारी नौकरी में थे। रामपुर के शहजादे सादतअलीखां उर्फ छमनसाहब मुहम्मद-अलीखां के शिष्य थे और मेरे स्नेही थे। मुहम्मदअलीखां की बीमारी का उपचार इन्हीं डाक्टर नातू ने किया था, तब ही से वह डाक्टर नातू को संगीत सिखाने लगे, और यह संग्रह भी उसी समय डॉक्टर साहब को उनसे प्राप्त हुआ। उसमें केवल चीजों के बोल हैं।

रामपुर में जो प्रसिद्ध सुरसिंगार वादक, बहादुर हुसेन खां होगये हैं, वह प्यारखां के भान्जे थे। प्यार खां के कोई पुत्र नहीं था, इसीलिये उन्होंने अपने भान्जे को गोद लेकर सुरसिंगार सिखाया। तानसेन के सभी वंशज बड़े अभिमानी द्वेषी व मत्सरी प्रवृति के थे। इनके द्वेष की एक कथा मैंने लखनऊ में सुनी थी।

प्र०—वह कौनसी ?

उ०—प्यार खां जाफर खां की बहिन अपने पुत्र बहादुर खां को लेकर भाई के पास आई, और इसे भी सिखाओ, ऐसा निवेदन करने लगी। तब जाफर खां ने स्पष्ट कह दिया कि हमारे घराने की विद्या दूसरे घराने में नहीं जा सकती। किन्तु दीनवाणी में बारम्बार विनती करने पर उन्हें बहन पर दया आई, और तब उसके पुत्र को सुरसिंगार

सिखाया। इस बात से जाफर खां को ऐसा क्रोध आया कि प्यार खां के मरने तक वे उनसे नहीं बोले। इतना ही नहीं, बल्कि प्यारखां मरे तब उनको मृतक क्रिया में भी शामिल नहीं हुए।

प्र०—लेकिन बहादुर हुसेनखां ने यह विद्या छिपाकर रखी थी, तो फिर किस को सिखाई?

उ०—उनके एक शिष्य अलीहुसेन खां बीनकार थे, जो बम्बई में बहुत वर्षों तक रहे। उन्होंने इनको बीन सिखाई, लेकिन सुरसिंगार उन्होंने रामपुर के नवाब हैदरअलीखां बहादुर छमनसाहब के पिताजी को सिखाया था। छमन साहब ने भी सुरसिंगार अपने पिता से ही सीखा। मैं जब रामपुर जाता, तब उनका वादन सुना करता था। नवाब-हैदरअली का देहान्त हुए २५-३० वर्ष होगये, छमनसाहब का देहान्त अभी पांच वर्ष पूर्व हुआ है।

प्र०—ज़रा ठहरिये! बड़ौदा में जो अलीहुसेन खां आश्रित थे, वही तो यह नहीं थे?

उ०—वही थे। इन्होंने बीन अपने भाई मुहम्मद हुसेनखां को गंडा बांधकर सिखाई। भाई के अतिरिक्त दूसरे किसी को इन्होंने बीन नहीं सिखाई। मुहम्मदहुसेन के पास मैंने भी कुछ दिनों तक बीन सीखा था। अलीहुसेन खां से मेरा परिचय था, वे उत्तम वादक थे तथापि बन्देअली बीनकार गवालियर वालों से कम तैयार थे।

प्र०—बन्देअली कौन थे? इनके बारे में कुछ जानकारी मिलेगी?

उ०—रामपुर के छमनसाहब ने मुझे बताया था कि मुहम्मदशाह बादशाह के समय सदारङ्ग नाम के एक बीनकार थे। उनके शिष्य हसनखां धाड़ी के कुटुम्ब में से थे। बन्देअली ने भी बीन किसी को नहीं सिखायी। हां, कुछ लोगों को सितार अवश्य सिखाया था।

प्र०—लेकिन हम आजकल अखबारों में कभी-कभी बन्देअली के शिष्यों के कार्य-क्रम के विज्ञापन पढ़ते हैं।

उ०—बन्देअली खां के देहावसान को आज ४० वर्ष होगये, तब अमुक ने उनसे सीखा है और अमुक ने नहीं, इसका निर्णय किस प्रकार किया जाय? उनके समय में इस प्रकार के विज्ञापन अखबारों में नहीं छपा करते थे। बन्देअली बम्बई में रहा करते थे, तब मैं भी उनकी बीन सुनने जाया करता था। उनका देहान्त पूना में हुआ। गवालियर के प्रसिद्ध हद्दूखाँ की द्वितीय पत्नी की कन्या, बन्देअली खां को ब्याही थी। फिर इनके भी एक लड़की हुई। हद्दूखां की दूसरी कन्या अलीहुसेन खां बीनकार के भाई इनायत खां को ब्याही थी। बन्देअली की कन्या उदयपुर के प्रसिद्ध जाकिरुद्दीनखां को ब्याही थी। जाकिरुद्दीन के पुत्र अभी तक उदयपुर में नौकर हैं। अस्तु, मित्रो! अब हम हकीम साहब के इतिहास को और देखें, वे कहते हैं:—

"जीवनखां के दो लड़के थे, बहादुरखां व हैदरखां। इनमें बहादुरखां उत्तम 'रबाब' वादक था। हैदरखां यह वाजिदअली शाह के दीवान नवाबअली नक्कीखां

का उस्ताद था। हैदरखां कुछ विक्षिप्त था, लेकिन गायक उत्तम था। हैदरखां और मैं कुछ दिनों तक एक साथ रहे हैं। अब इन दोनों भाइयों का देहान्त होगया है। उमरावखां और मुहम्मद अलीखां बीनकार थे। उमरावखां के दो पुत्र थे, रहीमखां व अमीरखां। इनमें अमीरखां बड़े प्रसिद्ध होली व ध्रुवपद गायक हुए। इनको चित्रकला मैंने सिखाई थी। अमीरखां बड़े सभ्य, सुशिक्षित एवं निराभिमानी थे। रहीमखां प्रसिद्ध बीनकार हैं, यह समोखनसिंह (नौबादखां) के घराने के अर्थात् तानसेन की कन्या के वंशज या सदारङ्ग के वंशज के नाम से प्रसिद्ध हैं। जाफ़र खां, प्यार खां, बासदखां, यह तानसेन के पुत्र के वन्शज थे। बादशाह के समय में तो यह लोग देहली रहा करते थे, लेकिन नवाब शुजाउद्दौला के समय लखनऊ में आकर रहने लगे। इनके गीत बड़े सन्मानीय समझे जाते थे।

देहली के तानरसखां एक उत्तम गायक थे, यह गजल व ख्याल दोनों खूब गाते थे और बड़े भले आदमी थे।

कलावन्त इमामबख्श आगरा निवासी आजकल दक्षिण में हैं, आयु १०० वर्ष की है उत्तम शास्त्राभ्यासी हैं।

आगरा के वजीरखां, यूसुफखां पितृ परम्परा से कलावन्त हैं, लेकिन मातृ घराने से कव्वाल हैं, बड़े मुहम्मदखां इनके मामा हैं। वजीरखां, यूसुफखां होली, ध्रुवपद अच्छी गाते हैं व ख्याल टप्पे भी गाते हैं। मैंने ६ माह तक बराबर इनको सुना है, इनके रियाज़ के समय भी मैं पास में रहा। आपकी आवाज़ कभी बिगड़ी हुई नहीं देखी, आपकी आवाज़ की सी गमक मैंने समोखनसिंह के खानदान में किसी से नहीं सुनी। इनके पिता का नाम निजामखां व दादा का नाम काइमखां था, इनके ध्रुवपद भी मैंने सुने हैं।

देहली के मौजखां भी ध्रुवपद उत्तम गाते थे। शक्करखां लखनऊ वालों के अहमदखां व मुहम्मदखां नामक दो पुत्र थे, इनमें अहमदखां राग व ख्याल बहुत शुद्ध गाते थे और मुहम्मदखां की तानों की तैयारी उत्तम थी। दक्षिण में मुहम्मद खां जैसा तैयार गायक नहीं हुआ, ऐसा माना जाता है। यह हिन्दुओं जैसी शिखा रखकर बांधा करते थे। रीवा रियासत में इनको एक हजार रुपये मासिक वेतन दिया जाता था। इनका देहान्त भी रीवा में ही हुआ। यही मुहम्मदखां गवालियर में महाराजा दौलतराव सिंधिया के समय में नौकर थे। उस समय की एक दन्त कथा प्रसिद्ध है।

प्र०—वह कौन सी ?

उ०—बड़े मुहम्मद खां १२००) रु० मासिक वेतन पर दरबारी गायक थे, उसी समय हद्दूखां-हस्सूखां, दो तरुण गायक भी राजाश्रय में थे। यह हद्दू-हस्सू खां नत्थन-पीर बख्श के वंशज थे। इनके बड़े ख्याल, आलाप ढंग के व ध्रुवपदांग के हैं और गवालियर में अति प्रसिद्ध हैं। मुहम्मद खां की तानों से प्रसन्न होकर महाराजा ने हद्दू-हस्सूखां को भी इसी प्रकार की तानें तैयार करने को कहा। तब इन दोनों युवकों ने दो

दो-चार महीने मुहम्मदखां का गाना रोज सुना तथा छुप-छुपकर भी वे उनकी गायन शैली का अध्ययन करते रहे, फिर जब छः महीने बाद महाराज ने बड़ा जल्सा किया तो इन दोनों को गाने की आज्ञा दी। यह दोनों खूब रियाज करके तैयार थे, अतः इन्होंने हूबहू मुहम्मद खां की नकल कर दिखाई। इन युवकों का गाना सुनकर मुहम्मद खां बड़े क्रोधित हुए और भरे दरबार में कहने लगे, 'मुझे धोखा दिया गया है, मुझ से दग़ा किया गया है, अब मैं यहां नौकरी नहीं करूंगा'। महाराज के अनेक दरबारियों ने समझाया, लेकिन उन्होंने किसी की भी नहीं मानी और न १२००) रु० मासिक वेतन ही की परवाह की। इन्हें दरबार में लाने-लेजाने के लिये सरकारी हाथी भेजा जाता था। इसी विषय की एक और बात ग्वालियर की है:—

महाराजा दौलतराव के कार्यवाहक (दीवान) त्र्यंबकरावजी थे, उन्होंने सोचा कि इस गायक का १२००) रु० वेतन बहुत अधिक है। इसमें कमी करके खर्च में बचत करनी चाहिए। यह योजना महाराजा के सामने रखने पर महाराज अवश्य प्रसन्न होंगे। अपनी यह कल्पना दीवान जी ने महारानी बायजाबाई साहिबा को और अन्य अधिकारियों को सुनाई और सबका मत लेकर निश्चय किया गया कि आगामी मास से मुहम्मदखां का वेतन ३००) मासिक कर दिया जाय। इस प्रकार आज्ञा निकाल दी गई। मुहम्मद खां के पास आज्ञा पहुँचते ही उन्होंने गवालियर छोड़कर अन्यत्र जाने की तैयार कर दी, लेकिन जाने के पहिले महाराजा के दर्शन अवश्य कर लेने चाहिये, इस हेतु मुहम्मदखां अपनी छोटी सी तंबूरी लेकर महाराजा से मिलने राजमहल पहुँचे, लेकिन उन्हें अन्दर जाने से रोक दिया गया। तब महल के चबूतरे के किनारे पर बैठकर उन्होंने तोड़ी राग गाना शुरू कर दिया। धीरे धीरे राग की मधुरतानें निकलनी आरम्भ हो गईं। सुनने वालों का जमघट होने लगा। उधर ऊपरी मंजिल पर महाराजा की पगड़ी हाथ की हाथ में ही रह गई, और आखों से अश्रुधारा बहने लगी।

प्र०—पगड़ी हाथ की हाथ में क्यों रह गई?

उ०—महाराज प्रातःकाल बाहर जाते समय पगड़ी अपने हाथ से बांधकर जाया करते थे। जब १२ बजे-दो प्रहर का समय हो गया तो महारानी साहिबा महाराजा के पास आकर कहने लगीं, महाराज! आज क्या भोजन वगैरह कुछ नहीं होगा? इसी समय गाना रुका और मुहम्मद खां को महाराज ने बुलाया, मुहम्मद खां से महाराज ने पूछा, खां साहब! इस समय आपका आना कैसे हुआ? अहाहा! ऐसी तोड़ी तो आज तक नहीं सुनी। मुहम्मद खां ने लिखित सरकारी आज्ञा पत्र महाराज के सामने रख दिया और कहने लगे:-आज तक आपका नमक खाया, इसके लिये आपका आभारी हूँ। अब मेरा और मेरे शिष्यों, लड़कों का गुजारा ३००) मासिक में नहीं हो सकेगा, इसलिये आपसे आखरी मुजरा कर, आखरी गाना सुनाने सेवा में आया था। जहां भी मेरे पेट भरने के लायक जगह मिलेगी, वहां जा रहा हूँ। महाराज ने लिखित आज्ञा को पढ़ा और बड़े क्रोधित हुए। उसी समय त्र्यंबकराव दीवान को बुलवाकर पूछा—यह क्या बात है? दीवान जी ने कहा कि सरकार के दूसरे नौकरों के मुकाबले में इनका वेतन अधिक है, इसलिये ६००) रुपये की खर्च में बचत सोची गई है। महारानी साहिबा और दूसरे

अधिकारियों का भी यही मत है। तब महाराज शांत होकर बोले, आपने यह अच्छा नहीं किया, मुझे दूसरा मुहम्मद खां लादो और तब इस मुहम्मद खां को विदा करदो। सारांश, आज्ञा वापिस लीगई। मुहम्मदखां के गायन प्रकार को देखकर ही गवालियर के गायकों ने अपनी शैली बदल दी, तब से ख्याल में भयंकर तानबाजी करने की परिपाटी सी पड़ गई, ऐसा कहा जाता है। अस्तु, अब फिर इतिहास की ओर चलें:—

बड़े मुहम्मदखां के चार पुत्र थे, (१) कुतबअली (यह असली पुत्र था) (२) मुनव्वर खां (३) मुबारक अलीखां (४) मुराद अलीखां (यह तीन पुत्र रखैल के थे) मुबारक अली का पुत्र दिलावर खां जीवित है। कुतुबअली पिता के साथ गाया करता था, लेकिन अब वह जीवित नहीं है। सब में छोटा मुरादअली बहुत बुद्धिमान है, वह एक उत्तम गायक निकलेगा। रजबअली व फजलअली यह मुहम्मदखां के वंशज माने जाते हैं तथा उत्तम ख्यालिये हैं। फजलअली का देहान्त होगया है, उसकी बहिन का पुत्र मेंडूखां है, वह अपने घराने की गायकी ही गाता है। उसने ऐसा जबड़ा तैयार किया है जैसा हद्दूखां ने तैयार किया था। आजकल लखनऊ के मुरादअली खां ख्याल, टप्पा उत्तम गाते हैं, लेकिन लखनऊ के अन्य धाड़ी अब अच्छे नहीं रहे, वे तवायफों का साथ करने लगे। हद्दूखां, नत्थेखां और नत्थनपीरबख्श का पुत्र गुलाम इमाम, यह सब उत्तम गायक हैं, इन सबको मैंने सुना है। सब बड़े अभिमानी हैं, और हमारे समान दूसरा कोई नहीं, ऐसा समझते हैं। हद्दू खां के पुत्र गुलाम इमाम का भी देहान्त हो गया है, मैंने पहिले हद्दू खां को सुना था तो वे बहुत समझदार तथा सुरीले दिखाई दिये, लेकिन पुनः जब मैंने उनको लखनऊ में सुना तो उनकी आवाज कुछ बिगड़ी हुई दिखाई दी। यह लोग गवालियर के रहने वाले हैं तथा इनको चार-पांच सौ रुपये मासिक वेतन मिलता है।

मेरठ के शादी खां, मुरादखां भी उत्तम गायक हैं। लखनऊ के मुराद अलीखां का लड़का सुलेमान, यह रजबअली (मुहम्मद खां के घराने के) का शागिर्द है। यह पुरानी तर्ज के खयाल तान पलटे लेकर अच्छे गाता है। इसका गाना सुनकर पुराने गायकों की गायकी की कल्पना साकार हो जाती है, (हाल ही में लखनऊ में बड़े मुन्ने खां का देहान्त होगया, जिनका दादा सुलेमान था। बड़े मुन्ने खां का गाना मैंने १६०८ में लखनऊ में सुना था) नूरखां व मुगलखां कालपी निवासी थे, यह होली बड़ी अच्छी गाया करते थे, सुनते हैं कि उनका भी देहान्त हो चुका है। मौजखां तिरवान निवासी, गुलाम रसूल का भान्जा था; नैपाल दरबार में नौकर था और उत्तम ख्याल गायक था।

परसादू—यह बनारस का एक कत्थक था। वह गम्मू का पुत्र व शादी खां का शिष्य था। ख्याल टप्पा का भी उत्तम गायक था।

करीम खां—(पंजाब निवासी) उत्तम ख्यालिया है।

अब संगीत का व्यवसाय न करने वाले (शौकिया विद्वानों) का परिचय देता हूँ:—

(१) बाबू रामसहाय-इलाहाबाद निवासी, होली, ध्रुवपद, ख्याल, टप्पा व अभिनय में अति निपुण थे। मीरअलीसाहब कहते थे कि बाबूरामसहाय आजकल के 'नायक' हैं।

(२) सैयद मीरअली साहब—यह एक काबिल उस्ताद थे। आप ख्वाजा वासिद पीरजादा के नाती थे। सब प्रकार की चीजें गाने में बड़े निपुण थे। यह औंध के नवाब के यहां थे। और नवाब वाजिद अलीशाह के समय में इनका देहान्त हुआ। आजीवन कभी राजमहल में नहीं गये। राजमहल में न आने के कारण दीवान नासिरउद्दीन ने इनका वेतन ५००) कम कर दिया था। राजा मुहम्मद अलीशाह ने तो इनको लखनऊ छोड़ने तक की आज्ञा देदी थी, लेकिन जब वह जाने को तैयार होगये तब आज्ञा रद्द करदी गई और उनका सन्मान किया गया, (यह भी सैय्यद थे और बड़े सभ्य थे, अपनी कला में पूर्ण पारंगत थे; लेकिन दूसरों के घर जाकर गाने के विरुद्ध थे। उनके ही घर जाकर लोग गाना सुना करते थे, यह नियम गरीब अमीर सबके लिये समान था।

रामानुजदास व नारायणदास दो बुन्देलखंडी वैरागी थे। ख्याल गाने में इनके मुकाबले का दूसरा नहीं था। उपर्युक्त बाबू रामसहाय ने भी इनसे ही ख्याल सीखे थे; होली ध्रुवपद जीवनखां सेनिये (तानसेन घराना) से सीखे थे।

मीर अली साहब ने भी छज्जू खां (सेनिये) से ध्रुवपद सीखे तथा ख्याल गुलाम रसूल से। शकरखां, मक्खनखां व सेना से भी सीखे तथा टप्पा शोरी से और फारसी मुल्ला मुहम्मद से सीखी थी।

नवाब कासिमअली खां के पुत्र नवाब सुलतानअली खां बड़े उत्तम ध्रुवपदिये थे। इनके छोटेभाई नवाब हुसेन खां की आवाज बड़ी सुरीली थी और वे टप्पा अच्छा गाते थे।

मीर अहमद—अजीमाबाद के प्रसिद्ध सोज गायक थे, ध्रुवपद भी अच्छा गाते थे।

दिलावर अलीखां—(मेरे पिता) यह होली अच्छी गाते थे। ये और मीरअली दोनों छज्जू खां के शिष्य थे।

आलिमउल्लाखां—यह मियां जानी व गुलाम रसूल के शिष्य थे, सोज मियां सैफुल्ला से सीखे थे।

शोरी टप्पा गायक का भी एक छोटा सा किस्सा है:—पहिले टप्पा गाने का चलन नहीं था, गुलामनबी की कल्पना थी कि टप्पे की गायकी के लिये पंजाबी भाषा अनुकूल है, इसलिये पंजाब में रहकर पंजाबी भाषा सीखकर लखनऊ वापिस आये और प्रत्येक राग के टप्पों की रचना की। इनका रहन-सहन फकीरों जैसा था। एक दिन इनसे लखनऊ के नवाब आसिफउद्दौला की भेंट मार्ग में होगई, नवाब ने उनसे घर आने को कहा, तो बोले आपका घर कहां है, मैं नहीं जानता, (इतने भोले एवं सरल थे) नवाब ने कहा, पूछ लेना कोई भी बता देगा। शोरी का गाना सुनकर नवाब बड़े प्रसन्न हुए और खूब पुरस्कार दिया, लेकिन घर पहुँचने तक शोरी ने पुरस्कार की सब रकम बांट दी। नवाब को यह मालूम हुआ तो पुनः उतनी ही रकम भेज दी। इनके कोई पुत्र नहीं था, गम्मू ही इनका पट्ट शिष्य था। गम्मू का लड़का शादीखां बनारस के राजा उदितनरायन सिंह के पास रहता था, शादीखां को बाबूरामसहाय का खलीफा कहते थे, अभी इनका

देहान्त हुआ है। आजकल घज्जूखां व मुम्मीखां यह लखनऊ में टप्पा अच्छा गाते हैं, परन्तु इनकी तुलना इनसे पूर्व के गायकों से नहीं की जा सकती।

प्रसिद्ध तन्तकार—

१—उमराव खां—प्रसिद्ध बीनकार (यह रामपुर के वजीरखां के दादा थे)

२—मुहम्मद अलीखां—उमरावखां के भाई, उत्तम बीनकार बनारस के राजा के पास हैं।

३—मीर नासिर अहमद—मूलतः सैयद, लेकिन बीन सीखने के लिये दिल्ली के कलावन्त घराने की लड़की से शादी करली। यह बीन में बड़े प्रवीण हुये लेकिन धर्मच्युत नहीं हुये। वाजिदअली शाह ने इनको बुलाया लेकिन यह नहीं गये। गरीबों को यह सदा बीन सुनाया करते थे, उत्तम बीनकार थे।

४—रहीमखां—उमरावखां का पुत्र उत्तम बीनकार है।

५—हसनखां-(बीनकार)-वजीर नवाबअली नक्की खां के विषय में कहा करते थे कि यह सितार का बाज बजाते हैं, बीन के कायदे नहीं जानते।

६—प्यारखां व बहादुर हुसेनखां उत्तम-रबाबिये, आजकल बहादुर हुसेनखां, सादिक अलीखां से अच्छा बजाते हैं। कासिमअली व निसारअली भी उत्तम तन्तकार थे, बहादुर हुसेनखां जैसा सुरसिंगार बजाने वाला वर्तमान समय में कोई नहीं।

प्रसिद्ध सितार वादक—

१—रहीमसेन—मसीदखां का पुत्र।

२—नवाब गुलाम हुसेन खां—देहली निवासी नवाब के यहां मेहमान के रूप में बहुत दिनों तक रहे। सितार अच्छा बजाते थे।

(३) गुलामरजा—का बाज प्रसिद्ध है, अताई लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं। इनकी गतें ठुमरी प्रकार की होती हैं किन्तु गुलामरजा स्वयं अपना बाज उत्तम बजाया करता था, इसके बाज को लोग अधिक पसन्द करते थे, लेकिन इसमें 'ठोंक' 'झाला' को अधिक स्थान नहीं था, बड़े कलाकार यह बाज पसन्द नहीं करते थे। लखनऊ के रईसों को खुश करने के लिये गुलाम रसूल ने यह बाज निकाला था।

(४) गुलाम मुहम्मद बांदा निवासी उत्तम सितार वादक हैं। उमरावखां को छोड़कर ऐसी 'ठोंक' कहीं नहीं सुनी। गुलाम मुहम्मद का सितार, रबाब या बीन से कम नहीं है। हम दोनों ने चित्र कला एक ही उस्ताद से सीखी थी, इनका लड़का सज्जादहुसेन भी अच्छा बजाता है। गुलाममुहम्मद का देहान्त बलरामपुर में हुआ। सज्जादहुसेन कलकत्ता जाकर राजा सुरेन्द्रमोहन टागोर के यहाँ नौकर हो गया। (आज का प्रसिद्ध इमदादखाँ भी टागोर के आश्रय में था, इमदादखां ने सज्जाद को सुनकर ही अपनी तैयारी की थी।)

(५) बाबू ईश्वरीप्रसाद–बाबूराम सहाय का पुत्र उत्तम सितार वादक है।

(६) बाजपेयी–(प्यारखां जाफरखां के शिष्य) दो मिजराब से सितार बजाता है, हाथ बड़ा मीठा है किन्तु इसके रागों की बाबत मुझे विशेष जानकारी नहीं।

(७) बरकत (उर्फ–सनबहा) प्यारखां का शिष्य, फरुखाबाद निवासी।

(८) नवाब हशमतजंग–प्यारखां के शिष्य, अल्पायु में ही इनका देहान्त होगया।

(९) नवाबअली नक्कीखां–वाजिदअलीशाह के दीवान हैदरखां के शिष्य, उत्तम गाते हैं, होली तो वे घसीटखां से भी अच्छी गाते हैं।

(१०) घसीटखां–हैदरखां के शिष्य, उत्तम आवाज, सितार अच्छा बजाते थे।

(११) कुतुबअली–कुतुबुद्दौला, बरेली। प्यारखां के शिष्य उत्तम सितार वादक।

(१२) नबीबख्श–(डेरेदार अमीरजान के भाई) गुलाममुहम्मद के शिष्य। अच्छे सितारिये थे।

सारंगी वादक

(१) अलीबख्श देहली के (२) हुसेनबख्श लखनऊ के, (३) साबितअलीखां गवालियर के, ये प्रसिद्ध सारंगी वादक हैं। (४) इब्राहीमखां (५) मुहम्मदअलीखां (वाद्य) सारंगी उत्तम बजाते हैं। मुहम्मदअली ने बाबूराम सहाय से टप्पा सीखा (६) हिम्मतखाँ राठ पटवारी (७) ख्वाजाबख्श (खुर्जा के), अमीरखाँ बीकानेर के शिष्य सारंगी बड़ी शुद्ध बजाते हैं।

सारिंदा व सरोद

१— बहाजुद्दीन धाड़ी–(लखनऊ) सारिंदा अच्छा बजाते हैं।

२— गुलामअली (डोम) रामपुर के, अपने समय के उत्तम सरोद वादक थे।

नक्कारा–मुरसली (चौघड़ा)

(१) कासिमखां (आसीवान के) (२) घुरनखां (उन्नाव के) (३) सुभानखां (बनारस) यह मुरसली अच्छी बजाते थे। (४) राजा रघुनाथराव बहादुर (झांसी) यह नक्कारा अच्छा बजाते हैं।

(५) झब्बू (उन्नाव) (६) मखदूमबख्श (लखनऊ) नक्कारा उत्तम बजाते हैं।

शहनाई आदि (सुषिर वाद्य वादक)

१— अहमदअली–(बनारस) शहनाई बड़ी सुरीली बजाते हैं, सारंगी को संगत भी करते हैं।

२— अहमदखां धाड़ी–(असीवान के)

३—उन्नाव के घुरनखां, यूरोपियन वाद्य क्लारनेट, फ्लूट, जलतरंग बजाया करते थे।

४— घसीटखां–बांदा के रईस के यहां हैं, अलगोजा व छोटी शहनाई बजाते हैं, यह बीनकारों के शिष्य हैं।

५— कालू व ६ धनु-धाड़ी (बनारस के) सारंगी अच्छी बजाते हैं, ख्याल भी गाते हैं।

प्रसिद्ध पखावजी

१— लाला भवानीप्रसादसिंह- अप्रतिम पखावजी।

२— कुदौसिंह-(बांदा के ब्राह्मण) भवानीसिंह के शिष्य सर्वोत्तम पखवजी हैं। औंध के नवाब ने इनको 'कुँवरदास' की पदवी दी थी, एकबार वाजिदअलीशाह के यहां एक महफिल हुई थी, मैं भी वहां उपस्थित था, कुदऊसिंह व जोतसिंह में विवाद उत्पन्न हुआ। विजयी को राजा ने एक हजार रुपये की थैली देना तय किया, कुदोसिंह ने यह रकम प्राप्त की थी।

३— ताजखां-(डेरेदार) अपनी कला के आधार पर ही यह (गुलाममहम्मद सितारिया जैसा) भवानसिंह का खलीफा (Successor) प्रसिद्ध हुआ। इसने अपने पुत्र नासिरखां को तैयार किया तो वह कुदऊसिंह के बराबर का निकला। कुदऊसिंह का हाथ बहुत मीठा है, नासिरखां तरुण है अतः उसका बाज कुछ 'करारा और दबंग' अर्थात् कड़क व कर्कश है, परन्तु समझदारी में ताजखां को कुदऊसिंह की अपेक्षा अच्छा ही कहा जाता है।

नृत्य प्रवीण

(१) लालूजी व (२) प्रकाश- लखनऊ के कत्थक, यह गत, भाव व अभिनय प्रवीण हैं।

(३) दुर्गा-प्रकाश का भतीजा अलौकिक था, किन्तु इसका देहान्त हो गया।

(४) मानसिंह व उसका भाई उत्तम नृत्यकार है।

(५) बेनीप्रसाद (६) परसादू (बनारस) नृत्य अभिनय में कुशल है।

(७) रामसहाय (हंडिया के) कत्थक बांदा, अच्छे गुणी हैं।

(८) रमजानी (मोहत के) (९) हुसेनबख्श (१०) कायमअली (११) मिर्जा-वहीद काश्मीरी- यह सब लखनऊ में प्रसिद्ध हैं।

(१२) कन्हैया- यह वाजिदअलीशाह का शिष्य अच्छा नृत्यकार है।

(१३) गुलबदन (१४) सुखबदन (बनारस) नाच व भाव में उत्तम हैं।

(१५) अघवान- (उन्नाव का) तबला व नक्कारा अच्छा बजाता है।

(१६) हाजी विलासअली धाड़ी- (लखनऊ) तबला उत्तम बजाता है।

प्रसिद्ध तबलिये

१— बक्सू धाड़ी- प्रसिद्ध तबला वादक था।

२— मम्मू- उत्तम गतकार।

३— सलारी- उत्तम गत-परन वादक।

४— मक्खू-प्राचीन शैली का उत्तम तबलिया (बक्सू व मक्खू का देहान्त हो गया)

५— नज्जू- (बक्सू का शिष्य) लखनऊ में प्रसिद्ध है।

इस प्रकार गुणीजनों का इतिहास 'मादनुलमौसिकी में लिखा है।

प्र०—यह सब इतिहास तो उत्तर भारत के कलाकारों का है, इसमें राजपूताना व महाराष्ट्र के कलाकारों का उल्लेख नहीं है।

उ०—बम्बई इलाके में गायक-वादकों की परम्परा ६०-७० वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। अलीबाग के पास नागांव के वासुदेवराव जोशी ग्वालियर जाकर हस्सूखां के शिष्य बने और इनसे ही महाराष्ट्र के प्रसिद्ध बालकृष्ण बुआ ख्याल गायन में तैयार हुए। इससे पहिले कुछ मुसलमान गायक निज़ाम रियासत में नौकर थे। उनसे भी कुछ ब्राह्मणों ने थ.ड़ा बहुत गाना सीखा, ऐसा कहा जाता है।

प्र०—इसमें कोई आश्चर्य नहीं, "महाराष्ट्र संगीत का उद्धार करना है", ऐसा अखबारों में पढ़ा करते हैं, वह कैसे संभव होगा ?

उ०—महाराष्ट्र सङ्गीत की सीमा 'डफ' पर गाई जाने वाली पुरानी लावनियां या पोवाड़े तक है। इसका क्या और किस प्रकार उद्धार होगा ? एक-दो विद्वानों से यह प्रश्न करने पर उत्तर मिला कि हिन्दी भाषा से यहां के लोग अनभिज्ञ हैं, इसलिये हिन्दुस्थानी चीजों के आधार पर मराठी भाषा के नवीन गीतों की रचना करनी होगी, ऐसा करने से महाराष्ट्रीय सङ्गीत ठीक हो जायगा।

प्र०—अर्थात् मूल की उत्तम चीजों को तोड़-मोड़ कर मराठी के नये गीत बनाना। यही न ?

उ०—क्या बुराई है ? पुराने कवियों के श्लोक, दिंडी, साखियां आदि गीत रागदारी में गाना या छोटे ख्यालों पर मराठी गीतों की रचना करने में क्या हर्ज है ? तुम शायद कहो कि वे मूल गीत गाने लायक नहीं है, उनके छन्द व स्वरूप भिन्न हैं, उनको बदलने से मूल कविताओं के भाव नष्ट हो जायंगे। तो फिर ऐसा करने की अपेक्षा हिन्दुस्थानी गीत ही मूल रूप में गाने से महाराष्ट्र पर कौनसा संकट आजायगा ? नवीन गीत राग-रागनियों में तथा हिन्दुस्थानी तालों में बैठाकर नये सिरे से मराठी भाषा में भी तैयार किये जा सकते हैं।

प्र०—यह ठीक है, हमारा भी यही मत है।

उ०—लेकिन महाराष्ट्र संगीत का उद्धार किस प्रकार करोगे ? आज लावनी, पोवाड़ों का युग तो नहीं है। श्लोक, अभंग ओंवी, किस प्रकार गाई जायँगी ? लेकिन इस व्यर्थ के विवाद में हम नहीं जायंगे। अब भारत की भाषा ही हिन्दुस्थानी होने वाली है, वह हो जाने पर यह प्रश्न ही समाप्त हो जायगा।

प्र०—अच्छा तो अब इस विषय को छोड़कर राजपूताने के सङ्गीत पर प्रकाश डालें ?

उ०—राजपूताने में मुसलमान गायकों ने ही संगीत का प्रसार किया है। राजपूताने का संगीत इतिहास १५०-२०० वर्ष से अधिक का नहीं है। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर इन

बड़े शहरों ही में कुछ सङ्गीत है । बीकानेर में भावभट्ट व उसके पिता, अनूपसिंह के समय में आये थे, ऐसा भावभट्ट के ग्रन्थ में लिखा है । भावभट्ट के पिता शाहजहां के दरबार में थे, जयपुर में गायक-वादक पहिले अलवर से आये थे। जयपुर के अंतिम प्रसिद्ध गायक रजबअलीखां, बेहरामखां, मोहम्मदअली खां थे, यह सब राजा रामसिंह के समय में थे । इसी समय ग्वालियर नरेश जयाजीराव सिंधिया के यहां हद्दूखां, हस्सूखां, नत्थेखां, तानरसखां, बंदेअली खां, कुदौसिंह, जोरावरसिंह के पुत्र सुखदेव सिंह, अमीरखां, वामनराव, नारायण शास्त्री इ० गुणीजन थे । जयपुर में भी अनेक गायक-वादक थे, किन्तु इनके नाम मुझे मालुम नहीं, वह तुम्हें जैपुर के सरकारी कार्यालय से प्राप्त हो सकेंगे ।

प्र०—अच्छा, अब आप हमें नायकीकानड़ा राग का परिचय कराइये । यह ऐतिहासिक जानकारी बहुत मनोरंजक व उपयोगी रही । इससे हमें गायक-वादकों के मूल पुरुखों को जानने का अच्छा साधन मिल गया। १०० वर्ष ही में भारत में कितने उत्तमोत्तम कलाकार हो गये ! अब इस प्रकार के होंगे भी या नहीं, कौन जाने ?

उ०—पुनः ऐसे विद्वान होना कठिन ही है । उनके गुणों का अष्टमांश भी आज शेष नहीं है । राजाश्रय के अभाव में यही होना है । अब तो सङ्गीत भी नया और श्रोता भी नये; किन्तु इसमें दुःख की कोई बात नहीं है । अब तो कुछ पुराने, कुछ नये ऐसा ही सब बातों में योग दिखाई दे रहा है । अस्तु, अब नायकी राग पर विचार करें ।

नायकीकानडा राग काफी थाट से उत्पन्न होता है । इस राग में धैवत स्वर वर्ज्य है । यह आरोह तथा अवरोह दोनों ही में वर्जित है । वादी मध्यम तथा संवादी स्वर षड्ज है । इसका समय रात्रि का तीसरा पहर मानते हैं । इस राग का स्वरूप अधिकांशतः 'सूहा' राग जैसा दीखता है । सुघराई में हम तीव्र धैवत लेते हैं, इस कारण वह राग सहज ही पृथक हो जाता है । यह राग थोड़ा बहुत देवसाग के समान दिखाई देता है,किन्तु देवसाग में पंचम वादी है,यह एक बात तथा दूसरी बात यह कि जो कोई उसमें मध्यम वादी मानते हैं वे भी यह स्वीकार करते हैं कि उस राग में 'ग॒ प'यह संगति रागरूपवाचक है ।इस नायकी राग में 'ऋषभ तथा पंचम' की संगति बारम्बार दिखाई पड़ती है । जिस समय मैं रामपुर में था, तब नवाब साहेब ने खांसाहेब वजीर खां से ऐसा प्रश्न किया कि "सूहा" तथा "नायकी कानडा" में भेद किस स्थान पर तथा कैसे रखा जाता है ? यह पंडित जी को अर्थात् मुझे समझा कर कहिये । तब उन्होंने कहा, "सूहा" तथा "नायकी" के चलन में पहला भेद यह है कि नायकी में "रे प" संगति हम बारम्बार, किन्तु उचित रीति से दिखाते हैं, किन्तु यह संगति सूहा में हम सदैव टालने का प्रयत्न करते हैं ।" उन्होंने उसका उदाहरण इस प्रकार दिया, "नि॒ सा ग॒ म प, नि॒ म प, ग॒, म, रे सा" ऐसा हम सूहा राग में करते हैं तथा नायकी में "रे सा नि॒ सा, रे प ग॒, म, रे सा" ऐसा करते हैं । देवसाग में, "नि॒ सा ग॒, प ग॒, म रे सा" ऐसी संगति बारम्बार दिखाई देती है, यह भी उन्होंने कहा । इस पर मैंने कहा कि ऐसी संगति से श्रोताओं के लिये राग पहिचानना अवश्य कठिन होगा । तब उन्होंने कहा कि नायकी में कोई-कोई थोड़ा सा कोमल धैवत वक्र करके लेते हैं ।

प्र०—अर्थात्, "नि ध नि प" अथवा "सां ध नि प" इस प्रकार ?

उ०—हां, ऐसा ही लेते हैं, यह उन्होंने कहा। तब मैंने उनसे पूछा कि ऐसा करने पर यह राग अडाना से पृथक किस प्रकार होगा ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि अडाने में "रे म प, ध, नि सां" ऐसा हो सकता है, परन्तु यह तान नायकी में लेने पर नहीं चलेगी। उन्होंने अडाना इस प्रकार गाकर दिखाया, "म प ध, ध, सां, रें नि सां, सां ध, सां, म प ध, रें सां" और कहने लगे कि ऐसा प्रकार नायकी में नहीं ले सकते।

प्र०—तो फिर एक अर्थ में उनके कहने का अभिप्राय हमें ऐसा जान पड़ता है कि अडाने में धैवत "म प ध, सां" अथवा कभी कभी "म प ध, नि, सां" ऐसा आरोह में जो लिया जाता है, वैसा नायकी में नहीं लिया जा सकता, बल्कि वह केवल अवरोह में वक्र करके अर्थात् "सां ध नि प" अथवा "नि ध नि प" इसी प्रकार लेना पड़ेगा, यही न ?

उ०—हां, यह तुम ठीक समझे। उन्होंने कहा कि बंगाल की ओर ऐसा धैवत का प्रयोग मैंने सुना है। उन्होंने कोमल धैवत वाली एक चीज भी गाकर सुनाई। वे फिर कहने लगे कि नायकी के उत्तरांग में जितना सारंग आयेगा, उतना ही राग अधिक सुन्दर दिखाई देगा। वहां 'नि प' संगति उचित है। यही मत मेरे मित्र शाहजादे सादतअली खां उर्फ छमन साहेब बहादुर का था।

प्र०—तो फिर हमको इनमें से कौनसा मत स्वीकार करना चाहिये ?

उ०—धैवत वर्ज्य किया जाने वाला मत ही तुम्हें स्वीकार करना चाहिये। कोमल धैवत वाले मत को तो अपने संग्रह में रहने दो। वह धैवत किस प्रकार लेना चाहिये, यह तुम्हारी समझ में आ ही गया है। नायकी में तीव्र धैवत नहीं है, इस कारण सुघराई से तो वह पृथक ही रहेगा। देवसाग की "गम प गम म, रे सा" अर्थात् "गम प" संगति नायकी में नहीं लानी चाहिये तथा मध्यम वादी है, इसलिये उसे बीच बीच में स्वतन्त्र रूप से लेना चाहिये तभी यह राग भली प्रकार पहचानने में आयेगा। यही तो उत्तर के संगीत की विशेषता है कि केवल चलन से तथा नियमित सङ्गति से राग पृथक होते हैं। "वादिभेदे रागभेदः" ऐसा नियम भी है। अपने गायकों को आरोहावरोह के सम्बन्ध में जानकारी बहुत ही कम है, किन्तु उनको एक एक राग में दस-दस, पांच-पांच चीजें आती हैं, उनके अनुमान से उनमें साधारण तथा असाधारण भाग कहां है, यह देखकर वे गाते समय आलाप में एवं अपनी तानों में इस ज्ञान के आधार पर चलते हैं। यह विशेषता वे लोगों को बताने में आनाकानी करते हैं। उसे वे केवल अपने पुत्रों को ही, उनके गले अच्छे तैयार हो जाने पर बताते हैं।

प्र०—उन बेचारों का ऐसा करना एक प्रकार से ठीक ही होगा, उनकी वही सारी दौलत है। आपने कहा था कि राजा टागोर के मत से यह "नायकी" राग खिलजी घराने के राजा अलाउद्दीन के समकालीन गोपाल नायक ने प्रथम तैयार किया था। किन्तु यह उन्होंने किस ग्रन्थ के आधार पर कहा ?

उ०—उन्होंने अपने मत का आधार नहीं बताया है। उनके पास बड़े-बड़े गायक नौकर थे। उनमें से किसी ने उनसे ऐसा कहा होगा। किन्तु अकबर के दरबार में कोई नायक नहीं था, यह प्रसिद्ध ही है।

प्र०—इतना ही नहीं, वरन् जो थे वे सब अशास्त्रज्ञ (अताई) थे, ऐसा हकीम साहेब का मत अभी आपने कहा ही था, किन्तु अकबर के पूर्व अनेक नायक हुए थे, इस कारण हमने यह प्रश्न किया।

उ०—तुमने प्रश्न पूछा, यह ठीक ही किया।

प्र०—टागोर राजासाहेब ने नायकीकानड़े के स्वर कैसे कहे हैं तथा उनका वर्णन किस प्रकार किया है?

उ०—उन्होंने नायकी कानडे का स्वर विस्तार अपने सङ्गीतसार ग्रन्थ में इस प्रकार दिया है:—

म री सा
नि सा, रे रे, म म प, म प, नि प, म ग, म रे सा, नि सा, सा, रे, रे, म, ग

ध
म, रे, सा, रे नि सा, नि रे सा। अन्तरा। म प, नि नि प, नि प, सां नि सां, सां, सां रें

नि नि प ध प नि नि नि प प
सां रें सां सां सां, नि नि नि प, म प, सां सां, रें सां, नि रें सां, सां गं रें सां, प सां, नि नि

प प सा
नि प सां, रें सां, नि ध सां नि ध नि, प, रे म ग, म रे सा, रे नि सा, नि रे सा।

प्र०—इस वर्णन में "रि प" की सङ्गति हमको नहीं दिखाई देती।

उ०—इसमें वह नहीं है। इसमें सारङ्ग के अङ्ग भी कम हैं। इसमें दरबारी-कानडा लाने का अधिक प्रयत्न किया गया है। किन्तु यह अब भी तुम्हारा कानडा नहीं हुआ है, इस कारण इस स्वरविस्तार में कहां व किस प्रकार यह बताया गया है यह अभी बताना निरर्थक होगा। इसे जब आगे तुम सीखोगे तब मेरे कहने का मर्म तुम्हारे ध्यान में आजायगा।

प्र०—ठीक है, तो फिर आगे चलिये! यह राग अपने संस्कृत ग्रन्थकारों ने दिया है क्या?

उ०—उत्तर की ओर अपने आधार ग्रन्थों में कहीं नायकी का वर्णन नहीं दिखाई देता। भावभट्ट ने जो कानड़ा हिन्दी में कहा है, उसमें "मल्लारमिलाय के नायकी जानौ" ऐसा कहा है, किन्तु नायकी का कहीं पृथक लक्षण नहीं दिया। "नग़माते आसफी" में महम्मद रज़ा कहते हैं कि सोमेश्वर के मतानुसार "नायकी" नटनारायण की ६ रागनियों में से एक है। परन्तु उस रागिनी के लक्षण उन्होंने नहीं दिये।

लोचन,हृदय, अहोबल, श्रीनिवास, पुण्डरीक, शारङ्गदेव, दामोदर आदि किसी ने "नायकी" राग का वर्णन नहीं किया है। दक्षिण के ग्रन्थकारों में से रामामात्य, सोमनाथ, व्यंकटमखी ने भी नायकी के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। केवल "रागलक्षणम्" के ग्रन्थकार ने उसका उल्लेख किया है।

प्र०—उन्होंने कैसा किया है ?

उ०—उन्होंने भी उस राग की व्याख्या अर्थात् लक्षण आदि बिलकुल नहीं दिये किन्तु उन्होंने नटभैरवी मेल से उत्पन्न रागों का वर्णन करते हुए "मार्ग हिंदोल" राग के लक्षण कहे हैं तथा उसके नीचे "नायकी" (आंध्र अर्थात् कर्नाटकीय) ऐसा कह कर उस राग के आरोहावरोह इस प्रकार बताये हैं। सा रे म प ध नि ध प सां। सां नि ध प म ग री सा। इसके अतिरिक्त एक अक्षर भी नहीं कहा है।

प्र०—इससे इतना ही बोध होता है कि नायकी में वहां कोमल धैवत लेते होंगे। "ध नि ध प" यह टुकड़ा भी कुछ विचार करने योग्य है। आगे वह "नि ध नि प" ऐसा होगया होगा।

उ०—कदाचित् ऐसा हो हुआ होगा। उसे तर्क से हम जो चाहें समझलें। अब सङ्गीत कल्पद्रुमकार क्या कहता है वह भी सुनो:—

सूहा च नायकोड्डानः शङ्करः कानडस्तथा।
विहागनाट केदारा दीपकस्य सुता इमे॥

× × × ×

नायकी सुस्तनी नम्रा रंभा च रूपमंजरी।
नायकस्य स्त्रियः पंच ख्याता रागा विशारदैः॥

प्र०—तो फिर नायक तथा उसकी स्त्री नायकी, क्या ये दोनों प्रकार भिन्न हैं ?

उ०—ऐसा ही दीखता है। किन्तु जिन ग्रन्थकारों ने उनके स्वरस्वरूप नहीं बताये हैं उनके लिये ऐसा कहना आसान नहीं है क्या ? किन्तु इस पुत्र-भार्या के झमेले में हमें पड़ना ही नहीं है, वहां क्या कहा गया है इतना ही सुनना-सुनाना है, बाकी छोड़ देना है। कोई गायक कभी इस नाते से कुछ पुत्र-भार्या के मनगढ़न्त स्वर भी लगा देता है। उदाहरणार्थ, "नादविनोद", अथवा "इसरारे करामत" ग्रन्थों का नाम लिया जा सकता है; मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि ये ग्रन्थकार विद्वान नहीं हैं, किन्तु उनके समय में "गुणसागर, गम्भीर, हेमाल, खोखड, मिष्टाङ्ग, बर्बल" इत्यादि पुत्र राग प्रचार में होंगे, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। ये ग्रन्थकार मेरे सुपरिचित हैं; उनका वादन भी मैंने सुना है; उनसे शास्त्रार्थ भी मैंने किया है। उनको संस्कृत नाम मात्र को भी नहीं आती, तब ये पुत्र राग उनको किसी ने कैसे बताये होंगे ? उनके पास कल्पद्रुम

के अतिरिक्त एक भी ग्रन्थ मुझे नहीं दिखाई दिया। और कल्पद्रुमकार ने तो किसी के स्वर भी नहीं दिये हैं। किन्तु यह प्रकार आगे केवल इसी तरह चलने वाला नहीं है, यह मैं कह ही चुका हूँ। कल्पद्रुम में नायकी में मिलने वाले राग इस प्रकार दिये हैं:—

कानडा बागेसरिमिल कौशिकसुरसमभाग ।
नायकि तबही होतहै उपजतहै अनुराग ॥

प्र०—ठीक, यह तो हुआ। अब राजा प्रतापसिंह क्या कहते हैं, वह कहिये ?

उ०—हां, वे कहते हैं:—

"शिवजीनें × × गारा काफी कानडो गाईके वाको नायकी नाम कीनौ" आगे चित्र बताकर कहते हैं—"शास्त्रन में तो यह सात सुरमें गायो है। ध नि सा रे ग म प ध यातें संपूर्ण है। यातें रात को दुसरे प्रहर में गावनो। यह याको वखत है। सांझ उपरांत चाहो तब गावो!"

अब जंत्र देखिये:—

म म म
री ग॒, प म प, ग॒, म, री ग॒ म री सा, ग॒, म प, म प, ध॒ प म प,

म म
रि प ग॒ म री सा।

प्र०—इस जन्त्र में "ग॒ प" तथा "रि प" यह दोनों ही सङ्गति दिखाई देती हैं। इनमें "ध॒ प" ऐसा जो कहा है, उस स्थान पर कदाचित् प्रत्यक्ष बजाते अथवा गाते समय

नि॒
ध॒ नि॒ प, ऐसा भी होता होगा। किन्तु इस आधार पर उस समय कोमल धैवत अशुद्ध नहीं माना जा सकता, ऐसा हम कह सकते हैं।

उ०—ऐसा मानने की आवश्यकता ही नहीं। सम्भवतः आज भी नायकी में कोमल धैवत हमारे सुनने में आ सकता है। ऐसा प्रकार मैंने सुना भी है। किन्तु यह निश्चित है कि हम धैवत नहीं लेंगे, हमारे मत के दूसरे गुणी लोग भी हैं।

प्र०—वे कौन ?

उ०—रामपुर के नवाब छम्मन साहब हमारे ही मत के थे। वजीर खां ने भी मुझसे स्पष्ट कहा था कि नायकी में धैवत वर्ज्य करना शास्त्र विरुद्ध नहीं। उन्होंने धैवत लिया जाने वाला तथा न लिया जाने वाला, ऐसे दोनों प्रकार मुझे गाकर सुनाये। "छपरा" गांव के संग्रह में भी ऐसा ही लिखा हुआ मुझे दिखाई दिया।

प्र०—वहां क्या लिखा है ?

उ०—वहां इस प्रकार कहा गया है:—

नायकी कानड़ा···सा रे ग॒ म प नि॒ सां।

"इस राग में ग और नि कोमल हैं। ध वर्जित है, यदि कोई इसमें धैवत लगावे तो गलत है। और स्वर शुद्ध हैं। यह राग नायक गोपाल का बनाया है। मध्यम वादी है। षड्ज संवादी है। सुहा और कौशिक से मुरक्किब है। निहायत नाज़ुक राग है।"

प्र०—वाह वा! यह अपने मत का बड़ा अच्छा प्रमाण है। राजा टागोर कहते हैं कि नायक गोपाल ने इस राग की रचना की, यह भी वे ठीक ही कहते हैं।

उ०—उनके कथन को हम अयोग्य नहीं बता रहे हैं; किन्तु इस कथन को संस्कृत ग्रन्थों का कोई आधार प्राप्त नहीं, इतना ही हम कहते हैं। समाज में ऐसी चर्चा भी है।

प्र०—ठीक! छपरा वाले संग्रह में इन रागों के नाद स्वरूप किस प्रकार कहे हैं?

उ०—उसमें एक सवैया (कविता) झपताल में दी हुई है। उसके बोल सुन्दर हैं। अतः वह यहां कहता हूँ:—

दंपति राज रहे पर्यंक सुगंधनकी जहों हो रहि धूमें।
जोबनके मदमाते दोऊ नंदराम झुकेऊ झुके झुकि झूमें।
मोहनकी मन मोहनिमें मन मोहनको मन मोहनही में।
पीक भरीं पलकैं अलकैं लखि भालहि हो भलकें मुख चूमें॥

उसमें दिया हुआ नोटेशन विशेष सुन्दर नहीं है, इसलिये नहीं कहूँगा, किन्तु उस नोटेशन में उन्होंने कैसे स्वर रखे हैं यह कहता हूँ:—

सा रे ग़ म, रे सा, सा रे सा रे म म प प म प ऩि म प सां ऩि सां ऩि सां सां ऩि सां ऩि प, म प म ग़ म। अ.

सा ऩि ऩि प, ऩि सां सां ऩि सां रें सां ग़ं मं रें सां म प ऩि सां रें सां ऩि प म प ग़ म। अं.।

ऩि ऩि प प म म म ग़ प म म ग़ म रे सा सा सा ऩ़ि सा रे म रे म प ऩि म प। सं.
प म प ऩि प सां ऩि सां प प सां सां रें ग़ं मं रें सां म प रें सां रें नि सां ऩि म प ग़ म॥ आ.।

प्र०—इसमें 'रि प' संगति नहीं है, किन्तु सुहा तथा सुघराई से यह स्वरूप पृथक अवश्य दिखाई देता है।

उ०—इन स्वरों के आधार से यह गीत मैं तुमको भली प्रकार नोटेशन करके सिखाऊंगा। नोटेशन करना जितना सरल दीखता है उतना आसान वह नहीं है। इसके लिये गीत रचना तथा स्वर रचना की उत्तम जानकारी होनी चाहिये। किस स्थान पर कौन से स्वर कितनी दूरी पर हैं, यह भी विदित होना चाहिये। राग में कविता के समान ही थोड़े बहुत वाक्य होते हैं। अमुक वाक्य अमुक स्वर से प्रारम्भ हुआ तो उसका अन्त कैसा व किन स्वरों पर ठीक होगा, पुनः नवीन वाक्य कौन से स्वर से प्रारम्भ होना चाहिये तथा उसे कैसे आगे बढ़ाना चाहिये, अन्त में गीत को प्रारम्भ से सहज तथा सुन्दर रीति से कैसे जोड़ना चाहिये, स्वरों पर विभिन्न कण कैसे लगाने चाहिये; इनके कारण कहां

किस प्रकार ठहरना पड़ेगा; कविता के लघु-गुरु कैसे सम्हालना, उसमें कौनसी व कितनी स्वतन्त्रता रखनी चाहिये; आदि तमाम बातें स्वरलिपि करने वाले को भली प्रकार विदित होनी आवश्यक हैं। गायक किस जगह भूल कर रहा है तथा मूल प्रकार कैसा होगा, यह पहिचानने की भी योग्यता उसमें होनी चाहिये, अर्थात् मूल कौनसा है और बाद में लिया हुआ (क्षेपक) कौनसा है, यह भेद उसकी समझ में आना चाहिये। Laws of Musical Composition (संगीत रचना के सिद्धान्त) यह भी एक कला है। हजारों लोगों को सुनकर तथा अनेक गीतों की रचना के अनुभव से यह ज्ञान होता है। गायक के गीत प्रारम्भ करते ही वह गीत पुराना है अथवा नया, उसकी रचना अच्छी है अथवा बुरी, यह जानकार ही समझ सकते हैं। गीत प्रारम्भ होते ही वह आगे कैसे बढ़ेगा, उसमें विश्रान्ति स्थान कितने व कौनसी जगह आयेंगे ? तथा उसका अन्त कहां होगा ? इसका अनुमान जानकार कर लेते हैं। किन्तु मित्र ! यह विषय सर्वथा भिन्न है, अतः इसे छोड़कर अपने नायकी राग की ओर बढ़ें। इस विषय पर भी आगे कभी बोलना ही है।

नादविनोदकार ने नायकी का स्वरूप ऐसा कहा है:—

सा सा रे ग ग रे सा, रे रे सा सा ध प, ध प, म ग ग रे सा, सा रे ग'ग रे सा।

म प म प सां ऩि सां ऩि सां रें रें सां, रें रें सां, ध प, प म प, सां ऩि सां सा सा रे ग ग रे सा।

प्र०—पंडित जी ! यह विशेष सुन्दर प्रतीत नहीं होता।

उ०—यह दोष हम उनके नोटेशन को देंगे। हम स्वयं क्या व कैसा बजा रहे हैं,

म म

यह उनको लिखना नहीं आया। वह उत्तम वादक थे, यह मुझे मालूम है। "सा रे ग ग

नि म

म रे सा, रे रे, सा, ध ऩि प, म प ग म रे सा" ऐसा ही कुछ वे बजाते होंगे; किन्तु यह तीव्र धैवत लिया जाने वाला प्रकार हमारा नहीं, इतना ही हम कहेंगे। कुछ दिन पहिले मैं बड़ोदा गया था वहां एक प्रसिद्ध गायक के सुपुत्र राजमहल में गारहे थे।

नि

वे ऐसा ही तीव्र धैवत लेकर गाते हुये मुझे सुनाई दिये। वे "ऩि ध, ध ऩि ध म,

म

प ग म रे, सा' इस प्रकार षड्ज से मिलते थे। आगे दरबारी का अंग लाकर उसको जोड़ते थे। उपस्थित श्रोता समाज को उनके गाने में बागेश्री का भाग अधिक दिखाई दे रहा था, किन्तु सभा में उनसे नियम पूछना भी तो अनुचित था। तुम तो बस अपना नियम संभाल कर गाओ।

प्र०—ठीक है। हम अपनी नायकी कैसे गायें ? यह आप बता दीजिये।

उ०—कहता हूं सुनो:—

म म म प म म

सा, रे ऩि़ सा, रे प ग, ग म रे सा, रे ऩि़ सा, ऩि़ प़, म़ प़ सा, रे, ग ग म रे, सा।

म म प प म म

सा रे प ग, ऩि प, म प ग, म रे, सा, म म प, ऩि प, ऩि म प, ग, प ग, म रे, सा। सा रे ऩि़ सा,

म प म प म म
रे प, ग, म प नि प म प ग, सां, नि प म प नि म प ग, प ग, म रे, सा, रे नि़ सा।
प प मं प म
सां, नि नि प, रें सां, नि प, म प सां, रें पं गं मं रें सां, नि सां रें नि सां, नि प, म प ग म,
म म म प
प ग म रे, सा। सा, रे प, ग, म रे, सा, रे नि़ सा, रे प ग, म, म प, प, सां, नि प, म प सां,
प म प मं प
नि प, प ग, म, रे सा। म प, नि प, नि सां, सां, रें रें सां, रें पं गं, मं रें सां, रें सां, नि प,
प प म म मं
सां, नि प, म प, नि प म प ग म, प ग म रे सा। सा सां, सां, सां रें नि सां, रें पं गं, मं,
प प म म
रें, सां, रें नि सां, नि प, म प, सां, नि नि प, म प, ग, म, प ग, म, रे सा। नि़ सा, रे
म प प म
सा, रे म रे सा, प ग, म रे सा, म, म, प, प, नि प, सां नि प, म, रें सां, नि प, म प ग म,
प
नि प ग म, रे सा।

अब इस राग का चलन ध्यान में आ ही गया होगा। जिनको 'रि प' संगति मालूम नहीं, वे ऐसा भी गाते हैं:—

प म म
नि नि प, म, प म, प ग, म प, सां, नि प, ग म, प रे सा। म प सां, सां, रें नि
प प म
सां, रें मं रें सां, नि प, म प सां, नि नि प, म, सां नि नि प, म प ग म, प ग, म रे सा ॥

वे अपना राग उत्तरांग में अधिक लेते हैं। मध्य रात्रि में यह कृत्य बुरा नहीं दीखता। वे नायकी को रात्रि का सुहा भी कभी-कभी कहते हैं।

नायकी की यह एक दो छोटी सी सरगम भी याद करलो:—

सरगम—झपताल

(सा) नि़	सा	(म) रे	(म) रे	प	(म) ग	म	रे	रे	सा
×		२			०		३		
नि़	सा	(म) रे	म	रे	सा	ऽ	(प) नि़	(प) नि़	प़
(प़) म़	प़	सा	ऽ	सा	रे	सा	म	रे	सा
म	प	नि	(नि़) म		(म) ग	म	रे	रे	सा।

अन्तरा—

(प)म प	(सां)नि॒ सां ऽ	सां ऽ	रें रें सां
(सां)नि॒ सां	रें पं (मं)गं॒	मं रें	सां ऽ सां
सां रें	सां (प)नि॒ प	म प	सां रें सां
म प	(प)नि॒ (ध)नि॒ प	(म)ग॒ म	रे रे सा

सरगम— त्रिताल.

(सा)नि॒ सा रे प	(म)ग॒ म रे सा	(सा)नि॒ सा रे प	(म)प (म)ग॒ ऽ म
म म प सां	ऽ प नि॒ प	(प)नि॒ प म प	(म)ग॒ म रे सा।

अन्तरा.

(प)म प नि॒ प	सां ऽ सां ऽ	(सां)नि॒ सां रें सां	(सां)नि॒ सां नि॒ प
(प)म प सां ऽ	(प)नि॒ प म प	(म)ग॒ (म)ग॒ म प	(म)ग॒ म रे सा।

यह भी एक प्रकार देखो:—

(प)नि॒ (प)नि॒	प म प	(म)ग॒ (म)ग॒	म ऽ म
×	२	०	३
म प	सां ऽ सां	रें नि॒	सां नि॒ प
म प	(म)ग॒ (म)ग॒ म	रे सा	रे नि॒ सा।

अन्तरा—

म	प	सां	ऽ	सां	सां नि	सां	रें	रें	सां
सां नि	सां	रें	नि	सां	प नि	प	प नि	ध नि	प
रें	पं	मं गं	मं गं	मं	रें	सां	रें	नि	सां
म	प	म ग	म ग	म	रे	सा	रे	नि	सा।

मैं समझता हूं, इस राग के प्रचलित स्वरूप की तुम्हें पर्याप्त जानकारी हो गई होगी।

प्र०—अब हम यह राग भली प्रकार गा सकेंगे। इस राग को सुहा, सुघराई और देवसाग इनसे भली प्रकार बचाना होगा। इसमें धैवत वर्ज्य होने से सुहा या देवसाग इन रागों से गड़बड़ी हो सकती है। सुघराई में तीव्र धैवत थोड़ा सा हम लेंगे ही, इसी कृत्य से सुघराई अलग हो जाती है। देवसाग में 'रे प' और 'ग प' यह स्वरसंगतियाँ जैसे बारबार आगे आती हैं वैसे इसमें नहीं हैं। देवसाग में 'रे प' की अपेक्षा 'ग प' संगति अधिक दीखती है। और उसमें वादीस्वर पंचम है तथा मध्यम गौण है। नायकी में 'रे प' सङ्गति वैचित्र दायक है और मध्यम वादी है। वह मध्यम बीच-बीच में मुक्त भी रखना है। सुहा में 'रे प' और 'ग प' स्वर सङ्गति नहीं है, और उसका चलन "नि सा ग म, प नि म, प" इस प्रकार होगा। इन कारणों से इस राग को अलग रखना कठिन नहीं होगा, ऐसा हमें प्रतीत होता है। जो इस सङ्गति को नहीं रखेंगे वह मध्यम आगे रखकर तार सप्तक का विशेष भाग अपने राग में रक्खेंगे, ऐसा दीखता है। कोमल धैवत तो हम इन रागों में लेते ही नहीं, तब उस प्रकार का विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है।

उ०—प्रचलित नायकी के लक्षण इस प्रकार हैं:—

काफीमेलसमुत्पन्नः कर्णाटो नायकीगतः।
आरोहे चावरोहेऽपि धैवतो वर्जितस्वरः॥
मध्यमो निश्चितो वादी संवादी षड्ज ईरितः।
गानं तस्य समोचीनं रात्र्यां तृतीययामके॥
पूर्वांगे स्यात्सुहायोगः सारंगस्योत्तरांगके।
रिपयोः संगतिश्चित्रा रागभेदं प्रदर्शयेत्॥

देशाख्यो नायकी सूहा तथा सुघ्राइसंज्ञिका ।
सारंगांगा मता लक्ष्ये धगाल्पा गीतवेदिभिः ॥
धकोमलं सुसंपूर्णं वक्ररूपं तथैव च ।
वर्णयन्ति पुनः केचिदेनं लक्ष्येऽत्र नैव तत् ॥
मल्लारकानडायोगाद्रूपमेतद्विनिर्मितम् ।
इत्यनूपविलासाख्ये ग्रंथे भावेन कीर्तितम् ॥
कानडाकौशिकश्चापि बागीश्वरी तथैव च ।
मिलंत्यत्रेति केचिद्वै संगिरंति मनीषिणः ॥

लक्ष्यसंगीते ।

कर्णाटसंस्थानभवोहि नायकी ।
संवादिषड्जः खलु मध्यमांशः ।
प्रोक्तः सदा धैवतवर्जितो वै ।
द्वितीययामे निशि गीयतेऽसौ ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

मृदवःस्युर्गमनयः समौ संवादिवादिनौ ।
धैवतो वर्ज्यते यत्र कर्णाटो नायकी मतः ॥

चन्द्रिकायाम् ॥

गमनी सुर कोमल जहां धैवत सुर बरजोइ ।
समसंवादीवादितें कहो नायकी सोइ ॥

चन्द्रिकासार ॥

निपौ मपौ सनी पमौ पगौ मपौ गमौ रिसौ ।
धहीना नायकी मांशा मध्यरात्रगता जने ॥
सुहा सुघ्राइका चाथ नायकीकानडाव्हया ।
मृदुधैवतसंयुक्ताः क्वचिल्लक्ष्ये समीक्षिताः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ॥

प्र०—यह राग तो हो ही गया । कानडा प्रकारों में से अब हमें साहना लेना है ?

उ०—मैं समझता हूं, यही लेना ठीक होगा । कौंसी कानड़ा जैसा प्रकार कोई-कोई गायक काफी थाट के स्वरांग से गाते हैं, परन्तु हम कौंसीकानड़ा को आसावरी थाट में मानते हैं, इस लिये वह राग बताते समय काफी थाट के इस कौंसी प्रकार का उल्लेख वहीं करना ठीक रहेगा ।

प्र०—ठीक है, जो आपको सुविधाजनक हो वही करें, परन्तु क्यों जी ! 'साहना' यह नाम कानों को कैसा अजीब सा लगता है, यह राग प्राचीन होगा, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता ?

उ०—नहीं, यह 'पर्शियन' है, ऐसा प्रतीत होता है। इसको खींच-तान कर 'शोभना' यानी मंगल समय में गाने वाला राग, ऐसा प्रयास करते हुये मैंने देखा है। परन्तु हमें ऐसी खींच-तान करने की आवश्यकता नहीं। शायद हमारे शोभना को ही मुसलमान गायकों ने 'साहना' करने की चेष्टा की हो, लेकिन मेरी राय में ऐसा करना अनुचित ही होगा।

प्र०—यानी 'सोहनी' और 'शोभनी' का जैसे सम्बन्ध दिखाते हैं, उसी में का यह प्रकार दीखता है ?

उ०—हां, पर हमें ऐसा करना ठीक नहीं लगता। 'साहना' राग में कभी-कभी मंगल-गीत होते हैं इसलिये यह कल्पना की होगी, परन्तु हमारे सङ्गीत में तीन चौथाई भाग मुसलमान कलाकारों का कौशल दिखाने वाला है, तो उस मुसलमानी नाम को संस्कृत नाम देकर उसको 'पवित्र' कहने की क्या आवश्यकता है ? हुसेनी, इराक, जंगूला। हिजाज, इमन, सुगा, दुगा, सरपरदा ऐसे नामों को शुद्ध करने का कार्य अति कठिन होगा। यह नाम जिनको नहीं भाये वे व्यंकटमखी के समान बैठे-बैठे श्राप देते रहे हैं।

प्र०—व्यंकटमखी ने क्या किया है ?

उ०—वह कहते हैं:—

देशीयरागाः कल्याणीप्रमुखाः संति कोटिशः ।
गीतठायप्रबंधेषु नैते योग्याः कदाच न ॥
कल्याणीरागः संपूर्ण आरोहे मनिवर्जितः ।
गीतप्रबंधायोग्योऽपि तुरुष्काणामतिप्रियः ॥
रागः पंतुवराल्याख्यः संपूर्णः पामरप्रियः ।
गीतठायप्रबंधानां दूराद्दूरतरः स्मृतः ॥
एवं प्रकारेणोन्नेया रागा देशसमुद्भवाः ।
आनंत्यात्संकराच्चैव नास्माभिर्लक्षिताः पृथक् ॥

प्र०—कल्याण जैसा राग पंडित जी को व्यर्थ लगा ! यह कोई विलक्षण व्यक्ति दीखते हैं ?

उ०—जाने दो, उनके कहने की कौन इतनी चिन्ता करता है, उस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। उनके प्रांत में भी यह देसी राग प्रचलित है और वहां लोकप्रिय भी है, इसे सब जानते ही हैं।

प्र०—सो तो होगा ही, जो राग मधुर होगा, वह लोकप्रिय भी होगा। अच्छा, साहना के विषय में आगे कहिये ?

उ०—वह पर्शियन नाम राग है, यह मैंने पहिले कहा ही है। वह रत्नाकर दर्पण आदि में नहीं बताया है, परन्तु अब प्रश्न लोचन, हृदय, अहोबल रामामात्य, सोमनाथ व्यंकटमखी पंडितों के ग्रन्थों का रहा! इनमें से अधिकांश ग्रन्थकारों ने इसको छोड़ दिया है। लोचन को यह राग मालूम जरूर था, कारण उसके अवयवीभूत राग उसने ऐसे कहे हैं;—

× × फिरोदस्ताड्डनेन च।
कानडायोगतः प्रोक्ता सहाना कापि रागिणी॥
फिरोदस्तस्तु पूरवीगौरीश्यामाभिरेवं च॥

लेकिन उस राग का थाट या लक्षण तरंगिणी में नहीं दिये हैं। फिरोदस्त राग आज नष्ट प्राय: हो गया है।

प्र०—लेकिन तरंगिणी में एक अवयव 'कानड़ा' कहा है, वह विचार करने योग्य है, ठीक है न?

उ०—हां, वह जरूर है, परन्तु लोचन का कानड़ा कर्णाट थाट, यानी खमाज थाट का था, यह भी ध्यान रखना होगा। आगे हृदय पंडित ने 'साहना' अपने ग्रन्थ में दिया ही नहीं। सङ्गीत पारिजात में भी नहीं है। पुण्डरीक विट्ठल और भावभट्ट भी इस राग के विषय में कुछ नहीं लिखते, परन्तु अनूपविलास में भावभट्ट ने जो 'सवई' नाम की कविता हिन्दी में दी है उसमें उन्होंने ऐसा कहा है:—

होत सहानो मिले फिरोदस्तके पूरिया जेतसिरी सुर सानौ।

इसी आधार से यह राग उन्होंने लिया है, ऐसा दीखता है।

प्र०—शायद उस समय यह राग प्रचार में आ रहा होगा, और कलाकार नहीं बताना चाहते होंगे, इसलिये उस राग का लक्षण नहीं बता पाये होंगे, ऐसा भी कोई कह सकता है।

उ०:—इस बारे में निश्चित रूप से कौन कह सकता है? ग्रंथों में इसके लक्षण नहीं हैं। दक्षिण के ग्रन्थों में भी स्वरमेल कलानिधि, रागविबोध, सारामृत, इन ग्रन्थों में साहना नहीं बताया है। यह राग नाम व्यंकटमखी के कानों में अवश्य पड़ा होगा, क्योंकि वह कहते हैं:—

देशीयरागाः।
सूरटी दरबारश्च नायकी यमुना च सा।
पूर्व्याकल्याणयठाणश्च वृन्दावनी जुजावती॥
देवगांधारः परजू रामकल्यथ शाहना॥

प्र०—क्यों जी! यह तो अपने उत्तर के अति लोकप्रिय राग दक्षिण तक पहुँचे हुये दीखते हैं?

उ०—यह तो है ही। किसी किसी के तो वहां के ग्रन्थों में लक्षण भी पाये जाते हैं, केवल "साहाना" के लक्षण वहां नहीं मिलते। लेकिन दक्षिण के 'राग लक्षण' कार ने साहाना के लक्षण कहे हैं।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—वह ऐसे हैं:—

हरिकांभोजिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः।
शाहना राग इत्युक्तः संन्यासं सांशकग्रहम् ॥
पवर्ज्यं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे समग्रकम् ॥

सा रे ग म ध म ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।
(आंध्र) **सा रे ग म प म ध नि सां। सां नि ध प म ग म रे ग रे सा ॥**

प्र०—यह स्वरूप हमारे काम के दिखाई नहीं देते, इसमें गंधार आगे कोमल हुआ ऐसा समझने पर क्या जाने वह किस हद तक काम में आयेगा ?

उ०—छोड़ो वह आगे देखा जायगा। भावभट्ट के बाद के ग्रन्थ अर्थात्'राधागोविंद-सङ्गीतसार' को देखें।

उ०—हां, उसमें शिवजी क्या कहते हैं ?

उ०—वहां ऐसा कहा है:—

"शिवजी नें अपने मुखसों फिरोदस्त संकीर्ण कानडो गाइके वाको "साहना" नाम कीनो।"

प्र०—शिवजी को 'फरोदस्त' नाम सूझा यह आश्चर्य की बात है, परन्तु आश्चर्य भी क्यों ? शिवजी तो त्रिकालदर्शी ठहरे ! उस पर भी 'फिरोदस्त' यह नाम संस्कृत शब्द का अपभ्रन्श नहीं, ऐसा कोई भी कह सकेगा ! यह राग पार्शियन दीखता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अच्छा, अब साहना के लक्षण बताइये ?

उ०—वही कह रहा था। आगे चित्र देकर प्रतापसिंह कहते हैं:—"शास्त्र में तो यह सात स्वरन सों गायो है। सा रि ग म प ध नि। नि ध प म ग रि सा। यातें सम्पूर्ण है। याको दुसरे प्रहर में गावनों। यह तो याको वखत है। और रात्री में चाहे तब गावो।" आलापचारी यंत्र उन्होंने ऐसा दिया है:—

सहाना (संपूर्ण)

नि उतरी	प	प	प	म	म
स असली (शुद्ध)	म उतरी	नि उतरी	ग उतरी	नि	री चढी
प –	प	प	म	प	सा
म उतरी	ध उतरी	म	प	ग	

प्र०—इसमें ध कोमल है, यदि वह तीव्र होता तो ठीक था ?

उ०—परन्तु 'सुहा, सुघराई, देवसाग, नायकी' इन सारे रागों में कोमल धैवत मानने वाले हैं, यह मैंने पहिले ही कहा था। इस प्रहर के अनेक रागों में धैवत कोमल ही है। रात्रि के दरबारीकानडा, अडाना, कौंसी इनमें भी धैवत कोमल ही है। राग भेद करने के लिये कोई धैवत तीव्र रखता है, कोई वर्ज मानता है। सुहा, सुघराई आदि गाने के पहले आसावरी सरीखे राग गाते हैं, उनमें धैवत कोमल ही है।

नि   नि
जहाँ इस साहना में 'ध॒ प' ऐसा है, वहां पंडित स्वतः ध॒ नि॒ प ऐसा भी गाते-बजाते होंगे। धैवत के परदे पर उनकी अंगुली देखकर "धैवत" उतरी, ऐसा लेखक ने लिखा होगा। 'नि॒ ध॒ प' ऐसा किया हुआ दीखता नहीं, इसलिये यह तर्क कर सकते हैं। कानडा

नि॒   म
में 'ध॒ नि॒ प' या 'ध॒ नि॒ प' उत्तरांग में तथा 'ग॒ म रे' पूर्वाङ्ग में हो, यह नियम तो तुम्हारे ध्यान में होगा ही !

प्र०—हां वह ठीक है। तो फिर कुल मिलाकर (यह रूप उस धैवत के अतिरिक्त) काम में आने योग्य है, ऐसा कह सकते हैं।

उ०—मैं ऐसा ही समझता हूं। अस्तु, इस विषय में सङ्गीतकल्पद्रुमकार क्या कहते हैं, वह भी सुनोः—

मलार अडानो मिलकै कानडा देहु मिलाय।
राग साहना सुहावना शुभ मंगल में गाय॥

प्र०—इस दोहे में 'सुहावना' तथा 'शुभ मंगल' इन शब्दों से तो यह राग मंगल कार्य में उपयोगी है, इस कल्पना का समर्थन होता है। 'सुहावना' और 'शोभना' यह पास पास आये हैं !

उ०—वह कुछ भी सही, उसकी हमें चिन्ता नहीं। कल्पद्रुम में साहना का लक्षण नहीं है।

प्र०—यह तो हमें मालूम ही था। दर्पण में नहीं है तो इसमें भी नहीं होगा, ऐसा हमारा तर्क था। लेकिन देशी भाषा में ग्रन्थों के प्रकार कहने से पूर्व लक्षण बतादें तो ठीक नहीं होगा क्या ? ऐसा करने से देशी ग्रन्थों के राग स्वरूपों के सार हमें शीघ्र मालूम हो जायगे।

उ०—तुम्हारा यह कथन भी ठीक है। लक्षण कहता हूं सुनोः—

'सहाना' 'साहाना' या 'शाहना' यह नाम तुम्हारे सुनने में भी आयेंगे। यह राग आज काफी थाट का माना जाता है। काफी में 'म प ध नि॒ सां' और 'सां नि॒ ध प म ग॒, रे सा' ऐसा सरल प्रकार हो सकता है। 'साहना' एक कानडा प्रकार माना जाता है। इसलिये उसमें धैवत और गंधार अवरोह में सरल न आकर वक्र होते हैं। अर्थात् 'ध नि॒ प', 'ग॒ म रे' ऐसा अवरोह करना पड़ता है। यदि यह नियम तोड़े तो काफी के रूप में तिरोभाव उत्पन्न होगा। गायक के जलद तानों में ऐसा भाग दिखाई दे तो वहां तिरोभाव समझना

चाहिये। लेकिन 'नि प' या 'नि ध नि प' ऐसा किये बिना गायक को पुनः साहना में आना कठिन होगा। इस राग की बढ़त अधिकतर मध्य और तार सप्तक में होती है तथा मध्य रात्रि बीतने पर वैसा होना स्वाभाविक भी है। 'सा' का स्थान आगे चलकर पंचम की ओर आता है तथा तार स्थान चमकता है।

प्र०—मध्य रात्रि के उपरांत तार षडज की ओर सारे रागों का आकर्षण रहता है ऐसा आपका कथन हमें स्मरण है, उसी भांति प्रत्येक राग में पंचम विश्रान्ति का स्थान होता है, ऐसा भी आपने कहा था।

उ०—अब आगे सुनो। साहना सम्पूर्ण रागों में आता है, उसके आरोह-अवरोह स्वरूप इस प्रकार हैं:—

नि सा, (म)ग म, प नि प, नि सां। सां, नि ध नि प, म प (म)ग म, रे सा। इस राग में पंचम वादी और सुहा में 'मध्यम' वादी होता है तथा धैवत वर्ज्य होता है। 'देवसाग' में '(म)ग प' और 'रे प' यह संगति है, उस राग का स्वरूप 'सा रे ग म प' इन पांच स्वरों में होता है। उन पर 'नि प' यह सङ्गति सारंग की आई है, सुघराई में '(नि)ध, (नि)ध, नि प' होता है, लेकिन उसमें 'रे म' और 'रे प' यह सङ्गति थी, ये सब कृत्य प्रातःकाल के सारंग में ले जाने वाले थे। 'साहाना' उत्तरांग में खुलने वाला एक राग है। स्वर पूर्ति के लिये नीचे भी आना आवश्यक है, लेकिन पंचम पर गायक के आते ही श्रोताओं को तत्काल तृप्ति हो जाती है, यह जानकारों के ध्यान में उसी समय आ जाता है। 'साहना' में 'ध म' यह सङ्गति बीच बीच में दिखाई देती है। 'अडाना' भी उसी समय का राग है, लेकिन उसमें धैवत कोमल है तथा तार षड्ज वादी है। नायकी में 'रे प' संगति है और मध्यम मुक्त तथा वादी है, यह मैंने कहा ही था। 'साहना' में 'दरबारीकानडा' एवं 'मेघ' का योग है, ऐसा कुछ गायकों का मत है। इस राग में तीव्र धैवत बिल्कुल दुर्बल है, '(नि)ध, प' या 'नि ध नि प' इस तरह लगता है। 'प ध नि सां' या सां नि ध प' ऐसा सरल प्रकार इसमें शोभा नहीं देता। इस राग की पकड़ 'नि ध नि प, म प, सां' ऐसी समझने में कोई हर्ज नहीं है।

अब एक दो छोटी सी सरगमें कहता हूँ, ताकि यह राग तुम्हारी समझ में अच्छी तरह से आ जाय।

सरगम—झपताल.

(ध)नि	ध	नि	प	प	ध	म	प	ऽ	प
×		२			०		३		
सां	ऽ	(प)नि	प	ऽ	म	प	(म)ग	ऽ	म

प	प	(म)ग॒	(म)ग॒	म	रे	रे	सा	ऽ	ऽ
सा	म	म	प	(म)प	प	प	(म)ग॒	ऽ	म ।

अन्तरा.

(प)म	प	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	(सां)नि	सां	सां
×		२			०		३		
(सां)नि	सां	(मं)रें	मं	रें	सां	ऽ	(प)नि॒	(ध)नि॒	प
(नि॒)ध	(नि॒)ध	नि॒	प	प	ध⁀	⁀म	प	ऽ	प
सां	ऽ	(प)नि॒	(ध)नि॒	प	म	प	(म)ग॒	ऽ	म
(प)नि॒	प	(म)ग॒	म	प	(म)ग॒	म	रे	रे	सा
(ग)नि़॒	सा	म	ऽ	म	(म)नि॒	प	(म)ग॒	(म)ग॒	म ।

सरगम—त्रिताल.

सा	सा	(नि॒)ध	(नि॒)ध	(ध)नि॒	प	म	प	सां	ऽ	(ध)नि॒	प	म	प	ग॒	म
(प)नि॒	प	ग॒	म	रे	रे	सा	ऽ	सा	सा	म	म	(प)म	प	(म)ग॒	म
(ध)नि॒	ध	नि॒	प	ध⁀	⁀म	प	प	सां	ऽ	(प)नि॒	प				

अन्तरा.

प		सां	सां प
म प नि सां	ऽ सां नि सां	नि सां रें सां	नि सां नि प
ध		प	म
नि ध नि प	ध म प प	सां ऽ नि प	म प ग म
प म			
नि प ग म	रे रे सा ऽ	स्थाई के अनुसार	

अब थोड़ा सा विस्तार करें:—

सा म प म
सा, ऩि सा, रे सा, प ग, म, रे सा, ऩि प़, सा, ऩि सा, रे, ग, म रे, सा, ऩि
म सा सा म म म म
सा म, प ग म, । ऩि ऩि सा, ग म रे सा, ऩि प ग म रे सा, ऩि सा रे सा, ग ग म रे
म म म सा म म
सा प, ग म, नि प ग म, प सां, नि प ग म, रे, सा । ऩि सा, रे म रे सा, म प ग ग, प
म म नि म नि नि
ग, नि ध नि प, म प ग रें सां, नि ध नि प, म प ग, म, ध प, ग, म रे, सा । सा सा ध ध
म म सा
नि प म प, सां, नि ध नि प, प ग, म, नि प, ग म रे सा, ऩि सा, म, म, प ग म । ऩि सा,
नि म
रे म रे सा, प ग म रे सा, ध म प ग म रे सा, सां, नि ध नि प, प, म प, ग, म, नि प,
म म प प ध
ग, म प ग, म रे, सा । म प, नि सां, सां, रें सां, रें मं रें सां, सां रें नि सां, सां, नि नि प,
म म
म प, सां, नि प, म प, ग म, प ग, म रे रे सा ॥

प्र०—अब हमारे ध्यान में इस राग का चलन भली प्रकार आगया। पंचम आगे रखना चाहिये, अनेक स्वरों के समुदाय, अन्य रागों से इसमें साधारण होंगे, लेकिन

म
'प ग म' 'ध म प' 'नि ध नि प' 'प सां नि नि प' 'सा सा म म' यह टुकड़े जगह-जगह, ठीक-ठिकाने अपने चलन में आने चाहिये, यही सब इस राग का तत्व है।

उ०—यह तुम्हारे ध्यान में भली प्रकार आ गया। 'साहना' का रागविस्तार राजा टागोर के 'सङ्गीतसार' में इस प्रकार दिखाया है। प्रथमतः वे इस राग को सम्पूर्ण और आधुनिक कहते हैं, इसे उत्सव प्रसंगों पर गाते हैं। सेनियों के ग्रन्थों में, अर्थात उर्दू और पर्शियन ग्रन्थों में यह राग सम्पूर्ण ही बताया है, विस्तार इस प्रकार करते हैं:—

नि नि
सा, सा, रे प म ग, ग म, रे सा, सा रे सा, रे रे ग म रे सा। म म, म प,

रे
प ध नि प, म नि प, म ग, म, रे, सा नि सा रे सा, रे ग, म रे सा। स्थाई।

प नि नि
म प, नि प, नि सां, सां, नि सां, सां रें नि सां, ध ध नि प, प, नि ध नि म प, प,

म
म ग, म रे, सा, रे ग, म रे सा।

प्र०—यह विस्तार हमारे ध्यान में आ गया, अब इसका प्रचलित रूप ध्यान में रखने के लिये आधार श्लोक बताइये ?

उ०—अच्छा सुनोः—

हरप्रियाव्हये मेले सहानाजनुरीरिता।
रूपमाधुनिकं चैतत्संपूर्णं गुणिसंमतम् ॥
पंचमः संमतो वादी षड्जः स्यान्मंत्रितुल्यकः।
गानमभिमतं चास्या रात्र्यां तृतीययामके ॥
प्रयोगात्तीव्रधस्यात्र ह्यडाणाभित्परिस्फुटा।
धगसंयोगतोऽप्यत्र नैव सारंगसंभवः ॥
गपसंगत्यभावे स्याद्देवसागनिवारणम्।
प्रतिरूपं दिवा चास्याः सुघरायी मता जने ॥
कानडायाः प्रभेदोऽयमंगीकृतो यतोबुधैः।
प्रयोगो धगयोरत्र भवेद्रक्तिप्रवर्धकः ॥
निधनिपधमपैः स्याद्रागरूपप्रदर्शनम्।
धैवतस्य परित्यागात्सुहा स्यात्सुपरिस्फुटा ॥
कानडाऽथ फिरोदस्तो मिलतोऽत्र यथायथम्।
इत्यनूपविलासाख्ये ग्रंथे भावेन कीर्तितम् ॥
मल्लारकानडायोगादडाणायोगतोऽपि च।
रागिणीयं समुद्भूतेत्याहुः केचिद्विशारदाः ॥

लक्ष्यसंगीते।

सहाना रागोऽयं मृदुगमनिकस्तीव्रधरिको।
न धःस्यादारोहे विलसति विलोमे तु स मनाक् ॥
समाम्नातः पांशो भवति सहकारी तु स इह।
स्फुरत्तानैर्गीतो जनयति निशीथे सुदममौ ॥

कल्पद्रुमांकुरे।

निगमा मृदवस्तीव्रौ रिधौ पांशः सहायसः ।
आरोहे धविहीनश्च सहानार्धनिशि प्रियः ॥

चन्द्रिकायाम् ।

तीखे रिध कोमल गमनि चढ़त नहीं ध लगाइ ।
पस वादीसंवादितें होत सहाना भाइ ॥

चन्द्रिकासार

कर्णाटस्यैव प्रभेदः साहाना पंचमांशकः ।
षड्जसंवादिसंयुक्त आरोहे वर्ज्यधैवतः ॥
अवरोहेऽपि च मनागेव धैवत इष्यते ।
तथा षाडवसंपूर्णो निशीथाद्गीयते परम् ॥
स्वरा निषादगांधारमध्यमाश्चैव कोमलाः ।
तीव्रर्षभो धैवतौ च भवतस्तीव्रकोमलौ ॥

संगीतसुधाकरे ।

निधौ पमौ षसौ निश्च पमौ पगौ मपौ गमौ ।
रिसौ रात्र्यां सहाना स्यात्पंचमांशपरिष्कृता ॥

अभिनवरागमंजर्याम्

प्र०—यह राग तो हमने समझ लिया, अब आगे कौनसा राग लेंगे ?

उ०—अब हमें सारंग अंग के राग लेने होंगे, कारण पहले बताये हुये क्रम में यह चौथा अङ्ग है। इस अङ्ग के कुल आठ राग हैं। 'पटमंजरी' को वस्तुतः सारङ्ग का प्रकार नहीं मानते। लेकिन उसमें थोड़ा सा सारङ्ग प्रकार रहता है, इसलिये हम इस सारङ्ग प्रकार के बाद उस पर ही विचार करेंगे। किन्तु 'पटमंजरी' प्रकार काफी थाट का है, इसलिये उसपर हमें यहां विचार करना है। 'पटमंजरी' दो प्रकार से गाई जाती है, एक बिलावल अथवा खमाज थाट से और एक काफी थाट से।

प्र०—कोई हर्ज नहीं, जैसा आप उचित समझें वैसा करें। हमको कई सारङ्ग आपने बताये थे, उनमें पहले कौनसा सारङ्ग लेंगे ?

उ०—पहिले हम 'मधमाद' सारंग देखें। उसके पश्चात् बिन्द्रावनीसारंग पर विचार करेंगे।

प्र०—क्या ऐसा करने पर अधिक सुविधा रहेगी ?

उ०—हां ! यह 'मधमाद' सारंग अन्य सब प्रकारों से अङ्गभूत होना संभव है, एक कारण तो यह हुआ। और फिर इस राग का वर्णन हमारे अधिकांश संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थों में मिलता है। तीसरा कारण यह है कि यह एक सरल और लोकप्रिय राग होने से सब छोटे बड़े गायकों को आता है। परन्तु आगे बढ़ने से पूर्व एक विशेष बात पर ध्यान देने को मैं तुमसे कहूँगा।

प्र०—वह कौनसी ? इस राग के विषय में कोई मतभेद है क्या ?

उ०—इस 'मधमाद्' राग के विषय में बिलकुल मतभेद नहीं है। लेकिन बिन्द्रावनी सारंग, जो राग आगे मैं वर्णन करूंगा उसके विषय में मतभेद पाया जाता है।

प्र०—परन्तु उस मतभेद की इस समय चर्चा किस लिये ? बिन्द्रावनीसारंग आने पर उसका विचार करेंगे ?

उ०—ठहरो ! वह बात और तरह से समझाता हूँ तभी मेरे कहने का मर्म तुम्हारी समझ में आयेगा। तुम 'मधमाद्' मानकर जो राग गाओगे उसे श्रोता बिन्द्रावनी-सारंग कहेंगे।

प्र०—ठहरिये ! यह बात कुछ ठीक से समझ में नहीं आई, हमारे 'मधमाद्' को वे लोग बिन्द्रावनी कहेंगे तो फिर वह अपना बिन्द्रावनीसारंग किस प्रकार गायेंगे ? आखिर दोनों रागों में वह कुछ भेद तो रक्खेंगे ही ?

उ०—यह भेद कहते समय बहुत से गायक भ्रम में पड़ जांयगे। इन दो रागों में क्या भेद रक्खा जाय, इसका बहुत से गायकों को ज्ञान ही नहीं। वे वृन्दावनी गायेंगे और उसके पश्चात मधमाद् सारंग गाने के लिये कहने पर शायद कहेंगे कि यह राग हमें आता नहीं है। यदि कोई कुशल गायक हुए, तो वे कहेंगे कि इन दो रागों में भेद केवल उच्चारण का है।

प्र०—हां, सभवतः वे यही उत्तर देंगे, तो फिर स्पष्ट है कि यह दोनों राग बहुत निकटवर्ती हैं। ऐसा ही है तो हमें यह दोनों राग एक साथ बतायें तो ठीक होगा। इस प्रकार करने पर 'मधमाद्' और उस प्रकार करने पर वृन्दावनी इस तरह से हमें समझाने की कृपा करें तो ठीक रहेगा।

उ०—हां ! मैं वैसा ही करने वाला हूँ। प्रथम मधमाद् तुम्हें समझाकर फिर उसमें क्या करने से वृन्दावनी होगा, यह कहूँगा। इस रीति से भली प्रकार तुम्हारी समझ में आयेगा।

'मधमाद्'-यह एक सारंग प्रकार है इसे ध्यान में रखना। कुछ लोग कहेंगे कि मधमाद और वृन्दावनी यह दो भिन्न प्रकार ही नहीं हैं। उनका कहना है। कि सच्चा सारंग तो मधमाद् ही समझना चाहिये। वृन्दावन (मथुरा के पास जो वृन्दावन है) में वह लोकप्रिय हुआ, ईस कारण 'उसका नाम' वृन्दावनी सारंग हुआ।

प्र०—उनके इस कथन में कुछ अर्थ दिखाई देता है क्या ?

उ०—इस राग की जानकारी जब मैं तुम्हारे सामने रक्खूंगा तब इस प्रश्न का उत्तर तुम स्वतः ही दे सकोगे और ऐसा करना ठीक भी रहेगा। अपने काफी थाट के स्वर तो तुम्हें मालुम ही हैं, वह ऐसे हैं देखोः—

सा रे ग॒ म प ध नि॒ सां।

अब इन स्वरों में से गंधार और धैवत निकाल दें तो 'सा रे म प नि सां' यह स्वर रहेंगे। अपने मधमाद् राग का स्वरूप सा रे म प नि सां। सां नि प म रे सा। है, यह अच्छी तरह ध्यान में रक्खो। इसी स्वरूप को सारंग राग की संज्ञा दी गई है,तब मधमाद्-सारंग की जाति औडव-औडव होगी, यह निश्चित ही है। इसका वादी स्वर रिषभ और संवादी पंचम है। इस राग का समय दोपहर माध्याह्न काल मानते हैं। इसके समय के विषय में समस्त देश में एक मत है, ऐसा मानने में कोई हर्ज नहीं।

प्र०—किन्तु यहां एक प्रश्न यह विचारणीय है कि गंधार वर्ज्य होने पर इस राग को काफी तथा खमाज थाट में नहीं रख सकेंगे क्या?

उ०—तुमने यह पूछ लिया सो ठीक ही हुआ। पहिली बात तो यह है कि यह राग काफी थाट में हमारे ग्रन्थकार रखते आये हैं और दूसरी बात यह कि इस राग का एक प्रकार ऐसा भी है जिसमें थोड़ा सा कोमल गंधार लगता है फिर हम जब ऋषभ पर रुक-कर षड्ज पर मिलते हैं तब कोमल गंधार का ही किंचित स्पर्श होता है और वह मधुर भी लगता है। जब गंधार स्वर वर्ज्य ही है तो वह राग काफी थाट का है या नहीं? इस विचार में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं है। उत्तरांग में 'नि प' यह संगति अति वैचित्र्य दायक है इसलिये पूर्वाङ्ग में गंधार कोमल ही होना चाहिये। सारंग प्रकार रात्रि के कानडा का जवाब है, ऐसी धारणा सर्वत्र है और कानडा में गंधार कोमल होता है, यह प्रसिद्ध ही है। कुछ दिन पूर्व मेरे एक मित्र ने एक पार्शियन ग्रन्थ में 'वृन्दावनी कानडा' ऐसा नाम एक कानडा का देखा था। 'मियांकीसारंग' यह एक सारंग प्रकार आज भी हमारे प्रचार में है, उसे समझाते समय तुम्हें और भी एक कारण बताऊंगा।

प्र०:—नहीं, इतनी गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है गंधार वर्ज्य है और कोमल निषाद खमाज में भी होता है, इसीलिये यह प्रश्न पूछा था। इस राग को अपने ग्रन्थकार काफी थाट में ही रखते आये हैं यह कारण हमारे लिये यथेष्ट है। हां, तो अब आगे बढ़ना चाहिये।

उ०—हां, सारंग राग का एक सूक्ष्म स्वरूप ऐसा होगा 'नि सा, रे म रे, प रे, सा' इतने स्वर बोलते ही तुम सारंग गा रहे हो, ऐसा श्रोता कहेंगे। इन स्वरों को इस राग की एक छोटी सी पकड़ मानलें तो कोई हर्ज नहीं है। पहले कानडा अङ्ग के राग मैंने बताये थे, उनमें भी इस प्रकार छोटी छोटी पकड़ बताई थीं वह ध्यान में है न? उसी प्रकार यह भी सारंग की एक पकड़ ध्यान में रक्खो। अधिकतर सारंग प्रकारों में वह तुम्हें दिखाई देगी। ऋषभ पर तुम जितने रुकोगे उतना ही तुम्हारा सारंग राग अधिक स्पष्ट होगा। वैसा न करके 'सा रे म, म प प सां, नि प म, सा रे म"। यदि ऐसा करोगे तो सारंग नहीं दीखेगा, लेकिन वादी भेद से वह और कोई राग हो जायगा। सारंग राग प्रारम्भ होने के पूर्व तुमने जो दिन के कानड़े गाये उनमें कुछ रागों में धैवत स्वर दुर्बल और कुछ में वर्जित होता आया था, यह तुमने देखा ही था। बिलावल प्रकार में गंधार और धैवत तीव्र होते हैं, आगे वह कोमल हुये उसके आगे धैवत निकल ही गया और गंधार कोमल रहा। अब सारंग में वह कोमल गंधार भी गायब हुआ, यह हमारे सङ्गीत

विशेषता ध्यान देने योग्य है। सारंग के बाद संध्याकालीन जो राग आयेंगे, उनमें प्रवेश करने के लिये प्रथम कोमल गंधार लेने वाले राग आते हैं और उनके आरोह में ऋषभ व धैवत नहीं होते। विचार करने वालों को इस रचना से बड़ा आश्चर्य होता है। राग और समय का सम्बन्ध बड़ा महत्वपूर्ण है, ऐसा प्रतीत होता है।

इस राग का स्वरस्वरूप कहने से पूर्व यह देखना है कि इस विषय में हमारे नये और पुराने ग्रन्थकार क्या कहते हैं। कुछ ग्रन्थकार इस राग को 'मध्यमावति' भी कहते हैं। सङ्गीत रत्नाकर में शार्ङ्गदेव पण्डित ने 'मध्यमादि' राग का वर्णन इस प्रकार किया है।

प्र०—किन्तु तनिक ठहरिये! उनके वर्णन का हम क्या उपयोग कर सकेंगे? जबकि अभी तक स्वर भी निश्चित नहीं हुए हैं।

उ०—हां, वह अड़चन अवश्य है, लेकिन जिस अर्थ में वह राग उस ग्रन्थकार ने बताया है, उसी रूप में हम उसे देखते चलें। वह राग कितना पुराना है, यह तो मालूम हो जायगा। शार्ङ्गदेव ने प्रथम 'मध्यम ग्राम' के लक्षण (यानी मध्यम ग्राम नामक राग के लक्षण) इस प्रकार रहे हैं:—

गांधारीमध्यमापंचम्युद्भवः काकलीयुतः।
मन्यासो मंद्रषड्जांशग्रहः सौवीरमूर्छनः॥
प्रसन्नाद्यवरोहिभ्यां मुखसंधौ नियुज्यते।
मध्यमग्रामरागोऽयं हास्यशृङ्गारकारकः॥
ग्रीष्मेऽन्हः प्रथमे यामे ध्रुवप्रोत्यै तदुद्भवा।

मध्यमादिर्भग्रहांशा × × जैसी मध्यमाद की व्याख्या बताई है।

सङ्गीत दर्पण में हनुमत मत से 'मध्यमादि' भैरव की रागिनी बताई है, यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा। लेकिन शुद्ध भैरव में कुछ ग्रन्थों के मत से कोमल गन्धार और निषाद है, यह मैंने बताया ही था, दामोदर पण्डित मध्यमादि के लक्षण इस प्रकार कहता है:—

मध्यमादिश्च रागांगं ग्रहांशन्यासमध्यमा।
सप्तस्वरैस्तु गातव्या मध्यमादिकमूर्छना॥
संपूर्णा कथिता तज्ज्ञैः रिधहीना क्वचिन्मता॥

ध्यानम्।

पत्या सहासं परिरभ्य कामं संचुंबितास्या कमलायताक्षी।
स्वर्णच्छविः कुंकुमलिप्तदेहा सा मध्यमादिः कथिता मुनींद्रैः॥

म प ध नि सा रे ग म अथवा म प नि सा ग म

प्र०—यह प्रकार अपना नहीं दिखाई देता। लेकिन ठहरो? अगर दक्षिण का शुद्ध सप्तक दामोदर का हो तो 'म प नि सा ग म। इस सप्तक में कौनसे स्वर होंगे भला? 'म प' यह स्वर अपने ही होंगे और शुद्ध निषाद अपना तीव्र धैवत नहीं होगा क्या? आगे गंधार हमारा तीव्र रिषभ होगा अर्थात् उस सप्तक की दृष्टि से 'सा रे म प ध सां' ऐसा प्रकार होगा। ठीक है ना? यह 'सा रे म प, तो ठीक जमेगा, लेकिन आगे धैवत का अडंगा है। वहां का "निषाद पंचश्रुतिक" होने के कारण संभवतः उसे अति कोमल "नि" कहा हो?

उ०—किन्तु इन सब बातों का उत्तर देने में गणित का एक लेख बन जायगा। "दर्पण" का स्वराध्याय "रत्नाकर" में बनाया है, लेकिन रत्नाकर के भी स्वर नियत करने ही हैं, इसलिये इस झंझट में हम नहीं पड़ेंगे। अब हम उत्तर के ग्रन्थ तरंगणी, हृदयकौतुक, तत्वबोध आदि देखें:—राग तरंगिणी में जो संकर दिया है, उसमें एक स्थान में लिखा है:—

केदाराहीरनाटौ च शुद्धो धवल एव च।
वागीश्वरीकानरश्च योगात् स्यात् मधुमाधवी॥

किन्तु मधुमाधवी राग का थाट या लक्षण लोचन ने बताया नहीं है, तब यह उद्धरण निरुपयोगी है।

"हृदय कौतुक" में हृदय नारायण देव 'मध्यमादि' मेघसंस्थान में कहते हैं:—

मेघरागस्य संस्थाने मेघो मल्लार एव च।
योगिनी मध्यमादिश्च गौंडमल्लार एव च॥

× × × ×

अतः इस राग के स्वर 'सा रे ग म प नि नि सां' होते हैं, अर्थात् यह अधिकांशतः खमाज थाट है जिसमें कि धैवत नहीं है और दो निषाद हैं।

प्र०—तो फिर यह मधमादसारंग खमाज थाट में रखने का आधार हुआ कि नहीं?

उ०—हां, तुम्हारे इस कथन को थोड़ा सा और आधार इस प्रकार भी है कि सितारिये यह राग खमाज थाट के परदों पर बजाते हैं, लेकिन वे तीव्र धैवत का स्पर्श जरा भी नहीं होने देते।

प्र०—लेकिन मान लो कि वह एक काफी थाट का राग बजा रहे हों और हमने बीच में ही मधमादसारंग बजाने की फरमाइश की, तो फिर वह गन्धार चढ़ायेंगे क्या?

उ०—नहीं, नहीं। गन्धार क्यों चढ़ायेंगे। उस स्वर की उन्हें आवश्यकता नहीं है। इस पर कोई कहे कि यह राग दोनों थाटों में रख सकेंगे, लेकिन हम तो उसे काफी थाट में रक्खेंगे, खैर आगे मध्यमादि के लक्षण सुनो:—

मपौ, निसौ रिसनिपा मपौ मरी सनी सरी।
मरी मरी निसावेवं मध्यमादिर्मतौड्डुवी ॥

उदाहरण:—म प नि सां, रें सां नि़ प म प म रे सा, नि़ सा रे म रे नि़ सा।

यह श्लोक हमारे प्रचलित मध्यमादि सारङ्ग के लिये अच्छा आधार रहेगा। इसमें एक खास बात और रह गई है उसे आगे बताऊँगा।

हृदय प्रकाश में इसी पंडित ने यह राग षाडव कहा है, वह इस प्रकार है:—

मध्यमादिर्गहीनत्वात् षाडवो मध्यमादिकः।

उदाहरण—म प नि सां, सां रें सां, नि़ प म प नि सां, प नि़ प म रे सा।

प्र०—यह क्या? "गहीनत्वात् षाडवः" तो क्या धैवत इस राग में लिया है? इसे क्या समझें?

उ०—ठहरो! तुम भूल गये कि हृदय प्रकाश में थाट तथा उसके जन्य राग जैसी रचना नहीं है, यह मैं पहले बता ही चुका हूँ।

प्र०—हां, ठीक है। यहां 'गधैवतनिषादास्तु यत्र तीव्रतराः कृताः' यह नियम लागू करना है, तब उस धैवत को कोमल निषाद ही समझा जाय। और वास्तव में ऐसा ही है, केवल गंधार तीव्र होगा सो वह नहीं चाहिये, इसलिये 'गहीनत्वात्' ऐसा ठीक ही कहा है। दूसरे शब्दों में कहेंगे कि मेघसंस्थान के स्वर इन दोनों ग्रन्थों के समान ही हैं।

उ०—यह तुमने ठीक कहा, लेकिन इस व्याख्या में और उस उदाहरण में थोड़ा सा भेद या विसंगति है, वह ऐसी कि ग्रन्थकार के दिये हुये उदाहरण में धैवत कहीं भी दीखता नहीं है, उन्होंने निषाद चार-पांच स्थानों पर दिया है।

प्र०—और वह तीव्रतर होगा, यही न? इस व्याख्या से कोमल निषाद को स्थान नहीं रहा तो फिर कैसे होगा?

उ०—मेरी राय में वह लेखक की भूल भी हो सकती है, जहां 'नि प' है वहां 'ध प' होगा, लेकिन मध्यमादी में धैवत नहीं होता, यह जानकर उसे छोड़ने का प्रयत्न किया होगा। मूल में यह स्पष्ट दिया है कि यह राग षाडव है, तब ग्रन्थकार ने उदाहरण में छोड़ दिया हो, ऐसा नहीं मालुम होता। ऐसी भूल लेखक प्रायः कर जाते हैं। पहले 'हृदय कौतुक' के मध्यमादि का उदाहरण पुस्तक में 'प ग प नि सां रें सां' आदि दिया है, वह स्पष्ट भूल है क्योंकि ऊपर दिये हुये श्लोक में 'प ग प' ऐसा नहीं है, वहां 'म प नि सां…' ऐसा कहा है।

पं० अहोबल ने मध्यमादि इस प्रकार कहा है:—

मध्यमादौ गधौ न स्तो मूर्छना मध्यमादिका।
तत्र त्वंशस्वगः प्रोक्ता रिमनयो मुनीश्वरैः ॥ पारिजाते।

उदाहरण—म प नि सां, रें मं रें सां, नि सां नि प, म प, नि प, म प म रे, सा। ऩि सा, रे म रे सा, रे रे, रे रे, म रे, सा। सा रे सा रे ऩि सा। नि सां नि प, म प म रे, सा, ऩि सा। ऩि सा। ऩि ऩि प़ ऩि सा, म रे, सा, ऩि सा।

यह हमारे वर्तमान मध्यमादि का अच्छा उदाहरण है, और 'पारिजात' का यह आधार भी उत्तम रहेगा। यहां 'रिमनयो' यह अंशस्वर कहे हैं, इसका अर्थ हम अभी इतना ही समझें कि यह स्वर भी इस राग में बहुत आगे आते हैं।

प्र०—हम समझ गये। यदि श्रीनिवास का मत भी मध्यमादि के विषय में ऐसा ही हो तो फिर?

उ०—हां, वह कहता है।

गधवर्ज्या मध्यमादिर्मध्यमादिकमूर्छना।

उदाहरण—म प नि सां रें सां रें सां नि सां नि प म प नि प, म प म रे, म रे, सा। उद्ग्राहः॥

पुंडरीक विट्ठल ने 'मध्यमादि' केदार मेल में कहा है, यथाः—

लब्धादिकौ षड्जकमध्यमौ च।
शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः।
निगौ विशुद्धौ च यदा भवंति।
तदा तु केदारकमेल उक्तः॥

प्र०—यह हमारा हिन्दुस्थानी बिलावल थाट ही है, ऐसा आपने पहले ही कहा था। अच्छा, आगे वह मध्यमादि के लक्षण कैसे कहता है?

उ०—वह इस प्रकार कहे हैं:—

मांशांतको मग्रहको रिधास्तः।
प्रातः प्रयुज्येत स मध्यमादिः॥

प्र०—पुंडरीक का शुद्ध मेल दक्षिण का होने के कारण उनके शुद्ध रे ध (यानी हमारे हिन्दुस्थानी कोमल रि ध) यह नहीं होंगे, लेकिन केदार थाट के शेष स्वर इस राग में होने के कारण यह प्रकार हमारा मध्यमादि तो होगा ही नहीं, ऐसा हमारी समझ में आता है।

उ०—पुन्डरीक ने रागमंजरी में 'मध्यमादि' नाम न देते हुये 'मधुमाधवी' नाम दिया है।

प्र०—उस मधुमाधवी के लक्षण उन्होंने कैसे कहे हैं?

उ०—वह उन्होंने ऐसे बताये हैं:—

रिधौ द्वितीयगतिकौ तृतीयगतिकौ निगौ ।
एष केदारमेलः स्यादतो जाताश्च रागकाः ॥
केदारगौडमल्लारनटनारायणास्ततः ।
वेलावली च भूपाली कांबोजी मधुमाधवी ॥

× × ×

मत्रिः प्रातरसौ गेया रिधास्ता मधुमाधवी ॥

प्र०—तो फिर यह वही राग है। अब उसका नाम प्रचार में बदला हुआ दीखता है। इन लक्षणों से 'मधुमाधवी' का स्वरूप 'नि़ सा ग म प नि सां। ऐसा रहेगा तो वह बिलकुल ही भिन्न रहेगा। ठीक है न?

उ०—हां, तुम्हारा कहना सही है। यह राग अपना 'मदमाध' नहीं हो सकता। उसी पंडित ने अपने 'रागमाला' और 'नर्तननिर्णय' ग्रन्थों में 'मधुमाधवी' ऐसा कहा है:-

मुग्धा गौरी विचित्रांबररचिततनुः सर्वशृङ्गारयुक्ता ।
माद्यंतांशाऽरिधावा द्विगतिगतरिधा वह्निगत्यंतगा च ।

प्र०—इसके आगे जाने की आवश्यकता नहीं! द्विगतिक रिधा, वह्निगत्यंतगा, अरिधा" इस विशेषण से यह प्रकार 'मंजरी' के मधुमाधवी के समान हुआ। यह हमारा मध्यमादि नहीं है। अच्छा, भावभट्ट पंडित इस राग के विषय में क्या कहता है?

उ०—वह तो संग्रहकार है। उसने मधुमाधवी के लक्षण नृत्यनिर्णय से उद्धृत किये हैं। अनूपविलास और अनूपरत्नाकर में इससे अधिक कुछ नहीं है। आनूपांकुश में 'मध्यमादि' भैरवी की एक रागिनी है, ऐसा बताकर आगे उसके लक्षण पारिजात और हृदयप्रकाश के लिखे हैं। वह सब एकदम बेकार से हैं।

प्र०—हां, यह भी सच है। उन दोनों ग्रन्थों में राग-रागिनी की व्यवस्था नहीं है। अच्छा, अब आप दक्षिणी ग्रंथकारों के विचार बतायेंगे?

उ०—हां, सबसे प्रथम मैं स्वरमेलकलानिधि के विचार बताता हूं। इस ग्रन्थ में श्री रामामात्य पंडित ने मध्यमादि राग, श्रीरागमेल (अर्थात् काफी थाट) के अन्तर्गत लिया है। उधर की ओर (दक्षिण में) श्री राग को काफी थाट के अन्तर्गत लिया गया है, यह तो तुम्हें विदित ही है। राग के लक्षण उसमें ऐसे दिये हैं:—

मध्यमादिर्मग्रहांशो मन्यासो रिधवर्जितः ।
औडवः पश्चिमे यामे दिनस्य परिगीयते ॥

प्र०—तो फिर 'नि़ सा ग़ म प नि़ सां' केवल इतने ही स्वर रहेंगे। यह अपना राग दिखाई नहीं देता।

उ०—रागविबोधकार तो 'मध्यमादि' को 'मल्लारी' थाट में बताते हैं। वह थाट हमारे 'बिलावल' थाट के समान ही है। उसके लक्षण ऐसे हैं:—

अरिधो मांशन्यासग्रहः प्रगे मध्यमादिरुद्गेय ।

प्र०—यह भी हमारा प्रकार नहीं है। अन्य किसी ग्रन्थकार के विचार देखिये ?

उ०—अच्छा, व्यंकटमखी पण्डित ने राग नाम 'मध्यमावती' बताया है तथा उस राग का मेल 'श्रीराग' बताया है। वह थाट हमारे काफी थाट से मिलता है। वह कहते हैं—

अथ श्रीरागमेले तु मणिरंगस्ततः परम् ।

× × ×

वृन्दावनी सैंधवी कानरा माध्वमनोहरी ।
स्यान्मध्यमावतीदेवमनोहरी ततः परम् ॥

इस प्रकार के रागों का उन्होंने 'उपांगराग' नाम से सम्बोधित किया है। उन्होंने उस मध्यमावती राग के लक्षण नहीं बताये।

प्र०—उसे छोड़ो, परन्तु एक मुख्य बात और है, उस पण्डित ने वृन्दावनी राग को भी काफी थाट में सम्मिलित किया है।

उ०—हां, यह भी वह कहता है। परन्तु उस विषय में आज विशेष मतभेद नहीं है। मध्यमादि भी सारंग का ही एक प्रकार है और वह काफी थाट में है, तथा उसमें ग ध भ वर्ज्य हैं; इन बातों को आज कोई अस्वीकार करेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। सङ्गीत सारामृत में रागनाम 'मध्यमादि' है तथा वह राग श्रीराग के थाट में अर्थात् काफी मेल में है, ऐसा वर्णन किया है:—

मध्यमादिस्तु रागांगं जातः श्रीरागमेलतः ।
गधलोपादौडुवोऽयं सायंकाले प्रगीयते ॥
रक्तिरेतस्य रागस्य मुरल्यांदृश्यतेऽधिका ।
अस्यारोहावरोहयोः स्वरगतिरवक्रा । उदाहरणं ।

प प, म नि़ प, नि़ प, प म रे, म, रे, रे म प प नि नि सां। प नि़ प, र म रे, म रे, म रे रे सा। सा नि़ प़ नि़ सा, रे रे, म म प। रे प, प म रे, म रे सा नि़ सा।

प्र०—यह आधार अपने 'मधमाद' राग के लिये बहुत ही उपयुक्त होगा। ठीक है न ?

उ०—हां, अच्छा रहेगा। रागलक्षणकार का "मध्यमावती" ऐसी ही प्रतीत होता है:—

अधिकारिखरहरप्रियमेलात् सुनामकः ।
मध्यमावतिरागश्च सन्यासं सांशकग्रहम् ॥
आरोहेऽप्यवरोहे च गधवर्जं तथौडुवम् ॥
सा रे म प नि़ सां । सां नि़ प म रे सा ॥

यह भी हमारा ही प्रकार है। यह तो तुमने भी देखा होगा कि 'मध्यमावती' तथा मध्यमादि दोनों एक ही राग के नाम हैं। दक्षिणी ग्रन्थकार 'मध्यमावती' नाम देते हैं तथा उत्तरी ग्रन्थकार उसे 'मध्यमादि' नाम से सम्बोधित करते हैं।

प्र०—हां, यह ध्यान में आ गया। हमारे मध्यमादि राग को उत्तम आधार प्राप्त हैं, ऐसा हम स्पष्ट कह सकते हैं। अच्छा, प्रतापसिंह ने यह राग कैसा बताया है?

उ०—उन्होंने 'मध्यमादि' भैरव की रागनी मानी है, और उसे ही मधुमाधवी नाम दिया है। उसके दो प्रकार बताये हैं, एक सम्पूर्ण और दूसरा औडुव।

इन दोनों में से सम्पूर्ण प्रकार हमारे काम नहीं आयेगा, लेकिन औडव प्रकार बिलकुल हमारे राग के समान है, वह तुम्हें भली प्रकार से ध्यान में रखना चाहिए। सम्पूर्ण प्रकार का उदाहरण उन्होंने इस प्रकार बताया है:—

रे प, रे, प धु प, म रे, गु म रे, नि़ रे सा। इस प्रकार ऐसा मधमाद कोई गायेगा नहीं। अब औडव प्रकार सुनोः—

म प, नि़ प नि़ सां, नि़ प, रे, नि़ प रे, प रे नि़, रे सा। यह स्वरूप अच्छा है।

प्र०—ठीक है। इसे हम ध्यान में रखेंगे। राजा साहेब टागोर क्या कहते हैं?

उ०—वह इस राग का नाम 'मधुमाधवी' अथवा 'मधमादसारंग' लिखते हैं। वे इस राग को षाडव मानते हैं।

प्र०—यानी धैवत लेने को कहते होंगे? लेकिन आरोह में या अवरोह में?

उ०—वे यह स्वर 'मनाक् स्पर्श' के नाते केवल अवरोह में लेते हैं।

प्र०—अच्छा, वह अपने मत का कोई आधार बताते हैं क्या?

उ०—हां, वह आधार 'तांडवतरंगेश्वर' नामक अंधुकभट्ट के ग्रन्थ का देते हैं। उनका आधार ऐसा है:—

गांधारधैवतविहीन इहौडुवेयं ।
सारंगसंज्ञिततया मधुमाधवीच ।

यहां विहीन शब्द के आगे कोई दूसरे अक्षर मूल ग्रन्थ में होंगे, वहां संभवतः 'औडुवोऽयं' और अन्त में 'माधवश्च' ऐसा होगा, वह ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया।

प्र०—लेकिन यह आधार बहुत अच्छा मालुम होता है। क्योंकि यहां मधुमाधवी को राग सारङ्ग कह कर गंधार और धैवत दोनों स्वर वर्ज्य किये हैं। इस आधार से धैवत स्वर किस प्रकार लेने में आता है?

उ०—उसे वह इस आधार से नहीं लेंगे। यह आधार देकर वह आगे कहते हैं:—मंतातर से यह राग षाडव जाति का ही मानने में आता है। भट्ट के मत से वह औडव ही है, लेकिन प्रचार में षाडव गाया हुआ दीखता है। संभवत: बंगालियों में वैसा प्रचार होगा। वह धैवत क्वचित अवरोह में विवादी के नाते रागरक्ति बढ़ाने के लिये लेते होंगे, लेकिन हमारे यहां मधमाद सारङ्ग में गंधार और धैवत दोनों स्वर वर्ज्य हैं, इसमें संदेह नहीं। और वैसा मानने के लिये उचित आधार भी हैं। बंगाल में भी औडव मधुमाधवी है, ऐसा टागोर के आधार से मालुम होता है। अब टागोर का रागविस्तार देखो:—

प
ऩि सा, रे म, प ऩि ऩि, प, ऩि ऩि सां, सां ऩि म प, नि सां, ऩि प, म प ध प म रे,

प
सा रे ऩि सा रे प, म रे, म रे सा॥ म प प ऩि ऩि प नि सां, सां नि सां, रें पं मं रें, मं रें, सां, ऩि सां रें सां ऩि म प, नि सां, ऩि प, म प ध प म रे, ऩि सा, रे प म रे, म रे, सा।

यह विस्तार ठीक है लेकिन इसमें धैवत यहां अल्पप्राय है, उसकी उतनी आवश्यकता भी नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में अखिल भारतीय संगीत परिषद् का अधिवेशन हुआ था, उस समय भारत के अनेक गायक-वादक एकत्र हुये थे, उस सभा में मैं भी उपस्थित था, वहां सारंग के कुछ प्रकारों की चर्चा चली थी।

प्र०—उस सभा में कौनसे सारंग पर वाद-विवाद हुआ?

उ०—वहां मधमाद सारंग, बिंदरावनी सारंग, मियां की सारंग, बडहंस सारंग, सामंत सारंग, शुद्ध सारंग, आदि रागों पर चर्चा हुई थी, एवं कुछ मल्लार प्रकार व कुछ कानडा प्रकारों पर भी विचार विमर्श हुए थे। उस सभा में रामपुर, जयपुर, ग्वालियर, इन्दौर, अलवर, बड़ौदा, काशी, कलकत्ता, मद्रास, मैसूर आदि स्थानों से आये हुये प्रतिनिधि उपस्थित थे। पहला प्रश्न ऐसा हुआ कि मधमाद और बिंदरावनी यह दो भिन्न प्रकार हैं या दोनों एक सारंग के ही नाम हैं।

प्र०—ऐसे संवाद तो बड़े सुनने योग्य होते होंगे? फिर क्या निर्णय हुआ?

उ०—हां, वे श्रवणीय होते हैं। लेकिन अब वैसे संवाद पुन: हो सकेंगे या नहीं, इसमें शंका ही है। उस दिन से अब तक बीस-पचीस अच्छे-अच्छे वयोवृद्ध और ज्ञानवान गुणी लोग स्वर्गवासी भी हो चुके हैं। अस्तु, मधमाद और बिंदरावनी सारङ्ग भिन्न राग माने जांय, ऐसा निर्णय वहां हुआ। तब फिर प्रश्न यह हुआ कि इन दो रागों में भेद कौनसा है? इस मुद्दे पर गुणी लोगों ने अपनी-अपनी चीजें गाकर सुनाईं। उन चीजों से प्रतीत हुआ कि गंधार स्वर उनमें बिल्कुल वर्ज्य किया हुआ था, परन्तु कुछ चीजों में निषाद दोनों थे और कुछ में सिर्फ कोमल निषाद ही था।

प्र०—तब इन निषादों के आधार पर इन रागों में क्या भेद निश्चित हुआ?

उ०—लेकिन जब उन कोमल निषाद लगाने वालों को अपना राग अधिक विस्तार से गाने को कहा गया, तब उनके गाने में दोनों निषाद आने लगे।

प्र०—लेकिन वे कोमल निषाद किस राग में लेते थे ?

उ०—वह 'मधमाद सारङ्ग' में लेते थे, और उनका कहना यह था कि 'मधमाद' राग में केवल कोमल निषाद ही लगता है और बिंदरावनी में दोनों।

प्र०—वे गुणी कोन और कहां के थे ?

उ०—वह जयपुर के प्रसिद्ध अमृतसेन तंतकार के घराने के थे, वहां और भी एक दो मत ऐसे सुनाई पड़े कि मधमाद और बिंदरावनी अलग-अलग इस तरह होंगे कि बिंदरावनी के अवरोह में थोड़ा सा स्पर्श तीव्र धैवत का दें, और मधमाद में वह स्वर बिलकुल न लिया जाय।

प्र०—परन्तु इस मत के लोगों का निषाद के विषय में क्या विचार था ?

उ०—उन्होंने कहा कि बिंदरावनी में थोड़ा सा धैवत हो तो फिर इन दोनों रागों में दोनों निषाद लेने में कुछ हानि नहीं है। मधमाद के आरोह में जलद तानों में कोमल निषाद सम्हालना कठिन है, ऐसा भी उनका कहना था। यह राग काफी थाट का होने से निषाद आरोह में चढ़ा हुआ और अवरोह में थोड़ा उतरा हुआ, स्वरसंगति की दृष्टि से होना अनिवार्य था, इसलिये उनके उस कथन में कुछ तथ्य था।

इसके अतिरिक्त और भी एक तथ्य निकला था।

प्र०—वह कौनसा ?

उ०—एक गुणी ने कहा कि हम बिंदरावनी के आरोह-अवरोह में तीव्र निषाद ही लेते हैं और मधमाद में दोनों निषाद लेते हैं। गंधार और धैवत स्वर इन दोनों रागों में वर्ज्य करते हैं।

प्र०—तब तो फिर यह एक और स्वतन्त्र मत हुआ। उन्होंने अपनी चीज भी सुनाई क्या ?

उ०—हां, उन्होंने एक छोटी सी चीज सुनाई थी, उसके स्वर ऐसे थे:—सा, नि़ सा, रे, नि़ सा, प नि़ सा, रे, म रे, प म रे, नि़ सा, नि़ प़, नि़ सा, रे म प म रे, सा, लेकिन यह मत वहां एकत्रित कलाकारों ने स्वीकार नहीं किया। वे गायक मध्य सप्तक में 'सां नि प' ऐसा करते थे, लेकिन 'रे म प, म प, नि प' ऐसा करते समय उनका निषाद थोड़ा उतरा हुआ दीखता था, लेकिन वहां उपरोक्त मत श्रोताओं के आगे आया था, इतना ही कहने का मेरा आशय था।

प्र०—वह ध्यान में आगया। अब हमें यह बता दीजिये कि 'मधमाद' राग आजकल किस प्रकार गाते हैं ?

उ०—प्रथम 'मधमाद' राग की एक प्रसिद्ध चीज के आधार से एक सरगम तुम्हें बताता हूँ:—

"मधमाद सारंग—" झपताल.

नि	नि	प	म	प	रे	ऽ	सा रे	सा	ऽ
×		२			०		३		
प नि	नि	सा	रे	सा	रे	ऽ	म	रे	रे
नि	नि	प	म	प	रे	ऽ	सा रे	सा	ऽ
नि	सा	रे	म	रे	म	प	नि	म	प

अन्तराः—

सां नि	सां नि	सां नि	सां	ऽ	सां नि	ऽ	सां नि	सां	ऽ
×		२			०		३		
नि	नि	प	नि	सां	रें	रें	सां	नि	प
म	प	रे	म	प	नि	प	नि	म	प
प सां	ऽ	नि	प	म	रे	रे	म	प	ऽ

कुछ मार्मिक गायक 'मधमाद सारंग' में "परि" स्वर सङ्गति अधिक रखने को कहते हैं। मेरी राय में यह एक छोटा सा मुद्दा ध्यान में रखने योग्य है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं समझना कि "मरे" ऐसा भाग मधमाद में नहीं आयेगा।

प्र०—नहीं नहीं। ऐसा हम नहीं समझेंगे। 'रे म प, प म रे,' यह भाग सारङ्ग में आयेगा ही क्योंकि मध्यम स्वर आरोह-अवरोह में शास्त्रविहित ही है। "प रे" यह सङ्गति भी बीच-बीच में आने वाली है, यही न?

उ०—हां ! अब हम मधमाद सारङ्ग का थोड़ा सा विस्तार करें:—

सा, ऩि सा, रे, म रे, प रे, सा, ऩि सा, प़ ऩि, प़ ऩि सा, म़ प़ ऩि सा, रे, ऩि, सा, रे म प, म, प, रे, प रे, ऩि सा।

ऩि सा रे, म रे, प म रे, नि॒ नि॒ प, म प, रे, प रे, ऩि सा, म़ प़ ऩि सा रे, रे, म रे, प म रे, ऩि सा रे म, प नि॒ प म रे, रे, सा।

ऩि, सा, रे, प म रे, म रे, म प, नि॒ नि॒ प, नि॒ म प, सां, नि॒ प, म प, नि॒ प म रे, ऩि सा रे, म प नि॒ नि॒ प म रे, प म रे, म रे, प रे, सा।

ऩि सा, प़ ऩि सा, म़ प़ ऩि सा, सा, रे, प रे, म प नि॒ नि॒ प म रे, सां, नि॒, प, म रे, प रे, सा।

म प नि॒, प नि॒, सां, नि सां, नि॒ सां रें, सां, नि॒ नि॒, प, ऩि, सा रे म प, नि॒, रें नि॒, म प, सां, नि॒, प म रे, प रे, रे, सा।

सां, रें नि॒, म प, सां, नि॒ म प, म रे, रे म रे, सा, ऩि ऩि, म़ प़, ऩि, सा, रे, म प, नि॒, म प, रे, सा।

म प नि॒, नि॒, सां, रें, मं रें, पं रें सां, नि॒ प, म प, नि॒ प, म रे, प रे, सा।

प्र०—यह राग हमारी समझ में भली प्रकार आगया है। अब बिंद्रावनी के विषय में ग्रन्थकारों ने क्या कहा है, उसके बारे में भी दो शब्द बतादें, और फिर उस राग का थोड़ा सा विस्तार करके दिखादें ?

उ०—ठीक है। पहले यह कह रहा हूँ कि बिंद्रावनी सारङ्ग को एक भिन्न राग बहुत ही थोड़े ग्रन्थकारों ने बताया है। 'सारंग' नाम तुम्हें कई संस्कृत ग्रन्थों में दीखेगा, वही राग आज अपना 'शुद्ध सारंग' है, ऐसा गुणी लोगों का मत है। शुद्ध-सारंग के विषय में आगे मैं बताने ही वाला हूं। तरंगिणी में लोचन पण्डित कहता है:—

सारंगस्वरसंस्थाने प्रथमा पटमंजरी।
वृन्दावनी तथा ज्ञेया सामंतो बडहंसकः॥

वृन्दावनी, सामन्त, बडहंस, आदि सारङ्ग प्रकार हैं, यह बात आज भी सर्व सम्मत है। अच्छा तो सारंग संस्थान के स्वर सा रे म मं प नि॒ नि सां हैं। यह मैंने पहिले भी कहा था, सारङ्ग का थाट लोचन ने 'यमन मेल से उत्पन्न किया है। वह कहता है:—
(इमन मेल में)

एवं सति च गांधारः शुद्धमध्यमतां व्रजेत्।
धश्च शुद्धनिषादः स्यात् सारंगो जायते तदा॥

तरंगिणी में वृन्दावनी की व्याख्या (लक्षण) नहीं दी है, उसको आगे चलकर हृदय नारायण ने ऐसा दिया है:—

सरिगा धपगा पश्च गरिसा औडुवी क्रमात् ।
वृन्दावनीति विज्ञेया विज्ञैर्विज्ञसुखावहा ॥

सा रे ग ध प ग प ग प ग रे सा ।
अथवा (सा रे म नि प म प म प म रे सा) यह हिन्दुस्थानी स्वर हुये । उसने म और नि वर्ज्य किये हैं । देखा तुमने ?

प्र०—हां ठीक है, क्योंकि वे तीव्र म और तीव्र नी हुए जिन्हें हम भी नहीं चाहते ।

उ०—तुमने ठीक समझा । तो वृन्दावनी के आरोह-अवरोह ऐसे हुये:—सा रे म प नि प म रे सा । देखो, इसमें तीव्र निषाद नहीं है । गन्धार और धैवत हैं जो कि क्रमानुसार हमारे शुद्ध म और कोमल नि होंगे ।

प्र०:—तो फिर जरा ठहरिये ! पहले आपने मध्यमादि के स्वरूप और लक्षण कहे थे तब वह राग मेघ थाट से निकलता है, ऐसा आपने कहा था । और उस थाट के स्वर सा रे ग म प नि नि सां । ऐसे कह कर मध्यमादिर्गहीनत्वात् षाडवोमध्यमादिकः । यह मध्यमादि का लक्षण आपने बताया था, तब यह स्पष्ट हुआ कि 'मध्यमादि और वृन्दावनी' इन दोनों रागों में गन्धार व धैवत वर्ज्य हैं । लेकिन मधमाद सारङ्ग में दोनों निषाद हैं और वृन्दावनी में एक कोमल निषाद है, यह तथ्य इस विवेचन से नहीं निकलता है क्या ?

उ०—तुम्हारी यह शंका बिल्कुल उचित है । यह भाग हम फिर से एक बार देख लें । लोचन पण्डित ने "वृन्दावनी" 'मेघ' संस्थान में स्पष्ट कहा है । और उस संस्थान के स्वर इस प्रकार दिये हैं:—धनिषादौ च शार्ङ्गस्य कर्णाटस्यगमौ यदि । अर्थात् वह "सा रे ग म प नि नि" ऐसे हुये । वृन्दावनी के लक्षण तो उसने दिये नहीं । आगे हृदयनारायण ने हृदय कौतुक में "मध्यमादि और वृन्दावनी" यह दोनों राग बताये हैं और वह दो भिन्न-भिन्न मेल में लिये हैं । 'मध्यमादी' राग उन्होंने 'मेघ' संस्थान में रखा, तो उस राग के स्वर इस प्रकार हुए—'सा रे ग म प नि नि सां' । 'मध्यमादि' के लक्षण उन्होंने इस प्रकार बताये हैं:—मपौ निसौ रिसनिपा मपौ मरी सनी सरी । मरी मरी निसावेव मध्यमादिर्मतौडुवो ॥ इस प्रकार तीव्र गन्धार ठीक ही वर्जित हुआ, लेकिन इस लक्षण में "औडुवी" कहने से ग और ध यह दोनों स्वर वर्ज्य होकर मध्यमादि में एक तीव्र निषाद ही रहता है । इसी कौतुक ग्रन्थ में 'वृन्दावनी' सारंग संस्थान में रखी है, इसलिये उसके स्वर 'सा रे म प नि नि' हुये । वृन्दावनी के लक्षण मैंने अभी अभी कह ही थे । 'म' और 'नि' यह तीव्र स्वर वर्ज्य होते हैं अर्थात् उसमें 'सा रे म प नि' इतने ही स्वर रहते हैं ।

हृदयप्रकाश में मध्यमादि और वृन्दावनी दोनों न बताते हुए केवल मध्यमादि इस प्रकार बताया है, देखो:—मध्यमादिर्गहीनत्वात् षाडवो मध्यमादिकः । और उसके

स्वर स्वरूप इस प्रकार बताये हैं:—म म नि सा सा रि सा सा नि॒ प म प नि सा प नि प म रि सा नि सा रि सा। मध्यमादि का मेल इस प्रकार वर्णन किया है:—गधैवतनिषा-दास्तु यत्र तीव्रतरा: कृता: अर्थात् 'सा रे ग म प नि॒ नि सां' यह स्वर हुए। इनमें से गंधार निकाला तो सा रे म प नि॒ नि सां, यह स्वर रह जाते हैं।

हृदय प्रकाश में वृन्दावनी बताई नहीं है। केवल मध्यमादि बताई है, यह बात भी विचार करने योग्य है। इसीलिये इन दो रागों के विषय में उसी समय से समाज में घोटाला चल रहा होगा? ऐसा प्रश्न किसी के मन में आवे तो आश्चर्य नहीं!

मैंने तुम्हें पहले ही बताया था कि मधमाद और वृन्दावनी यह दोनों राग भिन्न-भिन्न करके गाने में अपने गायकों को अब भी कठिनाई होती है। वृन्दावनी में दोनों निषाद लगाने वाले गायक तुम्हें आज अधिक दिखाई देंगे, किन्तु वह मधमाद अलग करके गा सकेंगे, ऐसा मैं नहीं कह सकता। ग्रन्थों में क्या लिखा है? जब यही उनको समझ में नहीं आयेगा तो वे बेचारे क्या करेंगे! ग्रन्थों में वृन्दावनी में स्पष्ट कोमल निषाद है, यह हम देख ही चुके हैं। मेरी राय में यदि हम प्रचार के अनुसार चलें तो ठीक होगा, अर्थात् वृन्दावनी सारंग दोनों निषाद लेकर हमें गाना चाहिए और मध्यमादि या मदमाद हमें दोनों निषाद से गाना हो तो वृन्दावनी में अवरोह में थोड़ा सा धैवत लें, ऐसा मैं ठीक समझता हूँ। लेकिन इस तरह धैवत लेकर गाने वाले तुम्हें थोड़े से ही दीखेंगे, यह बात ध्यान में रखना। मध्यमादि सारंग अलग गाना हो तो उसमें एक कोमल निषाद लेना अधिक सुविधाजनक रहेगा। अब वृन्दावनी के स्वरस्वरूप तुम्हें बताता हूँ, वह ध्यान से सुनो:-

सा

सा, नि़ सा, नि़॒ प, म़ प़, नि़, सा, सा, नि़ सा, रे, प, म रे, रे, सा। सा, रे म, म प, प, ध प, म प म रे, रे म प म रे, म रे, सा। सा, रे, सा, प़ नि़ सा, रे, म रे, प म रे, नि॒ नि॒ प, म प म रे, म रे, रे, सा। सा, नि़॒ प़, नि़ सा म़ प़ नि़ सा, प़ नि़ सा, रे सा, म रे प म रे, सा, सा, रे म, म प, नि॒ प, सां नि॒ प, ध प, म रे, रे म प, नि॒ प म रे, प म रे, रे, सा।

म प, प नि, नि सां, सां, सां रें मं रें, सां, नि सां, नि॒ म प, म प नि सां रें मं रें सां, रें सां, नि॒ प, म रे, म प म रे, सा।

सा, नि॒ नि॒ प, म प, म रे, सा, रे म, प, नि॒ प, म रे, सा, नि़ सा, रे म प म रे, रे, सा। म प, नि नि, सां, नि सां, रें, मं रें सां, नि सां नि॒ म प, नि सां, नि सां रें, पं मं रें, सां, रें सां, नि॒ प, म रे, रे म प म रे, रे, सा।

यह एक छोटी सी सरगम भी ध्यान में रखना:—

सा	रे	म	म	रे	सा	नि़	नि़	सा	ऽ	रे	मा
×		०		२		०		३		४	
सा		प़				म					
नि़	सा	नि़॒	प़	नि़	सा	रे	म	प	म	रे	मा

सा		नि॒	नि॒	नि॒							
नि़	सा	ध	ध	ध	प	म	प	नि	सां	ऽ	सां
प		प				म					
सां	ऽ	नि॒	प	म	रे	रे	म	प	म	रे	सा।

अन्तरा—

								सां			
म	म	प	प	नि	नि	सां	ऽ	नि	नि	सां	ऽ
×		०		२		०		३		४	
सां		मं						प	ध		
नि	सां	रें	मं	रें	सां	नि	सां	नि॒	नि॒	प	ऽ
म	रे	म	प	नि	सां	पं	मं	रें	रें	सां	ऽ
		प									
सां	ऽ	नि॒	प	म	रे	रे	म	प	म	रे	सा।

प्र०—यह सरगम हमारे लिये बहुत उपयोगी होगी। हम अभी केवल दिल्ली के कलाकारों के निश्चित किये हुए मत स्वीकार कर रहे हैं, वह ऐसे हैं कि 'मधमाद सारंग' में एक कोमल निषाद और वृन्दावनी में दोनों निषाद लिये जांय। वृन्दावनी में क्वचित तीव्र धैवत का प्रयोग अवरोह में होना सम्भव है, यह भी हम ध्यान में रखेंगे। वस्तुतः इन दोनों प्रकारों में गंधार और धैवत बिल्कुल वर्ज्य हैं। हमारे मत से वृन्दावनी में एक कोमल निषाद और मध्यमादि में दोनों निषाद माने गये होते तो अधिक ठीक रहता। काफी थाट के रागों के आरोह में तीव्र निषाद क्षम्य है, इसलिये वृन्दावनी में दोनों निषाद लेते होंगे, ऐसा प्रतीत होता है। अस्तु, अब प्रतापसिंह और टागोर ने इस राग के विषय में कुछ अधिक जानकारी दी हो तो वह भी बताइये?

उ०—प्रतापसिंह वृन्दावनी के विषय में कहते हैं:—पार्वती जी के मुख सों सारंग राग संकीर्ण मल्लार गाईके मल्लार की छाया युक्ति देखि वाको मल्लार-सारंग (अथवा वृन्दावनी सारंग) लौकिक में नाम कीनो, शास्त्र में तो यह पांच सुरन सों गायो है—'सा रि म प नि सां' यातें औडव है, कोई याको षाडव कहे है। याको माध्यान्ह समय में गावनो।

प्र०—तो फिर उस समय इसका षाडव स्वरूप मानने वाले थे, ऐसा प्रतीत होता है। अर्थात् धैवत स्वर कोई लेते होंगे, ठीक है न?

उ०—हां ! ऐसा ही दिखाई देता है, यह बात मैं पहिले भी कह चुका हूँ । आगे वृन्दावनी के नादस्वरूप अथवा 'जंत्र' वह इस प्रकार बताते हैं:—

रे, स, रे सा, म रे, म रे, सा, म रे, सा, प म रे, सा, नि़ प़, नि़ सा, रे, नि़ म़ प़, नि़ सा ।

यह रूप भी कुछ बुरा नहीं है। यहाँ 'म रे' की संगति बारम्बार आई है। कोई मार्मिक गायक ऐसा भी कहते हैं कि मध्यमादि का विस्तार मन्द्र और मध्य स्थान में अधिक करना और वृन्दावनी का विस्तार मध्य व तार स्थान में अधिक करना चाहिए। लेकिन उनके इस कथन का ग्रन्थाधार प्राप्त नहीं है।

राजा साहब टागोर वृन्दावनीसारंग के विषय में ऐसा कहते हैं कि वृन्दावनी राग औडव है, इसमें संशय नहीं लेकिन उसे गाते समय प्रारंभ में (ध)नि़, सा ऐसा धैवत का कण दिया हुआ अच्छा लगता है और उससे राग हानि भी नहीं होती, किन्तु राग नियम में ऐसी स्पष्ट आज्ञा नहीं है, इसलिये उस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। उनके वृन्दावनी में कोमल निषाद न लेकर आरोह-अवरोह में एक तीव्र निषाद ही लेना बताया है, यह ध्यान में रखने योग्य है।

प्र०—तो फिर कहना चाहिए कि बंगाल प्रांत में 'मध्यमादि' राग आगे चलकर वृन्दावनी हुआ। अपने राग का विस्तार वे किस प्रकार करते हैं ?

उ०—वह ऐसा करते हैं:—(ध)नि़ सा, नि़ प़ म़, म़ प़ (ध)नि़, म़ प़ (ध)नि़ सा नि़ सा रे रे, रे प म रे, रे म प नि, प, म रे, रे प म प प म री, सा, नि़ नि़ सा, रे, सा। नि़ सा, रे म, प नि (ध)म प, नि सां, सां सां, नि सां, रें रें, रें पं मं रें, सां, (ध)नि सां, नि प म रे, रे म प नि, प म रे, प म रे सा, सा रे, सा।

प्र०—यह एक भिन्न प्रकार हुआ। लेकिन कोमल निषाद अवरोह में होता तो ठीक था, ऐसा हमें बीच बीच में अनुभव होता है। 'सां नि प' या 'सा नि़ प़' यह बोलना जितना आसान होता है उतना 'म प, नि प' यह नहीं होता। कारण जो भी हो।

उ०—सो तुम्हारा कहना ठीक है। अवरोह में तीव्र निषाद सम्हालने की कोशिश की जाय तो बुरी नहीं है। लेकिन राजा साहब वृन्दावनी किस प्रकार बताते हैं ? इस समय तो हमारा यही प्रश्न है !

प्र०—अच्छा प्रचलित सङ्गीत पर लिखने वाले नादविनोदकार वृन्दावनी के विषय में क्या कहते हैं ?

उ०—वे सारंग, बड हंससारंग, मधुमाधवीसारंग और वृन्दावनीसारंग यह सारंग प्रकार अवश्य कहते हैं। इनमें से मधुमाधवी सारंग तो पहले बताया ही जा चुका है।

सारंग (शुद्ध) और बडहंस के विषय में आगे चर्चा करेंगे। वृन्दावनी का स्वरूप उन्होंने ऐसा दिया है:—

नि़ सा, रे, म प, नि नि प, म रे, म प, नि सां, नि प, म रे, प म रे, रे, सा। म म प प, नि नि, नि सां, सां, म प नि सां रें, सां, नि सां नि प, प, प रें, सां, नि प म रे, नि नि प म रे, प म रे, रे, सा, सा।

प्र०—तो फिर वे कोमल निषाद ही इस राग में लेते हैं, ऐसा दीखता है। ग्रन्थ दृष्टि से यह बुरा नहीं है लेकिन यह स्वरूप मध्यमादि सारंग का है, ऐसा अपने प्रांत वाले कहेंगे, क्यों ठीक है न? ऐसे भेद प्रायः होते ही हैं लेकिन आगे पीछे समाज संभवतः ऐसा निर्णय देगा कि कोमल निषाद का सारंग मधमाद, और तीव्र निषाद या दोनों निषाद का 'वृन्दावनी' होगा, ऐसी हमें आशा है। अच्छा, कल्पद्रुमकार क्या कहते?

उ०—आधार ग्रन्थों में वृन्दावनी न मिलने के कारण उन्होंने वृन्दावनी के लक्षण श्लोकों में नहीं दिये, परन्तु यह राग दोपहर में गाने का है, ऐसा वे कहते हैं:—

सारंग सुधवृन्दावनी बडहंसी सावंत।
लंकदहन लुमलूहर दो पेहेरे मेवंत॥

आगे कहते हैं—

सामेरी मधुमाधवी और मिले सावंत।
सारंग वृन्दावनी भइ कोमलसुर कहंत॥

परंतु मित्र! ऐसे मतों से तुम्हें विशेष उपयोगी बातें प्राप्त नहीं होंगी।

प्र०—आपका यह कथन यथार्थ है। तो फिर अब हमको श्लोकबद्ध वर्णन द्वारा यह बता दीजिये कि अपने वर्तमान गायक-वादक मधमाद और वृन्दावनीसारंग किस प्रकार गाते हैं? वे श्लोक कंठ करने में हमें सुविधा रहेगी।

उ०—अच्छा, ठीक है। कहता हूँ—

काफीमेलसमुत्पन्ना मध्यमादिः प्रकीर्तिता।
आरोहे चावरोहेऽपि गांधारधैवतोज्झिता॥
ऋषभः संमतो वादी संवादी पंचमो भवेत्।
गानं चाभिमतं तस्या मध्याह्ने भूरिरक्तिदम्॥
स्वीकृतो ह्युपभेदोऽयं सारंगस्याऽत्र लक्ष्यके।
अभावो धगयोरत्र संमतो लक्ष्यवेदिनाम्॥
पूर्वांगे परिसंगत्या निपयोरुत्तरांगके।
रागोऽयं निश्चितः प्रायो भवेदिति सतां मतम्॥

प्रकारा बहवो लक्ष्ये सारंगस्य समीरिताः ।
तेषु ये सुप्रसिद्धाः स्युस्ते मयाऽत्र प्रकीर्तिताः ॥

लक्ष्यसंगीते ।

टिप्पनी—

मध्याह्ने मध्यरात्रे च सारंगांगं सुविश्रुतम् ।
तत्कालगेयरागेषु महद्वैचित्र्यकारणम् ॥
सुहा सुघ्राइकाद्यास्ते रागा दिने तदंगजाः ।
नायक्यड्डाणकाद्यास्ते रात्रिगेयास्तथैव च ॥
वृन्दावनी मध्यमादिः सारंगः शुद्धपूर्वकः ।
सामंतो बडहंसश्च मीयांसारंगनामकः ।
लंकादहनसारंग एते भेदा बहुश्रुताः ॥

लक्ष्यसंगीते ।

वृन्दावनीसारंगः ।

काफीमेलसमुत्पन्ना वृन्दावनी मता जने ।
आरोहे चावरोहेऽपि धगोना बहुसंमता ॥
ऋषभः कीर्तितो वादी पंचमो मंत्रितुल्यकः ।
गानं तस्याः समादिष्टं मध्याह्ने लक्ष्यवर्त्मनि ॥
निषादौ द्वौ मतावत्र रागनामप्रसूचकौ ।
मध्यमादिः सदा प्रोक्ता निकोमलपरिष्कृता ॥
आदिशंति पुनः केचिदीषत्स्पर्शं विलोमके ।
धैवतस्य यतस्तेन मध्यमाद्याः स्फुटा भिदा ॥
केचिद्वृन्दावनीरागे निषादं तीव्रसंज्ञकम् ।
प्राहुर्येन भवेदस्य मध्यमादिभिदा स्फुटा ॥
मृदुनिमंडिता प्रोक्ता हृदयेशेन धीमता ।
वृन्दावनी धगत्यक्तौडुवा विज्ञसुखावहा ॥
रिमयोः संगतिश्चित्रा रागेऽस्मिन् भूरिरक्तिदा ।
सैव स्याद्रिपयोस्तत्र मध्यमाद्यां विदांमते ॥
धगयोर्गोपनं लक्ष्ये मुख्यं सारंगलक्षणम् ।
यथायोग्यप्रमाणेन प्रायः सर्वत्र लक्षितम् ॥

लक्ष्यसंगीते ।

सारंगो धगवर्जितो मृदुमनिस्तीव्रर्षभः पंचमः ।
संवादी किल वाद्यपीह ऋषभोऽसौ मध्यमादिर्मतः ॥
नारोहे यदि धो भवेदिह तदा शुद्धोऽवरोहे तु धे ।
वृन्दावन्यपि तीव्रनिर्भवति वै गेयस्तु मध्येऽहनि ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

तीव्रर्षभा मृदुमनिर्धगवर्ज्या रिवादिनी ।
संवादिपंचमा प्रोक्ता मध्याह्ने मध्यमावती ॥
यदा तीव्रो निषादः स्यादारोहे न च धैवतः ।
तदा सारंग एवायं वृन्दावन्यभिधीयते ॥

चन्द्रिकायाम् ।

रिमौ पनी तथा सश्च निपौ मरी पुनश्च सः ।
धगोज्झिता तु मध्याह्ने मध्यमादी रिवादिनी ॥
निसौ रिमौ पनी सश्च निपौ मरी तथाच सः ।
अगधा निद्वया र्यंशा वृन्दावनी मता दिने ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—हम मद्मादसारंग और वृन्दावनीसारंग भली प्रकार समझ गये हैं, अब कौनसा सारंग लेंगे ?

उ०—अब हम 'शुद्धसारंग' राग पर विचार करें। प्रथमतः यह बात ध्यान में रक्खो कि हमारे ग्रन्थकार (संस्कृत) 'शुद्ध सारंग' ऐसा नाम नहीं बताते, वह केवल 'सारंग' इतना ही नाम देते हैं।

प्र०—यानी जिस प्रकार 'शुद्धकल्याण' राग का नाम ग्रन्थों में केवल 'कल्याण' मिलता है, उसी प्रकार न ?

उ०—हां, कुछ इसी तरह समझलो, परन्तु लोचन और हृदय पंडित 'शुद्धकल्याण' नाम स्पष्ट देते हैं, यह तुम्हें ज्ञात ही है। अहोबल और श्रीनिवास सिर्फ 'सारंग' नाम पसंद करते हैं।

प्र०—कोई हर्ज नहीं। आपकी कही हुई बात हम ध्यान में रक्खेंगे। हमारे संस्कृत ग्रन्थकार 'शुद्धसारंग' न कहकर उसे सिर्फ 'सारंग' कहते हैं, यह हम नहीं भूलेंगे।

उ०—ठीक है। दूसरी बात यह है कि 'शुद्धसारंग' राग साधारण और लोकप्रिय नहीं समझा जाता, अतः यह बहुत थोड़े ही गायकों को आता है। कुछ गायक तो तुम्हें वृन्दावनी गाकर शुद्धसारंग गाने का उपक्रम करते हुए दिखाई देंगे। उनमें से जो अधिक चालाक होंगे वह वृन्दावनी में धैवत स्वर कुछ अधिक लेकर शुद्धसारंग और वृन्दावनीसारंग

अलग करके दिखाने का प्रयास करेंगे। कोई उनसे पूछे कि वृन्दावनी भिन्न कैसे किया ? तो वह कहेंगे कि हम वृन्दावनी में धैवत वर्ज्य करते हैं और दोनों निषाद लेते हैं।

प्र०—परन्तु उनका यह कथन कुछ संयुक्तिक है क्या ! जो मदमाद वह एक कोमल निषाद लेकर गाते होंगे, और वृन्दावनी दोनों निषाद से गाते होंगे, तो धैवत लेने वाला सारंग प्रकार एक तीसरा ही नया प्रकार नहीं होगा क्या ?

उ०—हां, वह हो सकेगा, परन्तु धैवत लेने वाला और कोई सारंग प्रकार हुआ, जैसा कि एक है भी, तो उन्हें पुनः अड़चन मालूम होगी; परन्तु अभी इस विवाद में हम न पड़ें तो ठीक रहेगा। इस समय प्रचार में क्या क्या है ? वह मैं कहता हूँ। शुद्ध-सारंग थोड़े गायक गाते हैं, यह मैंने कहा ही है। इस राग में दो मध्यम का प्रयोग होता है।

प्र०—परन्तु दिन के रागों में तीव्र मध्यम कुछ विसंगत सा दिखाई नहीं देता क्या ?

उ०—हां, तुम्हारा कहना सही है, परन्तु एक तो यह बात है कि सारंग, पूर्व रागों में से है, और फिर तीव्र मध्यम आरोह में बिल्कुल असतःप्राय गायक लगाते हैं, उसे वह किस प्रकार लेते हैं, यह मैं बताऊंगा ही। अपने यहां गौडसारंग राग कोई दोपहर में गाते हैं, उसमें भी तीव्र मध्यम है, परन्तु वहां ग और नि यह स्वर भी तीव्र हैं।

कोई-कोई गौडसारंग रात्रि के प्रथम प्रहर में गाते हैं, यह मैंने कहा ही है। शुद्ध सारंग में ऋषभ वादी और पंचम संवादी है। उसमें प्रचार में धैवत अवरोह में लेते हुये क्वचित तुम्हारी दृष्टि में पड़ेगा। निषाद दोनों लेने का रिवाज है। तीव्र मध्यम जब आता है तब कुछ कामोद राग का आभास श्रोताओं को होता है। 'रे प, मं प, ध प, म रे, सा, ऐसा टुकड़ा कामोद का थोड़ा सा भास अवश्य उत्पन्न करता है। शुद्ध सारंग का समय मध्यान्हकाल ही मानने का व्यवहार है। इस तीव्र मध्यम से मध्यमादि और बिंदरावनी यह राग भिन्न होते हैं। कहा जाता है कि बहुत समय पूर्व शुद्धसारङ्ग में दोनों मध्यमों का प्रयोग कुछ गायकों द्वारा होता था।

प्र०—तो उनके प्रकार में राग भेद अच्छी तरह दिखाई नहीं देते होंगे ?

उ०—हां, यह तुमने ठीक ही कहा। काठियावाड़ में प्रवास करते समय वहां के एक प्रसिद्ध गायक ने मुझे दो राग तीव्र मध्यम लगने वाले और सारङ्ग के समान दीखने वाले गाकर बताये, उसने एक में दोनों मध्यम और दूसरे में तीव्र मध्यम इस तरह स्वर रखे थे। मैंने उन रागों का नाम उससे पूछा, तब पहले तो वह बताना ही नहीं चाहता था, लेकिन जिस गृहस्थ ने उसे गायन को बुलाया था, उसके आग्रह से उसने बताया कि दोनों मध्यम का यह प्रकार उसके पिता ने 'शुद्धसारङ्ग' नाम से सिखाया था और एक तीव्र मध्यम के प्रकार को उसने 'नूर सारङ्ग' कहा था। वह गायक पढ़ा लिखा बिल्कुल नहीं था, और जाति का मुसलमान था।

प्र०—देखो ! प्राचीन रागों के शुद्ध स्वरूप कहां-कहां दृष्टिगोचर होते हैं, काठिया-वाड़ में सङ्गीत की विशेष प्रगति न होते हुये भी वहां यह रागस्वरूप प्राप्त हुआ, यह आश्चर्यजनक बात है।

उ०—ठीक है, वहां लगभग पचास वर्ष पूर्व 'त्रिजपति' नाम के एक गोस्वामी और पंडित आदित्यराम नाम के एक प्रसिद्ध पखावजी हो गये हैं। वे प्राचीन ग्रंथों की सहायता से कुछ प्राचीन रागों का उद्धार करने का थोड़ा बहुत प्रयास करते थे, ऐसा वहां प्रवास करते समय मैंने सुना था। पहले कुछ अच्छे गुणी लोग भावनगर, जामनगर, जूनागढ़ इन संस्थानों में थे, यह बात भी मैंने सुनी थी। मालवा में बाज बहादुर प्रसिद्ध थे, यह इतिहास से हमें मालूम पड़ता है। इतना ही नहीं, रसकौमुदी नाम का एक संस्कृत ग्रन्थ भी स्वयं जामनगर के एक पंडित ने लिखा था, उसके आधार पर वहां एक बार सङ्गीत की चर्चा भी हुई थी।

प्र०—वह ग्रन्थ कब और किसने लिखा ? उस ग्रन्थ का शुद्ध सप्तक कौनसा था ?

उ०—वह ग्रन्थ श्रीकंठ नामक पण्डित ने लिखा था। ग्रन्थ के आरम्भ में अपने और अपने आश्रयदाता के विषय में श्रीकंठ कहता है:—

ख्यातो दिव्यकुलेऽभवद्गुणनिधिर्विप्रोत्तमो मंगलः
श्रीमद्विष्णुपदारविंदयुगले भक्तस्तदीयात्मजः।
काव्यं काव्यकलाकलापकुशलः श्रीकंठनामा कविः
कुर्वेऽहं रसकौमुदीतिनिपुणः संगीतसाहित्ययोः ॥
द्वारावत्याः समीपे नवनगरपुरे क्ष्मापतिः पूर्वभागे
जामश्रीः शत्रुशल्यः सकलजनमनोरंजकः पुण्यराशिः।
श्रीकंठस्तत्सभायां कविरमलमतिर्विद्यते विप्रवर्यः
तेन प्रौढप्रमेयव्यतिकरसुभगं रच्यते काव्यमेतत् ॥

श्रीकंठ कवि ने इस ग्रन्थ की, 'सङ्गीत व साहित्य' ऐसे दो खण्डों में रचना की है, वह लिखता है:—

संगीतं प्रथमं तस्मात् पूर्वखंडे निगद्यते।
साहित्यमुत्तरे खंडे ग्रंथस्यास्य क्रमोभवेत् ॥

प्रथम खण्ड में पांच अध्याय हैं और उसी प्रकार दूसरे खण्ड में भी पांच अध्याय हैं।

अध्यायैर्दशभिर्विभूषिततनुः खंडद्वयेनोज्वला।
स्वच्छंदं रसकौमुदी विजयते विद्वन्मनोरंजिनी ॥
अध्यायैः किल पंचभिर्विरचितं तत्राद्यखंडं परम्।
खंडं पंचभिरेव नव्यरचना साहित्यसंदीपकम् ॥

पहले अध्याय में आगे चलकर कहा है:—

अध्याये प्रथमे तत्र चक्राणि नादसंभवः ।
स्थानानि श्रुतयः शुद्धाः स्वराः सप्त विकारजाः ॥
वाद्यादिभेदाश्चत्वारो ग्रामौ तद्गतमूर्छनाः ।
शुद्धकूटाभिधास्तानाः प्रस्तारः सहसंख्यया ॥
नष्टोद्दिष्टे ग्रहाद्याश्च वर्णोऽलंकारसंग्रहः ।
वर्ण्यन्ते क्रमशश्चैते गीतशास्त्रप्रमाणतः ॥

प्र०—इसमें जाति प्रकरण उसने छोड़ दिया है, तो फिर ग्राम-मूर्छना का झमेला क्यों रखा है ?

उ०—जब ऐसा अन्य ग्रन्थकारों ने भी किया है तो फिर वह क्यों न करे।

प्र०—अच्छा, इसे छोड़िये। आगे उसने स्वर किस प्रकार कहे हैं ? यह उत्तर का ही ग्रन्थकार कहलायेगा, क्योंकि जामनगर उत्तरीय भाग में माना जाता है।

उ०—स्वर स्थान वर्णन सुनो:—

स्वोपांत्यश्रुतिसंस्थास्ते षड्जमध्यमपंचमाः ।
भरतादिभिराचार्यैश्च्युतपूर्वाभिधा मताः ॥
साधारणाभिधां गच्छेद्गो माद्यश्रुतिगो यदि ।
अंतराख्यां ततो याति द्वितीयश्रुतिसंस्थितः ॥
षड्जस्याद्यश्रुतिगतो निषादः कैशिकी ततः ।
वर्तमानो द्वितीयायां काकली स निगद्यते ॥

प्र०—यह तो सब रत्नाकर का अनुकरण स्वतः के शब्दों में पंडित ने किया है, परन्तु स्वरस्थानों का बोध इसके द्वारा किस प्रकार होगा ?

उ०—अधीर मत हो, आगे पंडित कहता है:—

स्वरास्ते मिलिताः सर्वे चतुर्दश भवंति ते ।

प्र०—तो फिर ऐसा प्रतीत होता है कि यह दक्षिण का पंडित उत्तर की ओर आकर रहने लगा होगा ? अच्छा, श्रुति के विषय में वह क्या कहता है ?

उ०—ऐसा कहता है:—

नो दृश्यते यथा मार्गो मीनानां जलचारिणाम् ।
यथा व्योम्नि विहंगानां तथा स्वरगता श्रुतिः ॥

प्र०—चलो, समाप्त हुआ। अब श्रुति की ओर जाने की आवश्यकता ही नहीं है, उसके स्वर हमारे कौन से स्वर होंगे ? बस यह बता दीजिये ?

उ०—अच्छा, तो फिर उसके स्वरों की तुलना अपने हिन्दुस्थानी स्वरों से करें ! देखो:—

श्री कंठ	हिन्दुस्थानी
१ शुद्ध सा	१ शुद्ध सा
२ शुद्ध रिषभ्	२ कोमल रिषभ
३ शुद्ध ग	३ तीव्र रे
४ साधारण ग	४ कोमल ग
५ अन्तर ग	५ तीव्र ग
६ उपांत्य 'म' या पत 'म'	६ तीव्रतम ग
७ शुद्ध म	७ शुद्ध म
८ उपांत्य या पत 'प'	८ तीव्र म
९ शुद्ध प	९ शुद्ध प
१० शुद्ध ध	१० कोमल ध
११ शुद्ध नि	११ तीव्र ध
१२ कैशिक नि	१२ कोमल नि
१३ काकली नि	१३ तीव्र नि
१४ उपांत्य सा या पत सा	१४ तीव्रतम नि

प्र०—स्वरों का यह सब विवरण दक्षिणी ग्रन्थों के वर्णन से समान नहीं है क्या ? रामामात्य पंडित ने "स्वर मेल कलानिधि" में ऐसे ही १४ स्वर एक सप्तक में नहीं माने हैं क्या ? वहां च्युतमध्यम गंधार, च्युत पंचम मध्यम आदि नाम हैं, इतना ही अन्तर है ।

उ०—तुम्हारा कथन सही है । यह श्रीकंठ पण्डित भी दक्षिण का ही होना चाहिये, या उसके पूर्वज उधर से उत्तर की ओर आकर बस गये होंगे । भावभट्ट पण्डित के पिता जनार्दन भट्ट, पुण्डरीक विट्ठल आदि पंडित दक्षिण की ओर से ही आये थे, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं । अन्य विद्याओं के समान सङ्गीत विद्या भी दक्षिण की ओर अधिक उन्नत स्थिति में थी । उत्तर के मुसलिम राजाओं ने विद्वानों को प्रोत्साहन नहीं दिया, अतः वे दक्षिण की ओर भाग गये, ऐसा भी कहते हैं । परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उत्तर के विद्वानों के पहुँचने से पूर्व वहां सङ्गीत की अभिरुचि नहीं थी ।

प्र०—नहीं, ऐसा हम क्यों समझेंगे । अच्छा, श्री कंठ ने ग्राम मूर्छना का कहीं स्पष्ट वर्णन किया है क्या ?

उ०—वह भी देखो:—

षड्जमध्यमयोर्मध्ये षड्जस्य मुख्यता भवेत्
आद्यत्वादविलोपित्वाद्यथार्थवचनान्मुनेः ॥

षड्जमध्यमजातानां मूर्छनानां परस्परम् ।
किंचिद्विशेषादेकत्वमुक्तवान्दन्तिलः स्फुटम् ॥
तस्मान्नमेनिरे ग्रामं मध्यमं गुरवो मम ॥

प्र०—तो यह पंडित अपने गुरू के मत से एक षड्ज ग्राम ही मानता था, ऐसा दीखता है ?

उ०—मुझे भी यही प्रतीत होता है । पंडित ने उसके कारण भी उचित बताये हैं । आगे राग विवेक में उसने वीणा पर अपने स्वरों की रचना की है, वह प्रकार रामामात्य, सोमनाथ आदि पंडितों के समान है । वह कहता है:—

अथ रागविवेकाख्ये वर्ण्यंते द्वितीये क्रमात् ।
रागस्तुतिस्तु वीणायाः प्रशंसा तदनंतरम् ॥
स्वराणां स्थापनं चैव भेदो वादनसंभवः ।
विवेकश्चैव रागाणां ध्यानानि गमकादयः ॥

आगे वीणा प्रकरण में वह बताता है कि तार कौनसे परदे पर, कौन से स्वर उत्पन्न करते हैं, जैसे:—

सारीनिवेशनं युक्तया क्रमतः प्रतिपाद्यते ।
अनुमंद्रसतंत्र्याद्या शुद्धोरिः स्याद्यथा तथा ॥
निवेश्या प्रथमा सारी, तया तंत्र्या द्वितीयिका ।
शुद्धगांधारसिध्यर्थं, तया तंत्र्या तृतीयिका ॥
साधारणाख्यगांधारसिद्धये क्रमशस्ततः ।
स्यात्तत्तंत्र्यैव तुर्यापि च्युतमध्यमहेतवे ॥
शुद्धमध्यमसिध्यर्थं सारिकापंचमी तथा ।
तंत्र्या तया पुनः षष्ठी पतपंचमसिद्धये ॥
शेषाभिश्च त्रितंत्रीभिरुक्तसारीषु ये स्वराः ।
वर्ण्यंते ते क्रमेणैव गुरुणा मे यथोदिताः ॥
पंचमेनानुमंद्रेण या तंत्री-समुपाश्रिता ।
तया द्वितीयया तंत्र्या जायते शुद्धधैवतः ॥
ततः शुद्धनिषादाख्यो निषादः कैशिकी पुनः ।
तत्पुरस्तात्पतः षड्जः शुद्धषड्जस्ततः परम् ॥
तत्पश्चादृषभः शुद्धः षडेते गदिताः स्वराः ।

जातौ द्वितीयया तंत्र्या विशुद्धौ यौ सरी स्वरौ ॥
स्थाणौ नैव प्रयोगे तौ यतस्तंत्र्या तृतीयया ।
जायेते तौ पुनर्मंद्रौ शुद्धौ वीणाविदोदितौ ॥
एतेऽनुमंद्रजाः प्रोक्ताः कथ्यंते मंद्रजाः क्रमात् ।
तंत्र्या तृतीयया मंद्रसस्य सारीषु तास्वपि ॥
तथैव स्युः क्रमादेते स्वरा जनमनोहराः ।
तत्र तावत्तया तंत्र्या विशुद्धमध्यमो भवेत् ॥
पतपंचमकः पश्चादप्रयोगौ पुनः स्वरौ ।
मंजायेते यतस्तंत्र्यां चतुर्थ्यामितिनिर्णयः ॥
चतुर्थ्यापि पुनस्तंत्र्या मंद्रमध्यमयुक्तया ।
षड्भूतास्वपिमारीषु भवेयुः क्रमशः स्वराः ॥
पतमः प्रथमं शुद्धपंचमस्तदनंतरम् ।
शुद्धोधः शुद्धनिः पश्चान्निषादः कैशिकी ततः ॥
षड्जः पतादिरित्येते प्रोक्ता मंद्रस्वरा मया ।
पुरोदितासु सारीषु तंत्रीभिश्च चतसृभिः ॥
अनुमंद्रास्तथामंद्राः प्रोद्दिष्टास्ते स्वयंभुवः ।
स्वीयकल्पनया नोक्ताः प्रामाण्यं तेषु विद्यते ॥
गुरुणा मे यथोद्दिष्टा वीणायां सुप्रपंचिताः ।
अत एवान्यथाकर्तुं भुवि को भवति क्षमः ॥
संवादिनौ स्वरौ योज्यौ सर्वत्रापि परस्परम् ।
मध्ये तारेऽतितारेऽपि योजनीया यथाक्रमम् ॥

प्र०—परन्तु इस पंडित ने स्वर १४ मानकर अन्तरगन्धार और काकली निषाद के परदे नहीं बांधे, इससे प्रतीत होता है कि उसको दक्षिण का 'प्रतिनिध न्याय' मालूम था ?

उ०—इसमें संदेह की क्या आवश्यकता है ? वह स्वतः ही कहता है:—

अंतरे कथिता नैव सारी काकलिनि स्वरे ।
सांकर्यं जायते यस्मान्नानुकूल्यं भवेत्ततः ॥
अंतरस्य स्वरस्यापि सूक्ष्मः काकलिनो ध्वनिः ।
विचार्यो विज्ञवर्गेण पतादिषड्जमध्ययोः ॥
पतादिसमयोः सामावेकैकश्रुतिवर्तिनौ ।
अंतरः काकली स्यातां तयोः प्रतिनिधी च तौ ॥

प्र०—यह भाग बिलकुल स्पष्ट हो गया। अब कृपया यह बता दीजिये कि इस पंडित ने थाट कौन से बताये हैं और उनके जन्य राग कौन-कौन से बताये हैं, एवं उसका शुद्ध थाट कौनसा था ?

उ०—सुनोः—

यत्र शुद्धस्वराः सप्त भवेयुश्चित्तरंजकाः ।
स स्यान्मुखारिकामेलः सजातीया भवंत्यतः ॥

किन्तु मुखारी राग के विषय में क्या महता है, वह सुनो ?

सन्यासांशग्रहा पूर्णा मुखारी गीयते सदा ।
कतिचिद्गमकैर्युक्ता कष्टसाध्या सुबुद्धिभिः ॥

प्र०—यह उस बेचारे पंडित ने बिलकुल सत्य कहा है। दो रिषभ और दो धैवत एक के आगे एक कौन गाकर जनता को प्रसन्न करेगा ? अब उसके थाट कहिए ?

उ०—हां, यह भी तुमने ठीक कहा। आज दक्षिण की ओर भी मुखारी राग लोकप्रिय रागों में बिलकुल नहीं है, उसका भी कारण यही है। अस्तु, श्रीकंठ ने रागों के ध्यान यानी देवतात्मक रूप भी बताये हैं। उनकी हमें आवश्यकता नहीं है।

प्र०—तो उसने वह क्यों बताये हैं ? इस बारे में वह कुछ कारण बताता है क्या ?

उ०—वह इतना ही कहता है:—

ध्यानं विना रागसमूहमेतं
गायंति रागे निपुणा जना ये ॥
संगीतशास्त्रोक्तफलानि रागाः ।
तेभ्यः प्रयच्छन्ति कदापि नैव ॥

नाम स्वर

१ मालव गौड—(अपना भैरव) सा री म प ध शुद्ध, पत म (तीव्रतम ग) पत सां (तीव्रतम नि)

२ श्रीमेल—(काफी) सा, री (चतुःश्रुति), साधारण ग, शु. म, शु. प, चतुःश्रुति ध, कैशिक नि।

३ शुद्धनाट— सा, त्रिश्रुति ग, (कोमल ग,) पत म (तीव्रतम ग) शु. म, शु. प, त्रिश्रुति नि (कैशिक) पत सां, (तीव्रतम) नि

४ कर्णाटगौड— सा, शुद्ध ग (तीव्र री), पत म, शु. म, शु. प, शु. नि (तीव्र ध), कैशिक नि।

(यह हमारा खमाज थाट होगा)

५-केदार—सा, शु. ग, (तीव्र रे) पत म, शु. म, शु. प, शु. नि (तीव्र ध) पत सां (तीव्रतम नि)

(यह हमारा बिलावल थाट होगा)

६-मल्लार—सा, शुद्ध ग, (ती. री) पत म (ती. ग), शु. म, शु. प., त्रिश्रुति नि (कोमल) पत सां

(इस थाट में ध नहीं है, निषाद दोनों हैं)

७-देशाक्षी— सा, त्रिश्रुति ग, पत म, शु. म., शु. प., शुद्ध नि, पत सां

(इस थाट में दोनों गंधार हैं, ऋषभ नहीं है)

८—कल्याण—सा, शु. ग, साधारण ग, पत म, शुद्ध प, शुद्ध नि, पत सां

(सोमनाथ पंडित भी कल्याणी मेल में कोमल ग मानता है)

९ सारंग—सा, शुद्ध ग (तीव्र रे), शुद्ध म+पत म, कैशिक नि, पत सां,

इस सारंग थाट के स्वर ऐसे हुये। 'सा रे म मं नि नि सां' ग्रन्थकार कहता है:—

विशुद्धौ षड्जगांधारौ तथा मध्यमपंचमौ ।
पताद्यौ च सपौ यत्र निषादः कैशिकी पुनः ॥

उसने जन्य-जनक व्यवस्था इस प्रकार बताई है—

जनक मेल	जन्य राग नाम
१ मालव गौड—	१ मालवगौड २ सौराष्ट्र ३ गुर्जरी ४ मलहरी ५ बहुली ६ पाडी ७ गौडपंचम ८ भैरव ९ कर्नाटबंगाल १० ललित ११ गौडी।
२ श्री—	१ श्री २ मलावश्री ३ धनाश्री ४ भैरवी ५ देवगंधार।
३ शुद्धनाट—	१ शुद्धनाट
४ कर्नाटगौड—	१ कर्णाटगौड
५ केदार—	१ बिलावली २ नटनारायण ३ शंकराभरण
६ मल्हार—	१ गौडमल्हार २ कामोद
७ देशाक्षी—	१ देशाक्षी
८ कल्याण—	१ कामोद २ हमीर
९ सारंग—	१ सारंग

इसके पश्चात् फिर साधारण उपयोग के विषय में अर्थात् गाने वाली स्त्रियों के वस्त्र अलंकार आदि कैसे हों, गायकों के वर्ग कौन से हैं! इत्यादि इस बारे में वह कहता है।

प्र०—इस छोटे से ग्रन्थ का अधिकांश सारांश हमें बताया ही जा चुका है तो फिर अब थोड़ा सा भाग क्यों छोड़ा जाय? वह भी हम सुन लें, विषयांतर की कुछ चिन्ता नहीं।

उ०:—ठीक है, तो सुनोः—

नानारागकलाकलापकुशला बिंबाधरेणोज्वलाः ।
गायिन्योऽखिलगीतवाद्यनिपुणास्तालेहि दत्ता लये ॥
रम्याः कोकिलकंठमंजुलतरध्वानाः प्रगल्भा रसे ।
साक्षात् कामजयश्रियः सदसि ताः शोभां परां तन्वते ॥
चंचत्पाणिपरिस्फुरन्मणिलसत्केयूरभासान्विता ।
वीणावादनचातुरीचयचमत्कारैः सभामोहिनी ॥
श्रीखंडागरुकेसरोज्वलरसैरत्यंतभास्वत्तनुः ।
कौशेयांबररंजितातिमधुरा गाने रता यामिनी ॥
त्रिस्थानालापदक्षो गमकलयकलाकाकुविज्ञोऽतिधीरोऽ ।
नव्योक्तीदोषरिक्तः सकलजनमनोरंजकः सावधानः ॥
शुद्धच्छायालगज्ञः श्रमरहिततनुः कोकिलप्रख्यकंठः ।
तालाभिज्ञो ग्रहज्ञः सुभुवि निगदितो गायकानां वरेण्यः ॥

फिर आगे, शिक्षाकार, रसिक, भावुक, रंजक, क्रियापर, सुघट, आलप्तिगायक, रूपक गायक आदि गायकों के भेद कहता है। वह सब भाग रत्नाकर का ही इस पंडित ने अपने शब्दों में वर्णन किया है। किन्तु रत्नाकर में वह अति विस्तार से दिया है, इसलिये उसे, इस समय नहीं कहता हूँ। आगे गायक दोष, काकुभेद, आलप्ति आदि बताये हैं। उस विषय में मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूँ। अच्छा तो अब शुद्ध सारंग की और चलें!

प्र०—श्रीकंठ ने अपना ग्रन्थ कब लिखा?

उ०—वह पूरा ग्रन्थ मेरे पास न होने के कारण इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सकूंगा; परन्तु ग्रन्थकार ने स्वरमेलकलानिधि और राग विबोध ग्रन्थ देखे थे, ऐसा उसके वीणा प्रकरण से प्रकट होता है।

प्र०—स्वरमेलकलानिधि शाके १४७० में और रागविबोध शाके १५३१ में लिखा गया, ऐसा आपने बताया था। तब यह ग्रन्थ उसके बाद का ही होगा। इस ग्रन्थ का शुद्ध मेल मुखारी है, इससे यह सिद्ध होता है कि यह पंडित दक्षिण प्रणाली का मानने वाला था। हमको एक बात का आश्चर्य होता है, कि दक्षिण के यह पंडित उत्तर की ओर हमेशा आते रहते हैं, फिर भी उन्हें यहां का शुद्ध सप्तक दिखाई नहीं दिया, और यहां के नाद-रूप उन्हें नहीं मालुम हुए? अथवा मालुम होते हुए भी उन्होंने वे अपने ग्रन्थों में उनके नियम के साथ नहीं लिखे। इसके विरुद्ध उन्होंने दक्षिण के शुद्ध सप्तक कायम करके उधर के ही राग अपने ग्रन्थों में बताये हैं। उदाहरणार्थ—श्रीराग को ही देखिये, यह राग काफी थाट में बताया है, इसे वह उस समय गाते होंगे, ऐसा प्रतीत नहीं होता।

उ०—संभव है ऐसा कुछ हो, परन्तु पुंडरीक विट्ठल और भावभट्ट ने जब दक्षिण के शुद्ध स्वर सप्तक स्वीकार कर लिये फिर भी उत्तर के बहुत से अच्छे राग उन्होंने दिये हैं। पुंडरीक की 'रागमाला' देखो उसमें अधिकांश राग उत्तर के ही हैं। अब वह राग नियम आज प्रचार में नहीं हैं। उस पंडित के बाद के समय में अज्ञान से अथवा तत्कालीन लोकरुचि के कारण राग बदले हों तो इसमें उस पंडित का क्या दोष? संगीत परिवर्तनशील है, यह मैं कहता ही आ रहा हूँ। आज के तुम्हारे यह राग नियम आगे पचास वर्षों तक ऐसे ही कायमं रह सकेंगे, यह कौन जाने? यही क्यों आज भी एक ही राग भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न प्रकार से नहीं गाते हैं क्या? सुघराई, नायकी, देवसाग, सुहा, इन रागों के विषय में जो मतभेद मैं बता चुका हूँ वह तुम्हारे ध्यान में है न? अस्तु, सारंग या शुद्ध सारंग यह प्राचीन राग है, यह तो तुम्हारे ध्यान में आया ही होगा! इस राग के विषय में एक मुद्दा ऐसा ध्यान में रखना है कि इस राग के थाट के विषय में अधिकांश ग्रन्थकारों के मत मिलते हैं। इस राग में दोनों मध्यम हैं, यह एक अपवाद है, ऐसा दीखता है। इस राग के शुद्ध मध्यम को 'अति तीव्रतम गंधार' ऐसी संज्ञा देने में आती है, इसका कारण यह है कि किसी मेल में एक स्वर के दो रूप एक ही नाम से नहीं आने चाहिए, ऐसा उस समय शास्त्र नियम था। दोनों ऋषभ और दोनों गंधार जहां (एक के आगे एक) आते हैं, वहाँ पहले स्वर को ऋषभ तथा दूसरे को गंधार ऐसा नाम देते थे। ७२ मेल में ३६ शुद्ध मध्यम के और ३६ तीव्र मध्यम के भिन्न भिन्न मेल होते हैं, लेकिन दोनों मध्यम का मेल ग्रन्थकार नहीं बताते। वहां पहले मध्यम को गंधार कहते हैं। ७२ मेल बताने वाले ग्रन्थों में सारंग मेल नहीं है, यह ध्यान रखने योग्य बात है।

मध्यकालीन ग्रन्थकार सारङ्ग का रूप वर्णन किस प्रकार करते हैं, यह बताता हूं। शुद्ध सारङ्ग या सारङ्ग यह उत्तर की ओर का एक प्रसिद्ध राग माना जाता है। राग-तरङ्गिणी में लोचन ने सारंग मेल ऐसा बताया है:—(यह मेल 'इमन' मेल में कुछ हेर-फेर करके उत्पन्न किया है, ऐसा "एवं सति" इन दो शब्दों से समझ में आता है)

एवं सति च गांधारः शुद्धमध्यमतां व्रजेत्।
धश्च शुद्धनिषादः स्यात् सारंगो जायते तदा॥

प्र०—तो फिर 'सा रे म मं प नि नि सां' इस प्रकार यह मेल हुआ?

उ०—हां, वह ऐसा ही होगा, और इस मेल से जन्य राग इस प्रकार निकलते हैं:-

सारंगस्वरसंस्थाने प्रथमा पटमंजरी।
वृन्दावनी तथा ज्ञेया सामंतो वडहंसकः॥

इन रागों के स्वतन्त्र नादरूप लोचन ने नहीं बताये हैं।

प्र०—परन्तु गन्धार धैवत की जोड़ी इस मेल में नहीं है यह तो स्पष्ट है, उसमें दो मध्यम और दो निषाद हैं।

उ०—हां, यह तुमने खूब ध्यान में रखा। हृदय कौतुक में लोचन का ही सारङ्ग मेल लेकर राग वर्णन इस प्रकार किया है:—

सरी गमौ पधनिसा निधौ पमौ गरी च सः।
संपूर्णः कथितः सर्वैं सारंगो रागसत्तमः॥
स रि ग म प ध नि सं नि ध प म ग रि स॥

प्र०—अर्थात् "सा रे म मं प नि॒ नि सां। नि नि॒ प मं म रे सा। ऐसा रूप होगा। लेकिन वह इससे कैसे गाते होंगे? एक मध्यम आरोह में और दूसरा अवरोह में लेते होंगे, क्यों ठीक है न?

उ०—केवल इतना ही नहीं, अपितु एक के आगे एक इस प्रकार दो मध्यम अथवा निषाद लेते नहीं हैं। आरोह में कोमल मध्यम लेते हुये मैंने अनेक बार सुना है। बन्धन तो केवल तीव्र म का है, प्रचार के आधार पर ऐसा कहना पड़ेगा। अब 'सारंग' यानी शुद्ध सारंग क्या? यह भी प्रश्न तुम्हारे मन में आना स्वाभाविक है, उसका उत्तर हृदय पण्डित ने दे ही दिया है। "हृदयकौतुक" में उसने सारंग, वृन्दावनी, सामंत और बडहंस यह भिन्न-भिन्न सारंग के प्रकारों का वर्णन किया है। मध्यमादि उसने मेघ-संस्थान में रखा है, यह मैंने पहले बताया ही है—तथापि सारंग नाम का पहले 'शुद्ध' ऐसा उपपद नहीं है, यह मानना पड़ेगा। प्रचार में सिर्फ सारंग को कोई 'शुद्ध सारंग' समझते हैं और उसे ही वृन्दावनीसारंग समझते हैं। वृन्दावनी की व्याख्या हृदय पण्डित की मैंने तुम्हें बताई ही है।

हृदय प्रकाश में "सारङ्ग" राग के सम्बन्ध में वही पण्डित कहते हैं:—

अतितीव्रतमो गाख्यो मधौ तीव्रतरौ कृतौ।
यत्र निःकाकली तत्र सारंगः पटमंजरी॥
सामंतबडहंसौ च सारंगः सादिमूर्छनः॥
स रि ग म प ध नि सं। सं नि ध प म ग रि सा।
अर्थात् सा रि म मं प नि॒ नि सां। सां नि नि॒ प मं म रि सा।

यही आरोह-अवरोह स्वरूप हुआ।

सङ्गीत पारिजात में "सारंग" इस प्रकार बताया है:—

अतितीव्रतमो गःस्यान्मस्तु तीव्रतरो मतः।
धस्तुतीव्रतरोनिः स्यात्तीव्रः षड्जादिमूर्छने॥
सन्यासे मध्यमांशे च रागे सारंगनामके॥

उदाहरण:—सा रि ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रि सा। स रि ग म प प ध प प म ग म प म ग म प म ग म ग रे सा। सा रे ग रे सा।

प्रत्यक्ष गाने इसी क्रम से प्राचीन गुणी लोग गाते होंगे, ऐसा समझ में नहीं आता। परन्तु मूर्छना और प्रस्तार पारिजात में ऐसे ही दिये हैं, इसमें संदेह नहीं।

प्र०—जहां-जहां द्विरूपी स्वर एक ही राग में बताये हों तहां-तहां तीव्र स्वर का प्रयोग आरोह में और कोमल का अवरोह में करने का साधारण नियम मान कर चलना हितकारी होगा। अथवा कुछ तानें तीव्रस्वर स्वरूप लेकर और कुछ कोमल स्वर स्वरूप लेकर गायें, ऐसा करना भी ठीक होगा। आप की क्या राय है?

उ०—तुम्हारा कहना अनुचित नहीं, लेकिन यह कृत्य उत्तमता से साधने के लिये अत्यन्त कुशलता की आवश्यकता है। प्रचार में आज हमारे गायक तीव्र म स्वर आरोह में तथा कोमल म अवरोह में लेते ही हैं। अब पुण्डरीक विट्ठल के ग्रन्थ में सारंग किस प्रकार बताया है, वह भी सुनो:—

शुद्धौ सगौ मध्यमपंचमौ च।
लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौ चेत्॥
निःकैशिकी चापि यदा तदा स्यात।
सारंगकस्याभिहितः स मेलः॥
सारंगकाद्या जनिता भवेयुरनेन सारङ्गकमेलनेन।
सांशग्रहः सांतयुतश्च पूर्णः सारंगकः स्यादपराह्णशोभी॥

सद्रागचन्द्रोदये॥

प्र०—यह प्रकार आपके बताये हुये प्रकार से बराबर मिलता है। वही दो मध्यम और दो निषाद तथा गंधार, धैवत का अभाव, यह चन्द्रोदयकार भी बता रहा है।

उ०—तुम बिलकुल ठीक समझे। अच्छा, अब रागमाला में वही पंडित क्या कहता है, सुनो:—

रामक्री बहुली देशी जयंतश्रीश्च गुर्जरी।
देशिकारस्य पंचैता विख्याताश्च वरांगनाः॥
ललितश्चविभासश्च सारंगस्त्रिवणस्तथा।
कल्याण इति पंचैते देशिकारस्य सूनवः॥

रागमालायाम्।

आगे सारंग वर्णन सुनो:—

श्यामांगः पीतवासाः प्रबलतरगदाशंखचक्राब्जहस्तो
बाणैः शार्ङ्गेणपूर्णस्फुरदिषुधिकटिस्तार्क्ष्यगोभूषणाढ्यः।

गांधारो वेदगः स्युर्गुणगतिमनिधाः पञ्चगो रिस्त्रिषड्जः
संपूर्णश्चापराह्णे प्रचरति चतुरो धीरसारंगरागः ॥
रागमालायाम् ॥

इस श्लोक से क्या समझे ? बताओ तो !

प्र०—यहां शब्द वर्णन भिन्न है, परन्तु सारङ्ग के नादस्वरूप चन्द्रोदय में बताये हुये ही हैं। स्वरों का विश्लेषण इस श्लोक के तीसरे चरण में है। षड्ज और पंचम के शुद्धत्व तो निश्चित हैं ही क्योंकि उस विषय में संशय कभी भी नहीं होता। अब 'वेदग' गांधार यानी चारगतिका गांधार अर्थात् वह शुद्ध ग अथवा हमारा कोमल मध्यम हुआ। 'गुण गतिमनिधाः' यानी तीन-तीन गति चढ़े हुये म, नि, ध स्वर समझने चाहिए। वे तीव्र म, तीव्र नि, और कोमल नि यह स्वर होंगे। अब बाकी बचा तीव्र ऋषभ। वह 'पञ्चगो' शब्द से प्राप्त होगा। तो फिर 'सा रे म मं प नि नि सां' यह स्वर सारंग के हुये। हमारे यह विचार ठीक हैं न ?

उ०—हां, बिलकुल ठीक हैं। अब भावभट्ट के मत की तुम्हें आवश्यकता नहीं क्योंकि वह तो पुण्डरीक का ही अनुवादक है।

प्र०—यानी उसे पुण्डरीक के रागमंजरी ग्रन्थ का अनुवाद करने वाला कहना चाहिए ? तो फिर मंजरी के राग वर्णन बताने से काम चल जायगा ?

उ०—हां, वही मैं अब तुम्हें बताने वाला हूं। सुनोः—

तृतीयगतिमनिधाः द्वितीयगतिकोऽपिरिः ।
तुरीयगतिकोगश्च मेलः सारंगनामकः ॥
मेलादतोऽपि सारंगप्रमुखाद्या भवंति हि ।
सत्रिः संपूर्णः सारंगः सदागेयः पराह्णतः ॥
रागमंजर्याम ॥

इसके बाद उत्तर का ग्रन्थकार जामनगर का श्रीकंठ होगा। श्रीकंठ के 'रसकौमुदी' ग्रन्थ में सारङ्ग के स्वर कैसे कहे हैं, यह मैंने अभी तुमको बताया ही था।

प्र०—हां ! उसने सारङ्गमेल के स्वर इस प्रकार कहे थेः— सा, शुद्ध ग (अर्थात हिन्दुस्थानी तीव्र री) शुद्ध म, पत पंचम (यानी तीव्र म) शुद्ध प, कैशिक नि, पत सां (यानी तीव्र नि) इस ग्रन्थकार ने सारङ्ग के स्वर अन्य ग्रन्थकारों के समान ही बताये हैं, तो फिर अधिक ग्रन्थों के मत की आवश्यकता नहीं है। सारङ्ग पर सबका एक मत दिखाई देता है। फिर भी दक्षिण के कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थाकारों के एक-दो मत और कह दीजिये। प्रत्येक राग के विषय में उपलब्ध ग्रन्थों में क्या बताया है ? यह देखने का जो क्रम हमने रखा है वह बहुत लाभदायक रहेगा, क्योंकि वह ग्रन्थ बार-बार देखने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

उ०—हां, यह मैं भी मानता हूँ। यद्यपि अनेक स्थानों में पुनरुक्ति हो जायगी, परन्तु तुम्हारी स्मृति पर निर्भर न रहकर मैं पुनरुक्ति करना ही पसंद करूँगा। 'रागविबोधकार' 'सारंग' मेल के स्वर इस प्रकार कहता है:—

सा, म, प यह शुद्ध स्वर, तीव्रतर री, तीव्रतम ग, मृदु प, तीव्रतम ध, मृदु सा।

प्र०—यानी आप जो बताते आये हैं वे ही स्वर हुए। तीव्रतर री यानी हिन्दुस्थानी शुद्ध रे, तीव्रतम ग अर्थात हमारा शुद्ध ग, मृदु प यानी तीव्र म, तीव्रतम ध यानी कोमल नि, और मृदु सां यानी तीव्र नि। यह होंगे, ठीक है?

उ०—हां, तुम्हारा कहना यथार्थ है। अब दक्षिण का प्रसिद्ध ग्रन्थ "चतुर्दंडि-प्रकाशिका" रहा है। उसमें 'सारंग' मेल या 'सारंग' राग का वर्णन नहीं है। ग्रन्थ के अन्त में 'रक्तिराग' के अन्तर्गत व्यंकटमखी ने कुछ रागनाम दिये हैं, उनमें 'सारंग' भी एक है, जैसे:—

नाटकुरंजीसारंगहुशानिगौलिपंतुकाः।
गुम्मकांभोजिभूपालौ रागो मंगलकौशिकः॥
मल्लारिदेवगांधारीनादरामक्रियाश्च तु।
असावेरीपूर्विगौरीसैंधवीमार्गरागकाः॥

इस श्लोक का कोई विशेष उपयोग नहीं होगा, क्योंकि सारंग राग के लक्षण इसमें नहीं हैं।

प्र०—तो फिर इस सम्पूर्ण ग्रंथ का सार यही समझा जाय कि 'सारंग' राग अपने उत्तर की ओर प्रसिद्ध हुआ। उसे सर्व प्रथम किसने प्रचलित किया? यह बताना संभव नहीं। वह लोचन पंडित के 'तरंगणी' में अवश्य मिलता है। उसी प्रकार उत्तर के और भी ग्रन्थों में मिलता है। उसके स्वर 'सा रे म मं प नि॒ नि सां' यह हैं। दोनों मध्यम जब कभी एक ही राग में आते हैं तब शुद्ध मध्यम को 'अति तीव्रतम ग' ऐसी संज्ञा देने की प्रथा थी, उसी प्रकार दो निषाद आने पर कोमल निषाद को तीव्रतर ध कहते थे, इतना ध्यान में रखना हितकारी होगा। सारंग में गंधार और धैवत वर्ज्य करने के लिये बहुत आधार हैं। ग्रहांशन्यास के प्राचीन नियम प्रचार में परिवर्तित दिखाई देते हैं। ग्रहांशन्यास स्वर प्रत्येक ग्रन्थकार ने अपने समय का प्रचार देखकर लिखे थे, संभवतः उस समय की ऐसी ही परिपाटी होगी?

उ०—मैं समझता हूँ 'सारंग' राग के विषय में ग्रन्थों का जो सार तुमने निकाला है, ठीक ही है। इसीलिये व्यंकटमखी पंडित अपने राग के लक्षण बताने के पूर्व स्पष्ट कहता है:—

तत्र रत्नाकरग्रन्थे शार्ङ्गदेवेन धीमता।
चतुःषष्ट्यधिकं रागशतद्वयमुदीरितम्॥

लक्ष्यंते ते न कुत्रापि लक्ष्यवर्त्मनि संप्रति ।
ततः प्रसिद्धिवैधुर्यात् त्यक्त्वा ,रागांस्तु तान् पुनः ॥
सर्वत्र लक्ष्यमार्गेऽत्र संप्रति प्रचरंति ये ।
तानस्मत्परमाचार्यतानप्पार्यसमुद्धृतान् ॥
रागान्निरूपयिष्यामि लक्ष्यलक्षणसंमतान् ॥
ग्रहांशन्यासमंद्रादिव्यवस्था तेषु यद्यपि ।
देशित्वात्सर्वरागेषु नैकान्तेन प्रवर्तते ।
तथापि लक्ष्यमाश्रित्य गानलक्ष्मानुसृत्य च ।
रागाणां लक्षणं ब्रूमः संप्रति प्रचरंति ये ॥ इ० ॥

दक्षिण के ग्रन्थों में 'सारंग नाट' नामक एक मेल व राग है। वह हमारा सारङ्ग नहीं है, यह ध्यान में रखना।

प्र०—यह बात हम नहीं भूलेंगे। अच्छा, जयपुर के 'राधागोविन्द सङ्गीत-सार' में इस राग का उल्लेख है क्या? वह तो बिल्कुल नजदीक का ही ग्रन्थ है; प्रचार में आये हुए कुछ राग रूप भी उसमें हमको मिलते हैं, इसलिये आपसे पूछा है।

उ०—उस ग्रन्थ में 'सारंग' बताया है और उसका रूप हमारे शुद्ध सारंग के रूप से कुछ मिलता है। उस ग्रन्थकार ने इस राग की उत्पत्ति पार्वती से बताई है। 'सारङ्ग' को मेघराग का पुत्र मानकर उसका 'जंत्र' अथवा नादरूप इस प्रकार दिया है:—

मेघराग को तीसरो पुत्र 'सारङ्ग' (सम्पूर्ण)

सा	ध़	रे	सा	प	प
रे	प़	सा	रे	ध	म
सा	ग़	ध़	म	प	रे
नि़	सा			म	सा

इसे इस प्रकार भी लिख सकते हैं। और यदि एक पंक्ति में लिखना हो तो ऐसा लिखेंगे:—

सा रे सा नि़ ध़ प़, ग़, सा रे सा ध़ सा, रे मं प, ध प, म प म रे, सा।

इस रूप में दोनों मध्यम हैं, यह स्पष्ट ही है। जबकि इस राग को मेघ राग का पुत्र कहा गया है तो मुझे यह संदेह होता है कि ग्रन्थकारों ने हृदय कौतुक या "हृदय-प्रकाश" ग्रन्थ का प्रयोग किया होगा, किन्तु उनके गांधार और धैवत कौन से स्वर थे यह तथ्य उसके ध्यान में नहीं आया। "चढ़ी ग" और "चढी ध" को उसने जैसा का तैसा रहने दिया होगा। कुछ भी सही, किन्तु यदि वह चढा गांधार हम छोड़ दें और वहां "म" समझ कर चलें तो यह सारङ्गरूप हमारे शुद्ध सारङ्ग के बहुत कुछ निकट आ जायगा।

अथवा ग्रन्थकारों ने पारिजात के श्लोक के आधार पर वह सारङ्गरूप तैयार किया होगा। उस श्लोक में अतितीव्र तम ग, म तीव्रतर और ध तीव्रतर बताये गये हैं।

प्र०—यह सब बातें हम ध्यान में रखेंगे। इसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग महत्व का है, क्योंकि उस लक्षण से अन्य सारङ्गों से यह राग तत्काल प्रथक हो जायगा?

उ०—हां, तुम्हारा कहना ठीक है। "शुद्ध सारङ्ग" में तीव्र गन्धार लगता हुआ मैंने कभी सुना ही नहीं। अतः तुम भी उसे इस राग को गाते समय मत लगाना।

प्र०—अच्छा, उस सर्व संग्रही कल्पद्रुम में शुद्ध सारङ्ग के विषय में कुछ कहा गया है क्या?

उ०—उसमें रागमाला से एक उद्धरण दिया है। जिसमें सारङ्ग राग का केवल एक ही है, वह तुम्हारे किसी काम का नहीं है। उसमें दूसरा एक उद्धरण इस प्रकार दिया है:—

करधृतवीणा सख्या सहोपविष्टा च कल्पतरुमूले।
दृढतरनिबद्धकबरी सारङ्गी सा सुरागिणी प्रोक्ता॥
निषादांशगृहं न्यासगधौ वर्जित औडव।
मध्याह्ने गानकर्तव्या सारङ्गा मेघवल्लभा॥

नि सा रे सा म प म प रे सा म रे सा नि प म रे सा नि नि स्वर प्रोक्ता षड्जादिक मूर्छना इति शुद्ध सारङ्ग॥

इस उद्धरण का अन्तिम भाग देखकर तुम्हें हंसी आवेगी। मेरी समझ में यह ग्रन्थकार की स्वयं की बनाई हुई कविता है, किन्तु पहली कविता उसने सङ्गीत दर्पण से ली है। दर्पणकार ने हनुमन्मत के राग-रागिनियों की व्याख्या करके और भी कुछ रागों की व्याख्या की है। उसमें "सारङ्गनट्ट" (सारङ्गनाट) इस राग को व्याख्या इस प्रकार है:—

सारङ्गनट्टा संपूर्णा सत्रयोत्तरमंद्रजा।
स रि ग म प ध नि सा।

इस व्याख्या के नीचे उसने कविता लिखी है और एक श्लोक दिया है, उसमें "सारङ्गनट्टा कथिता सुवेशा" ऐसा स्पष्ट कहा है। दर्पणकार को 'सारङ्ग नाट' की आवश्यकता नहीं थी, अतः-उसने "अथवा" शब्द को लिखकर उस कविता को वहीं प्रविष्ट कर दिया है और दोनों के लिये एक ही संपूर्ण मूर्च्छना उसने दे दी है, यह कृत्य बेतुका हुआ है। दर्पणकार इस कविता को कहां से लाया? यह प्रश्न उठता है। इसका उत्तर राजा सौरींद्रमोहन टागोर के "सङ्गीतसार संग्रह" ग्रन्थ की मदद से हम दे सकेंगे, जो इस प्रकार है:—

सङ्गीत दर्पण में प्रथम शिवमत के राग और उनकी रागनियों के नाम दिये गये हैं, उस मत के ६ राग:—

श्रीरागोऽथ वसंतश्च भैरवः पंचमस्तथा ।
मेघरागो बृहन्नाटः षडेते पुरुषाव्हयाः ॥

इस प्रकार हैं। उसमें से बृहन्नाट (नट नारायण) राग की रागिनी इस प्रकार बताई गई है:—

कामोदी चैव कल्याणी आभीरी नाटिका तथा ।
सारङ्गी नट्टहंबीरा नट्टनारायणांगनाः ॥

इस सारङ्गी राग के लक्षण टागोर साहब की पुस्तक में इस प्रकार दिये हैं:—

सारङ्गी औडवा प्रोक्ता गधहीना च सा मता ।
करधृतवीणा सख्या० इत्यादि,

तो सारङ्ग नाट और सारङ्ग का भेद दर्पणकार को दिखाई दिया या नहीं ? यह भी एक प्रश्न है। और कल्पद्रुमाकार ने उसके ऊपर अपनी विद्वत्ता दिखलाई।

प्र०—ये ग्रन्थकार प्राचीन ग्रन्थों को समझ ही नहीं पाये, यह तो स्पष्ट ही दिखाई देता है। उस समय मुद्रण की कोई सुविधा न होने से जहां से जो कुछ उनको मिला, उसे लेकर उन्होंने नये-पुराने को मिलाकर रख दिया है, ऐसा ही अन्त में कहना पड़ता है। इन बातों से कोई अपने प्राचीन सङ्गीत शास्त्र की आलोचना या बुराई करे तो इसमें उसका क्या दोष ? फिर भी पिछली दो-तीन शताब्दियों के कुछ ग्रन्थ समझने योग्य हैं, यह भी सौभाग्य की बात है। अच्छा, अब हमें यह बताइये कि शुद्ध सारङ्ग किस प्रकार से गाते हैं ?

उ०—हां, अब वही बताता हूँ। सारंग राग के मुख्य लक्षण यह हैं कि उसके आरोहावरोह में गंधार और धैवत वर्ज्य करने, चाहिये। शुद्ध सारंग भी सारंग प्रकार होने से यह लक्षण उसमें भी जगह जगह दिखाई देना चाहिये, किन्तु ये दोनों स्वर निकल जाने से 'मधमाद' और 'बिंदरावनी' दो प्रकार प्रगट होंगे। शुद्ध सारंग में धैवत लेने से 'मधमाद' तत्काल अलग दिखाई देगा। अब बिंदरावनी का प्रश्न रहा। बिंदरावनी के तीन प्रकार तुम जानते हो। एक में ग और ध वर्ज्य तथा दोनों निषाद हैं। दूसरे में ग और ध वर्ज्य करते हुए केवल तीव्र निषाद आरोह व अवरोह में है ? धैवत के प्रयोग वाला शुद्ध सारंग बिंदरावनी के इन दोनों प्रकारों से सहज ही अलग होगा। तीसरे प्रकार में दोनों निषाद और अवरोह में क्वचित धैवत प्रचार में आते हैं, गंधार वर्ज्य होता है। इस प्रकार को शुद्ध सारंग से भिन्न दिखाने के लिये शुद्धसारंग में दोनों मध्यमों का प्रयोग किया जाता है। यदि बिंदरावनी में तीव्र मध्यम लगाया तो राग भ्रष्ट होगा। गाते समय अवरोह में तीव्र मध्यम का प्रयोग बहुधा नहीं करते क्यों कि 'मं रे' का प्रयोग तत्काल करना कुछ कठिन पड़ता है। 'रि प' व 'प रे' ये संगतियाँ दूसरे सारंगों

में सर्वदा प्रयोग में आने से शुद्ध सारंग में भी दिखाई देंगी । कोई इस प्रकार भी कहते हैं कि शुद्ध सारंग में तार सप्तक में नहीं जाना चाहिये और उसका सारा विस्तार मंद्र व मध्य सप्तक में ही करना चाहिये; किन्तु तार सप्तक में गाये हुए अन्तरा भी मैंने सुने हैं। सारांश यह कि इस राग का विस्तार भी लगभग विंदरावनी की तरह ही होता है, किन्तु बीच-बीच में तीव्र मध्यम का प्रयोग करने से राग भेद जरूर उत्पन्न होता है।

प
इस राग का आरोहावरोह स्वरूप 'सारेमरे, प, मंप, धप निसां निप, मरे, सा' ऐसा होगा। 'मंपधप, मरे' इस भाग को रागवाचक मानते हैं। शुद्ध सारंग में जलद तानें लेते समय गायक उसका चलन लगभग बिंदरावनी की तरह ही रखते हैं। किन्तु योग्य स्थानों पर पंचम लेकर तीव्र मध्यम का प्रयोग करके यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि हम बिंदरावनी से कोई अलग प्रकार गा रहे हैं।

प्र०—किन्तु, यदि उन्होंने अपने राग में तीव्र मध्यम का ही स्पष्ट प्रयोग किया तो रागभेद अवश्य होगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। किन्तु क्यों पंडित जी ! दोपहर के समय अन्य सब भाग विंदरावनी की तरह रखते हुए बीच में रागभेद के लिये तीव्र मध्यम का प्रयोग करना अच्छा लगता होगा क्या ?

उ०—तुम्हारा यह प्रश्न मार्मिक है । इसका एक दम समाधानकारक उत्तर देना तो कुछ कठिन ही है। तीव्र मध्यम जहां आता है, वहां उसके साथ पंचम और धैवत भी

म
लेने पड़ते हैं। जैसे प, मंप, धमंप, प, मरे, ऐसा किये बिना यह शोभा नहीं देगा। एक हिसाब से यह सब जान बूझकर और योग्य स्थान पर योग्य प्रमाण ही होना चाहिये।

प्र०—पहले आपने कहा था कि तीव्र मध्यम को प्रायः आरोह में लेते हैं, किन्तु अवरोह में नहीं लेते, ऐसा क्यों होता है ?

उ०—उसका कारण एक तो यह दिखाई देता है कि आरोह में रे, मंप, धप' यह जितनी सुन्दरता से बिना विशेष प्रयत्न के कहते बनता है, उतनी सफाई से तथा उतनी जल्दी प, मरे कहते नहीं बनता। उसकी अपेक्षा प, मंप, धप, मंप, मरे, यह अधिक आसानी से कहते बनता है। किन्तु इसके भी अतिरिक्त एक कारण यह भी हो सकता है कि कुछ गायकों के मत में तीव्र मध्यम को आरोहावरोह में लेने से सारंग का एक अलग ही भेद पैदा होता है और उस भेद का नाम वे 'नूरसारंग' बताते हैं।

प्र०—हां, यह कारण अधिक युक्ति संगत मालूम होता है; क्योंकि सा रे मं प, ध प, इतने ही स्वर अपने सामने रखकर, उसमें भिन्न भिन्न स्वरविन्यास करके फिर ऋषभ पर आकर मिलना इतना कठिन नहीं होना चाहिये, ऐसा हमें प्रतीत होता है। अब शुद्ध सारंग में दोनों मध्यम और दोनों निषाद लगने से एक भाग से दूसरे (कोमल म और नि लगने वाले) भाग में जाना कुछ कठिन अवश्य पड़ेगा, किन्तु यह असंभव अथवा विशेष कठिन नहीं होगा। तीव्र मध्यम को आरोहावरोह में लेकर कोई सारंग का विभिन्न कार मानते हों तो इस शुद्ध सारंग में तीव्र म को आरोह में मं प, ध प, मंप, मरे इसी

प्रकार लगाना उपयुक्त होगा। सारंग में कहीं-कहीं 'सा, नि़ प़, नि़ सा' इस प्रकार तीव्र निषाद का अवरोह में सुन्दरता के लिये प्रयोग करते हैं, वैसा ही यहां मध्यम का भी प्रयोग हो सकता है, ऐसा समझकर ही हमने प्रश्न किया था। अच्छा, अब हमें थोड़ा सा शुद्ध सारंग का विस्तार करके दिखायेंगे क्या ?

उ०—हां, देखो:—

सा, नि़, सा, रे, मरे, सा, नि़ सा, प़नि़ सा, रे, मरे, पमरे, सा, सारेसा। सा, नि़ सा, प़ नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, रे, मरे, पमरे, धप, मंपधप, मरे, परे, नि़सा, सारेसा,। सा, नि़ सा, रे मंप, धप, मंपधप मरे, पमरे, नि़ सा, रे, नि॒ प, मरे पमरे, मरे, सा, सारेसा। सा, रे, प, प, मं प ध, प, मं प ध प, मरे, सां, नि॒ प, मंप, धप, मरे, पमरे, मरे, रे, सा। सासा, रे रे सा, सासा रे रे, मंपधप, मंपधमंप, मरे, पमरे, सां, नि॒ प, मंपधप, मरे, परे, सा। सा, नि॒ नि॒ प़ म़ रे, म़ रे, प़ मं प़ ध़ प़, सा, नि़सा, रे, ममरे, पमरे, नि॒ नि॒ पमरे, मं प ध, प, मरे, परे, नि़ सा।

सासारे, मरे, सा, पमरे सा, मंप, सां, ध, प, मंप, धप, मंपमरे, मपनि॒नि॒ पमरे, पमरे, मरे, सा, सा, रे, सा।

म़ प़ नि़ सा, प़ नि़ सा, नि़ सा, रे, मंप, रे, धप, मंप, रे, परे, सा, ध, प, मंपधप, रे, परे, रे, सा।

मंप ध ध प, मंप, मरे, मंप, धप, मरे, नि़, सारे, मंप, सां ध, प, मंप, मरे, परे, सा। नि॒ नि॒ प मं प, ध, प, मरे, नि, सां, रें सां, प, मरे, पमरे, मरे, रे, सा। सा, नि़ सा, मंप, मरे, प, धप, सांध, प, मंध, प, मरे, नि़सारेमप नि॒पमरे, पमरे, रे, सा। सा, प, प, मंप, धप, मंपधप, मरे, नि़सारे, पमरे, ध, प, म, रे, सां, निध, प, मंप, धप, मरे, रेमपमरे, पमरे, मरे, रे, सा।

ममप, निसां, सां, सांरेंसां, मंरेंसां, निसां, ध, प, मंप, सां, ध, प, मंप ध, प, मरे, नि़सारे, मरे, पमरे, रे, सा।

प्र०—इस राग का चलन अब अच्छी तरह से हमारे ध्यान में आ गया है। इस राग में 'रे प, मं प' इतना आते ही मनमें कामोद का भास होने लगता है, किन्तु गंधार के अभाव से अर्थात् 'गमपगमरेसा' यह भाग इस राग में न होने से कामोद भी दूर रहता है। एक बात और भी हमने देखी कि यद्यपि इस राग में धैवत है, तथापि वह आरोह में तो नहीं रहता और अवरोह में भी 'सांनि॒धप' इस प्रकार सरल तान में नहीं होता। वह 'सां, ध, प, मंप, ध, प, मरे, इस प्रकार आता है। धैवत को छोड़कर 'सां, निसां, नि॒प, मंपधप, मरे' ऐसा भी हो सकता है। एक तीव्र मध्यम के ही लेने से कितनी उलझन पैदा हो जाती है। संभवतः तीव्र मध्यम और कोमल निषाद का विरोध ही इसका कारण होगा ? 'सांनि॒धप, मंप, धप, मरे' इस प्रकार हो सकेगा क्या ?

उ०—वैसा करें तो वह इतना विसंगत नहीं लगेगा; किन्तु सारङ्ग होने के कारण इसकी सारी शोभा पूर्वाङ्ग में रहती है, 'धनि॒ धप, मरे, ध, प, मरे, सांध, प, मरे, सांनिध, प, मरे, इनमें से कोई भी प्रकार किसी ने उत्तरांग में लिया तब भी 'पमरे, रेमपमरे,

रे, सा' इस टुकड़े का प्रभाव श्रोताओं के मस्तिष्क से नहीं हटेगा। अच्छा, पहले मैंने आरोहावरोह में तीव्र म लेने वाले प्रकार को 'नूरसारङ्ग' बतलाया है, उसे गाना हो तो कैसे करोगे ?

प्र०—वह काम इतना कठिन नहीं। एक तीव्र मध्यम लगाना आवश्यक होने से एवं तीव्र निषाद आरोहावरोह में ले लेने से ठीक जायेगा। हमारी समझ में वह प्रकार इस प्रकार होगा:—

सा, नि़सा, रे, म॑प, म॑प, धप, म॑पम॑रे प, धप, सां, निध, प, म॑प, म॑रे, परे, रे सा। नि़ सा, प़ नि़ सा, रे, सा, नि़ प़ नि़ सा, रे, म॑प, म॑रे, ध प म॑ रे, प, म॑ रे, रे, सा, नि़रेसा। नि़ सा रे रे सा, प म॑ रे रे सा, प, म॑ प, ध ध प म॑ रे रे सा, सां ध, प, म॑प, ध म॑ प, म॑रे परे, नि़ सा ! आपको कैसा मालूम होता है ?

उ०—ठीक है। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार को तुम समझ गये हो। जैसे-जैसे तुम अधिक अभ्यास करोगे वैसे-वैसे किस स्वर को कितने प्रमाण में लगाना चाहिए यह तथ्य अपने आप तुम्हारी समझ में आने लगेगा। मैं तुम्हें कई बार बता चुका हूँ कि यह विद्या, जो अभ्यास करेगा उसकी है। हम लोग जिन बड़े-बड़े गायकों को सुनते हैं उन्हें राग विस्तार या तानबाजी कोई सिखलाता है क्या ? वे सब अपनी बुद्धि से एवं परिश्रम करके अपने गले को एक प्रकार से तैयार करते हैं। इसीलिये एक ही घराने के गायक अथवा एक ही गुरु के शिष्य अलग-अलग गायकी गाते हैं। गला तैयार होते ही जब वह बड़ी-बड़ी आवेशपूर्ण और आड़ी तिरछी लय में तानों को गाते हैं तो श्रोतागण उनकी तत्काल प्रशंसा करने लगते हैं। उनका किया हुआ काम यदि उनके गुरू को करने के लिये कहा जाय तो वह उन्हें नहीं सधेगा। वे और कोई नया ही प्रकार निकालेंगे, किन्तु अब आगामी पीढ़ियों के लिये ग्रन्थों से अच्छी सुविधा प्राप्त होगी, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। अब आगे सङ्गीत शिक्षा व्यवस्थित होगी। मनचाहा ऊटपटांग; अनियमित तथा न समझने योग्य गाना गाकर उसे उच्च प्रकार की गायकी बताना, यह बेतुकी बातें बहुत हद तक दूर हो जावेंगी। अस्तु, इस शुद्धसारङ्ग का स्थूल स्वरूप ध्यान में रखने के लिये एक छोटी सी सरगम तुम्हें बताये देता हूं, फिर उसके बाद शुद्ध सारङ्ग के अर्वाचीन लक्षणों के आधार बता दूंगा।

सरगम—झपताल.

सा	रे	म	म	रे	प	ऽ	म॑	प	प
×		२			०		३		
(प)म॑	प	ध	ध	प	(प)म॑	प	म	ऽ	रे

प	म॑	ध	ध	प	सां	ऽ	(सां)ध	नि॒	प
म॑	प	म	रे	प	म	रे	रे	नि़	सा

अन्तरा.

(प)म	प	सां	ऽ	सां	नि	सां	रें	रें	सां
×		२			०		३		
नि	सां	रें	रें	सां	नि	सां	नि॒	नि॒	प
म	प	सां	ऽ	ऽ	(प)नि॒	प	(प)नि॒	नि॒	प
सां	नि॒	प	म	रे	प	रे	म	रे	सा

हरप्रियाव्हये मेले शुद्धसारङ्गसंभवः ।
आरोहे चावरोहेऽपि गांधारो वर्जितस्वरः ॥
रिषभोऽत्र मतो वादी संवादी पंचमो भवेत् ।
द्वितीयप्रहरे गानं सर्वरक्तिप्रदं दिने ॥
धैवतस्य प्रयोगोऽत्र व्यक्तो यत्परिदृश्यते ।
मध्यमादेः प्रभिन्नत्वमवश्यं प्रस्फुटं भवेत् ॥
तीव्रमध्यमहीनत्वं वृन्दावन्यां सुसंमतम् ।
शुद्धमध्यमरिक्तत्वं नूरसारङ्गलक्षणम् ॥
केचित्समादिशन्त्यत्र धैवतस्यैव लंघनम् ।
लक्ष्ये न तत्तथाप्यत्र बुधः कुर्यात् स्वनिर्णयम् ॥
हृदयकौतुके ग्रंथे तथैव हृत्प्रकाशके ।
द्विमध्यमो धगोनश्च सारंगः परिकीर्तितः ॥
पारिजाताख्यग्रंथेऽपि ह्यहोबलेन धीमता ।
सारंगो वर्णितः स्पष्टं निमद्वंद्वो धगोज्झितः ॥

लक्ष्यसंगीते ।

शुद्धसारंगः ।

शुद्धसारंगरागः स्याद्गांधारस्वरवर्जितः ।
ऋषभांशः षाडवश्च संवादी पंचमस्वरः ॥
संगतिश्चात्र मधुरा स्यात्पंचमनिषादयोः ।
मध्यमाह्नसमये चास्य गानं परमरक्तिदम् ॥
ऋषभो धैवतश्चैव तीव्रो द्वौ समुदीरितौ ।
मध्यमश्च निषादश्च कोमलौ द्वौ समीरितौ ॥

सुधाकरे ।

राग कल्पद्रुमकार ने एक ही श्लोक में मध्यमादि, शुद्धसारंग और विंद्रावनी ये तीनों ही प्रकार बताये हैं, यह तुमको मालूम ही है।

सरी मरी पमौ पश्च निपौ मपौ मरी च सः ।
सारंगः शुद्धपूर्वः स्याद्यंशो मद्वयशोभनः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

कोमल मनि तीखेहि रिध जहां बरजे गंधार ।
परिसंवादी वादितें सारंग कर निर्धार ॥

चन्द्रिकासार ॥

कुछ गायक शुद्ध सारंग में तीव्र मध्यम नहीं लेते, ऐसे गायकों को अपना राग अलग रखने के लिये धैवत का आश्रय लेना पड़ता है।

प्र०—यानी मधमाद सारंग में एक कोमल निषाद, बिंदरावनी में दोनों निषाद या एक तीव्र निषाद और शुद्धसारंग में दोनों निषाद और धैवत, इस प्रकार वे लक्षण बताते हैं क्या ?

उ०—हां, वैसे ही बताते हैं। उनके कहने में कोई तथ्य नहीं है, ऐसा हम नहीं कहेंगे। जब तक वे अपने राग स्पष्ट रागनियमों से गायेंगे तब तक उनकी हम निंदा नहीं करेंगे। हमारे दोनों मध्यम लगने वाले शुद्धसारंग के प्रकार को ग्रन्थाधार प्राप्त है, किन्तु उसमें जो धैवत हम लेते हैं उसका आधार नहीं है, यह तुमने देखा न ? सारांश यह कि यह सब बातें बहुत सोच समझकर ही करनी पड़ती हैं। 'मेरा कहना सच और तुम्हारा झूंठ' ऐसा अधिकार पूर्वक कहने के दिन अभी आने को ही हैं। फिर रागस्वरूप मनोरंजक है या नहीं, ये भी अभी निश्चित होना है। सारंग में दोनों मध्यम लगाने वाले बहुत थोड़े गायक मिलेंगे। कितने तो शुद्ध सारंग को मधमाद या बिंदरावनी का ही प्रकार मानते हैं, ऐसा भी मैंने कहा था। ग्रंथकार दोनों मध्यम लेने के लिये कहते हैं; किन्तु उस

प्रकार को शुद्ध सारंग न कहकर केवल सारंग नाम ही देते हैं, यानी यह घोटाला ठीक उसी प्रकार समझना चाहिये, जैसे 'शुद्ध कल्याण' और 'कल्याण' के बीच है।

प्र०—हां वैसा आपने कहा था। कुछ ग्रन्थकारों ने 'शुद्ध कल्याण' का स्पष्ट नाम देकर उसमें म और नि वर्ज्य करना बताया है। उदाहरण के लिये रागतरंगिणीकार लोचन को ही लेलो। पारिजातकार ने कल्याण नाम बताकर उसमें म, नि लगाने की अनुमति दी है। प्रचार में दोनों प्रकार के शुद्ध कल्याण गाये हुए हम सुनते हैं। यह सब हमको बहुत ही मनोरंजक लगता है। आगे कुछ दिनों बाद जब सभी राग अच्छी प्रकार नियमबद्ध होंगे तब मतभेद बहुत ही कम रहेगा, आपका यह कथन उचित ही मालूम होता है। हां, तो इस शुद्धसारंग की जानकारी हमें खूब हो गई। अब दूसरा कोई सारंग का प्रकार लिया जाय ?

उ०—हां, वैसा ही करता हूँ। बडहंससारंग, मियां की सारंग तथा सामंत-सारंग मुख्यतः अब यह तीन ही प्रकार रह गये हैं। बडहंससारंग की कुछ चर्चा खमाज थाट के राग बताते समय हमने की थी, वह तुम्हें याद ही होगा।

प्र०—हां, उस समय आपने ऐसा भी संकेत किया था कि काफी थाट के सारंग प्रकार बताते समय कुछ थोड़ा सा और कहना पड़ेगा। उस समय बडहंस राग के सम्बन्ध में बताते समय प्रथम 'गधवर्ज्यत्व' यह सारंग का मुख्य लक्षण हमें बताकर ग्रन्थ में बडहंस, बलहंस, वृद्धहंस इत्यादि नामों का भी उल्लेख है, ऐसा आपने कहा था। उसी स्थान पर आपने यह भी बताया था कि कुछ लोग बडहंस में निषाद को वादित्व देना स्वीकार करते हैं। फिर सारामृत, सङ्गीतसार, पारिजात, Captain Willard के ग्रन्थ-मत बताये थे और तत्पश्चात् प्रचलित रूप कैसा होता है, उसे भी थोड़ा सा दिखाया था।

उ०—ठीक है। उसका अधिकांश भाग तुम्हें याद है। मेरी समझ में पहले मियां की सारंग के विषय में दो शब्द कह कर फिर बडहंस के विषय में जो थोड़ा सा कहना शेष है, उसे कहूँगा।

प्र०—हमें कोई आपत्ति नहीं। जितनी जानकारी हमें मिलनी चाहिए, उतनी आप बताइये, बस। पहले या पीछे कभी भी बताइये ?

उ०—अच्छा तो 'मियां की सारंग राग हमारे मुसलमान गायकों द्वारा प्रचार में लाया गया, ऐसा समझा जाता है।

प्र०—'मियां की सारंग' राग 'मियां की मल्हार' 'दरबारी कानडा' इत्यादि मियां तानसेन द्वारा प्रचार में लाये गये रागों के समान ही समझना चाहिये क्या ? इन नामों को हम प्रायः सुनते हैं और इन रागों को तानसेन ने प्रचलित किया, ऐसा भी सुनते हैं।

उ०—इसे प्रथम किसने निकाला, यह बताना तो कठिन है, किन्तु 'मियां की' इस प्रारम्भिक शब्द से ज्ञात होता है कि तानसेन उसे प्रचार में लाये; कुछ लोगों के द्वारा प्रायः ऐसा ही कहा जाता है। इस राग को प्राचीन ग्रन्थाधार मिलना तो असंभव ही है। इसको

रचना कैसी है, अर्थात् गायक इसे किस प्रकार गाते हैं, इतना ही इसके विषय में कह सकते हैं। यह एक स्वतंत्र और सुन्दर प्रकार है। इसे सभी गायक जानते हैं, ऐसा तो नहीं समझना चाहिये। हमारे (महाराष्ट्र) प्रांत में तो अधिकांश लोगों ने इसका नाम तक नहीं सुना होगा।

प्र०—तो फिर कहना पड़ेगा कि यह भी अप्रसिद्ध रागों में से ही एक है। यदि इसे तानसेन ने उत्पन्न किया है तो बहुत पुराना होगा ही, किन्तु फिर भी यह इतना अप्रसिद्ध क्यों है ?

उ०—यह तो ठीक है कि यह अप्रसिद्ध है। कम से कम हमारे प्रांत के गायकों के द्वारा इसे गाते हुए मैंने बहुत कम सुना है। उत्तर की तरफ इसे बड़े बड़े गायक अवश्य गाते हैं। रामपुर की तरफ तो यह बहुत ही प्रिय है। वहां के राजगुरू वजीर खां इसे अच्छा गाते थे। उन्होंने यह राग मुझे पहले सिखाया और मैं अब तुम्हें इसे नियमानुसार बताने वाला हूं। वे तानसेन के घराने में से थे, यह मैंने बताया ही था। दूसरे उस घराने के गायक मोहम्मद अली खां (बासतखां के लड़के) ने भी इस राग को मुझे वैसा ही गा कर सुनाया था।

प्र०—तो अब, इस राग को गाना तथा पहिचानना बता दीजिये ?

उ०—वही करता हूँ। यह राग 'मियां की सारंग है। इसमें 'मियां की' इस शब्द का रहस्य जानने के लिये स्वाभाविक इच्छा होती है। और जब यह सारंग है तो इसमें सारंग के लक्षणों का होना भी आवश्यक है। पहले मैं यह बताये देता हूं कि इस राग में गंधार का अभाव और धैवत का दुर्बलत्व यह सारंग के लक्षण तुम्हें अवश्य दिखाई देंगे। 'निसा, रेम, प, निप, सां, निप, मरेसा' यह सारङ्ग का हिस्सा इस प्रकार में तुम्हें अवश्य दिखाई देगा। किन्तु दुर्बलत्व का अर्थ वर्ज्यत्व नहीं है। इसमें धैवत स्वर निषाद के साथ गुथा हुआ दिखाई देगा।

प्र०—तो फिर सारङ्ग के विषय में संशय करना व्यर्थ ही है, वह तो इसमें स्पष्ट ही दिखाई देगा।

उ०—हां, ठीक है। फिर ऋषभ और पंचम की संगति भी तुम इस राग में देखोगे। 'दरबारी कानड़ा' को कुछ गायक 'मियां का कानड़ा' भी कहते हैं। वह राग 'मियां-की सारङ्ग' से बिल्कुल भिन्न है; क्योंकि उसमें गंधार और धैवत कोमल होंगे। वास्तव में इन स्वरों के बिना दरबारीकानड़ा हो ही नहीं सकता, ऐसा आगे तुम्हें दिखाई देगा।

प्र०—तो फिर उस राग का इस राग से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। केवल 'मियां' का यह नाम मात्र ही दोनों में एकसा है, ऐसा समझना चाहिये, ठीक है न ?

उ०—उसमें भी समझदार व्यक्तियों को एक बात यह दिखाई देगी कि दरबारी-कानड़ा में यद्यपि गंधार और धैवत कोमल स्वर रागवाचक हैं, तथापि उसका मूल रूप 'सा रे म प नि सां-नि प म रे, सा' स्पष्ट दिखाई देने योग्य होता है।

प्र०—ठहरिये ! यह हम ठीक से नहीं समझे। तो फिर दरबारी कानड़ा भी एक सारङ्ग प्रकार है, यही आपका आशय है क्या ?

उ०—नहीं, मैं यह नहीं कहूँगा कि वह एक सारङ्ग प्रकार है, क्योंकि उसमें गंधार और निषाद ये निषिद्ध स्वर स्पष्ट लगने वाले हैं। किन्तु यदि उस राग के आरोहावरोह यदि तुम देखोगे तो उसमें तुम्हें थोड़ा सारङ्ग का भाग अवश्य दिखाई देगा।

नि़, सा, रे, म प, ध़, नि़ सां। सां, नि़ ध़, नि़ प, म प, ग़, म रे सा। ऐसे स्वर साधारणतया आरोहावरोह में होंगे। इनमें 'नि़ सा, रे म प' यह टुकड़ा सारङ्ग के समान स्पष्ट ही है 'नि प, म प' यह सारङ्ग में है ही, 'म रे सा' यह भी है, किन्तु मैंने तुम्हें यह बताया ही था कि अपने दिन और रात्रि के राग 'प्रतिमूर्ति' न्याय द्वारा रचे गये होंगे। रात्रि का कल्याण और प्रातःकाल का बिलावल, रात्रि के कानड़े और दिन के सारङ्ग, इनमें यह न्याय दिखाई देगा, ऐसा मैंने कहा ही था। गवालियर के कुछ ख्याल गायक कानड़े में 'नि नि प म प, रे, सा' ऐसी तान कभी-कभी लेते हैं। वह भी इसी दृष्टि से लेते हैं। यद्यपि कानड़ा के आरोह में गंधार का प्रयोग शास्त्र विरुद्ध नहीं है तो भी उस राग का स्वरूप सारङ्ग जैसा होने के कारण जलद तान लेते समय वह गन्धार ठीक से लेने में नहीं आता। किन्तु मित्र! दरबारी कानड़ा पर बीच ही में विचार करना हमारे लिये असुविधाजनक होगा। मेरे कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि 'मियां की सारङ्ग' शब्द के पूर्व पद में 'मियांपन' कौनसा है, इसका दिग्दर्शन होना चाहिये।

प्र०—अब समझ में आया। हम आपसे विषयान्तर में जाने का आग्रह नहीं करेंगे। 'मियां की सारङ्ग' राग के सम्बन्ध में ही हमको जानकारी दीजिये। 'मियां की सारङ्ग' तथा 'मियां का कानड़ा' में कुछ भाग साधारण हैं, केवल इतना ही अभी हम ध्यान में रखेंगे?

उ०—ठीक है। मियां की सारङ्ग में सारङ्ग-भाग कौनसा है, यह तो कहा जा चुका है। अब यह राग अन्य सारङ्ग प्रकारों से कैसे पृथक होता है, वह कहता हूं। इस राग में धैवत-प्रयोग करने की अनुमति है तथा दोनों निषाद लेने में भी आपत्ति नहीं।

प्र०—तो फिर कहना चाहिये मधमाध तथा 'ग ध वर्ज्य' बिंद्रावनी इस राग से पृथक हो गये। किन्तु धैवत का तनिक स्पर्श किया जाने वाले बिंद्रावनी का तथा शुद्ध-सारङ्ग का प्रश्न रहता है। शुद्ध सारङ्ग में दोनों मध्यम हैं और इसमें एक ही हुआ, तो फिर शुद्ध सारङ्ग स्वतः भिन्न होगा।

उ०—हां, इस राग में शुद्ध यानी अपना कोमल मध्यम ही लेते हैं, इस कारण शुद्ध सारङ्ग से यह अवश्य पृथक होगा। अब धैवत का किंचित प्रयोग किया जाने वाला बिंद्रावनी प्रकार ही तो बचा। दूसरा एक धैवत लिया जाने वाला बडहंस सारङ्ग प्रकार है, परन्तु उसके सम्बन्ध में हम अन्यत्र चर्चा करेंगे। धैवत लगने वाले बिंद्रावनी

प्रकार में धैवत स्वर अवरोह में लिया जाता है, अथवा क्वचित् ध नि़ प, ऐसी मींड में लेते हैं। यह मैंने पहले भी कहा था। सारङ्ग की सब पहचान धैवत पर निर्भर है। मार्मिक व्यक्तियों का कथन है कि 'मियां की मल्लार' नामक राग में जैसा धैवत लिया जाता है, वैसा धैवत लिया जाय तो 'मियां की सारङ्ग' होगा। 'मियां की मल्लार' राग

मैंने अभी तुमको नहीं सिखाया है, किन्तु उसमें धैवत किस प्रकार लिया जाता है, यह बताना सरल ही है। उसमें धैवत इस प्रकार लिया जाता है देखोः— सा, नि़ सा, नि़ ध़, नि़ सा, रे सा ध़ नि़ ध़, नि़ सा, म़ प़ प़, ध़, नि़ ध़, नि़ सा, रे सा, नि़ सा, नि़ प़, म़ प़, ध़ नि़, सा। यह धैवत लेते समय वे सावकाश आन्दोलन करते हैं, इस कारण ध़, नि़ ध़, नि़, ध़, नि़ सा। ऐसा प्रकार सुनने में आता है। यह कृत्य अत्यन्त मधुर है। इसको मैं करके तुम्हें दिखाता हूँ, अच्छी तरह ध्यान में रखना। अन्य किसी राग में यह इस प्रकार से नहीं आयेगा, ऐसा भी तुम समझ कर चलो तो कोई हर्ज नहीं। यह भाग उत्तरांग में लेकर फिर पूर्व भाग में स्पष्ट सारङ्ग लेना चाहिये। कुछ गायकों का कथन है कि इस राग में तीव्र निषाद कोमल की अपेक्षा अधिक रखना चाहिये, इससे राग अधिक सुन्दर होगा। ये दोनों प्रकार मैं अभी तुमको बताता हूँ, उन्हें भली प्रकार ध्यान में रखना। यह भाग सरगमों द्वारा ही तुम ठीक से समझ सकोगे। पहिला प्रकार, जिसमें कोमल निषाद की अपेक्षा तीव्र निषाद विशेष प्रमाण में है, वह इस प्रकार हैः—

सा, रे सा, ध़ प़, ध़, नि़ सा, नि़ सा, सा, रे सा, सा रे, म रे, म प, प ध प, म रे, सा। दूसरा प्रकार ऐसा हैः—

सा, रे सा। ध़, प़, प़, नि़ ध़ नि़ ध़, नि़, सा, सा, रे सा, नि़ सा, रे, म, म प, प, ध प म, रे, सा।

प्र०—इस प्रकार के आरोह में स्पष्ट धैवत, 'नि़ ध़, नि़ सा' ऐसे लिया जाता है, यह हमको ध्यान में रखना चाहिये। ठीक है न?

उ०—हां, ऐसे ही लेने में आता है। यह भाग 'मियां की मल्लार' का है। उस राग में भी यह धैवत वैसा ही लेने में आता है। उत्तरांग में 'सां, ध, प, म रे सा'।

प्र०—'रे प' संगति इस राग में चलती है, ऐसा आपने कहा था; किन्तु वैसी संगति आपके कहे हुए दोनों प्रकारों में नहीं थी। वह विशेष रूप से लेनी ही चाहिये, ऐसा नहीं जान पड़ता?

उ०—उसे विशेष रूप से लेने की आवश्यकता नहीं; कुछ स्थानों पर वह आयेगी, केवल इतना ही मेरा कहने का अभिप्राय था। उदाहरण के लिये यह सरगम देखोः—

सा, नि़ सा, ध़ नि़, प़ ध़ नि़ सा, सा, सा रे, प म रे सा, सा रे म, म प, प नि॒ प म रे, सा, रे सा, रे प म रे, रे सा। प, प नि, नि, सां सां, सां रें सां, रें सां नि॒ प, म प ध, रें, सां, सां, नि॒ प, म रे सा, रे प रे, सा॥

प्र०—कोई कुछ भी कहे, किन्तु यह राग स्वतन्त्र होकर भी मधुर है, ऐसा हमें जान पड़ता है।

उ०—हां, यह तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। वजीर खां ने मुझ से कहा था कि यद्यपि इस राग में 'मियां की मल्लार' को दिखाने का इशारा 'नि ध' स्वरों से होता है, फिर भी यह भाग बिलकुल थोड़े से में समेट कर मुख्य सारङ्ग राग की स्थापना करने का ही प्रयत्न होना चाहिये। अर्थात् वहां नि ध, नि ध, नि ध, ऐसा स्पष्ट न करके ध ध ध, ऐसा किया हुआ अच्छा दीखेगा। इसीलिये कोई 'सा, नि सा, ध, नि सा, नि ध, प,' इस प्रकार करते हैं। अच्छा तो इतने स्पष्टीकरण से इस राग का विस्तार तुम कैसे करोगे, देखें:-

प्र०—प्रयत्न करता हूँ:—

सा, नि सा, रे प म रे, सा, नि सा ध ध नि प म प, ध ध नि सा सा, रे, म रे, सा, म रे सा, नि सा, प ध, नि सा, सा रे म रे म प, प, ध प म रे, म प म रे, म रे, सा, नि प, म रे, सा, नि सा, रे, म रे, प म रे, सा, प, ध, ध नि सा, सा रे सा।

सा रे सा, नि सा, प ध नि सा, ध नि सा, नि सा, सा रे, म रे, प म रे सा, म प, ध ध, नि प, म प ध नि प, सां, ध, नि प, म प म रे, सा, नि सा, रे म रे, सा।

सां, नि प, म प प, नि ध, नि ध, सां, नि सां, रें सां, मं रें सां, रें सां रें सां, ध नि प, म प ध, नि सां, रें सां, ध ध नि प म प म रे रे सा।

हमारा यह प्रयत्न कुछ सार्थक है क्या?

उ०—मेरी समझ से अब यह राग अच्छी तरह तुम्हारे ध्यान में आगया। सारङ्ग के अन्य प्रकारों से यह पृथक अवश्य होगा। और भी इस प्रकार के अनेक छोटे बड़े स्वरसमूह बनाते गये तो बस काम बन गया। धैवत तुमने ठीक ही रखा है। कोई कोमल निषाद को खुला रखते हैं और कोई उसे धैवत के "कण के" रूप में लेते हैं, केवल इतना ही भेद है। उसके न होने से यदि राग ठीक से न बने तो बीच-बीच में खुला रखने से विशेष हानि नहीं होगी, "प नि ध, नि ध, नि सा" यह टुकड़ा राग-वाचक मानकर लिया जाय, अथवा प, ध ध, नि सा" ऐसा लिया जाय तो भी अन्तर

नहीं पड़ेगा। केवल कानों पर राग परीक्षा को न छोड़ो, ऐसा जानकार लोगों का कथन है। इस राग में थोड़ा सा मियां मल्लार का अन्श दिखाते हैं, ऐसा मेरे जयपुर के गुरु मुहम्मद अली खां ने भी कहा था।

अब मैं इस राग का विस्तार करके दिखाता हूँ। वह भी सुनोः—

सा, ध़, सा, रे म रे, सा, नि़ सा, नि़ ध़ नि़ ध़, सा, नि़ प़, म़ प़, ध़ ध़ सा, रे सा नि़ सा, म रे प म रे सा। सा रे सा।

नि़ सा, रे म रे, नि़ सा, प़ नि़ ध़ नि़ सा, रे प म रे, सा, नि़ सा, रे म, प, प, ध, नि प, म प, म रे, प म रे, सा, नि़ सा, रे सा।

म़ प़, ध़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, म रे, सा, प म प नि ध, सां ध नि प, प नि प, म प म रे नि ध नि प, म रे, सा, नि़ सा, रे म रे सा, रे सा, ध़ ध़ नि़ सा, प म रे सा। नि़, सा, ध़ नि़, प़ ध़ नि़ सा, रे प म रे, सा, म, म, प ध प, म रे, सा, नि़ सा, रे म रे सा, रे सा, प़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, रे, नि प, म प म रे, सा रे, प म रे सा। अब यह एक प्रकार तान का देखोः—प, नि ध, ध, सां, सां, रें सां, सां, नि प, म प, ध, सां रें सां नि प, म प, म रे, सा, सा रे, प म रे सा, रे सा। ध, ध, नि प, म प, ध सां, रें सां नि प, म नि प, म प, रें सां, नि प, प, म रे, रे म रे, सा नि़ सा, रे सा।

इन तमाम विस्तारों का तथ्य तुम्हारे ध्यान में आ ही गया है। इस राग में धैवत तथा दोनों निषाद हैं, और अपना राग मियां की मल्लार से पृथक रखना है। मियां की मल्लार में कोमल गन्धार है और इसमें नहीं है, यह एक स्थूल नियम है; किन्तु उत्तरांग में भी वह राग थोड़ा रखना चाहिये। अब यह राग अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जाय इस हेतु इस राग की एक दो छोटी सी सरगम कहता हूं। ये सरगम मैं किस प्रकार कहता हूं, उसमें 'कण' किस प्रकार लगाता हूं, यह बातें तुम्हें भली प्रकार ध्यान में रखनी चाहिये। कण की उपेक्षा करने से तुम्हारे राग का वैचित्र्य कम हो जायगा। वर्ज्यावर्ज्य नियम से तुम्हारा राग मियां की सारङ्ग अवश्य होगा, किन्तु उसका सौन्दर्य व आकर्षण कम होने की सम्भावना रहेगी। हिन्दुस्थानी सङ्गीत का आधा वैचित्र्य तथा रंजकता कण में है, ऐसा हमारे मार्मिक गायकों का मत है।

सरगम—त्रिताल. (साधारण ठा लय)

नि़	रे		नि़ नि़
(सा) ध़ सा रे	म रे ऽ सा	नि़ सा रे सा	सा (सा) धनि़ प़
३	×	२	०
प नि़ नि़	नि़	नि़ म	
म़ प़ ध़ ध़	सा ध़ सा सा	सा रे म रे	प म रे सा॥

अन्तरा—

नि़ म		प	
सा रे म म	प ऽ प प	म म प प	(प) म रे सा
३	×	२	०
नि़	प		म
सा रे म ऽ	म प ऽ प	(प) म रे म	सा रे सा ऽ॥

सरगम—चौताल—(विलंबित)

रे़ सा।

नि़		म़ नि़			
ऽ ध़	नि़ प़	प़ ध़	ऽ सा	ऽ सा	रे सा
३	४	×	०	२	०
नि़		नि़ म			
सा रे	सा सा	सा रे	ऽ म	ऽ म	प प
प		नि़			
म प	ऽ प	ध प	ऽ म	रे सा	रे सा।

अन्तरा—

	नि	नि			
प प	ऽ ध	ऽ ध	नि सां	ऽ सां	रें सां
×	०	२	०	३	४

नि॒ ध	नि॒ ध	ऽ	नि	सां	ऽ	रें	सां	ऽ	ध नि॒	नि॒	प
प म	प	नि॒ ध	रें	सां	ऽ	ऽ	नि॒ ध	ऽ	नि॒	प	प
ध	प	ऽ	म	रे	सा						

———

मेरे रामपुर के गुरु वजीरखां ने जो चीजें मुझे सिखाई हैं, उनमें म प, नि॒ ध नि॒ ध नि सां सां, नि सां, ऐसा कृत्य स्पष्ट रूप से करने की मुझे अनुमति दी। उन्होंने कहा कि यहां मियां की मल्लार दिखाई देती है, परन्तु आगे कोमल गन्धार सर्वथा वर्ज्य होने के कारण यह राग मियां की मल्लार से स्वतः पृथक हो जायेगा। उनका यह कथन मुझे भी उपयुक्त प्रतीत हुआ। यह राग मन्द्र तथा मध्य स्थान में विशेष सुन्दर जान पड़ता है, यह भी उन्होंने मुझ से कहा था।

प्र०—यह राग अब बहुत अच्छी तरह से हमारी समझ में आ गया है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में यह राग मिलना सम्भव नहीं, यह आपने कहा ही था। अच्छा, हमारे कल्पद्रुमकार, नादविनोदकार अथवा राजा प्रतापसिंह मियां की सारङ्ग के सम्बन्ध में कुछ जानकारी देते हैं क्या?

उ०—नहीं! इन तीनों ग्रन्थकारों द्वारा इस राग के सम्बन्ध में कुछ कहा हुआ नहीं दिखाई देता। इस राग में अन्य सारङ्ग प्रकारों की भांति ऋषभ वादी तथा पंचम संवादी मानने का प्रचलन है। समय मध्यान्हकाल तथा जाति षाडव है। पकड़, 'सा, नि़ सा, नि॒ ध़ नि़ सा, रे सा' है। आरोहावरोह स्वरूप, 'सा, नि॒ ध़, नि़ सा, रे, म रे, प, नि॒ ध, सां नि॒ ध नि॒ प, म रे, सा।' ऐसा होगा। इसमें मियां की मल्लार का अङ्ग होने से यह अन्य रागों से तुरन्त पृथक हो जाता है। 'म रे' तथा 'प रे' ये संगतियां सारङ्ग होने के कारण, इस राग में बाधक नहीं होतीं।

प्र०—अब इस राग के प्रचलित लक्षण बताने वाले आधार कहिये?

उ०—हां, कहता हूं। सुनो:—

हरप्रियाव्हये मेले मीयांसारंग ईरितः।
आरोहे चावरोहेऽपि गांधारो वर्जितस्वरः॥

ऋषभः संमतो वादी संवादी पंचमो मतः ।
गानं चास्य समीचीनं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
यतः सारंगभेदोऽयं रयंशत्वं युक्तमेव हि ।
मंद्रमध्यस्वरैर्गीतो भूरिरक्तिप्रदो भवेत् ॥
रिपयो रिमयोश्चाथ संगत्या नित्यशो जने
सारंगागं भवेत्स्पष्टमित्याहुर्लक्ष्यवेदिनः ॥
संगतिर्निधयोरत्र रागभेदं प्रदर्शयेत् ।
मीयांमल्लारिकाच्छाया तत्रैव प्रस्फुटा भवेत् ॥
सनिधनिधसैः प्रायो रागस्य मंडनं भवेत् ।
गांधाराभावतो नित्यं मल्लारांगं निवारयेत् ॥
मृदुनिषादसंयुक्ता मध्यमादिर्भजेद्द्विदाम् ।
वृन्दावनो धगानासौ निषादद्वयसंयुता ॥
द्विमध्यमप्रभिन्नः स्यात्सारंगः शुद्धपूर्वकः ।
एकेन तीव्रमेन स्यान्नूरसारंगसंज्ञितः ॥

लक्ष्यसंगीते ।

तानसेन प्रयुक्तोऽत्रमीयासारंग उच्यते ।
मंद्रमध्यस्वरैर्गीतो भवेद्रक्तिविवर्धकः ।
ऋषभांशः षाडवश्च संवादीपंचमस्वरः ।
निधयोः संगतिरीषत्स्यान्मंद्रे रक्तिदायिनी ॥
मीयांमल्लाररागस्य छायेषदभिलक्ष्यते ।
मध्याह्नसमये गानं सारंगत्वादतिप्रियम् ॥

सुधाकरे ॥

मित्र ! चूंकि मियां की सारंग के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता, अतः मेरी दी हुई जानकारी पर ही इस समय तुमको सन्तुष्ट रहना होगा। जब-जब यह राग तुम्हारे सुनने में आये, और उसमें कोई विशेषता दिखाई दे तो उसे ध्यान में रखलो। बस, अब हमें कोई दूसरा सारङ्ग प्रकार लेना चाहिये ?

प्र०—इस राग के सम्बन्ध में संस्कृत ग्रन्थों में कुछ नहीं कहा गया तो क्या उर्दू अथवा पर्शियन ग्रन्थों में भी इस राग का उल्लेख नहीं है ?

उ०—ऐसी संभावना अवश्य है। परन्तु एक तो मुझे ऐसे ग्रन्थ मिले नहीं और फिर मुझे वह भाषा नहीं आती, इसलिये उन ग्रन्थों में इस राग के विषय में कुछ कहा गया है अथवा नहीं, यह मेरे लिये कहना संभव नहीं है। तुम इसकी खोज अवश्य करना

काश्मीर के फकीरुल्ला के रागदर्पण में अथवा 'मादनुलमौसीकी' जैसे ग्रन्थों में कदाचित् कुछ कहा गया हो। रामपुर की लायब्रेरी में कुछ उर्दू तथा पर्शियन रिसाले हैं, उनमें भी कुछ मुसलिम राग सम्बन्धी जानकारी मिल सकती है। किन्तु अभी तुमने उर्दू व पर्शियन ग्रन्थों की बात कही इसलिये 'नगमाते आसफी' नामक पर्शियन ग्रन्थ में 'शुद्ध-सारङ्ग' तथा 'सारङ्ग' रागों के सम्बन्ध में क्या लिखा है, वह कहूँ क्या ?

प्र०—अवश्य कहिये। उसमें क्या बताया है ?

उ०—प्रथम मधमाद् राग के सम्बन्ध में ग्रन्थकार कहता है कि मेघराग की यह एक रागिनी है तथा इसके पांच स्वर मेघ राग के ही हैं। ऋषभ की पुनरावृत्ति से यह पृथक होता है। मधमाद का स्वरूप मेघ जैसा ही है। यह उसने ठीक ही कहा है।

प्र०—ऋषभ की पुनरावृत्ति से उनका तात्पर्य वादित्व से होगा ?

उ०—हां, 'प्रयोगे बहुधावृत्तः स्वरो वादीति कथ्यते' यह हमारे पण्डितों की वादी स्वर की व्याख्या प्रसिद्ध ही है। आगे शुद्ध सारंग के सम्बन्ध में वह कहता है कि यह भी मेघ की ही एक रागिनी है। किन्तु यह सब बातें पहले नगमात के मत का वर्णन करते समय मैंने बताई ही थीं।

प्र०—एकदम तमाम ग्रन्थों का सार कह देना तथा प्रत्येक राग की चर्चा करते समय केवल उस राग सम्बन्धी ग्रन्थ मत कहना, इसमें बड़ा अन्तर हो जाता है। इसलिये हम यही प्रार्थना आपसे करते हैं कि उस ग्रन्थ में सारंग के विषय में जो कुछ कहा गया हो उसे पुनः हमें बताने का कष्ट करें।

उ०—अच्छा तो कहता हूँ। ग्रन्थकार ने लिखा है:—'शुद्धसारंग' राग से अर्थात् उसके जनक राग से मिलेगा। इस रागिनी में छः स्वर हैं। उनमें से पांच मेघ के ही हैं। किन्तु उनमें 'तीव्रतम ग' तथा 'तीव्र ध' आते हैं, इसलिये राग पृथक रहता है। बिंद्रावनी में ग व ध स्वर वर्ज्य हैं। सारंग में शुद्ध मध्यम नहीं है। मेघ में ग तथा ध वर्ज्य हैं।

प्र०—क्यों जी ! इस लेखक को 'रागतरंगिणी' तथा 'हृदय प्रकाश' ग्रन्थों की जानकारी नहीं थी क्या ? कदाचित् उसके इस ग्रन्थ में मेघ के जो स्वर बताये गये हैं, उनके सम्बन्ध में थोड़ी बहुत गलतफ़हमी भी हुई होगी, आपका क्या मत है ?

उ०—ग्रन्थकार ने उस ग्रन्थ का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। ऐसी दशा में तुम्हारे प्रश्न का उत्तर निश्चयात्मक रूप कैसे दिया जा सकता है ? उस ग्रन्थकार ने 'मेघसंस्थान' देकर 'केदार, इमन, सारंग तथा कर्णाट' इतने संस्थान का मेल कर दिया है, अतः तुम कह रहे हो वैसी अन्य समझदार लोगों को भी उलझन होना सम्भव है। किन्तु हमें आसफीकार की वैसी टीका करने की आवश्यकता नहीं। 'शुद्धसारंग' में तीव्रतम ग व 'तीव्र ध' आते हैं, यह उसने इस रागिनी का मेघ से अन्तर दिखाया है, इतना ही हम मानकर चलें। फिर सारंग में शुद्ध मध्यम नहीं, ऐसा भी वह कहता है। इस अन्तिम वाक्य का क्या अर्थ है, अब यह प्रश्न तुम्हारे मन में उत्पन्न होगा।

प्र०—हां, यही मैं पूछने वाला था। सारंग में शुद्ध मध्यम नहीं, यह कहना कहां तक उपयुक्त है? मेरी समझ से उसके स्वर स्थानों का स्पष्टीकरण जान लेना हितकारी होगा कि उसके कौन से स्वर शुद्ध तथा विकृत माने जायें?

उ०—ठहरो। वह मेघराग की 'सारंग' नामक एक और रागिनी बताता है तथा उसके स्वरों के विषय में क्या कहता है, सो देखो।

प्र०—वह मेघ की कौन सी रागिनियों का वर्णन करता है?

उ०—तुम भूल गये हो, ऐसा जान पड़ता है। खैर मैं फिर से कहता हूँ। वह मेघ की छः रागनियां इस प्रकार बताता है:—१-मधमाद, २-गौड, ३-शुद्ध सारंग, ४-बडहंस, ५-सामंत, ६ सोरट। इन रागनियों का मुख्य जनक से साम्यासाम्य कह कर आगे उसके स्वर अर्थात् तीव्र व कोमल बताकर फिर वादी, संवादी, अनुवादी आदि का भी वर्णन करता है। इन स्वरों का उल्लेख करते समय रागनी का नाम 'शुद्ध सारंग' न कहकर केवल 'सारङ्ग' नाम ही देता है।

प्र०—तो फिर यही कहा जाय कि वह सारङ्ग और शुद्धसारङ्ग को एक ही समझता था।

उ—मेरी समझ से ऐसा मानने में हानि नहीं। मैंने भी तो शुद्ध सारङ्ग का वर्णन करते समय वैसा ही मानकर सारंग विषयक ग्रन्थमत दिये थे। शुद्ध सारङ्ग तथा सारङ्ग एक ही राग के नाम हैं, ऐसा मानना ठीक है। अस्तु, रागनी के स्वर तथा वादी-संवादी का उल्लेख करते हुए वह सारङ्ग के सम्बन्ध में क्या कहता है, देखोः—

सारंग में पंचम वादी तथा धैवत संवादी है। ऋषभ, मध्यम एवं निषाद स्वर अनुवादी हैं। री तीव्र, ग तीव्रतम अथवा अधिकांश कोमल म, शुद्ध म तथा तीव्रतर म स्वर भी आते हैं; प शुद्ध, ध तीव्र और नि तीव्र।

प्र०—देखा? 'ग तीव्रतम अथवा अधिकांश कोमल म' कहने से पता चलता है कि पारिजात अथवा वैसा ही कोई अन्य ग्रन्थ उसके देखने में अवश्य आया होगा। क्योंकि उसमें 'अतितीव्रतमो गः स्यात्' ऐसा कहा गया है।

उ०—अभी हम इस चर्चा में क्यों उलझें? आगे ग्रन्थकार कहता है:—किसी गायक के मत से तीसरी रागिनी 'सारङ्ग' अथवा 'शुद्ध सारङ्ग' न मानकर उसे बिंद्रावनी माननी चाहिये। उसमें म, प शुद्ध, रि तीव्र, नि कोमल प वादी, म संवादी, नि अनुवादी हैं। थाट मेघ का ही है।

प्र०—इससे यह बात निश्चित हो जाती है कि मधमाद, बिंद्रावनी तथा 'शुद्ध-सारङ्ग अथवा सारङ्ग' ये राग प्रारम्भ से ही पृथक-पृथक माने जाते हैं। उसके वादी-संवादी का इतना महत्व नहीं।

उ०—हां, यह मैं तुमको पहले ही बता चुका हूं। वह प वादी रखकर उसका संवादी म अथवा ध क्यों मानता है, इसका कारण उसने नहीं लिखा, अतः इस सम्बन्ध में हम विचार नहीं करेंगे।

प्र०—ठीक। इस 'नग़माते आसफ़ी' ग्रन्थ में 'मियां की सारङ्ग' राग के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है क्या ?

उ०—इस ग्रन्थ का अनुवाद मेरे एक मित्र ने मुझे भेजा था, उसमें तो इस राग का उल्लेख नहीं है। मूल ग्रन्थ में यदि हो भी तो मुझे पता नहीं। इसकी खोज आगे चलकर तुम ही करना।

प्र०—अच्छा, तो फिर अब कौन सा राग बतायेंगे ?

उ०—मेरी समझ से अब हम 'सामंत सारङ्ग' लें। इस राग का 'सामंत', 'सामंत-सारङ्ग', 'सावंत' अथवा 'सावंत सारङ्ग' या केवल 'सामत' ऐसे नाम गायकों के मुख से हम सुनते हैं। यह अप्रसिद्ध रागों में ही माना जाता है। यह अत्यन्त प्राचीन है। इसको ग्रन्थकार 'सामंत' इतना ही नाम देते हैं। 'सामंत सारङ्ग' यह संयुक्त नाम उसका सम्पूर्ण स्वरूप देखकर कदाचित् बाद में दिया गया होगा। इसके प्राचीन स्वरूप तथा वर्तमान स्वरूप में बड़ा अन्तर हो गया है, यह बात तुमको ग्रन्थमत देखने के पश्चात विदित होगी। आज इसको एक सारङ्ग प्रकार मानते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। यह राग दक्षिण तथा उत्तर इन दोनों ओर के ग्रन्थों में दिखाई पड़ता है।

प्र०—उसके स्वरूप के विषय में भी मतैक्य है क्या ?

उ०—यह तुम स्वयं अभी देखोगे। मेरे मत से सामंत के प्रचलित स्वरूप का वर्णन करने से पूर्व पहले हम उसके स्वरूप के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थकारों के मत देखलें। क्यों कि इस राग का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास देखने योग्य होगा। शार्ङ्गदेव ने अपने रत्नाकर में इस राग का उल्लेख नहीं किया है।

प्र०—और यदि किया भी होता तो उसका निर्णय हम नहीं कर पाते ?

उ०—हां, यह भी तुमने ठीक कहा। उसी प्रकार सङ्गीतदर्पणकार दामोदर ने भी इस राग का वर्णन नहीं किया। मैंने पहले कहा था, कदाचित् तुम्हें याद होगा कि दामोदर पण्डित ने सारा स्वराध्याय रत्नाकर से लेकर, उसमें के जाति प्रकरण को छोड़कर, रागाध्याय में शिवमत के छः राग तथा छत्तीस रागिनी के नाम तथा हनुमन्मत के छः राग एवं तीस रागिनी व उनके नाम तथा लक्षण कहे हैं। ऐसा करके फिर "कल्याण नाट, त्रिवण, पाहाडी, पञ्चम, शंकराभरण, बडहंस, विभास, रेवा, कुडाई, आभीरी" इन रागों के स्वतन्त्र लक्षण कहीं से अथवा प्रचार में देखकर उसने दिये हैं।

प्र०—तो फिर "राग तरङ्गिणी" ग्रन्थ का मत देखना अच्छा होगा, ठीक है न ?

उ०—मुझे भी ऐसा जान पड़ता है। उत्तर की ओर इस प्रकार का सुबोध ग्रन्थ अन्य कोई उपलब्ध नहीं है। राग तरंगिणी में लोचन पण्डित कहते हैं:—

सारंगस्वस्थाने।

सारंगस्वरसंस्थाने प्रथमा पटमंजरी।
वृन्दावनी तथा ज्ञेया सामंतो बडहंसकः॥

प्र०—तो फिर "सामन्त" को एक सारङ्ग प्रकार मान लिया गया तो क्या आश्चर्य ! सारङ्ग, वृन्दावनी, बडहंस ये सारे उसी प्रकार माने जाते हैं न ?

उ०—हां, ठीक है। सारङ्ग संस्थान के स्वर तुम जानते ही हो।

प्र० – हां, आपने ऐसा बताया था कि पहले इमन का थाट करके आगे:—

एवं सति च गांधारः शुद्धमध्यमतां व्रजेत् ।
धश्च शुद्धनिषादः स्यात् सारंगो जायते तदा ॥

अर्थात् "सा रे म मं प नि़ नि सां" सारङ्ग मेल के ये स्वर निश्चित होते हैं, ठीक है न ?

उ०—बिलकुल ठीक है। किन्तु इस सामंत राग के लक्षण मात्र तरङ्गिणी ग्रन्थ में नहीं हैं। वे ग्रन्थकार ने अपने सङ्गीत संग्रह ग्रन्थ में दिये होंगे ? वह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। अतः उस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

आगे हृदय नारायणदेव ने अपने हृदय कौतुक में तथा हृदयप्रकाश में "सामन्त" कैसा कहा है, देखो:—

निसौ निसौ रिमरिमाः पमौ पनिससा निपौ ।
मरी निरी स उक्तोऽसौ सामंतो हि तदौडुवः ॥

नि सा नि सा रि म रि म प म प नि सा नि प म री नि री सा।

उसने भी इस राग को सारङ्गमेल में लिया है।

प्र०—तो फिर हमारे हिन्दुस्तानी स्वरदृष्टि से यह स्वरस्वरूप कैसा होगा, अब यह देखें। इस व्याख्या में यह राग "औडुव" कहा गया है तथा स्वर पंक्ति में गन्धार एवं धैवत स्वर नहीं दिखते। किन्तु यदि ऐसा हो तो यह हमारा आज का सारङ्ग रूप होगा अथवा नहीं, यह देखना होगा ! सारङ्ग संस्थान के गंधार तथा धैवत अर्थात् क्रमशः शुद्ध मध्यम एवं कोमल निषाद स्वर इस लक्षण के अनुसार छोड़ देने चाहिये। तब "सा रे मं प नि" स्वर रहेंगे। और उपरोक्त स्वरूप "नि़ सा, नि़ सा, रे, मं रे, मं प, नि सां, सां नि प, मं रे, नि़ रे सा।" ऐसा थोड़ा बहुत होना चाहिये। यह कुछ नूरसारङ्ग जैसा दीखेगा। ठीक है न ?

उ०—तुम्हारा कथन यथार्थ प्रतीत होता है। किन्तु मूल प्रति में कुछ भूल भी हो सकती है। उसकी केवल एक प्रति ही इस समय उपलब्ध है। अतः इसके प्रमाण स्वरूप तो जैसा तुम कहते हो वैसा ही होगा। अच्छा, अब हृदयप्रकाश में ग्रन्थकार क्या कहता है, वह भी देखो:—

अतितीव्रतमो गाख्यो मधौ तीव्रतरौ कृतौ ।
यत्र निःकाकली तत्र सारंगः पटमंजरी ॥
सामंतबडहंसौ च । सारंगः सादिमूर्छनः ।

× × × ×

यह सारङ्ग थाट तो तुम्हारा परिचित ही है। अहोबल का मेल वर्णनः—

अतितीव्रतमो गःस्यान्मस्तु तीव्रतरो मतः ।
धस्तु तीव्रतरो निः स्यात्तीव्रः षड्जादिमूर्छने ॥

इस वर्णन के देखने से यह संदेह अधिक दृढ़ हो जाता है कि हृदय ने "हृदय-प्रकाश" पारिजात देख लेने के पश्चात ही लिखा होगा। स्वर स्थान उसने तार की लम्बाई से कहे हैं, इसमें भी उसने अहोबल का अनुकरण किया होगा। यह बात मैंने पहले भी कही थी, शायद तुम्हें याद होगी।

प्र०—आपका तर्क उचित प्रतीत होता है। अच्छा, अब हम यह देखें कि सामंत के लक्षण उसने कौतुक के ही रखे हैं क्या ?

उ०—सामन्त के लक्षण वह इस प्रकार कहता हैः—

मनित्यागादौडुवेषु सामंतः सादिरिष्यते ।
सारिगपधसां धपगरिस

प्र०—तो फिर कौतुक में कहा हुआ सब कुछ वह भूल गया, ऐसा दीखता है कारण उसका यह रागस्वरूप ऐसा होगाः—

सा री म प ऩि सां—अर्थात स्पष्ट सारङ्ग स्वरूप नहीं होगा क्या ?

उ०—तुमने ठीक कहा, किन्तु, "सा रे म मं प ऩि नि सां" इस सारङ्ग मेल से इमन के "म, नि" निकाल दिये जांय तो सा, शुद्ध री, अतितीव्रतम ग, प, ध तीव्रतर ये स्वर रहेंगे। इसलिये हिन्दुस्तानी स्वरों से "सा रे म प ऩि सां" ऐसा ही स्वरूप बनेगा, जो निश्चय ही सारङ्ग का होगा।

प्र०—किन्तु यह स्वरूप हृदय ने कहां से लिया, यह भी एक प्रश्न उत्पन्न होगा। अहोबल ने "सामंत" का उल्लेख किया है क्या ?

उ०—हां, किन्तु उसका "सामन्त" सर्वथा भिन्न है। वह उसने इस प्रकार कहा हैः—

रिस्तु तीव्रतरः प्रोक्तस्तीव्रगांधारशोभिते ॥
सामंतसंज्ञके रागे न्यासोद्ग्राहांशषड्जके ॥

यह राग अहोबल ने स्वतन्त्र माना है। इसके स्वर "सा ग॒ ग म प ध नि॒ सां" इस प्रकार होंगे। हृदय के समय में अथवा उसके प्रान्त में "सामन्त" यह सारङ्ग प्रकार हो गया था, ऐसा दीखता है।

प्र०—आपका यह कहना ठीक मालूम होता है। श्रीनिवास पण्डित तो अहोबल का ही अनुयायी था, अतः उसका "सामन्त" पारिजात में कहे हुए सामंत जैसा ही होना चाहिये।

उ०—हां, यह तुमने बिलकुल ठीक कहा। उसका सामंत अहोबल के सामंत जैसा ही है।

प्र०—तो फिर इन ग्रन्थों का मतैक्य कैसे होगा ?

उ०—इस कार्य का उत्तरदायित्व हम पर नहीं है। हम यदि ऐसा कहें कि "सामन्त-सारङ्ग" तथा केवल "सामन्त" ये भिन्न राग माने जायें। इस पर कोई कहे कि हृदय ने "सामन्त" ही कहा है, तो फिर वह बात कैसे मानी जा सकती है ? तो उसे यह उत्तर देना पड़ेगा कि हृदय ने "सारङ्ग मेल" कह कर उसमें सारंग, वृन्दावनी आदि सारंग प्रकार जन्य बताये हैं, उनमें ही "सामन्त" भी एक बतलाया है। इतने स्पष्टीकरण के उपरान्त भी किसी को समाधान न हो तो फिर कहना पड़ेगा कि सामन्त के स्वर हमारे सारंग जैसे स्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त "सामन्त सारंग" नाम आज समाज में सर्वत्र प्रसिद्ध ही है।

अब पुंडरीक विट्ठल के ग्रन्थों की ओर बढ़ें। सर्वप्रथम हम यह देखें कि उसने सामंत का थाट कौनसा कहा है:—

शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः शुद्धो निषादो लघुमध्यमश्च ।
निगौ यदा त्रिश्रुतिकौ भवेतां कर्णाटगौडस्य तदैषमेलः ॥

प्र०—यह मेल कुछ चमत्कारिक जान पड़ता है। साधारणतः इसका स्पष्टीकरण ऐसा होगा। "सा म, प" ये स्वर शुद्ध होंगे "शुद्ध निषाद" अपना हिन्दुस्तानी तीव्र धैवत होगा। "लघुमध्यमश्च" अर्थात् मध्यम के नीचे एक श्रुति यानी हमारा तीव्रतम गन्धार होगा तथा "निगौत्रिश्रुतिकौ" अर्थात् कोमल ग व कोमल नि स्वर होंगे। अर्थात् "सा ग॒ ग म प ध नि॒ सां" ऐसा होगा। ठीक है न ?

उ०—मेरी समझ से तुम्हारा स्पष्टीकरण ठीक है। इस वर्णन से 'राग मंजरी' का मेल वर्णन देखना हितकारक होगा। वह इस प्रकार है:—

तृतीयगतिगनिधा द्वितीयगतिकोऽपि रिः ॥
तदा कर्णाटमेलः स्यात् तत्र संभूतरागकाः ॥

प्र०—किन्तु यहां वह पण्डित "कर्णाट" मेल कहता है, "कर्नाट गौड" ऐसा नाम नहीं देता ! तो यह मेल भिन्न-भिन्न होंगे, ऐसा कोई नहीं कहेगा क्या ?

उ०—नहीं। दोनों का जन्य राग वही है। जैसे, कर्णाट, तरुष्कतोडी, छायानट, शुद्ध बंगाल, सामन्त।

प्र०—तो ठीक है। अब इस मेल के स्वर इस प्रकार होंगे—'ग नि, ध' तीन गति के हैं, इसलिये ये हिन्दुस्तानी तीव्र ग, तीव्र नि तथा कोमल नि होंगे। 'गतिक' कहने पर उसकी शुद्ध स्थिति के आगे तीन श्रुति उसको चढ़ाना पड़ता है। स्थिति तथा गति का भेद हमने अच्छी तरह ध्यान में रखा है। त्रिश्रुतिक नि, ग' तथा 'त्रिगतिक निग' ये विभिन्न स्थान हैं; ठीक है ? थाट ऐसा होगा, 'सा री ग म प नि̱ नि सां।

उ०—हां, यह तुमने ठीक ध्यान में रखा है। इसीलिये इस ग्रन्थ में पुण्डरीक ने साधारण ग, कैशिक नि आदि न कहकर उनको 'ऐकैक गतिक' निग' कहा है।

प्र०—किन्तु कर्णाट गौड मेल में 'ऋषभ' नहीं दीखता और 'कर्णाट' मेल में धैवत नहीं। यह क्या बात है ?

उ०—ऐसा हुआ अवश्य है; परन्तु यह ग्रन्थ विभिन्न समय में विभिन्न प्रकार के प्रचारों से प्रभावित होकर लिखे गये होंगे, यह कहना होगा। परन्तु जन्य राग दोनों का एक है, यह भी विचारणीय है। ग्रन्थकार ने केवल विकृत स्वर ही कहे हैं, ऐसा नहीं कह सकते। हिन्दुस्तानी शुद्ध रि, ध स्वरों को 'निगौ' विशुद्धौ ऐसा वह सर्वत्र कहता है। अस्तु, अब चन्दोदय तथा मंजरी में सामंत के लक्षण कैसे दिये हैं, वह कहता हूं—

षड्जग्रहन्यासयुतश्च पूर्णः। षड्जांशयुक्तोऽन्तरकाकलीकः।
प्रयुज्यमानः स विभातकाले। चकास्ति सामंतकनामधेयः।
चंद्रोदये ॥

यहां गांधार तथा काकली निषाद लगाने का अन्तर बताया है।

सामंतकः त्रिसः सायं काकल्यंतरभूषितः। कर्णाटमेले। मंजर्याम्।

प्र०—किन्तु चन्द्रोदय में इसी पंडित ने 'विभातकाले' ऐसा कहा है और फिर वही राग अब 'सायं' समय गाया जाता है ?

उ०—इस पर हम विवाद क्यों करें ? जो वहां लिखा है, वह हम देख ही रहे हैं। पुण्डरीक विभिन्न समय में अलग अलग प्रान्तों में रहा था। वहां के प्रचार भिन्न होंगे ही। रागमाला में वह कहता है:—

कर्णाटाख्यस्य मेले प्रकटवरतनुः पूर्णरूपः त्रिषड्जः।
पद्मांघ्रिः पद्मनेत्रश्रवणयुगलतः कुन्डले द्वे दधानः॥
बिभ्रन्मौलौ किरीटं बहुकुसुममयं कंठमाली सुवस्त्रं।
प्रातःकाले चकास्ति प्रबलगमकवान् प्रौढसामंतरागः॥

प्र०—तो फिर कर्णाट राग का मेल क्रम से ही आगया।

उ०—हां, वह ऐसा है:—

श्रृङ्गारी पीतवस्त्रः कटकमुकुटसिंहासनच्छत्रयुक्तो
गौरांगः श्रीहुसेनी सुहृदभिमदकः पूर्ववागीश्वरीष्टः।
त्रिस्त्रिर्द्व्येकस्थिताः स्युः स्वररिधगनयः केकिकंठाभकोऽसौ
न्याद्यंतांशोऽरिघो वा विलसति दिवसांतेऽपि कर्णाट रागः॥

रागमालायाम्।

अब आगे हुसेनी तथा वागीश्वरी मेल देखने की भी आवश्यकता है, ऐसा मैं नहीं समझता।

प्र०—यहां "त्रिः त्रिः द्वि एक" ऐसे रि, ध, ग व नि स्वर कहे हैं। अर्थात वे क्रमशः त्रिगति रि; त्रिगति ध, द्विगति ग, एक गति नि होंगे। ये हिन्दुस्तानी कोमल ग, कोमल नि, तीव्र ग तथा कोमल नि होंगे। ऐसा क्यों?

उ०—ऐसा हुआ अवश्य है। लेखक की कुछ भूल है अथवा और कोई कारण है? अनूप सङ्गीत रत्नाकर में "कर्णाट मेल" मंजरी का ही कहा है, जो इस प्रकार है:—

तृतीयगतिगनिधा द्वितीयगतिकोऽपि रिः।
तदा कर्णाटमेलः स्यात् तत्र संभूतरागकाः॥

उसमें "सामन्त" राग जन्य बताया है। "कर्णाटरागः सामंतः सौराष्ट्री छायनाटकः। × × सामंतकः त्रिसः सायं काकल्यंतरभूषितः। मेल स्वर सा रे ग म प ध़्रि नि सां॥ ऐसा भी होगा।

अब हम इस लक्षण की तुलना अहोबल के "सामंत" लक्षण से करें तो सामंत में दोनों गन्धार तथा कोमल निषाद लिये जाने वाले चन्द्रोदय का मत पारिजात के मत के निकट पायेंगे।

प्र०—हां, पारिजातकार केवल विकृतस्वर कहकर शेष शुद्ध समझे जायें, ऐसा कहता है।

असाधारणधर्मा ये लक्षणत्वेन कीर्तिताः।
तैरेव रागभेदाः स्युस्तांस्तु वक्ष्येऽत्र कालतः॥

ऐसा उसने लक्षण नियम कहा था।

उ०—यह तुमने खूब ध्यान में रखा। भावभट्ट ने अपने अनूपविलास ग्रन्थ में "सामन्त" राग का उल्लेख करके मंजरी, चन्द्रोदय, नृत्य निर्णय (अर्थात् रागमाला), हृदय प्रकाश तथा रागबोध ग्रन्थों के लक्षण अक्षरशः उद्धृत कर लिये हैं। रागविबोध

के लक्षण हम अब देखने ही वाले हैं। अनूप सङ्गीत रत्नाकर में भी हूबहू यही प्रकार दिखता है।

रागविबोधकार सोमनाथ ने "सामन्त" राग का स्वतन्त्र मेल कह कर उसका वर्णन इस प्रकार किया है:—

सामंतस्य हि मेले शुचिसमपास्तीव्रतमरिरंतरकः।
तीव्रतमधकाकल्यावस्मादेतन्मुखाः रागाः॥

प्र०—इसमें शुद्ध सा, म, प कहे हैं तथा तीव्रतम रि अर्थात् कोमल ग व अन्तरः अर्थात् तीव्र गन्धार कहे हैं। वैसे ही तीव्रतम ध तथा काकली जो क्रमशः कोमल नि एवं तीव्र नि होंगे। यही न?

उ०—बिल्कुल ठीक है। इस मेल में रि, ध हमारे हिन्दुस्तानी शुद्ध स्वर नहीं हैं, यह दीखता ही है। सामंत राग के लक्षण सोमनाथ इस प्रकार कहता है:—

सामंतः सायाह्ने सांशन्यासग्रहः पूर्णः ॥ स्वमेले ॥

रसकौमुदीकार श्रीकंठ ने "सामंत" का वर्णन नहीं किया, किन्तु उसने कर्णाट गौड मेल के स्वर इस प्रकार कहे हैं:—षड्ज, शुद्ध ग, पत म, शुद्ध म, शुद्ध प, शुद्ध नि, तथा कैशिक नि।

प्र०—मालूम होता है उस समय "कर्णाट गौड" मेल हमारे हिन्दुस्तानी खमाज थाट जैसा हो गया था?

उ०—हां, यह बात तुम्हारे ध्यान में ठीक आयी। व्यंकटमखी अपने चतुर्दण्डि-प्रकाशिका में 'सामंतमेल' का वर्णन ऐसा करते हैं:—

षड्जःपंचश्रुतिश्चाथ ऋषभोऽन्तरनामकः।
गांधारश्च मपौशुद्धौ षट्श्रुतिर्धैवतस्तथा।
काकल्याख्यो निषादश्च स्वराः सामंतमेल के॥

प्र०—तो फिर इसके स्वर ऐसे होंगे:—सा, रि शुद्ध (हिन्दुस्तानी) ग शुद्ध (हिन्दुस्तानी) म, प शुद्ध (हिन्दुस्तानी) तथा कोमल तीव्र दोनों निषाद। इस मेल में हमारा शुद्ध धैवत नहीं है। क्यों पंडित जी! यह क्या हाल है सामंत राग का! कैसे कैसे रूपान्तर उनके ग्रन्थों में दिखाई देते हैं?

उ०—ऐसा ही है। आगे प्रत्यक्ष राग लक्षण व्यंकटमखी इस प्रकार कहते हैं—सामंत-रागः पूर्णोऽत्र वादिसंवादिनौ सपौ।

अब हम सामंत राग के सम्बन्ध में और अधिक प्राचीन मत न देखकर सङ्गीतसार, कल्पद्रुम, नगमात आदि ग्रन्थों के मत देखें। राधागोविन्द सङ्गीतसार ग्रन्थ में 'सामंत' को

हिंडोल राग का पुत्र कहा है तथा आगे उसका वर्णन इस प्रकार किया है:—'शास्त्र में तो यह पांच सुरन सों गायो है। सा रे म प नि। यातें ओडवहै। याको दुपैहर में गावनो। यह तो याको वखत है। और दिन में चाहो तब गाओ। जंत्र इस प्रकार दिया है:—

हिंडोलको पहलो पुत्र—सामंत (ओढव)

प	रि	प	रि
म	म	म	सा
प	प	प	नि॒
म	नि॒	म	सा
री	सां	रि	रे
सा	नि॒	सा	सा

प्र०—यह तो मधमाद सारंग के ही हूबहू स्वर हैं। मधमाद अथवा 'मधुमाधव' राग के स्वर ऐसे ही थे ?

उ०—हां, परन्तु उसमें मध्यम से प्रारम्भ किया था और पंचम एवं ऋषभ की सङ्गति विशेष रूप से आगे लाई गई थी। यहां पंचम से शुरुआत है और वह संगति भी नहीं है। फिर भी यह प्रकट है कि ये दोनों सारंग प्रकार दिखाई देते हैं। यह ग्रन्थाधार कुछ अन्शों में हमारे लिये उपयोगी होगा। संस्कृत ग्रन्थों के सामंत स्वरूप में बहुत अन्तर होगया था, यह इस ग्रन्थ के लक्षण से दिखाई देता है। इस लक्षण में गन्धार तथा धैवत वर्ज्य किया हुआ है, यह ध्यान में रखो।

प्र०—अब ध्यान में आया। किन्तु प्रत्यक्ष प्रचार में गायक यह राग सदैव पंचम से ही आरम्भ करके गाते हैं, ऐसा नियम मानकर नहीं चलना पड़ेगा। कारण, देशी सङ्गीत में ग्रह स्वर का नियम शिथिल हो गया है, ऐसा आपने कहा था ?

उ०—नहीं, वैसा नियम मानने की आवश्यकता नहीं। अभी अभी मैंने सङ्गीतसार की वस्तुस्थिति का वर्णन किया। 'नगमाते आसफ़ी' के ग्रन्थकार ने 'सावंत' को मेघ की रागिनी माना है, यह मैंने कहा ही था। तत्सम्बन्धी जानकारी वह इस प्रकार देता है:— 'सामंत' बिंद्राबनी के समान राग से अर्थात् मेघराग से मिलेगी। परन्तु उसमें वर्जित स्वरों की श्रुति अल्प प्रमाण में आती है। कोई सामंत के स्थान पर बिंद्राबनी रागिनी मानते हैं।

प्र०—अर्थात् मेघ की रागिनी सामंत न मानकर बिंद्रावनी मानते हैं ?

उ०—हां, इससे तो यह निश्चित हो जाता है कि इस रागिनी का बिंद्राबनी से विशेष साम्य है तथा यह एक सारंग प्रकार है।

प्र०—इस सम्बन्ध में अब कोई संशय नहीं रहा; किन्तु 'वर्जित स्वरों की श्रुति अल्प प्रमाण में आती हैं' इससे क्या तात्पर्य है ?

उ०—वर्जित स्वर गंधार तथा धैवत हैं, यह तुमको विदित ही है। इन स्वरों का थोड़ा सा प्रयोग इस राग में होता है, ऐसा ग्रन्थकार के कथन का अभिप्राय प्रतीत होता है। वे स्वर स्पष्ट न लगाकर, 'गन्धार' स्वर के स्पर्श से ऋषभ को तथा धैवत के स्पर्श से पंचम को किंचित् आन्दोलित करके दिखाने चाहिये, ऐसा उसका तात्पर्य जान पड़ता है।

प्र०—क्या वास्तव में ऐसा प्रचार में किया हुआ दिखाई देता है ?

उ०—मेघ गाते समय ऋषभ पर आन्दोलन ऐसे चमत्कारिक ढंग से दिये जाते हैं कि क्षणभर श्रोताओं को स्पष्ट रूप से 'कोमल गन्धार' का भास होने लगता है। यह मार्मिक लोगों को ही दिखाई देता है। बड़े गायकों का यह कृत्य देखकर कुछ गायक मेघ में कोमल गन्धार स्पष्ट रूप से दिखाते हैं। सामंत में स्पष्ट कोमल गन्धार नहीं लेते, वैसा केवल धैवत लेते हैं। खैर, आगे ग्रन्थकार कहता है:—सावंत में नि वादी, म संवादी, रि अनुवादी, स तथा प अशुद्ध, नि कोमल, रि तीव्र, म शुद्ध, थाट बिंद्राबनी का'। उसके इस कथन को तुम गलत मत समझो। वादी-संवादी का तत्व तुमको मालुम ही है।

प्र०—कोई चिन्ता नहीं। आप आगे चलिये ?

उ०—संगीत कल्पद्रुम में कुछ विशेष उपयोगी वर्णन नहीं दीखता, उसमें ऐसा कहा है:—

खरजग्रह सामंत को संपूरणसुर होई।
एक पहर दिन के चढे गावत गुणिजन लोई॥
पीरोतन पीरोबसन माथेमुकुट अनूप।
कुसुमनकी माला गरे यह सामंत सरूप॥
मध्यमादिश्च सारङ्गा वृन्दावनी बडहंसिका।
सावंत लंकदहन मध्याह्ने गीयते सदा॥

इस श्लोक में कुछ तथ्य नहीं दीखता।

मित्र! अब हम अधिक ग्रन्थ मतों को तलाश नहीं करेंगे। 'सामंत सारंग' में 'मल्लार' तथा 'सारंग' इन दो रागों का मिश्रण है, ऐसा जानकार लोग कहते हैं। और मेरे मत से उनका यह कथन सार्थक भी है। अब यह राग प्रचार में कैसे गाया जाता है, यह प्रश्न हमारे सामने है।

प्र०—हम भी अब इसी प्रश्न की जानकारी देने के लिये आपसे विनती कर रहे थे। यह अप्रसिद्ध राग है तथा एक सारंग प्रकार है, यहां तक हमारी समझ में अच्छी

तरह से आ गया है। परन्तु सारंग होने के कारण इस राग में गन्धार तथा धैवत का अभाव होना सम्भव है। ठीक है न?

उ०—गंधार का अभाव उसमें निर्विवाद है, किन्तु धैवत के सम्बन्ध में कहीं पर कुछ मतभेद होगा।

प्र०—परन्तु हमको अपने गाने में उसे लेना चाहिये अथवा नहीं?

उ०—मैंने जो प्रकार सीखा है उसमें धैवत अवश्य है, किन्तु वह अवरोह में है। कुछ गायकों के गाने में 'धनिप' ऐसा प्रकार भी मैंने सुना था, लेकिन मेरे गुरु ने उसमें 'ऩिधप' ऐसा प्रकार करने को मुझ से कहा। इस राग में धैवत अवरोह में तथा उत्तरांग में होने के कारण दुर्बल तो रहेगा ही, उसके योग से इस राग से सारङ्ग की छाया नहीं जायेगी तथा राग भिन्नता भी सध जाय, ऐसा प्रयोग उस धैवत का करना होगा।

प्र०—परन्तु यह राग अमुक स्वर से ही प्रारम्भ होना चाहिये, ऐसा नियम तो नहीं होगा।

उ०—नहीं, ऐसा नियम पालन करने की आवश्यकता नहीं। इस राग में "प, मऩिधप" यह स्वर-समुदाय बारम्बार दृष्टिगत होना संभव है। 'ऩिधप' स्वर देस राग की छाया इस राग में लाने के हेतु लिये जाते हैं, ऐसा समझा जाता है।

प्र०—अर्थात्, (म)रे, म प ऩि ध प "प ध प," "म रे" ऐसा जो भाग देस में रहता है, वह इस राग में कुछ प्रमाण में लेते हैं, ऐसा जान पड़ता है? किन्तु फिर सारङ्ग से कैसे मिलते हैं?

उ०—यह कठिन नहीं है। वहां उस गन्धार को बिलकुल न लिया और नीचे ऩि सा, रे, म रे, म प, म रे, सा, ऐसा भाग लिया तो बस सारङ्ग होगा। किन्तु प्रारम्भ ही में "ऩि ध प" नहीं लेना चाहिये, कारण वह बारम्बार आगे आने से श्रोताओं के मन से देसी राग की छाया नहीं जायेगी। पहिले पूर्वाङ्ग में सारङ्ग को भली प्रकार कायम करके फिर वह भाग बीच-बीच में लेना चाहिये।

प्र०—तो फिर पहिले कुछ ऐसा करना पड़ेगा:—सा, ऩि सा, रे, (म)रे, सा, (ऩि)ऩि सा, प ऩि सा, (म)रे म प, म रे, (री)ऩि सा, (म)रे म प, (प)ऩि प, म रे, (म)रे म रे; सा। कैसा लगता है आपको?

उ०—यह सारंग का उत्तम भाग हुआ। आगे फिर "ऩिधप" यह भाग लाने के लिये श्रोताओं के सामने पंचम अच्छी प्रकार से लाकर "म ऩि ध प" "म प, म रे," ऐसा करना बहुत अच्छा दीखेगा। पंचम से "ऩिधप" नहीं कर सकते, ऐसा नहीं समझना। परन्तु "म ऩि ध प" यह स्वरसमुदाय राग में लाने से देस की छाया अच्छी दीखेगी।

प्र०—आगे अन्तरा कैसे लेना चाहिये ?

उ०—अन्तरा प्रायः सारङ्ग में आता है, वैसा ही इस सारङ्ग में भी आयेगा।

प्र०—अर्थात्—"म प, नि, सां, सां, नि सां नि सां रें सां" इस प्रकार ?

उ०—ठीक है। देस में भी ऐसा ही थोड़ा बहुत प्रकार नहीं है क्या? यह तो होना ही चाहिये। सामन्त राग में पञ्चम स्वर खूब चमकता हुआ रखना चाहिये। वह सारङ्ग में तथा देस में एक निश्चित मुकाम का स्वर है। एक राग की छाया से दूसरे राग की छाया में जाने के लिये इस पंचम का विशेष उपयोग होता है।

प्र०—तो फिर इस राग का थोड़ा सा विस्तार हमको बताइये ?

उ०—हां, कहता हूं। प्रथम सारङ्ग की स्थापना करता हूं। आओः—

म सा म म सा सा म

सा, रे, मरे, सा, नि़सा, रे, मरेसा, पमरे, रेमपमरे, सा नि़सा, प़नि़सा, नि़ सा, रे, मरे,

प

मप, इतना करने पर, हम बिंद्रावनी नहीं गारहे हैं, यह दिखाने के लिये "मप, मनि॒धप, प,

म

मप, मरे, नि॒धप, मरे, रेम, रेसा, ऐसा करना चाहिये। अस्तु, अब आगे चलें।

म म म

सा, रे, रे, मप, प नि॒प, मरे, नि॒प, मनि॒ध प, मप, धप, मरे, रेमप, मरे,

म सा म

रे, सा। नि़सा, प़नि़सा, नि॒धप, म, प, नि॒धप, मप, मरे, रेमप, मरे, रे, सा।

म म

सा, नि़सा, नि़॒प़, नि़॒सा; म़प़नि़॒, ध़प़, म़प़, नि़सा, रे, म, मप, प, नि॒, पमरे, रेम, पमरे, रे, सा।

प म म

रेमप, नि॒धप, मप, सां, नि॒धप, मप, धप, मरे; रेंसां, नि॒प, मनि॒धप, मरे, रेमपमरे, पमरे, मरे, रे, सा।

सारेमरेसा, सारेमपमरे; सा, सारेमप, नि॒धप, मनि॒धप, मरे, सां, नि॒प, मप, धप, मरे, नि़सारे, मरे, पमरे, सा।

सारेमप, रेमप, धप, मनि॒धप, धप, मरे, सां, नि॒धप, मधधपमरे, मरे, पमरे, नि॒धप, मप, नि॒धपमरे, धपमरे, पमरे, मरे, रे, सा।

म

सा, रे, म, प, प, मप, मनि॒धप, मरे, मप, धप, मरे, मरे, सा, रे, सा।

सां सां म

मप, नि, सां, सां, नि॒सां, नि॒प, नि॒सां, रें रें, नि, निसां, रेंसां, नि॒प, मपनि॒धप, मप,

म

निसां, रें, सां, नि॒ प, मप, मरे, मपमरे, सा।

अन्तरा गाते समय तार ऋषभ पर मानो अब देस का भाग आगे आयेगा, ऐसा श्रोताओं को भास होने दो। परन्तु वहां से पुनः बढ़ते समय मूल सारङ्ग में वापिस आकर मिलोगे तो तुम्हारा राग उत्तम रहेगा। यह भाग मैं कैसे गाता हूँ, यह ठीक से ध्यान देकर देखो तो वह अच्छी तरह तुम्हारे ध्यान में रहेगा। यदि इस राग की सरल सी एक सरगम मैंने कही तो वह तुम्हारे लिये उपयोगी होगी। उसके अनुमान से इस राग का विस्तार करने की कल्पना भी तुम्हें होगी।

प्र०—आपने बिल्कुल ठीक कहा। वैसी सरगम हमको एकाध सुनाइये?

उ०—अच्छा तो सुनो:—

सामंत सारंग—झपताल

प ×	म	प २	नि॒	पम	रे ०	रे	सा ३	ऽ	सा
सा नि़	सा	म रे	म	म	प	प	नि॒	ध	प
म	प	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	नि	सां	सां
नि सां	रें	सां	प नि॒	प	प	पम	नि॒	ध	प

अन्तरा.

म ×	प	नि २	सां	ऽ	सां ०	ऽ	नि ३	सां	सां
प नि॒	प	नि	सां	सां	नि	सां	रें	ऽ	रें
मं रें	मं रें	मं रें	मं	रें	सां	ऽ	रें	नि	सां
सां	रें	सां	नि॒	प	म	प	नि॒	ध	प

यह एक छोटी सी सरगम ध्यान में रखो:—

सरगम—झपताल.

म रे	म	रे म	प	प	प	म	नि̲	ध	प
×		२			०		३		
प म	प	नि̲	ध	प	प म	प	म प	म	रे
प नि̲	ध नि̲	प	नि̲	प	म	रे	प	म	रे
रे	म	प	नि̲	प	म	रे	रे	सा रे	सा

अन्तरा—

प म	प	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	नि	सां	सां
×		२			०		३		
प नि̲	प	नि	सां	ऽ	रें	सां	नि̲	ध	प
म	म	प	नि	सां	रें	सां	प नि̲	ध नि̲	प
प म	प	नि̲	प	म	रे	रे	म	रे	सा

प्र०—अब इस राग का प्रचलित स्वरूप बता दीजिये ?

उ०—ठीक है।

सामंतसारंगः ।

काफीमेल समुत्पन्नः सामंतो गुणिमंमतः ।
आरोहे चावरोहेऽपि गांधारो वर्जितस्वरः ॥
सारंगस्य प्रभेदोऽयं रिपसंवादमंडितः ।
गानं तस्य समीचीनं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
धैवतस्यात्र संस्पर्शो विलोमेऽनुमतो मनाक् ।
देससारंगयोगेन रुपमेतत्समुद्भवेत् ॥
आरोहे चावरोहेऽपि धगहीनः प्रकीर्तितः ।
हृत्प्रकाशाह्वये ग्रंथे हृदयेशेन धीमता ॥
गांधारद्वयसंयुक्तो न्यासोद्ग्राहांशषड्जकः ।
सामंतः कीर्तितो ग्रंथे संगितपारिजातके ॥
कर्णाटाख्यसुमेले च सामंतः परिकीर्तितः ।
मंजर्यां पुण्डरीकेण क्राकल्पंतरभूषितः ॥

लक्ष्यसंगीते ॥

पमौ पनी पमौ रिश्च सरी मपौ निधौ च पः ।
सामंतपूर्वसारंगो रिपसंवादशोभनः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ॥

प्र०—अब यह राग हमारे ध्यान में आ गया है । बडहंस सारङ्ग के विषय में आप कहने वाले थे, अब उसे कहिये । उस राग के सम्बन्ध में आपने पीछे प्रसंगवश जो कुछ कहा था सो हमने अभी बताया ही है।

उ०—ठीक है। तो फिर अब बडहंस पर थोड़ा सा विचार करें। अनेक गायक इस राग को गाने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु उसमें तथा अन्य सारङ्ग प्रकारों में कहां व कैसा भेद है यह वे नहीं बता सकते। इस राग में पुनः धैवत की उलझन है, यह मैं पहले ही कह चुका हूं।

प्र०—हां, आपने कहा था कि कोई धैवत अवरोह में लेते हैं, कोई उसे आरोह में मनाक्स्पर्श न्याय से लेते हैं और कोई उसे बिलकुल लेते ही नहीं। आपने यह भी कहा था कि कभी-कभी इस राग में तीव्र गन्धार का क्वचित् प्रयोग करने वाले गायक भी हमें दिखाई देते हैं। अर्थात् पधप, निधप, धनिप, धप, धसांधप, ऐसा प्रकार कभी-कभी दृष्टिगत होना संभव है। वहां आपने यह भी सुझाया था कि यह दुर्मेल भाग उत्तरांग में बहुधा अल्पप्रमाण में होने के कारण उसके योग से विशेष राग हानि नहीं होती। गायक पूर्वाङ्ग में 'रेमपमरे, सा, नि सा' ऐसा भाग बारम्बार आगे लाकर सारङ्ग राग को सदैव श्रोताओं के सम्मुख बनाये रखते हैं।

उ०—मैं समझता हूं बडहंस के सम्बन्ध में तुमको यथेष्ट जानकारी हो चुकी है। अब तरंगिणी, हृदयकौतुक तथा हृदयप्रकाश आसफी आदि ग्रन्थमत देखकर एक दो सरगम कह दी जांय तो फिर बडहंस के विषय में विशेष कुछ कहने को नहीं रहेगा। इस राग का मिश्रण अन्य रागों से होने की बहुत संभावना है; परन्तु एक दो पहिचान मैं तुमको बताऊंगा, जिनकी सहायता से यह राग पहिचानने में तुम्हें कठिनाई नहीं होगी।

प्र०—ठीक है। जैसा आप उचित समझें वैसा करिये ?

उ०—रागतरंगिणी में सारङ्ग मेल इस प्रकार कहा गया है:—प्रथम केदारमेल (हमारा हिन्दुस्तानी बिलावल) लेकर उससे-'एवं सति च संस्थाने मध्यमः पंचमस्य चेत्। गृह्णाति द्वे श्रुती राग इमनो जायते तदा।'

प्र०—यह आपने हमको बताया था। केदारमेल के मध्यम को दो श्रुति चढ़ाया कि 'इमन' मेल हुआ। यह अच्छी तरह हमारी समझ में आ गया है।

उ०—अच्छा तो फिर आगे सुनो:—

एवं सति च गांधारः शुद्धमध्यमतां व्रजेत्।
धश्च शुद्धनिषादः स्यात् सारंगो जायते तदा ॥

प्र०—यह भी आपने हमको अभी-अभी बताया ही है तथा सारङ्ग मेल के स्वर सा रे म मॅ प नि॒ नि सां ऐसे होते हैं, यह भली प्रकार हमारे ध्यान में है।

उ०—यह मैं क्यों दोहरा रहा हूं, इसका कारण यह है कि पहिले जल्दी-जल्दी में 'सारङ्ग संस्थान' को अपना खमाज थाट समझना चाहिये, ऐसा मैं कह गया था। यह बात ठीक नहीं थी। तरंगिणी का खमाज थाट 'कर्णाट' है। यह मैंने कहा ही होगा; कर्णाट थाट का वर्णन तरंगिणी में इस प्रकार है:—

शुद्धाः सप्तस्वरास्तेषु गांधारो मध्यमस्य चेत्।
गृह्णाति द्वे श्रुती गीता कर्णाटी जायते सदा ॥

प्र०—यह सब कुछ हम ठीक तरह से समझ गये हैं। ऐसी सामान्य भूल आपसे हो भी गई तो भी उसका हम कोई महत्व नहीं समझते। तरंगिणी के कुल बारहों थाट हमारी समझ में भली प्रकार आ गये हैं। इस सम्बन्ध में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। लोचन ने सारङ्ग मेल के जन्य राग पटमंजरी, वृन्दावनी, सामंत तथा बडहंस कहे हैं, यह भी हमने ध्यान में रखा है। बस, अब बडहंस के लक्षण बता दीजिये ?

उ०—हां, कहता हूँ ये लक्षण हमें हृदय के ग्रन्थों में मिलते हैं। वे इस प्रकार हैं:-

सरी पसौ सपधपा रिमौ रिसाविति क्रमात्।
औडुवस्वरसंपन्नो बडहंसो निगद्यते ॥

कौतुके ॥

सा रिं प सा सा प ध प रि म रि सा।

प्र०—तो फिर, यह हमारा स्वरूप इस प्रकार होगा:—"सा रे प सां, सां प नि़ प, रे म रे सा। ठीक है न? इसमें ग तथा ध सर्वथा वर्ज्य किये गये हैं। पुनः "रे प' यह संगति आरोह में लीगई है।

उ०—यह तुमने अच्छा ध्यान में रखा। अब हृदयप्रकाश में क्या कहा है-वह देखो:—

गधत्यागादौडुवोऽयं बडहंसः प्रकीर्तितः।
सा रि प सा प नि प रि म म रि सा॥

अभी अपना मत निश्चित करने में जल्दी मत करो। पहिले ही सारंग मेल की ओर देखकर यह तय करलो कि इन स्वरों में हमारे स्वर कौनसे हैं। मेल के स्वर तुमको विदित ही हैं।

प्र०—यह बात आप विशेष रूप से क्यों कह रहे हैं? 'सा रि प सा' स्वर हमारे हिन्दुस्तानी तथा लोचन के आपस में बराबर मेल खाते हैं। आगे 'प नि प रि म म रे सा' यह भाग रहा। किन्तु तनिक ठहरिये, यहां 'नि' तथा 'म' कहे गये हैं ये 'इमन' संस्थान के नहीं रहेंगे क्या? हमको कोमल म तथा कोमल नि चाहिये, श्लोक में 'ग तथा ध' हैं।' 'गांधारः शुद्धमध्यमतां व्रजेत्। धश्चशुद्धनिषादःस्यात्।' ऐसा मेल वर्णन है। तो फिर बडहंस में म तीव्र तथा नि तीव्र आयेंगे, ऐसा जान पड़ता है। यदि ऐसा हुआ तो नाद-स्वरूप, 'सा रे प, सां, प नि प, रे मं मं रि, सा' होगा। इसकी अपेक्षा कौतुक में धैवत था। वह स्वरूप कुछ ठीक था। इस स्वरूप में तो हमको तीव्र म अच्छा नहीं लगता।

उ०—हमारे देखने से क्या होता है, यह प्राचीन मत है। वे ग्रन्थकार इसको ऐसा ही गाते होंगे तथा राजासाहेब ने इसको कहां से उद्धृत किया, यह हम कैसे निश्चित कर सकते हैं? परन्तु उन्होंने सामंत का स्वरूप 'सा रे ग प ध सां। ध प ग रि सा।' अर्थात् हिन्दुस्तानी' सा रे म प नि़ सां। सां नि़ प म रे सा' कहा है। यह बुरा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि 'ग ध' वर्ज्य करने पर कैसा प्रकार होगा, यह उनको मालूम था। यहां पर यह कहना होगा कि आगे कुछ समय पश्चात् 'तीव्र मनि' निकाल कर गायकों ने उनको कोमल कर दिया होगा। इससे अधिक और कुछ समाधान नहीं किया जा सकता।

प्र०—यह ध्यान में आ गया। कई प्राचीन रागों के स्वरूप आज बिलकुल परिवर्तित हो गये हैं। इसलिये इसमें हमको कोई आश्चर्य प्रतीत नहीं होता। आप आगे चलिये?

उ०—ठीक है। राजा टागोर साहेब के सङ्गीतसार में बडहंस का विस्तार कैसा किया गया है, यह मैं पहले बता ही चुका हूँ। वैसे ही नादविनोदकार द्वारा दिये गये नाद-विस्तार का भी उल्लेख कर चुका हूं। आज प्रचार में धग वर्ज्य करके यह राग किस प्रकार गाते हैं, यह भी मैंने कहा था तथा यह कहते समय बडहंस में मध्यम बीच-बीच में खुला रखने का प्रचलन है, एवं कोमल निषाद पर कुछ तानें लाकर समाप्त करते हैं,

यह भी बताया था। बडहंस में ऋषभ-पंचम का संवाद है तथा उसका समय दोपहर का है, यह तुम्हारे ध्यान में होगा ही। मैंने तुमको नादविनोदकार द्वारा कहा हुआ स्वरूप बताया ही था। उसमें मध्यम कैसे आगे आया था, यह तुमने देखा ही है। उन वादकों ने अवरोह में धैवत लिया है तथा उसी मत के लोग अधिक हैं। अन्तरा में 'ध, ध प' है।

नि नि

ऐसा जान पड़ता है कि उसमें वे 'ध ध नि प' ऐसा प्रत्यक्ष में करते होंगे। टागोर साहेब भी 'नि ध नि प' करते हैं। मेरी समझ से मध्यम आगे लायें तथा निषाद पर अवरोह में रुकें तो इस राग को पृथक रख सकेंगे। इतने पर यदि राग भिन्न न हुआ तो भले ही धैवत ले लें। परन्तु ऐसा कहने से तुम उलझन में तो नहीं पड़ोगे?

प्र०—जी नहीं। हमको तो आनन्द आता है। हम इन तमाम सारंग प्रकारों को कैसे पहचानेंगे, यह संक्षेप में बताऊं क्या?

उ०—अच्छा, कहो तो देखें।

प्र०—मधमाद सारंग में गध वर्ज्य करके निषाद कोमल रखना चाहिये। बिंद्रा-बनी में गध वर्ज्य तथा दोनों निषाद, अथवा किसी के मतानुसार एक तीव्र निषाद आरोह में तथा अवरोह में होगा। अवरोह में क्वचित् धैवत का स्पर्श होगा। शुद्ध सारंग में दोनों मध्यम हैं, इसलिये वह निराला ही होगा, धैवत वहां हो या न हो। मियां की सारंग में 'निध' सङ्गति में स्पष्ट मियां की मल्लार जैसी दिखाई जाती है, वैसी दूसरे किसी भी प्रकार में नहीं। नूर सारंग में एक तीव्र मध्यम ही आयेगा, अतः वह प्रकार स्वतन्त्र ही होगा। सामंत में 'नि ध प' यह टुकड़ा रागवाचक समझना चाहिये। उसमें 'प, म, नि ध प' ऐसा टुकड़ा लाने का प्रयत्न किया जाता है तथा बडहंस में 'सा, रे म, म,' तथा 'सां नि' ऐसा भाग दिखाना चाहिये। यह पहिचान साधारणतः रागवाचक नहीं है क्या?

उ०—बहुत अच्छे। फिर तुमको उलझन होने की कोई सम्भावना नहीं। आगे 'राधागोविन्द सङ्गीतसार' ग्रन्थ में बडहंस का नादरूपी जंत्र इस प्रकार दिया है:—

रे प, ध प, म प, नि सां, नि प, नि प, मरे, धप, रेपरे, सा।

यह सारंग प्रकार अवश्य है। यहां रिप सङ्गति तथा धैवत का प्रयोग अवरोह में है, यह दीखता ही है। वर्णन करते समय केवल गन्धार वर्ज्य करना चाहिये, ऐसी ग्रन्थकार की सूचना है। इस राग में कौन से राग का योग है, इस विषय पर 'सुरतरंगिणी' ग्रन्थ में ऐसा कहा है:—

मारुव रुद्राणी कही चैती दुर्गा और।
धनासिरी बडहंस में लहियत हैं शिरमौर॥

प्र०—Capt. Willard यही अवयवीभूत राग मानते हैं, यह बात भी आपने पहले कही थी?

उ०--तरंगिणीकार ने ये अवयव इस प्रकार कहे हैं:--×'धनाश्रीमालवावलैः। गौर्या च बडहंसः स्यात्।' परन्तु मैं नहीं समझता कि इन अवयवों का तुम्हारे लिये कोई विशेष उपयोग होगा। अब इस राग की एक सरगम कहता हूँ, सुनो:--

बडहंस--तीव्रा.

म ध			सा		
नि नि	प म	रे रे सा	नि सा	रे रे	म ऽ म
२	३	×	२	३	×
प	प		सां		
म प	नि प	सां ऽ सां	नि सां	रें सां	नि ऽ नि
प		प			म
म प	सां ऽ	नि नि प	म प	ध प	रे रे सा

अन्तरा--

		सां			सां
म म	प प	नि ऽ नि	सां ऽ	सां ऽ	नि सां सां
२	३	×	२	३	×
सां			सां		ध
नि सां	रें मं	रें रें सां	नि सां	रें सां	नि ऽ नि
प		प ध			म
म प	सां ऽ	नि नि प	म प	ध प	रे रे सा

सरगम--एकताल.

ध ध					री
नि नि	प म	रे सा	नि सा	रे म	म म
०	३	४	×	०	२
म म	प नि	सां ऽ	नि सां	रें सां	नि नि
		प	प ध		
म प	सां ऽ	नि प	नि नि	प म	रे सा

अन्तराः—

म म	प प	नि नि	सां ऽ	नि सां	रें सां
•	३	४	×	०	२
नि सां	रें मं	रें सां	नि सां	रें सां	नि नि
म प	सां ऽ	नि नि	प म	रे सा	रे सा

इस सरगम से तथा पीछे कहे गये स्वर विस्तार से तुम्हारे जैसा व्यक्ति इस राग को सहज ही गा सकेगा।

प्र०—तो फिर काफी थाट का सारङ्ग अंग—यह सारंग प्रकार ही हुआ। किन्तु आपने कहा था कि बडहंस में कोई तीव्र गन्धार का उपयोग करते हैं, उसे वे किस प्रकार करते हैं, यह बतायेंगे क्या ?

उ०—उस प्रकार के एक दो गीत मेरे गुरु ने बताये अवश्य थे, परन्तु मुझे वे विशेष पसन्द नहीं आये। उनमें से रामपुर के नवाब साहेब ने जो बताये, उनके स्वर

म ध ध ग

इस प्रकार थेः—रे, मप, नि, म प, ग म, ध प, मप, म ग, म म, ध प, मग, सा नि प, सा, रे,सा, ग ग म प ध म, प ग, सा। उस गीत के बोल, "प्रथमनाद बोल गमक अकार × × गुरू से सीखे तब गुनियन में गाये" इस प्रकार थे।

प्र०—यह प्रकार हमको सारङ्ग जैसा नहीं लगता। फिर बडहंस तथा बडहंस-सारंग में भेद हो तो कौन जाने ?

उ०—रामपुर के वजीर खां ने भी यह गीत मुझे ऐसे ही स्वरों में सिखाये थे। परन्तु वे मुझे पसन्द नहीं आये। ग्वालियर में मैंने एक ख्याल बडहंस में सुना था, वह कुछ ठीक मालूम हुआ। उसके अन्तरा में तीव्र गन्धार एक दो स्थान पर उपयोग में आया है। वह ख्याल तुमको सिखा दूं तो अच्छा रहेगा। वे स्वर अन्तरा में इस

सां

प्रकार लिये हैंः—"सां, नि, सां, सां, निसां, सां, रें, गंरें, सां, निसां, सां, (सां), (प) पग, प, धनिसांरें, सां, (सां) नि, पम, रे, रेमप, नि, मप, रे, सा।" उसी प्रकार ग्वालियर में एक ध्रुपद गायक ने तीव्र गन्धार लेकर एक ध्रुपद बडहंस में गाया था—मुझे याद है। दिल्ली में जो अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद हुई थी, उसमें इस सारङ्ग प्रकार की भी चर्चा हुई थी। वहां हिन्दुस्तान के लगभग ४०-५० प्रसिद्ध गायक-वादक एकत्रित हुए थे। वहां सारङ्ग के सम्बन्ध में क्या निर्णय हुआ, वह बताऊँ ?

प्र०—अवश्य कहिये ?

उ०—अच्छा तो सुनोः—

मधमाद

The professionals were unanimous that this Raga dropped; Gandhar and Dhaivat. As to the use of Nishad there was a difference of opinion. Some said, Madhamadh took the Komal Ni both in the Aroh and the Avaroha; others said that the Raga took Tivra Ni in the Aroha and Komal Ni in the Avaroha. Those who held the first opinion pointed out that using only Komal Ni Madhamada became easily distinguishable from Bindrabani.

बिंद्रावनी सारङ्ग

About the construction of this Raga there were three different opinions expressed. (a) Bindrabani agrees with Madhamadh in dropping ग and ध altogether. It takes both Nishadas i. e. तीव्र नि in Aroha and कोमल नि in Avaroha. (b) In addition to taking both the Nishads, Bindrabani takes the तीव्र ध in the Avaroha. (c) Bindrabani agrees with Madhamadh in omitting the Ga and Dha but takes तीव्र नि both wavs.

मियांकी सारङ्ग

Like Bindrabni this Raga drops Gandhar altogether, and takes both Nishads. It takes ध in the Aroha also. (particularly when it shows its Miyaki Mallar tinge).

बडहंस सारंग

This Raga is usually sung with the following notes सा, रे, म, प, and both Nishads. The Aroha takes तीव्र नि and the Avaroha takes कोमल नि. The Gandhar is always omitted. According to some a sparing use of ध is allowed, in the Avaroha. There is another variety of Badahansa which takes तीव्र ग, but it is very obscure.

सामंत सारंग

The notes used in this Raga are सा, रे, म, प, ध, नि and नि. ग is omitted; the ध is generally used in the Avaroha. Both Nishads are used.

शुद्ध सारङ्ग

This variety also drops गांधार. The notes used are सा, रे, म, प, ध and both Nishads; some singers use both Madhyams, the तीव्र being used in the Aroha.

लंकदहन.

None of the professional experts assembled could sing or describe this variety with any confidence. The consideration of this Raga, therefore, had to be postponed.

प्र०—तो फिर ऐसा प्रतीत होता है कि लंकदहन सारंग राग के सम्बन्ध में अभी तक कोई निर्णय नहीं हुआ। यह राग हमारे सुनने में आयेगा, इसकी बहुत कम संभावना मालूम होती है।

उ०—मुझे भी यही जान पड़ता है। मैं नहीं समझता कि इस लंकादहन सारङ्ग की जानकारी निश्चय पूर्वक देने वाला कोई गायक तुम्हें मिलेगा। मेरे गुरु रामपुर के वजीर खां ने मुझे एक गीत लंकादहन का कहकर सिखाया था, परन्तु इसे किसी के सामने गाना नहीं, ऐसा उन्होंने मुझ से कह दिया था। उस गीत के बोल इस प्रकार थेः—(धमार)

"गुलाल रङ्ग भर किन्ने डारो री मेरी आंखन बीच ॥" एक आवोरी मोहे किसी को न मानूं दूजे लगी मोहे कांपर (कहां पर) आंखन कीच ॥" इस गीत के स्वर उन्होंने इस प्रकार गाये थे—

म (सा, री, के ऊपर) · प ध · री · म · नि · म म

सा, री, म, म, प, प. नि॒ नि॒ प, प, म रे सा, रे म रे सा, सां नि॒ ध नि॒ प, म प ग॒ ग॒ म रे सा ॥ अन्तरा ॥ म प, नि सां, नि सां, सां, सां, सां रें मं रें सां, सां, नि॒ प, म, म, प, प सां, सां नि॒ ध नि॒ प, ग॒, रे सा ॥

(ऊपर के स्वर: प — नि॒ पर; प, नि — प सां पर; म — ग॒ पर)

प्र०—तो फिर लंकादहन सारङ्ग में, दोनों निषाद, अवरोह में थोड़ा सा धैवत तथा कोमल गन्धार वे लेते थे, यह निश्चित हुआ। कोमल गन्धार इसमें आने से इसे अन्य सारंग प्रकारों से पृथक मानना ही पड़ेगा।

उ०—तुम्हारा कहना ठीक है। उन्होंने इस राग का विस्तार करके नहीं दिखाया। इस कारण इसके विषय में विशेष जानकारी मैं नहीं दे सकता; परन्तु उन्होंने कहा कि इस राग की बढ़त सारङ्ग जैसी करके, कहीं-कहीं कोमल गन्धार दिखाना चाहिये तो ठीक जमेगा। वे स्वयं गायक नहीं थे, अतः पखावज के साथ यह राग गाकर दिखाने के लिये मैंने उनसे नहीं कहा।

प्र०—वे गायक नहीं थे तो यह चीज उन्होंने कैसे गाकर दिखाई ?

उ०—वे बीनकार थे। तुमको यह ध्यान में रखना चाहिये कि अनेक ध्रुपद एवं धमार की जानकारी के बिना कोई सच्चा घरानेदार बीनकार नहीं कहलाता था। वजीरखां के पिता अमीरखां बहुत बड़े नामी ध्रुपदिये थे, यह मैंने तुमको बताया ही था। वजीरखां

छोटे थे, तभी उनका स्वर्गवास हो गया था। परन्तु वजीरखां को अपने घराने के अनेक ध्रुपद आते थे, यह मुझे मालुम है। वे आजकल के हमारे नवीन बीनकारों के समान नहीं थे। अब वजीरखां जैसे बीनकार व जानकार देश में नहीं मिलते।

प्र०—ऐसा क्यों ?

उ०—आजकल कई सितार वादक ऐसे हैं कि जरा सितार पर हाथ चलने लगा तो बीन भी बजाने लगे। ऐसे लोगों को बीन की वास्तविक तालीम नहीं मिलती। बीन की खास तालीम प्रत्येक घराने की स्वतन्त्र थी, ऐसा वजीरखां कहते थे। परन्तु यहां हमारा किसी की टीका करने का उद्देश्य नहीं है।

प्र०—'लंकदहन' नाम की उत्पत्ति कैसे हुई ?

उ०—'लंकदहन' अथवा 'लंकादहन' राग हनुमान ने 'लंकादहन' के समय गाया, ऐसी दन्तकथा है। परन्तु फिर यह रामायण के समय से होना चाहिये और वह दक्षिण के ग्रन्थों में तो अवश्य ही होना चाहिये। लेकिन यह उन ग्रन्थों में कहीं नहीं दीखता। मेरी समझ से ग्रन्थों के अभाव में इस प्रकार की दन्तकथा की चर्चा उचित न होगी। यह बात सच है कि 'लंकादहन' राग हमारे यहां बहुत ही पुराना है। उसका उल्लेख लोचन ने भी तरंगिणी में किया है।

प्र०—वह किस प्रकार ?

उ०—यह कितने ही राग मिलाकर बनता है, ऐसा उसने कहा है। वह कहता है:-

केदाराचलगौरीभिर्लंकादहननामकः।

पुनः "नारायण" राग का वर्णन करते हुए कहता है:—वेलावली परस्तद्वद्दहनो-लंकपूर्वकः।

प्र०—और उसके लक्षण ?

उ०—लक्षण उसने नहीं कहे। कदाचित् उस समय प्रचार में वह नहीं होगा। उसके ग्रन्थ में अनेक दूसरे भी ऐसे राग हैं, जिनके लक्षण वह नहीं कहता। परन्तु केवल इतने से ही यह निश्चय नहीं कर लेना चाहिये कि वे राग प्रचार में बिलकुल नहीं थे। ग्रन्थकार को अपने समय के तमाम रागों का अपने ग्रन्थ में उल्लेख करना ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं।

प्र०—यह ठीक है। इस राग की सरगम यदि बता सकें तो बता दीजिये ?

उ०—अच्छा ! एक सरगम कहता हूँ:—

नि़		सा			सा		प़	ध़	
सा	रे	रे	रे	सा	नि़	सा	नि़	नि़	प़
×		२			०		३		
म	म	म					प		
ग॒	ग॒	ग॒	म	म	रे	सा	नि़	ऽ	प़

म़	प़	सा	ऽ	सा	(सा) नि़	सा	रे	नि़	सा
प	म	नि॒	प	प	रे	रे	सा	ऽ	सा

अन्तरा.

म	प	सां	ऽ	सां	सां	ऽ	नि	सां	सां
(सां) नि	सां	रें	रें	रें	सां	ऽ	(प) नि॒	(ध) नि॒	प
(मं) रें	(मं) रें	(मं) रें	मं	रें	सां	ऽ	(प) नि॒	(ध) नि॒	प
(प) म	प	(म) ग॒	म	प	(म) ग॒	म	रे	रे	सा

प्र०—क्यों जी ! इसमें कोमल गन्धार है और सारङ्ग की छाया भी इस राग पर दीखती है ?

उ०—यदि यह न दिखाई दे तो फिर इसे सारङ्ग प्रकार कैसे कह सकेंगे ? परन्तु मित्र ! यह राग मैंने भी विशेष नहीं सुना, इसलिये इसके सम्बन्ध में अधिक जानकारी मैं नहीं दे सकता। आगे तुम्हीं इसकी खोज करना। बडहंस राग का यह प्रचलित स्वरूप ध्यान में रखो:—

काफीमेलसमुत्पन्नो बडहंसो बुधैर्मतः।
कैश्चिदन्यैर्वर्णितोऽसौ शंकराभरणस्वरैः ॥
ऋषभः संमतो वादी संवादी पंचमो मतः।
गानमस्य समीचीनं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
सारंगस्य प्रभेदोऽयं संमतः सर्वतोऽधुना।
ततो गांधारलोपोऽत्र समादृतो विचक्षणैः ॥
बडहंसे मतं प्रायो धगस्वरप्रलोपनम्।

मुक्तत्वं मध्यमेऽभीष्टमपन्यासस्तु निस्वरे ॥
सारङ्गनामके मेले रागोऽयं कीर्तितः स्फुटम् ।
लोचनेन तथैवापि हृदयेशेन धीमता ॥
तीव्रमध्यमयोगोऽत्र वर्णितो हृत्प्रकाशके ।
यतो लक्ष्यविरोध्येतन्नतत्संमानमर्हयेत् ।
प्रयोगस्तीव्रधस्यात्र विलोमे दृश्यते क्वचित् ।
लक्ष्यमार्गमनुल्लंध्य कुर्यात् तत्र प्रवर्तनम् ॥

लक्ष्यसंगीतशास्त्रे ॥

बडहंसोऽस्ति सारङ्गविशेषो बहुसंमतः ।
गांधारस्वरहीनश्च षाडवः पंचमांशकः ॥
षड्जपंचमसंवादो मिथः परमसुन्दरः ।
सारंगस्यैव सर्वेऽत्र स्वराःस्युस्तीव्रकोमलाः ॥
मध्यमः प्रबलश्चात्र भवेद्रक्तिप्रदायकः ।
मध्याह्नसमये चैव गीयते गीतकोविदैः ॥
एवं हि सूरसारंगो लूमसारंग एव च ।
लंकादहनसारंग इति भेदाः समीरिताः ॥

सुधाकरे ॥

रागोयं बडहंसको मृदुमनिर्गांधारहीनः सदा ।
वादीत्वत्र हि पंचमो भवति संवादी च षड्जस्वरः ॥
सारंगस्य हि भेद एष इति यं सर्वे वदंति ध्रुवम् ।
मध्याह्ने मधुरं च गीतिनिपुणैः षड्भिः स्वरैर्गीयते ॥

कल्पद्रुमांकुरे ॥

कोमल मनि गंधार नहिं अल्पहि धैवत होइ ।
सपसंवादीबादितें बडहंस कह्यो सोइ ॥

चन्द्रिकासार ॥

निपौ मरी सरी मश्च पनी पनी सनी पमौ ।
रिसौ मध्याह्नगः पांशः सारंगो बडहंसकः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ॥

प्र०—सारंग अङ्ग के रागों में से अब केवल 'पटमंजरी' शेष रहा। उसे ही लेंगे क्या ?

उ०—हां, वही अब लेंगे। 'पटमंजरी' राग अप्रसिद्ध रागों में ही गिना जाता है। उसके वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक विवाद उत्पन्न होते हैं। कोई पटमंजरी शुद्ध स्वर मेल में लेते हैं।

प्र०—हां, यह आपने पहले भी कहा था ?

उ०—उस प्रकार में बिलावल के स्वर हैं तथा कहीं-कहीं जयजयवन्ती जैसा भाग दिखाई पड़ता है। ऋषभ पर, जब किसी समय पंचम से आते हैं तब ऐसा भास होता है। परन्तु जयजयवन्ती में दोनों गन्धार व दोनों निषाद हैं, वैसे पटमंजरी में नहीं आते। इसलिये सहज ही यह स्वरूप पृथक हो जाता है। एक स्थान पर शुद्ध स्वरों की पटमंजरी मैंने गाई। उसे सुनकर एक वृद्ध गायक कहने लगे कि तुम्हारे इस प्रकार को हम "बंगाल-बिलावल' कहते हैं।

प्र०—बंगाल बिलावल ? ऐसा उनको इसमें क्या दिखाई दिया पण्डित जी ?

उ०—वे प्रसिद्ध एवं अनुभवी गायक थे, इस कारण उनके कहने में कुछ अर्थ होगा, ऐसा समझ कर मैंने स्वतः ही बाद में उनके कथन पर विचार किया। तब मुझे भी ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में उस प्रकार में उनको बिलावल दिखाई दिया होगा। तुम्हीं यह सरगम देखो न ?

सरगम—झपताल.

सा	ग	(री)ग	ऽ	म	रे	रे	सा	ऽ	सा
×		२			०		३		
सा	ध़	सा	ऽ	रे	सा	ऽ	ध़	ध़	प़
प़	प़	रे	ऽ	रे	रे	रे	रे	ग	सा
सा	ग	(री)ग	म	प	म	ग	म	रे	सा

अन्तरा—

प	प	सां	ऽ	सां	सां	ऽ	सां	रें	सां
×		२			०		३		
सां	गं	(रें)गं	मं	पं	मं	गं	मं	रें	सां

प	प	रें	ऽ	रें	सां	ऽ	प	ध	प
ग	रे	री ग	ऽ	म	रे	रे	सा	ऽ	सा

इसमें कुछ बिलावल जैसा भाग दिखाई नहीं देता है क्या ? जिस गीत के आधार पर यह सरगम मैं कह रहा हूं वह पटमंजरी कहकर मुझे सिखाया गया था।

प्र०—यह सिखाने वाले कोई प्रसिद्ध गायक थे, ऐसा जान पड़ता है ?

उ०—लगभग पचास वर्ष से हमारे यहां 'इमदाद खां' नामक जो प्रसिद्ध गायक थे, उनके भाई ने मुझे यह गीत सिखाया था। यह गीत पटमंजरी का कह कर किसी अन्य राग का उन्होंने मुझे सिखा दिया, यह बात नहीं है। मेरी समझ से उत्तर की ओर इस स्वरूप को संभवतः 'बंगाल बिलावल' कहते होंगे। पुनः दूसरे एक शहर में वही गाने का प्रसङ्ग आया था। वहां श्रोता उसे पटमंजरी ही कहने लगे। उन श्रोताओं में से एक ने पटमंजरी मुझे गाकर दिखाई। उसके कुछ स्वर इस प्रकार थे:—

"प | म म | री
ग ग सा | रे ऽ | रे ऽ ऽ || रे ग | म प ध | प ऽ | ध म रे"
  | ० | ३ | × | २ || ० | ३ | × | २

आगे का भाग याद नहीं। ऊपर जो सरगम कही है, उस प्रकार का एक गीत रामपुर में वजीर खां ने भी मुझे बताया था। उसका अन्तरा कुछ निराले ही की प्रकार का था। आरोह में धैवत वे नहीं लेते थे। 'प रि' संगति उनके प्रकार में भी थी।

प्र०—उनसे आपने राग नियम नहीं पूछे ?

उ०—वे मुसलमान तथा वृद्ध थे, अतः मैंने उनसे इस प्रकार की चर्चा करना उचित नहीं समझा। और इन लोगों के उत्तर कुछ ऐसे होते थे कि "नियम वियम हमको बताने नहीं आते, वे तुम्हीं अपने देख लो। हमारे वालिद ने सिखाये वह हमने गाकर तुमको दिखा दिये।" उनका यह कथन अधिकांश में ठीक भी था। पटमंजरी में जयजयवन्ती का थोड़ा भास होगा, ऐसा बड़ौदा के प्रसिद्ध गायक स्व० फैज मोहम्मदखां ने भी मुझ से कहा था। अन्त में जो सरगम कही है, उसके कुछ स्वर मैंने रामपुर के नवाब छमन साहेब के आगे भी गाकर दिखाये थे तथा जिस चीज की वह सरगम थी, उसमें 'सकल गुणी जन' ऐसे शब्द कहे हैं। उन्होंने वह चीज पटमंजरी में ही कही है तथा उसके बोल इस प्रकार हैं:—

सकल गुनी जाने माने सो जाने गुन की बात बखाने।
जगत गुरु शाहे अकबर अत सुखदायक अंतर जामी जो जाने सो माने ॥

परन्तु अब हम जो पटमंजरी प्रकार देख रहे हैं, वह काफी थाट का है। इसलिये शुद्ध स्वरों के प्रकार की हम अधिक चर्चा करने वाले नहीं हैं। उसमें भी कोई आरोह में ध लेते हैं और कोई उसे न लेने को कहते हैं। अतः इस विवाद में पड़ने में कोई लाभ नहीं।

प्र०—ठीक है तो अपने काफी थाट के प्रकार के सम्बन्ध में कहिये ?

उ०—हां, कोई गायक कहते हैं कि 'पटमंजरी' में पांच राग मिलते हैं।

प्र०—क्या ? सात स्वर और पांच रागों का मिश्रण ? धन्य है पण्डित जी ! इन लोगों को। यह किसका मत है ?

उ०—उदैपुर के निकटश्रीनाथ द्वारा नाम का एक क्षेत्र है। एक बार वहां के गायक फिदाहुसैन खां आये थे, उन्होंने पटमंजरी इसी प्रकार से गाई थी। वे अब जीवित नहीं हैं, परन्तु ऐसे मत के दूसरे भी गायक हो सकते हैं।

प्र०—परन्तु वे पांच राग कौन से ? उनके कौन से भाग, इस राग में कैसे जोड़े जायें ? प्रारम्भ किस राग का व अन्त किस राग पर करना चाहिये, इस बाबत उन्होंने कुछ कहा था क्या ?

उ०—इस प्रकार के प्रश्न मैंने उनसे नहीं किये। भरी सभा में ऐसा करना अच्छा भी नहीं दीखता। परन्तु पटमंजरी में बहुत से राग मिश्रित दीखते है, ऐसा Capt. Willard ने भी अपने ग्रन्थ में कहा है। अवयवीभूत रागों के नाम उन्होंने इस प्रकार दिये हैं:—'मारू, धवल, धनाश्री तथा कुंमारी'। यह मत उन्होंने रागतरंगिणी से लिया होगा। कारण, उसमें भी ऐसा कहा है:—

मारूधवलधनाश्रीकुंमारीमिलनाद्भवेत् ।
पटमंजरी इ० × × × ॥

मारू, धवल, कुमारी यह हमारे यहां कोई नहीं गाते, तो फिर ऐसे मिश्रण से कौनसा रूप बनेगा, यह बताना कठिन है।

अब आगे बढ़ने से पहले हम यह देखलें कि पटमंजरी स्वरूप के सम्बन्ध में हमारे ग्रन्थकार क्या कहते हैं, संगीतरत्नाकर में 'पटमजरी' ऐसा नाम नहीं है। उसमें भाषांग रागों के अन्तर्गत 'प्रथम मंजरी' एक नाम दिया है, उसका विचार हम नहीं करेंगे। संगीतदर्पणकार ने 'पटमंजरी को हिंडोल की एक रागिनी मान कर उसका वर्णन इस प्रकार किया है:—

पंचमांशग्रहन्यासा संपूर्णा पटमंजरी।
हृष्यका मूर्छना ज्ञेया रसिकानां सुखप्रदा ॥

ध्यानम्।

वियोगिनी कांतविशीर्णगात्रा स्रजं वहंती वपुषा च शुष्का।
आश्वास्यमाना प्रियया च सख्या विधूसरांगी पटमंजरीयम् ॥

प ध नि स रि ग म प।

नारायणकृत संगीतसार में (राजा टागोर के संगीतसारसंग्रह ग्रन्थ से) ऐसा कहा है:—

पंचमांशग्रहन्यासा धरितारा गमोत्कटा ।
शृङ्गारे चोत्सवे गेया प्रातः प्रथममंजरी ॥

ऐसा श्लोक कहकर आगे ध्यान, वियोगिनी आदि, जो मैंने अभी कहे, वे ही हैं तथा नीचे ऐसा स्पष्ट कहा है कि, 'इयमेवपटमंजरीत्युच्यते ।'

प्र०—तो पहले जिसको 'प्रथममंजरी' कहते थे, उसीको बाद में 'पटमंजरी' कहने लगे, ऐसा दीखता है। और यदि यह ठीक हुआ तो रत्नाकर के प्रथममंजरी के लक्षण देखना मनोरंजक होगा। कदाचित् नारायण ने वह उससे ही लिये हों ?

उ०—तुम तो बड़े मजे का तर्क करने लगे। रत्नाकर में 'प्रथममंजरी' इस प्रकार कही है:—

पंचमांशग्रहन्यासा धरितारा गमोत्कटा ।
गमंद्रा चोत्सवे गेया तज्ज्ञैः प्रथममंजरी ॥

प्र०—क्यों जी ! इन लोगों ने प्राचीन व्याख्या को लेकर उसमें थोड़ी बहुत तोड़ मोड़ करके और कुछ कल्पना करके प्रथममंजरी को पटमंजरी कर दिया है, ऐसा नहीं दीखता है क्या ?

उ०—उन बेचारों की क्यों टीका करते हो ? कीर्तिलोभ ने किसको छोड़ा है ? उधर ध्यान न देना ही अच्छा है। किसी दूसरे का उद्धरण लेकर उसमें अपनी इच्छानुसार परिवर्तन करके अपनी नवीन कृति बताना, यह प्रचलन हमारे यहां सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा है। उनमें जो सुबोध हों, उनको लेना, शेष छोड़ देना, ऐसा अपना नियम बनालो। इसीलिये मैं ऐसे अति प्राचीन ग्रन्थों को दूर से ही नमस्कार करके सुबोध ग्रन्थों की ओर बढ़ता हूँ। अस्तु, तरंगिणी में 'पटमंजरी' सारंग संस्थान में कही है।

प्र०—तो फिर 'पटमंजरी' को सारंग प्रकार मानना शास्त्र सम्मत है, यह कहने में हानि नहीं ?

उ०—तुम जल्दबाजी में अपना मत निश्चित मत करो। तरंगिणी के प्रकार में थोड़ा बहुत सारङ्ग प्रकार अवश्य आयेगा। परन्तु एक बार राग के लक्षण निश्चित कर लेने पर फिर यह सब देखने में आयेगा। तरंगिणी में पटमंजरी रूप नहीं दिया, किन्तु उसमें सारङ्ग मेल के स्वर स्पष्ट हैं।

प्र०—यह हमको आपने बताये ही हैं। वे इस प्रकार हैं:—

"सा रे म मं प नि॒ नि सां"—

उ०—बिलकुल ठीक हैं। अब तरंगिणी का अनुयायी हृदयनारायण क्या कहता है सुनो:—

सारंगस्वरसंस्थाने प्रथमा पटमंजरी ।
वृन्दावनी तथा गेया सामंतो बडहंसकः ॥

अन्य सारङ्ग प्रकारों को संगति सारङ्ग मेल में 'पटमंजरी' है, यह दीखता ही है। आगे उसके लक्षण सुनोः—

सरी पमौ पमौ पश्च निसौ सनिपमा रिसौ ।
औडुवी कथ्यते लोके रागिणी पटमंजरी ॥
सारी पम पम पनिसां सांनिपमरिसा ।

प्र०—खूब मिलाया है ? यह विचित्र सारंग प्रकार शास्त्रीय हो गया। ग तथा ध वर्ज्य करके अच्छा औडुव कायम किया ?

उ०—तुम्हारे उतावलेपन पर तथा भूल जाने की आदत पर बड़ा आश्चर्य होता है। जब ग तथा ध वर्ज्य हो गये तो क्या बाकी रहेगा, इसका विचार किया ?

प्र०—भूल हो गई ! ग व ध निकाल दिये तो इसका अर्थ यह हुआ कि कोमल म तथा कोमल नि ही निकल गये। अर्थात् तब 'सा रे म प नि सां' ऐसा स्वरूप रहेगा। उसको कोई सारङ्ग नहीं भी कहेंगे। आप कह रहे हैं वह काफी थाट का प्रकार है, किन्तु वहां यह कहा जा सकता है कि हृदय के समय में ऐसा स्वरूप होगा; परन्तु आगे चलकर उसमें म तथा नि कोमल हो गये होंगे।

उ०—हां, ऐसा कहने में हानि नहीं। तरंगिणी के अनेक रागों के आगे चलकर ऐसे ही रूपान्तर हो गये हैं, ऐसा सहज ही सिद्ध करके दिखाया जा सकता है। हृदय पण्डित ने हृदयप्रकाश में सारङ्ग को नौवां मेल कह कर उस मेल के स्वर ऐसे बताए हैं:—

अतितीव्रतमो गाख्यो मधौ तीव्रतरौ मतौ ।
यत्र निः काकली, तत्र सारंगः पटमंजरी ॥

प्र०—यह मेल वर्णन वस्तुतः कौतुक का ही है। केवल भाषा पारिजातकार की है ?

उ०—तुमने ठीक कहा। राग स्वरूप आगे इस प्रकार कहा है:—

गधत्यागादौडुवेषु षड्जादिः पटमंजरी ।
सा रि प म प म म रि सा । सा नि प म रि सा ॥

यह स्वरूप भी कौतुक का ही है, अतः इसके सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

आगे बढ़ने से पहले एक बात ध्यान में रखो कि पटमंजरी विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार से तुम्हारे सुनने में आयेगी।

प्र०—अर्थात् एक शुद्ध स्वरों की तथा एक सारङ्ग अङ्ग की, क्या इससे भी निराले प्रकार की कोई देखने में आयेगी ?

उ०—हां, कभी-कभी दोनों गन्धार तथा दोनों निषाद प्रयुक्त प्रकार भी तुम्हारे सुनने में आयेगा।

प्र०—तो फिर हमें क्या नियम निश्चित करने चाहिये, पण्डित जी ?

उ०—इस राग के सम्बन्ध में ऐसी उलझन अवश्य है, परन्तु तुम अपने दोनों मत कायम रखते हुए चलो। अन्य मत सुनने में आयें तो उन्हें भी संग्रह करलो। इसके अतिरिक्त मैं और क्या मार्ग बता सकता हूं ? अच्छा मित्र! अब पुण्डरीक क्या कहता है, वह देखें। सद्रागचन्द्रोदय में वह पण्डित राग नाम 'प्रथममंजरी' कहता है तथा उसको 'मालवगौड' थाट में लेकर उस राग के लक्षण इस प्रकार कहता है:—

पांशग्रहन्यासयुता सदैव। मंजर्युपास्या प्रथमादिरेषा ॥

प्र०—यह भैरव थाट प्रकार हमारे लिये उपयोगी नहीं होगा। ठीक है न ?

उ०—नहीं। यह हमारा प्रकार नहीं। रागमाला में 'प्रथममंजरी' को पुण्डरीक ने हिन्डोल की रागिनी माना है तथा उस रागिनी का स्वरूप इस प्रकार कहा है:—

जाता गौडस्यमेले धरिपरिरहिता वादिमध्यान्तपा या

× × × ×

प्रीतालंकारयुक्ता प्रथमपदपुरा मंजरी सा सदैव ॥

शुद्धगौड तथा गौड ये पृथक प्रकार हैं। गौड का मेल मल्लार अर्थात् केदारमेल है। राग मंजरी में पुण्डरीक ने 'पटमंजरी' को गौडीमेल में सम्मिलित किया है। उसमें रि तथा ध कोमल और ग, नि तीव्र हैं। इसलिये वह भी हमारा प्रकार नहीं।

दक्षिण के स्वरमेलकलानिधि, रागविबोध तथा चतुर्दंडिप्रकाशिका ग्रन्थों में 'पटमंजरी' राग नहीं दीखता। वहां के राग लक्षण ग्रन्थ में 'मंजरी' नाम के दो राग हैं। उनमें से एक आसावरी (उनका नटभैरवी) थाट में है तथा दूसरा हरिकांभोजी मेल में है। आसावरी थाट के प्रकार में मध्यम वर्ज्य है तथा स्वरूप 'रि ग प ध़ ऩि सां। रिं सां ऩि ध़ प ग़ रे' ऐसा कहा है। यह हमारा प्रकार नहीं होगा। दूसरा जो खमाज थाट में कहा है, उसमें गन्धार वर्ज्य है तथा स्वरूप ऐसा है:—सा रे म प ध ऩि सां। सां ऩि ध प म रे सा ॥

प्र०—इस दूसरे प्रकार में कुछ सारङ्ग की झलक है, परन्तु नाम 'मंजरी' दिया है ?

उ०—हां, ऐसा ही है। अब हम अर्वाचीन देशी भाषा के आधार देखें:—

राधागोविन्द संगीतसार में 'पटमंजरी' हिन्डोल की रागिनी मानकर उसे सम्पूर्ण बताया है। आगे चित्र देकर शास्त्रोक्त मूर्छना 'प ध नि सा रे ग म प' कही गई है तथा समय, 'प्रथम प्रहर की छटी घड़ी' कहा है। जंत्र ऐसा दिया है:—

प	ध॒	सा	नि॒	ग॒
म	प	नि॒	ध॒	रे॒
प	सा	ध॒	प	सा
नि॒	नि॒	प	म	

यह भी हमारा प्रकार नहीं हो सकता। क्योंकि देखने से यह भैरवी थाट का प्रतीत होता है।

नादविनोदकार ने पटमंजरी नहीं कही। सङ्गीतसार में क्षेत्रमोहन स्वामी ने

री नि़

बिलावल थाट का प्रकार कहा है। वह ऐसा है:—नि़ सा, रे म ग ग; सा, नि़ नि़ सा,

रे रे नि़ म ⌒ री नि़ रे

रे ग प, म ग ग, सा, नि़ रे, म म प प, प ध म रे म ग ग ग, सा नि़, नि़ सा, रे म ग, ग सा ॥ इससे अधिक नहीं कहा है। इस विस्तार से तुमको कुछ बोध होगा, ऐसा नहीं जान पड़ता। इससे इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि यह राग बिलावल थाट में गाते हैं।

प्र०—अब आप अपने काफी थाट का तथा सारंग अंग का प्रकार कहिये। प्राचीन ग्रन्थ देखने पर किसी का किसी से मेल नहीं मिलता। गायक एक दूसरे की छाती पर सवार होने लगते हैं। इनमें कौन सही और कौन गलत है? इसीलिये अधिकांश राग लुप्त होते जा रहे हैं। कोई कहता है पटमंजरी का थाट बिलावल, दूसरा कहता है काफी, तीसरा कहता है खमाज, चौथा भैरवी, पांचवा भैरव! इसको क्या कहना चाहिये?

उ०—घबराओ नहीं। तुम्हें तो रागों का इतिहास चाहिये न? इसलिये मैंने यह सब कहे हैं। हमारे इच्छित आधार, ग्रन्थों में निकलने ही चाहिये, ऐसा आग्रह भला कैसे किया जा सकता है? वे ग्रन्थकार सैकड़ों वर्ष पूर्व अपने ग्रन्थ लिख गये। उनके बाद अनेक तोड़ मोड़ हुए, उनमें रागस्वरूप भी बदले। यह सब तुमको पता ही है, परंतु तुम ऊब न जाओ, इसलिये पुनः कह रहा हूँ। पटमंजरी जैसे राग में फिरत करना अत्यंत कठिन है। इसमें कुछ तानें सारंग जैसी लेकर बीच-बीच में कोमल गन्धार तथा तीव्र धैवत

⌒ म

लिये जाने वाले टुकड़े दिखाये जाते हैं। म रे इस मींड को टालना चाहिये तथा "रे म प"

प प म

ऐसा लेना चाहिये। "म म प," यह सारङ्ग का टुकड़ा आना चाहिये; परन्तु "ग॒ म रे सा" ऐसा भाग नहीं लेना चाहिये। "नि़॒ ध़ प़" यह भाग दिखाने में हानि नहीं।

म ⌒

जहां तक बन सके "ध सां, धनिसां" ऐसा नहीं करना चाहिये। "प ग॒" अथवा "प ग॒"

प ⌒

रे, सा, रे म, म प," ऐसा कर सकते हैं। "नि॒ प" अथवा "ध नि॒ प" ऐसा प्रयोग भी

दिखेगा। तुमको अभी मैंने "देसी" राग नहीं बताया, अन्यथा यह कहता कि सारंग में थोड़ा सा देसी का स्पर्श जैसे दिया जाता है, वैसा कृत्य इस पटमंजरी में होता है। देसी के नियम बिल्कुल भिन्न हैं। अब पटमंजरी की यह छोटी सी सरगम कहता हूँ। सुनोः—

(सरगम—झपताल.)

सा		सा			सा ⁀		सा		
नि̣	सा	नि̣	सारे (‿)	सा	ध̣	प̣	नि̣	सा	सा
×		२			०		३		
ध		सा			म				
नि̣	प̣	नि̣	सा	सा	रि	म	प	ऽ	प
प		प			म				
म	प	म	प	ध	ग॒	रेग॒ (‿)	मग॒ (‿)	रे	सा

अन्तरा.

प		सां	मां				सां		
म	प	नि	नि	ऽ	सां	ऽ	नि	सां	सां
×		२			०		३		
प		प					सा		
म	प	म	प	प	सा	ऽ	नि̣	सारे (‿)	सा
					म				
नि̣	ध̣	प̣	सा	ऽ	रे	ऽ	म	प	ऽ
प		प			म				
म	प	म	प	ध	ग॒	रे	मग॒ (‿)	रे	सा

सरगम—त्रिताल. (सावकाश ढंग से).

सा	सा			⁀								म			
नि̣	नि̣	सा	रेसा (‿)	नि̣	ध̣	प̣	प̣	सा	ऽ	रे	सा	रे	म	प	ऽ
×				२				०				३			
प				म	म			म		⁀					
म	प	म	पध (‿)	ग॒	ग॒	रे	रे	रे	ग॒	म	ग॒	रे	रे	सा	ऽ

अन्तरा—

सां सां नि नि सां सां ×	सां नि सां ऽ सां २	प प प म प ०	सा ऽ रे सा ३
प सा सा रे म	प ऽ प ऽ	प म प म पध	म ग मग रे सा

जयपुर के मोहम्मदअलीखां ने जो गीत मुझे सिखाया था, उसके आधार पर यह मैंने तुमको बताई है। वह गीत भी मैं बाद में तुमको सिखाऊँगा ही। अब हम इस सरगम के अंग से थोड़ा सा स्वर विस्तार करके देखें:—

सा, नि, सा, रेसा, रेमप, प, मप, धग, रेमपधग रे, सा, रेनिसा। निसा, रे म प, म प, ध प म ध प, ग रे, ग, सा, ध प म प ध ग रे, ग म ग रे, सा। म प, प सां, प म प, सा, म प, ध प नि प, म प सां, प ध प, ग रे, म प ध ग रे, म ग रे, सा। सा, नि सा, प, सा, ग रे, सा प म प, ग रे, रे, सा, नि सा ध, प, सा, नि, सा, म ग रे, सा। सा म, म प, म प ग रे, म प, ध प, सां, प ध प म ग रे ग म, ग रे, नि प, म, प ग रे, रे सा। रे सा, ध प, सा, नि ध प, ध प, नि सा, सा, रे म, म प, प, म प ध ग, रे, रे ग म ग रे, सा। सा, रे सा, रे ग रेसा, रे म प, म प ध ग रे ग म ग रे, सां, प, म प ध ग रे, ग, म ग रे, सा।

म म, प, सां, सां, रें सां, गं, रें, सां, नि सां, प; म प, सा, रे म, प, प, नि ध प, म प, ध प ग रे, प ग रे, ग म ग रे रे सा।

इस थोड़े से विस्तार से इस राग का चलन तुम्हारे ध्यान में अवश्य आगया होगा।

प्र०—अच्छी तरह आगया। यह राग अति मधुर जान पड़ता है। सावकाश गाया जाय तो हमारी समझ से विशेष सुन्दर प्रतीत होगा। इसमें, "रे ग म ग रे, सा" ऐसा आपने विशेष रूप से किया है, ऐसा हमको जान पड़ता है।

उ०—हां, यह भाग मुझे इस राग में आगे लाना पड़ता है। इसके योग से देसी राग की छाया दूर रखने में सुविधा होगी। यहां तुम्हारा ध्यान अच्छा गया। अब इसके साधारण लक्षण ध्यान में रखने के लिये श्लोक कहता हूँ। सुनो:—

हरप्रियाह्वये मेले मंजरी पटपूर्विका ।
रागिणी श्रूयते लक्ष्ये संपूर्णा बहुसंमता ॥
आरोहे धगदौर्बल्यात्सारंगांगं प्रसूचयेत् ।
सारंगे लंघनं प्रोक्तं समूलं स्वरयोस्तयोः ॥
वादित्वं षड्जके निष्ठं संवादित्वं तु पंचमे ।
सारंगानंतरं गानं भवेदस्याः सुरक्तिदम् ॥
सारिमपस्वरैर्व्यक्तं सारंगांगं प्रदर्शयेत् ।
धगयोः सुप्रयोगात्तद्गायनः परिमार्जयेत् ॥
संगतिर्धगयोरत्र भवेद्रक्तिप्रवर्धनी ।
रिगमगरिसैश्चेह देसीरूपं भिदां भजेत् ॥
दुर्लभं रूपमेतद्यदवश्यं संभवेत्ततः ।
लक्ष्याध्वनि मतानैक्यं बुधः कुर्याद्यथोचितम् ॥
मते केषांचिदप्यत्र द्विगांधारप्रयोजनम् ।
पंचमस्यापि वादित्वं न तन्मे भाति संगतम् ॥
मेले शुद्धस्वराणां तां केचिदन्ये विदो विदुः ।
न तद्विसंगतं भाति मतं लक्ष्यानुसारतः ॥
शुद्धस्वरयुतं रूपं रात्रिगेयं भवेत्प्रियम् ।
मया प्रपंचितं त्वत्र तृतीयप्रहरे दिने ॥

—लक्ष्यसङ्गीते ।

प्र०—हमारी समझ से यह सारंग प्रकार अच्छी तरह हमारी समझ में आ गया । प्रत्यक्ष व्यवहार में सारंग के अधिकांश बिंदरावनी प्रकार ही सुनने में आयेंगे, यह आपने कहा ही था । इसके अतिरिक्त किसी ने फरमाइश की तभी सुनने को मिलेगा, ऐसा दीखता है । क्या चमत्कार है जी, देखिये । सात आठ प्रकार सारंग के होने पर भी यह स्थिति है । वस्तुतः ये प्रकार परस्पर भिन्न होते हुए भी न जाने ऐसा क्यों होता है ? हमसे यदि किसी ने यह प्रकार गाने के लिये कहा तो हमें उसे गाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होगी । प्रत्येक राग यदि अपने नियम से अन्य समप्रकृतिक रागों से पृथक दिखाने योग्य हुआ तो हिचकिचाहट होने का कारण ही क्या है ? सारंग प्रकार में 'गध वर्ज्य' तथा 'गवर्ज्य' ऐसा वर्गीकरण पहले कर लिया जाय तो उसी से राग भिन्नता स्पष्ट दीखने लगेगी । आगे धैवत लिये जाने वाले सारंग का भी भिन्नत्व दिखाना इतना कठिन नहीं दिखता । कोमल गन्धार स्पर्श करने वाले प्रकार तो सर्वथा निराले ही होंगे । पटमंजरी में सारंग का थोड़ा सा अङ्ग है, परन्तु उस राग को कोई सारंग प्रकार नहीं कहते और फिर उसमें कोमल गन्धार है, इस कारण वह राग निराला ही रहेगा । मियांकीसारंग में मियांमल्लार की छाया 'नि ध नि ध' इन स्वरों में रख देने से वह राग स्वतन्त्र ही हो जाता है । अब शुद्ध

सारङ्ग तथा नूरसारंग की ओर देखें तो उनमें तीव्र मध्यम आने के कारण अन्य सारे सारङ्ग प्रकारों से वह सहज ही अलग होंगे तथा शुद्ध सारंग में दोनों मध्यम व नूरसारंग में एक तीव्र मध्यम यह इन दोनों रागों को पृथक रखने के लिये नियम है ही। सामंत में 'नि ध प' यह छोटा सा समुदाय देश के अङ्ग से लाना चाहिये। अन्तरा में ऋषभ पर इतना ठहरना चाहिये कि क्षण भर श्रोताओं को ऐसा प्रतीत होने लगे कि हम देस गा रहे हैं। अब रह गये बिंद्राबनी, मधमाद तथा बडहंस। मधमाद तो आरोहावरोह में एक कोमल निषाद का प्रयोग किया जाने वाला राग है। बिंद्राबनी में दोनों निषाद आयेंगे। कोई मधमाद में दोनों निषाद लेने लगे तो वह बिंदराबनी गाता है, ऐसा ही सुनने वाले कहेंगे। परन्तु मधमाद राग में दोनों निषाद लेने का किसी ने आग्रह ही किया तो बिंदराबनी में किंचित् तीव्र धैवत का स्पर्श करने से काम बन जायगा। बडहंस में तो मध्यम एक टुकड़े में मुक्त रहेगा और उत्तरांग में कोमल निषाद एक टुकड़े के अन्त में रहेगा। तब ये सारंङ्ग अप्रसिद्ध क्यों रहे, कुछ समझ में नहीं आता ?

उ०—यहां इतना ही कहा जा सकता है कि यह जो छानबीन सारंग प्रकार की तुम कर रहे हो, यह अनेक गायकों को मालुम नहीं अथवा वे ध्यान नहीं देते। अस्तु, यह प्रकार अब अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ गया है, ऐसा मानकर आगे चलने में हानि नहीं दिखती। तुमने जो बात कही, उसे कवि ने इस श्लोक में कैसे वर्णित किया है, देखोः—

निकोमला मध्यमादिर्वृन्दावनी तु निद्वया।
मुक्तमो बडहंसः स्यात्सामतो निधपैर्भवेत् ॥
निधयोः पुनरावृत्या मीयांसारंगको भवेत्।
मद्वंद्वः शुद्धसारङ्गो मतीव्रो नूरनामकः ॥
गकोमलो मतो नित्यं लंकादहननामकः।
एते सारंगभेदाः स्युः प्रसिद्धा लक्ष्यवर्त्मनि ॥

प्र०—यह श्लोक हमको आपने सुना दिया, यह बहुत ही उत्तम हुआ। इसको हम कण्ठस्थ ही कर लेंगे। अब इसके आगे काफी थाट के मल्लार अङ्ग के राग लेने चाहिये, ठीक है न ?

उ०—हां, अब उसी अङ्ग के राग लेंगे।

प्र०—कहा जाता है कि बंगाल प्रान्त में बहुत से अप्रसिद्ध राग गाये जाते हैं, क्या यह सच है ?

उ०—उधर के बंगाली ग्रन्थों में वैसे रागों के नाम दिये अवश्य हैं। उदाहरणार्थ, टागोर साहेब के 'सङ्गीतसार' में प्रथम मंजरी, नागध्वनी, हरशृङ्गार, मंगल, देवबिहाग, धवलश्री, राजविजय इत्यादि रागों के विस्तार लिखे हैं, परन्तु इन रागों में से एक भी राग उन्हें स्वयं नहीं आता। उनका कहना है कि ये राग क्षेत्रमोहन स्वामी ने ग्रन्थों में

से लेकर उनके विस्तार अपनी कल्पना से लिखे हैं। इन रागों में से एक भी राग आज तुमको कोई गाकर दिखा सके एवं उसके समुचित लक्षण बतला सके, ऐसा व्यक्ति कलकत्ते में मुझे कोई नहीं दिखाई देता। महाराज ज्योतिन्द्रमोहन टागोर ने अपने निजी गायकों और वादकों से इन रागों की जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु ये राग उनमें से किसी को भी नहीं आते थे। वहां के कुछ आधुनिक ग्रन्थों में इनमें से कुछ रागों के ध्रुपद स्वरलिपि सहित अभी छपकर प्रसिद्ध हुए हैं। अखिल भारतीय परिषद में बंगाल के गायक-वादक पर्याप्त संख्या में आते रहते हैं; परन्तु उन्होंने वहां इस प्रकार के राग कभी नहीं गाये। आश्चर्य यह है कि बंगाली गायकों के मुंह से हिन्दुस्तानी गीत अच्छे नहीं लगते। अतएव उस परिषद में समस्त श्रोताओं की इस प्रकार की धारणा थी; तो अनुचित न थी। उनके शब्दोच्चारण ठीक नहीं होते तथा स्वर लगाने की पद्धति भी इतनी सुन्दर नहीं जान पड़ती। इस पर टीका करने का कोई कारण तो नहीं है, परन्तु परिषद में जो अनुभव प्राप्त हुआ, वही कहा गया है।

प्र०—उधर ग्रन्थ चर्चा व राग चर्चा अधिक है क्या?

उ०—ग्रन्थ चर्चा बिलकुल नहीं है। वहां के लेखकों के ग्रन्थों में रत्नाकर व दर्पण के कई उद्धरण दीखते हैं तथा उनका भाषान्तर भी पाया जाता है; परन्तु वे ग्रन्थ वहां के किसी एक भी पण्डित की समझ में आये होंगे, ऐसा उन ग्रन्थों से विदित नहीं होता। नादोत्पत्ति, स्वरनाम, श्रुतिग्राम, मूर्छना, राग, प्रणव इनके केवल भाषान्तर तथा प्रशंसा मात्र से तुम जैसे व्यक्ति को क्या ज्ञान होगा? वादी, सम्वादी, ग्रहांशन्यास इनका भाषान्तर करने से पाठकों को कितना सन्तोष हो सकता है? रागचर्चा कितनी है यह मैं नहीं कह सकता। मुझे वहां गये हुए बीस वर्ष हो गये। वहां राधिका मोहन गोस्वामी आधुनिक काल के प्रसिद्ध गायक माने जाते हैं, उनका भी अब देहान्त हो गया है। मैंने उनको लखनऊ के भारतीय परिषद में सुना था। वे उम्र में बहुत ही वृद्ध हो चुके थे तथा उनकी प्रकृति भी विशेष अच्छी नहीं थी, फिर भी उनके गायन में कुछ हिन्दुस्तानी छटा थी, यह सच है। परन्तु मित्रो! हम असंगत चर्चा में जा रहे हैं। बंगाल के आधुनिक गायकों के ज्ञान तथा गीतपटुता के विषय में राय देने का हमें अधिकार नहीं, वहां जब तुम स्वयं जाओगे तब तुमको वहां की स्थिति दिखाई देगी ही।

प्र०—ठीक है। आप मल्लार के विषय को आगे चलने दीजिये?

उ०—हां। हम लोग शुद्ध मल्हार के विषय में बोल रहे थे। यह मल्लार भी एक अप्रसिद्ध राग ही मानना पड़ेगा, यह मैं कह ही चुका हूँ। प्रचार में गौडमल्लार, मियां की मल्लार व क्वचित् सूरमल्लार ही तुम्हारे सुनने में आयेंगे। ग्वालियर जैसे संगीत प्रसिद्ध शहर में भी गौडमल्लार व मियां की मल्लार के अतिरिक्त तीसरा क्वचित् ही तुम्हें सुनाई देगा।

प्र०—"मल्लार" किसी देश का नाम है क्या?

उ०—यह प्रश्न तुमने बहुत कठिन पूछा। इस नाम का देश अथवा प्रान्त मेरे सुनने में नहीं आया। परन्तु एक पण्डित ने इस नाम के विषय में कहा है कि मल्लार का शुद्ध

रूप 'मलहार' अथवा 'मल्हार' है। जिसका अर्थ है 'मल का हरण करने वाला'। मैं नहीं समझता हूं कि राग से मल हरण हो सकता है। परन्तु चूंकि यह राग बहुधा वर्षाऋतु में गाया जाता है और उस ऋतु में वर्षा से सारे प्रान्त का मल बह जाता है, यह सब जानते ही हैं। कदाचित् इसीलिये इस राग को यह नाम प्राप्त हुआ है। सम्भव है यह उस पण्डित की एक कल्पना ही हो।

प्र०—परन्तु उस पण्डित के कहने में क्या कुछ भी तथ्य नहीं दिखाई देता ?

उ०—तथ्य हुआ तो भी यह उसकी एक कल्पना ही है, ऐसा कहना पड़ेगा। दूसरे कुछ लोगों का मत है कि 'मलरूह' इस शब्द के अपभ्रन्श से 'मल्हार' नाम पड़ा है। किसी ग्रन्थ में 'मल्हार' व किसी में 'मल्लार' ऐसे इस राग के नाम दिखाई देते हैं। अस्तु, पूर्व प्रसंग में गौडमल्लार का जिक्र करते समय शुद्धमल्लार के बारे में, मैं कह चुका हूँ, वह तुम्हें याद ही होगा।

प्र०—हां, उस समय आपने कहा था कि शुद्ध मल्हार में पांच ही स्वर 'सा रे म प ध' आते हैं, अर्थात् उसमें गन्धार व निषाद वर्ज्य हैं, उसका थोड़ा सा नादस्वरूप भी बतलाया था। उसके पश्चात् किस मल्लार में कौन से राग मिश्रित होते हैं, यह भी कहा था ?

उ०—हां, लखनऊ के एक विद्वान ने जो मुझे बतलाया था उसके आधार पर मैंने वैसे कहा था। शुद्ध मल्लार के विषय में तो बहुत सी जानकारी तुम्हें प्राप्त हो ही चुकी है। उसमें वादी मध्यम व सम्वादी षड्ज है। समय वर्षाऋतु का सर्वसम्मत है। राग की पकड़ पूर्वाङ्ग में 'सा रे, म' तथा उत्तराङ्ग में 'म प ध सां ध प' होगी। इनके संयोग से यह राग उत्पन्न होगा।

इस राग में 'रि प' संगति बहुत महत्व की है। मल्हार एक 'मौसमी' राग है, यह वर्षाऋतु में अधिक गाने में आता है, इस राग के गीतों में सदैव वर्षा ऋतु का वर्णन होता है अर्थात् इस ऋतु में जो-जो दृश्य दिखाई पड़ते हैं उनका वर्णन इनमें रहता है। पुनश्च विरहिणी नायिका की मनोवृत्ति के भी कभी-कभी वर्णन रहते हैं।

H. H. Wilson साहेब के ग्रन्थ में से एक मनोरंजक उद्धरण Captain Willard ने अपने ग्रन्थ "Treatise on the Music of Hindusthan" में ऐसा लिया है:—

The commencement of the rainy season being peculiarly delightful in Hindus than for the contrast it affords to the sultry weather immediately preceeding & also rendering the roads pleasant & practicable is usually selected for travelling. Hence frequent allusions occur in the poets to the expected return of such persons as are at this time absent from their family & homes.

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः ।
कंठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥
मेघदूते ॥

Numerous songs in these Mallar Ragas describe the clouds, the thunder, the rain & the winds, the birds of the rainy season like Papiha, Chatrak, & peacock in particular. Several songs describe the condition of ladies at home who are separated from their lovers & husbands. मुझे लगता है Captain Willard के ग्रन्थ के ये प्रकरण प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अवश्य पठनीय हैं; ऐसी सिफारिश मैंने पहले भी की थी।

यह शुद्धमल्लार अन्य समस्त मल्लार प्रकारों का एक घटक अवयव है। इसमें मींड, गमक आदि अलंकारों की कोई आवश्यकता नहीं। गान्धार व निषाद का अभाव, मध्यम का आगे आना, रि प स्वरों की संगति और आरोह में स्पष्ट धैवत का प्रयोग, इतनी बातें उत्तम रीति से साध लीं तो यह राग तुमको सध गया, ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहीं। वस्तुतः यह राग अत्यन्त सरल है, परन्तु कहीं भी सुनने में नहीं आता, यह बिलकुल सही है। इसका कारण खोजने की इतनी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मल्लार राग के थाट के सम्बन्ध में मतभेद होना सम्भव है, कारण इस राग में गन्धार व निषाद बिलकुल वर्ज्य हैं। कोई उसको खमाज थाट में और कोई बिलावल थाट में लेने के विषय में आग्रह करते हैं। तुमको इस प्रकार के विवाद में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं। रागरूप उत्तम साध लिया तो फिर थाट के विषय में विवाद करने की आवश्यकता नहीं। पिछली बार मल्लार के स्वरों के सम्बन्ध में कुछ ग्रन्थ मत मैंने कहे थे, वे तुम्हें याद होंगे ही।

प्र०—हां, उस समय अहोबल, पुण्डरीक, सोमनाथ इनके मत कहे थे। वैसे ही सारामृतकार के भी मत बताये थे। उनमें से कुछ गौडमल्लार के विषय में थे।

उ०—हां, वह मुझे स्मरण है। अभी हम गौड़मल्लार के सम्बन्ध में न बोलकर शुद्धमल्हार के विषय में बोल रहे हैं। ये दोनों राग पृथक हैं, यह मैं कह ही चुका हूँ।

प्र०—जरा ठहरिये ! आपने कहा कि शुद्धमल्लार राग अपने गायक नहीं गाते तो फिर किसी महफिल में हमने गायक से 'मल्हार' गाने की फरमाइश की तो वह क्या गायेगा ?

उ०—मैं समझता हूं, वह बहुधा गौडमल्लार अथवा मियां की मल्लार गाने लगेगा। वैसा करते हुए गौड की एकाध चलती लय की ही चीज़ वह गायेगा।

प्र०—चलती लय की ही क्यों ?

उ०—'धीमी' (विलम्बित) लय की चीजें गौड़मल्लार में तमाम गायकों को अच्छी तरह से गाते नहीं बनतीं। चलती लय की चीजों में तीव्र गन्धार स्पष्ट होने से यह प्रकार अधिकांश गायकों को आता है।

प्र०—यह भी खूब मजे की बात रही ! "मियां की मल्लार" सरल राग है क्या ?

उ०—वह गौड की अपेक्षा कठिन ही है, परन्तु उसमें "धीमी" लय की चीजें अधिक हैं और उसमें कोमल गन्धार स्पष्ट लगाना पड़ता है, इस कारण राग स्वतन्त्र रखने में आता है। परन्तु वह राग जब तुम सीखोगे तब वह सब तथ्य तुम्हें दिखाई देने लगेगा। गौड़मल्लार में मध्यम आगे आता रहता है इस कारण अन्य रागों के आगे आने की थोड़ी बहुत सम्भावना रहती है।

प्र०—परन्तु उसमें तीव्र गन्धार है न ?

उ०—तीव्र गन्धार लिये जाने वाले कुछ दूसरे ही मल्लार प्रकार हैं। परन्तु वह भाग हमको अभी छोड़ देना चाहिये। आगे बढ़ने से पहिले और दो तीन ग्रन्थ मत देखलें:—

मेघरागस्य संस्थाने मेघो मल्लार एव च।

—तरंगिण्याम्।

प्र०—तो अब फिर, "धनिषादौ च शाङ्गस्य कर्णाटस्य गमौ यदि" इस श्लोक का वहां सम्बन्ध आया ही है। मेघ का थाट, "सा रे ग म प नि॒ नि सां" यह हमको मालूम है।

उ०—ठीक है। "मेघ" व "मल्लार" इन रागों का सम्बन्ध वर्षा ऋतु से लोचन पण्डित ने स्पष्ट बतलाया है," × मेघसंचारे मल्लारः परिकीर्तितः "परन्तु यह सम्बन्ध हमारे यहां सर्वत्र ही प्रसिद्ध है। हृदयकौतुक में मल्लार के लक्षण इस प्रकार दिये गये हैं:—

सरिपमपधा निश्च सधपा धपमा ममौ।
रिसावौडुवतां यातो मल्लारो रागपुङ्गवः॥
सारेपम पधनिसा धप धप ममम रिसा।

प्र०—तो फिर अब ये नादस्वरूप इस प्रकार होंगे:—"मेघांत धनिषादौ च शाङ्गस्य" ऐसा कहा है। सारङ्ग का धैवत यानी, "धश्चशुद्धनिषादः स्यात्" ऐसा समझना चाहिये अर्थात् वह कोमल निषाद होगा। अब यदि मल्लार के लक्षण हम समझ लें तो उसमें कर्नाट का गन्धार नहीं है, परन्तु "सा रे म प ध नि सां" ये बाकी के सब स्वर हैं। ऐसा होने से उसको औडुव क्यों कहा गया है, यह ठीक तरह से समझ में नहीं आया। हमारे हिन्दुस्थानी स्वरों की दृष्टि से "ग तथा ध" इसमें नहीं मिलेंगे, यह मान्य है, कारण इसका धैवत तो हमारा कोमल निषाद होगा, परन्तु लोचन की दृष्टि से उसमें धैवत है, तो फिर यह राग औडुव कैसा ?

उ०—तुम्हारी शंका ठीक है। इस राग का रूप, "सा रे प म प नि॒ नि सां, नि॒ प नि॒ प म म म रे सा," होगा। हृदय पंडित के मत से इसमें गन्धार का लोप स्पष्ट है, परन्तु क्षणभर ठहरिये ! इसी पण्डित ने हृदयप्रकाश में मल्लार के लक्षण किस प्रकार बताये हैं, वह देखो।

प्र०—परन्तु उस ग्रन्थ में "थाट व उसके जन्य राग" ऐसी रचना नहीं है। फिर उस लक्षण का उपयोग इस लक्षण के लिये कैसे होगा ?

उ०—यह ठीक है; परन्तु राग के नादरूप तो तुमको मिलेंगे ही ! थाटों से तुम्हें क्या करना है ? रागों के स्वर तुम्हें मिल गए तो काम बन गया। राग के स्वर कहने के उपरांत थाट का फिर दूसरा क्या उपयोग हो सकता है ? और फिर वहां थाट का नाम भी तो नहीं, थाट अवश्य है।

प्र०—हां, यह भी ठीक है। अच्छा तो हृदयप्रकाश में क्या बताया गया है ?

उ०—वह मैंने तुमको पीछे कहा ही था, लेकिन अब फिर कहता हूं: –

गधैवतनिषादास्तु यत्र तीव्रतराः कृताः ।
तत्र मेले भवेन्मेघः × × ॥
× ×
मध्यमादिश्च मल्लारो; ×

प्रत्यक्ष मल्लार लक्षण इस प्रकार वर्णित किये हैं:—

स्याद्गहीनस्तु मल्लारः सादिरौडुव ईरितः ।
सा रि प म प ध प ध प म म म म रि सा ॥

प्र०—इस लक्षण में भी एक गन्धार मात्र छोड़ दिया है तो भी यह राग औडुव कहा गया है, यह क्या बला है ? सरगम में केवल "गन्धार व निषाद" वर्ज्य करने में आए हैं। इस लक्षण में "ग, ध, नि" ये स्वर "तीव्रतर" कहे गए हैं। ग तीव्रतर हमारा तीव्र गान्धार समझने में आयेगा। ध तीव्रतर यानी कोमल निषाद और नि तीव्रतर यानी हमारा तीव्र निषाद होगा।

उ०—तुम्हारा कहना सही है, परन्तु सरगम में "ग तथा नि" ये स्वर नहीं दिखाई देते, वहां धैवत दो बार आया है, वह हमारा कोमल निषाद है। परन्तु वहां जो कुछ है वह तुमने अभी देखा ही है। यदि इस व्याख्या में "गनिहीनस्तु मल्लार:" ऐसा उसने कहा होगा तो भी अपना "शुद्ध मल्लार" नहीं हो सकता।

प्र०—उसमें "धैवत" है क्या इसलिये कह रहे हैं ? हां, यह आपका कहना ठीक है। 'हमारे शुद्धमल्लार में कोई भी निषाद (कोमल अथवा तीव्र)—नहीं है। उसके स्थान पर हमको धैवत चाहिये। अतः प्रस्तुत प्रकार के लिये यह आधार अधिक उपयोगी नहीं है, ऐसा ही कहना पड़ेगा।

उ०—मल्लार में गन्धार नहीं, यह यथार्थ है। वैसे ही मध्यम का प्राबल्य है, यह भी ठीक है। "रिप सङ्गति है, यह भी ध्यान देने योग्य है। "सा रे म, रेप, प. मप, धसां, धप, म" ऐसा भाग शुद्धमल्लार में महत्व का है।

प्र०—रि प, तथा परे, इन सङ्गतियों में सङ्गीत के कितने ही रहस्य सन्निहित हैं ! "ऩिसा, रे, प, मरे, परे सा," ऐसे स्वर आये कि पृथक प्रकार हुआ। रेप, मर, धसां इन स्वरों के आने से एक और नवीन प्रकार होगा तथा "ऩिसा, रे, मरे, मपमरे, सा" और एक प्रकार हुआ। इन तथ्यों पर जैसे-जैसे विचार किया जाय वैसे-वैसे अपने पण्डितों की कुशलता पर श्रद्धा बढ़ती जाती है।

उ०—आपका कथन यथार्थ है। अब अहोबल के तथा उनके अनुयायी श्रीनिवास के मत देखेंगे।

प्र०—पीछे भी अहोबल के मत बतलाये गये थे। किन्तु वे तो गौड़मल्लार के विषय में थे ?

उ०—हां, वे थोड़े से शुद्धमल्लार के समान दिखते हैं, ऐसा मैंने कहा था, इसलिये वे तुम्हें याद होगये होंगे। गौड़ में केवल आरोह में ग, नि स्वर अहोबल वर्ज्य करता है, परन्तु उसके मन से वे स्वर अवरोह में लेने में आपत्ति नहीं।

अहोबल पण्डित ने पारिजात में "मल्लारी" नामक जिस राग का वर्णन किया है वह हमारा कोई सा मल्लार प्रकार होगा, ऐसा नहीं दिखाई देता। उस राग के लक्षण वह इस प्रकार बतलाता है:—

गौरीमेलसमुद्भूता मल्लारी निस्वरोज्झिता ।
आरोहणे गहीना स्यात् षड्जादिस्वरसंभवा ॥

गौरी मेल कहा है तो उसमें ऋषभ तथा धैवत कोमल होंगे ही। ऐसे स्वरों से अपने यहां मल्लार नहीं गाते। अपवादस्वरूप एक प्रकार में थोड़ा सा कोमल धैवत का प्रयोग होता है, परन्तु उसमें ऋषभ कोमल नहीं रहता, इसलिए वह गौरीमेल का प्रकार कभी नहीं कहा जा सकता। श्रीनिवास पण्डित अहोबल का ही अनुवाद करता है, इसलिये उसके रागलक्षण देखने की आवश्यकता नहीं।

प्र०—तो फिर यह 'मल्लारी" एक निराला स्वतन्त्र प्रकार अथवा राग मानना पड़ेगा, ठीक है न ?

उ०—हां, वैसा ही करना पड़ेगा। और भी ग्रन्थकारों द्वारा "मलहरी" नाम देकर, ऐसा ही रिध स्वर कोमल लिया जाने वाला राग वर्णित किया हुआ मिलेगा, परन्तु उस प्रकार से अपना बिलकुल सम्बन्ध नहीं। पुण्डरीक विट्ठल की मंजरी, नृत्य-निर्णय व चन्द्रोदय इन ग्रन्थों में क्या कहा गया है, वह मैंने तुमको पहले ही बता दिया है।

प्र०—हां, उसने केदारमेल का वर्णन करके मल्लार में षड्ज व पंचम वर्ज्य करने को कहा है। षड्ज व पंचम वर्ज्य करने की बात सुनकर हमको थोड़ा सा आश्चर्य हुआ था। क्यों जी ! यह विचित्र मत वह कहां से लाया होगा ? ये स्वर वर्ज्य करके क्या सचमुच उसके समय में गायक मल्हार राग गाते होंगे ? और वह पण्डित अकबर का समकालीन था, इस मत के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

उ०-उसके समय में, सा तथा प वर्ज्य करके मल्लार गाते होंगे, ऐसा मुझे नहीं जान पड़ता। वह उत्कट विद्वान था, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु उसने मल्लार के लक्षण ऐसे क्यों लिखे? यह मैं कैसे बतला सकता हूं। प्राचीन ग्रन्थ वाक्य अपने ग्रंथों में लेने पर अपने ग्रन्थों का गौरव बढ़ेगा, संभवतः ऐसा उसने सोचा होगा। इस प्रकार के कार्य इस अर्वाचीन काल में करने का मोह यदि हमारे कुछ सुशिक्षित लेखकों को है, तो पुण्डरीक के समय, जब कि रेल वगैरह नहीं थीं, प्रान्त-प्रान्त का आवागमन बड़े कष्ट से होता था, प्रकाशन के साधनों का अविष्कार नहीं हुआ था, जिस किसी को कोई प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हाथ लगा तो उसको प्राणों की तरह सम्हालने की प्रवृत्ति थी तथा यथा-संभव किसी को न बताने की प्रवृत्ति थी, ऐसे समय में उसको वैसा मोह होगया तो क्या आश्चर्य? तुम्हारा प्रश्न ऐसा था कि ये षड्ज व पंचम स्वर मल्लार में वर्ज्य करने की कल्पना वह कहां से लाया होगा। इस प्रश्न का उत्तर समाधानकारक रूप से देना कठिन है। उसने मंजरी में जो पर्शियन राग कहे हैं, उन से यह सिद्ध होता है कि वह मुस्लिम कालीन सङ्गीत विद्वान था। रागमाला में उसने मल्हार का ऐसा वर्णन किया है:—

सावेरीमेलजातः सपपरिरहितो धग्रहन्यासकांशः।
श्यामः पीतांबरो यो मदनपरिजितः कंठमालादिकाढ्यः॥
विद्युन्मेघातिगर्जैरुदितशिखिगणान्नर्तयन् कीर्णपत्त्रान्।
धारामीजन्ममित्रो ह्युषसि मलहरो भाति मल्हाररागः॥

इस श्लोक के अन्तिम चरण में "धारामी" ऐसा एक राग का नाम आया है। मंजरी में "पर्शियन" राग वर्णन में उसने ऐसा कहा है:—"बारा मल्लाररागके" अर्थात् मल्लार का स्वरूप "बारा" रागों से मिलेगा, ऐसा उसका अभिप्राय दीखता है। तब "धारामी" या सम्भवतः "बारामी" ऐसा कुछ मूल का नाम होगा। मेरा कहने का तात्पर्य इतना ही है कि वह जिस काल में हुआ, उस काल में सब संगीत एक ही ग्राम में था। मूर्छना व जाति के योग से गायकों को राग उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा होने के कारण उनको षड्ज व पंचम स्वर वर्ज्य करने को कहा गया है, यह सचमुच आश्चर्यजनक है। ग्रामों को स्वरान्तर से कायम करके फिर मूर्छना से वीणा पर स्वर कायम करके भिन्न भिन्न ग्रहों से जाति अथवा राग उत्पन्न करने का समय निकल चुका, यह उसको मालूम था। उसने अपने ग्रन्थ में, वर्तमान प्रचार में एक ही ग्राम है, ऐसा स्पष्ट कहा है। प्रत्येक मेल के तीव्र कोमल स्वर स्वतन्त्र कहे गये हैं। रत्नाकर से मूर्छना की अकारण ही नकल उसमें ली है, परन्तु उस ग्रन्थ के जाति प्रकरण व रागाध्याय सर्वथा छोड़कर अपने समय के रागरूप बताने का उसने प्रयत्न किया है। उसने षड्ज पंचम छोड़ने का आधार कहां से लिया होगा, इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जा सकता है कि वे लक्षण उसने कदाचित् रत्नाकर में से लिये होंगे।

प्र०—उसमें क्या कहा गया है?

उ०—रत्नाकर में (रागाध्याय पृ० २१६, पुरानी प्रति) मल्हार राग की व्याख्या इस प्रकार दी है:—

आंधाल्युपांगं मल्हारः षड्जपंचमवर्जितः ।
धन्यासांशग्रहो मंद्रगांधारस्तारसप्तमः ॥

पुण्डरीक मंजरी में कहता है:—

धत्रिः सपाभ्यां हीनोऽयं मल्हारो ह्युषसि प्रियः ॥

प्र०—तो फिर पुण्डरीक ने ये सब रत्नाकर से ही लिये हैं, ऐसा स्पष्ट मानने में क्या हानि है ?

उ०—वह अपने ग्रन्थों में ऐसा नहीं कहता। अपने कुछ लेखकों में यह बड़ी भारी कमी दिखाई देती है। अमुक बात अपनी समझ में नहीं आई, इस प्रकार सत्य कहना और प्राण दे देना ये लोग समान समझते हैं। अपने समय में राग का नया रूप होगया तो नासमझी से उसका पिछला आधार क्यों लिखा जाय ? उस पर भी यदि उस प्राचीन ग्रन्थ को समझे बिना ही कुछ लिखा जाय तो और भी अधिक अविवेकता होती। हम प्रत्येक राग का जो प्राचीन मत बता रहे हैं, वह आज का अपने राग का आधार नहीं कहा जा सकता। अमुक राग भिन्न-भिन्न समझ में कैसे कैसे गाया जाता था एवं उसका तत्कालीन लेखकों ने कैसा वर्णन किया है, केवल इतना जानने के उद्देश्य से वह मत कहता हूं। फिर आज की वस्तुस्थिति पर भी हम कहेंगे। कुछ ही वर्षों में अपने ये रागरूप अवश्य ही परिवर्तित होंगे और इस परिवर्तन में ही आनन्द है। अब अपने विद्वान पश्चिमी देशों में प्रयास कर रहे हैं, अतः वहां की नई नई कल्पनाएं अपने यहां अवश्य आएंगी। वहां के सहस्रों ग्रामोफोन रेकर्ड अपने यहां आते हैं, उनके योग से अपने संगीत में कुछ कुछ परिवर्तन होने लगा ही है, ऐसा जानकारों का मत है। यदि ऐसा हुआ तो खेद करने का हमारे लिये कोई कारण नहीं। यद्यपि मैं स्वयं प्राचीन नायकों का संगीत लिख कर रखता हूँ तो भी मैं नवीन-नवीन विद्वानों की शोध के बिलकुल विरुद्ध नहीं। दिन प्रतिदिन यह कला बढ़ती ही जानी चाहिये और वह बढ़ेगी ही। हाल में ही दक्षिण के कुछ राग जैसे शंकराभरण, हंसध्वनि, आनन्दभैरवी, काम्भोजी, आभीरी आदि रंगभूमि से अपने समाज में नहीं आये हैं क्या ? इस विषय में "कूपमण्डूक" मनोवृत्ति नहीं चलेगी। बंगाल प्रान्त के प्रचलित प्रकार हमारे यहां आये और अपने प्रकार वहां गये, इसका भी परिणाम अच्छा ही होगा। फिर भी यह परिवर्तन जितने योग्य अधिकारियों के हाथों से होगा उतना ही अच्छा, ऐसा मेरा विशेष मत है।

प्र०—ऐसा आपने पहले भी कहा था और हम भी ऐसा ही अनुभव करते हैं। इस विषय में विश्वविद्यालय की पदवियां प्राप्त करके लोग जब पश्चिम में जायेंगे तब वहां के संगीत का अभ्यास करके स्वदेश लौटने पर अपने संगीत में विभिन्न परिवर्तन कर कर सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं। सारांश यह कि समय अपना काम स्वयं करा लेगा।

उ०—हां, यह ठीक है। यह विषयान्तर पुण्डरीक के ग्रन्थ से उपस्थित हुआ था। सोमनाथ पण्डित के राग विबोध में मल्लार का कैसा वर्णन किया है, वह मैं कह ही चुका हूं।

प्र०—हां, उसने उसका ऐसा वर्णन किया है:—

मल्लारिर्नटयुगपि स धांशांतादिरगनिश्च संगवभाः ।

यह तुमने खूब ध्यान में रखा । मल्लारिमेल उसने ऐसा बताया है—

मल्लारिमेल उक्तास्तीव्रतररिमृदुमतीव्रतरधाश्च ।
मृदुसः शुद्धाः समपा अस्मादेते तु मल्लारिः ॥

यह आर्या, इस थाट से निकलने वाले किसी जन्य राग का वर्णन करते हुए, मैंने तुमसे कही थी। फिर भी जिस मतलब से अभी हम मल्लारी राग पर बोल रहे हैं, उसी अर्थ में वह पुनः कहनी पड़ी है। अब तुमको इस मेल के स्वर सहज ही दिखाई देंगे।

प्र०—इसमें सा म प, ये स्वर शुद्ध हैं । रि तथा ध ये तीव्रतर अर्थात् हिन्दुस्तानी शुद्ध रि, ध होंगे। मृदु म और मृदु सा ये हिन्दुस्तानी तीव्र ग तथा तीव्र नि होंगे। सारांश, यह हमारा बिलावल थाट हो जायगा, ठीक है ?

उ०—बारह स्वरों की पद्धति में, ये स्वर अवश्य ही बिलावल थाट के होंगे। इसीलिये मैंने कहा था कि कोई मल्लारी राग शंकराभरण थाट में मानते हैं; परन्तु इस रागवर्णन में गन्धार व निषाद वर्ज्य हैं। तब अपने मल्लार के लिये यह आधार ठीक रहेगा। सोमनाथ को उत्तर का संगीत थोड़ा बहुत मालूम था, यह आपने कहा ही है। राग विबोध में, "धांशग्रहन्यास" ऐसा कहा है, परन्तु प्रचार में हाल के बने हुए नियमों का पालन नहीं किया जाता, यह तुमको ज्ञात ही है।

प्र०—किन्तु यहां एक प्रश्न पूछने की इच्छा होती है। ग्रन्थकार मल्लारि व नटमल्लारि इन दोनों के एक ही लक्षण बतलाता है। तब राग भिन्नता कैसे रहेगी ?

उ०—हां, यह तुम्हारी शंका ठीक है । अपने आज के प्रचार में मल्लार व नटमल्लार इनमें मिश्रण होने की सम्भावना नहीं। कारण, अपने हिन्दुस्तानी गायक नटमल्लार में छायानट राग का भाग स्पष्ट दिखाते हैं, और ऐसा करते हुए गन्धार व निषाद स्वरों का भी वे प्रयोग करते रहते हैं। परन्तु तुम्हारा प्रश्न ऐसा जान पड़ता है कि ग्रन्थकार वहां राग भिन्नता रखने के लिये क्या युक्ति बताते हैं। मालुम होता है ग्रन्थकार वहां इस प्रकार का नियम प्रयोग में लायेंगे:—

मेलग्रहादिपूर्णत्वाद्यैक्येऽपि वादनभिदा भित् ।
वर्ज्यस्वरोऽवरोहे द्रुतगीतो नेह रक्तिहरः ॥

प्र०—परन्तु इस प्रकार से राग पृथक रखने में थोड़ी कठिनाई तो अवश्य होगी, ठीक है न ?

उ०—तुम्हारा यह कहना यथार्थ है। ऐसे ही प्रकार को हमारे हिन्दुस्तानी गायक "राग का उठाव", उसका "उच्चार" और चलन कहते हैं। "एक राग नीचे को देखता है दूसरा ऊपर को देखता है; एक कहीं जाकर ठहरता है, दूसरा कहीं रुकता है;

एक में कोई से स्वरों की संगत है, और दूसरे में कोई सी" इस प्रकार की भाषा हम सदैव सुनते हैं। इस विचार से अपने मन की बात अधिक स्पष्ट एवं सरल करके कहने में नहीं आती। उसके इस प्रकार कहने से सुबोध नियम खोज निकालना विद्वानों का काम है। सोमनाथ "गौड" को एक अलग राग मानता है, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। सङ्गीत-दर्पणकार ने "मल्लारी" का ऐसा वर्णन किया है:—

मल्लारी सपहीना स्याद्ग्रहांशन्यासधैवता।
अथवा पौरवीज्ञेया वर्षासु सुखदा तदा॥

प्र०—तो फिर पुण्डरीक ने इस ग्रन्थ से तो "अलग" वाला मत स्वीकार नहीं किया ?

उ०—यह अब कैसे कहा जा सकता है? यदि दर्पण ग्रन्थ पुण्डरीक के पूर्व का हुआ, और वह कदाचित् होगा भी, तो उसने वे मत वहां से लिये होंगे तथा दर्पणकार ने रत्नाकर से लिये होंगे, ऐसा कहना पड़ेगा। किन्तु वह मत हमारे लिये निरुपयोगी होने से हमें इस उलझन में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। पण्डित भावभट्ट का स्वत: का कोई मत नहीं। उसने रत्नाकर, दर्पण, चन्द्रोदय, मंजरी, रागमाला, पारिजात, राग-विबोध व हृदयप्रकाश, इनके लक्षण ज्यों के त्यों उद्धृत कर लिये हैं। वे सब मैंने तुम्हें बताये ही हैं।

प्र०—ठीक है। अब "राधागोविन्द संगीतसार" जैसे ग्रन्थ की ओर बढ़ना ठीक होगा।

उ०—सङ्गीतसार में प्रतापसिंह गौडमल्लार व मल्लार को पृथक मानता है, और वह ठीक है। परन्तु "मल्लार" के विषय में अधिक जानकारी नहीं देता। "मल्लार यह मेघपुत्र है," ऐसा कहकर उसके चित्र आदि देता है और फिर "वह सम्पूर्ण है" ऐसा कहता है। आगे कहता है, "यह राग सुन्यो नहीं यातें जंत्र बन्यो नहीं।"

राजा सौरीन्द्र मोहन टागोर अपने सङ्गीतसार में, "मल्लार" राग को हरिभट्टकृत सङ्गीतसार के मतानुसार सम्पूर्ण जाति का कहकर, उस राग का विस्तार इस प्रकार करके दिखाते हैं:—

ग नि ग ग री ग
निसा, रेम, म, मम, रेंरेंप, मप, धसां, सां, ध, प, म, म, मप, म, म, रेसा। आगे अन्तरा के स्वर इस प्रकार कहता है:—

ध नि गं गं ध
म प, प, सां, सां, सां, सां, सांरें, मं, मं, मं, रें, सां, सां, धप, मपधसां, धप,
री ग
म, म, रे, सा।

ऐसा लगता है कि यह स्वरूप साधारणत: ठीक है। इसमें मध्यम आगे ठीक लिया है तथा "मपधसां, ध, प, म" यह भाग भी उत्तम है। हरिभट्ट का ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया।

प्र०—परन्तु वे मल्लार राग को सम्पूर्ण मानते हैं, सो कैसे ?

उ०—उन्होंने जो विस्तार दिया है उसमें मेरे लिखे हुए "कन" अगले स्वरों के पहिले लिखे हैं, परन्तु उन पर मात्रा के चिन्ह नहीं दिये। संभवतः वे इसी कारण उसे सम्पूर्ण कहते होंगे।

शुद्ध मल्लार का काफी लम्बा विस्तार "नादविनोद कार" ने अपने ग्रन्थ में ऐसा लिखा है:—

नि सा, रे सा, नि ध, ध प, नि सा रे सा, नि सा ध ध, प, ध ध नि सा, रे सा, रे नि सा रे ग ग, प, म प ग, ग, ग रे, सा, सा प म प ग ग रे, रे रे म प, ग ग रे, सा, प म प, ध ध, प, म प ध ध प, म प ध नि सां, गं गं रें, प म प ध ग, ग, ग रे, म प, रे म प रे म प, म प ध सां, ध प, म प ध ग, ग, रे, ध ध नि सां, सां, नि सां, प म प, ध ध सां, गं गं रें, सां रें गं रें, ग, रे रे रे, सा, सा। अब अन्तरा नहीं कहेंगे। यह अपना शुद्धमल्लार नहीं दिखता।

प्र०—तो फिर यह कौनसा प्रकार होना चाहिये, यह बतायेंगे क्या ?

उ०—इस प्रकार में दो बातें बिलकुल स्पष्ट दिखाई देती हैं, वे यह कि इसमें कोमल गन्धार एक महत्व का स्वर है और उसी आधार पर "धसां" अथवा "धनिसां" ऐसे स्वर समुदाय हैं, वे भी रागवाचक हैं। इससे यह निश्चित ही है कि यह एक मल्लार प्रकार है। जान पड़ता है कि उत्तर में गौड़मल्लार का एक कोमल गन्धार लिया जाने वाला प्रकार है, वैसा ही यह श्रोताओं को दिखाई देगा। यह मियां की मल्लार तथा सूरमल्लार से भिन्न है तथा मेघ से भी भिन्न है। वे राग मैंने अभी तुम्हें नहीं बताये, इसलिये उस विषय में यहां चर्चा अनुपयुक्त होगी।

प्र०—तो फिर इस अप्रसिद्ध शुद्ध मल्लार का विस्तार हमको थोड़ा सा करके दिखाइये। पीछे भी थोड़ा सा दिखाया था, परन्तु अब उस राग की विशेष चर्चा हो गई है, इसलिये यह विनती करता हूँ।

उ०—कोई बात नहीं। वह विस्तार इस प्रकार होगा देखोः—

म
सा, रे म, म प, म प ध प, म, सा रे म, म रे, सा, रे सा, ध प म प ध प म, सा
म म
रे म। सा, रे सा, ध प, म प ध सा, प ध सा, रे म रे सा, रे प म, ध प म, म प ध सां ध प, म प ध प म, सा रे म। सा रे म, रे म, रे प, प, ध, म, सां ध प, म प ध सां, ध प, म, सा रे म। सां रें सां, ध प, सां, ध प, म प, ध सां ध प, म प म, सा रे म।

सा रे म रे सा, म प म रे सा, सा रे म प ध प म रे सा, सा रे म प ध सां, ध प म रे सां, सा रे सा, प म। सा रे म प म, रे प, म प ध प म, रे, रे म प ध सां ध प, म प

ध सां रें सां ध प, म प ध प म, सा रे म। म, रे सा, रे प, म, रे सा, ध प म, रे सा म प ध, म, ध सां, ध प, म प, ध सां ध प म, सा रे म। प़ प़ ध़, सा, ध़ सा, रे प म, ध प म, प, ध सां ध प, म प ध, म, रे सा, रे, प म। सां, ध सां, प प ध सां, म प ध सां, रें, सां, म प ध सां ध प, म प ध प म, सा रे म। म, म प, ध सां, सां, सां रें सां, मं रें, सां, रें सां, पं मं रें, सां, रें सां, सां, ध प, म प ध सां रें मं रें सां, सां रें सां, ध प, म प ध सां, ध प, म प ध प म, सा रे म।

सा, ध, ध, प, म प, ध सां, रें सां, मं रें सां, ध प, म प ध सां, ध, प, म प ध प, म रे सा।

म प ध सां, ध सां, रेंसां, मं रें सां, ध ध प, म प ध सां, ध प, म प ध प म, सा रे म।

इस प्रकार से तुमने विस्तार किया तो यह राग अच्छी तरह पृथक रहेगा। परन्तु मैंने तुमको पीछे "दुर्गा" नामक एक मधुर राग बताया था, उससे इस राग को पृथक रखने में कुशलता का काम है।

प्र०—वह हमारे ध्यान में भली प्रकार से है। उसमें भी "ग नि" वर्ज्य हैं, संभवतः इसीलिये आप कह रहे हैं? परन्तु उस राग में "प, मधमरे" "रेप, धम रे" "सां ध,सां रेंध मरे" आदि आकर्षक स्वर राग को पृथक ही रखेंगे, इसमें "सारेम," ऐसी मध्यम पर विश्रान्ति नहीं है तथा इस राग में ये छोटे स्वरसमुदाय स्वयं रागवाचक ही हैं। "ध प म प ध सां ध प म सा रे म," ऐसे स्वर एकदम बोले कि दुर्गा तुरन्त दूर हो जायगा।

उ०—तो ठीक है। किसी भी युक्ति से यह दोनों राग पृथक-पृथक करने आजांय तो बस काम बन गया। इन दोनों रागों में ग नि वर्ज्य होने से कुछ स्वरसमुदाय साधारण होंगे ही, परन्तु दोनों के मुखड़े व रागांग वाचक टुकड़े ध्यान में आने पर कुशल गायक के लिये यह राग गाना विशेष कठिन नहीं। ऐसा तिरोभाव दूसरे भी रागों में दृष्टिगोचर होता ही है। एक छोटी ही सरगम कहता हूँ, इसे ध्यान में रख लो तो यह राग भली प्रकार ध्यान में रहेगा:—

सरगम—शुद्धमल्लार—झपताल.

म	रे	प	ऽ	प	ध	सां	ध	प	म
×		२			०		३		
ध	प	म	सा	रे	म	ऽ	प	म	

प	प	सां	ऽ	रें	सां	ऽ	ध	प	सां
ध	प	म	सा	रे	म	ऽ	प	म	ऽ

अन्तरा.

प ×	प	सां २	ऽ	सां	सां ०	ऽ	सां ३	रें	सां
सां	रें	मं	रें	सां	रें	सां	ध	प	ऽ
म रे	रे	प	ऽ	प	ध	सां	ध	प	सां
ध	प	म	सा	रे	म	ऽ	प	म	ऽ

इस राग का प्रचलित रूप इस तरह ध्यान में रखना होगाः—

काफीमेलसमुत्पन्नः शुद्धमल्लारनामकः ।
आरोहेऽप्यवरोहे च गनिहीनौडुवो मतः ॥
मध्यमः संमतो वादी संवादी षड्ज ईरितः ।
गानमस्य समीचीनं वर्षाकाले मतं बुधैः ।
मुक्तत्वान्मध्यमस्यात्र तथैव पधसैः स्वरैः ।
रागोऽयं लक्ष्यते स्पष्टमिति सर्वत्र संमतम् ॥
रागविबोधके ग्रंथे सोमनाथेन धीमता ।
मल्लारिमेलने प्रोक्तो रागोऽयं गनिवर्जितः ॥
मेघरागस्य संस्थाने प्रोक्तो हृदयकौतुके ।
निर्द्वंद्वतीव्रगोपेतो न तल्लक्ष्येऽत्र दृश्यते ॥
संगत्या धमयोस्तत्र दुर्गा स्यात्सुपरिस्फुटा ।
जलधारो भवेद्भिन्नः केदारांगेन प्रस्फुटम् ॥

लक्ष्यसंगीते ।

रागो मल्लारसंज्ञः सरिमपध इतिप्रोक्तपंचस्वराढ्यः ।
तीव्रावस्मिन् रिधौ स्तो भवति सहचरः पंचमः सोऽत्रवादी ।
यद्रागाकालगानोद्भवदुरितमयं हंति तस्मादवश्यं ।
गेयो वर्षासु नित्यं भुवि सकलजनैरौडुवः कल्मषघ्नः ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

अथात्र शुद्धमल्लारः षड्जन्यासग्रहांशकः ।
पंचमस्वरसंवादी वर्षाकाले सुखप्रदः ॥
सदावर्जितगांधारनिषादस्वर औडुवः ।
पंचमर्षभसंगत्या गेयो वर्षासु सर्वदा ॥
स्यात् कोमलो मध्यमोऽत्र तीव्रावृषभधैवतौ ।
अकालगानसंभूतं निवारयति किल्बिषम् ॥

संगीत सुधाकरे ।

धरितीवर कोमल मध्यम बिननिषादगंधार ।
मसवादी संवादितें गावत राग मलार ॥

चन्द्रिकासार ।

सरी मपौ मपौ धश्च सधौ पमौ सरी च मः ।
अगनिः शुद्धमल्लारो मांशो वर्षास्वभीष्टदः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्रिय मित्रो ! विभिन्न ग्रन्थों के यह उद्धरण देकर मैंने तुमको तृप्त कर दिया है, ऐसा बीच-बीच में मुझे मालूम पड़ता है; परन्तु मेरा स्वयं का मत यह है कि जो विषय सीखना हो उसका पूर्व इतिहास हमें अवश्य मालुम होना चाहिये। मैं हिन्दुस्तान के बाहर कभी नहीं गया, इसलिये ईरान अथवा पूर्व के चीन व जापान देशों में संगीत कैसा है, वहां के और अपने स्वरों में कुछ समानता है अथवा नहीं, अथवा अपने रागों जैसी व्यवस्था वहां भी कुछ है क्या, इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता; परन्तु वहां जाने का संयोग यदि तुमको मिले तो इन बातों पर अवश्य ध्यान देना। अपने यहां समाज गायन-यानी एक साथ बहुत से मनुष्यों द्वारा मिलकर गाना, ऐसा प्रकार चालू नहीं है, अपने संगीत में यह अभाव कोई-कोई बतलाते हैं। अपने गायन में वीररस प्रधान तथा सृष्टिसौन्दर्य का वर्णन करने वाले गीत नहीं हैं। शृङ्गाररस प्रधान गीत अधिक हैं, यह भी एक कमी बतलाते हैं। इन तमाम बातों का तुमको आगे पीछे विचार करना पड़ेगा। मैंने तुमको इतना ही बताने का प्रयत्न किया है कि पहिले क्या था और आज क्या है। भावी संगीत की पूर्ण जिम्मेदारी मैं तुम पर छोड़ने वाला हूं। जो तुम्हें अच्छा दिखाई दे तथा जो अपने लिये उपयोगी हो एवं जिससे अपनी राष्ट्रीयता कम न हो, उसे लेने में कोई आपत्ति नहीं। चाहे फिर वो किसी का भी हो। यह मैं बारबार

कहता आया ही हूं। अब नई-नई गीत रचना होनी चाहिये, पीछे के गीतों में अधिक सुबोधता व रंजकता आनी आवश्यक है, ऐसा भी हम सुनते हैं। मुझसे जितना सम्भव था उतना मैंने किया है, अब आगे का काम तुम्हें ही करना होगा, ऐसी मेरी उत्कट इच्छा है। नये-नये, उत्तम नियमों वाले राग प्रचार में लाकर उनमें उत्तमोत्तम गीत रचना होना अब आवश्यक है। सङ्गीत के 'वाद्य' अङ्ग में बहुत सुधार होने की आवश्यकता है, ऐसा हमारे विद्वान कहते हैं। उसी प्रकार नृत्याध्याय का अभ्यास करके उसमें कितना लेने योग्य है व कितना छोड़ने योग्य, इसका भी विचार हमें करना ही है।

प्र०—इस विषय पर आप बारम्बार बोलते ही आये हैं। हमारे द्वारा जितना हो सकेगा उतना करने का हमने पूर्ण निश्चय कर लिया है। पाश्चात्य संगीत के शास्त्र तथा कला का अभ्यास हम आगे अवश्य करेंगे। इस विषय को अब राजाश्रय भी प्राप्त है। अतः क्रमशः अपने इच्छित कार्य को सक्रिय रूप देना सम्भव दिखाई देता है।

उ०—अब दो शब्द गौड़मल्लार के सम्बन्ध में कहता हूं। पिछली बार मैंने एक-दो ग्रन्थमत कहे थे, वे तुम्हें मालूम होंगे ही।

प्र०—हां, उस समय पारिजात, चन्द्रोदय तथा राग विबोध ग्रन्थों के मत आपने बताये थे?

उ०—अब कुछ और भी देखो। गौड़मल्लार राग अत्यन्त साधारण व लोकप्रिय है। वह अनेक गायकों को आता है। वर्षाऋतु आते ही प्रत्येक महफिल में यह राग सुनाई देने लगता है। गायक नामी हुआ तो मियां को मल्लार गाता है। यदि कोई प्रसिद्ध गायक होगा तो 'सूरमल्लार' गायेगा और यदि कोई चंट गायक हुआ तो ये दोनों-तीनों मल्लार मिलाकर एक नया राग श्रोताओं को जताने का प्रयत्न करेगा।

प्र०—यह वो कैसे कर सकता है?

उ०—दोनों गन्धारों का प्रयोग करके कभी मध्यम आगे लिया, कभी पंचम आगे लिया। 'प, ध सां' अथवा 'ध नि सां' ऐसे प्रयोग करके दिखाये। 'रि प' अथवा 'रि म' संगति दिखाई तो मल्लार का एकाध प्रकार दीखेगा ही तथा चीज के अङ्गों में ही कुछ तानें मारीं, तो बस हो गया उसका नया राग।

प्र०—और यदि किसी ने राग का नाम पूछ लिया तो?

उ०—तो वह बतायेगा ही क्यों? ऐसे भी प्रकार कभी-कभी अपने देखने में आते हैं। गायक प्रसिद्धि प्राप्त और लयदार चाहिये तथा उसकी चीजों में वर्षाऋतु का वर्णन मात्र चाहिये। परन्तु सौभाग्य से ऐसे प्रकार अब बहुत ही पिछड़ गये हैं। जिस गायक को प्रसिद्ध रागों का उत्तम शिक्षण नहीं मिला तथा उन रागों में उत्तमोत्तम गीत किसी प्रसिद्ध थाट में पूर्णतया विस्तार करके बताने नहीं आते, उससे और क्या आशा की जा सकती है। बहुधा ऐसे आड़े तिरछे प्रकारों के कारण ही उनको प्रसिद्धि होती है। अस्तु, यह गौडमल्लार राग अत्यन्त साधारण है, यह मैं कह ही चुका हूँ। इस राग के दो प्रकार हैं। एक में तीव्र गन्धार है तथा दूसरे में कोमल गन्धार लेने में आता है। कोमल गन्धार लिये जाने वाले प्रकार में 'नि प' संगति तथा 'ग॒ म रे सा' यह

स्वरसमुदाय बहुधा आता है। वैसे ही बीच-बीच में 'सां, ध, नि प, म प, ध सां ध, प' ऐसा भी भाग आता है और वस्तुतः यही रागवाचक भाग है। गौडमल्लार राग में उत्तमोत्तम ध्रुपद गाये जाते हैं। ख्याल गाने वाले गायक बहुधा तीव्र गन्धार लिया जाने वाला प्रकार गाते हैं।

प्र०—परन्तु इन दोनों प्रकारों में से शास्त्रोक्त प्रकार कौन सा है?

उ०—यह अभी तुम देखोगे ही। गौडमल्लार में वादी मध्यम व संवादी षड्ज मानते हैं, कोई पंचम को वादित्व देते हैं। वर्षा ऋतु इस राग के लिये सारे देश में मान्य है। इसमें तीव्र गन्धार आने के कारण कुछ गुणी लोग इसे बिलावल थाट में से मानते हैं। उत्तराङ्ग में जो 'नि प' यह भाग महत्व का समझते हैं वे उसको खमाज अथवा काफी थाट में मानते हैं, अतः थाट का प्रश्न गन्धार पर निर्भर है, इतना ध्यान में रखना चाहिये। इस राग में 'रि प' संगति अच्छी दीखती है। अपने समाज में 'रेगरेमगरेसा' यह तो गौड़ की पहिचान ही बन गई है। इसके आगे 'मरे, प, प, मप, धसां' यह मल्लार अङ्ग जोड़ा कि गौड़मल्लार राग का स्वरूप तुरन्त सामने खड़ा हो जाता है। इस राग में तार सप्तक बहुत ही चमकता हुआ रखा जाता है 'सां, सां ध, निप; मप, ध, सां निप, मप ग, मरेसा' ध्रुपदों में बारबार यह स्वरसमुदाय हमारे देखने में आते हैं। मियां की मल्लार अथवा सूरमल्लार में यह भाग इस रूप में नहीं आ सकता। 'म प ध सां' आते ही सूरमल्लार व मियां की मल्लार एकदम दूर हो जायेंगे।

प्र०—तो फिर ये स्वर तो गौड़ के प्राण ही समझने चाहिये?

उ०—वैसा मान लिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। 'सारेम' यह भाग शुद्धमल्लार का है, इसमें 'रेग, सारेम' ऐसा जोड़ दिया तो गौड़ बन गया। उसके आगे पुनः, 'मप, प, मपधसांधप, मप, मग, सारेम' ऐसा किया कि गौडमल्लार के अतिरिक्त दूसरा कोई भी राग नहीं दीखेगा।

प्र०—फिर 'रिप' सङ्गति कब लेनी चाहिये?

उ०—कोई तो 'म, मरे, रेप, प मप, ध सां" (म, नि कण) प्रारम्भ में ऐसी लेते हैं। उसके आगे 'धसांधप मप, मग मरेसा, रेगमपमग' इस तरह से चलते हैं अथवा 'रेग, सारेम, म, मरे, प, प, मपधसां,' ऐसा कृत्य भी कभी कभी तुमको दिखाई देगा। अमुक प्रकार से ही इस राग की सब चीजें उठेंगी, ऐसा नियम निर्धारित करने में नहीं आता।

प्र०—आपके कथन से ऐसा जान पड़ता है कि मध्यम को आगे लेकर 'धसां' यह भाग आते ही गौड की तरफ आकृष्ट होने लगेंगे। उसमें तीव्र गन्धार आया कि फिर सन्देह को स्थान ही नहीं रहता। कदाचित् 'गमरेसा' ऐसा हुआ तो भी वे 'धसां' स्वर गौड को ही आगे लायेंगे। ठीक है न?

उ०—जान पड़ता है यह अच्छी तरह से तुम्हारी समझ में आ गया। अब हम एक दो ग्रन्थमत देखें। केवल मल्लार के लक्षण जिस ग्रन्थकार ने कहे हैं उन्हें हम नहीं देखेंगे।

जिसने 'गौडमल्लार' ऐसा नाम स्पष्ट कह कर उस राग के लक्षण दिये हैं, उन्हें ही हम देखें तो ठीक होगा।

प्र०—शुद्धमल्लार अथवा 'मल्लार' राग के विषय में वैसे मत हमने देखे थे, संभवतः इसीलिये आप कह रहे हैं?

उ०—हां, तो अब प्रथम 'हृदय कौतुक' व 'हृदयप्रकाश' इन दो ग्रन्थों में गौड़मल्लार कैसा कहा गया है, सो देखो। इन दोनों ग्रन्थों के मत हम अलग-अलग कहते हैं, इसका कारण इतना ही है कि कभी कभी इन ग्रन्थों में एक ही राग विभिन्न प्रकार से लिखा हुआ दिखाई देता है। कौतुक में गौडमल्लार मेघ थाट में ऐसा वर्णित है:--

धसौ धमौ पमौ गश्च रिरी पमौ रिमौ ततः।
मरिसाः षाडवो रागो गौंडमल्लार उच्यते ॥

धसा धम पम मगरि रेमप रिमम रेसा।

यह स्वरूप हिन्दुस्तानी स्वरों में कैसे कहेंगे, बताओ तो?

प्र०—मेल के स्वर ऐसे हैं:-"सा रे ग म प नि नि सां" कारण, उस थाट में ध और नि सारंग के तथा ग और म कर्नाट के हैं। वहां "धसां, धम" अर्थात् "नि, सां, नि म" तथा ग, म और रि ये अपने हिन्दुस्तानी स्वरों के समान होंगे अर्थात् निसांनि, मप, म, मगरे, रेमप, रेमरेमसा। ऐसा नाद स्वरूप होगा, ठीक है क्या?

उ०—बिलकुल ठीक है। हृदयप्रकाश में सातवां मेल ऐसा कहा है:—गधैवत-निषादास्तु यत्रतीव्रतराः कृताः। तत्र मेले भवेन्मेघः × × × × देवाभरणदेशाख्यौ गौंडमल्लारसूहवौ ॥ आगे गौंडमल्लार के लक्षण ऐसे कहे हैं:—

रिषभादिर्गहीनस्तु गौंडमल्लार इष्यते ॥
रि म रि म प ध म प ध स स ध प म म रे सा ॥

प्र० —इसमें तो गन्धार बिलकुल ही वर्ज्य किया गया है। तब "रे म रे म प नि म प नि सां सां नि प म म रे सा," ऐसा हिन्दुस्तानी स्वरूप इसका होगा। ठीक है न? यह ग्रन्थ लिखते समय निराला ही प्रकार अथवा ग्रन्थ 'हृदय' को दिखाई दिया होगा, आपका यह कहना हमको ठीक ही जान पड़ता है।

उ०—पारिजात में गौड़ के लक्षण:—

तीव्रगांधारसंयुक्त आरोहे वर्जितौ गनी।
षड्जोद्ग्राहेण संपन्ने गौंड आम्रेडितस्वरैः ॥

ऐसा कह कर अहोबल उस राग का नादात्मक रूप इस प्रकार बतलाता है:—

सा रे म म प प ध ध सां नि ध ध, प म प म ग रे सा रे सा। सा रे म प म ग रे सा रे रे सा, ध सा, ध सा, नि ध, ध प, म प म ग रे सा रे, सा सा रे म प म ग रे सा रे रे सा ध़ सा ध़ सा रे। म प म, म ग रे सा रे रे सा, सा ध़ सा।

इसमें कुछ कुछ भाग हमें आज के गौड़मल्लार जैसे जरूर दिखाई देंगे। 'नि ध ध प' 'नि ध; ध नि प' ऐसा भी वह प्रत्यक्ष में कदाचित् ही गायेगा, परन्तु 'सारेम' यह उठाव तथा 'धसां' ये भाग ध्यान में रखने योग्य हैं, इसमें संदेह नहीं। अपने गायक आरोह में तीव्र गन्धार वर्ज्य नहीं करते 'रेगरे मगरेसा, रेगरेगमपमग' ऐसा भी हम गौड़मल्लार में करते हैं। कोई कहेगा कि अहोबल अपने राग को गौडमल्लार न कहकर 'गौड' इतना ही नाम देता है तो यह स्वीकार करने में नहीं आता।

पुंडरीक चन्द्रोदय में गौड का केदार थाट कहकर, धांशांतको धग्रहकश्च पूर्णः। विभातकाले स च गौड रागः॥ ऐसे लक्षण बतलाता है। रागमाला में वह कहता है:—

संस्थो मल्लारमेले स्वरसकलयुतो धैवतांशग्रहान्त्यः।
श्यामांगः शंखमुक्तावलिरचितगलो भस्मभालः किरातः॥
रंभापत्रं च मौलौ धरति कटितटे बर्हिणां बर्हजालम्।
भक्तः शंभोः प्रभाते सुकरशरधनू राजते गौंडरागः॥

यहां भी केदार थाट, सम्पूर्ण, धैवतांशग्रहन्यास, ये सारे विशेषण गौड के पण्डितों ने कहे हैं।

रागविबोध में सोमनाथ ने गौड का मेल केदार ही बताया है। यद्यपि उसने प्रत्यक्ष मेल 'मल्लारी' कहा है तथापि उस मेल के स्वर अपने बिलावल थाट जैसे ही हैं और उनमें केदार राग भी उसने सम्मिलित किया है। मेल कह कर आगे गौड के लक्षण ऐसे दिये हैं:-

न्यल्पो मध्याह्नार्हो धांशन्यासग्रहो गौंडः॥

प्रभात समय के पश्चात 'मध्याह्न काल' आता ही है।

सङ्गीतसारामृत में यह राग शंकराभरण मेल में ही कहा है, जैसे:—

गौडमल्लाररागश्च शंकराभरणमेलजः।
संपूर्णः सग्रहन्यासो वर्षास्वेषः प्रगीयते॥

प्र०—यह श्लोक आपने हमको बताया था।

उ०—हां, तुलाजीराव यह श्लोक कह कर आगे कहते हैं:—'अस्यारोहावरोहयोः स्वरगतेः उदाहरणम्; ग रि सा म, म प ध सां, सां, रें सां, नि ध प, प ध प, प, म ग रे, सा रे ग रे, ध प, म ग ग रे, सा रे ग रे सा।" इसमें गन्धार अवरोह में ही लिया हुआ दिखाई देता है। 'राग लक्षण' ग्रन्थ में शंकराभरण मेल में ही गौडमल्हार राग कहा है तथा उसके आरोहावरोह ऐसे कहे हैं:—सा रे म प ध सां। सां नि ध प म ग रे सा। कोई इस राग को खमाज थाट में डालते हैं, क्योंकि इसमें कहीं कहीं निषाद कोमल लगता है, जैसे; सां, निप, मप, धसां, धनिप, मप, मम, रेसा, रेम' इस राग में थाट सम्बन्धी मतभेद है, यह मैंने कहा ही है।

प्र०—'स्थाय' को बिदारी अथवा गीतखण्ड ही समझना चाहिये न?

उ०—हां, इस स्थाय के योग से विभिन्न स्वरों को कुछ समय के लिये वादी का स्वरूप प्राप्त हो जाता है। यह शब्द थोड़ा बहुत स्थायी शब्द जैसा ही है। हमारे गायक गाते समय ऐसे प्रकार सदैव लेते हैं। इन स्थाय को अपने गायक 'विश्रान्ति स्थान' भी कहते हैं क्योंकि विभिन्न तानें विभिन्न स्वरों पर लाकर समाप्त करने से वहां विश्रान्ति जैसी दीखती है।

प्र०—इस स्थाय के विषय में प्राचीन काल में कुछ नियम थे क्या?

उ०—यह निश्चित रूप से कैसे कहा जा सकता है? व्यंकटमखी ने इस स्थाय के सम्बन्ध में ऐसा कहा है:—

एवं रागप्रकरणे रागाः सम्यङ्निरूपिताः।
अथालापप्रकरणे तेषामालाप उच्यते॥
तत्रालापेषु सर्वत्राप्यादावाक्षिप्तिका स्मृता।
आक्षिप्तिकैव लोकेऽस्मिन्नायत्तमिति गीयते॥
पीनत्वेन यथाक्षिप्तं स्वनिर्वाहाय भोजनम्।
रागेणापि तथाक्षिप्तेत्यादावाक्षिप्तिका मता॥

× × × ×

आलाप के विषय में ऐसा कह कर स्थाय (ठाय) प्रकरण में वह कहता है:—

तत्तद्रागानुसारेण यत्र कुत्रापि च स्वरे।
स्थित्वा स्वरं तमेवाथ स्थायिनं परिकल्प्य च॥
तत्पुरोवर्तिषु चतुःस्वरेष्वथ यथाक्रमम्।
तत्तद्रागानुसारेणारोहेत्तानचतुष्टयम्॥
अवरोहेत्तथा तानचतुष्टयमितिक्रमात्॥
गीत्वा तानाष्टकं पश्चादारभ्य स्थायिनं स्वरम्।
यदुक्तं कंचिदाकल्प्य विन्यसेन्मंद्रसप्तके॥
स्थायिस्थितस्य तस्यैव "येडुप" स्याभिधीयते।
लोके "मकरणी" त्येवं संज्ञा मुक्तायिका ततः॥
ठायसामान्यलक्ष्मेदं वेंकटाध्वरिणोदितम्।
परमोगुरुरस्माकं तानप्पाचार्यशेखरः।
सर्वेषामपि रागाणामेतल्लक्ष्मानुसारतः।
ठायात् प्रकल्पयामास लक्ष्यमस्य तदेव सः॥

जान पड़ता है, यह भाग पहिले अपने भाषण में एक बार आचुका है, परन्तु ये ठाय प्रकरण छोटा सा है अतः उसे फिर से कहने का प्रयत्न कर रहा हूं। गाते समय अपने गायक एक ही राग में अपनी तानों के अन्त में विभिन्न स्वर लाकर श्रोताओं को भ्रम में डालते हुए कुछ ऐसा आभास कराते हैं कि वह स्वर वादी है, अथवा कोई अन्य ? फिर उचित समय में योग्य रीति से अपने मूल नियमित वादी स्वर को आगे लाकर राग हानि नहीं होने देते। इस प्रकार से आगे लाये हुए स्वर को क्षणभर वादी समझकर उसके आगे के चार स्वर लेकर व नीचे के चार स्वर लेकर, उसके बाद मन्द्रस्थान में कुछ तानें लेकर, फिर मध्यम षड्ज पर अपनी तान लाकर समाप्त करने लगते हैं। उनको ग्रन्थ नियम आदि मालूम नहीं रहते; परम्परा से उनके पास यह ज्ञान चला आता है। इस प्रकार एक राग में भिन्न-भिन्न स्वर आगे लाकर छोटी-छोटी अनेक तानें उत्पन्न करने में आती हैं उनके इस कृत्य से श्रोता ऊबते नहीं। प्रत्येक राग में आये हुए समस्त स्वर ऐसा वादित्व पायेंगे क्या ? ऐसा प्रश्न कोई पूछ सकता है, परन्तु मेरी राय में वैसा शोभनीय नहीं है। यह बात मैं अपने स्वानुभव की दृष्टि से कह रहा हूं। दक्षिण में 'ठाय' शब्द अब भी प्रचार में है; परन्तु उसके शास्त्र नियम वहां के गायकों को मालूम नहीं, ऐसा उनकी बातचीत से मुझे पता लगा।

प्र०—परन्तु पहले आपने कहा, 'तत्तद्रागानुसारेणारोहेत्तानचतुष्टयम्। अवरोहेत्तथा तानचतुष्टयमितिक्रमात्॥ गीत्वा तानाष्टकं पश्चादरभ्य स्थायिनं स्वरम् आदि। अर्थात् एक प्रकार के स्वस्थान नियम जैसे नये संकल्पित स्थाई स्वरों को वे लगाते थे। और यदि ऐसा ही है तो उनसे कितनी भी छोटी बड़ी तानें उत्पन्न हो सकती हैं ?

उ०—वैसा समझकर चलो तो भी हानि नहीं। परन्तु चार ही स्वस्थान इस प्रकार से लगाये जावें, ऐसा ग्रन्थों में नहीं कहा है। वस्तुतः ये प्राचीन नियम अब नष्ट ही हो गये हैं। 'ठाय' का अर्थ क्या व कैसा होगा ? इतना जानने का मेरा मतलब था। एक राग में वादी जैसे विभिन्न स्वर गायक आगे लाता है व बाद में फिर निश्चित वादी ठीक ढङ्ग से बताकर मूल राग की ओर वह बढ़ता है, यही समझना बिलकुल ठीक है।

प्र०—यह हमारे ध्यान में आ गया। अब आगे चलिये ?

उ०—हां, भावभट्ट के ग्रन्थ की ओर तो देखने की आवश्यकता ही नहीं। क्योंकि उसने गौड़ मल्लार नहीं कहा है।

प्र०—और कहा होता तो भी पांच-छै ग्रन्थकारों के मत क्रमशः उद्धृत कर लिये होते, ठीक है न ?

उ०—हां, यह तुम्हारा कहना ठीक है। इस पण्डित ने अपने समय के रागरूप यदि केवल लिख लिये होते तो भी आज हमारा कितना हित हुआ होता। 'राधागोविन्द सङ्गीतसार' में गौडमल्लार नाम देकर व उसके चित्र का वर्णन करके कहा है कि यह राग सात ही स्वरों में अर्धरात्रि में गायें। परन्तु उसका नादरूप नहीं दिया।

राजा साहेब टागोर गौड का अलाप ऐसा लिखते हैं:—

नि़ नि़ ग म म रे ध़ नि़ ध़
सा, सा रे म, म, म, रे, प प, म, म ग, प म ग॒, म रे, सा, सा, सा नि॒ प़,
नि़ म म म रे
म़ प़ ध़, सा, सा, रेप, प, म, मग, प ग॒, म रे, सा ॥

अन्तरा.

ध ध नि
म नि॒ ध नि॒ ध नि सां, सां, सां सां, रें नि सां, नि सां, रें मं गं॒ मं रें, नि सां
गं॒ ध नि ध ध ध म म
निसां, रें मं मं रें, सां सां, नि॒ प, म प, नि॒ सां, ध, नि॒ प रे प, म, म ग प,
म रे
ग॒ म, रे, सा ॥

प्र०—इसमें तो वे दोनों गन्धार व निषाद स्वीकार करते हैं ?

उ०—हां, ऐसा ही दीखता है। परन्तु अपने यहां वैसा प्रचार नहीं। अपने यहां ख्याल गायन का प्रचार अधिक होने से तीव्र गंधार लिया जाने वाला प्रकार ही अधिक है। कुछ ध्रुपद गायक कोमल गन्धार लेकर व नि॒ प की संगति लेकर गौड गाते हुए दिखाई देते हैं। उनके इस प्रकार को लोग भूल से 'मेघ' नाम देते हैं।

प्र०—परन्तु मेघ में तीव्र गन्धार व दोनों निषाद होते हैं न ?

उ०—यह बात तुम हृदय पण्डित के मेघ के बारे में कह रहे हो। अपने वर्तमान मेघ में तीव्र गन्धार नहीं आता, परन्तु इस विषय में हमें आगे बोलना ही है।

प्र०—आपने कहा कि कोमल गन्धार लेकर ध्रुपद गायें तो लोग उसको मेघ कहते हैं, इसलिये हमने बीच में ही यह प्रश्न पूछा। परन्तु आपने कहा कि वे भूल से मेघ कहते हैं, तो फिर उसे 'भूल से' क्यों समझा जाय ?

उ०—यह मैं पहले कह ही चुका था। 'म प ध सां,' 'ध, प, म प, म,' ऐसा भाग मेघ में कभी नहीं आयेगा। इसके अतिरिक्त मेघ के लक्षण स्वतन्त्र ही हैं।

नाद विनोदकार ने भी गौडमल्लार का स्वरविस्तार कहा है। चाहो तो उसे भी बताता हूँ।

प्र०—अवश्य बताइये। वह ग्रन्थकार आधुनिक है तथा वह एक प्रसिद्ध तंतकार था, ऐसा भी आपने कहा था ?

उ०—ठीक है। सुनोः—(m यह आन्दोलन का चिन्ह है)

m m m
सा रे ग म प, ग, रे म प, ध ध ध, प, ग म प ग, रे प प, ग, रे ग, रे रे सा। सा रे म, म प, प, ध ध ध, प, रें सां, नि सां, ध, प, ध म प, सां, नि सां, ध, प, ध म,
m m
प, ध ध प, ग म प ग, रे प प ग, रे ग रे रे सा। ग म प ग म प ग म प, मगरे, मप,

ध ध ध प, ग म प ग, रें रें सां, ध प, म प, ध ध ध, प, ग म प, ग रे प प ग रे ग रे, रे रे सा। सा सा ध ध ध प, ग म प ग म प, म ग रे म प, रें रें सां, नि सां, रें सां,

m

ध, प, ध ध ध प, ग म प ग म प, म ग रे म प, ध ध ध, प, ग म प ग, रे प, प ग, रे ग रे, रे रे रे सा।

प्र०—इस विस्तार से हमको पर्याप्त जानकारी हो जायगी, ऐसा प्रतीत नहीं होता।

m

यहां, 'ध ध ध, प; ग म प, ग, रे, रे प,' केवल यह भाग कुछ कुछ गौड़ जैसा जान पड़ेगा।

उ०—तंतकार के विस्तार समझना जरा कठिन ही है, वे एक परदे पर अंगुली रख कर आन्दोलनों से कहीं कहीं नवीन कृत्य करते हैं, परन्तु वह उनको ठीक प्रकार से लिखना न आने के कारण वे इस प्रकार के विस्तार लिखने का प्रयत्न करते हैं। "ध ध ध, प" इसे

नि नि नि

वह बहुधा "ध, ध, ध नि प" ऐसा प्रत्यक्ष बजाते होंगे। गौड़ मल्लार सम्पूर्ण राग है, वह सच है, परन्तु उसमें एकदम, "सा रे ग म प" ऐसी शुरूआत की तो गायन इतना सुन्दर होने वाला नहीं है। गायन की शुरूआत ऐसी होनी चाहिये कि अमुक राग शुरू होते ही वह श्रोताओं को तत्काल स्पष्ट दिखाई दे। ऐसा करने के लिये रागवाचक भाग जल्दी जल्दी श्रोताओं के सन्मुख लाना अभीष्ट है। अब मैं एक दो गौड़मल्लार की सरगम कहता हूँ, उनमें तुमको यह राग कितना स्पष्ट दिखाई देगा देखो:—

सरगम—त्रिताल.

रे	म	रे	प	ऽ	प	म	प	ध	सां	ध	प	म	प	ऽ	म
×				२				०				३			
रे	ग	रे	प	म	ग	रे	सा	रे	ग	म	प	ध	ग	ऽ	म।

अन्तरा—

		सां	नि												
प	प	ध	ध	सां	ऽ	सां	ऽ	गं	मं	पं	गं	मं	रें	सां	ऽ
×				२				०				३			
रें	रें	सां	नि	ध	प	म	प	ध	सां	ध	प	म	प	ऽ	म
रे	प	ग	म	रे	सा	रे	सा	रे	ग	म	प	ध	ग	ऽ	म।

सरगम—त्रिताल

रे	ग	रे	म	ग	रे	सा	सा	रे	ग	रे	ग	म	प	म	ग
०				३				×				२			
रे	रे	प	म	प	प	म	प	ध	सां	ध	प	म	प	म	ग।

अन्तरा.

प	ऽ	प	प	ध	ध	नि	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	सां	रें	सां	ऽ
०				३				×				२			
सां	नि	ध	ध	सां	ऽ	सां	ऽ	सां	रें	सां	नि	ध	नि॒	प	प
रे	रे	प	म	प	ऽ	म	प	ध	सां	ध	प	म	प	म	ग।

सरगम—त्रिताल.

रे	ग	सा	रे	म	ऽ	ऽ	म	म	प	ध	प	म	प	म	ग
३				×				२				०			
म	ग	रे	प	ऽ	प	म	प	ध	सां	ध	प	म	प	म	ग

अन्तरा—

म	प	सां	ऽ	ध	सां	ऽ	सां	सां	ध	सां	रें	सां	नि	ध	प
३				×				२				०			
रे	रे	प	ऽ	म	प	ऽ	प	ध	सां	ध	प	म	प	म	ग।

प्र०—अब कोमल गन्धार ली जाने वाली सरगम कहिये ?

उ०—तुम्हारी "क्रमिक पुस्तकों" में गौडमल्लार की अनेक चीजें दी हुई हैं, वे सब तुम अब धीरे-धीरे सीखोगे ही, तो भी यह एक छोटी सी सरगम देखोः—

सरगम—त्रिताल.

म								सां		प				म	
रे	प	ऽ	प	ध	म	प	प	ध	सां	नि॒	प	म	प	ग॒	म
×				२				०				३			
म				म				सा							
नि॒	प	म	प	ग॒	म	रे	सा	नि़	सा	रे	प	प	ग॒	ऽ	म।

अन्तराः—

सां								सां							
नि॒	नि॒	सां	ऽ	नि॒	सां	ऽ	सां	नि॒	सां	रें	मं	रें	सां	नि॒	प
												३			
प															
म	प	ध	सां	ऽ	ध	नि॒	प	म	प	ग॒	म	रे	रे	सा	ऽ।

———

अब इस स्वर विस्तार पर ध्यान दोः—

सा, रे ग म, ग म, म म प, नि॒ नि॒ प, म प, म ग, ध प, म प म ग, रे सा, रे ग म। सा रे ग म, रे प, म प, ध सां, ध नि॒ प, म प, म ग, सां ध नि॒ प, म प म ग, म रे सा, रे ग म। म म रे रे प, म प, ध सां, ध प, म प म ग, सा, रे ग, म, सां सां ध प, म प, ध म ग, रे सा, रे ग म। सा ग, ग म, रे प, म ग, रे प, म प, ध प, रे ग म प ध म ग,

रे सा, रे ग म, नि॒ ध प, म प ध म ग, सा ग, म। सा रे ग म, रे ग म, म प म ग, ध नि॒ ध प, म प ध नि सां रें सां, नि ध प ध म ग, सा, ग, ग म। प प, ध नि, नि सां, सां, नि रें सां, सां ध, नि॒ प, म, नि॒ ध, सां नि॒ प, म प ध सां ध, प, म ग, म रे सा, रे ग म। तीव्र गांधार मानने वालों के गाने में ऐसा प्रकार तुमको बारम्बार दिखाई पड़ना सम्भव है। इसमें सारी खूबी 'सा, रे ग म' अथवा 'सा ग, ग म' व 'म प ध सां, ध नि॒ प, म प, म ग, सा, ग, ग म,' लेने में तथा 'रे प' यह सङ्गति योग्य स्थान पर लेने में है।

अब कोमल गन्धार लेने वाले कैसे गायेंगे वह भी देखोः—

सां नि सां नि म म
सां, सां ध, नि प, प ध, सां, रें सां, ध नि प, म प ध सां, ध प, म प, ग ग म रे
म म नि नि
सा। सा, रे सा। प ग, म रे, सा, नि सा, रे प ग म रे सा, सां, रें सां, ध ध, नि
नि म म नि मं सां
म प ध सां, ध प, म प ग म रे सा। सा रे प ग, म प, ध, सां, रें सां, रें मं रें सां, ध, नि
प म प म म
प, म प ध सां, नि प, म प ग, रें सां नि प म प ग म रे सा। सा, नि सा, ग, म रे, सा, नि
म म सां प सां सां म
सा रे प ग, म, प ग, रें सां, नि प, ध सां, नि प, म प ध, सां ध, प, म प ग, म रे सा।
सां सां नि मं मं
नि नि, सां, सां नि सां, म प ध, नि सां रें सां, नि सां, रें गं, मं पं गं, मं रें सां नि सां, रें
प मं
मं रें सां, नि सां, नि प। म प ध सां, मं गं, मं रें सां, रें सां, ध प, म प ध सां ध प, म
म म
प ग, प ग, म रे, सा।

मैं समझता हूं इन दोनों प्रकारों के चलन अब थोड़े बहुत तुम्हारे ध्यान में आ ही गये होंगे। तुम्हारी क्रमिक पुस्तकों में गौडमल्लार में अनेक चीजें उत्तमोत्तम घरानों की आयेंगी ही। उनकी सहायता से यह राग तुमको अच्छी तरह गाते बनेगा। उत्तम प्रकार के गायकों को सुनकर, इस राग के भाग वे भिन्न-भिन्न प्रकार से कैसे जोड़कर गाते हैं, यह देखकर तथा उनका अनुकरण करके गाने का उपक्रम करने चलो तो किसी दिन तुम भी वैसे ही नामी गायक होजाओगे। एक ही राग में अनेक चीजें सीख लेना हितकारी है। भिन्न-भिन्न चीजें भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग ढङ्ग की रची हुई आजाती हैं तो राग के सब अङ्गों की पूर्ति होजाती है।

प्र०—यह आपका कहना हमको ठीक जंचता है। एक राग में एक ही चीज हमको आगई, और किसी गायक ने अपना "उठाव" निराले प्रकार से किया तो हम तुरन्त उलझन में पड़ जाते हैं। अधिक क्या, उसका राग भी पहचानना हमारे लिये मुश्किल हो जाता है।

उ०—यह बिलकुल ठीक है। तो फिर अब गौडमल्लार के प्रचलित स्वरूप का वर्णन करने वाला यह श्लोक कहता हूँ, सुनोः—

हरप्रियाह्वये मेले गौंडमल्हार ईरितः।
मतांतरे पुनश्चासौ शंकराभरणे स्मृतः॥
संपूर्णो मध्यमांशोऽपि गीयते लक्ष्यवर्त्मनि।
गानं तस्य समीचीनं वर्षाकाले सुनिश्चितम्॥
रिगरिमगरिसैः स्थाद्गौडांगं लोकविश्रुतम्।
मपधसैस्तथैवस्यान्मल्लारांगं परिस्फुटम्॥

परित्यागे तु निगयोः शुद्धमल्हारको भवेत् ।
मध्यमादृषभे पातो विशिष्टां रक्तिमावहेत् ॥
रिपयोः संगतिः प्रायो रागेऽस्मिन् गुणिसंमता ।
आरोहे दुर्बलो निःस्यादिति मर्मज्ञसंमतम् ॥
यदा गृह्णाति गांधारं कोमलं निमृदुं तथा ।
सधनिपमपगमरिसैर्भवेत्सुमंडनम् ॥

लक्ष्यसंगीते ।

संपूर्णोऽयं गौंडमल्लाररागो
न्यल्पारोहस्तीव्रमान्यस्वरो यः ।
मांशः संवादी तु षड्जो मतोऽस्मिन् ।
गायन्ति ज्ञाः प्रावृषि प्रायशोऽमुम् ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

रागोऽथ गौंडमल्लारः संपूर्णो मध्यमांशकः ।
षड्जसंवादिसंयुक्तो वर्षासु सुखदायकः ॥
आरोहे दुर्बलो निः स्यान्मध्यमर्षभसंगतिः ।
मध्यमादृषभे पातो विशिष्टां रक्तिमावहेत् ॥
धैवतर्षभगांधारास्तीव्राः कोमलमध्यमः ।
निषादौ द्वौ मतौ गानं वर्षतौं सर्वदोचितम् ॥

संगीतसुधाकरे ।

मान्यतीव्रस्वरः पूर्णो मांशः संवादिषड्जकः ।
आरोहेऽल्पनिषादश्च गौंडमल्लार उच्यते ॥

चन्द्रिकायाम् ।

मृदुमध्यम तीखै सबै संपूरन विस्तार ।
अल्पनिषाद लगायके गावत गौंडमलार ॥

चन्द्रिकासार ।

सनी पमौ पधौ सश्च निपौ मपौ गमौ रिसौ ।
गौंडमल्लारको मांशो वर्षासु सुखदायकः ॥
रिगौ रिमौ गरी सश्च मपौ धसौ धपौ मगौ ।
गौंडमल्लारकोऽप्यन्यः श्रूयते लक्ष्यकेऽशमः ॥

प्र०—यह गौंडमल्लार राग अब बहुत अच्छी तरह हमारी समझ में आगया। इसका "म प ब सां, ध प" यह भाग अच्छी तरह हम ध्यान में रखेंगे क्योंकि यह मल्लार का खास भाग है। इसके अतिरिक्त एक तीव्र गंधार का प्रकार व एक कोमल गन्धार का प्रकार, यह भी हम ध्यान में रखने वाले हैं। अच्छा, अब कौनसा प्रकार लेना है?

उ०—अब हम "मियां की मल्लार" लेंगे।

प्र०—इसके लिये ग्रन्थमत विशेष प्राप्त नहीं होंगे, ठीक है न?

उ०—तुमने ठीक कहा। मियां के दो चार राग अपने यहां प्रसिद्ध हैं; परन्तु अपने संस्कृत ग्रन्थकारों ने उनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा। उनके समय में बड़े बड़े पण्डित दरबार में थे, परन्तु मियां के राग पर उनके द्वारा कुछ भी लिखा हुआ नहीं दिखाई देता। कदाचित् अपने समय के ख्याति प्राप्त पण्डितों के प्रति आदरभाव न होने का ही यह उदाहरण हो सकता है।

प्र०—तानसेन के समय में पुण्डरीक विट्ठल था, तथा कदाचित् भावभट्ट का पिता जनार्दन भट्ट भी होगा। उसने तानसेन के रागों के सम्बन्ध में एक अक्षर भी नहीं कहा?

उ०—उसके ग्रन्थ में तानसेन का नाम भी नहीं दिखाई देता। भावभट्ट ने केवल अपने अनूपविलास में, "जो दरबारि सो सुद्ध कहावे," ऐसा कानडा के विषय में कहा है, यह मैं कह ही चुका हूं। परन्तु "मियां की मल्लार" राग का उत्पादक तानसेन था, ऐसा आज सर्वत्र समझा जाता है, इसमें संशय नहीं।

प्र०—कदाचित् शुद्ध ग्रन्थराग लेकर उसमें कोई से स्वर लगाकर गाना, यह उस ग्रन्थकार को उचित व प्रशंसनीय नहीं जान पड़ा।

उ०—हम इस प्रकार के कुत्सित तर्क करें ही क्यों? वह राग ग्रन्थों में क्यों नहीं है, इसका उत्तरदायित्व हमारे ऊपर क्यों होगा?

प्र०—यह भी आपका कहना ठीक है। आज भी समाज में प्राचीन उत्तमोत्तम रागरूपों की तोड़-मरोड़ करके कुछ गायक गाते हैं, उनके रागों के लक्षण आज अपने ग्रन्थकार कहां लिखते हैं?

उ०—ठीक, यह ऐसा ही चलता रहेगा। परन्तु तानसेन को इस प्रकार का गायक मत समझ लेना। उसके जैसा गायक हजार वर्षों में नहीं हुआ, सुप्रसिद्ध लोगों का यह मत मैंने तुम्हें बताया ही था।

प्र०—नहीं, नहीं, हमारे मन में उसके लिये बहुत ही आदर है। उसने प्रचार में लाये हुए रागों के लक्षण यदि स्पष्ट लिख दिये होते, तो कितना अच्छा होता?

उ०—उसको अच्छी तरह लिखना पढ़ना आता था या नहीं, यह कौन कह सकता है? एवं कुछ लिखना आता भी था तो उसको ग्रन्थ लिखना भी आता था, ऐसा कैसे कहा जा सकता है?

प्र०—हां, यह भी आपका कहना गलत नहीं। "मादनुलमूसीकी" ग्रन्थ में क्या स्पष्ट नहीं कहा है कि तानसेन आदि जो बड़े गायक हुए हैं, उनको प्राचीन शास्त्र इत्यादि कुछ नहीं आता था तथा उस दृष्टि से वे "अताई" ही थे।

उ०—परन्तु मित्र! उन बड़े गायकों का नाम लेने में हमारा कौनसा काम पार पड़ने वाला है? उनके द्वारा विकृत किया हुआ संगीत यदि हम गायें तो उनका नाम लेने में हमारा कौनसा गौरव है? "मियां की मल्हार" अपने गायक कैसे गाते हैं, बस हमें तो यही विचार करना है?

प्र०—ठीक है, तो फिर आगे चलिये। यह राग सभी गायकों को आता है क्या?

उ०—मेरी राय में यह अधिकांश को आता है। सभी इसको अच्छा गाते हैं, ऐसा मेरा कहना नहीं, परन्तु यह राग अत्यन्त साधारण है। इस राग को सम्पूर्ण ही मानते हैं, परन्तु "सा रे ग़ म प" ऐसी सरल तान इसमें नहीं लेते। इस राग में मन्द्र व मध्य सप्तकों का उपयोग अधिक होता है। परन्तु यह भी नहीं समझना चाहिए कि तार सप्तक में जाने की मनाही है। इस राग में तीव्र गन्धार सर्वथा निषिद्ध है। केवल निषाद दोनों हैं। कोमल गन्धार पर आन्दोलन बहुत ही मधुर लगते हैं। यह राग खड़े स्वरों से यानी अलग-अलग स्वरों से नहीं गाते और वह वैसा गाया जाने पर उत्तम लगने वाला भी नहीं तथा श्रोताओं को पसन्द आने वाला भी नहीं। इसीलिये हारमोनियम पर यह राग अच्छा नहीं बजता, ऐसी लोगों की धारणा बन गई है।

प्र०—यह राग अपने यहां अत्यन्त लोकप्रिय है, ऐसा आपके कथन से दिखाई देता है?

उ०—हां, ऐसा भले ही कहो पर अपने समाज में अव्वल तो स्वरज्ञानी व रागज्ञानी अधिक हैं ही नहीं, पर जो भी हैं उनको यह राग बहुत पसन्द आता है, इसमें संदेह नहीं।

प्र०—इस मियां की मल्लार में हम कौनसे भाग ध्यान में रखें, आप यह बताने की कृपा करेंगे क्या?

उ०—इसमें सा, नि़ ध़, नि़ ध़, नि़ सा, म़ प़, नि़ ध़ नि़ ध़, नि़ सा, यह भाग स्पष्ट होना ही चाहिये। नहीं तो यह मियांमल्लार नहीं, यहां तक कुछ गुणी लोगों का मत अभी कहा है। आगे "रे प ग़" (दो तीन बार गान्धार हिलाना (म रे, सा" यह भाग आया कि राग के विषय में संशय ही नहीं रहेगा। "नि प" की सङ्गति भी इस राग में है।

वैसी ही पूर्वाङ्ग में "रिप," सङ्गति अनेक बार दिखाई देगी। "रे प ग़, म रे, सा" ऐसा बारम्बार दिखेगा। मन्द्र सप्तक में सा, नि़ प़, म़ प़, नि़ ध़, नि़, सा ऐसा भाग हमेशा दृष्टिगत होगा। "म रे" ये स्वर कुछ मींड जैसे करके जोड़े हुए अच्छे दिखाई

देते हैं। इसके पहले दो मल्लार प्रकार मैंने कहे, उन से यह बिलकुल निराला प्रकार है। इस राग में वादी स्वर मध्यम है।* कोई षड्ज मानते हैं। समय वर्षाऋतु है। इस राग के गीतों में भी बरसात का वर्णन होता है। तार सप्तक में मध्यम तक इस राग में गायक जाते हैं। यह स्वतन्त्र स्वरूप है। गायक लोग अपने शिष्यों से, "नि़ प़, म़ प़, ध़ नि़ नि़ ध़, नि़, सा' यह भाग बहुत सतर्कता से घोट कर तैयार करने के लिये कहते हैं। यही भाग मध्य सप्तक में भी वैसा ही आता है। "म प, नि ध, नि सां, सां" इस प्रकार से अन्तरे अनेक गीतों के शुरू होते हैं।

प्र०—ऐसा करने के पश्चात् वे आगे कैसा करते हैं?

उ०—"सां, रें, सां, नि, सां नि प, म प, नि सां, रें मं रें, सां नि प," ऐसा करते हैं। आगे "म प, ग, म, रे, सा" इस प्रकार से मध्य षड्ज से मिलते हैं अथवा एक और मनोहर प्रकार वे करते हैं।

प्र०—वह कौनसा?

उ०—वे पुनः षड्ज के पास जाकर वहां से एक लम्बी मींड लेकर कोमल गन्धार पर आते हैं तथा वहां सावकाश आन्दोलन करके फिर "म रे सा" ऐसा टुकड़ा लेकर षड्ज से मिलते हैं। केवल ऐसा ही बारम्बार किया हुआ सुन्दर नहीं लगता, अतः वे ऐसा बारम्बार करते भी नहीं हैं। कहां पर, कैसा व क्या करना चाहिये, यह अनुभव से उनको भली प्रकार विदित रहता है।

प्र०—"मियां की मल्लार" राग बहुधा कहां से शुरू करते हैं?

उ०—राग के प्रारम्भ के सम्बन्ध में वैसा कोई नियम नहीं दिखाई देता। कुछ चीजें मन्द्र सप्तक से उठती हैं, तो कुछ मध्य सप्तक से और कुछ तार षड्ज से भी उठेंगी। मन्द्र सप्तक में जब प्रवेश करती हैं, तो वे बहुत ही उठावदार दिखती हैं। इस राग में बड़े ख्याल बहुत ही सुन्दर प्रतीत होते हैं। आवाज सुन्दर, जोरदार तथा मधुर हुई, राग के निश्चित भाग अच्छी तरह विदित हुए तथा आवाज कहां नरम व कहां जोरदार रखनी चाहिये, यह जानकारी हो तो यह राग बहुत बढ़िया लगता है। यह राग मैंने अनेक बार उत्तमोत्तम गायकों के मुख से सुना है, यह हमेशा मुझे मनोरंजक जान पड़ा। ग्वालियर तथा रामपुर इन स्थानों पर यह राग बहुत लोकप्रिय है।

प्र०—इस राग में ख्याल अच्छे लगते हैं, अथवा ध्रुपद?

उ०—इसमें ख्याल व ध्रुपद दोनों ही बहुत अच्छे लगते हैं। इस राग में "म प ध सां, नि प, म प, ग, म रे सा" ऐसा भाग नहीं लाना।

प्र०—यह आगया तो कोमल गन्धार लिया जाने वाला "गौड मल्लार" होने लगेगा, ठीक है न ?

प नि सां
उ०—यह तुमने बिलकुल ठीक कहा। वहां "म प, ध, नि ध, नि, सां" ऐसा करें तो राग नहीं बिगड़ेगा। अब इस राग के सम्बन्ध में एक दो अर्वाचीन ग्रन्थमत हम देखेंगे। "राधागोविन्द संगीतसार" में ऐसा कहा है—

"शिवजी नें उन रागन में सों विभाग करिबे को। अपने मुख सों मल्हार गाइके। वाको मेघराग की छाया युक्ति देखी मेघराग को दीनो।" आगे मियां की मल्लार राग के चित्रों का वर्णन किया है। तदनंतर ग्रन्थकार कहता है, "शास्त्र में तो यह सात सुरन में गायो है। कोई याको पांच सुरन में भी कहे है। सरिगमपधनिसां यातें सम्पूर्ण है। याको अर्धरात्रि में गावनो। यह तो याको वखत है। वर्षाऋतु में चाहो तब गावो।"

प्र०—पांच स्वरों से गाते हैं, ऐसा कहा है। मल्लार में "सारेमपध" हैं, ऐसा समझकर ही यह कहा होगा ?

उ०—यह कैसे कहा जा सकता है ? शायद मेघमल्लार को ध्यान में लाकर कहा होगा ! पर वह ठीक है. आगे राग का "जंत्र" ऐसा दिया है:—

नि़ सा, रे नि़ सा, ध़, प़, म़ प़, ध़, नि़, रे, सा। नि़ सा, ध़, सा, नि़ सा, रे प, म ग॒, मरे, सा, रे, सा।

प्र०—क्यों जी ? तो फिर इस ग्रंथकार ने यह राग ठीक लिखा है ? इसमें आपके कहे हुए भाग बिलकुल स्पष्ट दिखते हैं।

उ०—हां, यह राग ग्रन्थकार ने ठीक कहा है, ऐसा हम कह सकते हैं। अब क्षेत्रमोहन स्वामी के सङ्गीतसार में यह राग कैसा कहा है, वह कहता हूं। प्रथम तो वे कहते हैं कि इस राग में मल्लार व कानडा का उत्तम योग किया हुआ है, तथा इस राग को तानसेन ने प्रचलित किया। राग की जाति सम्पूर्ण है। उसके बाद वे इस राग का विस्तार अथवा आलाप ऐसा बताते हैं:—

नि़ प ध ध ध़
ध़ नि़ सा, रे नि़ सा, नि़ प़, म़ नि़ नि़ नि सां, नि़ ध़, नि़ सा, रे प, म प, ग॒
म ध ध रे म m
म रे सा, रे प म प, नि ध, नि ध नि सां, ध प, प प म ग॒, म रे सा यहां भी नोटेशन उतना सुन्दर नहीं। मैंने जिन स्वरों के सिर पर "कण" लगाये हैं, वे उन्होंने उन स्वरों के पहले दिये हैं। परन्तु उन पर समय नहीं दिया है। आगे अन्तरा ऐसा दिया है:—

मं प ध रे म m
ग॒ं, मं रें, सां, नि प, म नि ध़, नि ध़ नि सां, नि ध, नि सां, ध प, प, प, म ग॒, म रे सा॥

आगे विस्तार—

नि़ नि़ री m नि़ नि़
सा, सा, रे प, म प, म ग॒, सा, सा, प़ नि़॒ प़, म़ ध़ नि़॒ ध़ नि़॒ ध़ नि़ सा, रे प म प,
री ध ध ध
म ग॒ म ग॒, म रे, रे प, म प, नि॒ ध, नि॒ ध, म प ध नि॒ सां रें, नि सां, रें पं, मं पं, मं गं॒ मं
री m री
रें, रें, सां, सां नि सां, ध प, प, म प, ग॒ म रे सा।

प्र०—यह विस्तार भी हमको अत्यन्त साधारण सा लगता है। इसमें जो 'प म
m
ग॒ म रे, सा' है उसका वह पहिला 'मध्यम' हमको जरा असुविधाजनक जान पड़ा।

उ०—तो कहना चाहिये कि तुम अब बहुत ही समझदार होते जा रहे हो! बंगाल में उच्च कोटि की गायकी का यानी हिन्दुस्तानी गायकी का इतनी अच्छी तरह से मर्म समझने वाले दिखाई नहीं देते। अभी वहां के लोगों के शब्दोच्चारण व स्वरोच्चारण हिन्दुस्तानी गायक पसन्द नहीं करते, वहां स्वरज्ञान व रागज्ञान नहीं, ऐसा मेरा कहना नहीं, परन्तु वहां की गाने की आवाज को 'बंगाली बानी' ऐसा अपने गायक कटाक्ष करके बोलते हैं। उनके ऐसा कहने में काफी तथ्य भी मुझे मालुम पड़ता है। वहां के प्रसिद्ध गायकों का गाना परिषद में अनेक बार मैंने सुना है। इसके अतिरिक्त उस प्रान्त में, मैं प्रवास भी कर चुका हूँ। परन्तु वस्तुतः यह रागरूप बुरा नहीं।

प्र०—यद्यपि इस राग का अपने प्राचीन ग्रन्थकारों ने वर्णन नहीं किया है, तथापि इसके प्रचलित नादस्वरूप का हम वर्णन करदें तो ठीक होगा?

उ०—यह उन ग्रन्थों में (संस्कृत ग्रन्थों में) तो नहीं है, इसका स्वरूप अपने गायक कैसा प्रस्तुत करते हैं, वह अब कहता हूं। ध्यान पूर्वक सुनोः—

मm सा प़ प़
सा, नि़ सा, रे, सा, रे प ग॒ (मग॒ मग॒ मग॒) म रे सा, नि़ सा, रे, सा, नि़॒ प़, म़ प़,
ध़
नि़॒ ध़ नि़, सा, रे सा।

नि़॒m नि़॒m प़ प़ ध़
प़, म़ प़, ध़, नि़ सा, ध़, नि़ सा, नि़ सा, म रे सा, नि़॒ प़, म़ प़, नि़॒ ध़, नि़, सा,
ध़ नि़॒ ध़ सा m
रे, सा। नि़ सा, रे, सा म़ प़ ध़ नि़ सा, नि़॒ ध़, नि़ सा। नि़ सा, रे रे, प ग॒ म रे सा, नि़
म
सा रे म रे सा। रे सा, नि़॒ ध़ नि़ सा।

सा m म सा प़ नि़॒ म
नि़ सा रे रे प ग॒, म प ग॒, म रे सा नि़ सा, म़ प़ ध़, नि़ सा, म रे सा, प, म प, ग॒
म
ग॒, म रे सा।

नि़ सा रे म रे सा, नि़ सा, म़ प़ ध़, नि़ सा, प़ ध़ नि़ सा, रे सा, प ग़, म प, नि प म प ग़ म रे, सा, नि़ रे सा।

म़ प़ ध़, प़ ध़, नि़ सा, रे प, म प ग़ म रे, सा नि ध, सां, नि ध नि प, म प ध, नि सां, नि प, म प, ग़, म प ग़ म रे सा।

नि़ सा, रे म रे सा, नि़ प़, म़ प़, ध़ नि़ सा। सा, सा, रे रे सा, रे प ग़ म रे, सा, नि ध, म प, ग़ म प ग़, म रे सा।

म प, ध (आंदोलित) नि, सां, सां, ध नि सां, रें सां, रें पं मं पं गं मं रें सां, नि सां नि प, म नि ध नि ध, नि सां, नि नि प, म प, सां, ग़ म रे सा। अथवा नि नि प म प, ध, नि सां, नि प, म प ग़, म रे, सा।

सा, नि़ सा, ध़, नि़ सा, म़ प़ ध़, नि़ सा, रे, नि़ सा म़ प़ ध़, नि़, सा, सा रे प ग़, म रे, सा, नि़ सा रे म रे सा, प म प, ग़ म रे सा नि ध, नि प, म प ग़ म रे सा, सां नि ध, म प, ग़, प ग़, म रे सा।

सा, नि़, सा, ध़, नि़ सा, म़ प़ ध़, नि़ सा, रे, नि़ सा, म़ प़ ध़, नि़, सा, सा रे प ग़ म रे, सा, नि़ सा रे म रे सा, प म प ग़ म रे सा, सां, नि प, म प, ग़, प ग़, म रे, सा।

सा, ध ध, नि प, म प, ध, नि सां, रें सां नि सां, नि प, म प, ध, नि सां, नि प म प ग़, म प ग़, ग़ म रे सा।

प, प, ध नि, सां, नि सां, रें सां, रें पं गं मं रें सां, रें सां सां, नि प, म प सां, नि प म प, ध, नि सां, नि प म प, ग़, म रे, सा, नि़ सा, रे सा नि़ प़, म़ प़, नि़ ध़, नि़, नि़ सा, सा रे प ग़ म रे सा।

प्र०—इस अन्तिम भाग में कोमल व तीव्र दोनों ही निषाद आये हैं। ऐसा होता है क्या ?

उ०—उधर तुम्हारा ध्यान गया क्या ? हां, इस राग में कभी कभी ऐसा भी करते हैं, परन्तु इस कृत्य में एक और गूढ़ बात है, उधर तुम्हारा ध्यान गया कि नहीं ?

प्र०—उन दोनों निषादों पर धैवत के 'कण' हैं, उसी विषय में आप कहते होंगे ? वे कण न लिये जांय तो दोनों निषाद एक के बाद एक कहने कठिन होंगे, ऐसा जान पड़ता है। परन्तु ऐसे लिये हुए वे बुरे नहीं लगते ?

उ०—यह भी तुम्हारे ध्यान में खूब आया। वे कण वहां बहुत ही महत्व के हैं, इसमें संशय नहीं। मुझे लगता है कि यह राग अब अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ गया। इस राग विस्तार से तुम भी ऐसा विस्तार कर सकोगे, क्योंकि उसमें जो तथ्य है वह तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ ही गया।

प्र०—थोड़ा सा प्रयत्न करके हम दिखायें क्या ?

उ०—ऐसा तुमने किया तो बहुत ही प्रसन्नता होगी, बताओ ?

प्र०—अच्छा तो विस्तार करता हूँ:—

म प ध़ ध़
सा, रे म रे सा, नि़ प़, म़ प़, नि़ ध़, नि़ सा, सा सा, रे सा, नि़ सा, नि़ ध़, नि़, सा,

नि ध़ नि नि नि
म़ प़, ध़, नि़ सा, रे, सा। सा, नि़ सा, नि़ ध़ नि़ सा, प़ ध़, ध़, नि़ सा, रे नि़ सा, म़ प़ ध़,

नि नि m
सा ध़ ध़ नि़ सा, रे, पग, म रे, सा।

नि नि नि नि नि नि ध़ म़ निm
म़ प़ ध़, प़ ध़, सा ध़, ध़, रे सा ध़, ध़ नि़ प़, म़ प़, सा, नि़ प़, म़ प़ ग, म़ प़, ध़, नि़ सा, रे, सा।

नि नि m प म
म़ प़ ध़, नि़ सा, ध़, नि़ सा, नि़ सा, रे नि़ सा, रे प ग, म रे, सा, नि प, म प ग,

म रे, सा, नि़ रे सा।

ध मं ध
म, म, प, प, नि ध, नि सां, सां, रें, सां, नि सां, रें पं, गं, मं रें, सां, सां, नि प,

नि ध ध m
म प, ध, नि सां, रें सां, नि प, म प, सां, नि प, म प, ग, म रे सा, सा रे सा।

नि नि नि
म, म, प, प, म प, ध ध नि प, सां ध नि प, म प, रें सां, नि ध नि प,

m
म प ग, म रे सा।

म प ऩि ध, नि सां, सां, नि सां, रें, पं गुं, मं रें, सां, नि सां रें सां, सां, ऩि ध ऩि प, म प सां, ग़, म प ग़, म रे, सा।

सा, ध़, ऩि़ सा, म़ प़ ध़, नि़ सा, ध़ नि़ सा, रे सा प म प ग़ म रे सा, ध, ऩि प, म प ध, नि सां ऩि प, म प, ग़, म रे सा।

मियां की मल्लार राग का यह विस्तार ठीक दीखेगा क्या ?

उ०—मैं समझता हूँ इसमें कोई बाधा नहीं। यह राग आलाप योग्य है, इसलिये आवश्यकतानुसार और भी प्रकार तैयार किये जा सकते हैं; परन्तु जिस अर्थ में अभी यह राग तुमने अच्छी तरह समझ लिया है, उस अर्थ में अधिक विस्तार करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। बस, अब इस राग में एकाध सरल सरगम और कहे देता हूं। इस राग के अवरोह में धैवत नहीं लेते, यह ध्यान में रहना चाहिए। इसकी जाति सम्पूर्ण-षाडव मानी जायगी।

सरगम—त्रिताल.

(म) रे	म	रे	सा	नि़	सा	(ध़) ऩि़	प़	(ध़) ऩि़	ध़	ऽ	नि़	सा	ऽ	रे	सा
नि़	सा	रे	सा	(म) रे	प	म	प	(म) ग़	(म) ग़	म	रे	(सा) रे	रे	सा	ऽ।

अन्तरा.

(प) म	म	प	(म) प	(ध) ऩि	ध	ऽ	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	(सां) रें	नि	सां	ऽ
नि	सां	रें	पं	(मं) गुं	गुं	मं	रें	सां	ऽ	रें	सां	नि	सां	(ध) ऩि	प
म	प	(ऩि) ध	नि	सां	ऽ	(प) ऩि	प	म	प	(म) ग़	(म) ग़	म	रे	सा	ऽ।

सरगम—झपताल.

सा	रे	प	(मम) गग	म	रे	रे	सा	ऽ	सा
(सा) नि़	सा	रे	सा	ऽ	नि़	सा	(ध़) नि़	(ध़) नि़	प़
म़	प़	(नि़) ध़	नि़	ध़	नि़	सा	रे	नि़	सा
प	म	नि	प	(म) प	(म) ग	म	रे	रे	सा

अन्तरा.

म	प	(ध) नि	ध	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	सां
नि	सां	रें	रें	सां	नि	सां	(ध) नि	नि	प
म	प	(नि) ध	नि	सां	रें	सां	(ध) नि	नि	प
सां	सां	(ध) नि	प	(म) प	(म) ग	म	रे	रे	सा

तुम्हारी क्रमिक पुस्तक में ख्याल, ध्रुपद दिये हुए ही हैं, इसलिये अब यहां अधिक सरगमों की आवश्यकता नहीं। सरगम से रागरूप स्पष्ट ध्यान में आ जाते हैं, इसलिये मैंने एक दो कहदी हैं।

प्र०—अब इस राग की कल्पना हमको भली प्रकार हो गई है। बस अब इसके प्रचलित स्वरूप का वर्णन करने वाले आधार और कह दीजिये ?

उ०—वे तो तुम्हारी क्रमिक पुस्तक में भी दिये हैं:—

हरप्रियाभिधे मेले जायते विबुधप्रियः ।
मीयांमल्लाररागोऽसौ वर्षासु सुखदायकः ॥
संवादिनौ सपौ प्रोक्तौ गांधारे दोलनं भवेत् ।
निधयो रिपयोश्चैव संगती रागवाचिके ॥
मंद्रस्थानगतं गानं नित्यं स्याद्धृदयंगमम् ।
विलंबितलयालापः कस्य नो कर्षयेन्मनः ॥
निषादद्वयसंयोगो दृश्यते लक्ष्यके क्वचित् ।
प्रच्छन्नधैवतः कुर्यादुब्रहारपरिमार्जनम् ॥
गांधारांदोलने स्पष्टं कर्णाटागं परिस्फुटम् ।
मध्यमादृषभे पातो मल्लारागं सुनिर्णयेत् ॥
मल्लारकानडायोगाद्रागोऽयं परिकल्पितः ।
तानसेनकृतिश्चेयमितिलोके सुसंमतम् ॥
मपनिधनिसैरस्य विशिष्टांगं भवेत्स्फुटम् ।
मपधसधपैर्लोके गौडांगं विशदं भवेत् ॥

लक्ष्यसंगीते ॥

मियांमल्लारप्रसिद्धस्तानसेनविनिर्मितः ।
षड्जांशकग्रहन्यासः संवादीस्वरपंचमः ॥
कर्णाटकविमिश्रोऽयं संपूर्णः तमुदीरितः ।
सदांदोलितगांधारो मंद्रमध्यप्रचारकः ॥
निषादधैवतप्रेष्ठसंगत्या समलंकृतः ।
निषादद्वययोगोऽत्र स्वतंत्रो रक्तिदायकः ॥
रुचिरा संगतिश्चान्या स्यात्पंचमनिषादयोः ।
मध्यमादृषभे पातो विलंबितलयोऽपिच ॥
गांधारमध्यमावत्र कोमलौ समुदीरितौ ।
धैवतर्षभकौ तीव्रौ निषादौ तीव्रकोमलौ ॥
गीयते सर्वदैवायं वर्षाकाले मनीषिभिः ।
लोके मल्लाररागस्य प्रकारा बहवो मताः ॥

संगीतसुधाकरे ॥

मीयांमल्लार इतिविदितो यस्तु कर्णाटमिश्रः ।
षड्जोवादी रुचिर इह संवादिना पंचमेन ॥

गांधारस्य स्फुटविलसदांदोलनं निद्वयं च ।
प्रच्छन्नो धो विलसति सदा मध्यमाद्रौ प्रपातः ॥
कल्पद्रुमांकुरे ।

दरबारी ढंग होत है मोयांकी मल्हार ।
सारंगकी छब देत है गावत सुरमल्लार ॥
चंद्रिकासार ।

रिमौ रिसौ निपमपा निधौ निधौ निसौ पगौ ।
मरिसा सांशको लोके मीयांमल्लार उच्यते ॥
अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—अब कौनसा मल्हार लेंगे ?

उ०—मैं समझता हूं अब हम 'सूरमल्लार' लें। इस राग के उत्पादक सूरदास थे। यहां तुम्हारे मनमें प्रश्न उठेगा कि यह 'सूरदास' वही हैं जिन्होंने अनेक गीत कृष्णलीला पर लिखे हैं अथवा कोई दूसरे हैं ? अधिकांश गुणी लोगों का मत ऐसा है कि यह वही सूरदास हैं। एक दो गायकों ने ऐसा भी कहा कि यह वे सूरदास नहीं; परन्तु बहुमत ऐसा ही है कि अकबर के दरबार में रामदास व सूरदास नामक जो पिता पुत्र थे, उनमें के ही ये सूरदास हैं। बाबा रामदास ग्वालियर के एक प्रसिद्ध गायक थे, ऐसा आइने-अकबरी में कहा है। 'Badaoni' कहता है कि बाबा रामदास लखनऊ के निवासी थे तथा वे पहले बहिरामखां के यहां नौकरी में थे। इसके पूर्व वे इसलामशाह की नौकरी में थे। वह गुण में तानसेन से कुछ कम थे, ऐसा भी Badaoni कहता है।

आगे मैं तुमको जो रामदासी मल्हार बतलाने वाला हूँ, अपने यहां उसको इसी रामदास की कृति मानते हैं।

प्र०—तो फिर उसके पुत्र ने अर्थात् सूरदास ने 'सूरमल्लार' तैयार किया तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। 'सूरदास' के सहस्रों गीत समाज में हम भी सुनते हैं और वे भिन्न-भिन्न प्रकार के रागों में हैं। उन्होंने यदि एकाध मल्लार भी तैयार कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं ?

उ०—हां, 'सूरसागर' नाम का एक विशाल गीत संग्रह है, अतः सूरमल्लार उनका ही उत्पन्न किया हुआ एक राग है, ऐसा समझकर चलो।

प्र०—परन्तु यह राग अपने ग्रन्थों में तो प्रायः नहीं होगा। तानसेन के मल्लार का भी जो ग्रन्थकार वर्णन नहीं करते, वे सूरदास के मल्लार का वर्णन क्यों करेंगे ?

उ०—यह भी तुमने ठीक कहा। "सूरमल्लार" राग भी अपने संस्कृत ग्रन्थकारों ने नहीं दिया।

प्र०—परन्तु ठहरिये ! जिस राग के साथ किसी व्यक्ति विशेष का नाम लगा होता है, उसका ग्रन्थकार वर्णन नहीं करते हों, ऐसा भी हो सकता है ? किन्तु 'नायकी-कानडा' का कुछ लोग वर्णन करते हैं, और वह गोपाल नायक की कृति मानी जाती है।

उ०—इन कारणों को खोजने की हमें जरूरत नहीं दीखती। 'नायकी' किसी व्यक्ति का नाम है, ऐसा नहीं कह सकते। कुछ मल्हारों को दूसरे भी गायक लोग प्रचार में लाये हैं; जैसे चरजू की मल्लार, चंचलसस की मल्लार। ये तो अच्छे नायक हो गये हैं। तानसेन, रामदास व सूरदास 'नायक' नहीं थे। इनमें से किसी के भी मल्हार का उल्लेख ग्रन्थकारों ने नहीं किया है।

परन्तु अपवादस्वरूप, अमीरखुसरू के किसी-किसी राग का उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है। किन्तु वहां ऐसा भी कहा जा सकता कि वे पर्शियन राग प्राचीन ही थे, जिनको उन्होंने अपने यहां शुमार कर लिया। ग्रन्थकार उस राग का सम्बन्ध अमीरखुसरू से न लगाकर उसको 'पारसीक' राग कहते हैं। उसमें के कुछ वास्तव में ईरान की राग-रागनियों की सूची में दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु मित्र! इस विवाद में पड़ने की हमको क्या आवश्यकता है? 'सूरमल्लार' कैसे गाते हैं, हमें तो इस पर विचार करना है।

प्र०—हां, यह बिलकुल ठीक है। बात में से बात निकली, इस कारण इतनी चर्चा भी चली। अब आप सूरमल्लार के विषय में अपना भाषण चलने दीजिये?

उ०—'सूरमल्लार' राग के सम्बन्ध में एक दो मतभेद प्रचार में दिखाई देते हैं, उनको पहले ही कह देना लाभदायक होगा। ये मतभेद गन्धार तथा धैवत स्वर के प्रयोग से उत्पन्न होते हैं। कोई इन स्वरों को बिलकुल वर्ज्य करने को कहते हैं।

प्र०—परन्तु यह स्वर छोड़ दिये जांय तो फिर सारंग से यह राग पृथक रखना कठिन हो जायगा?

उ०—वैसा अवश्य होगा, लेकिन सारंग दूर करने की एक दो युक्तियां गायक बतलाते हैं और उनके योग से समझदार श्रोताओं को सारंग पृथक दीखता है। कोई ऐसा भी कहते हैं कि गन्धार पूरी तरह से वर्जित किया जाय, परन्तु धैवत अल्प प्रमाण में लिया जाय।

प्र०—आरोह में अथवा अवरोह में?

उ०—कहते हैं कि वह केवल अवरोह में 'ईशत्-स्पर्श' न्याय से लिया जाय। और किसी के मत से वह 'प्रच्छन्न-न्याय' से आरोह व अवरोह दोनों में भी लिया जा सकता है, किन्तु उस पर अधिक जोर नहीं देना चाहिये ताकि राग हानि होने का भय न रहे।

प्र०—उसे अवरोह में 'नि ध प' ऐसा लेते हैं, अथवा 'सां नि ध प' ऐसा लेते हैं?

उ०—'सां नि ध प' ऐसा लिया हुआ प्रायः नहीं दीखता। सारंग में जैसा क्वचित प्रसंग से वह आता है, वैसा ही यहां आता है। 'सां' लेकर वहां जरा ठहर कर फिर 'नि ध प' लेने में आता है।

प्र०—ठीक है, परन्तु इस राग में गन्धार कौनसा लेते हैं?

उ०—इस राग में तीव्र गन्धार कभी नहीं आता। जो गायक गन्धार लेने को कहते हैं वे कोमल गन्धार लेने को ही कहते हैं। वे उसे 'रे ग॒ सा रे' ऐसे टुकड़े में

म
लेते हैं। कुछ गायक उसको 'ग म रे सा' इस प्रकार लेते हुए दिखाई देते हैं। ये दोनों प्रकार मैंने रामपुर के गायकों के मुंह सुने हैं, वहां पर तो तानसेन की परम्परा है। जान पड़ता है, ये सारे मतभेद अब तुम्हारे ध्यान में ठीक तरह से आ गये होंगे। ख्याल गायक सूरमल्लार में धैवत का अल्प प्रयोग कभी-कभी जाते-आते करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। गन्धार मात्र का प्रयोग मेरी दृष्टि में नहीं आया। मुझे स्वयं ऐसा जान पड़ता है कि ख्याल में गन्धार का प्रयोग उतना सुन्दर दीखने वाला भी नहीं है। मैंने अनेक स्थानों पर सूरमल्लार के ध्रुवद सुने हैं, उनमें गान्धार वर्ज किया हुआ ही दिखाई दिया, परन्तु रामपुर के गायक उसको प्रयोग करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन वहां भी वह ध्रुवद में लिया हुआ मैंने देखा, ख्याल में नहीं। हालांकि गन्धार लिये जाने वाले एक दो गीत वहां के साहबजादा सादतअली खां होम मेम्बर, ने मुझे भी सिखाये थे।

प्र०—यह गन्धार वे कैसे लेते थे? वह स्वरों से गाकर हमको आप बतायेंगे क्या?

उ०—हां, अवश्य बताऊंगा। उनके गीतों के स्वरों के आधार से ही कहता हूं, इससे उनका प्रयोग तुरन्त तुम्हारे ध्यान में आजायेगा। अच्छा तो देखो:—

प ध प प
री ग सा रे, म प, नि ध नि प, म प, नि प, सां, नि सां नि सां, रें नि, म प, प

म प
ध म री सा रे, प, ग म रे सा। री ग सा रे म प, नि ध नि म प।

प्र०—और आगे अन्तरा?

उ०—वह उन्होंने ऐसा गाया।

म प
म, म प, सां, सां, रें नि सां, सां, नि ध प, रे, म, प, नि ध नि प, ध म, म प

सां म
नि सां, रें नि, ध प, ध म रे, सा रे प ग, म रे सा।

प्र०—क्यों जी, यह रचना कौशल्य तो अच्छा दीखता है। इसमें यद्यपि 'सां नि ध प' यह भाग आया है, तो भी 'सां' पर ठहरने से बहुत अन्तर पड़ता है। वहां 'नि ध प रे म प' यह एक टुकड़ा पृथक जान पड़ता है। ठीक है न?

उ०—वह तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ गया। वहां बड़ी कुशलता से राग संभालने की जरूरत है। 'रि ग सा रे' यह टुकड़ा 'देस' गाते हुए रामपुर में मैंने कई बार सुना है।

प्र०—तो फिर इस मत के लोगों ने 'देस' व 'मल्लार' का ही थोड़ा बहुत योग किया है, ऐसा कोई नहीं कह सकता क्या?

उ०—देस मल्हार, मल्हार का ही एक निराला प्रकार है, यह मैंने कहा था। इस

म
सूरमल्लार में आगे 'प ग म रे, सा' ऐसा भी होता है, वह देस में कैसे चलेगा? 'री ग

'रे ग सा रे, म प, नि ध, म प' अथवा 'नि ध नि, म प' ऐसा सावकाश गाने से बिलकुल स्वतन्त्ररूप दीखने लगता है।

प्र०—हां, वह भी ठीक है। अच्छा, जो गन्धार नहीं लेते और धैवत थोड़ा लेते हैं, वे किस प्रकार करते हैं ?

उ०—वह भी देखो:—'सां, नि म, नि ध प, प, म रे, सा' यहां वह धैवत कैसी खूबी के साथ रखा है, देखा ?

प्र०—परन्तु इस प्रकार में 'सारंग' विशेष आगे नहीं आयेगा क्या ?

उ०—तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है, परन्तु ऐसा प्रकार गाने वाले गायकों का नियम ही ऐसा है कि सूरमल्लार में सारंग अवश्य दिखाया जाय।

प्र०—तो फिर उनके मत से 'सूर मल्लार' को सारङ्ग व मल्लार का मिश्रण ही कहना चाहिये ?

उ०—तुम ठीक समझे। उनका ऐसा ही मत है। अपने अधिकांश प्रसिद्ध गायक स्पष्ट ही कहते हैं कि सूरमल्लार के घटक अवयव सारंग व मल्लार हैं, मल्लार के अवयव भी सारंग, सोरट व बिलावल हैं, ऐसा Captain Willard अपने ग्रन्थ में पृष्ठ ७४ पर स्पष्ट कहते हैं। उन्होंने एक और मत भी कहा है कि मल्लार में नट, सारङ्ग व मेघ का योग है।

प्र०—हमको वह पहिला मत ही पसन्द है। कारण, मल्लार में 'सारङ्ग, सोरट व बिलावल' के भाग जगह जगह दिखाई देते हैं।

उ०—अच्छा तो तुम यह ध्यान में रखो कि सूरमल्लार में सा, म, तथा प इन स्वरों का प्राबल्य है, इसी कारण वादी मध्यम व कोई पंचम को मानते हैं। इसकी जाति औडव-षाडव मानने का प्रचलन है। समय वर्षाऋतु है। धैवत के प्रयोग के सम्बन्ध में मैंने तुमको सब कुछ बताया ही है। इस मल्लार प्रकार में जहाँ 'नि म प' यह सङ्गति आती है, वहां बहुत ही आनन्द आता है। 'म प, म नि ध प,' ऐसा भी एक टुकड़ा रागवाचक ध्यान में रक्खो। ख्याल गायक 'म प नि सां रें नि, म, नि ध प,' ऐसी तान बारम्बार इस राग में लेते हैं। पंचम बहुत ही चमकता हुआ रखते हैं।

इस राग के आरोहावरोह:—'सा, नि सा, रे म रे, म प, नि ध नि म प, नि सां, रें नि, ध प, ध म रे, म रे सा।" अथवा किसी के मत से, 'सा रे म रे, म प, नि म प, नि सां, रें नि, म नि ध प, म रे, सा।' यह दूसरा प्रकार भी अच्छा है। इस राग की पकड़, 'सा, रे म, प, म, नि ध प' ऐसी हो सकती है। यहां सामंतसारङ्ग का भास श्रोताओं को होगा। परन्तु वैसा करने के लिये 'म नि तथा रें नि म प' इस संगति

से तथा 'म रे' ऐसी मींड से सारंग नष्ट करके, मल्लार आगे लाया जाता है । यह कृत्य मैं कैसे करता हूं, इसकी ओर ध्यान देना बहुत जरूरी है । म रे यह मींड दिखाते हुए बिलकुल 'सोरट' राग के निकट गये तो भी चलेगा। वहां अब सारंग दूर होना चाहिये। 'सा, रे म" यह टुकड़ा भी इस राग में न्यूनाधिक भाग में लिया जाने वाला है । इसके योग से कुछ तान वृद्धि होती है और उस मुक्त मध्यम से तुरन्त ही मल्लार सामने आ जाता है। 'सा, रेम, रेमसारेम, निधप, म,' ऐसे टुकड़े आने से सारंग लुप्त हो जायगा।

प्र०—क्यों पंडित जी ! अपने गुणी लोगों की चतुराई का ही यह कमाल है कि स्वर-पंक्ति वही रखते हुए, उसमें विभिन्न स्थानों पर विश्रान्ति करके नियमित स्वर आगे लाकर तथा नियमित संगति योग्य जगह लाकर श्रोताओं के सामने विभिन्न रागों का मंडन किया है। वास्तव में उनकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी होगी। अच्छा, तो अपने अर्वाचीन ग्रन्थकारों ने सूरमल्लार के सम्बन्ध में क्या क्या कहा है, वह भी कहेंगे क्या ?

उ०—अवश्य। सर्व प्रथम राधागोविन्द संगीतसार में जो कहा है वह कहता हूँ:—

'शिवजीनें × अपने मुख सों सोरट, कानडासंकीर्णमल्हार गाईके वाको सूरकी मल्लार नाम कीनो।' आगे राग चित्र है, उसके वर्णन की हमें आवश्यकता नहीं, कारण वह ग्रन्थकार का काल्पनिक है। आगे, शास्त्र में तो सातसुरन में गायो है 'धनिसारेगमपध' यातें सम्पूरण है। याको आधोरात्रीसमें गावनो। यह तो याको बखत है। वर्षाऋतु में चाहो तब गाओ। आलापचारी सुरनमें किये राग बरते।

जन्त्र (खड़ी लकीर में पढ़िये)

म	प	नि	री	म	सा	ग	सा
प	म	सा	प	री	नि	री	री
ध	री	नि	नि	सा	सा	सा	सा
प	प	सा	प	री	री	नि	
ध	म						

इस जंत्र में गन्धार व धैवत ये दोनों ही स्वर हैं, यह दीखता ही है। वे स्वर लेने वालों को इस सङ्गीत सार का आधार उत्तम होगा । म रे केवल यह मींड़ लेनी चाहिये। इस जंत्र में नीली पेन्सिल से मैंने जो निशान किये हैं प्रायः उसी तरह वे गाते होंगे। वह जन्त्र इस कागज पर मैंने उतार कर तुम्हें दिखाया है। उन चिन्हों के अनुसार यदि तुम इसे गाओ तो राग बिलकुल स्पष्ट दीख सकेगा। इस राग में अधिकतर गीत मध्यम से शुरू होते हैं, परन्तु कुछ षड्ज से ही शुरू हुए दिखाई देंगे।

प्र०—इस बात को हम इतना महत्व नहीं देते। देशी सङ्गीत में ऐसा होता ही है।

उ०—ठीक है, क्षेत्रमोहन स्वामी के सङ्गीतसार में सूरमल्लार का विस्तार ऐसा किया है:—

नि़, सा रे म प, ध नि॒ ध प, ध प म रे, नि़ सा, रे प, म, म रे सा।

ध ध नि
अन्तरा. म प, प सां नि सां, सां सां, सां नि॒, सां रें मं रें, सां सां, सां, ध नि॒ ध प ध प प म रे, नि़ सा रे प, म म रे सा। आगे और विस्तार वह इस प्रकार करते हैं:-

ध नि
रे म प ध म प नि सां रें मं रें सां सां सां, ध नि॒ ध प, ध प, म रे, म प ध म प
ध नि
सां सां, ध नि॒ ध प, ध प, म रे, नि़ सा, रे प म, म रे सा।

प्र०—इस राग में, 'ध, नि॒ ध प' है ही। 'रिप' सङ्गति मल्लार रखने के लिये प्रयुक्त की गई दिखाई देती है?

उ०—हां, ऐसा ही दीखता है। इस प्रकार में वे केवल कोमल गन्धार नहीं लेते। अब अपने अर्वाचीन तीसरे अधिकारी नादविनोदकार का सूरमल्लार का विस्तार देखो। वह इस प्रकार है:- तंतकार होने के कारण उन्होंने स्वरों पर तीन तीन बार आघात दिये हैं।

म म नि॒ नि॒ नि॒ नि॒
रे सा, नि़ सा, रे रे प म रे रे सा रे सा, म म प ध ध प, म प ध ध म प, प प प,
नि॒ नि॒ नि॒ म म म
म रे, सा रे म, म, प, प, म प, ध ध ध, म प, प, प प प प, म रे रे म रे रे, सा सा सा।
अन्तरा। प म प, रें सां रें, प म प, रे सा रे, ध ध प, ध ध प, म प, नि सां सां, सां नि॒ प, नि सां रें सां, नि॒ ध प म प नि॒ ध प नि॒ ध प, सां सां, नि॒ ध प, म ग॒ रे रे, रें रें सां नि॒ प, म प, म प नि॒ सां रें मं रें सां, म म म प नि॒ नि॒ नि॒ ध प।

प्र०—जान पड़ता है, उनके विस्तार का इतना नमूना काफी होगा। 'म प ध ध प म प नि॒ ध प, म रे, रे प म रे, सा' इस भाग में उनके स्वरविस्तार का सार है, ऐसा हमको दीखता है। इन तमाम लेखकों को 'नि॒ ध प' यह टुकड़ा स्वीकार है, यह बिलकुल स्पष्ट है। इन्होंने जहां कोमल गन्धार को लिया है, वह भाग इतना सुन्दर नहीं जान पड़ा, इसकी अपेक्षा रामपुर के गायकों का प्रकार अच्छा दिखाई दिया।

उ०—यह तुम्हारा कहना ठीक है। परदों के वाद्य समप्रकृतिक रागों के सूक्ष्म भेद बताने के लिये इतने सुविधाजनक नहीं हैं। पहले तो इस प्रकार के भेद को जानने वाले तंतकार ही अब थोड़े मे हैं। किन्तु जो हैं, उनके लिये भी भेद निकाकर बतलाना आसान कार्य नहीं है। गत-तोड़े बजाने वालों की तरफ तो देखने की भी आवश्यकता नहीं। उनके गीतों में प्रथम जो भाग राग का दीखता है उसे छोड़कर वे एक बार जब बढ़त करने लगे तो फिर कुछ न पूछिये। किन्तु जो राग अतिप्रसिद्ध होते हैं तथा जिनमें वर्ज्यावर्ज्य स्वरों का स्पष्ट भेद होता है, उनमें इतनी गड़बड़ नहीं होती। परन्तु मैं यह बातें तंतकारों के विषय में नहीं कह रहा हूं। तंतकारों ने अप्रसिद्ध राग शुरू किया कि उसे पहिचानने में ही श्रोताओं

को काफी समय लग जाता है। अच्छा, मित्र ! अब अपने "सूरमल्लार" राग की ओर चलो। प्रथमतः यह एक छोटी सी सरगम तुमको बताता हूँ, जो साहेबजादा सादतखां ने भी पसन्द की थी।

सरगम—झपताल.

सां	सां	नि॒	(नि॒)म	प	नि॒	ध	प	ऽ	प
×		२			०		३		
म	प	(प)नि॒	(ध)नि॒	प	म	प	म	रे	रे
रे	प	म	रे	म	रे	सा	रे	नि़	सा
नि	सां	मं	रें	सां	नि॒	म	नि॒	ध	प
सां	ऽ	नि॒	म	प					

अन्तरा.

म	प	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	रें	नि	सां
×		२			०		३		
नि	सां	(मं)रें	मं	रें	सां	ऽ	(ध)नि॒	नि॒	प
प	म	नि॒	ध	प	म	रे	म	रे	सा
(नि़)सा	(सा)रें	रें	सां	नि॒	(नि॒)म	प	नि॒	ध	प
सां	ऽ								

सरगम—त्रिताल.

प	नि॒	प	म	रे	सा	नि॒	सा	रे	रे	म	ऽ	नि॒	ध	प	ऽ
०				३				×				२			
म	प	नि	सां	रें	मं	रें	सां	नि॒	नि॒	म	प	नि॒	ध	प	म।

अन्तरा.

म	म	प	प	नि	नि	सां	ऽ	नि	सां	रें	मं	रें	सां	नि	सां
०				३				×				२			
रें	मं	रें	सां	रें	नि	सां	ऽ	नि॒	नि॒	म	प	नि॒	ध	प,	म।

रामपुर के मतानुसार ऐसा एक प्रकार होगा:—

सरगम—रूपक.

रेग॒	सारे	म	प	नि॒	ध	प
२		३		०		
(प) म	प	नि	सां	रें	रें	सां
रें	नि॒	(नि॒) म	प	नि॒	ध	प
ध	प	ऽ	म	रे	ऽ	रे
नि़	सा	(म) रे	प	(म) ग॒	(म) ग॒	म
रे	रे	सा	ऽ	रे	नि़	सा

———

अन्तरा.

म २	म	प ३	प	सां ०	ऽ	सां
सां	सां	रें	सां	नि॒	ध	प
(म) रे	रे	म	प	नि॒	म	प
म	प	नि	सां	रें	ऽ	सां
रें	नि॒	म	प	नि॒	ध	प
ध	प	ऽ	म	रे	ऽ	रे
नि़	सा	रे	प	(म) ग॒	(म) ग॒	म
रे	रे	सा	ऽ	रे	नि़	सा

प्र०—इस सरगम के योग से हमको इस राग की यथेष्ट जानकारी हुई है। अब थोड़ा सा इस राग का विस्तार करके दिखादीजिये ताकि उसका साधारण चलन अच्छी तरह समझ में आ जाय।

उ०—ठीक है, वैसा ही करता हूँ। सुनो:—

सा, नि़ सा, (म)रे म, म प, नि॒ ध प, म प म रे, सा, नि॒ नि॒ प म रे, सा, रे, सा।

सा, रे म, म प नि॒ ध प, नि सां, रें सां, नि॒, म नि॒ ध प, म प नि॒, प म रे, सा।

सा, नि़ सा, म रे, सा, म प नि॒ ध प, म प नि॒ सां, रें सां, नि॒ म नि॒ ध प, ध प, म रे, सा॥

सा, नि़ सा, प़ नि़ सा, रे, म रे प म रे, सा, ऩि ऩि ध प, म प म रे, रें, सां, ऩि, म प ऩि ध प, म रे, सा।

सा सा रे म, सा रे म, म, प, म, ऩि ध, प म, म प नि सां, रें सां, मं रें, सां, ऩि, म प नि सां, रें मं रें सां, ऩि, म, ऩि ध प, म रे सा।

सा रे म प ऩि ध प, म प सां, ऩि, ध प, रें सां, रें मं रें सां, सां ऩि, म प, ऩि ध प, ध प, म रे, रें सां, ऩि, म, ऩि ध प, म रे, प, म रे, सा।

सा रे नि़ सा, रे, ऩि ऩि म प, ध प, म रे, सां ऩि, म प ऩि ध प, ध प, म रे, रें ऩि, म प ऩि ध प, म रे, प, म रे, सा।

म म प, नि, नि सां, सां, रें नि सां, नि सां रें मं रें सां, नि सां, ऩि, म प नि सां रें मं रें सां, ऩि, म प, रें ऩि, म प, ऩि ध प, ध प म रे, प म रे, सा।

मैं समझता हूं इतना विस्तार पर्याप्त होगा। इस राग में कहीं सारङ्ग और कहीं मल्हार इस प्रकार दिखाते गये तो वह सुन्दर रहेगा। "म रे सा" यह टुकड़ा पहले अच्छी तरह जमा लिया जाय। बाद में "सां ऩि, म प ऩि ध प" यह टुकड़ा तैयार किया जाय। "प, म रे ध प, म रे" यह भाग देस अथवा सोरट जैसा साध लिया जाना चाहिये। इस राग में "ऩि ध प" यह जो टुकड़ा आता है, उसमें धैवत को बिल्कुल धक्का अथवा आन्दोलन देने की आवश्यता नहीं। वह स्वर ठीक सरल तान की भांति गाये जांय। यह कृत्य मैं प्रत्यक्ष किस प्रकार करता हूँ, यह ध्यानपूर्वक देखो। "सा, रे म, म प, म, ऩि ध प, म" यह खास मल्लार का भाग होने से बारम्बार सामने आना चाहिये। अनेक तानें इसी भाग से प्रारम्भ करने में आती हैं। इस राग में, "ध ऩि सां," "प ध नि सां" इस प्रकार से धैवत का प्रयोग नहीं करना चाहिये, यह राग मध्य व तार स्थानों में शोभित होता है।

इस मल्लार भेद पर मेरे मित्र के० सादतअलीखां साहेब, होम मेम्बर, रामपुर स्टेट, ने दिल्ली की अखिल भारतीय परिषद के सामने एक निबन्ध पढ़ा था। उसमें उन्होंने भिन्न-भिन्न मल्लारों में कौन कौन से स्वर लगते हैं, यह कहा था। उनके एक गायक ने उन रागों के एक-एक गीत भी गाकर दिखाये थे। होम मैम्बर साहब ने निबन्धों में प्रत्येक राग का ब्यौरेवार परिचय नहीं दिया था, परन्तु उन रागों के तीव्र कोमल स्वर तथा वर्ज्यावर्ज्य स्वर कहे थे। वह जानकारी तुमको भी होनी चाहिये, इसीलिये कहता हूँ। स्वयं रामपुर के नवाब अध्यक्ष थे।

प्र०—वह परिचय हमको अवश्य दीजिये ?

उ०—ठीक है, प्रथम अपने को इस विषय पर बोलने का अधिकारी उन्होंने इस प्रकार बताया:—

"My father, Sahebzada Hyder Alikhan was a pupil of Bahadur Husain Khan and Sadak Ali Khan son of Jaffer Khan of Benaras who had been in the service of Wajid Ali Shah in Calcutta. I have learnt from my father and from Mahomed Ali Khan son of Basat Khan, and since my stay in Rampur my knowledge has been considerably increased by what His Highness has been pleased to teach me on the subject, and I shall be glad to teach any one the Talim of Bin and Rubab, handed down to me by my ancestors"

प्र०—तो फिर वे गृहस्थ बहुत बड़े अधिकारी थे, ऐसा दीखता है। बहादुरहुसैनखां, सादिकअली खां, महम्मद्अली खां, बासतखां, जाफरखां ये सब तानसेन घराने के वंशज हैं, ठीक है न ?

उ०—हां, सादतअलीखां उर्फ छमनसाहेब, वैसे ही थे । उनकी व मेरी घनिष्ठ मित्रता थी। मैं रामपुर बहुधा उनके कारण ही व उनके लिये ही जाता रहता था। उनके पास से मैंने कई बातें सीखीं। उत्तर के रागों के भेद मैंने उनकी संगत से अच्छी प्रकार समझे। वे अनेक वाद्य बजाते थे। "सुर श्रृङ्गार" वाद्य तो उनके साथ ही गया, ऐसा गुणी लोग मानते हैं। वह वाद्य बहादुरहुसैन खां ने उत्पन्न करके उसका "बाज" छमन साहेब के पिता को सिखाया था। हैदरअली खां ने अपने गुरु को तीन लाख रुपये गुरुदक्षिणा में दिये, ऐसी किंवदन्ती है। अस्तु आगे चलें:—

The group of Ragas known as Malhars is one of the most important groups in the system of Hindusthani music, and its importance is increased by the fact that most of the Ragas were composed during the Mahomedan period. Hence the old Sanskrit books do not mention most of these varieties. In the Aine Akbari, mention is made of the following eminent singers who were employed at the court of Emperor Akbr : namely Meeyan Tansen, Ramdas of Gwalior, his son Soordas, and Nayak Churjoo. All these men have left their mark on our music by composing Mallrs which are known after their respective names. The following varieties of Mallar are commonly recognized:—(1) Shudha malar (2) Miyanki mallar,(3) Ramdasi malar, (4) Surdasi malar (5) Nayak Charjooki mallar (6) Dhoolia (or Dhundiya) malar; (7) Meerabaiki malar (8) Gound mallar (9) Nat malar (10) Sawani malar (11) Goudgiri malar and (12) Jayajayawanti malar.

The notes used in the several varieties are follows:-(the specimen songs will be set to notation and will be published).

(1) Shudha malar:—Rikhab Tivra, Madhyam, Pancham, and Dhaivat Tivra.

(2) Miyanki malar:—Rikhab Tivra, Gandhar Komal (Andolit), madhyam Shudh, Pancham, Dhaivat Tivra, Nikhads (both) Tivra Nikhad sparingly used. (Song खेलन आये होरी).

(3) Gound malar :—Rikhab Tivra, Gandhar Komal (Andolit) madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra, Nikhad both. (Song तोहे नैना).

(4) Nat Mallar—Rikhab Tivra, Gandhar Tivra, Madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra, Nikhads both (Song बनवारी बिन).

(5) Surdasi mallar :—Rikhab Tivra, Gandhar Komal, Madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra, Nikhads both. (Song घड़दे बीर).

(6) Sawani mallar—Rikhab Tivra, both Gandhars, Madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra, Nikhad Tivra. (Song गरजत घन).

(7) Dhooliya mallar :—Rikhab Tivra, Gandhars both, Madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra, Nikhad Both. (Song कौन कहे मेरी).

(8) Ramdasi mallar—Rikhab Tivra, both Gandhars, Madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra, both Nikhads. (Song मोजे तोरे ओढ़ना).

(9) Mirabaiki mallar—Rikab Tivra, both Gandhars, Madhyam, Pancham, both Dhaivats and both Nikhads. (song तुम घन से घन गरजे).

(10) Charjooki mallar—Rikhab Tivra, Gandhar Komal, Madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra, Nikhads both. (song. हमें बोली बोल).

(11) Gound Giri malar—Rikhab Tivra, both Gandhars, Madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra, both Nikhads. (Song. बरजो नहीं मानत).

(12) Jayajayawanti malar—Rikhab Tivra, Gandhar Komal, Madhyam, Pancham, Dhaivat Tivra and Nikhads both. (song. राम के नाम को ध्यान).

सभा में, ये सब प्रकार नजीरखां, रजाहुसैन आदि रामपुर के गायकों ने गाकर दिखाये थे।

प्र०—परन्तु नोटेशन द्वारा लिखकर उनको प्रकाशित करने की जो बात उन्होंने कही थी, उसके अनुसार उन्होंने किया क्या ?

उ०—नहीं; कारण बाद में वे स्वर्गवासी हो गये। परन्तु उनमें की अधिकांश चीजें उन्होंने मुझे सिखाई हैं, वे वैसी ही मैं तुमको बताऊंगा। मल्लार के एक दो प्रकार छोड़कर शेष चीजें मैंने सीखी थीं। मेरे गुरू रामपुर के नवाब साहेब ने भी मुझे वे सुनाई थीं। ये प्रकार अप्रसिद्ध होने के कारण अप्राप्य होते हैं, इस कारण उनकी प्रगति अथवा गायकी सुनने का अवसर अधिकतर नहीं आता। अप्रसिद्ध होने के कारण वह विवाद ग्रस्त भी होते हैं। बंगाल प्रान्त में मल्लार के अनेक प्रकार गाये जाते हैं, वहाँ कभी तुम्हें जाने का अवसर मिले तो वे तुम्हारे सुनने में अवश्य आयेंगे। पसंद आयें तो वहां के गायकों से तुम सीख लेना।

प्र०—परन्तु आपने परिषदों में बंगाली गायकों के मुख से सुने ही होंगे ?

उ०—परिषद प्रायः सर्दी के मौसम में होते हैं, उस समय गवैये लोग मल्लार कैसे गा सकते हैं ? वह मौसम उस प्रकार का नहीं होता।

प्र०—ठीक है, तो जो चीजें आपको आती हैं, उतनी तो हम सीख लें, बाकी और कहीं मिलेंगीं, वहां से ले लेंगे ?

उ०—ठीक है, मेरे स्नेही व गुरुबन्धु राजा नवाब अलीखां ने वहां के महम्मद अली के पास से सम्पादन करके अपने "मारफुन्नग़मात" ग्रन्थ में कुछ प्रकार प्रकाशित किये हैं। यद्यपि उनके व मेरे पठन में थोड़ा भेद है, परन्तु वैसा भेद तो रहता ही है।

प्र०—यह हमारे ध्यान में आगया। अच्छा तो अब प्रचलित स्वरूप का आधार कहिये ?

उ०—ठीक है, कहता हूं।

काफीमेलसमुत्पन्नः सूरमल्लार ईरितः।
निर्मितः सूरदासेनेत्याहुर्लक्ष्ये विचक्षणाः॥
आरोहे चावरोहेऽपि धगयोर्लोपनं मतम्।
समयोरेव संवादो व्यस्तत्वं मध्यमे शुभम्॥
दौर्बल्याद्धगयोरत्र सारंगांगस्य संभवः।
अतो मनाङ्मतः स्पर्शो धैवतस्य न बाधकः॥
मध्यमादृषभे पातः सोरटीं दर्शयेद्यदि।
निपयो रिपयोश्चात्र संगत्या तां निवारयेत्॥
निमपनिधपैश्चापि रागांगं विशदीभवेत्।
मध्यमान्त्यस्वरस्थायो मल्लारांगं प्रसूचयेत्॥

केचिद्गांधारकं प्राहुः कोमलमत्र रागके ।
नतदग्राह्यमित्यूचुर्लक्ष्यलक्षणकोविदाः ॥
मल्लारो मध्यमादिश्च रागेऽस्मिन्मिलतो भृशम् ।
इति लक्ष्यविदां तावन्मतं भाति सुसंगतम् ॥

लक्ष्यसंगीते ।

मल्लारस्यैव भेदोऽस्ति सूरमल्लार इत्यपि ।
षड्जांशकग्रहन्यासः संवदन्मध्यमस्वरः ॥
निर्मितः सूरदासेन मध्यमादिसरूपकः ।
सदा प्रच्छन्नगांधारधैवतश्चौडुवो मतः ॥
निषादमध्यमावत्र कोमलौ समुदीरितौ ।
ऋषभस्तीव्र आख्यातो वर्षतौ गीयते सदा ॥

संगीतसुधाकरे ।

मल्लारो यः सूरपूर्वोऽभिगीतो द्वावत्र प्रच्छादनीयौ धगौ स्तः ।
षड्जो वादी मध्यमः संप्रवादी रागाभिज्ञैर्गीयते प्रावृषीह ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

निसौ रिमौ पमौ निधौ पनी सनी पमौ रिसौ ।
सूरमल्लारको मांशः सारंगांगेन मंडितः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—यह राग भी अच्छी तरह हमारी समझ में आ गया। अब आगे का राग लीजिये ?

उ०—अब हम "मेघ" लें तो ठीक होगा। मेघ अपने यहां मुख्य छः रागों में से एक माना जाता है। परन्तु यह न समझना कि यह एक बिलकुल साधारण राग है। यह बड़े नामी-नामी गुणी लोगों को ही आता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इस राग में कोई विशेष क्लिष्टता है। अपने यहां ख्याल गायन का व्यवहार अधिक होने से व मेघ में ख्याल किसी को अधिक न आने के कारण, अपने यहां के गायक इस राग की ओर नहीं झुकते।

प्र०—इस राग की फरमाइश कोई कर बैठे तो वे क्या गाते हैं ?

उ०—जिनको इस राग के स्वर तथा वर्ज्यावर्ज्य नियम ज्ञात होते हैं, वे एकाध सादरा इस राग में शुरू करके तान मारने लगते हैं। वे यह कृत्य हमेशा ही करते हैं, ऐसा नहीं। जिनको यह राग मालुम नहीं होता, वह गौड़मल्लार अथवा मियां की मल्लार गाने लगते हैं।

प्र०—परन्तु लोग ऐसा क्यों चलने देते हैं,?

उ०—सुनने वालों को भी वह राग क्वचित ही ज्ञात होता है। वर्षाऋतु में मेघ-मल्लार गाते हैं, यह उनका सुना हुआ होता है इसलिये ऐसी फर्माइशों से अपनी भी थोड़ी बहुत प्रसिद्धि होगी, यह समझकर वे ऐसी फर्माइश करते हैं। जिन श्रोताओं को मेघ के लक्षण मालुम होते हैं, वे यह समझकर चुपचाप बैठे रहते हैं कि गायक को वह राग नहीं आता है। सभा में वाद-विवाद उपस्थित करके रंग में भंग करना सभ्य श्रोता का कार्य नहीं, ऐसा जानकर वे बोलते नहीं। गायक को उसकी कमजोरी बतलाने में उनका कोई लाभ नहीं है।

प्र०—हां, यह भी ठीक है। अच्छा तो मेघ को आगे चलने दीजिये ?

उ०—मेघ राग बहुमत से औडुव जाति का माना गया है, इसमें गन्धार व धैवत स्वर वर्ज्य हैं।

प्र०—तो फिर इसका स्वरूप सारङ्ग जैसा नहीं दिखाई देगा क्या ?

उ०—हां, वैसा अवश्य दिखाई देगा। कुछ गायक मेघ में कोमल गन्धार आन्दोलन से लेने को कहते हैं, और कुछ को तो मैंने कोमल गन्धार खुला हुआ लेते भी सुना है।

प्र०—अर्थात् 'मियां की मल्लार' राग में जैसा गन्धार लिया जाता है, वैसा ?

उ०—नहीं। वैसा लेना अच्छा दिखाई नहीं देगा। मियां की मल्लार के गन्धार के आन्दोलन सावकाश तथा डौलदार होते हैं। वैसे आन्दोलन इस राग में लेने पर राग हानि होगी, इसमें संशय नहीं।

प्र०—तो फिर यह गन्धार कैसे लिया जा सकेगा पंडित जी ?

उ०—वह रिषभ पर झटके इस प्रकार देते हैं कि वहां श्रोताओं को ऐसा भास होने लगता है मानो गायक कोमल गन्धार ले रहा है, परन्तु अपने यहां मेघ में गन्धार व धैवत वर्ज्य है, मेघ में रिषभ पर झटके देना हम भी मानलें; किन्तु उसका सारा वैचित्र्य मध्यम के देने में है।

प्र०—तो फिर रिषभ पर मध्यम के कण देना चाहिए, ऐसा ही कहा जाय न ?

उ०—हां, ऐसा समझकर तुम चलो तो कोई हर्ज नहीं। जब मेघ में धैवत छोड़ने का निश्चय किया, तो 'नि प' संगति उसमें होगी, ऐसा ही माना जाय न ?

पूर्वाङ्ग में मल्लार स्पष्ट दिखाने के लिये 'म रे' की मींड से गाना पड़ेगा तथा 'रि प' की संगति भी बीच-बीच में लेनी होगी। म रे संगति से 'सारङ्ग' दूर होगा, उसी प्रकार उस रिषभ पर मध्यम का 'कण' बताने से भी सारङ्ग कम होगा। 'निप' में 'नि' स्वर के आगे पंचम का कण आयेगा। मेघ में दोनों निषाद लेने का चलन दिखाई देता है। आरोह में तीव्र निषाद व अवरोह में कोमल निषाद का बहुधा प्रचार है। इस राग को गम्भीर प्रकृति का मानते हैं। इसमें तीनों सप्तक भली प्रकार चमकती रह सकती हैं। सा, म तथा प यह स्वर प्रबल हैं। षडज-पंचम का संवाद बहुमान्य है। समय वर्षाऋतु है। नियत काल मध्य रात्रि अथवा मध्य दिवस कहा जायगा।

प्र०—इस राग में गन्धार व धैवत वर्ज्य करते हैं, इससे शुद्धमल्लार, गौडमल्लार, मियां की मल्लार, सूरदासीमल्लार ये सारे राग स्वतः दूर होजाते हैं। कारण, इन सबमें धैवत प्रयुक्त होता है।

उ०—हां, यह तुमने ठीक कहा। इसके अतिरिक्त इन रागों के विषय में अन्य बातें तुमको विदित ही हैं।

प्र०—जब यह राग इतना सरल है, तो फिर अपने गायकों को भली प्रकार गाते क्यों नहीं बनता ?

उ०—प्रसिद्ध गायक उसे गाते हैं, यह मैंने कहा ही था। ख्याल गायकों को तानों में भिन्न-भिन्न 'कण' लगाने में कठिनाई होने के कारण वे उसे नहीं गाते, ऐसा कहा जा सकता है। इस राग में 'रे म रे सा, नि़ सा' इतने स्वर कहते ही यह दिखाई देने लगता है कि यह किसी मल्लार का स्वरूप है, सारंग नहीं। "सां, नि प' अथवा 'सां, नि प' म रे सा' यह भाग आते ही श्रोतागण ऐसा कहने लगते हैं कि यह प्रकार अन्य मल्लार से निराला ही है।

मेघ राग का अपने संस्कृत ग्रन्थकारों ने अपने ढंग से वर्णन किया है। प्रचार में उनका स्वरूप देखने से पहिले हम कुछ ग्रन्थमत देखलें:—

सङ्गीत रत्नाकर में जो 'दषविधि राग' कहे हैं, जैसे ग्रामराग, उपराग, राग आदि। उसमें के रागों में 'मुख्यतः मेघराग, शाङ्गदेव ने कहा है तथा उसके लक्षण ऐसे बताये हैं:-

षड्जे धैवतिकोद्भूतः षड्जतारसमस्वरः।
मेघरागो मंद्रहीनो ग्रहांशन्यासधैवतः ॥

इसमें आये हुए समस्त पारिभाषिक शब्द तुम जानते ही हो। 'धैवतिका' यह एक जाति का नाम है, यह भी तुम्हें मालुम ही है। इतने लक्षणों से मेघ गाना कठिन है यह स्पष्ट है।

प्र०—ओहो, रत्नाकर के स्वर कौन से थे, पहिले इसका ही निर्णय विवाद ग्रस्त है तो फिर राग गाने की बात तो दूर रही ?

उ०—हां, यह भी ठीक है। सङ्गीतदर्पण में शिवमत तथा सोमेश्वर के मतानुसार मेघराग दिया है, परन्तु राग लक्षण हनुमन्मत के अनुसार इस प्रकार हैं:—

मेघः पूर्णो धत्रयः स्यादुत्तरायतमूर्छनः।
विकृतो धैवतो ज्ञेयः शृङ्गाररसपूर्वकः ॥

ध्यानम्।

नीलोत्पलाभवपुरिंदुसमानवक्त्रः।
पीताम्बरस्तृषितचातकयाच्यमानः ॥
पीयूषमन्दहसितो घनमध्यवर्ती।

वीरेषु राजति युवा किल मेघरागः ॥
ध नि सा रि ग म प ध।

प्र०—दर्पण का शुद्ध मेल निश्चित हो वहां इस लक्षण का उपयोग होगा, ठीक है न ? इस ग्रन्थकार ने 'उत्तरायता' मूर्च्छना 'रत्नाकर' में से धैवतिका' पढ़कर तो नहीं लिखी है ? पुंडरीक ने मल्लार के लक्षण रत्नाकर में से ज्यों के त्यों उद्धृत कर लिये थे, ऐसा मालूम होता है।

उ०—परन्तु दामोदर पंडित ने 'विकृत धैवत' शृङ्गाररस, 'वीरेषुराजति' आदि के सम्बन्ध में जो कुछ मौलिक लिखा है सो रत्नाकर में कहाँ है ?

प्र०—हां पंडित जी ! वह मौलिक है। चित्रों में वर्षाऋतु का आभास मिलता है, उन रागों के नामों से भी ऐसी ही सूचना प्राप्त होती है।

उ०—छोड़ो, उस चर्चा में हम क्यों पड़ें ? आगे 'तरंगिणी' 'हृदय कौतुक' तथा 'हृदय प्रकाश' यह ग्रन्थ आते हैं। इन ग्रन्थों में मेघ मेल कैसा कहा है, यह तुमको भली प्रकार जानना चाहिए।

प्र०—हां, उन तीनों ग्रन्थों के मेल अपने हिन्दुस्थानी स्वरों में इस प्रकार होंगे:—

'सा रे ग म प नि॒ नि सां'

हृदयप्रकाश में, 'गधैवतनिषादास्तु यत्रतीव्रतराः स्मृताः तत्रमेले भवेन्मेघः' इ० ॥ ऐसा हृदयपंडित ने कहा है। परन्तु वास्तव में उसके भी मेघ के स्वर ये ही होते हैं।

उ०—हां यह तुमने ठीक कहा। हृदयकौतुक में मेघ के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

सरी पमौ पधनिसा रिसौ निधपमा ममौ।
रिसौ रिसौ निधपमाः पसौ मेघो हि षाडवः ॥

सा रि प म प ध नि सां रें सां नि ध प म म म रे सा नि ध प म प स।

प्र०—किन्तु इस स्वर पंक्ति में 'धैवत' को यदि कोमल निषाद माना जाय तो क्या यह स्पष्ट नहीं होगा कि यह गन्धार तथा धैवत वर्जित राग है ?

उ०—अवश्य होगा। यह मत अपने प्रचलित मेघरूप के लिये अच्छा आधार होगा। तो फिर 'प ध नि सां' अर्थात् 'प नि॒ नि सां' हुआ। किन्तु प्रत्यक्ष प्रचार में तीव्र निषाद आरोह में तथा कोमल निषाद अवरोह में मानकर चलना चाहिये। गायक भी ऐसा ही गाते होंगे। दोनों निषाद एक के बाद दूसरा लेकर गाना सुन्दर प्रतीत नहीं होगा, कारण इस राग में धैवत वर्ज्य है। मेघ राग मोटी जोरदार आवाज में यदि गाया जाय, तो सचमुच ही अति सुन्दर लगता है। इसमें गमकादिक अलंकार भली प्रकार शोभित होते हैं।

हृदयप्रकाश में मेघ का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

× × मेघः संपूर्ण उच्यते।

सा रि ग म प ध नि सां। रि स नि ध प म म, रि स। नि ध प म प सा।

प्र०—यह क्या ? इसमें तीव्र गन्धार सम्मिलित करके शेष सारे स्वर कौतुक के रख दिये हैं और 'सम्पूर्ण' राग कह दिया है। इसमें कुछ गलत तो नहीं है ?

उ०—'सरी पमौ' के स्थान पर 'सरी गमौ' ऐसा नहीं कहा जा सकता। कारण, इस ग्रन्थ में श्लोकों के द्वारा स्वर नहीं कहे गये और फिर राग सम्पूर्ण है, ऐसा स्पष्टरूप से बताया है।

प्र०—एक ही ग्रन्थकार ने ऐसे दो प्रकार क्यों लिखे ? यह बात समझ में नहीं आई। पता नहीं यह दूसरा मत उसने कहां से व कैसे लिया ?

उ०—यह मैं कैसे बता सका हूँ ? इन दोनों ग्रन्थों में भेद तो तुमने पहले भी देखा ही है, परन्तु तीव्र गन्धार लेकर गाया हुआ मेघ अभी तक मेरे सुनने में नहीं आया। ऐसा प्रकार बंगाल प्रान्त में होगा, ऐसा क्षेत्रमोहन स्वामी के मेघ के स्वरविस्तार से जान पड़ता है। वह विस्तार मैं अभी कहने ही वाला हूं। सङ्गीत पारिजात में अहोबल ने मेघ राग का वर्णन इस प्रकार दिया है:—

षड्जादिमूर्छनोपेतः षड्जत्रयसमन्वितः।
गनिहीनोऽपि मल्लारो वर्षासु सुखदायकः॥
यतो वर्षासु गेयोऽयं मेघ इत्यपि कीर्तितः॥
अकालरागगानेन जातदोषं हरत्ययम्।

अर्थ सरल ही है।

प्र०—पारिजात का थाट (शुद्ध) काफी है, तो षड्जमूर्छना अर्थात् वह काफी थाट ही होगा। ग्रहांशन्यास षड्ज ही है। मल्लार में 'सा' वादी मानने वाले अधिक हैं, ऐसा आपने कहा ही था। अब यह राग 'ग नि' रहित होगया अर्थात् 'सा रे म प ध सां' ये ही स्वर रहगये, यह अपना उत्तम प्रकार का 'शुद्धमल्लार' हुआ, ऐसा ग्रन्थकार भी कहते हैं। परन्तु इस प्रकार का मल्लार वर्षाऋतु में गाते हैं, इस कारण उसको 'मेघ मल्लार' कहते हैं; मैं नहीं समझता कि यह अपने को मान्य होगा। हम लोग शुद्ध मल्लार तथा मेघ दोनों को पृथक मानते हैं। ठीक है न ?

उ०—तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। हम शुद्ध मल्लार में 'ग, नि' स्वर वर्ज्य करते हैं, और मेघ में ग तथा ध वर्ज्य करते हैं। तो फिर अपने यहां ये राग सर्वथा भिन्न है, ऐसा ही मानना पड़ेगा। रामपुर के गायकों का भी यही मत है। किन्तु इस प्रकार के मतभेद तो दिखाई देंगे ही। पुंडरीक ने कहा ही है —

लक्ष्माणि रागेष्विति लक्षितानि क्रियंत उक्तानि विस्मृश्य दद्यात्।
न्यासग्रहांशेषु च पूर्णतायाम् श्रुतौ तथा षाडवऔडुवेऽपि॥
सर्वत्र देशीगतरागवृन्दे श्रीमद्धनूमान्नियमं न वव्रे॥

सारांश यह कि पहले के ग्रन्थोक्त लक्षणों में तथा प्रचार में लोकरुचि के अनुसार हर तरह का परिवर्तन होता ही है, इसमें कोई नई बात नहीं । प्रान्त-प्रान्त में भी एक ही राग का स्वरूप भिन्न होता है, यह तुमने देखा ही है।

पुण्डरीक ने अपने 'सद्रागचन्द्रोदय' में 'मल्लार' का वर्णन किया है, किन्तु मेघ का उल्लेख नहीं किया। रागमंजरी में भी उसने ऐसा ही किया है।

प्र०—तो फिर उसके समय में क्या मल्लार को ही मेघ कहते थे ?

उ०—इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। परन्तु तरंगिणी, हृदयप्रकाश तथा पारिजात ग्रन्थों में मेघ का नाम स्पष्ट दिया है।

प्र०—अच्छा, पुण्डरीक ने जो रागमाला ग्रन्थ उत्तर में रहकर लिखा है, उसमें क्या बात है ?

उ०—उसमें भी मल्लार है, किन्तु "मेघ" का नाम नहीं है। मल्लार का वर्णन मैंने पहले बताया ही था। रागमाला में उसने राग, रागिनी, पुत्र आदि की व्यवस्था का उल्लेख किया है, किन्तु उसमें मेघ का नाम नहीं दिखाई देता। उसके छः राग निम्नानुसार हैं:—

शुद्धभैरवहिंदोलौ देशिकारस्ततःपरम् ।
श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणश्च षट् ॥

इनमें नटनारायण के पुत्रों में उसने मल्लार बतलाया है। जैसे:—

मल्लारगौंडकेदाराः शंकराभरणस्ततः ।
बिहागडश्चेति सुता नटनारायणस्य च ॥

प्र०—उसका अपना तीसरा ही पन्थ होना चाहिये ! खैर आगे चलिये ?

उ०—स्वरमेलकलानिधि तथा रागविबोध ग्रन्थों में मल्लार का वर्णन है, यह तुमने देखा ही है। उस ग्रन्थ में "मेघ" नाम का पृथक राग नहीं बताया गया। उसी प्रकार चतुर्दण्डिप्रकाश तथा संगीतसारामृत में भी 'मेघराग' का उल्लेख नहीं है।

केवल राग लक्षण में 'मेघराग' का वर्णन है, जो इस प्रकार है:—

गायकप्रियमेलाच्च मेघरागः सुनामकः ।
संन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ॥
गवर्ज्यं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे तथैव च ॥

सा रि म प नि प नि प ध सं। सं ध नि प ध प म रि सा ।
(आंध्र) सा रि म प नि ध प सां। सां नि ध प म रे सा ।

प्र०—इस गायकप्रिय मेल के स्वर कैसे हैं ? पहिले दो अक्षर 'गा तथा य' होने के कारण यह मेल १२ वां ही जान पड़ता है ?

उ०—गायकप्रिय मेल के स्वर सा, री शुद्ध (दक्षिण के) ग (अन्तर) म, प, ध, (शुद्ध दक्षिण के) तथा नि शुद्ध।

प्र०—तो फिर 'रे॒ ग म प ध॒ ध सां' ऐसा हिन्दुस्तानी स्वरों का मेल बनाना पड़ेगा। यह मेघ निश्चित रूप से हमारा तो नहीं है ?

उ०—तुम्हारा कहना ठीक है। ऐसे प्रकार को अपने यहां मेघ कोई नहीं कहेगा। दक्षिण वालों को अपना मेघमल्लार अब भी विदित है या नहीं, यह नहीं कह सकता। परन्तु यह बिलकुल ठीक है कि वहां के किसी भी ग्रन्थ में वह नहीं दिखाई देता।

राधागोविन्दसंगीतसार में मेघ राग ऐसा कहा है:—

"मेघराग पार्वतीजी के मुखतें भयो, शिवजी के भाल नेत्र के तेज तें तप्त भयो जो त्रैलोक्य ताकी सीतलता के अरथ यह राग जलरूप है। याको सुनकर त्रैलोक्य सीतल भया।" आगे स्वरूप चित्र दिया है जिसकी हमें आवश्यकता नहीं। "शास्त्र में तो यह सात सुरन में गायो है। ध नि सा रि ग म प ध। यातें संपूर्ण है। याको आविरात समें गावनो घडी दोय तांई। मेघ राग की परीक्षा लिख्यते। जो आकास में बादल नहीं होय धूप पड़ती होय ता समें मेघ राग गाइये तो ता समें मेह बरसने लगे। तब मेघ राग सांचो जानिये। जंत्र, ग्रह अन्श न्यास षड्जमे।"

मेघ—संपूर्ण. (खड़ी लकीरों में पढ़िये)

ध (चढी)	नि	(चढी)
प	प	
ध (चढी)	रि	(चढी)
प	ग	(चढी)
ध (चढी)	म	(उतरी)
सा		

प्र०—यह स्वरूप हमारे लिये उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसा नहीं जान पड़ता ?

उ०—स्पष्ट है कि यह अपना मेघ का स्वरूप नहीं है। नादविनोदकार मेघ राग का वर्णन इस प्रकार करते हैं:—

नीलोत्पलाभवपुरिंदुसमानचैल ।
पीतांबरस्तृषितचातक यांचमान ॥
पीयूषमन्द हसितो घनमध्यवर्तिः ।
वीरेषु राजति युवा किल मेघरागः ॥

यह श्लोक उसने कल्पद्रुम से लिया होगा। मूल 'दर्पण' में है, वह मैंने अभी-अभी कहा ही है। आगे कहता है:—

गांधारांशग्रहंन्यासं क्वचिद्धैवत ईरितः ।
वर्षाकाले सदाज्ञेया मेघरागो घनद्धिति ॥

यह श्लोक तुम शुद्ध करके ले सकते हो। ग्रन्थकार ने ये सब व्यर्थ ही उद्धृत किये हैं।

आगे उसने स्वर विस्तार दिया है जो कि विचारणीय है। उस विस्तार में कहीं-कहीं, 'ध प' (ऊपर m) ऐसा उसने लिखा है। किन्तु स्पष्ट 'ध प' ऐसा नहीं लिखा, इस कारण उसके मनमें, 'नि प' (ऊपर ध) होगा, ऐसा जान पड़ता है। 'नि प' करने के लिये तंतकार धैवत पर अंगुली रखकर 'निषाद' दिखाते हैं। अब उसका दिया हुआ रागविस्तार देखिये:—

प म प रे सा नि़ सा रे रे ऽ (यहां झटका) प म रे रे रे, म प ध(m) प, सां नि़ सां, प म प, नि़ नि़ प, नि़ नि़ प, म प सां, नि़ सां, नि़ नि़ प, म प, सां, रें रें सां, रें सां, नि़ प म रे, रे रे, सा। अन्तरा। म म, प, प, सां, सां, रें रें सां, सां, पं मं पं रें रें सां, नि़ सां रें सां, नि़ नि़ प, म प नि़ सां, नि़ नि़ प, म प, नि़ सां रें सां, नि़ नि़ प, म प, सां, रें रें सां, नि़ सां रें रें, प म रे रे, म प, सां, नि़ प, नि़ प म, प म, रे रे, पं मं पं मं रें सां, नि़ सां, नि़ नि़ प, म प रे रे सा, रे रे, सा।

यह राग विस्तार उत्तम है। इसमें गन्धार धैवत वर्ज्य हैं, यह दीखता ही है। इसके आधार से तुमको भी यह राग भली प्रकार गाना आजायेगा। केवल म रे की मींड, 'नि प' की संगति, तार षड्ज चमकता हुआ रखने तथा 'रि प' की संगति की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। यह राग गाने में इतना कठिन नहीं। इसको सारंग से दूर रखने में सारी कुशलता है। अब राजा साहेब टागोर इस राग का विस्तार किस प्रकार करते हैं, वह देखोः—वे मेघ में धैवत वर्ज्य करने को कहते हैं।

नि़ सां नि़ सां सा रे म, म, म, म ग म, रे, रे प, प, प, प, ज़ि प, म, रे म, म, म, ग म, प म, रे रे म रे, सा, नि़, सा, रे, म ग म, रे, सा । अंतरा ।

नि़ सा, रे, म, म प धसां, निसां, सां सां सां नि नि सां रें, रें मं रें, पं मं गंमं, पं मं रें मं रें, सां प ज़ि प, म, रेम, गम, पमरे, मरे, सा, नि़ सा सा, रे म, गम, रे, सा ।

इस विस्तार में उन्होंने तीव्र गन्धार थोड़ा सा लिया है। उनका प्रकार मैंने नहीं सुना। कदाचित वह 'कण' के रूप में लिया होगा।

प्र०—किन्तु बंगाल प्रान्त में मेघ किस प्रकार गाते हैं, यह आपने अखिल भारतीय परिषद में सुना ही होगा ?

उ०—परिषद दिसम्बर जनवरी मास में भरती हैं, इस कारण यह राग सुनने में नहीं आया और यदि कहीं हुआ भी तो बंगाली सङ्गीत पर हंसने का हमें कोई अधिकार नहीं है, यह बात तो सदैव ध्यान में रखनी चाहिये। वह भी बहुत बड़ा प्रान्त है, वहां भी इस विषय के जानने वाले तथा बड़े-बड़े गायक हैं। यह बात केवल मैं ही कह रहा हूँ ऐसा नहीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि वहां उन लोगों के प्रति बहुत ही आदर होगा।

प्र०—नहीं, हम उनके प्रकार पर बिलकुल नहीं हंसते हैं। जैसा हमारा प्रकार हमको पसन्द है वैसा ही उनको उनका पसन्द होगा। सम्भव है शास्त्र की दृष्टि से उनका ही अधिक शुद्ध हो। आप अपना कथन आगे चलने दीजिये ?

उ०—मैं नहीं समझता कि मेघमल्लार के सम्बन्ध में अब और अधिक कुछ कहने योग्य शेष रहा हो। इस विषय पर निश्चित ग्रन्थ मत मैंने कहे ही हैं। अब एक-दो सरगम कहता हूँ, तत्पश्चात विस्तार का प्रचलित आधार देखेंगे।

सरगम—झपताल.

(म) रे	(म) रे	(म) रे	म	रे	सा	ऽ	(प) नि़	(ध) नि़	प़
×		२			०		३		
(नि) सा	सा	रे	ऽ	(सा) रे	(म) रे	प	म	रे	म
रे	सा	(म) रे	म	रे	सा	ऽ	(प) नि़	ऽ	प
(प) म	प	(प) सां	ऽ	सां	(प) नि	प	म	रे	सा

अन्तरा—

म	प	(सां)नि	ऽ	नि	सां	ऽ	सां	नि	सां
×		२			०		३		
(सां)नि	सां	रें	मं	रें	सां	सां	(प)नि	(ध)नि	प
(प)म	प	रें	रें	सां	(प)नि	(ध)नि	प	ऽ	प
(प)म	प	सां	ऽ	सां	(म)रे	म	रे	रे	सा

अथवा

म	प	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	नि	सां	सां
×		२			०		३		
नि	सां	रें	मं	रें	सां	ऽ	(प)नि	(ध)नि	प
(मं)रें	(मं)रें	(मं)रें	मं	रें	सां	ऽ	(प)नि	(ध)नि	प
म	प	सां	(प)नि	प	म	रे	(सा)रे	रे	सा

सरगम—चौताल.

(म)रे	(म)रे	ऽ	(म)रे	ऽ	प	म	रे	ऽ	रे	ऽ	सा
×		०		२		०		३		४	
(सा)नि	सा	ऽ	(म)रे	ऽ	म	रे	सा	ऽ	(प)नि	ऽ	प

सा	सा	ऽ	(म)रे	ऽ	म	म	प	ऽ	प	(प)नि॒	प
सां	सां	(प)नि॒	प	म	रे	प	म	रे	(सा)रे	सा	ऽ।

अन्तरा.

(प)म	प	ऽ	(प)नि॒	ऽ	प	(सां)नि	सां	ऽ	सां	ऽ	सां
×		०		२		०		३		४	
(सां)नि	सां	रें	मं	रें	सां	रें	सां	ऽ	(ध)नि॒	(ध)नि॒	प
(मं)रें	(मं)रें	(मं)रें	मं	रें	सां	नि	सां	रें	सां	(ध)नि॒	प
सां	सां	(प)नि॒	प	म	रे	प	म	रे	(सा)रे	सा	ऽ।

अब थोड़ा सा विस्तार करें:—

सा, नि॒ सा, रे (म)म रे, सा, नि॒ सा, रे प, (म)म रें, सा, नि॒ नि॒ प, म प, (ध)म रे, सा। सा, रे सा, (प)नि॒ (ध)नि॒ प, म प, सा, रे, म रे, नि॒ प, (प)सां, नि॒ प, म रे, सा। सा, रे (म)रे (म)प म रे, (प)नि॒ नि॒ प, म प, (प)सां, नि॒ प, (म)म (म)रे, रे रे, म रे, सा। (म)रे (म)रे, म रे सा, (प)नि॒ प, सा, नि॒ सा, रे, प (म)म रे, सा, नि॒ नि॒ प म रे, प म रे, म रे सा। (प)म प, नि॒ सा, प नि॒ सा, (म)रे, (म)रे, प, म रे, नि सां, (प)नि॒ प, (म)म नि॒ प, म रे, सां, (प)नि॒ प म रे, प, म रे, सा।

म प, (सां)नि॒ सां, सां रें सां, नि सां रें मं रें, सां, (प)नि॒ नि॒ प, (मं)रें (मं)रें मं रें सां, रें सां, (प)नि॒ (ध)नि॒ प म प, सां नि॒ प म रे, सा।

यह विस्तार केवल मार्गदर्शन करता है। इस प्रकार के छोटे-मोटे स्वरसमुदाय से विस्तार करना तुमको भी कठिन होगा, ऐसा मैं नहीं समझता।

षड्ज, मध्यम तथा पंचम इन तीन स्वरों की सहायता से इस राग में अनेक टुकड़े बन सकेंगे। जैसे, सा, ऩि सा, रे, सा, रे म रे, सा, ऩि सा, प़ ऩि सा, ऩि सा, रे म रे प म रे सा, ऩि ऩि प, म प म रे, म रे सा। सा रे, रे रे, म रे, प म रे, ऩि प म प ऩि प, सां, ऩि प, म प ऩि प म रे, म रे, सा।

प्र०—यह हमारी समझ में आ गया। तार सप्तक में भी ऐसे ही टुकड़े इस राग में लेने योग्य होने के कारण, आप जैसा कहते हैं वैसे टुकड़े बनाने हमको अवश्य आजायेंगे। "म रे, रे म रे, रे प, प म रे ऩि प," इन भागों को रट लें तो पर्याप्त है। रे रे, रे म रे, यह भी एक छोटा टुकड़ा मैं अच्छी तरह घोट लेने वाला हूँ। इस टुकड़े की सहायता से "सारङ्ग" दूर किया जा सकता है। कहना यह चाहिये कि ये सारे रहस्य इसमें हैं। अच्छा, तो प्रचलित स्वरूप ध्यान में रखने के लिये हमको शास्त्रीय श्लोक बताइये ?

उ०—हां, कहता हूँ। सुनोः—

हरप्रियाव्हये मेले मेघमल्लारनामकः।
आरोहेऽप्यवरोहे च धगवर्ज्यं तथौडुवम्॥
षड्जः सुनिश्चितो वादी संवादी पंचमः स्वरः।
गानं तस्य समादिष्टं वर्षासु सुखदायकम्॥
मातांतरे क्वचिद्दृष्टं गांधारस्वरगोपनम्।
आंदोलनं सुविख्यातमृषभे रक्तिदायकम्॥
मध्यमादृषभे पातो भवेन्मल्लारसूचकः।
रिपयो र्निपयोश्चापि संगतिर्मेघसूचिका॥
सरदास्याख्यमल्लारे विलोमे धैवतो मतः।
मीयांमल्लारके तत्र मृदुगांधारयोजनम्॥
शुद्धपूर्वकमल्लारे गनिवर्ज्यं समीरितम्।
धगग्राही पुनर्गौडो नित्यं लक्ष्ये भिदां भजेत्।
कानडागौडसंयोगान्मियांमल्लारको भवेत्।
मध्यमादिस्तथागौडो मिलतः सरनामके॥
गंभीरप्रकृतिर्मेघो विलंबितयोद्धृतः।
उत्तालस्वरसंगीतो वर्षासु जनयेत्सुखम्॥

लक्ष्यसंगीते॥

मल्लारमेले यदिकोमलो निः क्वचिच्च तीव्रोऽपि संप्रयुक्तः ॥
षड्जांशमेवेह वदन्ति सर्वे तं मेघमल्लारमिति स्वरज्ञाः ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

मेघमल्लाररागोऽथ षड्जांशः षाडवः स्मृतः ।
पंचमस्वरसंवादी नित्यं गांधारवर्जितः ॥
गंभीरप्रकृतिः प्रेयान्विलंबितलयाश्रयः ।
आंदोलनं स्यादृषभे तदा रक्तिप्रदायकम् ॥
धैवतर्षभकौ तीव्रौ मध्यमः कोमलो मतः ।
उभौ निषादौ वर्षासु गीयते सर्वदैव हि ॥

सुधाकरे ।

सुध मलारके मेल में दोऊ निखाद लगात ।
समवादी संवादितें मेघमल्लार कहात ॥

चन्द्रिकासार ।

रिमौ रिसौ निपौ निसौ रिमौ रिपौ रिमौ रिसौ ।
ऋषभांदोलितो मेघः सपसंवादमंडितः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

लक्ष्यसङ्गीत तथा अभिनवरागमंजरी इस मत के अपने मुख्य आधार हैं, यह मैं पहले कह ही चुका हूँ । अन्य जितने मत इन ग्रन्थों से मेल खायेंगे वे तो अपने को ग्राह्य होंगे ही, बाकी के मतांतर हैं, ऐसा मानकर चलें । देशभेद से रागभेद रहेगा ही । उन्हें दोषयुक्त मानने का कोई कारण नहीं ।

प्र०—आपका यह कथन न्याय संगत है । मैं भी ऐसा ही मानता आया हूं । अच्छा तो, यह मेघमल्लार भली प्रकार हमारी समझ में आगया । अब कौनसा राग लिया जाय ?

उ०—अब दो शब्द रामदासी मल्लार के सम्बन्ध में कहूँगा । रामदासी मल्लार के उत्पादक, बाबा रामदास नामक जो गायक अकबर के दरबार में थे वे ही हैं, ऐसा माना जाता है । अभी अभी इस विषय में थोड़ा सा कहा जा चुका है । उसके अतिरिक्त अधिक जानकारी मिलने का साधन नहीं, यही कहना पड़ेगा । आइने अकबरी में बाबा रामदास को ग्वालियर का मूल निवासी बताया है, किन्तु ग्वालियर में आज उनका नाम भी कोई नहीं जानता । यह रामदास क्या गाते थे तथा किनके पास सीखे, इस सम्बन्ध में जानकारी बिलकुल नहीं मिल सकती । तो भी यह ध्रुवपद गाते थे, ऐसा समझते हैं । रामदासी मल्लार में तथा सूरदासी मल्लार में ख्याल अवश्य हैं, किन्तु वे

किसने रचे, यह बताना सम्भव नहीं। कृष्णलीला पर पद रचना करने वाले सूरदास ये ही हों तो इन सूरदास ने अनेक छन्दों में गीतों का निर्माण किया है, यह बात प्रसिद्ध ही है। किन्तु कोई ऐसा प्रश्न कर सकता है कि क्या तानसेन के समय में ख्याल अथवा उसके सदृश्य गीत गाने का प्रचार था? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न होगा। सूरदास के पिता रामदास को भी इस प्रकार के छन्दों के गीत आते होंगे, ऐसा भी कोई कहे तो गलत न होगा।

अस्तु, तुम्हें अभी इस उलझन में पड़ने की आवश्यकता नहीं। यह गायकों के घरानों का इतिहास सम्बन्धी प्रश्न है। यह विषय विद्वान लोगों के लिये स्वतन्त्र रूप से विचार करने योग्य है। हम अभी राग-रागिनी का इतिहास देखते हैं। ग्रन्थकारों ने पिछले चार-पांच सौ वर्षों में एक एक राग का किस प्रकार वर्णन किया है तथा उसको आज हमारे गायक किस प्रकार गा रहे हैं, यह तथ्य अभी हम देख रहे हैं। इसी सिलसिले में जहां भी गायकों के घरानों की जानकारी मेरी समझ में आई, वह मैंने तुमको कह सुनाई। किन्तु केवल इतनी जानकारी से गायकों के घरानों का सम्पूर्ण इतिहास तुम्हारी समझ में आगया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का इतिहास प्राप्त करने के कुछ साधन मात्र मैं बीच-बीच में कह चुका हूँ। आगे-पीछे अवकाश मिलने पर गायकों के घरानों का विश्वसनीय इतिहास लिखने का महत्वपूर्ण कार्य तुम करोगे तो वह अत्यन्त उपयोगी होगा। इस कार्य में पाश्चात्य पंडितों का अनुकरण करना सर्वथा उचित होगा। वहां के गायक-नायकों के चरित्र अत्युत्तम प्रकार से लिखे हुए दृष्टिगोचर होंगे। वैसा ही अपने यहां होने की आवश्यकता है। इस कार्य में मुसलमानी शासनकाल के उर्दू तथा पर्शियन ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी होंगे। एक तो यह बात है कि मुझे उन दोनों भाषाओं का ज्ञान नहीं है, और थोड़ी बहुत वह आती भी हैं तो अन्य साधनों के अभाव के कारण यह कार्य मेरे द्वारा नहीं हो सका।

रामदासी मल्लार में दोनों गन्धार तथा दोनों निषाद का प्रयोग होता है। इस महत्वपूर्ण कारण से यह राग अन्य प्रकारों से पृथक होगा, ठीक है न?

प्र०—तीव्र गन्धार बहुधा आरोह में रहता है, ऐसा अपना एक साधारण नियम है, इस राग के लिये भी वही नियम लागू होगा न?

उ०—हां, रामदासी में तीव्र ग तीव्र नि आरोह में ही होते हैं। कोमल गन्धार

म   म
"ग॒ म रे सा' इस प्रकार लेते हैं। ग॒, रे सा' ऐसा नहीं आता।

प्र०—तो फिर यही कहिये कि उसे कानड़ा अङ्ग से लेते हैं। किन्तु ऐसा मालुम होता है कि ऊपर 'नि प' सङ्गति होगी?

उ०—हां, यह तुम अच्छी तरह समझ गये हो। इस राग में धैवत का भी प्रयोग उचित है तथा वह आरोह में भी हो सकता है।

प्र०—तो फिर गौडमल्लार से इसका मिश्रण होने की संभावना है। किन्तु नहीं, ऐसा होने की संभावना नहीं। गौड़ में दोनों गन्धार एक ही प्रकार के नहीं हैं। तीव्र गन्धार का प्रकार कोमल गन्धार के प्रकार से सर्वथा भिन्न है और इस रामदासी मल्लार में दोनों गन्धार आते हैं तब यह राग अवश्य ही पृथक होगा, इसमें सन्देह नहीं। हम जो मल्लार अब तक सीखे हैं, उनसे यह पृथक होगा, यह ठीक है ?

उ०—तुम अच्छी तरह समझ गये। इस रामदासी में 'म रे' 'रे प' 'पमनिप' ऐसे स्वर समुदाय ध्यान में रखने योग्य होते हैं।

प्र०—और वह तीव्र गन्धार कैसा आता है ?

उ०—वह कभी-कभी 'मगम' 'पमगम, नि प' इस प्रकार से आता है। कभी-कभी तो वह एकाध निराले वाक्य में होता है। जैसे, 'सा, नि सा, रे ग, प म प ग, म' इसको अमुक प्रकार से ही लगाना चाहिये यह कहना आसान नहीं। 'सा, म, मग प, म' ऐसा भी आयेगा और वह बुरा नहीं दीखेगा। इस राग में वादी मध्यम तथा षड्ज संवादी है।

प्र०—यह ठीक ही है। मध्यम स्वर आपके कहे हुए समुदाय में अलग दीखता ही था। तीव्र गन्धार उसकी आड़ हो गया, ऐसा हमको जान पड़ा। यदि वास्तव में ऐसा हुआ तो शोभा ही देगा ?

उ०—यह मर्म तुम्हारे ध्यान में बहुत अच्छा आया। रामदासी मल्लार सभी गायकों को नहीं आता है। इसलिये सूरदासी मल्लार की अपेक्षा अधिक गायक अप्रसिद्ध राग की ओर झुकते हैं। कुछ प्रसिद्ध गायकों को वह राग अवश्य आता है। इस मल्लार की ऋतु भी वर्षा ही है। यह राग नवीन होने के कारण प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में नहीं दिखाई देता। रामदासी मल्लार में गौड तथा शहाना इन दो रागों का योग है, ऐसा मुझे एक गायक का कथन याद आता है। उसका कहना उपहास करने योग्य नहीं। वह अच्छा गुणी था।

प्र०—शहाना के स्वरूप से इसका कैसे मेल बैठेगा, पंडितजी ? 'नि ध नि प' 'म प ग म' क्या ऐसे कुछ प्रकार रामदासी में होते हैं ? अथवा, 'ध म प' 'सां नि प' क्या इस प्रकार होगा ?

उ०—वह ऐसा ठीक है। परन्तु गौंड तथा शहाना का योग कैसे व कहां होता है, यह उन गायकों ने नहीं बताया। लेकिन रामदासी के एक गीत में तो 'प ध नि, सां, सां, रें सां, नि प' ऐसा भी प्रयोग मैंने सुना है, यह शहाना में नहीं चलेगा। खैर, उन गायकों ने जो बताया वही मैंने कहा। एक अर्थ में इस प्रकार के संकीर्ण स्वरूप के अवयवीभूत भाग की शोध करना सरल नहीं। किन्तु यह मत कदाचित् एक कोमल ग लेने वालों का होगा।

प्र०—किन्तु ऐसे राग में गायक लोग अपनी फिरत कैसे करते होंगे, पंडितजी ?

उ०—इस सम्बन्ध में मैंने नियम तुमको पहले बताये ही थे। गायक लोग मुख्य रागों की फिरत लेते हैं तथा कहीं-कहीं विशिष्ट भाग लाकर रागभेद दिखाने का प्रयत्न करते हैं। अब रामदासी मल्लार ही देखो न। इसमें वादी मध्यम है तथा वह मुक्त भी हो सकता है। "नि़ सा, रे ग म, गम, पम, नि॒ प, ग म, प ग॒ म रे प, ग॒ म, रे सा" यह भाग रागवाचक है, इतना जान लेने पर, 'रे प, म प, नि॒ ध नि॒ प, म प ग॒ म, सां, नि रें सां, नि॒ प, मप, ग॒म' इस भाग को खूबी के साथ जोड़ दिया जाय तो क्या वह एक नया मल्लार नहीं होगा? अब, 'नि॒ प, ग॒ म' से एकदम तीव्र गन्धार का टुकड़ा जोड़ना कदाचित् कठिन पड़ेगा, इसलिये उस मध्यम को, वहां खुला छोड़कर "सा ग, ग म, म नि॒ प, पगम, पग॒म, रे सा" ऐसा कुछ करना पड़ेगा। यह सब उतने कठिन नहीं जितने कि दिखाई देते हैं। कसी हुई आवाज, सावधान चित्त, लयदारी आत्मविश्वास, रागावयव का पूर्णज्ञान, उसकी युक्तायुक्त योजना का ज्ञान, इतनी बातें हों तो सब कुछ सध जाता है। भूलने का भय, राग नियम सम्बन्धी संशयवृत्ति, अपना गला काबू में नहीं, ये दोष हों तो उस गायक को सभा में गाना ही छोड़ देना चाहिये। परन्तु गायकों के गुणदोष तुमको मैंने बताये ही हैं। सभा में निर्भयता पूर्वक गाने वाला सफलता से गाकर ही आता है। सभा में गाते समय गायकों की अनेक भूलें हमको प्रायः दृष्टिगोचर होती हैं, किन्तु प्रसिद्धि प्राप्त होने के कारण, उनके दोष भी कभी-कभी गुण में समाविष्ट हो जाते हैं। अपने रागों को नया-नया रंग देने का श्रेय उनको मिलता है, किन्तु प्रत्येक राग के गुण धर्म को भली प्रकार समझकर गाना अधिक श्रेष्ठ है, इस बात से कोई भी इन्कार नहीं करेगा। रामदासी का आरोहावरोह स्वरूप इस प्रकार होगा। सा, ग॒ म रे सा, नि़ सा रे, गम, प, मप, ग॒म, नि सां नि॒ ध नि॒ प, ग॒ म, म रे, सा। पकड़ 'साम, गम, पग॒, म, नि॒प, म रे प, ग॒, म रे, सा।

प्र०—इस राग का चलन आप हमको यदि स्वरों के द्वारा बतायें तो अधिक उत्तम होगा?

उ०—ठीक है सुनोः—

प म, ग॒ म, म रे, सा, रे, सा, नि़ सा, रे ग, म, प म प ग॒, म, नि॒ प, ग॒ म, प ग॒, म रे सा। सा, नि़ सा, ग॒ म, रे, सा, नि़ सा रे ग, म, रे ग म, पम, नि॒ ध नि॒ प, मप, म, पग॒, म रे सा। सा म, म, ग म, पम, ग म प ग॒ म, म रे प, नि॒ प, म रे, सा रे ग म, पग॒ म, रे सा। म प, नि॒ प, नि सां, सां, निसां रेंसां, नि॒ ध नि॒ प, म, ग, म, पम, नि॒ प, म रे सा, ग॒म, म रे, प, प म, ग म, रे, सा।

प ध, नि सां, सां, नि रें सां, नि सां, नि प, गम, मप, गम, प म नि प, ग म, प ग, म रे सा। सा म, म, गम, मगप, प म नि प, प ग म, रे सा, नि सा, नि ध नि प, सा, नि सा, ग म, रे प, म ग म, रे म, रे सा।

म प, प, नि सां, सां, नि ध नि प, प ग म रे सा, ग म, रे प, मगम, रे, म रे, सा नि सा।

यह स्वर विस्तार तुमको प्रत्यक्ष गाने में अच्छी तरह नहीं सधेगा, इसलिये मैंने तुम्हारा ध्यान उसके कुछ भागों की ओर आकर्षित किया है। 'प ग म रे प नि प म रे सा' ऐसे स्वर आये कि उनको बोलते समय अवश्य पसोपेश में पड़ जाओगे, वहां 'प ग म', यहां ठहरना तथा मग म रे प, नि प म रे, सा,' ऐसा बोलना। 'सा म, म, गम, पमगम,' यह सरल ही है, मध्यम पर यह भाग छोड़ देना। 'रे प, नि प, म म रे' यह भाग मल्लार में सम्मिलित करने का है, यह बातें याद रखने योग्य हैं।

प्र०—इस राग में एकाध सरगम भी यदि आप कह दें तो कौन से स्वर पर कितना ठहरना और कौन सी सङ्गति कैसे लेना, यह रहस्य भली प्रकार हमारे ध्यान में आ जायगा ?

उ०—कहता हूँ। यह एक छोटी सी सरगम देखो:—

सरगम—झपताल

प	ग	म ग	म	रे	सा रे	सा	नि	सा	सा
×		२			०		३		
नि	सा	ग रे	ग	री ग	म	प	म प	म ग	म
प	म	म नि	प	सां	प नि	प	म प	प ग	म
प नि	प	म प	म ग	म	रे	सा	रे	रे	सा।

अन्तरा.

(प)म प	(सां)नि सां ऽ	सां ऽ	रें नि सां
×	२	०	३
(सां)नि सां	रें मं रें	सां ऽ	(प)नि॒ (प)नि॒ प
प म	प (म)ग॒ म	प नि	सां ऽ सां
सां (प)नि॒	प (म)ग॒ म	प (म)ग॒	म रे सा।

सरगम—त्रिताल.

प (म)ग॒ म रे	(सा)रे सा नि॒ सा	(सा)नि़ सा रे (ग)म	म प म ग
म रे प म	(म)नि॒ प सां नि॒	प म प ग॒	म रे सा सा।

अन्तरा.

प ध नि सां	ऽ नि सां सां	नि सां रें नि	सां ऽ नि॒ प
म म प (म)ग॒	म म प नि॒	प (प)सां नि॒ प	(म)ग॒ म रे सा।

परन्तु मित्र ! अपने अर्वाचीन ग्रन्थकार यह रामदासी मल्लार किस प्रकार गाते हैं, यह भी देखते जाओ न ?

प्र०—हां, यह भी अवश्य देखना ही है ?

उ०—राधागोविन्द सङ्गीतसार में ऐसा कहा है:—

"शिवजीनें उन रागनमेंसों विभाग करिवेको । अपने मुखसों अडानासंकीर्ण मल्लार गाईके वाको नायक रामदास की मल्लार नाम कीनो ।'

प्र०—जान पड़ता है, यह रामदास नायक था ?

उ०—वह तानसेन से कुछ नीची श्रेणी का गायक था, ऐसा आइने अकबरी में कहा है। तानसेन भी नायक नहीं माना गया, यह भी मैंने कहा था। किन्तु प्रतापसिंह ने उसे अपना एक उच्चकोटि का हिन्दू गायक होने के कारण नायक कहा, तो भी उसमें विशेष अनौचित्य नहीं जान पड़ता। आजकल अपने यहां आचार्य और नायक थोड़े हैं क्या ? उनकी परीक्षा किसने ली है, तथा उनको आचार्यत्व एवं नायकत्व किन्होंने प्रदान किया है ? हमारे वर्तमान आचार्यों में से तथा नायकों में से कुछ तो ऐसे निकलेंगे कि जिनको संस्कृत अथवा अंग्रेजी लिखना पढ़ना तो दूर रहा, अपनी भाषा में भी लिखने-पढ़ने में कठिनाई होती है, किन्तु हमें लोगों की आलोचना नहीं करनी है। रामदास तथा सूरदास अपने वर्तमान आचार्य तथा नायकों जैसे नहीं थे, यह स्पष्ट है। सूरदास की कविता उत्तर भारत में कौन नहीं जानता ? ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है। उनको यदि नायक कहा गया है, तो भी शोभनीय ही है। "नायक" किसको कहते हैं, यह मैंने तुम्हें पहिले बताया ही है। अस्तु,आगे चलें।

रामदासी मल्लार का चित्र हम छोड़ दें। "शास्त्र में तो यह सात सुरन में गायो है। प ध नि सा नि ध प म ग रे सा।-या तें सम्पूर्ण है। याको वर्षाऋतु में गावनों। यह तो याको वखत है। रात्रि में चाहो जब गाओ।"

जंत्र-(खड़ी लकीरों में पढ़िये)

नायक रामदास की मल्हार-संपूर्ण

नि॒	म	ग॒	प	म
री	ग॒	प	म	री
सा	म	म	ध	म
		प	म	री
		म	प	सा
		ग॒	ग॒	

इस ग्रन्थ में एक ही कोमल गन्धार बताया गया है, किन्तु स्वरूप मल्लार का अवश्य है।

इस राग को सब गुणी लोग सम्पूर्ण मानते हैं, यह तुम्हारे ध्यान में आ ही गया होगा।

नाद्विनोदकार रामदासी का विस्तार इस प्रकार करते हैं:—

m m
प म प, ध प ग ग, रे सा,रे रे सा, सा सा रे, म प ध प,ग ग रे सा,रे रे सा,प, म प,

नि सां,रें सां,निसां, ध प, म प ग ग रे सा रे सा, नि प, म प,सा,रे सा,नि सा, ध प म प ध

प ग ग रे सा, रे रे सा। म प नि सां, रें सां, नि सां, ध प म म प ग म, ध प, ग ग रे सा। रे रे म प रे, सा, नि सा, प म प, सां, नि सां, रें प म प सां, नि सां रें सां, नि प म प, रें रें सां, नि प, म प ग ग रे सा, रे रे, प प म, ध प, ग ग रे, सा, रे रे सा।

प्र०—अब यह सब हमारे ध्यान में आगया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विस्तार का सार जैसा कि हम कहते आये हैं इस टुकड़े में है। "प" आते ही उसके बाद "मप," लाना, फिर "ग" आया कि "म रे, सा," यह टुकड़ा लाना, उसी तरह "ध प" फिर "म प" तथा "नि प" इसके पश्चात् "म प" यह स्वर लाना। सारा वैचित्र्य मध्यम को आगे लाने में तथा "म रे" तथा "नि प" इस सङ्गति में है। ठीक है न?

उ०—यह रहस्य तुम ठीक समझ गये। "ध" आरोह में हुआ तो "धनिप" करना चाहिए। नहीं तो केवल "ध प" ऐसा रहे तो भी कोई हर्ज नहीं।

प्र०—किन्तु इस प्रकार में भी तीव्र गन्धार नहीं है?

उ०—नहीं। वैसा प्रकार मेरे रामपुर के गुरू वजीर खां तथा छमन साहेब एवं उसी प्रकार जयपुर के गुरू मोहम्मद अली खां ने मुझे सिखाया। वे गीत भी मैं तुम्हें आगे बताने वाला हूँ। और विस्तार तथा सरगम तो उन गीतों के अनुसार तुमको पहिले बता ही चुका हूं, इसमें मेरा मनगढन्त कुछ नहीं है। यदि कोई कहें कि रामदासी में तीव्र ग हम वर्जित करते हैं तो हमें उनको कुछ भी भला बुरा नहीं कहना है। उनके इस कथन को "सङ्गीतसार" का आधार प्राप्त है, ऐसा दिखता ही है। इसके विरुद्ध हम जो दोनों गन्धार लेते हैं, उनको तो प्रचार के अतिरिक्त अन्य कोई आधार ही नहीं है, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। तुमको यह दोनों ही मत अपने संग्रह में रखने चाहिए। तीव्र गन्धार से एक प्रकार का वैचित्र्य अवश्य आयेगा।

प्र०—यह ठीक है। हम इन दोनों मतों को ध्यान में रखेंगे। अब हमको प्रचलित रामदासी का रूप समझने के लिये श्लोकों का आधार बताइये?

उ०—हां, अब वैसा ही करता हूँ:—

हरप्रियाह्वये मेले जातो रागः सुनामकः ।
रामदासीति विख्यातः संपूर्णो लोकविश्रुतः ॥
मध्यमः संमतो वादी संवादी षड्ज ईरितः ।
गानं तस्य समीचीनं वर्षाकाले सुनिश्चितम् ॥
गांधारस्तीव्र आरोहेऽवरोहे कोमलाभिधः ।
अप्रसिद्धमिदं रूपं नूनं रक्तिप्रदायकम् ॥
द्विगांधारप्रयोगात्स्यादन्यमल्लारभित्स्फुटा ।
रिमयोर्निपयोश्चापि संगतिर्भूरिरक्तिदा ॥
सहानागौंडसंयोगाद्रूपमेतद्विनिर्मितम् ।
धीमता रामदासेनेत्याहुः केचिद्विपश्चितः ॥
मतांतरे तु मृदुग एक एवात्र संमतः ।
लक्ष्यमार्गमनुल्लंघ्य कुर्यात्तत्र स्वनिर्णयम् ॥

प्र०—अब हमको रामदासी मल्लार की पर्याप्त कल्पना हो गई है। इसमें एक मत से दोनों गन्धार लेने चाहिए तथा दूसरे मत से एक कोमल गन्धार ही लेना चाहिए, यह बात हम याद रखेंगे। हम आपके मतानुसार ही चलने वाले हैं। अर्थात् दोनों गन्धार वाला मत हम स्वीकार करते हैं। उसके योग से हमारा राग अन्य रागों से सर्वथा भिन्न रहेगा, और वह स्वरूप हमको आता भी है। अन्य स्थानों पर कोमल गन्धार लेने वाले स्वरूप को यदि किसी ने गाया तो उनका गलत और हमारा सही, ऐसा विवाद हम नहीं करेंगे, क्योंकि अर्वाचीन ग्रन्थों में यद्यपि इसका विशेष विवरण नहीं है तथापि उनके कथन को थोड़ा बहुत आधार अवश्य प्राप्त है। हां, तो अब कौनसा राग लेना चाहिए ?

उ०—मेरी समझ से साधारण अप्रसिद्ध रागों में से 'नट मल्लार' एक रह गया है, उसे ही ले लें।

यह राग बोलचाल में 'नट तथा मल्लार' से मिलकर बना है, ऐसा दीखता ही है। यह दोनों राग मैंने प्रथक-प्रथक रूप से पहिले कहे ही हैं। इन दोनों का योग करके 'नटमल्लार' अपने गायकों ने तैयार किया। इसका वर्णन भी एक स्थान पर किया हुआ मिलता है 'नटमल्लारयोरंशान्नटमल्लारिका भवेत्' यह वाक्य सङ्गीतसार संग्रह नामक राजा टागौर साहेब के ग्रन्थ में हमें मिलता है, उसके अनुसार 'मल्लारिर्नटयुगपि स धांशांतादिरगनिश्च संगवभाः' यह 'राग विबोध' का लक्षण अभी अभी मैंने तुमको बताया ही था, परन्तु यह स्पष्ट स्वीकार करना पड़ेगा कि इस प्रकार के मिश्र राग के सर्वाङ्ग परिपूर्ण लक्षण कहना आसान नहीं। राग विबोधकार ने प्रत्यक्ष उदाहरण नटमल्लार का दिया है, किन्तु उसमें उसने विभिन्न गमकों के चिन्ह दिये हैं। वह तुम्हारी समझ में नहीं आयेंगे। और फिर आज अपने गायक जो नटमल्लार गाते हैं वह उस प्रकार का नहीं है इसलिये वह उदाहरण यहां नहीं दूंगा। उन्हें तुम राग विबोध ग्रन्थ में ही देख लेना।

यह राग अपने अन्य संस्कृत ग्रन्थकारों ने छोड़ दिया है, और एक अर्थ में उन्होंने यह उचित ही किया है। नट तथा मल्लार यह दोनों राग मिलकर 'नट मल्लार' बनता है यह लक्षण कहने से अथवा एकाध चित्र बताने से ही विद्यार्थियों का क्या समाधान हो सकेगा, इस प्रकार के राग में चीज पर से चीज पहिचानने के नियम का श्रोतागण अवलम्बन करेंगे, यह बात उस ग्रन्थकार को मालुम ही थी।

प्र०—चीज पर से चीज पहिचानने के नियम से क्या मतलब ?

उ०—इसमें कोई विशेष गूढ़ रहस्य नहीं है। जब कोई राग लक्षणों से स्पष्ट पहिचानने में नहीं आता तो श्रोतागण यह ढूंढने लगते हैं कि उनको स्वयं जो चीजें आती हैं, उनमें से कौन सी चीज से यह चीज मिलती है, इसी को 'चीज पर से चीज' पहिचानने का नियम कहते हैं।

प्र०—किन्तु यदि उन्हें उस प्रकार की चीज याद न हो तो ?

उ०—ऐसा क्वचित ही होता है। गायक द्वारा गाई हुई चीज के समान हूबहू चीज यदि उनको नहीं आती है, तो भी उसका कुछ भाग तो उनको आता ही होगा। उसके अनुमान से वह यह निश्चय कर सकेंगे कि यह अमुक राग जैसा दिखाई देता है। यही समाधानकारक मार्ग है, ऐसा तो मैं नहीं कहूँगा; किन्तु मैंने यह केवल श्रोताओं की प्रवृत्ति बताई है। हम अभी प्राचीन मिश्र रागों के विषय में बोल रहे हैं। अपने यहां कुछ गायक व्यर्थ ही अयोग्य तथा विसंगत मिश्रणों के द्वारा नये-नये रागों का जो निर्माण करते हैं, उनके सम्बन्ध में हमें कुछ नहीं कहना है।

प्र०—किन्तु नये राग तैयार करना शास्त्र विरुद्ध नहीं, यह बात भी तो आपने कही थी न ?

उ०—हां, यह तो मैं अब भी कहता हूं। परन्तु नये मिश्रण करने वाले इन लोगों को शास्त्रों की गन्ध भी नहीं है और वे अपने तैयार किये हुए मिश्रणों के नियम भी नहीं जानते। यदि कोई नया राग तैयार किया तो उसका आरोहावरोह स्वरूप उसमें मिश्र होने वाले राग, उनके प्रमाण, उनके स्थल, उनके सुन्दर भाग. वादी-सम्वादी, वर्ज्यावर्ज्य नियम इन सबका उत्तम ज्ञान होना आवश्यक नहीं है क्या ?

प्र०—आपका यह कथन बिल्कुल ठीक है। नहीं तो उनके प्रकारों को "बिगड़ी हुई बागेसरी, बिगड़ी हुई रामकली" इस प्रकार की श्रेणी में लेना पड़ेगा। अच्छा, अब नटमल्लार के सम्बन्ध में आगे चलिये ?

उ०—रामपुर की ओर नट मल्लार में, मल्लार तथा थोड़ा सा छायानट का भाग लेते हैं।

प्र०—छायानट का पूर्वाङ्ग अथवा उत्तराङ्ग ?

उ०—उत्तराङ्ग में छायानट का ऐसा मुख्य भाग क्वचित ही है, वह तो पूर्वाङ्गवादी राग है।

प्र०—तो फिर 'परे, ग म प मं ग म रे, सा रे सा' यह भाग मल्लार में लाना चाहिये ?

उ०—नहीं, नहीं, इतनी बड़ी गुञ्जाइश उसमें निकाली जायगी तो मल्लार के लिये जगह ही बाकी नहीं बचेगी। परे, इस प्रकार की मींड तो बिलकुल नहीं चलेगी "रे ग, म, (म)" यह भाग उसमें लेते हैं। यह मल्लार से भी विसंगत नहीं होगा, और सावकाश तथा डौलदार तरीके से बोला जाय तो छायानट का ही दिग्दर्शन करेगा।

प्र०—किन्तु नटमल्लार में नट व मल्लार का योग बताया था ? अब आप कहते हैं कि उसमें छायानट का भाग लाते हैं।

उ०—नट में भी वह भाग आता है, यह मैं पहले कह ही चुका हूँ। नट का वास्तविक स्वरूप तुमको ऐसा बताया था ?

सा	सा	म	ऽ	म	म	प	म	ऽ	म
म	ऽ	प	ऽ	प	म	रे	म	ऽ	म
म	म	प	ऽ	प	सां	ऽ	ध	नि	प
रे	ग	म	प	ऽ	सा	रे	सा	ऽ	सा

नट मल्लार में, प रे संगति लाने की आवश्यकता नहीं, यद्यपि यह मल्लार प्रकार होने के कारण सा, म तथा प यह स्वर प्रबल होंगे, तथापि पंचम की अपेक्षा मध्यम को आगे लाने तथा म रे की संगति समुचित स्थान पर योग्य रीति से लाने से राग भली प्रकार पृथक रहेगा।

प्र०—नटमल्लार के सम्बन्ध में प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में यद्यपि उत्तम आधार नहीं मिलते, तथापि अर्वाचीन देशी भाषा के ग्रन्थों में उसका उल्लेख है ही !

उ०—राधागोविन्द सार तथा नादविनोद इन ग्रन्थों में वैसा उल्लेख है। सङ्गीतसार में नट मल्लार ऐसा बताया गया है:—नट तथा मल्लार के संयोग का वर्णन करके ग्रन्थकार ने इसकी तालिका इस प्रकार दी है:—

नटमल्हार—(सम्पूर्ण) (खड़ी लकीरों में पढ़िये)

सा	प	ध	रे	नि़	प
रे	ध	प	ग	सा	ग
ग	म	ध	रे	रे	रे
म	प	म	सा	ग	ग
ग	ध	प	ध	म	सा
म	सां	ग	प		

यहां दिये गये कोष्ठक से थोड़ा बहुत स्वरूप दिखाई देगा। ग्रन्थकार वैसा ही गाते होंगे, ऐसा मैं नहीं कहूंगा।

प्र०—परन्तु इस स्वरूप में गंधार तथा निषाद तीव्र होने के कारण यह राग बिलावल थाट का होगा क्या ?

उ०—अवश्य होगा। यह काफी थाट में होना चाहिये, ऐसा तो मैं नहीं कहता। अभी मल्लार का विषय चल रहा है फिर भी इस अप्रसिद्ध राग के बारे में हम अनायास ही बोल रहे हैं, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। इसके अतिरिक्त और भी एक दो मल्लार के स्वरूपों पर विचार करना है। उनके भी थाट सम्बन्धी विवाद में हम नहीं जायेंगे। कुछ में तो दोनों गन्धार, दोनों धैवत तथा दोनों निषाद हैं। उनके थाटों का प्रश्न छेड़ने में कोई खास तथ्य नहीं दीखता। वे 'अनियमित' अथवा 'भिन्न थाट' की श्रेणी में चले जायेंगे। नट मल्लार में बिलावल थाट के स्वर बहुमान्य हैं। इसमें संशय नहीं।

जहां गौड नट मिलत है नटमलार तहां होइ।
गावत रूप अनूपको जहै गुनीजन कोइ॥

सुरतरंगिणी।

प्र०—आपका कथन उचित है। अब नादविनोदकार का मत कहिये ?

उ०—हां, उसने नटमल्लार का विस्तार इस प्रकार दिया है:—

प म रे रे नि़ सा, रे रे, म म प, प, ध प, म ग रे, रे रे, नि़ सा, नि़ सा, रे ग म प

m m
म म सा सा रे रे, ग म, रे रे सा, सा। अन्तरा। म म प नि सां, नि सां रें, म म ग म, म प ध नि सां, रे रे, रें रें, रे रे, रे, म ध ग, ग म म, प म, रे रे रे, सा सा सा।

यहां तीन रे तथा तीन सा अन्त में आते हैं, किन्तु ऐसा गाने में अच्छा नहीं जान पड़ता। इसे तंतकारों की 'सम' समझनी चाहिये।

प्र०—यह हम पहले ही समझ गये थे। सितार जैसे परदों के वाद्यों में नखी (मिज़राब) का आघात करते हुए हमने वादकों को देखा है। वैसा किये बिना आवाज टिकेगी भी नहीं। किन्तु इस प्रकार के नोटेशन से अधिक बोध होगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। नादविनोदकार रागनियम भी नहीं बतलाता, इस कारण कठिनाई उत्पन्न होती है?

उ०—नोटेशन का प्रश्न ही तुमने उपस्थित कर दिया तो यहां मुझे एक बात कहनी पड़ेगी कि जिन नोटेशनों में स्वर ताल मात्रा सहित चीजें अथवा सरगम कण सहित लिखे गये होंगे, वे नोटेशन किसी हद तक अवश्य उपयोगी होंगे। अमुक राग अमुक समय में किस प्रकार गाते थे, इसका ज्ञान आगे की पीढ़ी को प्राप्त कराने के लिये नोटेशन जैसा अन्य कोई साधन नहीं। अब ग्रामोफोन भी उसकी अपेक्षा अधिक उपयोगी साधन बन गया है। हम आजकल इस प्रकार की आलोचना सुनते हैं कि अमुक मनुष्य का नोटेशन अच्छा है, अमुक का नोटेशन बुरा; इस प्रकार के विवाद में तुम कभी मत पड़ो। सर्वथा सर्वाङ्ग-परिपूर्ण जैसा मूल गायक गाता है, वैसा हूबहू लिखने वाला-नोटेशन अभी तक कहीं भी नहीं बन सका है, ऐसा कहना ही पड़ेगा। इस बात को भी छोड़ो, वर्तमान समय के जिन लेखकों ने नोटेशन लिखे हैं, वे उनके स्वतः के मुख से सुनो और फिर वही उनके शिष्य वर्ग के मुख से सुनकर देखो तो दोनों में कितना अधिक अन्तर है, यह तुरन्त मालूम हो जायगा। मूल गायक की आवाज, उसके स्वर लगाने की शैली, बोलों के उच्चारण करने में उसकी सफाई, प्रत्येक दो स्वरों में एक प्रकार का गुप्त बन्धन, विभिन्न स्थानों पर काव्य के दृष्टिकोण से अथवा सङ्गीत वाक्य के हेतु की गई छोटी मोटी विश्रांति, अर्थानुरूप छोटी बड़ी आवाज करने की शैली, ये सारी बातें निर्जीव नोटेशन में प्रायः असम्भव ही हैं, यही कहना पड़ेगा। तथापि नोटेशन के द्वारा व्याकरण के दृष्टिकोण से यथाशक्ति तथा यथामति प्रत्येक व्यक्ति गा सकेगा, इसमें संशय नहीं। इसलिये नोटेशन का उपहास करने वाले लोग केवल अपनी मूर्खता का प्रदर्शन करते हैं। पाठशालाओं में तथा कालेजों में उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों को सिखाने के लिये गायन की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य कोई सरल मार्ग नहीं है, ऐसा मेरा मत है।

नोटेशन का उपहास करने वाले गायकों की हालत देखने के लिये उनके गुरू के पास उनको बैठाकर उनका गाना सुनिये। गुरू की गायकी किधर और इन शिष्यों की गायकी किधर! स्वयं उन गुरू के पुत्र की भी यही दशा है। यह सब बातें मैं अनेक वर्षों के अनुभव से कह रहा हूँ। किन्तु उनके गुरू जी की भी यही स्थिति थी, यह बात शिष्यों को मालुम नहीं। आज हद्दूखां, हस्सूखां के नाम पर अपने गायक केवल श्रद्धा रखते हैं परन्तु उन गायकों के एक भी शिष्य को उनकी गायकी नहीं आई, यह बात सभी जानते हैं। फिर उनके शिष्यानुशिष्य बनने के अभिमान में क्या रखा है? प्रत्येक गायक-वादक अपने आसपास अपने वातावरण का निर्माण करता है, अतः निराश न होकर अपने स्वयं के गुणों से अपनी कीर्ति बढ़ाइये! पहले का संगीत चला गया तो अब नवीन

संगीत का लोकरंजन गुण तो वैसा ही है। जैसा संगीत नवीन है, वैसे ही सुनने वाले भी तो नवीन ही हैं। नोटेशन का उपहास करने वाले अधिकांश लोग ऐसे ही निकलेंगे जो उसे बिलकुल समझ ही नहीं सकते। ऐसे लोगों के निरर्थक मत का क्या मूल्य है? उन पर तरस खाकर उनसे विवाद में न पड़िये, यही उत्तम मार्ग है। आज तानसेन होते अथवा सदारंग होते तो उनको भी स्वयं अपनी चीज पहचानने में कठिनाई होती, किन्तु अपने गायक आज उन प्राचीन गायकों की चीजें उनके नाम से, किन्तु अपने ढङ्ग से गाते ही हैं तथा उनके गाने पर अपना समाज प्रसन्न भी होता है। और फिर कुछ समय से नोटेशन द्वारा लिखी गई चीजें आगे धर्मसूत्र के समान मान्य होने वाली तो नहीं हैं। मेरे भाषण का मर्म ध्यान में आगया न?

प्र०—हां, भली प्रकार समझ में आ गया। इस विषय पर प्रसंगवश आप कुछ पहले भी बोल चुके थे, किन्तु आपने उसे दोहरा दिया, यह बहुत अच्छा किया। आजकल नोटेशन के सम्बन्ध में यत्रतत्र अनाधिकारी लोगों में चर्चा हो रही है, यह बात हमारे भी कानों में आई थी। अच्छा, अब आगे चलिये?

उ०—नटमल्लार का थाट बिलावल है तथा वह सम्पूर्ण राग है। इसमें मध्यम वादी तथा षड्ज सम्वादी हैं। समय वर्षाऋतु है। किंचित नट का तथा कहीं-कहीं छायानट का भाग मल्लार में मिला हुआ दिखाई देगा। म रे यह मल्लार-संगति इस राग में अवश्य आयेगी। क्वचित् "रि प" संगति मल्लार का भाग लाने के लिये सम्मिलित की जाती है। ध ऩि प ऐसा कृत्य धैवत से पंचम तक आते समय करने में आता है; किन्तु यह दूसरे भी अनेक रागों में था, यह तुमको विदित ही है। मुझे ऐसा लगता है कि इस नटमल्लार की एकाध दूसरी सरगम यदि मैं कह दूं तो मेरे वर्णन किये हुए लक्षणों की तुलना करने में तुम्हें सुविधा होगी।

प्र०—हां, यह आपने बिलकुल ठीक कहा?

उ०—तो फिर सुनो:—

सरगम—एकताल (गंभीर प्रकृति)

ऩि सा

	म		री	ग			री				सा
ऽ	री	ग	ग	म	रे	ऽ	ऩि	सा	ऽ	सा	रे
३		४		×		०		२		०	
	री			री			ग		ग		
ऽ	ऩि	सा	सा	ऩि	सा	ऽ	रे	ग	प	म	ग

म रे	प ऽ	सां सां	सां ध नि	प मप	री गग सा।
म म री री					

अन्तरा.

प म म ✕	सां प नि ०	सां ऽ २	नि सां ऽ ०	सां रीं रें नि ३	सां ऽ ४
प नि॒म प	नि सां	ऽ सां	रें ऽ	सां सां ध	नि॒ प
ग म म	म रे प	ऽ प	सां ऽ	सां ऽ ध	नि॒ प।
ध प म	प म	ग ऽम	ग,रेग री सा		

मेरे गुरू महम्मदअली खां (जयपुर) ने भी मुझे नटमल्लार में एक सुन्दर गीत सिखाया है। मैंने अभी जो सरगम कही, वह रामपुर के सादतअली खां उर्फ छम्मनसाहेब तथा वजीरखां द्वारा सिखाये हुए गीतों के ढङ्ग पर थी। महमदअली खां की चीजों के ढङ्ग पर यह स्वर विस्तार कहता हूं। सुनोः—(सावकाश तथा डौलदार ढङ्ग से)

सा, रे^ग ग, ग, (म) रे^री, म^ग रे, सा, नि़ सा, रे सा, नि़ सा, रे ग, म^म प, (प) म ग, म रे, रे^म, म रे, नि़ सा।

री^म, म म, प, प, म म प प, म म प म, प म नि॒ ध, सां^प (सां) ध नि॒ प, म ग॒, म प, ग॒^म ग॒^म, ग, ग ग,^रे ग म, म म म, म प, म नि॒ ध, सां (सां) ध नि॒ प, म, ग, ग,^री म, (म) ग म रे, सा। सा, प^सा प^म म ग ग,^री म म, प, प, ध सां, नि सां, रें सां,

सां
सां ध नि प, ग, म, प म, (प) म, ग म, रे म रे, सा। इसमें दोनों गन्धार प्रयुक्त हैं, यह दीखता ही है।

सरगम–त्रिताल.

ऽ	रे	सा	रे	नि़	नि़	सा	ऽ	रेग	मप	मग	रेग	ऽ	मप	म	ग
ऽ	नि	सां	रें	(रें) नि	सां	ऽ	धप	(म) री	ऽ	ऽ	ग	मप	धप	मप	मग।

अन्तरा.

प	ऽ	प	प	नि	ध	ऽ	नि	सां	ऽ	रें	नि	सां	ऽ	सां	ऽ
प	नि	सां	रें	(सां) नि	सां	ध	प	रे	रे	ऽ	ग	मप	धप	मप	मग

महम्मदअली के प्रकार में कोमल गन्धार मुझे इतना सुन्दर नहीं जान पड़ा। किन्तु उनके कहे हुए नट तथा गौडमल्लार का मिश्रण वहां लोग मानते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि जैसा मैंने सीखा है वैसा ही तुमको बताता हूँ। तुमको जैसा उचित प्रतीत हो वैसा करो।

अब मित्र! इस नट मल्लार के लक्षण भली प्रकार तुम्हारे ध्यान में आ ही गये होंगे। एक शंका तुम्हारे मन में कदाचित् आई होगी कि महम्मदअली खां की परम्परा में कोमल गन्धार कैसे व कहां से आया होगा? यह कैसे व क्यों आया, इसके सम्बन्ध में उन्होंने तो स्पष्ट ही कहा है कि वे इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते। मेरी समझ से कुछ ग्रन्थों में दोनों गन्धार लिये जाने वाले 'शुद्ध नाट' राग का वर्णन हमें दिखाई देता है, उसी का यह प्रभाव रहा होगा। किन्तु यह स्वयं मेरी कल्पना है, यह भी मैं यहां स्पष्ट किये देता हूं। अपने इस कथन के लिये विश्वसनीय आधार मैं नहीं बता सकता। रामपुर के कै० सादतअलीखां साहेब नटमल्लार कैसा गाते थे, यह मैंने तुमको बताया ही है। ख्याल गायक इस राग को और भी निराले प्रकार से गाते होंगे, किंतु मुझे मेरे रामपुर के तथा जयपुर के गुरुजनों का प्रकार विशेष पसन्द है।

प्र०—आपके कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि आपने और भी कुछ निराले प्रकार सुने हैं?

उ०—हां, एक ग्वालियर के गायक से नटमल्लार का एक विलम्बित लय का ख्याल इस प्रकार गाया हुआ मैंने सुना था:—

नटमल्हार—तिलवाड़ा

नि̣ सा | म रे ३ ऽ सा ऽ	नि̣ सा × ऽ म रे म	ऽ २ म प (प)	म ० ग म रे
प म प मप	धनि सां सां निसां धप	म ग म रे	गम (प) म,गम रेसा।

अन्तरा.

पप ३ निध निसां ऽसां	सां × (सां) सां ऽ	ध २ नि सां रें	सां ० (सां) सां धनि प
सां रेंगंमंपं गंमं,रें सां	सां (सां) सां ध निप	धनिसां सांनिधप मग मरे	गम (प) मगम रेसा।

यह मैं जानता हूँ कि बड़े ख्याल केवल उनके सरगमों से अच्छी तरह नहीं जाने जा सकते, किन्तु सरगम से तुम जैसों को इतनी कल्पना तो हो ही जाती है कि यह ख्याल कैसा होगा, इसलिये यह सरगम मैंने कह सुनाई। नटमल्लार तथा गौड़मल्लार पृथक-पृथक रखने के लिये तथा पहिचानने के लिये उनके 'खास' लक्षण सदैव ध्यान में रखना।
नि̣ म
'सा, रे ग, म, म प, म, म ग' इतने टुकड़े से श्रोताओं को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि इसमें नट होगा। किन्तु यह भाग कभी कभी कुछ ख्याल गायक गौड मल्लार के विलम्बित लय के अपने ख्यालों में भी लाते हुए दिखाई देंगे।

प्र०—किन्तु ऐसा उन्होंने किया तो कभी कभी श्रोता भी उनके राग को नटमल्लार कहते होंगे। ठीक है न?

उ०—हां, ऐसा भी होता है। यदि वे अपने मध्यम को प्रमाण से अधिक लेने लगें तो ऐसा अवश्य होगा। इसी बात को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। किन्तु तुम अब दोनों रागों को समझ गये हो, इसलिये विशेष चर्चा करना व्यर्थ है। अब मैं केवल नटमल्लार के लक्षण श्लोकों द्वारा कहता हूँ। वे इस प्रकार हैं:—

काफीमेलसमुत्पन्नो नटमल्हार ईरितः।
आरोहे चावरोहेऽपि संपूर्णस्तद्विदां मते॥

मध्यमःकीर्तितो वादी पंचमो मंत्रिसंनिभः ।
गानं चास्य समीचीनं वर्षाकाले सुनिश्चितम् ॥
नटमल्लारसंयोगाद्रागोऽयं निर्मितो बुधैः ।
पूर्वांगे स्यान्नटच्छाया मल्लारस्योत्तरांगके ॥
रिमयो रिपयोश्चात्र संगतिः सुखदायिनी ।
ईषन्निकोमलस्पर्शः प्रतिलोमेऽत्र रम्यते ॥
मतांतरे द्विगांधारो गीयते लक्ष्यवर्त्मनि ।
नित्यं लक्ष्यमनुल्लंघ्य कुर्यात्तत्र स्ववर्तनम् ॥

लक्ष्यसंगीते ॥

प्र०:—ऐसा जान पड़ता है कि नटमल्लार अब हम पहचान सकते हैं। उसमें मल्लार तथा छायानट का मिश्रण हमको आवश्यक प्रतीत होता है। अब आगे चलिये ?

उ०—अब इस मल्लार राग के कुछ अप्रसिद्ध प्रकार कहने को रह गये हैं। आधुनिक होने के कारण उनका उल्लेख ग्रन्थों में कहीं नहीं दिखाई देगा। उनको सुनने का प्रसङ्ग बहुत ही कम आने के कारण उनके स्वरूप के सम्बन्ध में समाज में एकमत मिलना सम्भव नहीं है। तथापि मेरे रामपुर के गुरू से प्राप्त किये गीतों के आधार पर उस राग की सरगम मैं तुमको बताना चाहता हूँ। इस राग के और भी कुछ प्रकार कहीं दिखाई दें तो तुम संग्रह करना। उन अप्रसिद्ध मल्लारों के नाम इस प्रकार हैं:—१-धूंडिया (धूलिया) मल्लार; २-चरजू की मल्लार, ३-चंचलससकी मल्लार, ४-मीराबाई की मल्लार, ५-रूपमंजरी (मल्लार), ५-गौडगिरी (मल्लार) इन प्रकारों के सरगम क्रमशः कहता हूँ, सुनोः—

धूंडिया मल्लार—चौताल.

म	ऽ री	म	(री) म	प	ऽ	प	(म) प	प	(प) नि	ऽ	ध
	३	४		×		०		२		•	
नि	म	प	ऽ	(प) सां	ऽ	निसां	सां	रें	रें	सां	नि
ध	प	म	ऽ	प	(म) प	(प) सां	ऽ	नि	ध	प	म
री	ग	(सा) री	मम	प	ऽ						

———

अन्तरा.

(प)म	प	सां	ऽ	(सां)नि	सां	ऽ	सां	नि	सां	सां	ऽ
×		•		२		•		३		४	
(सां)नि	सां	रें	(सां)रें	नि॒	ऽ	(सां)नि॒	सां	ऽ	रें	(सां)रें	ऽ
(ध)प	रें	(गं)रें	(गं)रें	(गं)रें	ऽ	(गं)रें	गंरें	गंरें	(रें)नि	सां	सां
(प)सां	ऽ	नि॒	ध	प		ऽ	(म)रे	ग॒	(सा)रे	ऽ	मम
प	ऽ										

सरगम, चरजूकी मल्लार–चौताल.

सा	(सा)म	रेग॒	सारे	मप	सां	ऽ	नि॒	ध	प	ऽ	ऽ	(म)ग॒
	३		४		×		•		२		०	
	रे	ग॒	सा	ऽ	(नि॒)ध	प	सां	नि॒	ध	प	(म)ग॒	रेग॒
	सा	ऽ	(म सा)ग॒रे	मप	सां	ऽ						

अन्तरा.

(प)म	प	(सां)नि	सां	ऽ	सां	सां	ऽ	रें	गं॒	रें	सां
×		०		२		•		३		४	

		रीं				सां							
रीं	रीं	नि	सां	ऽ	सां	नि	सां	प	ध	प	सां		
नि	ध	प	म ग	ग री	ग	सा,	नि सा						

चंचलसस की मल्लार—चौताल.

नि	म		म					सा		सा		प
सा	री	प	री	सा	री	सा	ऽ	नि	री	री	सा	नि
	३		४		×		०		२		०	
	प				प				म			
	नि	प	ऽ	प	मप	सा	ऽ	री	गम	रीसा	रे	सा
	म											
	री	प										

अन्तरा.

प					प	नि					
म	प	प	सां	ऽ	नि	म	प	सां	नि	सां	ऽ
×		०		२		०		३		४	
प			सां			सां	रीं				
म	प	ऽ	नि	सां	ऽ	रीं	नि	सां	प	नि	म
प	री	म	सा	री	ऽ	सा,	सा				

सरगम—रूपमंजरी मल्लार—रूपक.

		नि	सा							नि		
ऽ	ऽ	सा	म	री	प	मग	म	री	सा	सा	ऽ	सा ऽ
०			२		३		०			२		३

नि़ ध़ प़	ग रेग सारे	म म	प ऽ प	म प पम	नि़ ध
नि़ प प	ग म म प	म ग	म री ऽ सा	म रे प	म ग
म रे ऽ सा	नि़ सा ऽ	नि़ ध़	ध़ नि़ प़ ऽसा		

अन्तरा.

म म रे रे २	म म ३	प ऽ प ०	प मप २	नि ध ३	नि ध प ०
म म	री गग सा	सा नि़ धप़	म रे ऽ	म म	प ऽ प
सां नि	ध प	नि ध प	प ध म पम	री ग ग	सा ऽ ऽ
नि़ सा ऽ	नि़ ध़	नि़ प़ ऽसा			

मीराबाईकी मल्लार–चौताल.

अन्तरा.

सा म री ०	सा री ३	री नि़ सा ४	म म ग ग ×	ऽ म ०	म रे प १
प मप नि	ध निध	सां नि सां	नि सां रीं	नि सां ध	नि प

प म	प	सां	नि ध	ध नि	प	प म	प	म ग	म	ऽ	म
म प	प ग	म	म	म नि	प	म री	म	प	ध	ध म	प
री म	री										

—————

अन्तरा.

प म	प	प नि	प	सां	ऽ	सां	ऽ	सां नि	सां	रें	सां
×		०		२		०		३		४	
नि ध	नि	प	प	प म	प	ऽ	सां नि	सां	रें	मं गं	मं
रें	सां	नि ध	नि	सां	निसां						

—————

प्रिय मित्र ! जिस प्रकार काफी थाट के प्रचिलित राग मैंने तुम्हें बताये हैं, उसी प्रकार अब हम आगे के आसावरी थाट के रागों की ओर बढ़ते हैं। मैंने "अनेक राग" ऐसे शब्द का प्रयोग किया है, इससे तुम्हारे मन में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि काफी थाट में कुछ राग और भी कहने से रह गये हैं।

प्र०—यही विचार मेरे मन में आया था कि अब भी कुछ ऐसे राग कहने से रह गये हैं।

उ०—अब काफी थाट में राग नहीं बचे, यह मैं कैसे कह सकता हूं, किन्तु प्रचार में जो तुम्हारे सामने आने योग्य हैं वे मैंने तुमको बताये हैं, इतना ही कहने का मेरा उद्देश्य था। चरजू की मल्लार चंचलससकी मल्लार, मीराबाई की मल्लार आदि रागों के सरगम मैंने तुमको बताये हैं, तथापि उन रागों की सम्पूर्ण जानकारी मैंने तुम्हें नहीं

दी है। इसका कारण इतना ही है कि वैसा परिचय देने के लिये मेरे पास भरपूर गीतों का संग्रह नहीं। यह राग मुझे रामपुर के साहेबजादे छम्मन साहेब ने बताया था, यह ठीक है परन्तु उनको भी इस राग में एक एक गीत ही आता था, अतः उन रागों की विशेष चर्चा वे नहीं कर सके। ऐसे समय में ये राग बिलकुल अप्रसिद्ध माने जाते हैं इसलिये यह तुम्हारे रागों के विषय में बाधक होंगे, ऐसा मैं नहीं समझता। ऐसे रागों की भी थोड़ी बहुत कल्पना तुमको होनी चाहिये, इसी दृष्टि से मैंने तुमको उनकी सरगम बताई हैं। जैसे-जैसे अवसर आये वैसे-वैसे इस राग के विस्तृत स्वरूप की खोज आगे तुम करते रहना। दो-दो चार-चार गीत एक एक राग में उपलब्ध हो जांय तो उन रागों का स्पष्टीकरण अधिक समाधानकारक रूप से हो सकता है। अच्छे घरानेदार गायकों के संग्रह में ऐसे गीत मिलने संभव हैं।

प्र०—यह ध्यान में आगया। अब आसावरी थाट के रागों की ओर बढ़िये?

उ०—हां, आसावरी थाट के रागों को लेने के पूर्व एक महत्वपूर्ण विवाद की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। आसावरी राग के स्वर कौनसे? अर्थात् आसावरी का थाट कौनसा है? इस प्रश्न के सम्बन्ध में वह विवाद है।

प्र०—आसावरी में षड्ज, तीव्र ऋषभ, कोमल गन्धार, शुद्ध अथवा कोमल मध्यम, पंचम, कोमल धैवत तथा कोमल निषाद लगाते हैं, ऐसा आपने पहले हमको बताया है न?

उ०—हां, ऐसा मैंने ही पहले कहा था। किन्तु अब हम इस राग की शास्त्रीय दृष्टि से विवेचना करने जा रहे हैं तथा वैसा करते समय जो बातें तुम्हारी दृष्टि में आनी संभव हैं, उनके सम्बन्ध में थोड़ा बहुत पहले ही कह देना हितकारी होगा, ऐसा मैं समझता हूं।

प्र०—यदि ऐसा है तो अवश्य कहिये। अपने प्राचीन ग्रन्थकारों में इस राग के सम्बन्ध में मतभेद है, ऐसा आपके भाषण से जान पड़ता है।

उ०—यह सब तुमको अभी मालूम हो जायगा। इस आसावरी थाट के राग अत्यन्त लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध हैं, यह मैं पहले ही कहे देता हूं। उसमें एक दो कुछ विवाद-ग्रस्त तथा अप्रसिद्ध कहे जा सकते हैं, किन्तु उनको छोड़कर शेष काफी प्रसिद्ध हैं तथा अपने स्वतन्त्र लक्षणों से परस्पर भिन्न हैं।

प्र०—इस आसावरी थाट में हमको आप कौनसे व कितने रागों के सम्बन्ध में बताने वाले हैं?

उ०—उनके नाम तुमको इस श्लोक में दिखाई देंगे। देखिये:—

आसावरी जौनपुरी गांधारो देवपूर्वकः।
सिन्धुभैरविका देसी षड्रागः कौशिकस्तथा॥

दरबार्याख्यकर्णाटः कर्णाटोऽड्डाणपूर्वकः।
नायकीसहिता एते ह्यासावरी सुमेलने॥
अभिनवरागमंजर्याम्।

"लक्ष्यसङ्गीत" में "झीलफ" नाम का और भी एक राग कहा गया है, किन्तु वह अप्रसिद्ध तथा विवादग्रस्त है, ऐसा समझकर हम शीघ्र ही आगे चलें।

प्र०—तो फिर इस थाट में फिलहाल हमको दस राग सीखने हैं, ऐसा ही मान कर चलें। क्यों?

उ०—ठीक है। ऐसा समझ कर चलने में कोई हर्ज नहीं। एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि कुछ गुणी लोग गान्धारी तथा देवगान्धार दोनों राग प्रथक मानते हैं और कोई कोई ऐसा मानते हैं कि यह दोनों एक ही राग के नाम हैं, किन्तु उसके सम्बन्ध में हम आगे बतायेंगे। इन १० रागों में से दरबारीकान्हरा, अड़ाना तथा कौंसी यह तीन राग रात्रि के माने जाते हैं तथा शेष ७ राग दिन के मानते हैं। यह बात ध्यान में रखिये।

इस थाट में खट, झीलफ तथा देवगान्धार में (एक मत से) दो गन्धार लेते हैं, इसलिये उनको एक अलग वर्ग में ही लेंगे। गन्धारी तथा सिन्धुभैरवी यह दोनों रिषभ लिये जाने वाले वर्ग में आयेंगे। दरबारी, अड़ाना रागों के अवरोह में धैवत वर्ज्य करते हैं इसलिये इनका एक अलग ही वर्ग होगा।

प्र०—केवल १० रागों में भी कैसा विचित्र वर्गीकरण है? यह राग प्रत्यक्ष बता कर पुनः आप इन सबको दुहरायेंगे न?

उ०—हां, हां। वैसा करना ही पड़ेगा, किन्तु यहां इस बात का केवल संकेतमात्र ही किया है। अब आसावरी के स्वर सम्बन्धी विवाद की ओर बढ़ें। यह विवाद ऐसा है देखोः—

कुछ गुणी लोगों के मत इस प्रकार हैं कि आसावरी में ऋषभ स्वर सदैव कोमल लेना चाहिए। उत्तर की ओर यह मत विशेष रूप से मान्य है, इसमें संदेह नहीं। इस मत के लोगों का ऐसा भी कथन है कि आसावरी में ऋषभ कोमल मानने पर जौनपुरी राग पृथक रखने में कठिनाई नहीं होगी।

प्र०—तो फिर यह समझना चाहिए कि यह दोनों राग प्रथक रखने के लिये यह युक्ति उन्होंने खासतौर से निकाली है?

उ०—छिः, ऐसी व्यर्थ की कल्पना ठीक नहीं। अपने संस्कृत ग्रन्थकार भी आसावरी में ऋषभ कोमल ही प्रयुक्त करने की बाबत कहते हैं, तो फिर तीव्र ऋषभ, कौन, क्यों तथा कब से लेने लगे? इसका ही विचार करना पड़ेगा। अपने विद्वानों का मत इस

प्रकार है कि ख्याल गायकों ने तीव्र ऋषभ लेने का रिवाज चालू किया है। ग्वालियर के प्रसिद्ध गायक ख्यालिये हद्दूखाँ, हस्सूखां तथा नत्थूखाँ, आसावरी के अनेक ख्याल तीव्र रिषभ लेकर गाते थे, ऐसा समझा जाता है। उस शहर में प्रचार में, आज भी वही दृष्टि-गोचर होता है, यह अनुभव के आधार पर कह सकता हूं। गवालियर में एकाध दूसरा ख्याल आसावरी में कोमल ऋषभ लेकर गाया हुआ आज भी दिखाई देगा, किन्तु तीव्र ऋषभ लिये जाने वाले ख्याल यथेष्ट मात्रा में गाये हुये दिखाई देंगे। कभी-कभी तो दोनों ऋषभ वाले ख्याल भी तुमको वहां सुनने को मिलेंगे। गवालियर का मत महाराष्ट्र में मान्य होने के कारण हमको तीव्र ऋषभ ली जाने वाली आसावरी ही अधिक ग्राह्य होगी, इसमें सन्देह नहीं।

रामपुर में ध्रुपद गायन की प्रधानता होने के कारण वहां आसावरी में कोमल ऋषभ मानते हैं तथापि कहीं-कहीं तीव्र रिषभ वहां के ध्रुपदों में दिखाई पड़ता है। एक बार नवाब साहब ने मुझे आसावरी सुनाते हुए दोनों रिषभ लेने के बारे में स्पष्ट कहा था, वह मुझे याद है।

प्र०—यह इस प्रकार की उलझन कैसे उत्पन्न हुई होगी, क्या आप जानते हैं ?

उ०—मैं समझता हूँ कि आसावरी में आरोह करते समय गन्धार वर्ज्य होता है, इसलिये ख्याल गायकों ने तीव्र रिषभ लेने का रिवाज चालू किया होगा।

प्र०—अर्थात् 'सा रे म प इत्यादि' इस प्रकार की जलद तानें लेने में कठिनाई होने के कारण उन्होंने वैसा किया होगा। ऐसा ही कहेंगे न ?

उ०—हां, ऐसा समझें तो भी कोई विशेष हानि नहीं। रामपुर के नवाब के गुरू वजीरखां के द्वारा भी आसावरी में दोनों रिषभ लिये हुए मैंने सुने थे।

प्र०—तो फिर अब हमको कौनसा मत निश्चित करना चाहिए, वह एक बार बता दीजिये ?

उ०—मेरी समझ से तुम दोनों मत मानकर चलो। महाराष्ट्र में ख्यालगायन विशेष लोकप्रिय है। तो फिर तीव्र रिषभ लिया जाने वाला मत हमको अधिक मान्य हुआ तो उसमें क्या आश्चर्य ? अच्छा, कोमल रिषभ लेकर यदि कोई गाने लगे तो हम उसकी आलोचना नहीं करेंगे। तुमको तो उस प्रकार के गीत अपने संग्रह में रख लेने चाहिए। एक कोमल रिषभ ही लिया जाने वाला प्रकार किसी ने सुना तो ग्रन्थ दृष्टि से वह शुद्ध है, ऐसा समझकर चलो। इसके विरुद्ध तीव्र रिषभ लिया जाय तो प्राचीन ग्रन्थों का आधार प्राप्त करने में कुछ कठिनाई होगी, यह, सदैव ध्यान में रखना। शास्त्राद्रूढिर्बलीयसी' ऐसा मानकर तीव्र रिषभ का समर्थन करना पड़ेगा। दोनों रिषभ लेने में अपने आप ही कठिनाई उत्पन्न होती है।

प्र०—वह कैसी ?

उ०—वैसा करने में आसावरी तथा गान्धारी इन दोनों को पृथक रखने में थोड़ी बहुत कठिनाई होती है।

प्र०—किन्तु, इन दोनों रागों को प्रथक करने के लिये उनके स्वतन्त्र लक्षण भी तो होंगे ?

उ०—हां, हां जरूर। किन्तु मैंने स्वरों की द्रष्टि से यह कठिनाई बताई है। अस्तु, संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में भी ख्याल गायक तीव्र रिषभ लेते हुए दिखाई देते हैं।

प्र०—किन्तु ठहरिये ! दोनों रिषभ लिये जाने वाले प्रकार के आरोह में तीव्र तथा अवरोह में कोमल रिषभ लेते हैं, ऐसा मानकर हम चलें तो ठीक है न ?

उ०—यह बिल्कुल ठीक है, क्यों कि गायक एक के बाद एक रिषभ लेकर तो गा ही नहीं सकेगा।

प्र०—हां, यह भी ठीक है। अब हमारे मनमें आसावरी राग के स्वरों के सम्बन्ध में कोई शंका बाकी नहीं रही। आगे चलिये ?

उ०—अपने आसावरी मेल को दक्षिण के ग्रन्थकार "नटभैरवी मेल" कहते हैं, यह मैं पहिले कह ही चुका हूँ। कोमल रिषभ वाले प्रकार को वे "हन्नुमत्तोड़ी" मेल में सम्मिलित करते हैं। अब एक महत्व का नियम मैं आसावरी राग के सम्बन्ध में तुम्हें बताता हूं, वह तुम ध्यान में रखना। वह ऐसा है कि आसावरी के आरोह में गन्धार तथा निषाद यह दोनों स्वर वर्ज्य मानने चाहिए। गन्धार आरोह में न लेने से गायक को कठिनाई नहीं होगी; किन्तु निषाद वर्ज्य करने से अवश्य अड़चन पैदा होगी। निषाद का यह नियम न जानने वाले कई गायक मिलेंगे। 'म प ध॒ नि॒ सां' यह तान उनके लिये सरल जरूर होगी; किन्तु प्रत्येक समय निषाद छोड़कर तान लेना उतना सरल नहीं होगा, इस कारण कई बार यह स्वर लिया हुआ दिखाई देगा, किन्तु आसावरी में वादी स्वर धैवत होने के कारण निषाद की झलक उसके तेज में स्वतः ही मिल जाती है, अर्थात् धैवत के तेज में निषाद स्वर स्वयं ही झांकता है, तथापि उसको लेना नहीं, और यदि वह लिया भी जाय तो "तानक्रियात्मक" अथवा "प्रच्छन्न" या "मनाक्स्पर्श" के नाते हमने लिया है, ऐसा कहने का साहस होना चाहिए।

प्र०—ठीक है, किन्तु गन्धार तथा निषाद वर्ज्य करने का यह नियम प्राचीन ही है अथवा नया ?

उ०—वह नया नहीं है। उसका तमाम ग्रन्थकारों ने उल्लेख किया है। कोई ऐसा भी कहेगा कि कोमल रिषभ ली जाने वाली आसावरी का नियम तीव्र ऋषभ के प्रकार से क्यों जोड़ना चाहिये ? इसके उत्तर में यह नहीं कहा जा सकता कि भैरवी थाट की आसावरी गाने वालों को सरल पड़ती है तथा तीव्र ऋषभ के प्रकार की आसावरी अधिक कष्टप्रद है।

प्र०—किन्तु आरोह में गन्धार वर्ज्य करने का नियम अच्छी तरह सम्भाल कर निषाद वर्ज्य करने का नियम गायक को संकट में डालता है, अतः उसकी ओर दुर्लक्ष किया तो कौनसी आपत्ति है ? धैवत के आगे उसका तेज तो पड़ेगा ही नहीं ?

उ०—मैं समझ ही गया था कि तुम यह प्रश्न पूछोगे। इसका उत्तर संक्षेप में यह होगा कि प्रचार में इसी आसावरी थाट से उत्पन्न होने वाले दूसरे भी कुछ राग ऐसे हैं, जिनमें आरोह करते समय गन्धार वर्ज्य करना पड़ता है। वे राग जौनपुरी, गान्धारी तथा देसी हैं। सारांश यह कि निषाद का वह नियम पालन करना मेरी समझ से अधिक सुविधाजनक होगा।

प्र०—यदि ऐसा हुआ तो अवश्य कठिनाई उत्पन्न होगी तथा उसे दूर करने के लिये निषाद वर्ज्य करना अवश्य सुविधाजनक होगा। तो फिर अब आसावरी के सम्बन्ध में आगे चलिये?

उ०—आसावरी मेल के स्वरों के सम्बन्ध में अब अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, ऐसा मैं समझता हूँ। अपने गायक-वादक कभी-कभी ऐसा कहते हुए पाये जाते हैं कि आसावरी का धैवत भैरवी के धैवत की अपेक्षा किंचित अधिक कोमल है। किन्तु ऐसी सूक्ष्म स्वरों की उलझन में हमको पड़ने की आवश्यकता नहीं दिखाई देती। "स्वरसंगत्यधीनानि स्वरस्थानानि नित्यशः" यह नियम प्रचार में सदैव दृष्टिगोचर होगा, यह मैं कह ही चुका हूँ।

प नि ध
"प, ध ध, प; नि ध, प; सां नि ध प" इस प्रयोग में स्वर संगति के कारण विभिन्न स्थानों पर उचित रीति से ठहरने से सूक्ष्म प्रमाण में धैवत का स्थान किंचित् आगे पीछे कैसे होता है, यह मार्मिक लोगों को तुरन्त ही दिखाई देता है। अमुक राग में अमुक स्थान कायम करने पर राग हानि न होकर राग रक्ति में तारतम्य दिखाई देना सम्भव है। किन्तु इस झमेले में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं है, और इससे पद्धति में परिवर्तन होने की भी कोई आशंका नहीं। ऊपर मैंने जो प्रकार बताये हैं, उनमें कोमल ऋषभ मानने वाले तथा दोनों ऋषभ मानने वाले, अपने-अपने ऋषभ लेकर नीचे षड्ज में मिलेंगे, यह ध्यान में आ ही गया है। आसावरी का आरोहावरोह स्वरूप—सा, रे म प,
नि सा
ध, सां। सां, नि ध, प, म ग, रे, सा। इस प्रकार होगा। इस राग में वादी धैवत तथा संवादी गन्धार है। कोई कहते हैं कि आसावरी में आरोह में गन्धार वर्ज्य होने से संवादी स्वर ऋषभ मानना चाहिये। उनके इस कथन में मुझे कोई विशेष तथ्य नहीं दिखाई देता। यह राग उत्तरांग वादी तथा वैचित्र्य पूर्ण अवरोह वाला होने के कारण इसमें संवादी स्वर गन्धार ही शोभनीय है, ऐसा मैं समझता हूं। आसावरी गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर मानते हैं। आसावरी थाटोत्पन्न दरबारी, अडाना तथा कौंसी राग को छोड़कर शेष सातों राग दूसरे प्रहर के रहेंगे। जानकारों के मत से सूहा, सुघराई, देवसाख, जौनपुरी, गान्धारी, खट, देसी, झीलफ ये सारे राग दिन के दूसरे प्रहर के हैं। इनके पहले भैरवी, सिंधभैरवी, तोडी आदि गाने में आते हैं। ये अन्तिम तीन राग सम्पूर्ण हैं। इन दूसरे प्रहर के रागों में सा, म, प, ध इन स्वरों पर सब कुशलता निर्भर है।

प्र०—आसावरी राग का प्रारम्भ कैसा किया जाय?

उ०—वह किसी अमुक स्वर से ही प्रारम्भ किया जाना चाहिये, ऐसा आज के देशी सङ्गीत में कोई बन्धन नहीं है। कोई <u>ध</u> <u>ध</u> <u>ध</u>, प, म प, <u>ग</u>, रे सा; ऐसा करते हैं, कोई 'म प, <u>नि</u> <u>ध</u>, प, <u>ध</u> <u>ग</u>, रे, सा' ऐसा करते हैं, कोई 'म प <u>नि</u> <u>ध</u>, प' और कोई 'सा <u>ध</u>, <u>ध</u>, प' करते हैं। यह सब कुछ रचनाकार की चतुरता पर अवलम्बित है। प्रारम्भ कोई कैसे भी करे, उसे '<u>नि</u> <u>ध</u>, प' इस छोटे से स्वरसमुदाय को श्रोताओं के सामने विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करना पड़ेगा, अन्यथा उसकी इच्छा आसावरी गाने की है, यह बात श्रोताओं की समझ में नहीं आयेगी। उसी प्रकार पूर्वाङ्ग में "मप<u>ग</u>" अथवा '<u>ध</u> म प <u>ग</u>, रे, सा' ऐसा करना पड़ेगा।

प्र०—इन स्वरसमुदायों को तो फिर आसावरी में जीवभूत ही समझना चाहिये, ठीक है न?

उ०—'<u>नि</u> <u>ध</u>, प' यह समुदाय आसावरी, जौनपुरी तथा गान्धारी इन तीनों रागों में अत्यन्त महत्व के माने जाते हैं। इनको लेकर फिर अपने-अपने ढंग से ये राग नीचे षड्ज से मिलते हैं।

प्र०—क्या मजे की बात है! जरा देखिये। इन रागों के अवरोह अधिकतर एक समान होने पर भी उसी में परस्पर भिन्नता कायम करना कितनी कुशलता का काम है?

उ०—यही तो सारे गायन का रहस्य है! कौन से स्वर पर कितनी देर रुकना चाहिये, वहां कौनसी स्वरसङ्गति लेनी चाहिये, कौनसा स्वर किस प्रकार वक्र करना चाहिये, कौन से समप्रकृतिक रागों को कैसे पृथक रखना चाहिये? ये सब बातें गायक को भली प्रकार विदित होनी आवश्यक हैं। केवल <u>ध</u>, प, <u>ग</u>, रे सा; <u>ध</u>, प, म प <u>ग</u>, रे सा; प <u>ग</u>, रे सा, ऐसे कर्णप्रिय टुकड़े गायकों ने क्यों रखे, यह मार्मिक व्यक्ति ही समझ सकते हैं, यही तो गाने का लुत्फ है। केवल स्वर पढ़ना आगया अथवा उसे कहना आगया कि बस सारा काम होगया, ऐसा नहीं समझना चाहिये। अयोग्य रीतिसे स्वर पढ़ने से राग में गड़बड़ हो सकती है, किन्तु उसे योग्य रीति से पढ़ने में अथवा गाने में ही विशेष खूबी है, इतना ही मेरे कहने का उद्देश्य है। एक बात यह भी है कि एक साधारण मनुष्य यह कार्य करे और यही कार्य इस विषय का पूर्ण जानकार गायक करे, तो उसमें भेद अवश्य दिखाई देगा। अपने गायक कभी कभी ऐसा कहते हैं:—'साहब, सुरों का सिर्फ पढ़ना एक चीज है मगर उनका गाना कुछ और ही चीज है।' उनको इस बात में बहुत कुछ तथ्य है। परन्तु उन लोगों के लिये नोटेशन पद्धति बिलकुल निरुपयोगी है, ऐसी गलत धारणा भी नहीं बनाना! 'सुरों का पढ़ना और उनका गाना' इसका भेद बहुत थोड़े ही श्रोता समझते हैं। वे तीव्र कोमल स्वरों की ओर तथा वर्ज्यावर्ज्य स्वरों की ओर ही ध्यान लगाये बैठे रहते हैं। कुछ लोग,

यह राग अपनी कौनसी चीज के समान दीखता है, केवल इतना ही ढूंढते रहते हैं। जैसे-जैसे तुम प्रत्यक्ष गाते रहोगे तथा जैसे-जैसे सूक्ष्म दृष्टि से तुम देखते रहोगे कि यह क्या हो रहा है, वैसे वैसे उस राग के मार्मिक अवयव तुम्हारे हृदयपटल पर उत्तम रीति से अंकित होते जायेंगे तथा गाने का रहस्य तुम जानने लगोगे। किन्तु मित्र ! आसावरी का प्रारम्भ कहां से करते हैं ? यह तुम्हारा प्रश्न था, उसका उत्तर मैंने अभी दिया ही है।

नि नि नि सा
'सा ध, ध, ध, प, म प ग, रे सा, रे म प, नि ध, प' यह भाग तुम सदैव ध्यान में रक्खो तो तुमको आसावरी पहिचानने में कठिनाई नहीं होगी। एक दृष्टि से आसावरी को आश्रय राग भी कहेंगे। यह राग सरल स्वरों में ही घूमता है। 'सा रे म प, नि ध, प' स्वर दिखाई दिये कि श्रोतागण आसावरी कहने को तैयार हो जाते हैं। आगे फिर गायक षड्ज से कैसे जाकर मिलते हैं, यह तो वह देखते भी नहीं।

प्र०—तो फिर अब आसावरी का विस्तार हमको बतायेंगे ?

उ०—ऐसा करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। सुनोः—

म नि नि नि सा
सा, रे म, प, प, ध, ध, ध, प, ध म प, ग, रे, सा रे, म, प, नि ध, प।

सा म सा नि
सा, रे सा, ग, रे सा, म प ग, रे सा, नि ध, ध, प, म प ध म प ग, नि ध, प ध

म सा म
म प ग, रे, सा। रे म प, नि ध, प।

म सा म सा नि
सा, रे सा, ग, रे सा, प ग, रे सा, सा, नि ध, प, म प ध, सा, रे सा, रे म प ध ग,

म सा म
नि ध, प, म प ध ग, रे सा, रे म प, नि ध, प।

नि नि म सा
रे रे सा, नि ध, प, नि ध, प, म प ध, सा, ध सा, रे ग रे सा, म प नि ध, नि ध,

म म म म सा म
प, सा रे म प, नि ध, प, म, प, सां नि ध, प, म प ध प ग, प ग, ग, रे सा। रे म प, नि ध, प।

म म म नि नि सा सा
सा रे ग, रे ग, ग, रे, सा, रे नि ध, नि ध प, म म प, ध, सा, ध, रे सा, ग, रे,

म नि म सा
सा, म प ध म प ग, प ग, नि ध, सां, नि ध, प, रें सां, नि ध, प, म प, ध म प, ग, रे, सा। रे म प, नि ध, प।

म नि नि नि
सा रे म प, रे म प, ध, ध, ध, प, रें सां, नि ध, नि ध, प, रे म प नि ध, सां नि ध

सा
प, म प ध म प ग, रे, सा, रे म प, नि ध, प।

नि सां नि प सां
सां, नि धु, नि धु, सां, धु, सां, रें गुं, रें, सां, रें नि धु, धु, प, गुं, रें सां, रें नि धु, सां,
नि म म सा
नि धु, नि धु, प, म प धु रें, सां, नि धु, नि धु, प, म प, नि धु, प, म प धु म प गु, प गु, रे,
सा, रे म प, नि धु प।

आगे फिर तार सप्तक के भाग में ऐसे जांयगे:—

नि नि नि नि सां मं सां
म म प धु, धु, सां, धु सां, सा रे म प धु, सां, रें सां, गुं, रें सां, पं गुं, रें, सां, रें
नि नि धु सां
सां, नि धु, सां, नि धु, नि धु, प, म प धु, गुं, रें, सां, रें, नि, धु, प, म प धु म
म म म सा
प गु, प, गु, गु, रे सा, रे, म प, नि धु, प।

नि नि नि म
सा धु, धु, धु, प, म प, नि धु, सां, नि धु, नि धु, प, म प नि धु, प, म प गु, प
म सा
गु, रे, सा।

नि सां मं सां नि
म प धु, सां, सां, रें सां, गुं रें, सां, पं गुं, रें सां, रें सां, नि धु, सां, नि धु, धु, प,
नि म म सा
सा रे म प धु, रें सां, नि धु, नि धु, प, मं प धु म प गु, प गु, रे, सा, रे म प नि धु, प।

जान पड़ता है इस राग का चलन अब तुम्हारे ध्यान में आ ही गया होगा!

प्र०—हां, यह राग अब हमें तुरन्त पहचानने में आ जायेगा। इसके अवरोह में मध्यम कुछ गौण होता है पण्डित जी! मालुम होता है, वह खासतौर से लिया जाता है?

उ०—ऐसा ही होगा। एक ओर धैवत वादी, पंचम न्यास स्वर, 'नि धु प' यह रागवाचक स्वरसमुदाय है, तो दूसरी ओर गन्धार सम्वादी तथा तदनुसार स्वर-समुदाय है। इनके बीच में फंसा हुआ मध्यम अपने आप गौण होगा ही।

प्र०—यहां मनमें एक शंका उत्पन्न हुई है, वह पूछूं क्या?

उ०—अवश्य पूछो। तुम मेरे लघु भ्राता तथा मित्र हो फिर इतना संकोच क्यों?

प्र०—शंका इतनी ही है कि इस आसावरी विस्तार में, 'म गु रे सा' अथवा 'प म गु रे सा' ऐसे सरल प्रयोग टाले गये हैं, ऐसा हमको दीखता है। क्या ऐसा खास तौर पर किया गया है?

उ०—तुमने यह पूछ लिया सो अच्छा ही किया। मैंने ऐसा जानबूझ कर किया
म
था, कारण मुझे "प गु" सङ्गति की आवश्यकता थी। "म गु रे सा, प म गु रे सा" ऐसे सम-स्वरी प्रयोग तुमको बताने लगूं तो उसमें आसावरी के अङ्गभूत भाग काफी झांकने

लगेंगे, यह गाते समय तुमको भी दिखाई देंगे। "नि ध, प, म ग रे सा;" नि ध प म ग रे सा" "म ग रे सा;" ये प्रयोग जलद तानों में तुम्हारे देखने में आयेंगे, किन्तु वहां राग भी किंचित प्रमाण में पाया जाएगा। कहीं भैरवी की झलक तो कहीं भीमपलासी की झलक और कहीं अन्य किसी राग की झलक दिखने लगेगी। तानों में ऐसा तिरोभाव होता ही है तथा उसका होना ठीक भी है; किन्तु फिलहाल आसावरी के प्रमुख अवयवों का ज्ञान कराने की दृष्टि से मैंने उस प्रकार के प्रयोग जानबूझ कर टाल दिये। "सां, रें

नि नि
नि, ध, प, नि ध, प ध, प नि ध प ग रे सा रे म, प, नि ध, प," ऐसा करने में आयेगा। अर्थात् अवरोह में मध्यम वर्ज्य नहीं, यह दिखता ही है।

प्र०—किन्तु इस प्रयोग में "रे म प नि ध, प" यह भाग न आने से स्पष्ट नहीं हुआ ?

उ०—शाबास ! यह तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आगया। रें रें सां नि ध प

म
म प ध म प ग, रे सा," यह तान अधिक सुन्दर दिखाई देती है। समान-स्वरों की तान तिरोभाव के लिये होती है तथा "रे म प नि ध, प" यह भाग उसमें आविर्भाव के लिये होता है। बस, इतना ध्यान में रखकर तुम राग नियमों को सँभालते हुए राग विस्तार करते

म सा
जाओ। दिन के दूसरे प्रहर के रागों में "म प नि ध, प, म प, ध ग, रे, सा" यह भाग बिलकुल स्वतंत्र है, यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। यह जैसे-जैसे लिया जायेगा वैसे-वैसे आसावरी अङ्ग तत्काल सामने आयेगा। अतः इस समय के विभिन्न रागों में यह भाग अथवा इसके हिस्से कहां, कितने और कौनसे लेने चाहिये, यह गायक की कुशलता पर निर्भर है।

प्र०—ठीक है। जिस आसावरी में कोमल ऋषभ लेना मानते हैं, उसका उठाव किस प्रकार करते हैं ?

उ०—वह अनेक समय मध्यम से तथा कभी-कभी षड्ज से प्रारम्भ किया जाता है।

प नि म नि सा
जैसेः—म प, नि ध, प, ध, प, म प ध ग, रे, सा, रे ध, सा, ग, रे, सा, रे म, प, नि

नि म ग
ध, प, म प नि ध, ध, प, प ध ग, रे, रे सा। यहां कभी कभी तिरोभाव के लिये ऐसा

सा रे सा
भी करते हैं, सा, रे ग रे सा, ध सा, ग रे सा; रे म, प, नि ध, प। इस टुकड़े से किंचित तोड़ी का भास होता है; किन्तु शुद्ध मध्यम से वह एकदम दूर हो जाता है। ऐसा तिरोभाव राग रक्ति के लिये भी हो सकता है, यह ध्यान में रखना चाहिये। अस्तु, यह राग तुम्हारी समझ में आगया है; ऐसा मानकर अब उसके पूर्व इतिहास की ओर हम क्षणिक दृष्टि डालें। तत्पश्चात् कुछ देशी भाषाओं के प्रसिद्ध ग्रन्थ भी देखलें। पश्चात् आसावरी में एक दो सरल सी सरगम मैं तुमको याद करने के लिये बता दूँगा। क्यों ?

प्र०—यह योजना अच्छी रहेगी।

उ०—आसावरी राग, प्राचीन रागों में से ही एक माना जाता है। शार्ङ्गदेव पण्डित ने अपने रत्नाकर में आसावरी को कुकुभ नामक ग्राम राग की भाषा रगंतिका से उत्पन्न हुई रागिनी कहा है। जैसे:—

मध्यमापंचमीधैवत्युद्भवः ककुभो भवेत्।
धांशग्रहः पंचमान्तो धैवतादिकमूर्छनः॥
प्रसन्नमध्यारोहिभ्यां करुणे यमदैवतः।
गेयः शरदि तज्जाता भवेद्भाषा रगन्तिका॥
धन्यासांशग्रहा भूरिधैवतैः स्फुरितैर्युता।
आतारमध्यमा पापन्यासा श्रीशार्ङ्गिणोदिता॥
तद्भवाऽऽसावरी धान्ता गतारा मंद्रमध्यमा।
मग्रहांशा स्वल्पषड्जा करुणे पंचमोज्झिता॥

इस श्लोक का स्पष्टीकरण करने में नहीं आता, इसका खेद है; किन्तु आगे के ग्रन्थकारों ने इसका कितना, कहां व कैसा उपयोग किया है तथा उनको इस राग का स्वरूप किस प्रकार दिखाई दिया होगा, यह तुमको थोड़ा बहुत मालुम हो जाय, इस हेतु उसका जिक्र करना मैंने उचित समझा।

प्र०—वह सब हमारे ध्यान में है। आगे के ग्रन्थकार रत्नाकर पर जिस मजे से लड़े हैं वह भी आपने हमको जगह जगह बताया ही था। "मग्रहा, गतारा, मन्द्रमध्यमा, पापन्यासा, धन्यासांशग्रहा, भूरिधैवतैर्युता" इन सारे विशेषणों का ही मानों उपयोग करके आज अपने गायक आसावरी गाते हैं, ऐसा भी किसी को प्रतीत हुआ तो आश्चर्य नहीं। तो फिर शार्ङ्गदेव के स्वरों को रहने दीजिये।

उ०—जब तक शार्ङ्गदेव के मेलस्वर सर्वमान्य नहीं हो जाते, तब तक ये सब श्रेणी ऐसी ही समझनी चाहिये।

प्र०—ठीक है। इसीलिये तो हमने भी वे श्रेणियां मानी हैं, सिद्धान्त नहीं। उस पर चर्चा भी नहीं की है।

उ०—ठीक, तो अब दर्पणकार क्या कहता है, सुनो:—

आसावरी गनित्यक्ता धग्रहांशा च औडवा। (रे मूल में है)
न्यासस्तु धैवतो ज्ञेयः करुणरसनिर्भरा॥

अथवा

ककुभायाः समुत्पन्ना धान्ता मांशग्रहा मता ।
पंचमेनैव रहिता षाडवा च निगद्यते ॥

मूर्छना:

ध नि सा म प ध । अथवा । मध निसारिग म ।

प्र०—आपने जैसा कहा था, वैसा ही हुआ । इस कुकुभ की भाषा में पहीना,धान्ता, करुणे आदि विशेषण इस पण्डित ने शार्ङ्गदेव के ही लिये हैं । श्रोताओं को स्वर चाहिये तो स्वयं खोज लें ?

उ०—इन बातों में हम क्यों समय बरबाद करें ? अब आसावरी का "ध्यान" सुनो ?

श्रीखंडशैलशिखरे शिखिपिच्छवस्त्रा
मातंगमौक्तिकमनोहरहारवल्ली ।
आकृष्य चंदनतरोरुरगं वहन्ती ।
सासावरी वलयमुज्वलनीलकांतिः ॥

प्र०—यह उसकी स्वतः की कल्पना होगी अथवा यह भी किसी अन्य की लेली होगी ?

उ०—खैर, वह किसी की भी क्यों न हो । इस चित्र से राग के स्वर क़ायम हो सकेंगे, वह समय अभी दूर है। अब सुबोध ग्रन्थमाला की ओर बढ़ें । पहले रागतरंगिणी का मत देखिये। इस ग्रन्थ में आसावरी गौरीमेल में स्पष्ट कही गई है । गौरीमेल तुम्हारा भैरव थाट है, यह तुम्हें विदित ही है । इस मेल में अनेक जन्यराग कहकर अन्त में लोचन कहता है:—

मालवः पंचमः किंच जयंतश्रीश्च रागिणी ।
आसावरी तथा ज्ञेया देवगांधार एव च ॥

प्र०—इस थाट के गन्धार तथा निषाद आगे चलकर कोमल मानने लगे, ऐसा समझ कर चलें तो हम "उतरी" आसावरी तथा देवगांधार के अत्यन्त निकट नहीं आजायेंगे क्या ?

उ०—यह तुम्हारा कहना ठीक है । यदि ऐसा है तो इसी थाट में गुजरी, मुलतानी, खट, देसी ये भी राग हैं और उन सब में आज कोमल गन्धार ही मानते हैं, तुम चाहो तो यह भी उस कथन के लिये प्रमाण होगा, और वस्तुतः वैसा मानना अभीष्ट भी होगा ।

आज तीव्र गन्धार तथा तीव्र निषाद् लेकर कोई भी आसावरी गाने वाला नहीं है, यह निर्विवाद है।

प्र०—ठीक, किन्तु आगे आसावरी के लक्षण ?

प्र०—उसके लिये हृदयकौतुक तथा हृदयप्रकाश ग्रन्थों की ओर देखना पड़ेगा। हृदयकौतुक में आसावरी के लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

मपौ धसौ निधपमा गरिसाः कथिताः स्वराः।
आसावरी जनैर्गेया रागिणी रागपारगैः॥
मपधसा निधपमग रिसा।

प्र०—खूब मिले। यह इस राग का अच्छा आधार है। यह नियम 'गनि' कोमल के प्रकार से लगायें तो आसावरी शास्त्रोक्त हो गई, ऐसा कहने में कोई हानि नहीं दीखती। परन्तु यह कोमल ऋषभ की आसावरी होगी ?

उ०—ऐसा समझ कर चलो तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं। हृदय प्रकाश में वही पंडित गौरी जैसा ही थाट मानकर आसावरी इस प्रकार कहता है:—

निशून्यारोहणा मादिः संपूर्णासावरी मता।

प्र०—ठहरिये! "निशून्या" और 'सम्पूर्णा अर्थात् आरोह में गन्धार लेंगे क्या ?

उ०—मैं इसका उदाहरण देने ही वाला था, किन्तु तुमने जल्दी कर डाली। उसने ऐसा उदाहरण दिया है:—

मपधसा निधपमगरिसा, धरिसा।

प्र०—ठीक है, वास्तव में हमने उतावली की। किन्तु यह उदाहरण नहीं दिया जाय तो पाठक झमेले में नहीं पड़ जायेंगे क्या ?

उ०—अस्तु, अब पुण्डरीक के ग्रन्थ की ओर चलें। सद्रागचन्द्रोदय में पुण्डरीक ने आसावरी का मेल 'मालव गौड' कहा है अर्थात् वह भैरव ही हुआ। आगे उसके लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

मांशग्रहा मांतवती च पूर्णा ह्यासावरी शश्वदसौ नियुक्ता

प्र०—किन्तु आरोहावरोह ? आरोह में ग, नि वर्ज्य तथा अवरोह संपूर्ण हो तभी राग संपूर्ण होगा; यही न ?

उ०—वहां वे स्वयं देखलें। जैसा प्रचार में हो उसे देखकर वैसा ही व्यवहार में लेना चाहिये, ऐसा वह कहता ही है।

लक्ष्यप्रधानं खलु शास्त्रमेतन्निशंकदेवोऽपि तदेव वष्टि।
यल्लक्ष्म लक्ष्यप्रतिबंधकं स्यात्तदन्यथा नेयमितिब्रुवाणः॥

प्र०—अर्थात् प्रचार में कोई आरोह में गंधार लेने वाला निकला तो हमारा श्लोक ठीक ही है; कोई उसे आरोह में छोड़ने वाला निकला तो वह अध्याहार से लेना होगा क्या ? अच्छा अब आगे चलिये ?

उ०—रागमंजरी में पुंडरीक कहता है:—

मत्रिकासावरी पूर्णा सदागेयातिकारुणा ।

प्र०—यह करुण रस शार्ङ्गदेव के ग्रन्थ से लिया जान पड़ता है ? 'मग्रहांशा' ऐसा भी वहां कहा ही था ।

उ०—रागमाला में वह कहता है:—

गांधारोऽत्राग्निगः स्यात्प्रथमगतिगनिर्मादिमध्यान्तपूर्णा ।
तन्वंगी श्यामवर्णा करधृतमुकुला सर्वशृङ्गारयुक्ता ।
रंभायाः काननेषु प्रियविमलयशोऽध्यापयंती सुकेशी । शुकेशम् ।
गंधर्वैस्तूयमाना प्रियरसकरुणा शश्वदासावरीयम् ॥

प्र०—ठहरिये ! अग्नि ग गन्धार अर्थात् तीन श्रुति बढ़ाये हुए गंधार को तीव्रतम ग समझें । किन्तु 'प्रथम गतिगनिः अर्थात् 'कोमल ग व कोमल नि' यह क्या ? इस राग में दोनों गन्धार ?

उ०—मेरी समझ से इस श्लोक में कुछ भूल रह गई है, कारण 'नर्तन निर्णय' नाम के उसी पंडित के ग्रन्थ में यही श्लोक इस प्रकार लिखा है:—

गांधारोऽत्राग्निगः स्यात्प्रथमगतिमनिर्मादिमध्यान्तपूर्णा ।

प्र०—हां ! तो इस की अपेक्षा यह पाठ कुछ ठीक दीखता है । तो शुद्ध मध्यम को एक श्रुति ऊपर करना चाहिये, और शुद्ध निषाद को भी एक श्रुति से कोमल नि करना चाहिये, ऐसा इस से निश्चित होता है, यही न ? निषाद कोमल होगया यह एक तरह से ठीक ही हुआ, किन्तु गन्धार का तीव्रत्व वैसा ही रहा क्या ?

उ०—वैसा ही रहा, यह मैं कह चुका हूँ । तुमने श्लोक का अर्थ ठीक ही समझा है, मध्यम एक श्रुति चढ़ाकर उसने क्या साध लिया, कौन जाने ? "असपाः पूर्वपूर्वास्ते संचरंत्युत्तरोत्तरम् । त्रिस्त्रिर्गतीस्ते प्रत्येकं याति गश्च चतुर्गतीः" इस प्रकार से वह अपने विकृत स्वरों का नियम बतलाता है । त्रिगतिक ग के आगे द्विश्रुतिक म होना चाहिए, ऐसा उसको प्रतीत हुआ अथवा नहीं, पता नहीं ? एक श्रुति के चढ़ाने से मध्यम नहीं बिगड़ेगा इसका विचार उसने नहीं किया । और कोई प्रति रागमाला की यदि मिली तो स्पष्टीकरण हो जायगा । प्रश्न तो 'म' सम्बन्धी है । वहां कदाचित मूल में 'ग' भी हो सकता है ।

अहोबल पंडित ने अपने सङ्गीत पारिजात में आसावरी का गौरी मेल में वर्णन करके उसके लक्षण इस प्रकार बताये हैं:—

गौरीमेलसमुत्पन्ना रोहणे गनिवर्जिता ।

मध्यमोद्ग्राहधांशाद्यासावरी न्यासपंचमा ।।

और गौरीमेल तुम्हें मालुम ही है, वह ऐसा है:—

रिस्वरादिस्वरारंभा रिकोमलधकोमला ।

गतीव्रा सा नितीव्रा च गौरी न्यंशस्वरा मता ।।

प्र०—यह भैरव थाट ही है। आगे इस के गन्धार तथा निषाद कोमल हैं, ऐसा मान लें तो अहोबल के लक्षण अति उत्तम रहेंगे, ठीक है न ?

उ०—हां, वह ऐसे अवश्य होंगे। 'धैवतांश, मग्रह, पन्यास' यह उत्तम विशेषण होंगे, इसमें संशय नहीं। अब श्री निवास का मत अलग से बताने की आवश्यकता नहीं। कारण, उसने अहोबल का ही अनुवाद किया है, ऐसा दिखाई देता है। कोई गायक हमको आसावरी में अति कोमल निषाद लेने के लिये कहते हैं, किन्तु द्वादश स्वर पद्धति में इस प्रकार के विवाद में हमको नहीं पड़ना चाहिए। इस प्रकार के अलंकारिक स्वर किसी ने लिये भी तो अपने को उससे कोई मतलब नहीं। 'म प धु, ऩिधु, प;' 'सां
　　　सां　　　धु
ऩि धु, प;' ऩि, धु, प;' 'ऩि धु, प' यह टुकड़े तुम विभिन्न प्रकार से गाकर देखो तो उस निषाद पर कितना प्रकाश पड़ेगा, यह तुम्हें विदित हो जायगा।

भावभट्ट के ग्रन्थ पर विचार करने की विशेष आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसने रत्नाकर से लेकर पारिजात तक के ग्रन्थकारों के मत उनके ही श्लोकों में उद्धृत कर लिये हैं। उसने आसावरी के तीन प्रकार माने हैं, जैसे:—

प्रोक्ता सासावरी प्रोक्ता जोगिया नायकी त्रिधा ।

इसकी 'नायकी आसावरी' कभी सुनने में नहीं आती। किन्तु 'जोगिया आसावरी' यह अपने यहां कथावाचक पंडित हमेशा गाते हैं। मैं उनके सम्बन्ध में जोगिया का वर्णन करते समय कह चुका हूँ। पूर्वाङ्ग में 'जोगिया' तथा उत्तरांग में 'आसावरी' इस प्रकार थोड़ा बहुत योग इस मिश्र राग में होता है, अस्तु।

अब हम यह देखेंगे कि दक्षिण के ग्रन्थों में यह राग किस प्रकार बताया गया है। रामामात्य पंडित ने अपने स्वरमेल कलानिधि में आसावरी का उल्लेख नहीं किया।

राग विबोध में सोमनाथ कहता है:—

आसावरी प्रगेया माद्यांशा सान्तिमा सदा पूर्णा ।

उसका थाट मालव गौड कहा है, अर्थात उसे अपने भैरव का ही समझना चाहिए। एक व्याख्या में गन्धार तथा निषाद के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा यानी वर्ज्यावर्ज्य नियम का उसमें उल्लेख नहीं है।

चतुर्दण्डि प्रकाशिका में 'आसावरी' नाम नहीं है किन्तु 'सावेरी' नाम की एक रागिनी मालवगौड़ अथवा 'गौल' मेल में कही है। उसके लक्षण व्यंकटमखी ने इस प्रकार दिये हैं:—

गौलमेलसमुद्भूतः सावेरीराग ईरितः।
आरोहे गनिलोपोऽयं प्रातर्गीतो विचक्षणैः।

राग लक्षण में आसावरी 'हनुमतोड़ी' मेल में ली गई है, वह थाट अपने भैरवी का है, अर्थात उसमें रे, ग, ध, नि स्वर कोमल हैं।

प्र०—तो फिर वह ग्रन्थ हमारे लिये विशेष उपयोगी होगा, उसमें राग के लक्षण कैसे दिये हैं?

उ०—बताता हूँ:—

हनुमत्तोडिमेलाच्च जाताऽऽसावेरिनामिका।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते॥
आरोहे गनिवर्ज्यं स्यादवरोहे समग्रकम्॥
सा रे॒मपध॒सां। सांनि॒ध॒ प मग॒ रे॒सा।

प्र०—और हमको क्या चाहिये? यह आज के प्रचलित आसावरी के लिये उत्तम आधार नहीं होगा क्या? अब 'सावेरीनामिका' अथवा 'आसावरी नामिका' केवल यह प्रश्न उठेगा?

उ०—मेरी समझ से इस प्रकार का प्रश्न नहीं उठना चाहिए क्योंकि उसी ग्रन्थ में सावेरी एक प्रथक रागिनी 'मालव गौल' थाट में इस प्रकार कही है:—

मायामालवगौलाच्च मेलाज्जातः सुनामकः।
सावेरीराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहे गनिवर्ज्यं चाप्यवरोहे समग्रकम्।
सारे॒ मप ध॒सां। सांनिध॒ पमग रे॒सा।

प्र०—तो फिर यह दोनों राग बिल्कुल अलग अवश्य होंगे। अपने आसावरी को शास्त्राधार मिल गया, यह बहुत अच्छा हुआ। आपका क्या ख्याल है?

उ०—हां, यह आधार उत्तम होगा, किन्तु यह 'उतरी आसावरी' है, यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

प्र०—वह तो है ही। यह बात हम कभी नहीं भूल सकते। अब देशी भाषा में लिखने वाले ग्रन्थकार क्या कहते हैं, वह भी हमें बता दीजिये?

उ०—हां, सर्व प्रथम मैं प्रतापसिंह का मत बताता हूँ, वह कहते हैं:—

"आसावरी को शिवजी ने ईशान मुखसों गाइकें श्रीराग की छाया युक्ति देखि श्री राग को दीनि।" आगे देवतात्मक रूप वर्णन करके कहते हैं:—

"शास्त्र में तो पांच सुरन में गाई है। ध म रि सा प ध। यातें ओडव है। अथवा स रि म प ध नि सा। ऐसे कोऊक याको षाडव कहे है। याको दिन के दूसरे पहर की सातवीं घडी में गावनी। यह तो याको बखत है। और दिन के दूसरे पहर में चाहो जब गाओ।"

प्र०—यहां पर उसने यह नहीं बताया कि यह अमुक शास्त्र में कहा गया है?

उ०—किन्तु ठहरो तो, मुझे वाक्य तो पूरा करने दो। "याको आलापचारी सात सुरन में किये राग बरते सो जन्त्र सों समझिये। नृत्य निर्णय सें और सद्रागचन्द्रोदयसें। ग्रहांश मध्यम। न्यास षडज।"

"नृत्यनिर्णय" तथा 'सद्रागचन्द्रोदय' पुण्डरीक के इन ग्रन्थों में आसावरी के स्वर किस प्रकार कहे गये हैं, यह तुमने देखा ही है। अब उसका दिया हुआ जन्त्र देखो:—

म	ग॒	नि॒	रे॒
प	रे॒	ध॒	ध़॒
ध॒	म	म	नि़॒
म	प	ग	रे॒
		रे॒	सा
		ग॒	

इस जन्त्र में २ गन्धार हैं, वह दीखते ही हैं, इसके पश्चात् उसने मार्गी आसावरी का जन्त्र इस प्रकार दिया है:—

सा	नि	ग॒	ध़	प़	सा
ध॒	ध॒	रे॒	नि़	म़	ध़
प	प	सा	ध़	प़	सा
ध॒	रे॒			ध़	

प्र०—किन्तु इस जंत्र के द्वारा प्रतापसिंह के ग्रन्थ के पाठभेद ने उलझन में डाल दिया है, ऐसा नहीं मालुम होता क्या ? एकबार 'गन्धार चढ़ी' तथा एकबार 'निषाद असली' अर्थात् शुद्ध, ऐसा उसने क्यों कहा होगा ?

उ०—उसके मनोभाव मैं कैसे बता सकता हूं। नर्तन निर्णय की एक प्रति मैंने कलकत्ता लाइब्रेरी में देखी थी। उसमें 'गांधारोऽत्राग्निगः स्यात्प्रथमगतिमनिर्मोदिमध्यान्तपूर्णा' ऐसा पाठ था। राजा साहेब ने लक्ष्य-लक्षण विरोध परिहार करने का ऐसा निरर्थक प्रयत्न क्यों किया, यह हम कैसे बता सकते हैं। उन्होंने अपने गायक-वादकों को जैसी राय दी होगी वैसा ही उन्होंने किया।

प्र०—यह ठीक है, किन्तु आसावरी के सम्बन्ध में उनका क्या मत है ? यह प्रश्न शेष रह जाता है न ?

उ०—इसका उत्तर 'गांधार चढ़ी' व 'निषाद असली' यह लिपि सम्बन्धी प्रमाद हैं, ऐसा समझकर चलें। मार्गी आसावरी में निषाद कोमल किया तो प्रचलित उतरी आसावरी हमको अच्छी तरह प्राप्त हो जायगी। 'नृत्यनिर्णय' तथा 'चन्द्रोदय' के गायकों को इस बात का पता था या नहीं, यह अब कौन कह सकता है ? अच्छा, अब 'नादविनोदकार' पन्नालाल के आसावरी स्वरूप की ओर बढ़ें। उसने शास्त्राधार ऐसा लिया है:-

श्रीखंडशैल शिखरे शिखिपिच्छवस्त्रा।

प्र०—और आगे नहीं जाना है। यह ध्यान उसने 'दर्पण' से लिया है, यह स्पष्ट है ?

उ०—उसने यह ध्यान 'कल्पद्रुम' से लिया होगा तथा कल्पद्रुमकार ने दर्पण से लिया होगा। क्योंकि आगे पन्नालाल कहते हैं:—

निषादांशगृहं न्यासं क्वचिद्गांधार ईरितः।
यामे द्वितीये गीयंते आसावरी सुखे नरा॥

कल्पद्रुमकार कहता है:—

निषादांशगृहं न्यासं कुचिद्गांधार ईरते ।
द्वितीयप्रहरार्धेदिवसे गीयते सासावरी ॥
गांधार देशी तोडीश्च मिश्रित त्रियसंयुता ।
आसावरी जायते यत्र निसारेगमपधस्य च ॥

पन्नालाल इस अन्तिम श्लोक में संशोधन करके कहते हैं:—

देशी गांधार टोडी मिश्रृत त्रय संयुता ।
आसावरी भवेन्नारी गायते रतिकामया ॥

अपने शहर में जब पन्नालाल रहते थे, तब यह श्लोक जोर से बोलकर फिर आसावरी बजाते थे । उस समय उनके सम्बन्ध में श्रोताओं के मनमें उनकी विद्वता का काफी प्रभाव था, यह मुझे मालुम है । इस अवतरण से तुमको इतना ही समझना चाहिए कि आसावरी राग देशी, गान्धारी तथा टोड़ी इन तीन रागों से मिलकर बना है एवं दिन के दूसरे प्रहर में गाया जाता है । ग्रन्थों में इस राग के स्वर कौनसे कहे गये हैं, यह रहस्य कल्पद्रुमकार भी नहीं समझा तथा पन्नालाल की समझ में भी नहीं आया । अब पन्नालाल नाद स्वरूप किस प्रकार कहते हैं, वह देखो:—

ऩि सा, रे रे सा, रे म प प, म प ध ध प, ध ध प, म प ध ग ग रे म प, ग ग रे रे सा, सा ।

ऩि ऩि ध़ ध़ प़ ध़ म़, म़ म़ प़ प़ ध़ ऩि सा, ध़ ऩि सा, ध़ ऩि रे सा, नि ध प, म म प ध म म रे म प, ध म म रे म प, रे म प ध ध, ध ध ध प प म प ध नि सां, रें रें सां, रें रें सां, रें नि नि ध ध प, ध ध प, म प ध ग ग, रे म प, ध ध प, प, ध ध प, प सां नि सां प म प, रे म प, रे म प, ध ध, रें रें सां, नि ध प गं गं ग रे म प, ध ध प प, म प ग ग, ग प ध ग, ग रे, म प ध ध सां, सां, गं रें सां, रें सां, नि ध प, म प ध ग ग रे म प ध ध ग ग रे, रे सा । इत्यादि । अब इस विस्तार को और आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं । वे एक अच्छे सितार वादक थे, यह मैं जानता हूँ । उनका यह विस्तार सुन्दर है । इसमें "म प ध म प ग, रे म प; ध ध प, म प ध ग, रे म प" इस प्रकार से रे स्वर से आगे जाने में बड़ी कुशलता है । अवरोही वर्ण में ऋषभ लाकर छोड़ देते हैं और फिर मध्यम से पुनः "म प ध ध प, ध ध प, म प ध, सां, रें सां, रें नि ध, ध प, म प ध म प ग, रे, म प, ध ग, रे, सा" इस प्रकार से इच्छानुसार घूमते हैं । प्रत्येक बार षड्ज पर आते समय "सा रे म, प ध, प" ऐसा प्रयोग करना पड़ेगा । इसे वादक लोग भी कुछ कम ही जानते हैं । कुल मिलाकर यह नादस्वरूप उत्तम है, ऐसा कहना अनुचित न होगा । इसमें पुनरुक्तियां यथेष्ट प्रमाण में विद्यमान हैं, इसका कारण यह है कि सितार मिज़राब से बजाया जाता है तथा उसमें एक-एक स्वर पर बारम्बार आघात करते हैं और इसका परिणाम अच्छा ही होता है ।

प्र०—यह मैं आपसे अभी पूछने ही वाला था । आपने कारण ठीक ही बताया । पहिले आपने जो स्वरविस्तार कहा था उसमें जैसी रोचक स्वरावली हमें दिखाई दी, वैसी

इस विस्तार में नहीं दिखाई देतीं। ऐसा मिजराब के आघात से होता है, यह कारण उचित ही है। उत्तम आलाप के लिये राग नियम सम्हालना हो तो फिर ऐसे स्वर जल्दी में छोड़ने नहीं चाहिये, ऐसी मेरी सम्मति है, किन्तु वह किस प्रकार निभाया जा सकेगा, यह बताना कठिन ही है। लेकिन इस राग में एक और भी तथ्य की ओर हमारा ध्यान गया है, वह यह कि पन्नालाल ने निषाद नियम को नहीं माना है, उन्होंने यह स्वर आरोह में अधिक नहीं लिया, यह तो ठीक है; किन्तु वह नियम उनको भली प्रकार मालुम था या नहीं, इसमें सन्देह है।

उ०—निषाद की ओर गायक वादक कुछ दुर्लक्ष्य करते हैं, यह मैं कह ही चुका हूँ, किन्तु यह स्वर लेने पर ही आसावरी बनी रहेगी, ऐसा तुम मानकर चलो तो कोई विशेष हानि नहीं। आरोह में निषाद लिये जाने वाले जौनपुरी तथा गान्धारी राग मैंने तुम्हें बताये, अर्थात् उन रागों में तथा निषाद लिये जाने वाली आसावरी में तुमको सूक्ष्म भेद दिखाई देगा, तथापि तुम अपनी चीजों में निषाद छोड़ दोगे तो शुद्ध गायन की दृष्टि से उचित ही होगा। किन्तु वह निषाद तानों में अथवा अन्य किसी प्रसङ्ग पर लेने में आ गया तो वह खासतौर से रंजकता के लिये प्रयुक्त किया गया था, ऐसा कहने का तुममें साहस होना चाहिए।

प्र०—वह स्वर कहां व कैसे लेने पर सुन्दर दीखेगा ?

उ०—यह भाग देखो:—"म प धु, सां नि सां, धु धु सां, रें गुं, रें सां, रें नि धु,
म सां सा
प, प गुं, रें सां, रें नि धु, प, म प धु म प गु, रे, सा" इसमें "निसां" यह टुकड़ा बुरा नहीं दिखाई देगा। उसी प्रकार जलद तानों में, "म प धु सां" ऐसा लेना बहुत असुविधाजनक होगा।

प्र०—तो फिर मूल नियम मानने वालों को यह कठिनाई क्यों नहीं प्रतीत हुई ?

उ०—सम्भवतः उनके समय में गायन आज जैसा नहीं होगा। और फिर "मनाक्स्पर्श" नियम भी तो है न ? अब तीसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ राजा साहेब टागोर का "सङ्गीतसार" शेष रहा। टागोर साहेब अपने आसावरी की सम्पूर्णता के सम्बन्ध में सोमेश्वर सङ्गीत-नारायण तथा दर्पण ग्रन्थों का आधार बताते हैं।

प्र०—और आसावरी मेल के स्वरों का स्पष्टीकरण पाठकों को अपनी बुद्धि से कर लेना चाहिये, यही न ?

उ०—ऐसा ही जान पड़ता है। किन्तु उसमें आश्चर्य की कौनसी बात है ? नाद-विनोद का आधार कल्पद्रुम ने, कल्पद्रुम का दर्पण ने, दर्पण का रत्नाकर ने और रत्नाकर का मतंग अथवा भरत ने लिया है। यह अन्ध परम्परा इसी प्रकार नहीं चली आई है क्या ? सोमेश्वर कौनसा व उसका ग्रन्थ कौनसा, यह कौन देखने बैठा है ? किसी ग्रन्थकार ने कहा कि आसावरी सम्पूर्ण है तो क्षेत्रमोहन ने उसको सम्पूर्ण लिख दिया।

प्र०—किन्तु यह कृत्य हास्यास्पद सिद्ध नहीं होगा क्या? शास्त्र लेखकों को ऐसी वृत्ति कैसे शोभा देगी ?

उ०—छोड़ो! उस पर टीका करने से हमें क्या प्रयोजन है? "सङ्गीतनारायण" ग्रन्थ में तो वही प्रकार है। उस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि मुझे नैपाल के राजगुरु विश्वराज पण्डित के पास से मिली है। वह ग्रन्थ कविरत्न पुरुषोत्तम ने लिखा है। मैं समझता हूँ इस सम्बन्ध में मैंने पहले उल्लेख भी किया था। ग्रन्थ काफी बड़ा है, उसमें ताल तथा नत्य के भी अध्याय हैं।

प्र०—इस ग्रन्थ में रागों की शैली कैसी है?

उ०—वह भावभट्ट की जैसी शैली ही है, ऐसा यदि कहा जाय तो अनुचित न होगा!

प्र०—अर्थात् एक-एक राग के विवरण के लिये जो-जो ग्रन्थ हाथ लगे उनके उद्धरण ले लिये हैं?

उ०—बहुधा ऐसा ही हुआ है। प्रथम रत्नाकर के ग्रामराग, भाषा-विभाषा आदि ऐसे लेखकों ने लिये ही हैं। उसके बाद फिर चन्द्रिका, नारदसंहिता, हरिनायक के ग्रन्थ चूड़ामणि, रत्नमाला इन तमाम ग्रन्थों के राग-रागनियों के नाम, गांव तथा समय एवं देव-स्वरूप आये ही हैं।

प्र०—और मेल तथा तज्जन्य रागों का खुलासा पाठकों को स्वयं देख लेना चाहिये, यही न ?

उ०—हां, यही उत्तर मुझे देना पड़ेगा। जान पड़ता है, आधार वाला भाग छोड़कर क्षेत्रमोहन स्वामी ने अपनी आसावरी कही है।

प्र०—हमको भी ऐसा प्रतीत होता है। उन्होंने आसावरी कैसी कही है?

उ०—बताता हूँ:—

म　　　　　　　　　　　　　　　　री
सा, रे म, प प, म प, धु, नि सां, नि नि धु, धु, प, म प, म, म गु, म प धु प, धु
री　　सा
नि धु प, म म गु, रे, सा।

प　　　　　　　　　　　　　री
म प नि धु नि सां, सां, सां, सां रें गं रें सां, सां, रें नि धु प, म प धु म प, म गु,
गु, म प धु प, धु नि धु प, म, म गु, गु, रे सा।

प्र०—यह स्वरूप अशुद्ध न हो तो भी हमको अधिक पसन्द नहीं आया। इसकी अपेक्षा पन्नालाल का ही स्वरूप हम अधिक पसन्द करते हैं। इन्होंने भी आरोह में निषाद लिया हुआ दिखाई देता है। बंगाल प्रान्त में भी उतरे रिषभ की आसावरी लोकप्रिय है, ऐसा जान पड़ता है?

उ०—बंगाल प्रान्त में ध्रुपद गायन अधिक पसन्द करते हैं, ऐसा कहा जाता है, इसलिये वहां उतरी आसावरी प्रचार में होनी सम्भव है।

प्र०—बंगाल प्रान्त में बड़े बड़े नामी ध्रुवपदिये आज भी हैं क्या ?

उ०—मैं उस प्रान्त में अनेक वर्षों से नहीं गया हूँ। अब वहां की स्थिति कैसी है, यह मैं नहीं कह सकता। कुछ वर्ष पूर्व अघोरनाथ चक्रवर्ती, विश्वनाथराव तथा गोस्वामी राधिकामोहन ये उत्तम गायक हो गये हैं। उनको मैंने सुना था। उनके गाने में उत्तर हिन्दुस्तान की कुछ झलक थी।

प्र०—तो बंगाल की शैली कुछ निराली ही है, क्या ऐसा समझना चाहिये ?

उ०—बंगाली गायकों के स्वरोच्चार तथा 'बोल' अर्थात् चीजों के शब्द, उनके उच्चारण मुझे सराहनीय नहीं प्रतीत हुए। आज तक भारतीय परिषदों में जिन बंगाली गायकों ने गाया उनके गाने का उच्चकोटि के विद्वानों पर प्रभाव नहीं पड़ा, यह खेद पूर्वक कहना पड़ेगा। किन्तु मित्र! बंगाली लोग बहुत बुद्धिमान तथा विद्वान माने जाते हैं। उनकी आलोचना करना हमारे लिये उचित नहीं है। कदाचित् वहां के उत्तमोत्तम गायक परिषद में आये न हों, ऐसा भी कहा जा सकता है। मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हिन्दुस्तानी संगीत में स्वरोच्चार तथा शब्दोच्चार जितने उत्तम होने चाहिये उतने मैंने सुने हैं; किन्तु वहां के गायकों में वे गुण मुझे नहीं दिखाई दिये। एक मार्मिक गायक ने तो मुझसे ऐसा भी कहा कि खास बंगाली गायन कुछ-कुछ मद्रासी गायन जैसा दीखता है। बंगाल में अब उत्तर का ख्याल गायन लोकप्रिय होने लगा है, यह शुभ चिन्ह है। बंगाली लोग यदि निश्चय कर लेंगे तो संभव है कभी न कभी संगीत का उद्धार अवश्य होगा। परन्तु इस विवादग्रस्त विषय में हम गहरे नहीं जायेंगे।

प्र०—अच्छा तो अब अपने विषय की ओर बढ़िये ?

उ०—मैं नहीं समझता कि अब इस आसावरी राग के सम्बन्ध में अधिक कुछ कहना रह गया है। आसावरी में किन रागों का मिश्रण होता है, यह अब मैं तुम्हें सुनाता हूं।

सुरतरंगिणी में इस सम्बन्ध में ऐसा कहा है:—

मारू मिल हिंडोल पुनि टोडी अंस अनूप।
इन मों मिलके होत है आसावरी स्वरूप॥

अथवा

मिल टोडीसों जोगिया पुनि गंधार अनूप।
तीनों मिल आसावरी कहत सरसमत रूप॥

प्राचीन ग्रन्थों में हिंडोल में गन्धार तथा निषाद कोमल हैं, यह तुम्हें मालूम ही है। उसी प्रकार तोड़ी (ग्रन्थों की) अर्थात् अपनी भैरवी है, यह जानते ही हो। मेरी समझ से अब कोई ऐसा उपयुक्त ग्रन्थ मत रहा नहीं है। इस राग के सम्बन्ध में कौन-कौन सी बातें ध्यान में रखनी चाहिये, यह तुम संक्षेप में एक बार कहोगे क्या? तुम्हें उलझन न हो इस लिये पूछा है। अब आगे जो राग मैं बताने वाला हूं, उनमें आसावरी के पर्याप्त भाग तुम्हारी दृष्टि में आने सम्भव हैं। अतः वहां आसावरी की उत्तम कल्पना होनी आवश्यक है।

प्र०—आसावरी सम्बन्धी यह तथ्य सदैव हमारे ध्यान में रहेंगे, देखिये:—

(१) आज महाराष्ट्र में ख्याल गायन अति लोकप्रिय है, यह बात प्रसिद्ध ही है। हमारे ख्याल गायक आसावरी में तीव्र ऋषभ लेते हैं तथा गंधार, धैवत, व निषाद कोमल लेते हैं। ग्वालियर में भी ऐसा ही प्रकार लिया जाता है।

(२) उत्तर की ओर आसावरी में ऋषभ कोमल मानते हैं। ध्रुवपद गाने वाले भी ऋषभ कोमल मानते हैं; तथापि वहां भी ख्याल गायक तीव्र ऋषभ अथवा दोनों ऋषभ लेने वाले अवश्य निकलेंगे। हम ये दोनों मत स्वीकार करके चलने वाले हैं।

(३) प्राचीन ग्रन्थों में आसावरी भैरव थाट में कही गई है। उसमें पहले तो निषाद कोमल हुआ, बाद में गन्धार भी कोमल होगया। उतरे ऋषभ वाली आसावरी को "रागलक्षण" ग्रन्थ में उत्तम आधार प्राप्त होगा।

(४) आसावरी के आरोह में गान्धार तथा निषाद वर्ज्य करने का नियम ग्रन्थों में दिखाई देता है। वह नियम आज भी प्रचार में निभाने का प्रयत्न अपने गायक करते हैं। बीच-बीच में तानों की सुविधा के लिये आरोह में निषाद लेते हैं, किन्तु गन्धार का नियम वे सदैव निभाते हैं।

(५) आसावरी में वादी धैवत तथा संवादी गन्धार है, अनेक बार मध्यम ग्रह व पंचम न्यास दिखाई देते हैं।

(६) "म प, नि ध प" इस छोटे से स्वर-समुदाय पर आसावरी विशेषतः अवलम्बित है। इस राग में "प ग" व "ध ग" यह सङ्गति बारम्बार दिखाई देती है।

(७) आसावरी गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर मानते हैं। उस समय के उसके समप्रकृतिक राग जौनपुरी तथा गान्धारी होंगे।

(८) "रे म प, नि ध, प, म प ग, रे, सा" इतने स्वर कहते ही आसावरी श्रोताओं के सन्मुख चित्रित हो जायगी।

उ०—ठीक है। मैं समझता हूँ अब आसावरी राग अच्छी तरह से तुम्हारी समझ में आगया।

प्र०—बस, अब हमको आसावरी में एकाध सरगम और बता दीजिये ?

उ०—ठीक है। कहता हूँ:—

आसावरी—त्रिताल. सरगम

ध॒ म प सां	नि॒ ध॒ प प	ध॒ म प ध॒	(म)ग॒ ग॒ (सा)रे सा
३	×	२	०
रे सा नि॒ ध॒	प ध॒ सा ऽ	रे म प ध॒	(म)ग॒ ग॒ (सा)रे सा

———

अन्तरा.

म प (नि)ध॒ (नि)ध॒	सां ऽ रें सां	(नि)ध॒ सां रें (मं)गं॒	(सां)रें सां नि॒ ध॒
३	×	२	०
प गं॒ (सां)रें सां	रें नि॒ ध॒ प	म प ध॒ (म)प	(म)ग॒ ग॒ (सा)रे सा

———

सरगम द्वितीय

(नि)ध॒ ध॒	प ध॒ (म)प	(म)ग॒ ग॒	रे रे सा
×	२	०	३
(सा)रे ग॒	रे रे सा	रे नि॒	ध॒ ध॒ प
म प	(नि॒)ध॒ ऽ ध॒	सा ऽ	ग॒ रे सा
नि॒ ध॒	प ध॒ (म)प	(म)ग॒ ग॒	रे (ग)रे सा

———

अन्तरा.

म	प	(नि॒)ध॒	(नि॒·)ध॒	ऽ	सां	ऽ	(सां)रें॒	(गं॒)रें॒	सां
×		२			०		३		
(सां)रें॒	(रें॒)गं॒	रें॒	रें॒	सां	रें॒	सां	नि॒	ध॒	ऽ
(म)प	(प)गं॒	(गं॒)रें॒	(गं॒)रें॒	सां	रें॒	सां	(नि॒)ध॒	(नि॒)ध॒	प
म	प	नि॒	ध॒	प	(म)ग॒	ग॒	(ग॒)रे॒	(ग॒)रे॒	सा

यह राग अच्छी तरह तुम्हारे ध्यान में आगया होगा, अतः अब संस्कृत श्लोकों के द्वारा इसके लक्षण कहता हूं:—

ग्रंथेषु भैरवीमेलो यः पुराणैः प्रकीर्तितः ।
स एवासावरीसंज्ञो लक्ष्ये विद्भिः समाहृतः ॥
मेलादस्मात्समुत्पन्न आसावरीतिनामकः ।
रागो गुणिप्रियश्चाथ आरोहे गनिवर्जितः ॥
धैवतोऽत्र मतो वादी संवादी गस्वरो भवेत् ।
गानं चास्य समादिष्टं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
मध्यमेन ग्रहोऽभीष्टः पंचमे न्यसनं शुभम् ।
उत्तरांगप्रधानत्वात्प्रतिलोमे परिस्फुटः ॥
संगतिः पगयोश्चित्राऽवरोहे चाल्पमध्यमः ।
रिमपनिधपस्वरैरागोऽयं स्पष्टतां व्रजेत् ॥
रागतरंगिणीग्रन्थ आसावरी प्रकीर्तिता ।
लोचनाख्येनविदुषा गौरीमेलसमाश्रिता ॥
तथैव कौतुकाख्येऽसौ हृदयेशेन लक्षिता ।
मायामालवके मेले सोमनाथेन भाषिता ॥
गौरीमेलसमुत्पन्ना पुराडरीकेण वर्णिता ।
रागलक्षणके ग्रन्थे तोडीमेले निरूपिता ॥

लक्ष्यसंगीते ।

रागिण्यासावरीयं मृदुगमधनिभिस्तीव्रकेणर्षभेण ।
संपन्नारोहणे या खलु गनिरहिता चावरोहेतु पूर्णा ॥
वादी स्याद्धैवतोऽस्यां श्रुतिरुचिरतरो गश्च संवाद्यभीष्टो ।
विष्वकृतानप्रसारैर्मृदुमधुरगलैर्गीयते संगवे सा ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

मृदू गमौ धनी चैव तीव्रस्तु रिषभो धगौ ।
वादिसंवादिनौ यस्यां सासावर्यपि संगवे ॥

चन्द्रिकायाम् ।

कोमल गमधनि तिव्र रिखब चढत गनी न सुहाइ ।
धग वादी संवादितें आसावरी कहाइ ॥

चंद्रिकासार ।

रिमौ पनी धपौ धसौ निधौ पमौ पगौ रिसौ ।
धांशाऽऽरोहे गनित्यक्ताऽऽसावरी संगवे मता ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

किन्तु जरा ठहरो ! आसावरी राग का "नग़माते आसफी" ग्रन्थ में भी वर्णन है, ऐसी मुझे याद आती है। वहां क्या कहा है, वह भी तुमको बताऊँ क्या ?

प्र०—उसे अवश्य कहिये। देशी भाषा में वह ग्रन्थ भी अच्छे ग्रन्थों में से एक है, ऐसा आपने बताया था। उसमें आसावरी कैसी बताई गई है ?

उ०—मोहम्मदरज़ा ने आसावरी, भैरव की रागिनी मानी है। भैरव की दूसरी रागनियां उन्होंने इस प्रकार बताई हैं—रामकली, गुजरी, खट, गांधारी तथा भैरवी।

प्र०—हमारा भी अनुमान था कि उनका मत भी विचार करने योग्य होगा। अच्छा, फिर आगे ?

उ०—उनका वर्गीकरण सुन्दर है, यह मैं पहले कह चुका हूँ। उन्होंने यथार्थ कहा है। उदाहरणार्थ, उनके मालकौंस की छः रागिनी इस प्रकार हैं:—

१—वागीश्वरी, २—तोड़ी, ३—देसी, ४—सुहा, ५—सुघराई, ६—मुलतानी; किन्तु उनके आसावरी के सम्बन्ध में हम बोल रहे थे। वे कहते हैं कि आसावरी में मध्यम तथा पंचम शुद्ध हैं एवं शेष सब स्वर कोमल हैं।

प्र०—तो फिर हमें अपने आसावरी के लिये यह भी एक आधार लेने में क्या हानि है ?

उ०—कोई हर्ज नहीं। किन्तु आज तो तुम चढ़े ऋषभ की आसावरी गा रहे हो। अस्तु, आगे वे कहते हैं कि आसावरी में वादी धैवत तथा संवादी ऋषभ है। पंचम, गंधार तथा निषाद अनुवादी हैं, यह उनका कहना एक अर्थ में ठीक ही है।

प्र०—आसावरी राग भली प्रकार हमारी समझ में आगया। अब क्या जौनपुरी लेंगे ?

उ०—हां, मेरी राय में वही पहले लेना सुविधाजनक होगा। उसका विवेचन भी विशेष लम्बा नहीं जान पड़ता।

प्र०—ऐसा क्यों ? जौनपुरी का विवेचन संक्षेप में क्यों बतायेंगे ?

उ०—जौनपुरी एक आधुनिक प्रकार है, ऐसा अनेक लोगों का मत है। यह एक यावनिक प्रकार है, ऐसा भी गायक-वादक समझते हैं। "जौनपुरी" यह नाम संस्कृत ग्रन्थों में नहीं दिखाई देता, यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी। इस राग को यह नाम किसने व क्यों दिया, यह लिखित आधारों से सिद्ध करना जरा कठिन होगा। इस विषय में आगे-पीछे उर्दू तथा पर्शियन ग्रन्थकार क्या कहते हैं, यह देखना पड़ेगा। राजा टागोर साहेब कहते हैं कि शर्की घराने के राजा सुलतान हुसैन इस राग को प्रचार में लाये। कदाचित् ऐसा हुआ भी होगा। सम्भव है उस तरह का एकाध प्राचीन प्रकार प्रचार में व्यवहृत देखकर आजकल का स्वरूप उस राजा ने इसे दिया हो।

प्र०—ऐसा आपको क्यों प्रतीत होता है ?

उ०—इस राग के सम्बन्ध में ऐसी एक दन्तकथा सुनने में आती है कि यह प्रकार कव्वालबच्चे आसावरी तथा गान्धारी रागों के मिश्रण से तैयार करके प्रचार में लाये। वे अपनी परम्परा हजरत अमीर खुसरू तक घुमाफिराकर पहुँचाते हैं। किन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि यह राग स्वयं अमीर खुसरू ने उत्पन्न किया। उनकी परम्परा के किसी अनुयायी ने प्रचलित किया होगा। जब मैं रामपुर में था तब अमीर खुसरू के घराने से सम्बन्धित एक गायक ने मेरे स्नेही कै० साहेबजादा सादतअली खां साहेब के समक्ष मुझ से यह कहा था कि यह जौनपुरी राग हमारे घराने का है, सैनियों का नहीं। सम्भवतः उस गायक का नाम 'रजाखान' था वहां इस विषय पर थोड़ी सी बातचीत भी होगई थी। उस गायक ने बड़े आवेश से कहा, 'खुदावन्द ! जौनपुरी राग हमारे घर का बना हुआ है, आप मानो या न मानो ! आप मालिक हैं। हमारे घराने की जौनपुरी गांधारी से बिलकुल अलग है। तौबा ! तौबा ! कहां गांधारी और कहां जौनपुरी ! जमीन आसमान का दोनों में फर्क। आजकल लखनऊ वाले और ग्वालियर वाले जौनपुरी गाते हैं सो बिलकुल गलत है। मैं अर्ज करता हूँ, उनको हमारे जौनपुरी की हवा भी मालूम नहीं।'

प्र०—यह चर्चा रामपुर में कैसे शुरू हुई ?

उ०—हम गांधारी की चर्चा कर रहे थे। वहां एक वृद्ध गायक बैठे थे, उन्होंने कहा, गान्धारी को तोड़ मरोड़ कर पिछले गवैयों ने अपनी जौनपुरी घुसेड़ दी है, मगर हम जौनपुरी को रागिनी ही नहीं मानते, न हम उसको कभी गाते हैं।'

प्र०—आपके रामपुर के गुरू जौनपुरी कैसी गाते हैं ?

उ०—वे तानसेन के घराने के अनुयायी होने के कारण जौनपुरी गाते ही नहीं। उनका भी ऐसा ही मत है कि गांधारी को तोड़ मरोड़ कर किसी ने इस जौनपुरी राग को प्रचलित किया है। यह ख्यालियों ने किया होगा, ऐसा वे कहते हैं।

प्र०—उस वृद्ध गायक का भाषण सुनकर 'राजा को' क्रोध आगया होगा।

उ०—यह स्वाभाविक ही है, किन्तु वे छम्मन साहेब के आश्रित होने के कारण उनके आगे अधिक क्या बोल सकते थे ? उन्होंने कहा, 'साहब ! आप राजा हैं। मानना न मानना आपकी खुशी की बात है। हम तो सच को सच और झूंठ को झूंठ कहने वाले हैं। हमारे घराने के और भी राग ऐसे हैं, जिनकी इन ख्यालियों ने मिट्टी खराब कर दी है। हमारे बुजुर्गों ने हमको जैसा सिखाया, वैसा हम गाते चले आये हैं। पढ़े लिखे तो हम हैं नहीं, न हम किसी तरह की आज सनद रखते हैं।'

प्र०:—तो फिर कहना चाहिये यह तो एक तमाशा होगया ?

उ०—उस बैठक में बुन्दा नाम का एक प्रसिद्ध सारङ्गी वादक बैठा था। उसने आगे खिसक कर उस खान से कहा, 'आप से कोई सनद यहां मांगता नहीं, मगर अपनी जौनपुरी आपको गले से तो याद होगी ? दो तानें हमें गाकर तो सुनाओ, आपकी रागिनी की सूरत तो हम देखें। हद्दूखां-हस्सूखां, बड़े मोहम्मद खां और दूसरे भी लोगों के मुंह से हमने जौनपुरी सुनी है; बल्कि उनके साथ में बजा भी चुका हूं। आपकी नई जौनपुरी तो जरा देख लूं।'

प्र०—फिर ?

उ०—उसने अपना प्रकार नहीं गाया। एक तो उसका रियाज छूट चुका था, दूसरे यदि गायेंगे तो वहां बैठे हुए लोग अपने राग का चलन उड़ा लेंगे, इस बात का उसे भय था। वहां नजीर खां, गफूर खां, मोहम्मद अलीखां आदि जानकार लोग उपस्थित थे। अन्त में साहेबजादा छमन साहेब के आग्रह से उसको अपनी जौनपुरी की चीज सुनानी पड़ी। किन्तु सुनाने से पहले उसने अपनी लम्बी चोड़ी कथा चालू की।

प्र०—वह कैसी ?

उ०—उसने कहा, "आप जानते ही हैं कि मेरा काम छूटा हुआ है। मेरी तबियत बिलकुल बिगड़ रही है। रोज सेर आधा सेर खून मेरा सूखता जा रहा है। इस हालत में मैं क्या कर सकता हूं ? और मुझे रोज बुखार भी तो आ रहा है। हकीम साहब का इलाज करा रहा हूं, यह बात हुजूर भी जानते हैं। मेरी हालत को हुजूर खूब जानते हैं।" इस पर बुन्दा ने कहा, "भाई, तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं यह सब दुनियां जानती है। हम आपका यहां मुजरा नहीं करवाते हैं। आप अपनी रागनी की जरा शक्ल दिखादो बस्स, हो चुका। इशारे से शक्ल मालूम हो जाएगी।" तब फिर निरुपाय होकर उसे गाना ही पड़ा। दुर्भाग्य से उसने, "बाजे झनन झननन बाजे" यही ख्याल प्रारम्भ किया। प्रारम्भ करके बीच में ही बड़बड़ाने लगा कि "यह ख्याल हमारे ही

घराने से निकला है। सारे ख्याल गाने वाले, सच पूछो तो हमारे ही घराने के शागिर्द हैं।" इतने में छमन साहेब जोर से बोले, "आप बातें छोड़ो, अपना गाना गाओ।" तब उसने गाना पुनः इस प्रकार प्रारम्भ किया:—

प म	प	सां	ऩि ध	प	धम	प	मप	पधमप
बा	जे	झ २	न	न	झऽ ×	न	ऽऽ	नऽनऽ

म ग	सा री	सा	रीरीसाऩि	सा	—	सारी	ग	म	गम
बा •	ऽ	जे	पाऽऽऽ २	ऽ	ऽ	यलि	या ×	ऽ	ऽऽ

यहां तक वह आया, इतने ही में एक व्यक्ति जोर से बोल उठा, "लाहौलबिला कुवत्"! क्या जौनपुरी में दोनों गन्धारें आप लेते हैं? इस पर फिर उसने भला बुरा कहना शुरू किया। वह कहने लगा, "जौनपुरी इसीका नाम है। आप सब गांधारी गाते हैं और जौनपुरी बताते हैं।"

प्र०—उसके कहने में आपको कुछ सार्थकता प्रतीत हुई क्या? उसका तीव्र गन्धार हमको बुरा नहीं लगा, इसलिये पूछा?

उ०—नहीं। वह गन्धार मुझे भी बुरा नहीं लगा, किन्तु वह यदि स्वीकार किया जाय तो जौनपुरी एक निराला प्रकार मानने का उत्तम साधन ही होगा। लेकिन मैंने जो ख्याल सीखा है उसमें तीव्र गन्धार बिल्कुल नहीं, ऐसा कहना ही पड़ेगा। दोनों गन्धार लिया जाने वाला "देव गन्धार" मैंने सुना है। कदाचित उसके आधार से ही जौनपुरी प्रचार में आई होगी, ऐसा भी कोई कह सकेगा। किन्तु इस चर्चा में अभी हमको पड़ने की आवश्यकता नहीं है। हमें गन्धारी के विषय में बोलना है। जौनपुरी राग आसावरी तथा गांधारी से प्रथक करके दिखाने में गायकों को कठिनाई पड़ती है। ग्वालियर के गायकों को मैंने आसावरी गाने के लिये कहा, तब उन्होंने वह राग बिल्कुल जौनपुरी जैसा गाया।

प्र०—अर्थात उसमें तीव्र रिषभ लेकर गाया था क्या?

उ०—हां! उसके बाद मैंने उनसे जौनपुरी गाने के लिये कहा तो उन्होंने उत्तर दिया:—"जौनपुरी हमारे यहां प्रथक राग नहीं माना जाता" फिर मैंने पूछा—तो आसावरी को अलग कैसे दिखाते हैं? उसीको जौनपुरी कहते हैं क्या? "बाजे झनन" यह ख्याल कौन से राग में गाते हैं? इस पर कुछ लोग बोले कि उसे हम आसावरी समझकर ही गाते हैं एवं दूसरे कुछ लोग कहने लगे कि हम आसावरी "उतरी रिषभ" लेकर प्रथक करते हैं। ग्वालियर में अभी कुल ४०-५० राग ही गाये जाते हैं, इसलिये वहां जौनपुरी यदि प्रचार में नहीं है तो कौनसे आश्चर्य की बात है। यह तो केवल संगीत शास्त्र की विशेष प्रगति मानी जायगी।

ग्वालियर के हद्दू-हस्सूखां पहिले लखनऊ में थे और वहां उन्होंने तानसेन घराने के लोगों से कई राग सुने होंगे, यह मानना पड़ेगा, परन्तु बड़े "तनैत" (तानबाजी करने वाले) होने के कारण उन्होंने अपने ख्याल गायन के काम में आने वाले इतने ही राग पसन्द किये तथा उनमें कमाल कर दिखाया, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। कारण कुछ भी हो, ग्वालियर में जौनपुरी राग उस समय अलग से नहीं गाते थे, ऐसा कहना गलत न होगा। अस्तु, यह विषयान्तर हम इस समय छोड़ दें।

जौनपुरी राग कैसे व कौन प्रचार में लाया, इस विषय पर हम बोल रहे थे। सुलतानहुसेन शर्की ने उसे लोकप्रिय किया होगा, हम केवल इतना ही कह सकते हैं। जौनपुरी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में और भी एक विवादग्रस्त चर्चा मेरे सुनने में आई थी।

प्र०—वह कैसी ?

उ०—एक हिन्दू गायक ने मुझसे कहा था कि प्राचीन जो 'तुरुष्कतोड़ी' थी, उसीको आगे चलकर जौनपुरी का रूप प्राप्त हुआ होगा। जौनपुरी की गणना तोड़ी प्रकारों में की जाती है, यह ठीक है, किन्तु "तौरुष्कतोड़ी" से जौनपुरी साधना साहस का कार्य होगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

प्र०—किन्तु उस पंडित गायक ने अपने कथन के लिये कुछ तो आधार बताया होगा ?

उ०—आधार के लिये उसने पुण्डरीक के "रागमाला" ग्रन्थ की ओर संकेत किया है। उसका कथन चमत्कारिक अवश्य है, इसमें संशय नहीं।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—तौरुष्कतोड़ी की पुण्डरीक ने रागमाला में इस प्रकार व्याख्या की है:—

छायानाटस्य मेले प्रकटितसुतनुर्मादि मध्यान्तपूर्णा
गौरांगी मूर्ध्नि वेणीं कनकमणिमयं कर्णपुष्पं दधाना।
प्रौढेषद्रक्तनेत्रा यवनसुवनिता वस्त्रवेशाधिकाढ्या
द्राक्षां पीत्वा प्रभाते विलसति चतुरा यावनी तोडिगा सा॥

रागमालायाम्।

प्र०—तो "यावनीतोड़ी" तथा "यवनसुवनिता" "गौरांगी" तथा "द्राक्षां पीत्वा" इस वर्णन से "यावनीतोड़ी" अथवा "जावनीतोड़ी" ऐसा अनुमान किया जाय तो मेरी समझ से वह निरर्थक न होगा। "जावनी" से आगे चलकर "जौनी" हुआ होगा। अमीरखुसरू पुण्डरीक से पहिले हुआ है, उसने तुरुष्क (तुर्की) तोड़ी को "जावनीतोड़ी" कहा होगा। उसके बाद उसका सम्बन्ध जौनपुर तथा सुलतानहुसेन से कैसे हुआ होगा, केवल यही प्रश्न रह जाता है ?

उ०—वह तुम्हें छोड़ ही देना चाहिए, ऐसा तो मैं नहीं कहता। पुण्डरीक ने "तोड़ी" तथा "तुरुष्कतोडी" यह दोनों राग प्रथक-प्रथक माने थे। इतना ही नहीं, बल्कि यह हिन्डोल की रागनी है, ऐसा भी उसने कहा है। उसका हिन्डोल राग "सा ग़ म ध़ नि़ सां" इन स्वरों का था, यह विचार करने योग्य है। वह कहता है:—

"अस्मिन्रागे भवेतां प्रथमगतिगनी सत्रिकोऽत्रारिपोऽसौ" यह उसके हिण्डोल के स्वरों का वर्णन है। उसकी तोड़ी रागिनी का मेल अपने हिन्दुस्तानी भैरवी थाट जैसा है। मुख्य प्रश्न इतना ही है कि "तुरुष्कतोड़ी" को उसने "यावनीतोड़ी" कहा। इससे "जौनपुरी" सिद्ध हो सकेगी, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। "तुरुष्क" शब्द से उसने "यावनी" विशेषण की कल्पना की होगी। "तोड़ी" नाम हिन्दुस्थान के बाहर से आया है, ऐसा अनेक विद्वानों का मत है। इस बात के अधिक पीछे पड़ने की आवश्यकता नहीं है। तौरुष्कतोड़ी का उल्लेख "संगीतरत्नाकर" में भी दिखाई पड़ता है। वहां "तौड्येव ताडिता गाल्पा तौरुष्की रिनिभूयसी" ऐसा उल्लेख है।

प्र०—किन्तु पुण्डरीक ने "छायानाटस्यमेले" ऐसा कहा है, इसके बारे में आपका क्या मत है ?

उ० -छायानट राग उसने कर्नाट मेल में बताया है तथा कर्नाट के स्वर "त्रिस्त्रिद्व्येकस्थितः स्युः स्वररिगमनयः' ऐसे वर्णन किये हैं। सद्रागचन्द्रोदय में कर्नाट स्वर वर्णन इस प्रकार है:—

शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः शुद्धो निषादो लघुमध्यमश्च।

निगौ यदा त्रिश्रुतिकौ भवेताम् कर्णाटगौडस्य तदैषमेलः ॥

कर्णाटगौडोऽपि तुरुष्कतोडी। इ. ॥

किन्तु हम इतनी गहराई में नहीं जाँयगे।

प्र०—परन्तु 'तोड़ी व छायानट मेल' इन दोनों का योग होने से 'यावनी तोड़ी' में दोनों गन्धार लेने का चलन हुआ होगा, ऐसी कल्पना होती है। लेकिन 'जौनपुरी तथा यावनी' एक ही राग के नाम हैं, इसका निश्चय कौन करेगा ?

उ०—इसीलिये मैंने कहा कि तुम्हें इस उलझन में नहीं पड़ना चाहिए।

प्र०—आपका कहना बिल्कुल ठीक है। हमको तो बस प्रचलित जौनपुरी अच्छी तरह समझा दीजिये ?

उ०—अब ऐसा ही करता हूँ। अभी यहां एक महत्व पूर्ण बात मैं और कहूंगा कि तुम यदि जौनपुरी गाने लगे तो तुम्हारे राग को कोई आसावरी कहेगा और कोई गान्धारी।

प्र०—ऐसा क्यों ? कदाचित वह राग इन रागों का अत्यन्त समीपवर्ती होने के कारण ही ऐसा होना सम्भव है ?

उ०—हां, यह तीनों राग सदैव एक दूसरे में मिले हुए दिखाई देते हैं। वास्तव में देखा जाय तो इनमें से प्रत्येक का नियम प्रथक है, किन्तु उनमें कुछ महत्वपूर्ण समुदाय साधारण होने के कारण श्रोताओं को भ्रम उत्पन्न होता है।

प्र०—तो फिर इस राग के साधारण तथा असाधारण भाग हमको भली प्रकार समझा दीजिये तो ठीक होगा ?

उ०—हां, अब ऐसा ही करता हूँ। आसावरी के नियम तुम भली प्रकार जान ही गये हो ?

प्र०—हां, आसावरी हमने इस प्रकार ध्यान में रखी है, देखिये:—

लोचन पण्डित, हृदयनारायण, अहोबल तथा श्रीनिवास इन पण्डितों ने आसावरी भैरव अथवा गौरी मेल में बताई है। इसके आरोह में गन्धार तथा निषाद वर्ज्य करने का नियम भी उन्होंने बताया है, उसी प्रकार राग विबोधकार ने आसावरी गौरीमेल में कही है। गान्धार, निषाद का नियम भी उसको मान्य है। बाद में कुछ समय से पण्डित लोग आसावरी को हमारे वर्तमान भैरवी थाट में लेने लगे, ऐसा प्रतीत होता है। तथापि गन्धार व निषाद आरोह में न लेने का नियम उन्होंने वैसा ही रक्खा अर्थात् आसावरी का आरोहावरोह "सा रे म प ध सां , सां नि ध प म ग रे सा" ऐसा मानने लगे। पुण्डरीक विट्ठल ने भी अपने सद्रागचन्द्रोदय तथा राग-मंजरी में आसावरी का मेल गौरी ही कहा है। किन्तु "रागमाला" तथा "नर्तननिर्णय" ग्रन्थों में आसावरी का वर्णन इस प्रकार किया है:—

गांधारोऽत्राग्निगः स्यात् प्रथमगतिमनिर्मादिमध्यांतपूर्णा।

इस वर्णन में "प्रथमगतिमनिः" ऐसा उसने कहा है, यह हमारे ध्यान में है। इससे आसावरी में कुछ कुछ अन्तर होने लगा था, ऐसा हमें प्रतीत होता है। आगे फिर रागलक्षणकार ने आसावरी का मेल "हनुमतोड़ी" स्पष्ट रूप से कहा है। आपने यह भी कहा था कि आसावरी का थाट भैरवी मानने वाले आज भी उत्तर में अनेक गायक-वादक दिखाई देते हैं।

उ०—यह मैंने बिलकुल ठीक कहा था। इसके विपरीत अपने तीव्र रिषभ के आसावरी का वे लोग उपहास करते हैं। अपने आसावरी को ग्रन्थों का आधार नहीं है, ऐसा भी हमको स्वीकार करना पड़ेगा। तथापि अपने प्रसिद्ध ख्याल गायक आसावरी तीव्र ऋषभ लेकर गाते हुए अवश्य दिखाई देंगे। कुछ लोग दोनों रिषभ लेने का प्रयत्न करेंगे, किन्तु यह सब किस प्रकार व क्यों ? इस बारे में तुम्हें बता ही चुका हूं। अब जौनपुरी में आसावरी के स्वरसमुदाय कौनसे व कैसे आते हैं, उनके बारे में कहता हूँ। सुनोः— "रे म प, नि ध प" यह इन दोनों रागों में साधारण तथा आवश्यक रूप से आने वाला भाग है। "सा रे म प" यह प्रकार सदैव पूर्वाङ्ग में दिखाई देने वाला है। धैवत दोनों रागों का वादी स्वर है। "सां नि ध, प, नि ध, प," यह टुकड़ा भी दोनों रागों में आवेगा। तो फिर इन रागों में भेद कौनसा रहा ? ऐसा प्रश्न तुम्हारे मन में अवश्य उत्पन्न होगा।

प्र०—आपने हमारे मनोभाव ठीक से पहिचान लिये।

उ०—दोनों रागों में "म प धु म प गु" यह टुकड़ा भी दिखेगा। तो अब एक निषाद का नियम रह गया, ठीक है न? आसावरी के आरोह में निषाद छोड़ देना चाहिये तथा जौनपुरी में उसे ले लेना चाहिये। एक भेद तो यही ध्यान में रक्खो!

प्र०—किन्तु तानों में निषाद लग गया तो वह क्षम्य समझा जायगा न?

उ०—आसावरी में ऐसा क्वचित् प्रयोग क्षम्य होगा, किन्तु जौनपुरी के आरोह में

सा म सा

निषाद स्पष्टरूप से लिया जाता है। पूर्वाङ्ग में, "म प गु, रे, म प, नि धु, प, प गु रे, सा" ऐसा प्रकार जौनपुरी में अवश्य लेना चाहिये। यह प्रयोग आसावरी में निषिद्ध नहीं, किन्तु यदि यह उसमें नहीं आसके तो भी चलेगा। इसके अतिरिक्त आसावरी में मन्द्र स्थान का विशेष प्रयोग, "धैवत की पुनरुक्ति" "धु धु, धु, प, म प, धु धु, नि धु, प, धु म प गु, रे सा" ऐसे प्रयोग बारंबार किये हुए दिखाई देंगे। जौनपुरी में कोमल निषाद बारंबार सामने आयेगा। पंचम पर बारंबार तानें लाकर छोड़ी जायेंगी, यह भी ध्यान

सा

में रखिये। "म प गु रे, म प, नि धु, प," यह भाग अधिकतर तुमको दिखाई देगा। यह जौनपुरी का एक अंगवाचक भाग है, ऐसा भी यदि तुम मानकर चलो तो कोई हानि नहीं। ऐसे समय में रागभेद दिखाने के लिये तुम्हारे पास निषाद का नियम है ही। आसा-

सा

वरी गाते समय कोई गायक, "प गु, रे म प" यह टुकड़ा यदि बारम्बार लेने लगे तो उसके राग पर जौनपुरी की छाया अवश्य पड़ेगी।

प्र०—इन ख्यालियों ने कितनी निरर्थक उलझन पैदा करदी है! यदि इन्होंने भैरवी थाट की आसावरी वैसी ही रखी होती तो जौनपुरी कितनी सरलता पूर्वक पृथक रखने में सुविधा होती। किन्तु उन्होंने वहां तानों की सुविधा को अधिक महत्व दिया। अस्तु! अब उस पर पछताने से क्या लाभ? तो फिर अब हम यह मानकर चलते हैं कि "सा रे म प, धु सां सां नि धु प म गु रे सा" यह प्रकार आसावरी का है तथा "सा रे म प धु नि

म सा

सां, सां नि धु प म गु रे सा" यह जौनपुरी का है। इसके अतिरिक्त "म प गु, रे, म प" यह भाग जौनपुरी में जीवभूत है तथा आसावरी में ऐसा नहीं। आसावरी में जौनपुरी की अपेक्षा धैवत विशेष परिमाण में रहेगा। "म प नि धु, नि धु, प, सां नि धु

सा सा

प, म प गु, रे म प, नि धु, प, धु म प, गु, रे, सा, ऐसा चलन दिखाई देते ही जौनपुरी की ओर हमारा ध्यान जायेगा। उसमें म प धु, नि सां, नि सां, धु नि सां रें गुं, रें सां, रें सां, नि धु प, म प नि धु, प, इस प्रकार दिखाई दिया तो राग जौनपुरी है, आसावरी नहीं, यह हम निश्चित रूप से कह सकेंगे! क्यों ठीक है न?

उ०—परिस्थिति को देखते हुए तुम्हारे विचार गलत नहीं कहे जा सकते। जो लोग निषाद का तथा पूर्वाङ्ग का नियम तोड़कर आसावरी गाते हैं उनका राग

'जौनपुरी-आसावरी' है ऐसा कहना पड़ेगा। ये दोनों राग हमेशा एक दूसरे में मिलते हैं, यह मैं कह ही चुका हूँ। एक ही बैठक में आसावरी तथा जौनपुरी तुम्हारे सुनने में बहुत कम आयेगी। यदि आई भी तो आसावरी में कोमल ऋषभ लिया हुआ दिखाई देगा। जौनपुरी राग, 'नटभैरवी' थाट में जायगा, यह दीखता ही है। इस राग का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार होगा:—

इसकी जाति षाडव-सम्पूर्ण है। वादी स्वर धैवत है। व्यवहार में इसका समय

म सा

प्रातःकाल का दूसरा प्रहर मानते हैं। पूर्वाङ्ग में "म प ग, रे म प" यह टुकड़ा आने से इस राग का आविर्भाव होता है तथा "म प नि ध प, ध, प, सां नि ध, प, म प ध म प ग" इस समुदाय में राग का तिरोभाव होगा। कुछ गायक ऐसा सुझाव देते हैं कि जौनपुरी में पंचम तथा ऋषभ वादी संवादी मानने चाहिये तथा यह राग आसावरी के बाद गाना चाहिये। तथापि प्रचार में धैवत को वादी स्वर मानने का चलन है, यह गलत नहीं। एक गायक ने मुझसे कहा कि आसावरी की शुरुआत, "सा ध ध ध, ध,

म म

प, म प, ग, रे सा, रे नि ध सा, रे ग रेसा," इस प्रकार करनी चाहिये तथा जौनपुरी की

म सा

"म प नि ध प, सां, नि ध, नि ध, प, म प ग, रे म, प" इस तरह करनी चाहिये, इससे ये दोनों पृथक रखे जा सकेंगे। उसका यह कथन अनुचित नहीं, परन्तु प्रचार में सब गीत इस प्रकार गाये हुए नहीं दिखाई देते।

प्र०—कोई हर्ज नहीं! आसावरी तथा जौनपुरी का संयोग ख्यालियों के गानों में दिखाई देगा, ऐसा समझकर हम चलेंगे। देस सोरट, परज कालिंगड़ा, भैरव रामकली, भीमपलासी धनाश्री, काफी सिन्दूरा आदि राग प्रचार में दीखते ही हैं न? किन्तु ठहरिये! अभी-अभी आपने कहा था कि कुछ गायक आसावरी में दोनों ऋषभ लेते हुए दिखाई देते हैं, तो फिर स्वतन्त्र नियम से इस प्रकार की आसावरी, जौनपुरी से पृथक नहीं रखी जा सकती क्या? जौनपुरी में कोमल ऋषभ हम कभी नहीं लेते, ऐसा मानकर यह प्रश्न आप से कर रहे हैं?

उ०—तुम्हारे जैसे बुद्धिमान के मन में ऐसा प्रश्न उत्पन्न होना सम्भव ही था, जौनपुरी में कोमल ऋषभ कभी नहीं आयेगा, यह बिलकुल ठीक बात है। तुम कहते हो उसी तरह से ये दोनों राग सहज ही पृथक हो जाते हैं, किन्तु अपने अनेक ख्याल गायक आसावरी में दोनों ऋषभ नहीं लेते, यह पहली बात। दूसरी बात यह है कि यदि वे उस प्रकार लेने लगें तो उनका वह अव्यवस्थित राग किसी और निराले राग के समान हो जायगा, ऐसा सम्भव है।

प्र०—वह कौनसा राग होगा?

उ०—उस राग का नाम गान्धारी है। गान्धारी के सम्बन्ध में भी प्रचार में थोड़ा बहुत मतभेद है। किन्तु इसका विचार यहां बीच ही में करना असंगत होगा। आगे गान्धारी का वर्णन आयेगा ही।

प्र०—गांधारी का विचार बीच में करना उचित नहीं होगा, यह आपने ठीक ही कहा है। आप यह भी बता चुके हैं कि जौनपुरी राग आधुनिक तथा यावनिक है। इसलिये उसको ग्रन्थाधार तो प्राप्त होगा ही नहीं, किन्तु देशी भाषा के ग्रन्थों में उसका उल्लेख मिलने की सम्भावना है। यदि ऐसा हो और आप हमको बतायें तो अत्युत्तम होगा?

उ०—हां, इस विषय की ओर मैं बढ़ने ही वाला था। देशी भाषा के ग्रन्थकार जौनपुरी को एक तोड़ी प्रकार समझते हैं।

प्र०—किन्तु तोड़ी का तो थाट ही अलग है न?

उ०—तुम हिन्दुस्तानी तोड़ी को समझ रहे हो। संस्कृत ग्रन्थकारों की तोडी अपने भैरवी थाट के समान थी, यह तो तुम्हें पता ही है। आसावरी, गान्धारी, खट, झीलफ, देशी, जौनपुरी ये सारे तोड़ी प्रकार मानने वाले अनेक गायक दिखाई देंगे। अब ये सब राग उत्तम रीति से पृथक-पृथक करके दिखाने वाले गायक-वादक कदाचित् बहुत ही कम मिलेंगे। किन्तु अच्छे जानकार लोग हैं ही नहीं, ऐसा कहना तो दुःसाहस होगा। इस राग का सम्बन्ध तोड़ी से है, ऐसा दिखाने के लिये कभी-कभी सर्वथा निरर्थक प्रयत्न भी गायक करते हैं। वे अपने प्रकार में बीच-बीच में बड़े अशोभनीय ढङ्ग से तीव्र मध्यम लाने का प्रयत्न करते हैं। वस्तुतः ग्रन्थों के तोड़ी को देखें तो तीव्र मध्यम लेने की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु ग्रन्थों में तोडी किस प्रकार दी गई है, यह उन्हें कौन बताये? अस्तु, अब राधागोविन्दसार में जौनपुरी किस प्रकार वर्णित है, वह कहता हूं:—

"शिवजीनें उन रागनमेंसां विभाग करिवेको अपने मुखसों टोडीसंकीर्ण कानडी गाइके वाको जौनपुरी नाम कीनो।"

प्र०—ठहरिये! अभी-अभी आपने कहा था कि पुण्डरीक ने तौरुष्कतोड़ी कर्नाट मेल में कही है। उसीके आधार पर इस पण्डित ने अपने वर्णन में "कानडी" रागनाम दे दिया है क्या?

उ०—यह कैसे कहा जा सकता है? जौनपुरी में "टोड़ी तथा कानडा" का कुछ अन्शों में मिश्रण हो सकता है, ऐसा कुछ जानकारों का मत है। कुछ गुणीलोग तो यह भी कहते हैं कि आसावरी, जौनपुरी, सूहा, सुघराई आदि दिनगेय राग दरबारी, अडाना, शहाना आदि रात्रिगेय रागों के "जवाब" हैं। ऐसा संकेत मैं पहले भी कर चुका हूं। यह जवाब का विषय भी मनोरन्जक तथा मनन करने योग्य है, ऐसा मेरा मत है। उधर अब विद्वानों का ध्यान भी जाने लगा है, यह संगीत की उन्नति का ही एक लक्षण है। "सा रे म प, नि प," यह भाग रात्रि तथा दिन के अनेक रागों में सामान्य है। एकबार राग स्वरूप बहुमत से जो निश्चत हो गया तो फिर यह सारा भाग सुव्यवस्थित होना कठिन नहीं। ऐसी व्यवस्था से अपने संगीत का गौरव विशेष बढ़ेगा तथा यह विषय सीखने-सिखाने के लिये अत्यन्त सुगम हो जायगा। इतना ही नहीं, वरन् नवीन राग रचना करने के लिये भी यह एक बड़ा साधन होगा। निर्दिष्ट आरोहावरोह से विभिन्न समय

में गाने योग्य उत्तमोत्तम रागों का निर्माण किया जा सकेगा तथा उनमें वादी संवादी की व्यवस्था शास्त्राधार पर की जा सकेगी। किन्तु संगीतसार में आगे क्या कहा गया है, वह भी तो सुनो ?

प्र०—हां, कहिये ?

उ०—आगे वह कहता है, "उजल बर्फ सरीखो जाको रंग है। रंग विरंगे वस्त्र पेहरे हैं। सब अंगन में आभूषण पेहरे हैं। बडे जाके नेत्र हैं। एक हात में खड्ग है। दूसरे हाथमें वीणा है। सिद्धचारण जाकी स्तुति को हैं। ऐसी जो रागिणी तांहि जौनपुरी जानिये। शास्त्रमें तो यह सात सुरनमें गाई है। सा रे ग म प ध नि सा। यातें संपूर्ण है। दिनके दूसरे पहर में गावनी। यह तो याको वख्त है। दूपहरतक चाहो तब गाओ।"

प्र०—शास्त्र अर्थात् इनका कल्पना शास्त्र ही समझना चाहिये न ?

उ०—यही नहीं, संगीत दर्पण में तोडी का ध्यान इस प्रकार दिया गया है:—

तुषारकुंदोज्ज्वलदेहयष्टिः ।
काश्मीरकर्पूरविलिप्तदेहा ।
विनोदयन्ती हरिणं वनान्ते ।
वीणाधरा राजति तोडिकेयम् ।

तोडी में कानडा मिलना चाहिये तो "कानड़ा" का "ध्यान" भी आवश्यक था। वह दर्पण में इस प्रकार है:—

कृपाणपाणिर्गजदन्तखंडमेकं वहन्ती निजहस्तकेन ।
संस्तूयमाना सुरचारणौघैः सा कानडेयं किल दिव्यमूर्तिः ॥

क्यों ? अब जौनपुरी का चित्र सशास्त्र हुआ कि नहीं ? एक हाथ में वीणा और एक में खड्ग धारण करके वीणा कैसे बजेगी ? इस प्रकार का प्रश्न तुम जैसे विज्ञ नहीं पूछेंगे, यह मैं जानता हूं। प्रतापसिंह ने ही तमाम रागों की उत्पत्ति तथा स्वरूप लिखने का ठेका ले लिया था, यदि यह मान लिया जाय तो आगे किसी प्रश्न के लिये जगह नहीं रहती।

प्र०—इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करने में समय गंवाना व्यर्थ है; बस ऐसा समझकर हमें चलना चाहिए। प्रतापसिंह का कुछ मत बिलकुल निरर्थक सा जान पड़ता है, यह कहना ही पड़ेगा। संभव है, आपको हमारा यह कथन पसन्द न हो ?

उ०—यद्यपि अपनी विचार शैली तुमने ठीक ढंग से व्यक्त नहीं की, तो भी मुझे उसमें भलाई-बुराई देखने की आवश्यकता नहीं। वे मेरे कोई सम्बन्धी तो हैं नहीं ? लेखकों

ने अपने ग्रन्थ लिखकर लोगों के सामने प्रस्तुत किये, अतः भला बुरा कहने का अधिकार पाठकों को ही होगा। मेरा कहने का तात्पर्य तो इतना ही है कि प्रत्येक ग्रन्थ से उपयुक्त भाग लेकर हमको संग्रह कर लेना चाहिये तथा जो अनुपयुक्त हो उसे छोड़ देना चाहिये। हमसे यह कौन कहता है कि अनुपयुक्त भाग भी लेना ही चाहिए? प्रतापसिंह का शास्त्रवर्णन जहां कहीं हमें योग्य दिखाई दिया तो उसे ले लिया और जो हमें निरुपयोगी जान पड़ा, उसे छोड़ देना ही चाहिये। वे राजा थे तथा गुणी लोग उनके आधीन थे, अतः कहीं-कहीं उनके राग स्वरूप काम में आने लायक भी होंगे। पन्नालाल गोस्वामी के शास्त्रज्ञान पर हम अनेक बार टीका करते आये हैं, किन्तु वे एक उत्तम सितारिये थे; यह भी हम स्वीकार करते आये हैं। उनके अनेक रागरूप हमने पसन्द भी किये हैं। मुसलमान गायक-वादकों की अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता अधिक दिखाने के अभिप्राय से खींचतान कर कुछ शास्त्राधार प्राप्त करके उन्होंने अपने ग्रन्थ में सम्मिलित किये होंगे,ऐसा मेरा अनुमान है। इस ग्रन्थ की आलोचना हम इस दृष्टि से कर रहे हैं कि इस प्रकार के मिथ्याभिमान में पड़कर आगे ऐसे ग्रन्थ और प्रकाशित न हों। केवल एक ही ग्रन्थ एक सुशिक्षित का लिखा हुआ मेरे देखने में आया, उसमें कुछ विद्वानों की दी हुई सम्मतियाँ भी मेरे देखने में आईं। ग्रन्थों में जो रागस्वरूप दिये हैं, उनके योग्यायोग्य होने की बाबत मुझे कुछ नहीं कहना है। यह बात तो सिखाने वाले की शैली पर अवलम्बित रहेगी; किन्तु रागरागिनी के चित्र (ध्यान) तथा शास्त्राधार मुझे कुछ स्थानों पर बहुत ही अव्यवस्थित दिखाई दिये। ग्रन्थकारों ने जो संस्कृत आधार लिये हैं, उनका मर्म वे बिलकुल नहीं समझे, ऐसा भी मुझे जान पड़ा। पता नहीं ऐसे ग्रन्थों से विद्यार्थियों का क्या हित होगा? खैर, प्रतापसिंह ने जौनपुरी का जंत्र कैसा दिया है, वह देखो:—

जौनपुरी टोड़ी—संपूर्ण.

ध	ग	रे	ग	ध	सां
प	रे	म	रे	प	ग
ध	ग	प	सा	सां	रे
प	रे	ग	रे	नि	सा
म	सा	रे	सा	रें	रे
प		सा			सा

प्र०—इस स्वरूप में हमको जौनपुरी के लक्षण बिलकुल नहीं दीखते। आरोह में 'सा रे म प' इस प्रकार हैं जोकि आसावरी के समान भी दिखाई देंगे।

उ०—तुम्हारी यह शंका यथार्थ है; किन्तु आसावरी के जंत्र में उन्होंने दोनों गन्धार लिये थे, वह तुम्हारे ध्यान में होंगे ही। मेरी समझ से, म प नि ध प, ध प, म प (म सा) ग, रे, म प, ध म प (सा) ग, रे सा। म प ध, नि सां, सां रें सां, गं रें सां, नि सां, रें सां, ध, नि प, म प ध नि सां, गं रें सां, नि सां, रें ध, ध, प, म प नि ध प, ग, रे, सा।' इस समुदाय से तुम जौनपुरी की पहिचान करो तो हितकारी होगी।

प्र०—हमने ऐसा ही निश्चय किया है। अच्छा, नादविनोदकार जौनपुरी कैसी बताते हैं?

उ०—वे कहते हैं:—

कोकई लिबास पहने हुए कंधेपे रख्खी है बीन जिसने, सदाशिवको प्रसन्न करने के अर्थ श्री पार्वती की अस्तुति कर रही जो अतिसुन्दर ऐसी जौनपुरी रागिनी है।

संभवतः इनको संस्कृत आधार कहीं प्राप्त नहीं हुआ। आगे कहते हैं:—

आलाप-सरगम जौनपुरी-टोडी की.

रे नि सा, रे म, म ग, म प, ध प, म प ग ग, रे सा, रे रे सा सा।

म म प प ध ध सां नि नि सां, ध ध प, ध ध प, ग ग, म प ग, ग, रे रे सा।

यह स्वर विस्तार जौनपुरी का अच्छा उदाहरण नहीं समझना चाहिए। स्वर जौनपुरी के हैं। गायक वादकों को अपने रागों के नियम इस ढंग से प्रस्तुत करने चाहिए कि श्रोता स्पष्ट रूप से उन्हें समझ जायें। अब राजा साहेब टागौर जौनपुरी कैसे बताते हैं, वह भी देखोः—

सा, रे म (सा) ग, (सा) रे, रे सा, रे म प (म) ग, रे सा, म म प, म प, प नि ध, रें सां, रें सां, नि ध, प ध म प (म) ग, रे, सा।

म प नि ध, सां, सां, ध सां, सां, रें सां, रें गं, रें सां, रें नि नि ध प, म प ध, रें सां, सां, नि ध प ग, रे सा।

ये अपनी आसावरी में ऋषभ कोमल मानते हैं! अतः इनको जौनपुरी इनकी आसावरी से भिन्न होगी ही।

प्र०—ठीक है। इस विस्तार में '(म) ग रे म प' यह टुकड़ा नहीं है, लेकिन उनको इसकी आवश्यकता भी नहीं, ठीक है न?

उ०—हां, ठीक है। वह टुकड़ा उन्होंने गान्धारी में रखा है इसलिये उनके तीनों राग भली प्रकार पृथक हो सकेंगे। वस्तुतः इन तीनों रागों को इसी प्रकार पृथक रखना अधिक सुविधाजनक होता; किन्तु ख्याल गायकों को यह तथ्य पसन्द न आने के कारण ही सारी उलझन पैदा हुई तथा उन रागों को नियमबद्ध करने में कुछ कठिनाई व कमी हुई, किन्तु इसका इलाज क्या है ? अब कल्पद्रुमकार का जौनपुरी वर्णन देखिये:—

देसी बहादुरी अडाइका मिले तीनहूं आय।
जौनपुरी उतपत भई प्रहर दिन चढ़े याय॥

म सा
सा, रे मं प, रे म प, ध प, रे म प ध म प ग, रे म प,

स्पष्ट ही यह प्रचलित स्वरूप के अत्यन्त निकट है। इसे तुम ध्यान में रखो। नगमाते आसफीकार ने जौनपुरी का वर्णन नहीं किया। मेरी समझ से अब अन्य कोई उल्लेखनीय मत शेष नहीं रहा।

प्र०—कोई हर्ज नहीं। वर्तमान ग्रन्थों के मत हमको नहीं चाहिये। बस अब हमको जौनपुरी का थोड़ा सा विस्तार करके दिखा दीजिये ?

उ०—ठीक है। तो फिर सुनो:—

सा, रे म प, नि ध, प, म प ध प ग, रे, सा, रे म, प।

सा, रे म, प, नि ध, नि ध, प, ध म प, ध ग, रे, सा, रे म, प, नि ध प।

म सा
म प नि ध, ध, प, सां, नि, ध, प, रे म प, नि ध, नि ध, प, म प, ग रे म प, नि ध,
सा
प म प ध म प ग, रे, सा। रे म प, नि ध, प।

म म सा
सा, रे सा, ग, रे सा, प ग, रे सा, रे म प, नि ध, नि, ध, प, ग रे म प, नि ध, प, ध म प ग, रे, रे, सा, रे म प।

म सा
सा, रे नि़ सा, रे म प, ग, रे, सा, सा, रे म प, नि ध, सां नि ध, प, सा रे म प, नि
म सा सा
ध, नि ध, प म प ग रे म प, नि ध, प, म प ध म प ग, रे, सा।

सा, रे सा, ग, रे सा, म ग रे सा, म प ध म प ग, रे सा, रे म, रे म प, ध, प, नि ध,
म सा सा
प सां, नि, ध, प, ग रे म प, नि ध, प, म प ध म प ग, रे, सा। म प नि ध, प।

सा रे म प, रे म प, नि ध, सां, नि ध, ध, प, रे म प, रें सां, नि ध, नि ध, प, म प
म सा
सां, नि ध, प, ध प म प, ग रे म प, ध ग, रे, सा। रे म प नि ध, प।

सा, रे नि़ सा, रे म प ध ग, रे सा, रे म प नि ध, नि ध, सां, नि ध, रें सां, नि ध,
म सा
नि ध, प, रे म प, गं गं रें रें सां, रें सां, नि ध, नि ध, प, ग रे म प, नि ध, प, नि ध, प, म प ध म प ग, रे, सा, रे म प नि ध, प।

सा
सा, रे नि़ ध़, नि़ ध़, प़, ध़, नि़ सा, ग ग रे सा, रे म प ध ग, रे सा, रे म प नि ध,
सा सा
प, म़ प़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, नि़ सा, ग ग रे सा, प ग, रे, सा, नि ध, नि ध, प, रे म प,
म सा
सां, नि ध, नि ध, प, म प ध म प, ग, रे, सा।

सा
सा, रे नि़ ध़, नि़ ध़, प, म़ प़ ध़, नि़ ध, नि़ सा, म ग, रे, सा, नि ध, प, ध, म प
म सा
ग रे म, प नि ध, सां, नि ध, नि ध, रें सां, नि ध, सां नि ध, ध, प, रे म प, गं गं रें सां, रें सां, नि ध, सां, नि ध, प, म प नि ध, प, म प ध म प ग, रे, सा।

म सा म म म
सा रे ग, रे, सा, प ग, रे, सा, रे म प ध ग, रे, सा, नि ध, सां, नि ध, रें सां, नि
म सा
ध, गं गं रें रें, सां, रें सां, नि ध, सां, नि ध, नि ध, प, ग रे, म प, गं रें सां रें नि ध, नि ध,
म सा
प, म प नि ध, प, म प ध म प ग, रे, सा, रे म प नि ध, प।

सा रे म, रे म प, रे म प, ध प, सां, नि, प, रे म प नि ध, नि ध, प, रें सां, गं रें
सा
सां, मं गं रें सां, रें सां, नि ध, नि ध, प, म प सां, नि ध, नि ध, प, म प ध म प ग, रे सा।

म सा
म प नि ध, प, ध म प ग, रे म प, नि ध, प, सां नि ध, रें सां, नि ध, गं गं रें सां,
सा
रें सां, नि ध, सां, नि ध, ध, प, म प नि ध, प, ध ग, रे, सा, रे म प नि ध, प।

म सा
प, म प ग रे, म प, सा रे म प, प, ध प, नि ध प, सां, नि ध, प, रें रें सां, रें सां, नि ध, प, सा रे म प नि ध, प, गं गं रें रें सां, रें सां, रें नि ध, नि ध, प, म प सां, नि ध,
म सा
प म प ध म प ग, प ग, रे, सा।

सां, रें सां, गं रें सां, नि सां, रें सां, नि ध, नि ध, प, म प ध नि सां, ध नि सां,
म सा
सां रें गं, रें सां, रें नि ध, नि ध, प, ग रे म प, नि ध, सां, नि ध, नि ध, प, म प, ध प ग, प ग, रे, सा। रे म प नि ध, प।

सां, नि सां, ध नि सां, म प ध नि सां, सा रे म प ध नि सां, नि सां, रें सां,

सां
गं रें सां, पं गं, रें, सां, रें सां, नि ध, सां, नि ध, नि ध, प, म प, गं, रें सां, रें सां, नि ध,

म सा
प, म प नि ध, प म प ध म प ग, प ग, रे सा। रे म प नि ध प।

म, प ध, नि सां, सां, ध नि सां, ध नि सां रें गं, रें, सां, रें सां, नि ध, नि ध, प, म प, गं रें रें सां, रें सां, रें नि ध, नि ध, प, म प-सां, नि ध, प, म प ध म प ग,

सा
रे, सा, म प सां ध, प।

इतना विस्तार पर्याप्त होगा न? यदि और चाहो तो जौनपुरी के पूर्वाङ्ग तथा उत्तरांग में नियम सम्भालकर इसी प्रकार जितना चाहो उतना कर सकते हो। किन्तु तुम्हारे जैसे बुद्धिमान शिष्य के लिये इतना काफी होगा, ऐसा मैं समझता हूँ। जौनपुरी अत्यन्त सरल रागों में ही माना जाता है तथा यह अनेक गायकों को आता है। यदि प्रातःकाल के समय की महफिल हुई तो उसमें सवेरे के अनेक राग जो गाये जाते हैं, उनमें बहुधा जौनपुरी तो रहता ही है। श्रोताओं को नियमों का सूक्ष्म ज्ञान नहीं होता इस कारण वे उसको आसावरी ही समझते हैं यह ठीक है, पर अनेक बार गायक स्वयं भी अपने राग को आसावरी कह देते हैं। और यदि कोई जानकार भी होते हैं तो कुछ कहते नहीं। मुझे याद है कि एक गायक ने तो 'यह ख्यालियों की आसावरी है, साहब' ऐसा भी एकबार महफिल में कहा था। यह राग अत्यन्त लोकप्रिय है, यह उत्तर रागों में होने

म सा
के कारण "नि ध, प, ग, रे, सा" इतना टुकड़ा गायकों के मुख से निकला कि श्रोताओं

नि नि
को राग की कल्पना होने लगती है। और यह ठीक ही है। ध, ध, प म प, म ग,

म सा
म रे, रे, सा;' 'नि ध, प, ध, म ग, रे, सा;' ध प, म प ग, रे सा, 'प ग, रे, नि सा' यह राग अवरोह के टुकड़े से ही स्पष्ट नहीं होता है क्या?

प्र०—अब अधिक स्वरविस्तार की आवश्यकता नहीं। हमको अब जौनपुरी की कल्पना भलीप्रकार होगई है। जौनपुरी किसी ने भी क्यों न रचा हो, किन्तु इसमें संदेह नहीं कि उसने एक अति मनोरंजक तथा सरल प्रकार लोगों के लिये बना दिया है?

उ०—हां, तुम्हारा कहना ठीक है। कोमल ऋषभ की वह आसावरी तथा उसका गन्धार निषाद का नियम गायकों को गाने में तथा श्रोताओं को देखने में अत्यन्त असुविधाजनक था। यह जौनपुरी राग तुम्हारे ध्यान में आगया है, अतः तत्सम्बन्धी अब विशेष चर्चा न करके बस उसकी एक दो छोटी सी सरगम कहे देता हूँ। वे सरगम इस प्रकार होंगीः—

सरगम-जौनपुरी-त्रिताल.

प									म	सा					
म	म	प	नि	ध	प	ध	म	प	ग	रे	म	प	ऽ	प	ऽ
०				३				×				१			

ध	ध	प	नि	ध	प	ध	म	प	मग	ऽ	रे	सारे	रे	सा	ऽ
सा	रे	म	रे	म	प	ध	प	मप	गं	रें	सां	रें	नि	ध	प

अन्तरा.

म	प	निध	नि	सां	ऽ	नि	सां	निध	नि	सां	गं	रें	सां	निध	प
०				३				×				२			
मप	गं	रें	सां	रें	सां	ध	प	सां	नि	ध	प	मग	ग	रे	सा

सरगम (२) जौनपुरी–त्रिताल.

प	नि	ध	प	ध	म	पध	मप	मग	सारे	म	म	प	ऽ	प	ऽ
०				३				×				२			
नि	ध	प	ऽ	ध	म	पध	मप	मग	ऽ	ऽ	रेसा	रे	ऽ	सा	ऽ
सा	रे	म	ऽ	रे	म	प	ऽ	रें	सां	ऽ	रें	नि	नि	ध	प

अन्तरा.

म	म	प	निध	ऽ	ध	नि	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	नि	नि	सां	ऽ
०				३				×				२			
निध	ध	नि	सां	ऽ	रें	मंगं	ऽ	रें	रें	सां	ऽ	रें	नि	ध	प

म	प	सां	ऽ	नि॒	ध॒	ऽ	प	ध॒	म	पध॒	मप	ग॒	ऽ	रे	सा
सा	रे	म	ऽ	रे	म	प	ऽ	प	ग॒ं	रें	सां	रें	नि॒	ध॒	प

ये सरगम "कलावन्ती" के ढङ्ग की नहीं, यह स्पष्ट ही है। किन्तु इनमें रागनियम का पालन किया है, इतनी ही इनकी विशेषता है।

प्र०—ये हमारे काम में आ सकेंगीं। बस, अब जौनपुरी के लक्षण हमको श्लोकों के द्वारा बता दीजिये ?

उ०—हां, अब ऐसा ही करता हूँ। सुनोः—

आसावरीसुमेलोत्था जौनपुरी गुणिप्रिया।
सुलतानहुसेनेन निर्मितेयमिति प्रथा ॥
धैवतः संमतो वादी कैश्चित्पंचम ईरितः।
गानमस्याः समीचीनं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
प्रारोहे स्याद्गवर्ज्यत्वमवरोहे समग्रकम्।
गरिमपस्वरैर्नित्यं स्वस्वरूपं प्रकाशयेत् ॥
आसावरीसमीपत्वात्तदंगं प्रस्फुटं क्वचित्।
रोहणे गनिवर्ज्यत्वादासावरी भिदां भजेत् ॥
आधुनिकमिदं रूपं यवनैः संप्रसाधितम्।
इति सुसंमतं लक्ष्ये नूनं रक्तिप्रदायकम् ॥
तौरुष्कतोडिका ख्याता प्राचीनोक्ताऽत्र लक्ष्यके।
जौनपुरी कदाचित् स्यादिति कुत्रापि संमतम् ॥
आसावरीमध्यमादियोगोऽत्र सूचितः क्वचित्।
गांधार्यासावरीयोगः कैश्चिदन्यैः प्रसूचितः ॥

लक्ष्यसंगीते।

प्रख्याता जौनपूरी मृदुगमधनिका रोहणे गेन हीना
संपूर्णा चावरोहे नियतमभिहितो धैवतश्चात्र वादी।
गांधारः स्यादमात्यः प्रकटयति सदाऽऽसावरीतुल्यरूपम्
गानं चास्या द्वितीयप्रहरसुमुचितं प्राह एवोपदिष्टम् ॥

कल्पद्रुमांकुरे।

कोमला गमधनयो यस्यां सैव धवादिनी ।
गसंवादिन्यभिमता जौनपूरीच संगवे ॥

चन्द्रिकायाम ।

कोमल गमधनि तिख रिखब चढत गंधार न होइ ।
धग वादी संवादितें जौनपुरी कहि सोइ ॥

चन्द्रिकासार ।

मपौ धनी सनी धश्च पमौ पगौ रिसौ तथा ।
जौनपूरी भवेद्धांशा प्रारोहे गनिवर्जिता ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—जौनपुरी राग भी हमारी समझ में खूब अच्छी तरह आगया । अब क्या "गांधारी" लेंगे ? किन्तु आगे चलने से पहले एक छोटा सा प्रश्न पूछता हूँ । "जौनपुरी" यह नाम "जौनपुर" शहर के नाम से पड़ा होगा, ऐसा समझ कर चलें तो कोई हानि तो नहीं ?

उ०—कोई हर्ज नहीं । वस्तुत: ऐसा ही प्रतीत होता है । उत्तर प्रदेश में जौनपुर एक प्रसिद्ध शहर है, यह बनारस के निकट है, वहां सुलतानहुसेन शर्की हुए हैं, ऐसा कहा जाता है । यदि यह राग अमीर खुसरो के घराने के गायकों का मान लें, तो वे सुलतान हुसेन के दरबार में नौकर होंगे और संभवत: उस राजा को यह राग बहुत प्रिय लगा होगा, ऐसा प्रतीत होता है । वास्तव में यह कोई चमत्कारिक राग नहीं है । आसावरी तथा गान्धारी इन दोनों के मिश्रण से यह जौनपुरी राग उत्पन्न हुआ है । इस मिश्रण में कोई विशेष चातुर्य या कुशलता हो, सो भी बात नहीं । तो फिर किसी ने भी इसे प्रचलित किया हो, उसकी हमें विशेष खोज करने की आवश्यकता नहीं । इस राग के प्रचार में आने से आसावरी, जौनपुरी तथा गान्धारी में एक उलझन पैदा होगई है । आज महाराष्ट्र में बहुधा जौनपुरी ही गाते हैं और उसे आसावरी समझते हैं,इसमें संशय नहीं ।"गांधारी" स्पष्ट नियमों के आधार पर प्रथक करके गाने वाले गायक अपने यहां बहुत कम मिलेंगे और इसका कारण भी तुम शीघ्र ही जान जाओगे, क्योंकि तुमने अभी-अभी गांधारी सीखी है । राजा साहेब टागौर सुलतान हुसेन शर्की को "ख्याल कर्ता" की पदवी देते हैं । इससे यह न समझना कि ख्याल गाने की पद्धति सुलतान के पूर्व किसी को विदित न थी । राजा मान को जिस प्रकार "ध्रुपदपिता" की उपाधि देते थे, उसी प्रकार सुलतान हुसेन शर्की को "ख्याल कर्ता" की उपाधि मिली होगी । अमुक जाति का गीत, अमुक व्यक्ति ने, अमुक समय में सर्व प्रथम उत्पन्न किया, यह ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में निश्चय पूर्वक कहना आसान नहीं । यह मैं तुमको पहिले भी बता चुका हूँ । अस्तु, अब हम गांधारी की ओर बढ़ें ।

"गांधारी" एक तोड़ी प्रकार ही है, ऐसा हम गायकों से प्राय: सुनते हैं । तोड़ी के अनेक प्रकार हैं, उनमें गांधारी की भी गणना होती है । "गान्धारी" नाम "गांधार"

देश के नाम से पड़ा है, ऐसा मानते हैं। प्राचीन काल के "गान्धार" प्रान्त को आज "कन्धार" कहते हैं, ऐसा इतिहास से विदित होता है। प्राचीन काल में अफगानिस्तान हिन्दुस्तान का ही एक भाग था, ऐसा कहा जाता है। "कन्धार" अथवा "गान्धार" उस देश के महत्वपूर्ण स्थान माने जाते हैं। किन्तु हम राग नामों के इतिहास के झमेले में नहीं पड़ेंगे।

प्र०—'गान्धारी' राग अत्यन्त प्राचीन होगा, ऐसा उसके नाम से विदित होता है।

उ०—हां वह बहुत प्राचीन है। "गान्धारी" नाम अपने अधिकांश प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारों को विदित था। आसावरी तथा गान्धारी यह दोनों राग प्राचीन काल से अपने देश में प्रसिद्ध हैं। आगे बढ़ने से पूर्व एक छोटी सी बात की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, वह यह कि अपने यहां "देवगन्धार, गान्धार तथा गान्धारी" यह तीन नाम बारम्बार सुनने में आते हैं। तब ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह तीनों राग प्रथक माने जांय अथवा यह तीनों एक ही राग के नाम समझे जांय?

प्र०—हां, यह प्रश्न स्वतः ही उत्पन्न होता है। इसका उत्तर क्या होगा?

उ०—इसका उत्तर तो तुम्हें आगे चलकर स्वयं प्राप्त हो जायगा, किन्तु आगे बढ़ने के पूर्व इतना कहे देता हूं कि प्रचार में "देवगान्धार" तथा "गान्धार" यह एक ही माने जाते हैं, तो अब प्रश्न "देवगान्धार अथवा गान्धार" और "गान्धारी" इन दो रागों का रह जाता है। यह दोनों राग प्रथक माने जांय, ऐसा अनेक गायकों का मत दिखाई पड़ता है, किन्तु इन्हें प्रथक रूप से गाकर दिखाने वाले कलाकार बहुत कम मिलेंगे। कोई ऐसा भी कहता है कि "देवगान्धार" राग ध्रुपदियों का है तथा "गान्धारी" ख्यालियों का है। लेकिन गान्धारी में मैंने ख्याल तथा ध्रुपद दोनों ही सुने हैं। मुसलमान गायकों को देवगान्धार नाम बहुधा विदित नहीं है, वे सदैव गान्धारी नाम का प्रयोग करते हैं। गान्धारी के पश्चात् देव गान्धार गाने के लिये यदि उनसे कहा जाय तो वह कहने लगते हैं "हमको यह राग नहीं आता।" हमारे हिन्दू गायक "देवगान्धार" तथा "गान्धारी" पृथक राग मानते हैं। किन्तु इनका भेद बहुत कम लोगों को मालुम है। तो फिर उस में कुछ भेद है भी अथवा नहीं, यह जानने की उत्कंठा यदि तुम्हें हुई तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

प्र०—सो तो हुई है, यह नम्रतापूर्वक हम आपसे कहते हैं।

उ०—यह "गान्धारी" राग प्राचीन तथा ग्रन्थोक्त होने के कारण पहिले हमें यह देख लेना चाहिए कि अपने ग्रन्थकारों ने इस राग के सम्बन्ध में क्या कहा है।

प्र०—ठीक है। जब इस राग के सम्बन्ध में हम जानना ही चाहते हैं तो फिर अभी इस पर विचार कर लिया जाय?

उ०—हां, गान्धारी का अति प्राचीन स्वरूप देखने के लिये हमें 'सङ्गीत रत्नाकर' की ओर ध्यान देना पड़ेगा। मुझे क्षण भर ऐसा प्रतीत हुआ कि कदाचित् जयदेव पण्डित

ने अपने प्रबन्धों में "गान्धारी" राग का एकाध प्रबन्ध कहा है। सम्भव है उस पर मल्लिनाथ की टीका में रत्नाकर के पूर्व के किसी ग्रन्थ में वर्णित गान्धारी का लक्षण मिल जाय, किन्तु वह ग्रन्थ प्रत्यक्ष देखने पर हमें यह बात नहीं दिखाई दी।

प्र०—किन्तु ऐसा लक्षण देखने के लिये आपके मन में क्यों उत्कण्ठा हुई, मल्लिनाथ के द्वारा कहे गये कुछ रागों के प्राचीन लक्षण आपने देखे थे। किन्तु मल्लिनाथ जयदेव के बहुत दिनों पश्चात हुआ है न?

उ०—हां, मल्लीनाथ तो जयदेव के बाद ही हुआ है, शायद इसने पुराने ग्रन्थों का आधार लिया होगा, यही जानने के लिये उन लक्षणों को देखने की आवश्यकता प्रतीत हुई, लेकिन उसमें सफलता नहीं मिली।

प्र०—जयदेव के काल व स्थल के सम्बन्ध में आपने संक्षिप्त विवरण दिया था, इससे अधिक जानकारी भी किसी विद्वान ने एकत्र की है क्या? विद्यापति के पहिले जयदेव हुआ है, आजकल 'पुराण वस्तु शोधक विभाग' इस प्रकार की खोज कर रहा है, इसलिये यह प्रश्न किया।

उ०—पुराण वस्तु शोधक विभाग के आधार पर तो नहीं, अपितु उत्तर प्रदेश की एक मासिक पत्रिका में एक लेखक ने जयदेव व विद्यापति के विषय में बहुत कुछ लिखा है।

प्र०—उनका इस सम्बन्ध में क्या मत है?

उ०—लेख विशेषतः विद्यापति पर ही है, यह लेख लखनऊ से प्रकाशित 'माधुरी' मासिक पत्रिका में, नलिनीमोहन सान्यास द्वारा 'विद्यापति की काव्य संपत्ति' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था, सारांश में लेख ऐसा है:—

"करीब ८०० वर्ष पहिले बंगदेश के वीरभूम जिले के केंदुविल्व नामक ग्राम में इस भारत विख्यात कवि का अर्थात् जयदेव जी का जन्म हुआ था। उन्होंने राधाकृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन कर संस्कृत भाषा में 'गीत गोविन्द' एक अति सुललित गीतिकाव्य लिखा था। स्थान-स्थान पर इस काव्य के भाव शुद्ध और उच्च हैं परन्तु अधिकांश स्थान साधारण लोगों को कुरुचिपूर्ण और लज्जाजनक मालूम होते हैं। भक्तिमार्ग की साधना में जो अत्यंत प्रवीण हैं, वही केवल इन सब स्थानों के गूढ़ रहस्यों को हृदयांगम कर सकते हैं। अन्यों के लिये ये विषवत् हैं, ऐसा क्वचित ही कोई मनुष्य होगा जो जयदेव के मधुर गीतों की आवृत्ति सुनकर मोहित न होता हो।

जयदेव गौड़ेश्वर महाराज लक्ष्मणसेन के सभा-कवि थे। 'गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः। कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ॥' (स. सा. पृष्ठ ३० ऐसा वर्णन है) लक्ष्मणसेन के पिता का नाम बल्लालसेन और पितामह का नाम विजयसेन था। विजयसेन ने मिथिला के कर्णाटक वंश के प्रतिष्ठाता नान्यदेव को पराजित किया था। संवत् ११७५ या ११७६ (१११८ या १११६ ईसवी) में बल्लानसेन की मृत्यु के बाद लक्ष्मणसेन को पितृ-राज्य का अधिकार मिला था। लक्ष्मणसेन प्रतापी राजा थे, उन्होंने वाराणसी तथा प्रयाग में जयस्तंभ स्थापन किया था और अपने राजत्वकाल के शेष भाग में मगध को सेनराज

मुक्त किया था। लक्ष्मणसेन का राजत्व काल सेनवंश की चरम उन्नति का समय था। लक्ष्मणसेन के राज्याभिषेक काल में एक नूतन अब्द की गणना होने लगी थी, यह लक्ष्मणाब्द या लक्ष्मण संवत् कहलाता था। मुसलमान विजय के बाद भी यह अब्द मिथिला में जारी रहा। सुना जाता है कि वर्तमान समय में भी यह यदा-कदा वहां व्यवहृत है। विख्यात डॉ. कलिहॉर्न ने प्रमाण दिया है कि इस अब्द का आरम्भ १११८-१६ ईसवी में है।

मुसलमानों के ठीक पूर्ववर्ती समय तक विंध्यपर्वतमाला का उत्तर स्थित और प्राग्-ज्योतिषपुर (आसाम) का पश्चिमस्थित वृहत भूखंड पांच भागों में विभक्त था। १-सारस्वत २-कान्यकुब्ज ३-गौड़ ४-मिथिला ५-उत्कल (उड़ीसा) यह पांच राज्य भिन्न-भिन्न राजाओं के शासनाधीन थे।

और इन पांच राजाओं में जो अधिक पराक्रांत होता था, वही पंच गौडेश्वर की उपाधि ग्रहण करता था। राढ़, वरेंद्र, बागरी, मिथिला और वंग, गौड़ देश के इन पांच विभागों को भी पंचगौड़ कहते थे। गौड़देशीय कई राजाओं को यह गर्वित उपाधि मिली थी; परन्तु देखा जाता है कि पीछे स्तुतिजीवियां ने तथा कवियों ने अपने-अपने राजाओं का अनुग्रह पाने के लिये इस उपाधि का दुरुपयोग किया। मिथिला के राजा शिवसिंह को विद्यापति ने पंचगौडेश्वर कहा है, यथा:—चिरंजिव रहु पंचगौडेश्वर कवि विद्यापति भाने "जयदेव का पदलालित्य अतुलनीय है। ६०० वर्ष पहिले दो कवि-एक मिथिला के और दूसरे बंगदेश के जयदेव के अब्द संवत् से विशेष मुग्ध हुए थे। दोनों ने आधुनिक भाषाओं में राधाकृष्ण को लीला विषयक वैसे ही मधुर गीतों की रचना करने की चेष्टा की थी और सफल भी हुए थे। पदावली साहित्य का आरम्भ विद्यापति और चंडीदास से ही है।"

प्रिय मित्र इस लेख के और अधिक उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं है। इतने से ही विद्यापति व जयदेव के स्थल काल की विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी। लोचन कवि ने अपने 'राग तरंगिणी' ग्रन्थ में विद्यापति के अनेक गीतों की रचना, अलंकारों के उदा-हरण प्रस्तुत करने के हेतु की है। लोचन कवि तो विद्यापति के बाद ही हुआ है। लोचन कवि ने अपने ग्रन्थ लेखन की तिथि का उल्लेख इस प्रकार किया है:—'श्री मद्बल्लालसेन-राज्यादौ। भुजवसुदशमित शाके। वर्षैकषष्ठिभागे मुनयस्त्वासन् विशाखायाम्। इस स्पष्टीकरण पर 'माधुरी' का लेख कुछ अधिक प्रकाश डाल सकता है क्या, यह विद्वानों के विचार करने का प्रश्न है।

प्र०—मेरे मन में भी एक विचार आया है, आज्ञा दें तो आपके सामने रक्खूं?

उ०—अवश्य कहो।

प्र०—जयदेव कवि ने कुछ प्रबन्ध भिन्न-भिन्न रागों में दिये हैं। आजकल गायक उन रागों को न गाकर, केवल अष्टपदियां नवीन-नवीन रागों में गाते हैं। लोचन

पण्डित विद्यापति के कुछ काल बाद ही हुआ, यह आधार भी है। लोचन मिथिला देश का कवि था, उसे जयदेव के रागों की बिल्कुल जानकारी ही नहीं थी, यह तो नहीं माना जा सकता।

उ०—तुम्हारा आशय मैं समझ गया। जयदेव की अष्टपदियां अनेक राग व तालों में न गाकर मूल रचित रागों में गाना क्या उचित नहीं होगा? लोचन के रागों के स्वर उसने अपनी तरंगिणी में स्पष्ट दिये हैं; और उसके मेल व स्वर जयदेवकालीन होने अधिक संभव हैं। कल्पना तुम्हारी अच्छी है, लेकिन जयदेव के राग अब लोचन के स्वरों की सहायता से कोई गाता होगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता कारण, लोचन के स्वर व राग नियमों में अब परिवर्तन हो गया है। जयदेव के समय में राग किस प्रकार गाये जाते थे, इस पर अवश्य कुछ प्रकाश पड़ता है।

जब यह विषय सामने आ ही गया है तो जयदेव ने अपने प्रबन्धों का वर्णन किस राग में किया है, व उन रागों के स्वर लोचन काल में यानी 'भुज व सुदशमितशाके' के समय समाज में किस प्रकार प्रचलित थे, इसका दिग्दर्शन करने के लिये राग व उनके स्वरों पर विचार करें। यहां विषयान्तर अवश्य हो रहा है, लेकिन यह भी उपयोगी ही है!

पं० जयदेव के गीत गोविन्द में २४ अष्टपदियां हैं। प्रत्येक अष्टपदी में आठ चरण होते हैं। इसकी रचना उसने अलग-अलग राग व तालों में की है। मैंने सुना है कि इन अष्टपदियों में से कुछ आज भी मूलतः उन्हीं रागों व तालों में "वीरभूम" की तरफ गाते हैं। इस विषय में मुझे शंका है; किन्तु जो सुना है सो तुम्हें बता रहा हूँ। इन अष्टपदियों के लिये जयदेव ने निम्न राग चुने हैं:—

१—मालव, २–गुर्जरी, ३–बसंत, ४–रामकरी, ५–देशाख, ६–वराडी, ७–केदार, ८–गुणकरी, ९–गौड मालव, १०–भैरवी, ११–देशीवराडी, १२–विभास। इन रागों पर मल्लीनाथ ने अपनी टीका में कुछ लक्षणों का उल्लेख किया है, लेकिन मेरे मत से उसका विशेष उपयोग नहीं है। उदाहरणार्थ–प्रथम प्रबन्ध मालव राग में है। मालव के लक्षण सुनो:—

नितम्बिनीचुंबितवक्त्रपद्मः शुकद्युतिः कुन्डलवान् किरीटी।
संगीतशालां प्रविशन् प्रदोषे मालाधरो मालवरागराजः॥

नारदसंहितायाम्॥

रूपक ताल में इस प्रबन्ध को गाना चाहिये, ऐसा उल्लेख है और रूपक का लक्षण 'रूपके स्याद् द्रुतं लघुः। अर्थात् यह छै मात्रा का ताल है, और वह इस प्रकार ०। लिखा जायगा।

दूसरा प्रबन्ध "बसंत" राग में है। टीकाकार ने बसन्त के लक्षण ऐसे दिये हैं:-

शिखंडिबर्होच्चयबद्धचूडः पुष्णन्पिकं चूतलतांकुरेण ।
भ्रमन्मुदावासमनंगमूर्ति र्मत्तो मतंगस्य वसंतरागः ॥

प्र०—यह लक्षण किसी काम के नहीं। इनमें स्वरों का बोध होने के लिये कोई मार्ग नहीं। इन तमाम रागों के लक्षण आगे के ग्रन्थकारों द्वारा कहे हुए दिखाई देंगे, किन्तु वे जयदेव के समय में ऐसे ही होंगे, यह कौन कह सकेगा ? चित्रों से रागों के रस कदाचित् निश्चित हो सकेंगे; किन्तु उनके स्वर कैसे निश्चित किये जांय ?

उ०—लोचन पंडित के लक्षण जयदेव के रागों के अधिक निकट होंगे, इस बात पर विद्वानों का सहमत होना सम्भव है। लोचन ने रागों के थाट स्पष्ट दिये हैं तथा हृदयनारायण ने वे ही थाट लेकर लोचन के रागों के लक्षण कहे हैं, यह भी अच्छा ही हुआ है। लोचन मिथिला का कवि तथा पंचगौड़ का होने के कारण उसके मत को मान्यता देना युक्तिसङ्गत भी होगा। उसके समय में जयदेव के अष्टपद अवश्य प्रचार में होंगे। अन्ततः ये सब सम्भव हैं, ऐसा समझकर हम जयदेव के राग लक्षणों का तरंगिणी की सहायता से अवलोकन करें।

पहिला राग "मालव" है। लोचन कहता है कि यह राग "गौरी" मेल का अर्थात् अपने हिन्दुस्तानी भैरव थाट का है। उसके लक्षण लोचन इस प्रकार कहता है (प्रकट है कि हृदयकौतुक से ये लक्षण लिये हैं। हृदय ने जन्यजनक व्यवस्था हूबहू लोचन की स्वीकार की है)

गमधाश्च पसौ रोहे रिसौ निधौ पसौ मगौ ।
रिसौ निसौ स्वरैरेभिर्मालवः परिगीयते ॥ कौतुके ॥

२ राग गुर्जरीः—इस राग का थाट भी गौरी है। लक्षण इस प्रकार हैं:—

गपौ धसौ सधपगा रिसाविति मताः स्वराः ।
औडुवस्वरसंस्थाना रागिणीगुर्जरी कृता ॥ कौतुके ।

राग वसंतः—इस राग का थाट भी गौरी ही है। लक्षण इस प्रकार हैं:—

मसौ निसौ निधपमा गरिसाः स्वरसत्तमाः ।
जायन्ते तेन कथितः संपूर्णोऽयं वसंतकः ॥ कौतुके ।

४ राग रामकरी—इस राग का थाट भी गौरी है, लक्षण इस प्रकार हैं:—

गपौ धसौ निधौ पश्च गमौ गरिससंयुतौ ।
प्रोक्ता रामकरी कापि संपूर्णा रागवेदिभिः ॥

इन चारों रागों के स्वरों में भी आगे बहुत ही थोड़ा अन्तर हुआ, ऐसा प्रतीत होता है। इसलिये जयदेव के समय में वे इन्हीं स्वरों में गाये जाते थे, यह कहना अनुचित नहीं होगा। इतना ही कहा जा सकता है कि इसी हृदयनारायण ने अपने हृदयप्रकाश में आगे चलकर इन रागों के अपने समय के प्रचलित वर्ज्यावर्ज्य नियम भी लगाये हैं। जैसे—

आरोहे पोज्झितो माद्यः पूर्णो धांशो वसंतकः।
गादिर्धांशा मनित्यागादौडुवेष्वथ गुर्जरी॥
आरोहे मनिहीना स्याद्गांधारादिकमूर्छना।
धैवतांशा च गन्यासा पूर्णा रामकली मता॥
प्रकाशे।

५ राग देशाख—इस राग का थाट मेघ है। उसके स्वर "सा रे ग म प नि नि सां" ये तुमको विदित ही हैं। लक्षण इस प्रकार हैं:—

रिमौ पमौ सधपमाः परिगमरिसास्तथा।
देशाखो हि विशेषेण षाडवः कथितो बुधैः॥ कौतुके॥

इस लक्षण में जो धैवत है वह अपना हिन्दुस्तानी कोमल निषाद है, यह तुम जानते ही हो।

धहीनः षाडवो गादिर्देशाखः परिकीर्तितः। हृदयप्रकाशे॥

६ वराडी—यह लोचन ने नहीं दिया, इसे अहोबल ने बताया है।

७ केदार—इस राग का मेल जो लोचन ने कहा है, वह अपना "बिलावल" है, यह तुम जानते ही हो। इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

आगे लक्षण इस प्रकार दिये :—

गमौ पसौ निधपगा मरिसा इति सुस्वराः।
केदारो रागराजन्यः संपूर्णः कथितो बुधैः। कौतुके।
× केदारः संपूर्णो गादिमूर्छनः। प्रकाशे।

८ गुणकरी—इस राग का थाट गौरी है। लोचन इसके लक्षण इस प्रकार बताता है:—

सरी रिमौ मपपसाः ससौ निधपमा मरी।
ससौ रिमरिसा वर्णैर्भवेद्गुणकरी स्वरैः॥ कौतुके।
औडुवेषु धगत्यागाद्गमया गुणकरी बुधैः॥ प्रकाशे।

इस राग को अब भी बहुत लोग इसी प्रकार गाते हैं।

९—**मालव गौड**—यह हिन्दुस्तानी भैरव थाट के नाम से प्रसिद्ध ही है। हृदय ने मालव तथा गौड ये दोनों राग इस थाट में कहे हैं। इस विषय में मैं कुछ नहीं कहूँगा।

१०—**भैरवी**—लोचन का भैरवी मेल अपना 'काफी' मेल होता है, यह मैंने पहिले ही तुम्हें बताया है। भैरवी में धैवत कोई कोमल लेते हैं, यह उनको विदित था।

कौतुककार कहता है:—

सर्वेषामथ रागाणां क्रियन्ते क्रमशः स्वराः।
तेषु सर्वस्वरेष्वाद्यः षड्जएवाभिधीयते ॥

प्रचार में ग्राम एक ही था तथा प्राचीन मूर्छना व जाति का झंझट नहीं था, यह उनके कथन से स्पष्ट ही होता है। समस्त सङ्गीत "जन्य व जनक" पद्धति पर आगया था, यह भी उस से स्पष्ट दीखता है।

११—**देशी वराडीः**—इस राग का लोचन तथा हृदय ने वर्णन नहीं किया।

१२—**विभासः**—इस राग को लोचन तथा हृदय ने गौरी मेल में सम्मिलित किया है। इसके लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

पधौ निसौ निधपमा गरिसाः कथिताः स्वराः।
भासमानो विभासोऽसौ संपूर्णो भुवि भासते ॥ कौतुके।
औडुवो मनिहीनत्वाद्विभासो गादिरिष्यते। हृदयप्रकाशे।

ग प ध॒ सां ध॒ प ग रे॒ ग रे॒ सा।

इसके अनुसार जयदेव की अष्टपदी के राग लोचन तथा हृदय के ग्रन्थों की सहायता से हमको मिल सकते हैं। इसके बहुत से राग भैरव थाट के हैं, यह तुमको दीखता ही होगा।

प्र०—यहां एक प्रश्न ऐसा उत्पन्न होता है कि, Sir Willian Jones साहेब को इन रागों के स्वर प्राप्त करने में इतनी कठिनाई क्यों हुई?

उ०—इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर कैसे दिया जा सकता है? वे यहां आये थे, तब देश में अनुकूल वातावरण न होगा अथवा कुछ संकुचित मनोवृत्ति वाले गायकों ने उन पर संदेह भी किया होगा। गीतगोविन्द में अपने यहां की देव लीला है तथा अष्टपदों में भगवान की स्तुति है, इसलिये परधर्मावलम्बियों को अपने सही स्वर बताये जांय अथवा नहीं, यह भी कुछ व्यक्तियों ने सोचा होगा। यह बात सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की है, यह ध्यान में रखना चाहिये। ऐसा भी संभव है कि कौतुक तथा तरंगिणी ग्रन्थ उन महाशय को न मिले हों। 'राग विबोध' ग्रन्थ उन्हें बहुत पसन्द आया। किन्तु मित्र! इस

प्रकार की व्यर्थ की चर्चा में हम पड़ें ही क्यों ? जयदेव की अष्टपदियां मूल के स्वरों से गायी जा सकेंगी अथवा नहीं ? इतना ही हमें विचार करना था।

प्र०—हां, ठीक है। तो अब आप गांधारी के सम्बन्ध में आगे विवेचन कीजिये। शार्ङ्गदेव पण्डित ने यह राग रत्नाकर में कैसा कहा है, यह आप बताने वाले थे ?

उ०—हां, उस ग्रन्थ में शार्ङ्गदेव कहता है 'गान्धारी' यह सौवीर नामक ग्रामराग की एक भाषा है। सौवीर के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

षड्जमध्यमया सृष्टः सौवीरः काकलीयुतः।
गाल्पः षड्जग्रहन्यासांशकः षड्जादिमूर्छनः॥
प्रसन्नाद्यवरोहिभ्यां संयतानां तपस्विनाम्।
गृहिणांच प्रवेशादौ रसे शान्ते शिवप्रियः॥
प्रयोज्यः पश्चिमे यामे वीरे रौद्रेऽद्भुते रसे।

गांधारी के लक्षण कल्लिनाथ ने टीका में एक प्रकार दिये हैं, ये शार्ङ्गदेव ने रत्नाकर में नहीं दिये।

गांधारी करुणे सान्ता संपूर्णा निग्रहांशिका।
सौवीरिकाजा × × इति गांधारी.

उसी ने और भी एक गांधारी 'भिन्न षड्जोद्भवा' कही है। वह इस प्रकार है:—

गांधारांशा मध्यमान्ता गांधारी मध्यमोज्झिता।
गेयैकान्ते भिन्नषड्जभाषा शार्दूलसंमता॥

प्र०—यह नये शार्दूल पंडित जी कौन हैं ?

उ०—नये नहीं, यह पुराने ही हैं। शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रन्थ के आरम्भ में भूतपूर्व पण्डितों के नाम जो दिये हैं, उनमें एक शार्दूल भी हैं। वह कहते हैं:—

सदाशिवः शिवो ब्रह्मा भरतः कश्यपो मुनिः।
मतंगः पार्ष्णिगो दुर्गा शक्तिः शार्दूलकोहलौ॥

प्र०—हां ! हां ! ठीक है। हम ही भूल गये थे। शार्दूल का ग्रन्थ शार्ङ्गदेव ने देखा होगा क्या ?

उ०—मैं नहीं समझता कि वह उसको उपलब्ध हुआ होगा; किन्तु वैसा कल्लिनाथ की टीका से दिखाई नहीं देता क्या ? कल्लिनाथ कहता है:—

इह ग्रन्थकारेणोद्दिष्टानामपि लक्ष्ये प्रसिद्धिवैधुर्यादधुनाप्रसिद्धरागाजनकत्वाच्चानुक्तलक्षणानां भाषारागादीनां रूपपरिज्ञानाय मतंगादिमतानुसारेण लक्षणानि संक्षिप्य वक्ष्यंते॥'

वस्तुतः सौवीर राग के नीचे शार्ङ्गदेव ने गांधारी के लक्षण नहीं दिये, परन्तु कल्लिनाथ ने दे दिये हैं, इस कारण हम भी वैसा ही करते हैं। एक ग्रन्थकार द्वारा राग

नाम कहना और फिर दूसरे के द्वारा अन्य किसी मत से लक्षण कहना, ऐसा प्रकार प्रशंसनीय नहीं। मूलतः स्वरूप कौनसा होगा, यह परमात्मा जाने! इसे खोजने की हमें आवश्यकता भी नहीं दिखाई देती। लोचन के पश्चात के ग्रन्थों में भी ऐसा ही चलता रहा है, ऐसा मानकर चलना होगा। सङ्गीत रत्नाकर में 'देवगांधार' नाम नहीं दिखाई देता, केवल गांधारी है। तरंगिणी, हृदयकौतुक तथा हृदयप्रकाश ग्रन्थों में 'देवगांधार' है, किन्तु गांधारी नहीं! केवल "गांधार" नाम भी दिखाई देगा।

प्र०—तो फिर इससे हमें उलझन ही होगी?

उ०—उलझन कैसी? पहले तो मैं जो लक्षण विभिन्न ग्रन्थों में से कहता हूं उनको सुनो और फिर उनके सम्बन्ध में स्वयं स्वतन्त्र रूप से विचार करके अपना निर्णय कायम करो, तो फिर उलझन नहीं होगी।

प्र०—अच्छा तो चलने दीजिये। अब तरंगिणी तथा हृदय के ग्रन्थ में क्या उल्लेख है, वह कहिये?

उ०—लोचन ने 'देवगांधार' राग गौरीसंस्थान में मानकर, हृदयकौतुक में उस राग के लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

मपौ धसौ निधपमा गरिसाः कथिताः स्वराः।
देवगांधारनामासौ कथितो रागसत्तमः।
म प ध सां नि ध प म ग रे सा। कौतुके।

प्र०—इसमें के तीव्र ग नि यदि कोमल होते तो हम अपनी उतरी आसावरी के बिलकुल निकट आ गये होते?

उ०—हां! ऐसे तर्क यदि तुम करते गये तो आनन्द ही आयेगा। कदाचित् आगे ऐसा हुआ भी होगा। प्रकाश में हृदय कहता है:—

(थाट गौरी का ही है)

ऋषभादि धैवतांशो गांधारः परीकीर्तितः।
रे म प ध सां सां नि ध प म म रे सा॥ प्रकाशे॥

प्र०—यहां 'देव' यह पूर्वपद छोड़ दिया और 'गांधार' नाम दे दिया है। राग केवल ऋषभ से प्रारम्भ किया है और अवरोह में 'ग' छोड़ दिया है।

उ०—यह तुमने अच्छा ध्यान में रखा। किन्तु मैं समझता हूं 'म म रे सा' इस स्थान पर, 'म ग रे सा' ही होगा। कदाचित् लिपिकार ने भूल की होगी। अस्तु, चन्द्रोदय में पुण्डरीक 'देवगांधार' नाम रख कर इस प्रकार कहते हैं:—

सांशग्रहः सांतयुतश्च पूर्णः।
स्याद् देवगांधारक एष नित्यम्।

थाट मालव गौड अर्थात् हृदय का गौरी मेल तथा अपना भैरव मेल हुआ, यह दीखता ही है।

इसी पण्डित ने अपनी रागमाला में देवगांधार को श्रीराग का पुत्र मानकर उसके लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

गांधारो देवपूर्वस्त्वनलगतिगनिः सत्रिकः पूर्णरूपो

नैरंतर्यं चकास्ति प्रथमगतिरिधो रत्नसिंहासनस्थः।

इंद्राद्यैःस्तूयमानो रसपतिरसिकश्चंदनालिप्तदेहः

शुभ्रं वस्त्रं दधानः करधृतकुमुदः सर्वभूषाभियुक्तः॥

प्र०—अब इस राग का स्वरूप पुनः बदलने लगा। इसमें 'अनलगति ग, नि' ऐसा कहा है। वहां तीव्र ग तथा तीव्र नि स्वर गौरीमेल के रहने दिये। आगे दूसरी पंक्ति में, 'प्रथमगतिरिधो' ऐसा कहा है, अर्थात् वे स्वर चतुःश्रुतिक रि तथा चतुःश्रुतिक ध होंगे, तो क्रमशः वे अपने तीव्र रि ध हुए, यही कहना होगा। तो फिर यह राग अब बिलावल थाट में आया, ऐसा कहना पड़ेगा, ठीक है न?

उ०—तुमने बिलकुल ठीक कहा। अब पुण्डरीक के 'मंजरी' ग्रन्थ की ओर चलें। उस ग्रन्थ में पण्डित ने 'देवगांधार' राग 'मालवकौशिक मेल' में लिया है। उस थाट के स्वर उसने इस प्रकार कहे हैं:—

एकैकगतिकौ निगौ रिधौ मालवकौशिके।

प्र०—आहा! क्या आनन्द आया! इसके अनुसार देवगांधार में काफी थाट की झलक नहीं आई क्या? यह इतिहास बड़ा मजेदार है, पण्डितजी! इसमें आगे किसी ने धैवत लिया कि बस काम बना।

उ०—इससे तुम उत्तर की ओर चले आये। अब दक्षिण की ओर क्या-क्या हुआ, वह भी देखलें। प्रथम रामामात्य का "स्वरमेलकलानिधि" ग्रन्थ देखें। रामामात्य ने देवगांधार श्रीराग के मेल में कहा है।

प्र०—तो वह अपने काफी थाट में ही लिया है, ऐसा कहना चाहिये। आगे उसके लक्षण?

उ०—यह हैं:—

सौराष्ट्रो मेचबौलीच छायागौलः कुरंजिका।

सिंधुरामक्रिया गौडी देशी मंगलकौशिकः॥

पूर्वगौलः सोमराग आंधाली फलमंजरी।

शंकराभरणो देवगांधारी दीपकस्तथा॥

× × × ×

इत्यादि रागों को "अधम" कोटि में लेकर, कहा है:—

सर्वेष्वेतत्पुरोक्तेषु मध्यमेषूत्तमेषु च ।
अंतर्भूताश्च संकीर्णाः पामरग्रामकाश्च ते ॥
रागास्तावत् प्रबंधानामयोग्या बहुलाश्च ते ।
तस्मान्न ते परिग्राह्या रागाः संगीतकोविदैः ॥

प्र०—यह बड़ा समझदार दीखता है ! यानी ये सारे अधम राग हैं और बड़े गायक तो इन्हें गाते ही नहीं । इनमें हमारी जानकारी के भी कुछ राग हैं। हम तो यह कहेंगे कि उसको वे राग आते नहीं थे, इसी कारण उसने ऐसी अनुचित बात कही होगी ?

उ०—तुम्हारे जी में आये सो कहो, तुम्हारा मुंह कौन पकड़ने बैठा है ? किन्तु इन पंडितों के समय में प्रबन्ध गान होगा तथा इन रागों में बड़े गायक प्रबन्ध नहीं गाते होंगे, इसलिये उसने इनको "अधम" कहा होगा। अपने यहां पीलू, झिंझोटी, मांड, काफी आदि रागों को यदि कोई अधम कहे तो हम उससे रुष्ट नहीं होंगे। खैर, अब हम रागविबोधकार की ओर दृष्टिपात करें। वह कहता है:—

रिग्रहपांशः सांतः सदाऽगनिर्देवगांधारः ।

वह थाट मालवगौड बताता है ।

प्र०—तो फिर, यह मत तरंगिणी तथा कौतुक के मत से मिलेगा, ऐसा ही कहें न ?

उ०—हां, यह तुमने ठीक कहा । चतुर्दंडिप्रकाशिका में व्यंटमखी ने 'देवगांधार' श्रीमेल में लिया है। अर्थात् उसको अपने काफी थाट में उसने लिया है, ऐसा कहने में हानि नहीं । वह कहता है:—

षड्जश्च पंचश्रुतिक ऋषभाख्यस्वरः परः ।
साधारणाख्यगांधारः शुद्धौ पंचममध्यमौ ॥
पंचश्रुतिर्धैवतश्च कैशिक्याख्यनिषादकः ।
एतैः सप्तस्वरैर्जातः श्रीरागस्य तु मेलकः ॥

प्र०—यह कहने की आवश्यकता ही नहीं । यह काफी थाट ही हुआ । आगे वह लक्षण कैसे कहता है ?

उ०—उसने रागों का वर्गीकरण वादी स्वर से किया है, यह मैंने कहा ही था। उसने कुल ३१ राग "षड्जन्यासग्रहांशक" कहे हैं। उनमें देवगांधार भी एक है। वह कहता है:—

कांभोजीच मुखारीच देवगांधारिका तथा ।
× ×
एकत्रिंशदिमे रागाः षड्जन्यासग्रहांशकाः ॥

आगे कहता है:—

> संपूर्णो देवगांधारीरागः श्रीरागमेलजः ।
> गातव्यः प्रातरेवैष × × × ॥

अब दक्षिण की ओर का राग लक्षण ग्रन्थ रह गया। उसमें ग्रन्थकार कहता है:—

> नठभैरविरागाख्यमेलाज्जातः सुनामकः ।
> देवगांधाररागश्च सन्यासं सांशकग्रहम् ॥
> आरोहे रिधवर्जं च पूर्णवक्रावरोहकम् ॥

सा ग म प नि सां। सां नि ध प, ध प म ग रे सा।

प्र०—यह उत्तम आधार हुआ। इसमें आरोह में रि तथा ध वर्ज्य करने को कहा है, किन्तु थाट अवश्य अपना आसावरी मेल है। वर्ज्यावर्ज्य नियम बदले होंगे, ऐसा समझ में आता है?

उ०—तुमको सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे एक ध्रुवपदिये गुरु यह प्रकार गाते थे। वे आरोह में रि, ध वर्ज्य करते थे।

प्र०—किन्तु ऐसा करने से धनाश्री तथा भीमपलासी के अङ्ग क्या सामने नहीं आयेंगे?

उ०—यदि वे कुछ आयें भी तो क्या हुआ? उत्तरांग वादी राग होने के कारण इसका अवरोह स्पष्ट आसावरी अङ्ग का लगता है तथा एकत्र स्वरूप सुन्दर दीखता है।

प्र०—वह ध्रुपदिये गुरु किस प्रकार गाते थे, क्या यह बता सकते हैं? यह भी एक मनोजरंक बात है?

उ०—उनके द्वारा गाये हुए एक गीत के अनुमान से मैं तुमको एक सरगम बताता हूँ, वह देखो:—

सरगम—झपताल.

म	म	प	नि ध	प	प सां	ऽ	सां	सां नि	सां
×		२			०		३		
सां नि	सां नि	सां	सां	रें	सां	नि	ध	ध	प
प ध	म प	म ग	म ग	म	प	प	रें	सां	ऽ

ध नि ध	नि प प ध प	म ग ग	ग ग रे रे सा
प म म।			

अन्तरा.

प म प ×	म नि प ध प २	 सां ऽ ०	नि सां सां सां ३
सां सां नि नि	सां सां रें	सां नि	नि नि ध ध प
म प प गं	रें रें सां	रें सां	नि ध प
प म प	नि ध प	म ग ग	ग सा रे रे सा
प म म			

प्र०—देखिये, क्या चमत्कार है ! यद्यपि आरोह में 'रि तथा ध' स्वर वर्ज्य हैं तथापि हमको 'भीमपलासी' का आभास भी नहीं होता। क्या यह अवरोह की विचित्रता का परिणाम है अथवा किसी स्वरसंगति का ? समझ में नहीं आता। हमको यह स्वरूप खूब पसन्द आया पण्डितजी ! कहिये राग भिन्नता रखने के लिये यह कितना अच्छा साधन हुआ ?

उ०—ये दोनों बातें इस स्वरूप में अवश्य हैं। अच्छा, अब आगे चलें; राजा सुरेन्द्रमोहन टागोर की 'संगीतसारसंग्रह' पुस्तक में 'गांधारी' मेघराग की एक रागिनी कही है तथा उसके लक्षण इस प्रकार बताये हैं:—

षड्जांशकग्रहन्यासा गांधारी कथिता बुधैः ।
पौरवी मूर्च्छना ज्ञेया गेया यामार्धमात्रके ॥

उदाहरणम् ।

जटां दधाना शुचिमुद्रिताक्षी नीलांबरा सन्नतशांतमूर्तिः ।
सयोगपट्टासनसन्निविष्टा गांधारिकेयं खलु मेघपत्नी ।

स रि ग म प ध नि सा ।

इस वर्णन से उस रागिनी का बोध नहीं होगा। अतः हम उसके सम्बन्ध में अधिक नहीं बोलेंगे। यह शिव मत है हनुमन्मत नहीं, ऐसा वह कहते हैं। नारदसंहिता में गांधारी श्रीराग की रागिनी कही है तथा उसके लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

सुगीतनृत्यानुरता दिनान्ते कान्तस्य कंठे प्रणिधाय पाणिं ।
वीणां दधानातिविचित्रितांगी गांधारिका गंधविनोदिनीच ॥

संगीतसारसंग्रहे ।

प्र०—श्रीराग का मेल काफी है, तो इस रागिनी का भी वही होगा। किन्तु इस श्लोक के आधार पर वह गाई जा सकेगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता ?

उ०—यह तुम्हारा कहना ठीक है। मैं अपने पण्डितों का केवल कल्पनाचातुर्य दिखा रहा हूँ। रागतरंगिणी में 'गांधार' राग के अवयवीभूत राग इस प्रकार कहे हैं:—

गौरी आसावरीदेवगिरीभिर्भैरवादपि ।
सिंधुरारागतः प्रोक्तो गांधारः पृथिवीतले ॥

Captain Willard इन अवयवों का वर्णन इस प्रकार करते हैं:—सिंधोला, आसावरी, गौरी, देवगिरी तथा भैरव। किसी के मत से खट, आसावरी तथा देसी, यह गांधार में मिलते हैं, यह भी वे कहते हैं। यह दूसरा मत विचार करने योग्य अवश्य है। और भी एक गायक ने मुझसे कहा था कि देवगांधार राग में 'आसावरी तथा दरबारीटोडी' का संयोग है। मेरे कहे हुए 'राग संकर' को भी तुम अपने ध्यान में रखना।

"नग़माते आसफी" ग्रन्थ में 'गांधार' भैरव की एक रागिनी कही है तथा उसके स्वर इस प्रकार बताये हैं:—रि, ग ध, नि ये सारे स्वर कोमल हैं। म वादी, रि संवादी। कभी प अथवा ग संवादी।

प्र०—इस ग्रन्थकार की वादी-सम्वादी स्वरों की कल्पना कुछ विलक्षण ही दिखाई देती है; किन्तु रागमेल ठीक दीखता है ?

उ०—उनकी कल्पना का हमें क्या करना है ? हम तो अपने प्रचार का अनुसरण करके चलें।

प्र०—हमारी समझ से यह ग्रन्थमत अब पर्याप्त होंगे। वर्तमान समय में प्रचार में यह राग कैसा गाया हुआ दिखाई देता है, बस अब वह बता दीजिये। गांधार तथा निषाद कोमल होने से हम प्रचार के अत्यन्त निकट आगये, यह तो हमको दीखता ही है ?

उ०—ठीक है, कहता हूं। अच्छी तरह ध्यान देकर सुनना। पहला प्रश्न यह कि देवगांधार, गांधार, गांधारी तथा गांधारीटोडी ये सारे विभिन्न प्रकार क्या प्रचार में माने जाते हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है कि 'गांधारी' तथा 'गांधारीटोडी' ये दो अलग-अलग प्रकार नहीं हैं। गायक, गांधारी को ही एक टोडी प्रकार मानते हैं।

प्र०—जैसे जौनपुरी को एक टोडी प्रकार मानते हैं, वैसे ही इसको समझना चाहिये?

उ०—हां, 'गांधारी' 'गांधारीटोडी' पृथक करके गाने वालों को मैंने नहीं सुना। मेरे रामपुर के गुरु गांधारी तथा गांधारीटोडी एक ही समझते थे। इसलिये तुम्हारे लिये भी वैसा ही मानने में हर्ज नहीं। 'देवगांधार' तथा 'गांधार' ये एक ही राग के नाम हैं, ऐसा हृदय के ग्रन्थ से तुमने देखा ही था। और भी एक बात तुम्हारी दृष्टि में ऐसी आई होगी कि जिन ग्रन्थों में 'देवगांधार' बताया गया है, उनमें 'गांधारी' पृथक से नहीं कही। अब प्रश्न यह रहता है कि देवगांधार, गांधार तथा गांधारी क्या ये पृथक-पृथक राग माने जायेंगे? अपने यहां इन रागों को पृथक मानने वाले कभी-कभी अवश्य दृष्टिगोचर हो जाते हैं। वे इन दो रागों में ऐसा अन्तर बताते हैं कि देवगांधार में दोनों गंधार का प्रयोग है तथा गांधारी में केवल कोमल गन्धार ही आता है।

प्र०—किन्तु ऐसा यदि वे अपने गाने में प्रत्यक्ष करके दिखाते हों तो ये दोनों राग अवश्य पृथक मानने योग्य होंगे। आपकी क्या समझ में आता है?

उ०—ऐसा मानना अवश्य उचित होगा। किन्तु बहुधा ऐसा ही हमें दिखाई देता है कि दोनों गन्धार का प्रयोग करने वाले गायकों को देवगांधार तथा गांधारी ये दोनों राग पृथक-पृथक गाने नहीं आते। देवगांधार गाने के बाद उनसे तुमने गांधारी गाने के लिये कहा तो गांधारी हमको नहीं आती, यही वे कहेंगे। कुछ तो ऐसे भी निकलेंगे कि जो 'गांधारी' को पृथक राग मानने के लिये ही तैयार नहीं होंगे। वे कहेंगे 'गांधारी' देवगांधार का ही संक्षिप्त नाम है।

प्र०—तो फिर हमें क्या समझना चाहिये?

उ०—उत्तम पक्ष यह है कि दोनों गन्धार लिया जाने वाला प्रकार तथा एक गन्धार लिया जाने वाला प्रकार, ये दोनों पृथक माने जायें। उनके नाम चाहे जो हों। रामपुर वाले केवल 'गांधारी' प्रकार मानते हैं। वे कहते हैं, 'देवगांधार' हमको पृथक नहीं आता। ग्वालियर में दोनों गन्धार लिया जाने वाला देवगांधार मैंने सुना है। 'चन्द्रभाल'...आदि शब्दों का एक प्रसिद्ध ध्रुवपद मेरे एक गुरु ने मुझे सुनाया था तथा राग का नाम देवगांधार बताकर उसमें दोनों गंधारों का प्रयोग किया था।

प्र०—वैसा प्रयोग इस राग में कुछ विलक्षण ही लगता होगा?

उ०—वह इतना बुरा नहीं लगता। 'सा ग, म' ऐसा उसमें मुक्त मध्यम आता है, इस कारण उसके योग से राग हानि नहीं होती। ऐसे दोनों गन्धार लेने वाले थोड़े ही होने के कारण उस रागस्वरूप पर विशेष गहराई से विचार करने की आवश्यकता नहीं। उस देवगांधार में आरोह में भी गन्धार वर्ज्य होता है। तथा अधिकांश चलन गान्धारी

के समान ही है । 'म प, नि ध प' यह मुख्य भाग उत्तरांग में देवगांधार तथा गांधारी दोनों में होता ही है । आरोह में 'रे तथा ध' छोड़ने वाले जिस देव गान्धार का मैंने अभी अभी तुमसे जिक्र किया, वह बिलकुल अप्रसिद्ध है । वह इन दोनों से बिलकुल ही निराला है । उसके आरोह में 'रि, ध' छूट जाने से उसमें दिन के दूसरे प्रहर में गाये जाने वाले राग के चिन्ह लुप्त हो जाते हैं । जो तीव्र गन्धार लेते हैं केवल उनको वह 'सा ग, म' इस प्रकार से कहीं कहीं पृथक टुकड़े से दिखाना पड़ता है । वहां अब मुख्य प्रश्न 'गांधारी' कैसी गाते हैं, यही रह जाता है । उसका प्रचलित रूप कहता हूँ, वह सुनो:—

'गांधारी' को आसावरी थाटजनित एक राग मानते हैं। यह ग्रन्थों की आसावरी नहीं है। ग्रन्थों में आसावरी में ऋषभ कोमल कहा है। हमारी आसावरी चढ़ी ऋषभ की समझनी चाहिये। गांधारी की जाति षाडव-सम्पूर्ण है। उसके आरोह में गन्धार वर्ज्य है। निषाद अपने गायक लेते हैं। समय दिन का दूसरा प्रहर मानते हैं । वादी धैवत तथा संवादी गन्धार मानते हैं । यह राग जौनपुरी तथा आसावरी के बहुत पास आजाता है। इनमें भी जौनपुरी के निकट अधिक ही आता है ।

प्र०—किस स्थान पर वह ऐसा निकट आता है ?

म सा
उ०—'ग, रे म प,' ऐसा टुकड़ा पूर्वाङ्ग में लेते हैं, तब वहां जौनपुरी का भास होता है। गांधारी में दोनों ऋषभ का प्रयोग होता है और ऐसा करने पर वह आसावरी तथा जौनपुरी इन दोनों रागों से तत्काल पृथक हो जाता है। 'देवगांधार' तथा गांधारी को पृथक पृथक मानना हो तो देवगांधार में दो गन्धार लेना अथवा आरोह में रि, ध छोड़ना,ये दोनों युक्तियां मैंने बताई ही हैं । दोनों गन्धार लेने की प्रवृत्ति कदाचित् इसलिये हुई होगी कि प्राचीन ग्रन्थों में 'देवगांधार' 'भैरव' थाट में कहा है, किन्तु उस प्रकार की टीका करने की आवश्यकता नहीं। 'वयं लक्ष्यानुवर्तिनः' यह तथ्य तुम्हारे ध्यान में होगा ही ।

प्र०—नहीं, नहीं। हम कभी आलोचना नहीं करेंगे। यदि उस प्रकार में रंजकता होगी तो रागत्व भी होगा ही। गांधारी के आरोह में तीव्र तथा अवरोह में कोमल ऋषभ लेना चाहिये न ?

उ०—हां, उत्तरांग में अधिकांश काम आसावरी तथा जौनपुरी जैसा ही है।
म सा
पूर्वाङ्ग में 'म प ग, रे, म, प' यह भाग आते ही श्रोता यह सोचने लगते हैं कि यह
म ‿ म सा
'जौनपुरी है अथवा गांधारी'। आगे 'ग रे, सा' आया तो 'गांधारी' और 'ग, रे सा,' ऐसा आया तो 'जौनपुरी' ऐसा निर्णय करते हैं। किन्तु यह एक स्थूल नियम है, ऐसा समझना चाहिए। ये टुकड़े नहीं आये तथा केवल दोनों ऋषभ आये तो गान्धारी नहीं होगी, ऐसा नियम निर्धारित नहीं कर लेना चाहिये। एक ऋषभ तथा दोनों ऋषभ, यह
म सा
एक रागभेदक चिन्ह नहीं है क्या ? परन्तु 'ग, रे म, प' यह टुकड़ा अङ्गवाचक होकर तिरोभाव उत्पन्न करने का साधन है। अब आसावरी, जौनपुरी तथा गन्धारी इन तीनों रागों का भेद तुम्हारे ध्यान में कैसा आया, बताओ ?

प्र०—आसावरी दो प्रकार की है । एक में सारे स्वर भैरवी थाट के, ध वादी तथा ग संवादी होकर आरोह में ग नि वर्ज्य हैं । यह स्वतन्त्र प्रकार है । उत्तर की ओर यह सम्मान्य है । कुछ इस प्रकार में भी दोनों ऋषभ लेने को कहते हैं, किन्तु उन्होंने निषाद आरोह में वर्ज्य करने का नियम पालन किया तो कुछ कुछ आसावरी मानने में आयेगी और यदि उन्होंने निषाद आरोह में लिया तो कई बार उनका वह राग गांधारी जैसा

म सा

दिखाई देगा। फिर भेद क्या 'ग, रे, म प' इस टुकड़े में रहेगा। किन्तु हमारे मत से इस आसावरी प्रकार में 'तीव्र ऋषभ' न लेना ही अच्छा है और वह रागांग वाचक टुकड़ा आने की तो सम्भावना ही नहीं रहेगी। अब रहा दूसरा आसावरी प्रकार, जिसमें तीव्र ऋषभ ही लेते हैं। इस प्रकार में भी आरोह में ग, नि वर्ज्य हैं तथा इसमें

म सा

ग, रे, म प' यह टुकड़ा वस्तुतः नहीं आये तो अच्छा। यदि क्वचित् किसी प्रसङ्ग पर वह आया भी तो आरोह में निषाद छोड़ने से आसावरी ही होगी। यह प्रकार ख्याल गायक पसन्द करते हैं, ऐसा आपने कहा था। उनको जलद तानों में 'रि म' लेने में कठिनाई होने के कारण वे चढ़ी ऋषभ लेते हैं, ऐसा भी आपने सुझाया था। जौनपुरी में कोमल ऋषभ अधिक नहीं लेना चाहिए। आरोह में केवल गन्धार वर्ज्य होगा। निषाद आरोह में लेने में कोई हर्ज नहीं। धैवत वादी तथा गन्धार संवादी है। कोई पंचम वादी तथा

म सा

ऋषभ सम्वादी मानते हैं। समय आसावरी का ही है। 'ग रे, म प' यह टुकड़ा रागाङ्ग वाचक है। ऐसा समझा जाता है कि यह मूलतः गान्धारी का होगा, परन्तु गायकों ने उसको जौनपुरी में सम्मिलित करलिया होगा। जौनपुरी का साधारण स्वरूप आसावरी जैसा ही है। गान्धारी में दोनों ऋषभ का प्रयोग होता है। तीव्र ऋषभ आरोह में तथा कोमल ऋषभ अवरोह में लेने का प्रचलन है। गान्धारी का अधिकांश चलन जौनपुरी जैसा ही है, परन्तु कोमल ऋषभ के आते ही वह जौनपुरी से पृथक हो जाती है। दो गन्धार वाला देव गांधार तथा आरोह में रि तथा ध छोड़ा जाने वाला देवगांधार ये प्रकार पृथक ही रहेंगे।

उ०—तो फिर ये राग तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ गये। गांधारी का

नि

उठाव कभी धैवत से, कभी मध्यम से तो कभी ऋषभ से होता है। कुछ गीत तो 'सा ध' इस प्रकार भी प्रारम्भ होते हैं। अब इस राग में एक-दो छोटी सी सरगम कहता हूँ और फिर विस्तार करके दिखाता हूँ।

प्र०—किन्तु ऐसा करने से पहले अपने अर्वाचीन ग्रन्थकार यह राग कैसा कहते हैं, यह बतायेंगे ?

उ०—हां, अवश्य। ये तो कहने से रह ही गया। राजा प्रतापसिंह अपने संगीतसार में देवगान्धार का वर्णन इस प्रकार करते हैं:—

"शिवजीनें उनरागनमेंसों ।धभाग करिवेको। ईशान नाम मुखसों गाइके श्रीराग की छाया युक्ति देखी वाको देवगांधार नाम करिके श्रीराग को पुत्र दीनो।' आगे चित्र-

रूप बताते हैं, "शास्त्रनमें तो यह सात सुरसों गायो है। सारेगमपधनिसा। यातें सम्पूर्ण है। याको दुपहरमें गावनो। यह तो याको बखत है। और चाहो जब गाओ।" जंत्र इस प्रकार है:—

धु प धु म गु, रे म प नि धु। सां नि सां रें नि धु प धु प म। प नि धु प धु म। गु रे गु रे गु रे सा। यह जन्त्र में है, वैसा ही मैंने रखा है। इसका महत्व कुछ नहीं। इस जंत्र में तुमको क्या क्या दिखाई देता है, वह बताओ?

प्र०—इस प्रकार का थाट हमारा भैरवी है अर्थात् इस प्रकार में तीव्र ऋषभ बिलकुल नहीं। 'गु (म)रे म प' यह टुकड़ा उसमें जरूर है, परन्तु उसमें ऋषभ कोमल है, वह गाना कठिन होगा।

उ०—तो फिर तुम अपने मत से यह जंत्र कैसे लिखोगे, ?

प्र०—हम इस प्रकार लिखेंगे:—

नि म सा प सां नि प
"धु प धु म, गु रे म प, नि धु, सां, नि सां, रें नि धु, प, धु प, म प, नि धु, प, धु म गु, रे गु रे, गु रे सा।

यह कुछ ठीक दिखाई देगा क्या?

उ०—मेरी समझ से यह देवगान्धार स्वरूप उत्तम ही दिखाई देगा। सङ्गीतसार में जो कोमल रिषभ 'गु (सा)रे, पम' इसमें आया है, वह कदाचित् लिपिकार की भूल से ही हुआ होगा। यदि ऐसा नहीं तो उस राजा के समय में देवगान्धार ऐसा ही गाते होंगे, यह कहना पड़ेगा। परन्तु '(म सा)गु रे म प' यह टुकड़ा अब गान्धारी में इतना प्रसिद्ध हो गया है कि गान्धारी का रागांग वाचक भाग ही माना जाता है। किन्तु कुल मिलाकर मेरी समझ से यह जंत्र तुमको अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। इसमें 'धग' संवाद भी उत्तम रखा है।

राजा साहेब टागोर अपने सङ्गीतसार में "गांधार" नाम पसन्द करके उस राग के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं:—

री म सा
सा रे म प धु प धु नि नि धु सां नि धु प धु नि नि धु प म म गु रे सा। अस्ताई

प
म प नि धु नि सां, सां सां गं रें सां नि सां, नि धु प, धु नि नि धु, म प नि धु प,
री सा
म म गु, रें, सा। अन्तरा।

विस्तार

धृ रे म
सा रे म प धृ प, नि धृ प म म गृ म प नि धृ नि सां, सां गं रें सां निसां निसां

प धृ रे रे सा
नि धृ प, नि धृ प, म म गृ, म प प धृ, प धृ, नि धृ प, म प म गृ, रे, सा।

प्र०—इस प्रकार में उन्होंने थाट भैरवी रखा है, ऐसा जान पड़ता है। इसमें तीव्र

म सा
रिषभ नहीं, और यह स्वर न होने के कारण 'गृ रे, म प,' यह टुकड़ा भी नहीं है। प्रतीत होता है देवगान्धार अथवा गान्धार तथा 'गांधारी' अथवा 'गांधारी टोडी' ये दोनों राग पृथक रखने सुविधाजनक होंगे। इनको अपवाद स्वरूप एक ही मानने की अपेक्षा, इन दोनों रागों को भिन्न मानना ही हितकारक होगा।

उ०—ठीक है। ऐसा यदि तुमने मान लिया तो हानि नहीं। ऐसा मानने वाले भी हैं यह मैं पीछे कह ही चुका हूँ। अब सारी उलझन रिषभ के सम्बन्ध में रहेगी। रिषभ कोमल रखा तो आसावरी अत्यन्त निकट आजायेगी, यह बात नहीं भूलना।

प्र०—किन्तु आसावरी में गांधार तथा निषाद ये दोनों स्वर आरोह में वर्ज्य होंगे न?

उ०—हां, यह भी ठीक है। सङ्गीतसारामृत में देवगांधार काफी थाट में कहा गया है।

प्र०—वह रहेगा ही। तुलाजीराव भोंसले जो चतुर्दण्डिप्रकाश का अनुयायी है, उसने अपने देवगांधार का उदाहरण दिया है क्या?

उ०—हां, उसने एक उदाहरण दिया है:—

श्रीरागमेलजः पूर्णो देवगांधारकाभिधः।
गातव्यः प्रातरेवैष षड्जन्यासग्रहांशकः॥
आरोहे रिधवर्ज्यो वाऽऽरोहे रिधसमन्वितः॥

अस्योदाहरणम् म म गृ रे सा नि। सा गृ म प। प नि नि ध प म। गृ म प नि सां। सां नि ध प म म गृ। प म गृ रे। सा रे। नि सा गृ रे गृ। सा रे नि सा। इतितारषड्ज-प्रयोगः।

नि ध प म म म। गृ म प नि नि सां। नि ध प म म म। अस्मिन्मध्यमः स्थायिनि "ठाये"। म म गृ रि सा नि। नि ध प म। म म गृ रे सा नि सा। मुक्तायां। गृ म प नि प नि नि सां। इति ठाय प्रयोगः। इ.।

प्र०—तो फिर वे हमारा 'भीमपलासी' कैसे पृथक रखेंगे?

उ०-उनको तुम्हारा भीमपलासी मालुम था, तुम तो यह स्वीकार करके चलो। यह दक्षिण का राग नहीं। अस्तु, अब कल्पद्रुमकार क्या कहता है, देखो:—

आसावरि अरु सिंधु मिलि टोडी का अनुमान।
गावत गुनि गांधारहि करडी मध्यम ठान॥

प्र०—इस योग में हमको थोड़ा बहुत तथ्य दीखता है पण्डित जी! आसावरी की उतरी रिषभ, सिंध की चढ़ी रिषभ तथा इन दोनों रागों के आरोह में गन्धार वर्ज्य है। पुन: कुल रंग टोडी का आना चाहिये, ऐसी सूचना नहीं दीखती है क्या? 'करडी मध्यम' अर्थात् क्या तीव्र मध्यम? क्या वह इसमें तोड़ी को शामिल करने को कहते हैं? 'गांधार' एक तोड़ी का प्रकार है, कदाचित वे ऐसा समझ कर कहते होंगे?

उ०—वहां जितना लिखा है, उतना मैं कह रहा हूँ। अब गांधार राग का वर्णन सुनो:—

जटां दधानः कृतभूरिभूषकाषायरागस्तनुदेहयष्टिः।
संयोगनिद्रुत कृतनेत्रमुद्रा गांधारराग: कथितः तपस्वी।
आदाय वीणां धृतयोगपीठो गंगाधरे ध्याननिमग्नचित्तः।
योगासने मौलिजटां दधानो॥
गांधारराग: कथितो मुनींद्रैः॥
गांधारांश ग्रहन्यासस्तीव्रमध्यम एव च।
संपूर्णो धनिसरिगम दिवसैकजामे गीयते॥
आसावरी टोडिदेशी च जायते गांधारोत्पत्ति।

यह गांधार हुआ। अब 'गांधारी' सुनो:—

हारोरस्थल धारिणी सितपटै कमलायताक्षी भृशं
दिव्याभूषणभूषितातितरुणी ताम्बूलहस्ताग्रका।
श्यामासंभृतकंचुकी मलजै राज्ञित्यता सुन्दरी
नृत्यसे भृतनूपुरी मृदवजी गांधारिणी रागिणी॥

इसमें तुम्हारे मतलब का भाग हो उतना लेलो, बाकी 'समुद्रास्तृप्यंतु' ऐसा मानकर छोड़ दो। कल्पद्रुम में इस राग की कुछ सरगम दी हैं, वे भी विचारणीय हैं। उदाहरण:—

गांधारराग—चौताल.

ध ध ध प प म म ग रे म म प ध सा नि ध नि ध प ध प म प म ग रे ग रे सा नि सा। अस्ताई। म प ध सा रे सा रे सा नि सा नि ध प रे ध प म प नि ध प ध प म ग रे म प ध सा रे सा नि ध नि ध प ध प म ग रे ग रे सा॥

ये सरगम लगभग सौ वर्ष की हैं। इनमें यदि तीव्र कोमल चिन्ह लगाये जांय तथा मात्रा विभाग ठीक किये जांय तो गांधार राग का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देगा।

प्र०—ऐसा कर सकते हैं क्या ? इसमें कुछ स्वर ह्रस्व दीर्घ होंगे, किन्तु वे समझ में आजायेंगे।

उ०—अब यह देखो:—

गांधार—चौताल

नि॒ ध॒ ०	नि॒ ध॒	नि॒ ध॒ ३	प	म प ४	म	म ×	म ग॒	सा रे॒ ०	म	ऽ २	म
प	ऽ	नि॒ ध॒	सां	नि॒	ध॒	नि॒	ध॒	प	नि॒ ध॒	प	म
प	म	ग॒	रे॒	ग॒	रे॒	सा	ऽ	नि़	सा		
यहां आठ मात्रा कम होने के कारण ऐसा करना होगा।						प नि॒	ध॒	ऽ	प	नि॒ ध॒	प
ऽ	प म	प	प ग॒	ऽ	रे॒	ग॒ रे॒	ग॒	ऽ	ग॒ रे॒	ऽ	सा।

अथवा थोड़े से फरक से:—

नि॒ ध॒ ०	नि॒ ध॒	ऽ ३	नि॒ ध॒	ऽ ४	प	प म ×	प	म ग॒ ०	ऽ	सा रे॒ २	म
प	प	नि॒ ध॒	सां	ऽ	नि॒	ध॒	नि॒	ध॒	प	नि॒ ध॒	ध॒
ऽ	म	प	म	म ग॒	ऽ	ग॒ रे॒	ग॒	ऽ	ग॒ रे॒	ऽ	सा

अन्तरा.

(प)म	प	(नि)ध	सां	ऽ	रें	सां	ऽ	रें	सां	नि	सां
×		०		२		०		३		४	
नि	ध	ऽ	प	(म)रे	(नि)ध	प	प	प	नि	ध	प
(नि)ध	प	म	(म)ग	(सा)रे	म	प	ऽ	(नि)ध	सां	ऽ	रें
सां	नि	ध	नि	ध	प	ऽ	(नि)ध	प	म	ग	ऽ
(ग)रे	ग	ऽ	(ग)रे	ऽ	सा						

माधुर्य की दृष्टि से यह सरगम अधिक सुन्दर नहीं हुई। राग शुद्ध है। मेरे रामपुर के गुरु वजीरखां ने गांधारी में एक ध्रुवपद मुझे बताया है।, उसके स्वर तथा बोल अत्युत्तम हैं।

प्र०—उसके बोल क्या हैं ?

उ०—इस प्रकार हैं:—

कहियो ऊधो तुम ज्यों नेह बीज वो गवन कीनों माधो बिरवा लागो राधा के मन। अस्ताई।

दृगतारे कूप कीने अँसुवन जल भार भरे पलकन सींच सींच याते और बिरवा भयो सघन बन॥ अन्तरा॥

भूमहरि भरि रोमरूख बनरहे पांच बेल काम के चढी त्रिया तन। संचारी।

कुच काछी रखवारे फूलखल होंनलागे आयके जो देखिएजु जीवन धन॥आभोग॥

प्र०—वाह वा! कितना सुन्दर पद है! हमारे पुराने लोगों ने तो कमाल कर दिया है ?

उ०—हां, तो! इस गीत के अनुमान से उनके द्वारा कहे गये स्वर सुनाता हूँ:—

नि नि   म सा   नि नि   नि नि ध   ग ग ग
सा सा सा ध ध, प, ध ग, रे म, प, प, ध ध प, म प, ध ध, सां, नि सां, रे रे रे,

म ग
सा, सा, सा ध, प ध म प, ग, रे, सा। स्थाई॥

नि नि सां नि नि नि नि नि
म प ध, सां, सां, सां गं रें, सां, नि सां रें ध, ध, प, म प, प, ध ध, ध, प, प, प,

प म ग ग
सां, सां, म प, प, ग, रे रे, सा ॥ अन्तरा ॥

इतना भाग पर्याप्त होगा, आगे संचारी, आभोग के स्वर तुम्हारे भी ध्यान में आजायेंगे। वे तुम कैसे कहोगे, देखूं ?

प्र०—इस स्वरविस्तार के अनुमान से चौताल में एक सरगम की अपनी बुद्धि से रचना करके हम दिखादें, उसके पश्चात् फिर आगे का भाग बतायेंगे ?

उ०—तो मुझे अत्यन्त हर्ष होगा, फिर तो तुम संचारी, आभोग की भी रचना कर सकोगे, ऐसा भी मुझे विश्वास हो जायगा।

प्र०—अच्छा तो प्रयत्न करके दिखाता हूं:—

गांधारी—चौताल.

नि ध ३	नि ध	प ४	ध	म प ×	म ग	ऽ ०	सा री	ऽ २	म	प ०	प
नि ध	नि ध	सां	ऽ	नि सां	ऽ	सां	ऽ	सां नि	सां नि	ऽ	सां
नि	ध	प	प	ध प -	ध	म ग	ऽ	ग रे	ग रे	सा	ऽ
नि सा	ध	ऽ	प	प ध	म ग	ऽ	ग रे	ऽ	ग रे	सा,	नि सा

———

अन्तरा.

प म ×	प	ऽ ०	प	नि ध २	नि ध	सां ०	ऽ	ऽ ३	सां	ऽ ४	सां
नि ध	नि ध	सां	रीं	गं	गं	रें	रें	सां	ऽ	नि ध	प

प			म	ग	
म प	ऽ नि	ध प	ग ऽ	रे रे	सा ऽ
नि सा				नि	नि
सां गं	रें रें	सां ऽ	सां ऽ	ध नि	ध प
प म	ग	ग	नि		
ध ग	ऽ रे	ऽ रे	सा, सा		

यह भाग नियम की दृष्टि से कैसा हुआ ?

उ०—नियम के दृष्टिकोण से तो उत्तम है ही; साथ ही कला की दृष्टि से भी इसको कोई बुरा नहीं कहेगा। इसमें धैवत का प्राधान्य तथा दोनों ऋषभ का तुमने सुन्दर प्रयोग किया है। देश के अन्य भागों में गांधारी चाहें जैसी गाते हैं, लेकिन तुमने अपनी कृति में रामपुर का मत अच्छी तरह निभाया है, इसमें संशय नहीं। आसावरी, जौनपुरी तथा यह गांधारी तुम भली प्रकार समझ गये हो, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। आगे संचारी आभोग तुम किस प्रकार करोगे ?

प्र०—वहां हम ऐसे अनुमान से चलेंगे:—

नि नि नि　　नि　म सा　　नि नि
सा, ध, ध, प ध, प, म प, नि ध, सां नि ध, ध, प, ग रे म प, ध, सां, नि ध, ध,

नि　म म　ग
प, प म प, रे म प, नि ध, ध, प, प ग, रे, रे, सा। संचारी ॥

नि　　सां　प
म प, प ध, सां, सां, रें सां, रें गं रें सां, रें सां, नि ध, गं रें, सां, नि ध, नि ध प,

म ग　ग
म प ध, रें सां, नि ध, प म प ग, रे ग, रे, सा ॥

ये स्वर चलेंगे क्या ?

उ०—मेरी समझ से अवश्य चलेंगे। अब इस राग के स्वरविस्तार को अलग से कहने की भी आवश्यकता नहीं, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। मेरे उस्ताद द्वारा सिखाया हुआ एक ध्रुवपद मैं किसी अन्य प्रसंग पर तुमको सिखा दूंगा, तो बस काम बन जायेगा।

प्र०—अच्छा, तो अब इस राग में एक दो और सरगम कहकर फिर उनके प्रचलित आकार बता दीजिये ?

उ०—अब ऐसा ही करता हूं:—

गांधारी—झपताल.

नि सा ×	नि ध	नि ध २	प	ध	म ग ०	सा रे	म ३	प	प
नि ध	प	म	प	ध	म ग	ग	रे	रे	सा
नि सां	नि ध़	सा	रे	सा	प म	प	म ग	ग रे	सा

अन्तरा.

प म ×	प	नि ध २	सां	ऽ	रें ०	रें	सां ३	रें	सां
नि ध	नि	सां	रें	गं	रें	सां	नि	ध	प
ध प	नि	ध	प	ध	म ग	सा रे	म	प	प
सां	नि	ध	प	म	म ग	म ग	ग रे	ग रे	सा

गांधारी—सरगम—त्रिताल.

म ०	प	सां	नि	नि ध १	ध	प	नि	ध ×	म	म ग	सा रे	प म २	म	प	प

(प)म	प	नि	(नि)ध	ऽ	प	ध	म	प	(म)ग	ऽ	(ग)रे	ऽ	ग	रे	सा
सा	रे	म	प	(नि)ध	(नि)ध	सां	ऽ	(सां)नि	सां	रें	(नि)ध	ऽ	नि	ध	प

अन्तरा.

म	म	प	(नि)ध	ऽ	(नि)ध	सां	ऽ	रें	सां	ऽ	(रें)गं	रें	सां	ध	प
०				३				×				२			
(प)ध	(ध)गं	रें	सां	रें	नि	ध	प	सां	नि	ध	प	(म)ग	(म)ग	रे	सा

सरगम—त्रिताल

(प)म	म	प	नि	ध	प	ध	म	प	(म)ग	ऽ	(सा)रे	म	म	प	ऽ
०				३				×				२			
(नि)ध	ध	प	नि	ध	प	ध	म	प	(म)ग	ऽ	रे	ग	रे	सा	ऽ
सा	सा	(सा)गं	गं	रें	सां	ऽ	रें	नि	ध	ऽ	नि	ध	ध	प	प

अन्तरा.

म	प	(नि)ध	ध	सां	ऽ	नि	सां	नि	सां	रें	सां	नि	सां	नि	ध
				३				×				२			
(म)म	गं	रें	गं	रें	सां	(नि)ध	प	नि	ध	प	ध	(म)ग	ग	रे	सा

अब प्रचलित ग्रन्थाधार कहता हूँ:—

आसावरीसुमेलेच गांधारी कीर्तिता बुधैः ।
आरोहणे गरिक्तासौ संपूर्णा चावरोहणे ॥
धैवतोऽत्र मतो वादी गांधारो मंत्रितुल्यकः ॥
गानं तस्याः समादिष्टं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
रिषभद्वयसम्पन्ना चासावर्यंगधारिणी ।
गरिमपस्वरैर्नीत्यं स्वातंत्र्यं दर्शयेज्जने ॥
रितीव्रा जौनपुर्याख्या निगोनासावरीरिता ।
आरोहे देवगांधारो द्विगो रिधोज्झितोऽथवा ॥
हृदयकौतुके ग्रन्थे हृदयेशेन सूरिणा ।
देवगांधारकः प्रोक्तो गौरीमेले निगोज्झितः ॥
तथैव सोमनाथेन वर्णितोऽसौ स्वनिर्मितौ ।
सांशो भैरवमैलोत्थोऽप्यहोबलेन वर्णितः ॥
रागचन्द्रोदये ग्रंथे पुंडरीकेण धीमता ।
देवगांधारकः प्रोक्तो मेले मालवगौलके ॥
तेनैव रागमालाख्यग्रंथेऽसौ परिकीर्तितः ।
शंकराभरणेमेले इतिसर्वत्र विश्रुतम् ॥
चतुर्दण्डिप्रकाशिकाग्रंथे वेंकटसूरिणा ।
देवगांधाररागोऽयं प्रोक्तः काफ्याव्हमेलजः ॥
रागलक्षणके ग्रंथे देवगांधार ईरितः ।
नटभैरविमेलोत्थः आरोहे रिधवर्जितः ॥

लक्ष्यसंगीते ॥

आसावर्याः स्वरेभ्यः प्रभवति रुचिरो देवगांधाररागः ।
आरोहे वर्ज्यतोक्ता ध्रुवमिह रिधयोः पूर्णता चावरोहे ॥
पूर्वांगे सा धनाश्रीः प्रविलसति सदाऽऽसावरी चोत्तरांगे ।
संवादी पंचमोंऽशः स इह सुमधुरं गीयते संगवे हि ॥

कल्पद्रुमांकुरे ॥

आसावरि के मेल में चढत न रिधसुर पेख ।
धगवादी संवादितें देवगंधार सुदेख ॥

चन्द्रिकासार ॥

मपौ धपौ सनी सरी सनिधपा मपौ निधौ ।
पमौ पगौ पगरिसा देवगांधारकोंशधः ॥
रिमौ पनी धपौ सश्च निधौ पमौ पगौ रिसौ ।
गांधारो रिद्वयः प्रोक्तो धैवतांशसमन्वितः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्रत्यक्ष प्रचार में आसावरी, जौनपुरी, देवगांधार तथा गांधारी स्पष्टतः पृथक गाने वाले तथा उनके नियम समझा देने वाले गायक तुमको थोड़े ही दिखाई देंगे। यह राग एक दूसरे में इतने मिल जाते हैं कि गायक यदि अच्छा तैयार न हुआ तो इनको अलग अलग रखना कठिन हो जाता है।

प्र०—यह आपका कहना ठीक है। ये समप्रकृतिक राग होने के कारण ऐसे होंगे ही, किन्तु प्रत्येक राग के नियम विदित हों तथा उन नियमों का भाग बारम्बार युक्ति से काम में लावें, तो रागभेद दिखाने में कठिनाई नहीं होगी। अब गांधारी राग का थोड़ा सा विस्तार हम करके दिखायें क्या ?

उ०—ऐसा करो तो मुझे बहुत खुशी होगी।

प्र०—अच्छा तो प्रयत्न करता हूं:—

सा म सा
सा, नि ध, प, ध म, ग रे म प, प, सां, रें गं रें सां, रें सां नि ध, प, प ध म, प,
म ग
ग, रे रे, सा, रे म, प, नि ध प, ध म प। नि ध, प।

नि
सा रे, म प, प, ध, प, नि ध प, सां रें गं रें सां, रें नि ध, प, म प नि ध, प, सा रे
म प, नि ध, प ध म प ग, रे रे, सा।

नि नि म सा
सा ध ध, प, नि ध, प, ग रे म प, गं रें सां, रें नि ध, प, म प सां, नि ध, नि ध
ग
प म ग रे, रे सा।

नि नि
म प, ध नि सां, नि सां, ध, सां, रें गं, रें सां, रें नि ध प, म प नि ध प, म प ध, रें सां, रें नि ध, प, नि सां, नि ध, प, ध म प, नि ध प,

कैसा लगता है ? तार सप्तक में हमने अवरोह में क्वचित तीव्र ऋषभ का उपयोग किया है, वह चलेगा क्या ? न जाने वहां उसे लेने की प्रवृत्ति क्यों होती है ?

उ०—राग दृष्टि से तुम्हारा विस्तार अशुद्ध नहीं। जैसे-जैसे इस राग के गीत तुम सीखोगे, वैसे-वैसे इस राग का मार्मिक भाग तुम अच्छी तरह समझ जाओगे। दो ऋषभ

लेते ही जौनपुरी आरम्भ में ही दूर हो जायगी, साथ ही ख्याल गायकों की आसावरी भी दूर होगी। निषाद लेने पर और भी अधिक भिन्नता रखी जा सकती है।

प्र०—अब 'गांधारी' राग हम समझ ही गये हैं, इस विषय में विचार करने को अब कुछ बाकी नहीं है। अभी-अभी दोनों गन्धार वाले देवगान्धार प्रकार का आपने वर्णन किया है, उसकी कोई सरगम भी आप बता देते तो बहुत अच्छा होता।

उ०—वैसा एक ख्याल मैंने एक मुसलमान गायक से सीखा था, परन्तु वह चीज गांधारी की बताई थी।

प्र०—किन्तु उसमें दोनों गान्धार हुए तो हम उसे देवगांधार की चीज मानकर अपने संग्रह में रक्खेंगे ?

उ०—ठीक है। इसी विचार के अनुमान से उसकी सरगम कहता हूँ:—

देवगांधार—एकताल.

प				नि				प			म
ध	म	प	पनि	ध	ऽ	प	ऽ	ध	म	प	प
३		४		×		०		२		०	
प	पप	म	सा	रे म	म		सा				सा
मप	धधपमप	ग	रे	पप	ग	ऽ	रे	ग	सा	निसा	रे
रे				म				म			सा
नि	सा	ऽ	सारे	ग	म	म	गम	प	ग	ऽ	री
ग	सा	ऽम	पनि								

अन्तरा.

प	म	नि						नि			
म	पप	ध	ऽनि	सां	ऽ	निसां	ऽसां	सांध	ऽ	सां	सां
३		४		×		०		२		०	
नि											
ध	सां	रें	सांरेंगं	रें	सां	ऽ	रें	नि	ध	प	ऽ

पपमग म	प प	नि ध ऽ	सां ऽ	मम पप ग	सा ऽ रे
ग सा	ऽ म,पनि				

इस सरगम से इस का स्थूलरूप तुमको सहज ही दीखने लगेगा। दिन के समय में 'सा, रे ग, म' यह टुकड़ा अधिक रुचिकर प्रतीत नहीं होगा, यह मैं जानता हूं। परन्तु यह राग प्रकार जानने की तुम्हारी इच्छा थी, इस कारण सरगम द्वारा दिखाया है।

प्र०—कोई हर्ज नहीं, हम इसे अवश्य संग्रह में रखेंगे। अब इस प्रकृति का राग 'देशी' रह गया। वही लेंगे क्या ?

उ०—मेरी समझ से अब उसे ही लेना सुविधाजनक होगा। इस राग को प्रचार में 'देसी' अथवा 'देसी-तोड़ी' भी कहते हैं। आसावरी, जौनपुरी, गांधारी आदि भी तोड़ी, प्रकार में समझे जाते हैं, यह मैंने कहा ही था; परन्तु इस प्रकार को तोड़ी कहने का जो कारण मैंने बताया था, वह याद है न ?

प्र०—हां, हां, ग्रन्थोक्त तोड़ी का थाट हमारे हिन्दुस्तानी भैरवी थाट जैसा होने से तथा इस राग में उस थाट के अधिकांश स्वर होने के कारण ऐसा प्रचार हुआ होगा, यह आपने कहा था।

उ०—तो फिर कोई हर्ज नहीं, अन्यथा 'तोड़ी' नाम सुनकर किसी ने तुमसे यह प्रश्न किया कि इस राग में तीव्र मध्यम का स्पर्श क्यों नहीं, तो तुम दुविधा में पड़ जाओगे। अस्तु, उस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। 'देसी तोडी' यह कोई नया नाम नहीं, इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये ! हमारे गायक 'देशी' न कह कर 'देसी' कहते हैं, किन्तु इसमें कोई हानि नहीं है। गान्धारी जैसा पुराना राग है, वैसा ही 'देसी' को समझना चाहिये। देसी राग अति मधुर तथा लोकप्रिय है। किन्तु यह भी नहीं समझना चाहिए कि यह तमाम गायकों को आता है अथवा सभी श्रोता इसे पहिचानते हैं।

प्र०—तो फिर यह लोकप्रिय कैसे होगा ?

उ०—इसकी रचना बहुत सुन्दर होने के कारण जिसके कानों में यह पड़ता है उसको तुरन्त ही पसन्द आ जाता है, इसीलिये मैंने ऐसा कहा; किन्तु इस राग को गाना आसान भी नहीं है। देसी के कुछ नियम स्वतन्त्र ही हैं। उनमें विभिन्न संगति, विभिन्न स्थानों पर किन्चित ठहराव आदि बातें भी महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

प्र०—तो फिर यह राग बहुत ही ध्यानपूर्वक, नियमों को सम्हालते हुए लेना चाहिये ऐसा दिखता है ?

उ०—हां, इसमें तनिक भी इधर उधर हुए कि तत्काल रागहानि होने की संभावना रहती है। अब इस राग के मुख्य मर्मस्पर्शी भाग कहता हूं, उनको ध्यान में रखो। प्रथम "सा रे ग म प" इस पूर्वाङ्ग के भाग को अच्छी तरह देखो "रे नि, सा"; "ग, रे नि,सा"; "प ग, रे नि सा"; "सा, रे म प, प"; "रे म प, प, ग रे नि, सा" ये टुकड़े भली प्रकार गाने के लिये प्रथम सीखने की आवश्यकता है। बड़े गायक अपने शिष्यों को "देसी" सिखाने के पूर्व ये टुकड़े पहले सिखाते हैं, ऐसा मेरे जयपुर के गुरु मोहम्मद अलीखां ने कहा था। रामपुर के नवाब साहेब ने और भी एक विशेष बात मुझ से कही थी, उन्होंने बताया कि "रे म प" ये स्वर दो बार कहकर फिर गांधार से नीचे षड्ज तक जाने में यह देसी राग अत्यन्त स्पष्ट तथा पृथक होगा।

प्र०—ये स्वर दो बार कहने चाहिये, वह कैसे ?

उ०—वह इस प्रकारः—"सा, रे म प, रे म प, ग, रे नि, सा" अथवा "रे, म प रे म प, ग रे, नि, सा" ये दो टुकड़े देसी के प्राण हैं, ऐसा वजीर खां भी कहते थे। मेरी इच्छा तो यह है कि तुम पहले अच्छी तरह प्रत्यक्ष बैठकर सुनो। इसमें "कण" मैं किस प्रकार लगाता हूँ यह ध्यान से देखो। इन टुकड़ों में, मैं मन्द्र निषाद पर ऋषभ का "कण" कैसे लगाता हूँ तथा उस पर कैसे व कितनी देर ठहरता हूँ, यह भी ध्यान देने योग्य है। "रे म प, प रे म प" इस टुकड़े में सारंग की छाया किस प्रकार सामने लाता हूँ तथा पंचम से "गन्धार" पर कैसे व कितना ठहरता हूँ, यह भी ध्यान से देखना। यह बात तुमको सध जाने पर यह कहा जा सकेगा कि देसी राग तुमको भली प्रकार आगया। गन्धार पर मध्यम का कण कितना सुन्दर प्रतीत होता है, वह भी देखो। गाने में यही तो मजा है, और है ही क्या ?

प्र०—यह हमारे ध्यान में अच्छी तरह आ रहा है। उस कण के योग से तथा विभिन्न स्थानों पर ठहरने से गायन बहुत मधुर होता है। देखो,"प म ग रे सा" यही स्वर आसावरी, जौनपुरी तथा गांधारी में होते हैं; किन्तु इस देसी में इन्हीं स्वरों के विभिन्न प्रकार से लिये हुए टुकड़े, राग पर कुछ निराली ही छटा लाते हैं, यह कृत्य हम सूक्ष्म दृष्टि से देख रहे हैं। इस राग का उत्तरांग किस प्रकार व्यक्त करना चाहिये ?

उ०—हां, इस भाग में भी कुशलता की आवश्यकता है। किन्तु यह भाग समझाने के पूर्व एक दो मतभेद भी तुमको बता देने आवश्यक हैं। अपने यहां देसी दो तीन प्रकार की गाते हैं। कोई गायक देसी में तीव्र धैवत लेते हैं, कोई कोमल धैवत और कोई दोनों धैवत लेते हैं।

प्र०—देखा ? यह "धैवत" सबके रास्ते में एक रोड़ा ही बन गया है ! तो फिर देसी को विभिन्न थाटों में लेना पड़ेगा क्या ? किन्तु प्रचार में यह उनमें से कौनसा प्रकार

दिखाई देगा ? सौभाग्य से "न चढी न उतरी" ऐसी धैवत मानने वाले अन्य कोई नहीं हैं, यह भी अच्छा ही है।

उ०—ऐसा कहने वाले भी कभी-कभी मिल जाने सम्भव हैं, किन्तु ऐसा मत अधिक सुनने में नहीं आया।

प्र०—ऐसा मतभेद क्यों हुआ होगा ?

उ०—यह निश्चयपूर्वक कैसे कहा जा सकता है ? उसका सम्बन्ध ग्रन्थों से होना चाहिये ऐसा, कह सकते हैं; किन्तु इस पर विशेष विचार ग्रन्थमत देखने पर कर सकेंगे। पूर्वाङ्ग में "सा रे म प" यह भाग लेने पर इस राग के आरोह में गन्धार नहीं आता है, यह दिखता ही होगा।

प्र०—प्रत्यक्ष ही है। यह बात आप अभी-अभी हमसे कह ही चुके हैं। अतः हमने आसावरी, जौनपुरी, गांधारी तथा देसी रागों में यह एक साधारण नियम ही समझ लिया था।

उ०—हाँ, ऐसा समझना हितकारी ही होगा। इसके अतिरिक्त देसी का एक और भी प्रकार है; किन्तु वह बिलकुल अप्रसिद्ध होने के कारण मैंने तुमको नहीं बताया।

प्र०—वह कौनसा, पण्डित जी ?

उ०—उसको गायक "उतरी देसी" कहते हैं। यह प्रकार मेरे रामपुर के गुरुबन्धु कै० नवाब छम्मन साहेब ने मुझे सिखाया था; इसमें "रिषभ कोमल" है।

प्र०—अर्थात् वह प्रकार भैरवी थाट का ही नहीं होगा क्या ?

उ०—होगा। किन्तु इस समय हम देसी के प्रकार देख रहे हैं, अतः इस प्रकार के सम्बन्ध में भी यहाँ दो शब्द कहने अप्रासंगिक न होंगे।

प्र०—इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं। आपने ऋषभ कोमल बताया तब हमने थाट का नाम लिया।

उ०—यह तुमने ठीक ही कहा। "उतरी देसी" तो उसी थाट में लेनी पड़ेगी। उस थाट में लेने का एक यह भी कारण है कि उसमें दोनों ऋषभ का प्रयोग होता है। देसी तथा आसावरी (उतरी) का इस प्रयोग में उत्तम मेल किया जा सकता है। देसी का एक नियम तो अभी-अभी मैंने बताया ही था।

प्र०—आरोह में गन्धार वर्ज्य करने का ?

उ०—हां, आरोह करते समय उत्तरांग में धैवत वर्ज्य करते हैं, यह भी एक नियम ध्यान में रखो। मैंने जो पहले तीन प्रकार देसी के कहे, उनमें यह नियम अवश्य दिखाई देगा। इतना ही नहीं, वरन् इस प्रकार में धैवत अवरोह में भी गौण ही रहता है।

प्र०—ऐसा क्यों होता है ?

उ०—इसका कारण यह है कि देसी में वादी स्वर पंचम है तथा सम्वादी ऋषभ है। आसावरी अथवा गांधारी में जैसा स्पष्ट धैवत हम लेते हैं, वैसा देसी में लेने पर तत्काल आसावरी अथवा जौनपुरी की छाया उत्पन्न हो जायगी। यह कृत्य कितनी
सा म रे म नि नि
सावधानी से करते हैं, देखोः—नि़, सा, रे प ग़, रे, नि़, सा, रे म प, प, ध़ प, सां, ध़
म नि म री सा म प
प, रे म प, ध़ प, ग़ रे, नि़, सा, नि़ सा, रे प ग़, रे, नि़ सा। "नि ध़ प" ऐसा टुकड़ा देसी में सर्वथा अशुद्ध नहीं कह सकते। जलद तानों में प्रायः ऐसा ही आयेगा। किन्तु इसे टालने
प नि म
का प्रयत्न किया हुआ भी दिखाई देगा। अधिक नहीं तो कभी-कभी "सां, प ध़ प, ग़
म री
रे, प ग़ रे, नि़ सा" ऐसा भी गुणी लोग करते हैं। वहां "सां, नि ध़, प" इस प्रकार धैवत का प्रयोग देसी के लिये विष के समान होगा, ऐसा समझदार लोगों का मत है।

नि नि नि
प्र०—क्या चमत्कार है देखिये! "ध़ प; सां, प ध़ प; नि ध़ प ऐसा प्रयोग देसी में समाविष्ट हो जायेगा, किन्तु "सां, नि ध़, प" ऐसा किया तो वहां तत्काल आसावरी सामने आजायेगी। हमको इस प्रकार की बातें बड़ी दिलचस्प मालूम होती हैं, पण्डित जी!

उ०—यही तो हिन्दुस्तानी सङ्गीत का रहस्य है। और इसी कारण हमारी पद्धति अन्य सङ्गीत पद्धतियों से भिन्न है। तुम अब तक देसी के सम्बन्ध में कितनी बातें सीख गये, संक्षेप में कहो तो सही?

प्र०—कहता हूँ। देसी राग को आसावरी थाट में लेते हैं। इस राग के कुल चार प्रकार हैं। इनमें से तीन प्रकारों में ऋषभ तीव्र है तथा चौथे प्रकार में दोनों ऋषभ लिये जाते हैं। इस अन्तिम प्रकार को "उतरी देसी" कहते हैं। पहिले तीन प्रकार जो कहे वे इस तरह हैं:—एक में धैवत तीव्र है, दूसरे में कोमल है तथा तीसरे में दोनों धैवत हैं। कोई धैवत "न उतरी न चढी" कहते हैं, यह एक निराला ही प्रकार है। देसी राग के आरोह में "ग तथा ध" इन स्वरों को वर्ज्य मानते हैं। उतरी देसी में कुछ भाग आसावरी अथवा गांधारी का है, इस कारण इसके आरोह में कहीं-कहीं धैवत लिया जाता है। तमाम देसी प्रकारों में पंचम की अपेक्षा धैवत बहुत कम प्रमाण में है। "नि ध़, प"
नि नि म
ऐसा धैवत पर मुकाम देसी में नहीं होता। वहां "ध़ प, सां, नि ध़ प, ग़ रे" इस प्रकार
नि म
करते हैं अथवा 'सां, प ध़ प, ग़ रे' ऐसा करते हैं। देसी राग पूर्वाङ्ग में स्पष्ट दीखता है।
म री
उसका मुख्य अङ्ग 'सा, रे प ग़, रे, नि़, सा' मानते हैं।

कोई "रे म प रे म प" ऐसी पुनरावृत्ति करने को कहते हैं। ऐसा करने से देसी अधिक अच्छी लगेगी, ऐसा कहा जाता है। इस राग का समय दिन का दूसरा-

पहर मानते हैं। देसी में "सा, रे म प" ऐसे जाकर पंचम पर रुकें तो वहां सारंग की छाया दिखना संभव है, ऐसा हमको जान पड़ता है।

उ०—तुमने बिलकुल ठीक कहा। ऐसा वे विशेष रूप से दिखाते हैं। क्योंकि यह परमेलप्रवेशक राग माना जाता है। अर्थात् इससे आगे सारंग राग में जाना होता है। देसी का मुख्य चलन मध्य व तार स्थान में है। मन्द्र स्थान में भी एकाध तान चलीजाय तो वह बुरी नहीं दीखेगी; किन्तु इसका विस्तार मध्य तथा तार स्थान में अधिक होता है। इस राग का उत्तरांग अच्छी तरह संभालने में बड़ी कुशलता है।

प्र०—अभी-अभी आपने कहा था कि देसी में 'प (म)ग, (री)रे, नि़ सा" ऐसा करना चाहिये, तो इस राग में 'म ग रे सा' ऐसा प्रयोग नहीं होगा क्या ?

उ०—क्यों नहीं होगा ? ऐसा होने में कोई हर्ज नहीं। वहां तनिक तिरोभाव होगा। किन्तु वह टुकड़ा अशुद्ध तो होगा ही नहीं। लेकिन इतना ही क्यों ? एक ध्रुवपद में वैसा प्रयोग स्पष्ट ही किया हुआ तुमको दिखाता हूँ:—सुनो:—

नि़	सा					सा					सा
सा	म	ग	री	सा	ऽ	म	ग	री	सा	ऽ	रे
०		३		४		×		०		२	
री											
नि़	नि़	सा	ऽ								
०		३									

ऐसे स्वरों का एक ध्रुवपद प्रसिद्ध है।

प्र०—तो फिर यह प्रयोग शुद्ध ही है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु यह चरण सुनते ही हमको "भीमपलासी" का कुछ आभास हुआ और वह 'म ग रे सा' स्वरों से ही हुआ है, ठीक है न ? किन्तु ऐसे कुछ स्वरसमुदाय साधारण ही माने जांयगे। ऐसी दशा में देसी अवरोह में सम्पूर्ण ही रही ?

उ०—यह तुमने बिलकुल ठीक कहा। आगे आरोह में जब 'सा, (म)रे म प, प, ध (म)ग, रे' ऐसा प्रयोग होगा, तब भीमपलासी तत्काल ही अदृश्य हो जायगी।

प्र०—इस राग की प्रकृति बहुत गंभीर दीखती है। अतः इस राग में ध्रुवपद तथा ख्याल अधिकतर सुनने में आते होंगे ?

उ०—हां, यह राग ऐसा ही है। वजीर खां तथा नवाब छम्मन साहेब इसमें अच्छे अच्छे ध्रुवपद गाते थे। स्वयं वजीर खां ने इस राग में मुझे एक ध्रुवपद, ऐसे बोलों का सुनाया था:—

देसी—आदिताल.

देखोरी एक मैं जोगी भेष किये अष्टफुन मुंडमाला लिये ।
जटाजूट गंगा जाके बिरद वाहन और वागंबर त्रिशूल खप्पर डमरू लिये ।
बीन पिनाक गौरी अर्धाङ्गी गावत तान बजावत टोडी अलाप किये ।
तानतरंग सेवक सेवा संकर चंद्रमा ललाट आइ दिये ॥

प्र०—वे कौन से स्वरों से तथा किस प्रकार गाते थे, इसकी कल्पना भी हमको दे सकेंगे क्या ?

उ०—प्रत्यक्ष चीज तो मैं तुम्हें आगे सिखाने ही वाला हूँ; किन्तु उनकी चीज के स्वरों का दिग्दर्शन कराने पर बताने में सुविधा होगी। वह इस प्रकार होगा, देखोः—

म   म सा   सा   म—— नि   म
सा, री सा, रे म प, ग, रे, रे नि सा, सा, म, म, प रे म प, ध प, म प, ग रे, नि
म   ध   प   म   म   री
सा, रे, म प, प नि ध प, म प, ग प ग, रे, नि, सा ।

नि   नि   सा   प
आगे अन्तरा का चलन ऐसा हैः—ध प, म प, ध प, सां, सां, रीं सां, रीं नि सां, नि
प   सां सां   म   सा   सा   नि   प   म
प, नि प, नि, नि सां, प, ध म प, ग, रे, नि सा, रे सा, सां, सां, ध प, नि ध प, म प, ग,
म सा
म प ग, री नि सा ।

इन स्वरों के योग से तुम अपने ध्रुवपद गा सकोगे ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु रागस्वरूप तुम्हारे ध्यान में आ जायेगा। इसी राग में मेरे दूसरे एक गुरु जयपुर के मोहम्मदअली खां ने अपना स्वरचित एक ध्रुवपद मुझे बताया था । वह उन्होंने दशहरे के उत्सव में बनाकर राजा रामसिंह के आगे गाया था।

प्र०—वह कैसा है ?

उ०—उसके बोल इस प्रकार हैंः—

देसी—चौताल.

अवधपुर नगरी के राजा । सिरी रामचंद्र । रावन के मारवे को । लंका चढ धायो है ॥
×   ×   ×   ×
बड़े बड़े जोधा सन । जुध करवे को साथ चले । समुन्दर तीर जाय के । लशकर ठहरायो है ॥
×   ×   ×   ×
हनूमत सो बीर जाने । लंका सब फूंक दई । रावन को मार्यो राम । पचरंग फहरायो है ॥
×   ×   ×   ×
सीता को लायो जब । पूजो दसेरो आय । 'हररंग' ऐसो सिरी । दशरथ को जायो है ।
×   ×   ×   ×

प्र०—'हररंग' नाम वे अपने गीतों में डालते थे, ऐसा हमको ध्यान है। ये बड़े गायक थे और विभिन्न उत्सवों के अवसरों पर विभिन्न रागों में नई नई रचना करके गाते थे, ऐसा भी आपने कहा था। वह समय कितना आनन्द का होगा ? अब ऐसा समय कब आयेगा, कौन जाने ? परन्तु अब वे सुनने वाले तथा प्रोत्साहन देने वाले राजा भी गये और गायक भी गये, ठीक है न ?

उ०—ठीक है। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में हिन्दुस्तान के लगभग बीस-बाईस प्रसिद्ध गायक-वादक स्वर्गवासी होगये। उनके स्थान की पूर्ति होना अब कठिन ही है। वजीर खां तथा उनके चिरंजीव प्यार खां, नवाब छमन साहेब, सरोदिये फिदाहुसैनखां, सितारिये इमदादखां, जाकरुद्दीनखां तथा गायक अल्लाबन्दे खां, मोहम्मद अली खां (गिधोर के), मोहम्मदअलीखां, आशिक अलीखां, ललनखां, धार के हैदरखां, सादतखां (ग्वालियर) मियांजानखां, मुशर्रफ खां (अलवर), कल्लनखां (जयपुर के), इनायत हुसैनखां (हैदराबाद के), मौलाबख्श (तिरवंडी वाले), पन्नालाल सितारिये, निहालसेन व अमीरखां (जयपुर), फैजमुहम्मदखां (बड़ौदा) मुरादखां तथा हाफिजखां, (इन्दौर) बालकृष्ण बुवा (इचलकरंजीकर), शेषण्णा (मैसूर), अघोर बाबू चक्रवर्ती, अप्पा शास्त्री (हैदराबाद), बंदे अलीखां, अलीहुसैनखां (बीनकार) बाला साहेब गुरू जी व शंकर पण्डित (ग्वालियर) तथा कुछ और भी संगीतज्ञ गत पन्द्रह बीस वर्षों में स्वर्गवासी हुए हैं। इन कलाकारों के स्थान की हाल में पूर्ति होनी कठिन ही है। इनके अतिरिक्त मैंने अपनी युवावस्था में अनेक अच्छे गायक इमदादखां, जमाल खां, तानरस खां, नत्थनखां, निसारहुसैन खां, बन्ने खां आदि को सुना ही था। यद्यपि अब ऐसे लोग नहीं रहे तथापि तुमको निराश नहीं होना चाहिये। यह क्यों सोचते हो कि तुम जैसे उत्साही तथा होनहार सुशिक्षित विद्यार्थी आगे इस विद्या को पुनः उन्नत नहीं कर सकेंगे। सङ्गीत की अवनति के दिन अब समाप्त होते जारहे हैं। देश में जागृति की लहर दौड़ रही है। अन्य विषयों के साथ यह सङ्गीत विद्या भी पुनः उच्चस्थान पर आसीन होगी, ऐसी हमें आशा रखनी चाहिये। अच्छा, अब विषयान्तर छोड़कर हम अपने देशी रागों की ओर बढ़ें। चलो न ?

प्र०—जी हां, अवश्य। हमको अब आप इस देसी राग का 'चलन' बतायेंगे क्या ? इसके विभिन्न भाग तो हमको बहुत अच्छी तरह समझ में आगये हैं।

उ०:—हां, अवश्य कहूँगा। सुनो:—

नि़ म री म नि म म री
सा, नि़ सा, रे प ग, रे, नि़, सा, रे म प, प, म प, ध प, ग रे, प ग रे, नि़ सा।
सा म प म म सा प म री
नि़ सा रे प ग रे, प म प; नि ध प, म प, ग रे, प ग, रे, नि़ सा, नि प, म प, ग रे, नि़,
सा प़ नि म म
सा। सा, नि़ सा, नि़ प़, सा, रे म प रे म प, ध प, नि ध प, रे म, नि ध प, म प ग, रे,
म री म
प ग रे, नि़ सा ॥ सा, नि़ सा, रे नि़ सा, म़ प़ नि़ सा, रे, म ग रे, प ग, रे, सा, प, म प,
नि म सा म री
ध प, म प ग रे, नि़ सा रे प, ग, रे, नि़ सा।

नि म प नि म सा म
प, म प, ध प, ग रे, नि ध प, रे म प नि ध प, म प ध प, ग रे, नि सा, रे प ग,
री म नि नि नि म
रे, नि सा। सा, रे म, प, प, ध प, सां, नि सां, प ध प, रे म प नि ध प, ध प, म प, ग
री सा म री नि
रे, नि सा रे प ग, रे, नि, सा नि सा, प नि सा, म प नि सा रे सा, ग रे, नि सा, ध प,
नि नि म सा री
सां, प, म प, ध प, म प ध म प, ग रे, नि सा, रे प ग, रे, नि, सा

सां सां प म
म म प, सां, सां, नि सां, रें, सां, गं रें मं, नि सां, प, नि ध प, म, म, रे म, म,
म प नि म री म री
प, नि ध प, म प ग रे, रें सां, नि प, म प ध प, ग रे, नि सा, रे प ग, रे, नि, सा।

इस विस्तार में 'धैवत' मैंने कहां-कहां कोमल रखा है, यह दीखता ही है। वहां वह तीव्र भी लिया जाय तो विशेष हानि नहीं। जो लोग एक कोमल धैवत ही देसी में में मानते हैं उनको यह राग गांधारी से पृथक रखने में सावधानी रखनी पड़ती है।

प्र०—वहां उनको 'नि ध प' यह टुकड़ा भली प्रकार सम्भालना पड़ेगा, यही न? अभी आपने जो विस्तार कहा, उसके आधार पर हम कोमल धैवत का प्रकार करके बतायें क्या? कदाचित् वहां गांधारी अथवा आसावरी का भास होगा, किन्तु हम पुनः मूल राग में आ सकते हैं, ऐसा हमें विश्वास है।

उ०—अवश्य। अच्छा तो करके बताओ। देखें कैसा करते हो?

री म री म नि नि
प्र०—सा, रे नि सा, रे प ग, रे ग, रे नि सा, सा, रे म, प, प, ध प रे, ध प,
प म नि म री म री
नि ध प, रे म प, ध प, ग रे, नि सा, रे प ग, रे, नि सा।

री नि प नि म म म
सा, रे नि सा, ध प, म प, नि ध प, ध प, सा, रे ग, रे, प ग, रे नि प, सां प, नि
म म री म री
ध प, रे म प ध म प ग, रे, नि सा, रे प ग, रे, नि, सा।

नि सां नि म म
म म, प, प, ध प, सां, नि सां, रें सां, ध प, रे म प, गं रें सां, रें सां, नि ध प, रे
नि म री
म प, ध प, म प ग, रे, नि सा।

म नि नि म प म
प रे, म प, प, ध, प, म प, सां, प, म प ध प, म प ग रे, नि ध प, म प, ग रे, रे
म री सां सां म म
ग रे, नि सा। म प सां, सां, गं रें सां, नि सां, प, नि ध प, रे म प नि ध प, ग रे, प
म री म री
ग रे, नि सा, रे प ग, रे, नि, सा।

साधारणतः यह रचना ठीक है क्या ?

उ०--मेरी समझ से यह बुरा नहीं है। इसमें 'नि ध प' यह बहुत सुन्दर टुकड़ा तुमने रखा है। इस 'नि' के ऊपर पंचम का कण दिया है, यह भी अच्छा किया। इस राग में 'रि प' तथा 'प रि' ऐसी संगति तुमने अच्छी ध्यान में रखी, वैसे ही 'सां' से
म री
एकदम 'प' पर आना भी खूब साधा। 'प ग, रे, नि, सा' यह टुकड़ा अब तुम्हारे ध्यान में भली प्रकार जम गया, इसमें संशय नहीं। 'पंचम' को इस राग में बीच-बीच में
नि
खुला रखने में कुशलता है। ऐसा यदि उसे रखा जाय तो फिर उसके आगे 'ध प'
प म म
अथवा 'नि ध प' ये टुकड़े बुरे नहीं दीखते। उसी प्रकार 'प ग रे, म ग रे, नि सा' ये भाग भी शुद्ध ही है। कुल मिला कर यह राग अच्छी तरह तुम्हारे ध्यान में आगया, यह कहा जा सकता है।

प्र०—अब हमको 'उतरी देसी' कैसी है, यह भी बतायेंगे क्या ?

उ०—'उतरी देसी' में दोनों ऋषभ लेते हैं तथा बीच-बीच में धैवत का थोड़ा सा प्रयोग आरोह में भी किया जाता है। यह प्रकार सर्वथा अप्रसिद्ध है, इस कारण मुझे नवाब छम्मन साहेब ने इसमें जो एक गीत सिखाया था, उसके अनुमान से स्वरविस्तार करके दिखाना पड़ेगा।

प्र०—कोई हानि नहीं। हमको वह राग कैसा लगता है, यही देखना है ?

उ०—तो फिर सुनोः—(सावकाश)

म नि नि
प, प, ध ध, प, ध म, प धु नि, सां नि ध, प, नि ध प, (यहां पर यह किसी को
री म म ग
भी पता नहीं चलेगा कि यह देसी है, किन्तु आगे देखो) म म, रे म प ध, म प, ग, रे
ग
रे, सा, (ये दो खुले मध्यम खासतौर से इसलिये लिये गये कि पिछले भाग में वे ढँक
नि म ग
गये थे) सा म, म, प रे म, ध, म प, ग, रे सा। यह विस्तार अच्छी तरह सुनकर तथा मेरी बताई हुई संगति बारम्बार कहकर जमा लो, तो भली प्रकार ध्यान में रहेगा।
म
इसमें दोनों ऋषभ जल्दी से मैं किस प्रकार कहता हूँ, वह देखो। 'प रे म प ध म प ग,
ग
रे, सा' यह देसी का भाग है।

प्र०—यह हमारी समझ में आगया। आगे ?

उ०—आगे सुनोः—

नि रीं
म प, प, ध, प सां, नि सां, (यह भाग देसी में चलता ही है) सां, रें गुं रें, सां,

प　　　　म ग　　सां
सां नि ध ध प, ध म, म प ध, म प ग, नि नि, नि मां, मां सां नि ध प, ध म, प, सां,
नि　　　　प　　　　प　　　　म ग
रें गं, रें सां, सां, नि, ध ध प, प, ध म, म प ध म प, म प ध म प, ग, रे, सा । प, प ।

प्र०—इस भाग में देसी पहिचानना कुछ कठिन होगा, परन्तु इसमें आसावरी तथा गांधारी भी नहीं दीखती। इसके गीत हम आगे चलकर आपके पास बैठकर सीख लेंगे ?

उ०—तो फिर अब हमारे ग्रन्थकारों ने देसी का वर्णन किस प्रकार किया है, यह भी देख जाओ।

शार्ङ्गदेव ने अधुनाप्रसिद्ध १३ रागांग कहे हैं, उनमें "देशी" भी एक है। जैसे:—

मध्यमादिर्मालवश्रीस्तोडी बंगालभैरवौ ।
वराटी गुर्जरी गौडकोलाहलवसन्तकाः ।
धन्यासीदेशिदेशाख्या रागांगाणि त्रयोदश ।

ये सब राग आज भी हमारे गायकों को मालूम हैं। केवल स्वरों में भेद रहता है। रत्नाकर में देशी रेवगुप्त राग से निकला बताया गया है:—

तज्जा (रेवगुप्तजा) देशी रिग्रहांशन्यासा पंचमवर्जिता ।
गांधारमंद्रा करुणे गेया मनिसभूयसी ॥

"रेवगुप्त" दक्षिण के कुछ ग्रन्थों में मालवगौड थाट में कहा है, अर्थात् भैरव थाट में उसे लिया है।

संगीत दर्पण में देशी इस प्रकार कही है:—

देशी पंचमहीना स्यादृषभत्रयसंयुता ।
कलोपनतिका ज्ञेया मूर्च्छना विकृतर्षभा ॥

ध्यानम् ।

निद्रालसं सा कपटेन कान्तं
विबोधयन्ती सुरतोत्सुकेव ।
गौरी मनोज्ञा शुकपिच्छवस्त्रा
ख्याताच देशी रसपूर्णचित्ता ॥

रि ग म ध नि सा रि-　　।

इसको दीपक राग की रागिनी बताया है। संगीतसारसंग्रह ग्रन्थ में यही लक्षण तथा यही ध्यान कहकर वसन्त राग की रागिनी लिखी है। उसी ग्रन्थ में रत्नमाला ग्रन्थ से देशी के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

रेवगुप्तोद्भवा देशी रिग्रहान्ता धवर्जिता ।
प्रहराभ्यन्तरे गेया शान्तेच करुणे रसे ॥

मूर्तिः ।

गजपतिगतिरेणीलोचनेन्दीवरांगी
पृथुलतरनितंबालंबिवेणी भुजंगा ।
तनुतरतनुवल्ली वीतकौशुंभरागा
इयमुदयति देशी रागिणी चारुहासा ॥

लोचन ने तरंगिणी में "देशीतोडी" गौरी मेल में बताई है। जैसेः—

गौरीसंस्थितिमध्ये तु येषां संस्थितयो मताः ।
तेषां नामानि कथ्यन्ते क्रमेणैतान्यशेषतः ॥

× × ×

देशीतोडी देशकारो गौडो रागेषु सत्तमः ॥

अर्थात् उसने देशीतोडी को भैरव मेल में लिया है। उसके लक्षण कौतुक में हृदय पंडित इस प्रकार कहता है:—

गरी सरी सनी धश्च धनिसाः सरिगाः पमौ ।
धनिसाः सनिधाः पश्च मगौ रिसौ क्रमात्स्वराः ।
संगीतसारतत्त्वज्ञैर्देशीतोडी निगद्यते ॥
गरिसारिसानि धधनिसासारि गपमधनिसा सानिधपमगरिसा ॥

हृदयप्रकाश में हृदय ने उसी मेल में लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

गांधारादिश्च संपूर्णा देशीतोडी निरूप्यते ॥
रिसरिसनिधधनिसा सारिगमपधनिसा निधपमगरिसा ।

अहोबल पण्डित 'पारिजात' में लक्षण इस प्रकार कहता है:—

गनी त्याज्यावथारोहे रिधौ यत्र च कोमलौ ।
षड्जादिस्वरसंभूतिर्देश्यामंशस्तु रिस्वरः ॥

प्र०—इस लक्षण में आरोह में ग तथा नि स्वर छोड़ने को कहा है, परन्तु ये स्वर अवरोह में वर्ज्य न हुए तो यह भैरवी थाट के आसावरी जैसा प्रकार नहीं होगा क्या ?

उ०—यह तुम्हारे ध्यान में खूब आया। अहोबल का शुद्ध मेल काफी होने से इसमें रि ध कोमल हुए तो जैसा तुम कहते हो वैसा प्रकार अवश्य होगा। इससे इतना ही समझना चाहिये कि देशी का रूपान्तर हो चला था। हृदय पण्डित ने 'पारिजात' देखा था, किन्तु उन्होंने देशीतोडी को गौरी मेल में ही रहने दिया। श्री निवास ने रागतत्वविबोध में अहोबल का ही अनुवाद किया है। अहोबल ने देशी का उदाहरण इस प्रकार दिया है:—

सा रे म प ध सां। नि नि ध म प ग ग रे सा। यह मूर्छना पहले बताई है, "कारण षड्जादिस्वरसंभूतिः" ऐसा उसने कहा है। आगे, रे रे सा नि ध सा। सा रे म प नि नि ध म प म प ग ग रे सा रे म प म म ग रे रे ग रे सा। ऐसा स्वरूप दिया है।

अब पुण्डरीक के ग्रन्थ की ओर बढ़ें। चंद्रोदय में, पुण्डरीक ने देशी "शुद्धरामक्री" अर्थात् हमारे "पूर्वी" थाट में कही है। जैसे—

शुद्धौ सरी शुद्धपधैवतौचेन्मनामधेयो लघुपूर्वकश्च।

लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौ चेद्विशुद्धरामक्र्यभिधस्य मेलः।

आगे लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

न्यासांशरी रिग्रहणी परिक्ता प्रयुज्यते शश्वदसौच देशी॥

रागमाला में पुण्डरीक ने 'देशी' देशिका राग की रागिनी कही है तथा लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

धम्मिद्रे मद्रिमालां श्रवणयुगलतः कुंडले कंठमालां
कूर्पासं शुभ्रवस्त्रं चरणकरयुगे नूपुरौ कंकणेच।
आहंगस्य प्रपौत्री मृदुसुकरतले पल्लवं संदधाना
गांधारांत्येंदुगौ स्त त्रिसमयरिरपा सर्वदा याति देशी॥

प्र०—इन लक्षणों में 'गांधार' व अंत्य अर्थात् निषाद 'इंदुगौ' कहे हैं, इसलिये जान पड़ता है यह भैरवी थाट ही होगा? 'त्रिसमयरी' अर्थात् ग्रहांशन्यास रि होगा। 'अप' अर्थात् पंचम वर्ज्य यही न?

उ०—तुमने ठीक कहा। अब देशी में पंडितों को ग तथा नि कोमल दिखाई दिये, ऐसा समझाने के लिये रागमंजरी में पुण्डरीक ने 'देशी' देशकार मेल में कही है। जैसे:—

तृतीयगतिनिगमा देशीकारस्य मेलकः।

देशिकारस्तिरवणी देशी ललितदीपकौ॥

प्र०—यह तो 'पूर्वी' थाट ही हुआ?

उ०—हां, आगे लक्षण सुनोः—

पहीना रित्रिधा देशी सदा गेया विचक्षणैः ॥

अस्तु, अब दक्षिण के दो–तीन ग्रन्थ देखो ।

स्वरमेलकलानिधी में रामामात्य ने 'आर्द्रदेशी' नाम देकर यह रागिनी 'शुद्धरामक्री' मेल में अर्थात् अपने 'पूर्वी' मेल में कही है। जैसेः—

शुद्धाः सरिपधाश्चैव च्युतपंचममध्यमः ।

च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥

शुद्धरामक्रियामेलः स्यादेभिः सप्तभिःस्वरैः ।

अत्रमेले संभवन्ति ये रागास्तानथ ब्रुवे ॥

शुद्धरामक्रिया बौली ह्यार्द्रदेशीच दीपकः ॥

आर्द्रदेशी को आगे 'अधम' रागों में मानकर उसके लक्षण पंडित ने नहीं बताये ।

सोमनाथ पण्डित ने 'देशी' शुद्धरामक्री मेल में ही बताई है । वह कहता हैः—

शुचिरामक्रीमेले मृदुमकतीव्रतममृदुपाः शुद्धम् ।

सरिपधमियमत्र ललिताजैताश्रीत्रावणीदेश्यः ॥

आगे देशी के लक्षण इस पण्डित ने इस प्रकार दिये हैंः—

रिग्रहरिन्यासांशा गाल्पा देशी सदा गेया ।

अर्थ सरल ही है। चतुर्दंडिप्रकाशिका में व्यंकटमखी पण्डित ने 'शुद्धदेशी' तथा 'आर्द्रदेशी' ऐसे दो प्रकार कहे हैं । उनमें से 'शुद्ध देशी' श्री राग का एक उपांग राग बताया है अर्थात् शुद्ध देशी का थाट 'काफी' हुआ । वे कहते हैंः—

अथ श्रीरागमेलेतु मणिरंगस्ततःपरम् ।

स्यात्सालगभैरवीच शुद्धधन्यासिरागकः ॥

रागाः कन्नडगौलश्च शुद्धदेशी ततःपरम् ॥

× × ×

उसी प्रकार कहते हैंः—

मायामालवगौलस्य मेले सालंगनाटकः ।

× × ×

बौलयार्द्रदेशिका रागौ । × ×

प्र०—मालूम होता है धीरे धीरे देशी में रि, ध तीव्र तथा ग, नि कोमल उनके समय में हो गये थे; इसका प्राचीन रूप भैरव तथा पूर्वी थाट में था, इस बन्धन के कारण "शुद्ध देसी" नाम पसन्द किया गया होगा ?

उ०—तार्किक दृष्टि से ऐसा कह सकते हैं। सारामृतकार तो व्यकण्टमखी का ही अनुयायी था। वह कहता है:—

शुद्ध देशी राग एष जातः श्रीरागमेलतः।
संपूर्णस्वरसंयुक्तः षड्जन्यासग्रहांशकः॥

आगे ग्रन्थकार एक मनोरंजक नियम इस प्रकार बतलाता है:—

"अत्राप्यारोहे गांधारलंघनमितिहेतो "निसरिगरीति" गांधारांतक्रमे गांधार आगच्छति। तदुपरिगमने नागच्छति।"

प्र०—यह ठीक है। किसी राग में विवादी स्वर हो तो उस स्वर तक जाकर लौटना शास्त्रसंमत है यानी उस स्वर के परे नहीं जाना चाहिये। विवादी स्वर वक्र होता है, ऐसा ही कहिये न! यह नियम उसने अच्छा बताया है। "शुद्ध देशी" का उदाहरण इस पंडित ने दिया है क्या ?

उ०—हां, वह उसने इस प्रकार दिया है:—प म प ग रे सा। नि़, ग म प, नि ध प, ध नि सां, नि ध प म नि प म ग रे सा नि ध प म सा। हम देसी के आरोह में धैवत वर्ज्य करते हैं। अस्तु, अब रागलक्षणकार क्या कहता है वह देखो! अर्थात् फिर संस्कृत ग्रन्थ समाप्त ही समझने चाहिये। इस ग्रन्थकार ने "शुद्ध देसी" के दो प्रकार कहकर वे नठभैरवी मेल में लिये हैं। जैसे:—

नठभैरविरागाख्यमेज्जातः सुनामकः।
शुद्धदेशीतिरागश्च रिन्यासं र्यंशकग्रहम्॥
आरोहेऽप्यवरोहेच पनिवर्ज्यं तथौडवम्॥
स रि ग म ध सां : सां ध म ग रि सा।
(आंध्र) स रि म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रि सा॥

दूसरा प्रकार:—

नठभैरविरागाख्यमेलाज्जातः सुनामकः।
शुद्ध देशीतिरागश्च संन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहे तु गवर्जं चाप्यवरोहे समग्रकम्॥
सा रे म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा॥

प्र०—तो फिर हम अपने देशी तक आ पहुँचे। जब ग्रन्थकारों में इतना मतभेद है तो अपने गायक-वादकों में भी हो, तो क्या आश्चर्य की बात है? काफ़ी तथा

आसावरी इन दोनों थाटों के देशी के प्रकार हमको मिल ही गये। धैवत आरोह में लेते हैं तथा उसे हम नहीं लेते, इतना ही अन्तर है। आरोह में धैवत लिया जाने वाला एक प्रकार भी आपने अभी-अभी कहा ही था। वास्तव में यह देशी का इतिहास हमको बहुत पसन्द आया।

उ०—तुम्हारा कहना ठीक है। अब राधागोविन्द सङ्गीतसार, नादविनोद तथा टागोर साहेब का सङ्गीतसार, इन ग्रन्थों में क्या कहा है उसे भी देखो। राधागोविन्द सङ्गीतसार में इस प्रकार कहा है:—

दीपककी तीसरी रागिणी देसीतोडी की उत्पत्ति।

शिवजी नें उन रागन में सों विभाग करिवेको तत्पुरुष नाम मुख सों देसी रागनी गाइ के दीपक की छायायुक्ति देखी दीपक को दीनी। × × शास्त्र में तो यह छः सुरन सों गाइ है। रि ग म ध नि स रि। षाडव है। यातें दिन के दूसरे पहर में सातवीं घड़ी में गावनी। जंत्र।

(एक पंक्ति में)

रे॒ सा रे॒ म ग॒ म ध॒ ग॒ रे॒ म नि॒ नि रे॒ ग मं म ग म ध॒ म ध॒ नि सां ध॒ म ग मं ध॒ नि रें॒ नि मं ध॒ ग म ग।

यह जन्त्र हमारे काम आयेगा, ऐसा नहीं जान पड़ता।। जन्त्रों में योग्य रीति से स्थान नहीं दिये। स्वर जैसे लिखे हैं वैसे कोई गाता होगा, ऐसा भी नहीं जान पड़ता।

प्र०—हमारी समझ से तो इस पण्डित ने शास्त्र तथा प्रचार इन दोनों का मेल करने का यह निरर्थक प्रयत्न किया होगा। इसमें भैरव, पूर्वी तथा आसावरी तीनों थाटों का मिश्रण पिछले ग्रन्थों में देखकर कर दिया है, ऐसा मालुम होता है। उस समय के गायक इस तरह गाते होंगे, ऐसा हमें प्रतीत नहीं होता।

उ०—यहां तुमको कैसा भी तर्क करने की स्वतन्त्रता है। यह रूप निरर्थक है, ऐसा कोई भी कहेगा। अच्छा, अब नादविनोद की ओर बढ़ें। नादविनोदकार ने प्रथम देशीतोडी को शास्त्राधार देते हुए "निद्रालसं सा कपटेन कांतम्।" यह दर्पण का श्लोक ले लिया है। आगे लक्षण:—

मध्यमांशग्रहंन्यासं देशी संपूर्णका मता।
गुर्जरीटोडिकायुक्ता मिश्रितासावरी पुनः॥

इस प्रकार दिये हैं। इतना करके आगे आलाप सरगम ऐसी कही है:—

सा रे ग॒ रे सा, म म ग॒ म प प म प ग॒ ग॒ रे म म प प ध ध सां सां म प ग॒ ग॒ रे सा। अन्तरा। ध ध ध नि॒ सां सां ध नि॒ सां रें ग॒ं रें सां म म प रें सां प म प ग॒ रे रे सा नि॒ सा प म प ग॒ रे सा।

प्र०—आप कुछ भी कहें, किन्तु हमको इस नादविनोदकार के शास्त्र के सम्बन्ध में तथा रागनियमज्ञान के सम्बन्ध में बहुत ही सन्देह होता है। फिर उसका लिखना दोषपूर्ण है या और कुछ कारण है, कौन जाने?

उ०—वे बेचारे स्वर्गलोक गये। अतः अब उन पर टीका करने से क्या लाभ? उनका मेरा अच्छा परिचय था। बम्बई में वे कई महीनों तक रहे थे, उनके पास मैं नित्य जाता था। प्रसिद्ध राग वे अच्छे बजाते थे। उनकी ख्याति "गत तोड़ा" बजाने में थी। अप्रसिद्ध रागों की किसी ने फरमाइश की तो वे कठिनाई में अवश्य पड़ जाते थे। मैं दिल्ली गया था, उस समय मैंने उनसे ग्राम मूर्छना का स्पष्टीकरण मांगा था, किन्तु वे संस्कृत नहीं जानते थे इससे वे खुलासा नहीं कर सके। लेकिन इससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। कुछ रागनियम तथा रागभेद भी मैंने पूछे थे, परन्तु उचित उत्तर नहीं मिला। उनका हाथ मधुर था। उनके गत तोड़ा, झाला, ठांक आदि उत्तम थे। वाकूपटु होने से लोगों के मन पर उनकी छाप अच्छी व शीघ्र जम जाती थी। इसलिये लोगों की दृष्टि में वे श्रद्धा के पात्र थे तथा उनके सम्बन्ध में लोगों के विचार भी अच्छे थे। अस्तु, क्षेत्रमोहन स्वामी संगीतसार में "देशी तोडी" इस प्रकार कहते हैं:—

म   री म
नि सा रे म रे म प ध म प ग, सा, रे सा, रे सा, म ग प, म प, ध सां रीं नि ध
म सा सा
प रें म प ध म रे प ग, रे, रे, सा। अन्तरा। प नि ध नि सां, नि सां नि सां, सां प ध ध
सां सां   नि   म   म
सां, नि सां, रें रें, सां, सां, ध प, म प प सां रीं नि ध प, म ध प, ग रे रे सा? यहां "कण" मैंने लगाये हैं। वे उन्होंने स्वरों के पहिले लिखकर उन पर मात्रा चिन्ह नहीं दिये थे।

प्र०—परन्तु यह प्रकार भी कहीं कहीं हमें विसंगत जान पड़ता है। अवरोह में वह तीव्र निषाद चमत्कारिक ही प्रतीत होगा?

उ०—छोड़ो इन बातों को। जो कुछ वहां है, वह मैंने तुमको बताया है। तुम बंगाली नियम पसन्द करो, ऐसा मैं नहीं कहता। अब इस राग में एक दो सरगम कहकर फिर उसके प्रचलित आधार कहता हूँ, सुनोः—

सरगम—झपताल

सा		म		म					
नि	सा	रे	प	ग	रे	नि	सा	ऽ	सा
×		२			०		३		
सा		म					प		
नि	सा	रे	म	रे	म	प	नि	ध	प

प					नि		म		
म	प	सां	ऽ	प	ध	प	म	रे	ऽ
म			नि		म		सा		
रे	म	प	ध	प	ग	रे	नि़	नि़	सा

अन्तरा.

प		सां					सां		
म	प	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	नि	सां	सां
×		२			०		३		
सां		सां			सां			नि	
नि	सां	गं	रें	सां	नि	सां	प	ध	प
प					नि		म		
म	प	सां	ऽ	प	ध	प	ग	ग	रे
म			नि		म		री		
रे	म	प	ध	प	ग	रे	नि़	सा	ऽ

सरगम—झपताल

सा				म		री			
नि़	सा	रे	प	ग	रे	नि़	सा	ऽ	सा
×		२			०		३		
सा		म			म			नि	
नि़	सा	रे	म	प	रे	म	प	ध	प
प					नि		म		
म	प	सां	ऽ	प	ध	प	ग	ग	रे
म			नि		म		री		
रे	म	प	ध	प	ग	रे	नि़	सा	ऽ

अन्तरा.

प	सां		सां
म प	नि सां ऽ	सां ऽ	नि सां सां
×	२	०	३
सां		सां	नि॒
नि सां	रें रें सां	नि सां	प ध॒ प
म		नि॒	म
रे म	प सां ध॒	ध॒ प	ग॒ ग॒ रे
म	नि॒	म	री
रे म	प ध॒ प	ग॒ रे	नि़ सा ऽ

सरगम–देसी–चौताल.

नि़ सा		री			री
सा मग॒	रे सा	म ग॒	रे सा	ऽ रे	नि़ सा
×	०	२	०	३	४
री	म			म	म
नि़ सा	ऽ रे	म म	प प	ऽ प	ग॒ रे
म					
रे म	ऽ म	प प	सां ऽ	प नि॒	ध प
म			म	री	
रे म	प ध॒	म प	ग॒ ऽ	रे नि़	सा सा ।

अन्तरा.

प		नि॒	प	सां	
म प	ऽ प	ध॒ प	सां ऽ	नि सां	ऽ सां
×	०				
नि॒	सां				
ध॒ प	ऽ नि	सां ग॒ं	रें सां	ऽ नि॒	ध प

म				नि॒						म	
प	नि॒	ध	प	ध	प	ऽ	म	प	प	ग॒	रे
म						म			री		
रे	म	प	नि॒	ध	प	ग॒	रे	ऽ	नि़	सा	सा।

सरगम—देसी त्रिताल.

नि़	म							म						नि॒	
सा	ग॒	रे	सा	रे	नि़	सा	ऽ	रे	म	प	रे	म	प	ध	प
•				३				×				२			
प				नि॒		म		म				म		री	
म	प	सां	प	ध	प	ग॒	रे	रे	म	प	ध	ग॒	रे	नि़	सा।

अन्तरा.

प				सां				सां		सां				नि॒	
म	प	सां	ऽ	नि	सां	ऽ	सां	नि	सां	ग॒ं	रें	सां	ऽ	ध	प
•				३				×				२			
						म		म				म	रे		
नि॒	ध	प	नि॒	ध	प	ग॒	रे	रे	म	प	ध	ग॒	रे	नि़	सा।

प्र०—इस चौताल के सरगम में कहीं-कहीं कोमल धैवत विशेषरूप से लिया है, वहां वह बुरा नहीं लगता पण्डितजी ! इसके विपरीत वह राग की विशेषता ही प्रदर्शित करता है, ऐसा हम कहेंगे ?

उ०—हां, उसे वहां खासतौर से ही लिया गया है। कोई देशी में दोनों धैवत लेते हैं, ऐसा मैंने कहा ही था। यदि कोमल धैवत नहीं के बराबर हो और उसे निकाल कर तीव्र कर दिया जाय तो भी राग बिगड़ने का भय नहीं। देशी के मुख्य भाग श्रोताओं के समक्ष कुशलता से रखने में ही सारी खूबी है। 'सां, नि॒ ध॒, प' ऐसा टुकड़ा लेकर धैवत पर मुकाम हुआ कि देशी अदृश्य हुई। अब प्रचलित देशी स्वरूप के आधार सुनाता हूँ। इन श्लोकों की सारी बातें तुमको मैं पहले कह ही चुका हूं। ये श्लोक याद करने के लिये उपयोगी होंगे:—

देशी.

नठभैरविकामेले प्रोक्ता देशी गुणिप्रिया ।
आरोहे धगवर्ज्यत्यं प्रतिलोमे समग्रकम् ॥
पंचमः कीर्तितो वादी मंत्रितुल्यस्तु रिस्वरः ।
गानं चास्याः समाख्यातं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
योजयंति पुनः केचिदत्र तीव्राख्यधैवतम् ।
अन्येऽपि धैवतद्वंद्वं बुधः कुर्याद्यथोचितम् ॥
पूर्वांगे विलसेदत्र सारंगांगं विशेषतः ।
उत्तरांगे लसेदासावर्यंगं लक्ष्यविन्मते ॥
देशीतोडी मतामेले गौर्याख्ये लोचनेन वै ।
तथैव कौतुके प्रोक्तं हृदयेशेन सूरिणा ॥
शुद्धरामक्रियामेले सोमनाथेन वर्णिता ।
हरिप्रियाव्हये मेले प्रोक्ता व्यंकटधीमता ॥
रागलक्षणके ग्रंथे नठभैरविमेलने ।
आरोहे गस्वरत्यक्ता कीर्तिता चांध्रसंमता ॥

लक्ष्यसंगीते ॥

स्वरैरासावर्याः किल जगति देशी सुविदिता ।
धगत्यक्ताऽऽरोहे विलसति वरोहे तु सकला ॥
प्रसिद्धः संवादो भवति समयोरत्र मधुरः ।
प्रभां सारंगस्य प्रकटयति पूर्वेऽग इह सा ॥

कल्पद्रुमांकुरे ॥

आसावरिके ठाठमें चढते धग न लगाइ ।
परिवादीसंवादितें देसी गुनियन गाइ ॥

चन्द्रिकासार ॥

आसावरी मेलभवा देशी षड्जांशका स्मृता ।
आरोहे सापि गांधारधैवतस्वरवर्जिता ॥
अवरोहे च संपूर्णा संवदत्पंचमस्वरा ।
मताचौडुवसंपूर्णा निषादर्षभसंगतिः ॥
केचिन्निरूपयन्त्यस्यास्तीव्रत्वं धैवतस्वरे ।

अपरे धैवतद्वंद्वमिति पद्यत्रयं स्मृतम् ॥
गांधारे कंपरुचिरा गीयते संगवे बुधैः ।

सुधाकरे ॥

रिमौ परी मपधपा निधौ परो गरी निसौ ।
संगवे गीयते देशी पंचमांशा सुरक्तिदा ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्रिय मित्र ! इस प्रकार आसावरी मेल के अति प्रसिद्ध जो चार राग आसावरी, जौनपुरी, गांधारी तथा देशी हैं, वे मैंने तुमको बताये। ये हमेशा तुम्हारे सुनने में आयेंगे। कहीं सवेरे की महफिल हुई तो इनमें का एकाध राग उसमें अवश्य गाया जायेगा। आसावरी तथा जौनपुरी एक के बाद दूसरा प्रायः कोई नहीं गाता। कोई ख्यालिया हुआ तो वह बहुधा जौनपुरी गायेगा और उसीको आसावरी कहेगा। ध्रुपदिया हुआ तो उतरी ऋषभ लेकर ध्रुपद कहेगा तथा उसमें कहीं-कहीं तीव्र ऋषभ भी लेगा। गांधारी राग फरमाइश किये बिना कोई नहीं गायेगा। वैसी फरमाइश हुई, साथ ही गायक से यह भी कहा गया कि जौनपुरी पृथक से गाइये, तो वह अवश्य ही विचार में पड़ जायेगा और वह प्रायः यही कहेगा:—"साहेब इसके उचार को देखो और उसके उचार को देखो, आप समझदार हैं। बुजुर्गों ने एक-एक राग में नई-नई खूबी रखदी हैं। हम अपनी चीजें गा देंगे, रागों के भेद आप खुद देख लीजिये।"

इन चारों रागों में भी गन्धार वर्ज्य है, यह विशेष पहचान हमेशा ध्यान में रखो।

म म

अवरोह सबका सम्पूर्ण है। पूर्वाङ्ग में 'प ग रे, नि, सा रे म प रे म प' ये दो टुकड़े आये कि 'देसी' निश्चित हुई। फिर उत्तरांग में जाने की भी आवश्यकता नहीं। कारण, देसी में वादी पंचम है। देशी का उत्तरांग कुछ लंगड़ा ही है, ऐसा कहते हैं। वहां 'सां प,

म म

ध प, ग रे, म प ग रे, नि सा, रे प, ग रे, नि सा' ऐसा करके नीचे आने से देशी

सा

स्पष्ट होगी। 'उतरी देसी' कुछ-कुछ आसावरी के समान दीखेगी। उसमें 'म, प, रे म प' यह पूर्वाङ्ग का टुकड़ा तथा 'म प, ध म प ग, रे सा' इस प्रकार से उसको पृथक दिखाना होगा। परन्तु यह कृत्य वास्तव में कुशलता का है, लेकिन तुम बारम्बार मेरी संगत करोगे तो सध जायेगा।

उतरी आसावरी के सम्बन्ध में बोलने की तो आवश्यकता ही नहीं। उसमें ग तथा नि आरोह में वर्ज्य करने पर किसी को आपत्ति करने के लिये जगह नहीं रहती। वहाँ निषाद लिया जाय तो फिर तीव्र ऋषभ नहीं लेना चाहिए इससे राग पृथक रखा जा सकता है। किन्तु दोनों ऋषभ लिये जांय तो निषाद नियम पालना हितकारक होगा।

जौनपुरी में कोमल ऋषभ कभी न लो तथा गांधारी में तीव्र एवं कोमल दोनों लिये जांय तो ये दोनों राग सहज पृथक रहेंगे। ये स्थूल बातें ध्यान में रखो।

प्र०—ये राग अब बहुत अच्छी तरह हमारी समझ में आगये, अतः इन पर अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं रही। अब आगे चलिये ?

उ०—अब हम 'खट' राग पर विचार करेंगे। पहिले तो 'खट' नाम ही कानों को कुछ विलक्षण सा लगता है। खट राग अच्छी तरह गाना वास्तव में थोड़ा बहुत कठिन है। 'खट' यह संस्कृत शब्द 'षट्' का अपभ्रन्श है, ऐसा तमाम गायक-वादक मानते हैं।

प्र०—हमारे संस्कृत ग्रन्थकार 'खट' राग को 'षट्' कहते हैं, ऐसा प्रतीत होता है ?

उ०—हां, वे सब 'षट्' नाम का प्रयोग करते हैं। उत्तर की ओर 'ष' के स्थान पर 'ख' हिन्दी भाषा में प्रयुक्त किया जाता है।

प्र०—परन्तु 'षट्' शब्द से 'छः' ऐसा अर्थ भी उत्पन्न होगा, फिर छः का सम्बन्ध रागों से कैसे लगाना चाहिये ?

उ०—वही बताता हूं। "खट' राग छः रागों के मिश्रण से बना है, ऐसा गायक वादकों का मत है, तथापि वे कौनसे छः राग हैं ? ऐसा हमने उनसे प्रश्न किया तो कुछ तो इसका उत्तर ही नहीं देंगे, कुछ विभिन्न राग बतायेंगे। पुनः वे छः राग कौनसे स्थान पर खट में कैसे मिलते हैं, यह पूछने पर सभी उलझन में पड़ जायेंगे।

प्र०—इसमें क्या आश्चर्य की बात है ? यदि सम्पूर्ण राग हुआ तो उसमें सातों स्वर होंगे और सात स्वरों से छः रागों का मिश्रण करके उनका स्पष्टीकरण करना कठिन ही होगा। अच्छा, यदि हमारे ग्रन्थकार 'खट' राग छः रागों से बना हुआ कहते हैं तो वे उस राग के अवयवीभूत राग कौनसे बताते हैं ?

उ०—संगीत रत्नाकर में खट राग का उल्लेख किया हुआ नहीं मिलता। तुमको सुनकर आश्चर्य होगा कि अहोबल, श्रीनिवास, पुण्डरीक, सोमनाथ, रामामात्य, व्यंकटमखी, तुलाजीराव आदि किसी ने अपने ग्रन्थ में षट् राग का वर्णन नहीं किया।

प्र०—तो फिर खट राग को जो संस्कृत ग्रन्थकार षट्राग कहते हैं, वे कौन हैं ?

उ०—खट राग लोचन पण्डित ने अपने रागतरंगिणी में कहा है। उसीका अनुवाद हृदय पण्डित ने किया है।

प्र०—लोचन ने खट राग कौन से मेल में कहा है ?

उ०—उसने वह गौरी संस्थान में कहा है। जैसेः—

मालवः स्याद्गुणमयः श्रीगौरीच विशेषतः।

× × ×

रेवाच भटियारश्च षट्रागश्च तथोत्तमः।

× ×

गौरीसंस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः ॥

इस प्रकार गौरी मेल कह कर आगे षट्राग के अवयवीभूत रागों का लोचन इस प्रकार वर्णन करता हैः—

वरारी गुर्जरी गौरी श्यामा चासावरीतिच ।

गांधारसंयुता एताः स्युः षड्रागे इतीरिताः ॥

अर्थात् उसके मत से खट राग में, वरारी, गुर्जरी, गौरी, श्यामा, आसावरी तथा गांधार इतने रागों का मिश्रण दीखता है । इनमें से कुछ रागों के स्वर आगे बदल गये थे, ये तुमको पता ही है ।

हृदय पण्डित ने खट के लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

गमपाश्च धपौ निश्च धपमा गरिपा मगौ ।

रिमगाः सपमाः गेयः संपूर्णः षटरागकः ॥

ग म प ध प नि ध प म ग रि प म ग रि स ग म प स ।

हृदयप्रकाश में उसी पण्डित ने खट के लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

पांशन्यासश्च संपूर्णः षड्रागो गादिमूर्छनः ॥

ग म प ध नि ध प रि ग रि म म म रि रि म प ॥

प्र०—तो फिर हमारा तर्क यह है कि इस खट राग में 'भैरव तथा आसावरी' का थोड़ा बहुत मिश्रण दिखायें, क्यों कि कुछ राग भैरव थाट के तथा कुछ गांधार कोमल वाले इसमें मिलाने हैं ?

उ०—तुम्हारा यह तर्क कुछ अंशों में ठीक है । सुनने वालों को इस राग में उन्हीं दो रागों के भाग दिखाई देते हैं । खट राग प्रचार में विभिन्न प्रकार से गाया हुआ सुनाई देता है । कोई इसमें भैरव के ही सारे स्वरों का प्रयोग करते हैं । कोई दोनों गान्धार, दोनों धैवत तथा दोनों निषाद लेते हैं; कोई दोनों ऋषभ, दोनों गन्धार तथा दोनों धैवत लेते हैं और कोई तीव्र गन्धार न लेकर दोनों ऋषभ तथा दोनों धैवत लेते हैं ।

प्र०—और इन सब के प्रकार शुद्ध समझने चाहिये, यह कैसे हो सकता है ?

उ०—इस प्रकार के मिश्र राग में ऐसा थोड़ा बहुत तो होगा ही । इस के एक दो प्रकार जो प्रायः सदैव दृष्टिगोचर होते रहते हैं, उनके बारे में मैं तुमको बताऊँगा । बस उसी प्रकार तुम खट राग गाते चलना । Captain Willard साहेब अपनी पुस्तक में खट राग के अंगभूत छै राग इस प्रकार बताते हैं:—बरारी, आसावरी, तोड़ी, श्याम, बहुली तथा गांधारी । यह मत हमारे आज के प्रचार के अधिक निकट है । तथापि इस राग के अवयवों के भाग आज भी अत्यन्त असमाधानकारक स्थिति में हैं, ऐसा मैंने पहले भी कहा तथा अब भी कहता हूँ । कोई अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखे तो कुछ रागों में कुछ अन्य महत्वपूर्ण रागों की छाया दिखाई देना अवश्यम्भावी है; परन्तु शास्त्र दृष्टि से यह राग संकर का प्रकार आज भी परिपूर्ण नहीं हुआ, ऐसा स्पष्ट कहना पड़ेगा । अमुक राग में, अमुक राग के, अमुक अवयव, अमुक स्थान पर लगाने चाहिये, ऐसा

निश्चयात्मक रूप से जब तक नहीं कहा जा सकता, तब तक तुम्हारे जैसे चतुर विद्यार्थियों का समाधान कैसे हो सकता है ? विभिन्न रागों के भागों द्वारा एक स्वरूप तैयार करके कोई राग श्रोताओं के सामने प्रस्तुत करना वास्तव में आसान नहीं। मेरा स्वतः का भी ऐसा ही मत है कि आज की हमारी प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति के रागों को 'राग-संकर' (मिश्र राग) प्रकरण ही लागू करना पड़े तो एक नवीन ही प्रकरण उस विषय पर लिखना पड़ेगा। कारण, अनेक रागों के प्राचीन स्वरूप आज निराले ही दिखाई देते हैं। पुराने मिश्रण तथा नवीन रूपों का मेल अनेक स्थानों पर असुविधाजनक होगा। परन्तु हमारे ग्रन्थकारों ने अपने अपने समय के रागरूप देखकर नये 'संकर' लिखना भी प्रारम्भ किया था, ऐसा दीखता है। आगे ग्रन्थ लेखन ही रुक गया, इस कारण वह भाग उतना ही रह गया। उदाहरणार्थ, लोचन द्वारा दिये गये राग संकर को कल्पद्रुमकार के संकर से मिलाकर देखें तो इस भाग पर बहुत प्रकाश पड़ेगा, ऐसा मैं समझता हूँ। तमाम रागों के प्रचलित स्वरूपों के सम्बन्ध में समाज में एक मत निश्चित हो जाय तथा वैसा होने के अब चिन्ह भी दिखाई देने लगे हैं तो आगे हमारे विद्वान कदाचित् एक नया मिश्र-प्रकरण भी लिखेंगे। यद्यपि इस प्रकार के मिश्रण का अधिक उपयोग नहीं होगा तथापि अपना राग श्रोताओं को किसी अन्य राग के समान दिखाने में चतुर गायकों को सुविधाजनक होगा। ऐसी दशा में यह सङ्कर (मिश्रण) श्रोताओं को मालुम हुआ तो उनको भी गाया जाने वाला राग पहिचानने के लिये यह एक साधन होगा।

प्र०—आपका कथन यथार्थ है। उदाहरणार्थ 'मियां का सारंग' ही देखिये न। इस राग में मियां की मल्हार तथा सारंग का योग है, ऐसा आपने कहा था। इतने ज्ञान से

नि॒　प॒　प॒　　　　　म

सा, नि॒ प॒, नि॒ ध॒, नि॒ ध नि सा, रे म, म प, "प, म रे, सा" ऐसे स्वर आये कि हम तत्काल वह राग "मियां को सारंग" होगा, ऐसा कहेंगे। तो फिर 'खट' राग के सम्बन्ध में हमारी देशी भाषा में लिखने वाले ग्रन्थकार क्या कहते हैं, वह बताइये। कारण, संस्कृत ग्रन्थकार तो इस राग का उल्लेख ही नहीं करते हैं, किन्तु पण्डित भावभट्ट भी इस राग के सम्बन्ध में चुप हैं क्या ?

उ०—भावभट्ट संग्रहकार है न ? उसने हृदयप्रकाश में वर्णित लक्षण उद्धृत कर लिये, अन्य किसी का भी मत उसको प्राप्त होने योग्य नहीं था; परन्तु कल्पद्रुमकार ने कहीं से षड्राग के लक्षण अवश्य प्राप्त कर लिये।

प्र०—वे कैसे हैं ?

उ०—खट राग भैरव का एक पुत्र है, ऐसा बताकर आगे वह कहता है:—

जटाजूटाधारी शिवशिखरकैलासवसति
श्चिताभस्मालेपो मधुरमृदुहासी मुनिवरैः।
सदा षड्रागोऽयं सततनितरांध्येयसुपदां
प्रभाते गायन्ति मधुरस्वरगीतार्थनिलयम् ॥

भैरवो गुर्जरी टोडी देशी गांधार एव च ।
रामक्रीस्वरसंयुक्तः षड्रागः संभवेत्तदा ॥
धैवतांशग्रहन्यासो धैवतादिकमूर्छनः ।
संपूर्णः सुप्रभातेच गीयते षट्सुसंज्ञकः ।

ये लक्षण उत्तम हैं । इतना नहीं वरन् उसने इस राग की सरगम भी कही है ।

प्र०—वह किस प्रकार है ?

उ०—सुनोः—

खट सरगम—झपताल.

ध ध नि नि सा सा रे रे ग ग म म प प ध सा सा सा नि नि ध ध प प म म ग ग रे सा ।

म प ध नि सा ग रे सा म ग रे सा नि ध प म ग रे सा ॥

प्र०—यह क्या पण्डित जी ! इसमें तीव्र-कोमल स्वरों का तथा मात्रा विभाग का बोध होने के लिये क्या साधन है ?

उ०—इसके सम्बन्ध में अभी अभी उसने सङ्कर बताया ही है । उसके आधार से पाठकों को सब समझ लेना चाहिये । अस्तु, वहां क्या तथा कैसा कहा है, यह मैंने बताया ही है । वही अवयवीभूत राग उसने हिन्दी में इस प्रकार कहे हैं:—

टोडी और आसावरी देशी गुजरी ठान ।
गंधारी रामक्री मिली षटरागहो प्रमान ॥
धैवतग्रहसंपूरन प्रातकाल में गाय ।
भैरवपुत्र खटराग है गुनिजनसुरहुमिलाय ॥

सुरतरंगिणी में इनायत खां कहते हैं:—

रामकली आसावरी टोडीगुजरी और ।
बैराटी गंधारि मिलि खटरागों सिरमौर ॥

अथवा

कोऊ बहुली को कहत बैराटीकी ठौर ।
बरने अरु खटराग है पुनि बँगाल सिरमौर ॥

प्र०—लेकिन इन तमाम लक्षणों से खट राग का स्वरूप भला कोई किस प्रकार निश्चित कर सकता है ? और उसके आधार से कौन नवीन गीत रच सकता है ? अथवा पुराने गीतों के बोल यदि मिले तो उसे खटराग कहकर कौन गा सकता है ?

उ०—ऐसा किसी को करना ही चाहिये, यह ग्रन्थकारों का उद्देश्य ही नहीं। दूसरे किसी ने खटराग की चीज गाई और उसके लक्षण सुनने वाले मालुम करना चाहें तो वह दिखा सके इतना ही उसका उद्देश्य होगा। ये लक्षण उसने कहीं से उद्धृत किये होंगे।

प्र०—किन्तु इतने रागों का मिश्रण करने के अर्थ होंगे खटराग में समस्त तीव्र कोमल स्वर लेना ?

उ०—यह तुमने ठीक कहा। परन्तु खट राग में सारे स्वर लेने वाले भी गायक निकलेंगे, यह मैंने नहीं कहा था क्या ? इस राग में तीव्र मध्यम मात्र लिया हुआ मैंने कभी नहीं सुना।

प्र०—यह राग दिन के दूसरे प्रहर का होने से यह स्वर छोड़ा गया होगा, ऐसा दीखता है ?

उ०—कदाचित यह स्वर उसी कारण से नहीं लेते होंगे, परन्तु खट राग मैंने अनेक बार विभिन्न प्रकार से गाया हुआ सुना है। उसमें तीव्र मध्यम गायक छोड़ देते हैं। खटराग अप्रसिद्ध नहीं, परन्तु यह बारम्बार गाया हुआ भी नहीं सुनाई देता। किसी ने यदि फरमाइश ही की, तो गायक उसे गाते हैं। यह भी नहीं समझना चाहिये कि यह राग तमाम गायकों को अच्छी तरह गाना आता ही है।

प्र०—नहीं, नहीं। खट ही तो है ! वह सबको आसानी से कैसे सध सकता है। इस प्रकार के रागों में ख्याल, ध्रुवपद रचने वालों की तो प्रशंसा ही करनी पड़ेगी।

उ०—गायकों को खटराग में ख्याल अधिक नहीं आते। ऐसी दशा में बड़े ख्याल तो बहुत ही थोड़े लोगों के संग्रह में होंगे।

प्र०—उनके संग्रह में एकाध दूसरा "दाना" निकलेगा, ऐसा उनकी भाषा से विदित होता है क्या ? किन्तु ऐसा क्यों होता होगा भला ? एक बार तीव्र स्वर और एक बार कोमल स्वर लेने पर ख्याल की रचना उत्तम नहीं होगी।

उ०—कदाचित् यह भी कारण होगा। परन्तु हमें इस विषय में अनुमान लगाते रहने से क्या लाभ ?

प्र०—आपने कहा है कि खट में "ख्याल" क्वचित् ही सुनने में आते हैं। तो फिर इस राग में कौनसी जाति के गीत सुनने में आते हैं ?

उ०—इस राग में ध्रुवपद, धमार तथा सादरे अधिक दिखते हैं।

प्र०—ऐसा क्यों होता है ?

उ०—इसका समाधानकारक कारण बताना कठिन ही होगा। खट में गन्धार तथा धैवत तो हर हालत में रहते हैं, यह भी कदाचित हो सकता है। कारण, और आन्दोलित स्वरों के योग से इस राग में झपताल के गीत अधिक सुन्दर प्रतीत होते हैं, आगे जाने से पहले और भी एक गूढ रहस्य तुम्हारे कानों में डाले देता हूँ, वह यह कि कभी-कभी हम गायकों के मुख से ऐसा सुनते हैं कि खट राग तथा खटतोडी ये दोनों भिन्न प्रकार हैं।

प्र०—ठहरिये! यह तो एक महत्व की बात आप कह रहे हैं। वे इन रागों में कौनसा भेद रखने को कहते हैं?

उ०—वे कहते हैं कि जिसमें भैरव के स्वर दिखते हैं वह वास्तविक "खट राग" है तथा जिसमें आसावरी व गांधारी के स्वर हों तो उस राग को "खटतोडी" समझना चाहिये।

प्र०—तो फिर उनके कहने में कुछ तथ्य दिखाई नहीं देता क्या? अभी-अभी आपने खट के जो अवयवीभूत राग कहे थे उनसे इस कथन को थोड़ी बहुत पुष्टि ही मिलेगी। ऐसी दशा में यह राग दो तीन तरह से सुनने में आयेगा, ऐसा आपने कहा ही था और ऐसा होने पर जिस प्रकार में भैरव का अन्श होगा वह खट तथा जिसमें गांधारी आदि दिखाई दें, वह खटतोडी मानने में क्या हर्ज है?

उ०—सुविधा की दृष्टि से यह भले ही ठीक हो, परन्तु अनेक गायक ऐसे निकलते हैं जो खट और खटतोडी एक ही बतायेंगे। "खट" एक तोडी प्रकार ही है, ऐसा कई गायक मानते हैं। मेरे रामपुर के गुरु वजीर खां ऐसा ही कहते थे। उन्होंने मुझे एक दो चीजें इस राग में खट कह कर सिखाई हैं। रावजी बुआ बेलबागकर नाम के जो मेरे गुरु थे, उन्होंने "खटतोडी" कहकर एक बिलकुल स्वतन्त्र प्रकार सिखाया था, उसमें उन्होंने दोनों मध्यम का प्रयोग किया था। वह प्रकार मुझे अधिक पसन्द नहीं आया। परन्तु वह मेरे गुरु थे, इस कारण वह चीज मैंने अपने संग्रह में रखली। वह प्रकार अधिकांश शुद्ध तोडी जैसा ही था, लेकिन उसमें केवल भिन्नता के लिये शुद्ध मध्यम उन्होंने काम में लिया था, ऐसा मुझे जान पड़ता है।

प्र०—उस प्रकार की कुछ कल्पना हमको दे सकेंगे क्या?

उ०—उन्होंने जो गीत मुझे सिखाया, उसकी केवल सरगम ही कहता हूँ। वह बिलकुल छोटी सी है।

सरगम—खटतोडी, रूपक.

प	नि	नि नि	प		
ध ध	ध प	ध ध प	म॑ म॑	ध म॑	ग रे सा
२	३	०	२	३	०

	सा	ग ग	नि	प	म
सा नि़	सा ग	रे रे सा	ध प	म प	ग म म।

अन्तरा.

	नि		नि	सां	गं
प प	ध नि	सां ऽ सां	ध नि	सां गं	रें रें सां
२	३	०	२	३	०
			प	नि	म म
सां सां	ध प	नि ध प	म प	ध प	प ग म।

प्र०—यह दोनों मध्यम का प्रयोग हमको भी कुछ नीरस ही लगता है। अभी तोडी राग के महत्वपूर्ण स्थल हमें मालूम नहीं, इस कारण इस प्रकार के सम्बन्ध में अधिक हम क्या बोल सकते हैं? आपने इसे संग्रह में रक्खा है, इसलिये हम भी ऐसा ही करेंगे। किन्तु एक बात पर हमें आश्चर्य होता है कि खट राग कम से कम पांच सौ वर्षों से प्रचार में होने पर भी लोचन तथा हृदय के अतिरिक्त उस समय के अन्य संस्कृत ग्रन्थकारों ने इस सम्बन्ध में एक अक्षर भी क्यों नहीं लिखा?

उ०—यहां पर केवल तर्क करने का ही प्रसङ्ग है। यह राग अहोबल, पुण्डरीक आदि ने नहीं कहा, यह ठीक है। क्यों नहीं कहा यह कैसे कहा, जा सकता है? इस राग में दो-दो गन्धार, दो-दो धैवत गायक लेने लगे। यह कृत्य उनको शास्त्र दृष्टि से ग्रहणीय जान पड़ा होगा। दक्षिण में तो ग्रन्थों का विशेष मान होने के कारण इस प्रकार का स्वरूप वहां पसन्द आने की सम्भावना ही नहीं थी। ऐसी दशा में विभिन्न प्रान्तों में खट के विभिन्न स्वरूप देखकर कदाचित् उन्होंने इस राग के सम्बन्ध में लिखने की इच्छा नहीं की होगी। हांलाकि उनके समय में यह राग प्रचार में था। इस विषय में इससे अधिक भला मैं और क्या कह सकता हूँ।

प्र०—तो फिर इस 'खट' की जानकारी देशी भाषा के ग्रन्थों से ही मिलेगी, ऐसा दीखता है?

उ०—मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है। उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों में क्या है, वह मैंने बताया ही है। देशी भाषा के पुराने से पुराने ग्रन्थ 'नगमाते आसफी' और 'राधागोविन्द संगीतसार' हैं। इनसे प्राचीन उर्दू तथा पर्शियन ग्रन्थ देश में नहीं हैं, ऐसा मैं नहीं कहता; परन्तु वे मेरे देखने में नहीं आये. अतः उनमें 'खट' राग दिया है अथवा नहीं, यह मैं

नहीं बता सकता। रामपुर में उर्दू व पर्शियन ग्रन्थों की 'लाइब्रेरी' है वहां जाकर उन ग्रन्थों को तुम देख लेना।

प्र०—नगमातेआसफी में खट के सम्बन्ध में क्या कहा है?

उ०—उस ग्रन्थ में मोहम्मद रजाखान इतना ही कहता है कि 'खट' राग भैरव की पांच रागिनियों में से एक है।

प्र०—उसने भैरव की पांच रागिनी कौनसी मानी हैं?

उ०—उसके मत से भैरव की पांच रागिनी इस प्रकार हैं। १–भैरवी, २–गुर्जरी, ३–खट, ४–गांधारी, ५–आसावरी।

प्र०—कुछ भी सही पण्डित जी! लेकिन वह लेखक था बुद्धिमान, इसमें संशय नहीं। उसकी पांच रागिनियों का पर्याप्त भाग साधारण दीखता है, ठीक है न? अच्छा, वह खट के तीव्र कोमल स्वर कैसे बताता है?

उ०—उनको वह इस प्रकार बतलाता है:–'खट' एक संपूर्ण राग है तथा इसमें सारे स्वर कोमल हैं। इसका वादी स्वर पंचम तथा संवादी स्वर गन्धार है। धैवत अनुवादी है। यदि एकाध तीव्र स्वर इस राग में लेने में आया तो वह विवादी स्वर समझना चाहिये।

प्र०—तो फिर इस राग के स्वरूप के सम्बन्ध में ग्रन्थकारों के समय में मतभेद था, ऐसा इससे नहीं दिखाई देता क्या? इस ग्रन्थ से ऐसा दीखता है कि खट राग वस्तुतः भैरवी थाट के स्वरों से गाते थे तथा कुछ गायक इसमें बीच–बीच में तीव्र स्वरों का प्रयोग भी करते थे?

उ०—हां, तुम कहते हो वैसा ही ग्रन्थकारों का आशय मालुम होता है। अभी–अभी मैंने भी तो तुमको यही बताया है कि यह खट राग आज विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार से गाया हुआ तुम्हें सुनाई देगा। कहीं तो केवल भैरव के स्वरों में सुनाई देगा, कहीं भैरव तथा आसावरी इन दोनों रागों के मिश्रण जैसा प्रकार सुनाई देगा, और कहीं तीव्र मध्यम के अतिरिक्त अन्य सारे स्वरों में भी दिखाई देगा। प्रत्येक गायक अपनी परम्परा अधिक विश्वसनीय बतायेगा, किन्तु ग्रन्थाधार कोई भी नहीं दिखा सकेगा। कोई कदाचित् राग संकर का दोहा कहेगा, परन्तु वह संकर कहां और कैसा है, यह नहीं बता सकेगा। ऐसी इस खट राग की स्थिति है। परन्तु हमें अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ना है, इसलिये जो प्रकार दिखाई दें वे सारे संग्रह करके बस अपनी गुरु परम्परानुसार आचरण करो। अब राधागोविन्द संगीतसार में प्रतापसिंह राजा खट राग के सम्बन्ध में क्या कहते हैं, वह बताता हूं, देखो:—

शिवजी नें उन रागनमेंसों विभाग करिवे को अपने मुखसों आसावरी, तोड़ी, श्याम, बहुल, गुजरी, संकीर्ण देवगांधार गाइके खटनाम कीनों।

प्र०—जरा ठहरिये! ये छः राग अभी–अभी आपके बताये हुए रागतरंगिणी के छः रागों से नहीं मिलते हैं क्या? तो फिर प्रतापसिंह ने रागतरंगिणी ग्रन्थ देखा था, ऐसा स्पष्ट नहीं दीखता क्या?

उ०—ये राग नाम तरंगिणी के अवश्य हैं, परन्तु केवल इतने से यह सिद्ध नहीं होता कि प्रतापसिंह को रागतरंगिणी ग्रन्थ मिल गया था। केवल भावभट्ट के ग्रन्थ उसने देखे थे। हृदयप्रकाश भी उसको मिला होगा, ऐसा कह सकते हैं। परन्तु 'तरंगिणी' ग्रन्थ उसको मिला होगा, यह नहीं कहा जा सकता। वह यदि मिला होता तो उसका उल्लेख सङ्गीतसार में कहीं तो किया होता, परन्तु यह भाग विशेष महत्व का है, ऐसा मैं नहीं समझता। प्रतापसिंह ने खट का स्वरूप कैसा कहा है, यह मुख्यतः हमें देखना है।

प्र०—हां, यह तो है ही, परन्तु जो हमारे मनमें प्रश्न उठा वह आपसे कहा। तो फिर खट का वर्णन आगे चलने दीजिये?

उ०—फिर आगे खट राग का स्वरूप वह इस प्रकार कहता है:—"गोरो जाको रंग है। रंगबिरंगे वस्त्र पहरे हैं। चंदनको अङ्गराग किये हैं। और माथेमें मुकुट है। और डहडके फूलनकी माला कंठमें हैं। रतिसुखमें मग्न हैं। स्त्री जाके संग है। कामदेव कला में मग्न है। और सोलह बरस की जाकी अवस्था है। ऐसो जो राग ताहि खटराग जानिये।"

प्र०—क्या मजे की बात है, देखिये! रागों के विवाह भी हमारे देश में बाल्यावस्था में हो जाते थे। सोलह वर्ष नहीं हुए और खट राग सर्व गुण सम्पन्न हो गया। प्रतापसिंह ने यह कल्पना कहां से ली होगी?

उ०—उसने अपने आधार ग्रन्थ नहीं बताये, तब यह वर्णन उसको कौन से ग्रन्थों में मिला, यह नहीं कह सकते। परन्तु श्रीराग की उम्र अठारह वर्ष की थी और उसके पांच भार्या थीं, यह बात संस्कृत ग्रन्थकार नहीं कहते हैं क्या? 'अष्टादशाकः स्मरचारुमूर्तिः। धीरो लसत्पल्लवकर्णपूरः।' हमारे हिन्दुस्तान में अनेक विचित्र बातें हैं, उनमें से ही यह एक है; ऐसा समझकर आगे चलें। यह सब कवि की कल्पना है और उसे कौन रोक सकता है? ऐसी दशा में अन्य कलाओं की अपेक्षा 'कामदेवकलानिपुण' छोटे-छोटे राजपुत्र आज भी हमारे देश में पर्याप्त संख्या में क्या नहीं दिखाई देते? फिर प्रतापसिंह का खट वैसा हुआ तो उसमें कोई अधिक हानि नहीं दीखती। किन्तु तुम अपने रागवर्णन में ऐसा कोई प्रकार न लेना, बस इतना ही ध्यान में रखो।

प्र०—अजी हम तो क्या लेंगे! बल्कि अन्य किसी ने लिया, तो उसको भी नहीं लेने देंगे?

उ०—ठीक है। आगे खट के स्वर तथा समय सुनो:—शास्त्रमें तो यह सात सुरनसों गायो है—ग प म प ध नि स रि ग म प यातें संपूर्ण है। याको प्रभात समे गावनों। यह तो याको वखत है। और दोय प्रहर तांई चाहो तब गाओ। याको आलापचारी सात सुरनमें किये राग बरते। सो जंत्रसों समझिये।

प्र०—अब जंत्र बताइये, वह कैसा है?

उ०—हां! वह इस प्रकार है, देखो:—

खटराग–संपूर्ण.

ग	प	प	ग	म
म	ध	म	ध	ग
प	नि	ग	म	रे
ध	ध	म	ग	सा
प	प	प	प	
म	ध			

प्र०—तो फिर ऐसा दीखता है कि इन राजा साहेब के मतानुसार खट राग में सारे भैरवी के ही स्वर लगेंगे। परन्तु इस जंत्र से खट राग कैसे गाना आयेगा, पण्डित जी! कदाचित उसका स्थूल रूप भी दीख सकेगा?

उ०—उसके द्वारा दिये हुए स्वरों पर योग्य 'कण' लगाये जांय तो उसके खट का स्वरूप कैसा था, इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन हो सकेगा।

प्र०—अर्थात् वैसे 'कण' लगाने के लिये एकाध छोटी सी सरगम ताल सहित लिखनी होगी, तो फिर वैसी एकाध सरगम रचकर हमको बताइये?

उ०—एक छोटी सी रचना का प्रयत्न करता हूँ; परन्तु वैसा करते समय कुछ स्वर दीर्घ करने पड़ेंगे, कुछ की पुनरुक्ति होगी और अन्तरा तो स्वतन्त्र ही होगा। प्रचार में खट प्रारम्भ में बहुधा सा, म, अथवा प इन स्वरों से होता था। कभी गन्धार से भी होता था।

सरगम–खट–झपताल.

प (×)	प	(म) ग (२)	ऽ	म	प (०)	प	(नि) ध (३)	नि	प
म	प	(नि) ध	ऽ	ध	नि	नि	(नि) ध	ऽ	प

ध	प	म	म ग	ऽ	म	म	प	म ग	ऽ
ध	म	म ग	प	ऽ	ग म	ग	रे	रे	सा

——

अन्तरा.

म	प	नि ध	ऽ	ध	सां	ऽ	नि	सां	ऽ
×		२			०		३		
नि	सां	गं	रें	सां	नि	सां	नि	नि	प
प	प	म ग	ऽ	म	प	प	नि	ध	प
प	प	ग	म	प	ग	मग	रे	रे	सा

गन्धार से प्रारम्भ करना होगा तो ऐसा करना पड़ेगा:—

म ग	ऽ	म	प	ऽ	प	ऽ	प	नि ध	प
३			×		२			०	
म	प	प	नि ध	नि	नि ध	ऽ	प	ध	प
म प	ग	म	म	प	म ग	ऽ	ध	म	प
म ग	ऽ	ऽ	प	म	म ग	ऽ	म ग	ग रे	सा

यह सरगम रंजकता की दृष्टि से अच्छी नहीं है। यह प्रकार भैरवी मेल का है, यह तुमने देखा ही है। प्रचार में भी ऐसा कभी कभी तुमको दिखाई देना सम्भव है।

प्र०—तो फिर यह एक तीसरा प्रकार मानकर संग्रह किया जाय तो कैसा रहेगा? इसके अन्त में कोमल ऋषभ का स्थान इतना अच्छा नहीं रहा।

उ०—उधर तुम्हारा ध्यान खूब गया। वहां कुछ गुणी लोग तीव्र ऋषभ लेते हुए दिखाई देंगे। परन्तु यह भी संग्रह में रहने दो।

प्र०—अच्छा, इस दूसरी सरगम का अन्तरा कैसा रखना चाहिये?

उ०—वह इस प्रकार रखना होगा:—

म ×	प	नि ध २	नि ध	ऽ	सां ०	ऽ	नि ३	सां	ऽ	अथवा
म	प	नि ध	ऽ	नि	सां	ऽ	नि	सां	ऽ	
नि	सां	गं	रें	सां	नि	सां	नि	ध	प	
प	प	म ग	ऽ	म	प	प	नि ध	नि	प	
प नि	प	म ग	म	प	रे	सा	म ग	ऽ	म	

प्र०—इस सरगम के आरोह में गन्धार आने से तथा अवरोह में "नि ध प" आने से राग को पर्याप्त स्वतन्त्रता मिली है, ठीक है न?

उ०—यह ठीक है। इस राग में झपताल के गीत अनेक प्रकार से गाते हैं तथा वे सुन्दर भी दीखते हैं। राजा साहब टागोर के गुरु क्षेत्रमोहन ने एक कथा इस राग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहीं से लेकर अपने ग्रन्थ में सम्मिलित की है।

प्र०—वह कैसी है?

उ०—वे कहते हैं कि यह राग "षडानन" अथवा "कार्तिकेय" ने उत्पन्न किया; इस कारण इसको "खटराग" अथवा षड्राग कहने लगे। ऐसी दन्तकथा उनके सुनने में आई।

प्र०—दन्तकथाओं की क्या कमी है ? "दशानन" "चतुरानन" ने राग उत्पन्न नहीं किये, यही गनीमत है ! अच्छा, लेकिन इस राग के सम्बन्ध में वे उपयोगी जानकारी क्या देते हैं ?

उ०—राग की उत्पत्ति इस प्रकार बताकर फिर वे कहते हैं "किसी के मत से इस राग में वराटी, आसावरी, तोडी, ललित, बहुली तथा गांधार इतने रागों के मुख्य अंग मिश्रित होते हैं, इसलिये इसको 'खट' संज्ञा दी गई है।" हम बहुधा दन्तकथा को विशेष महत्व नहीं देते, इसलिये वह षडानन सम्बन्ध तो छोड़ दें एवं क्षेत्रमोहन ने इस राग के स्वर कैसे कहे हैं, उसी पर विचार करें।

प्र०—हमें भी ऐसा ही जान पड़ता है। तो फिर उसने खट का स्वरूप कैसा कहा है, वह बताइये ?

उ०—इस प्रकार कहा है:—

नि नि   रे
सा सा सा रे म म प म प धु सां नि सां नि धु प नि धु प, प म गु गु, म प धु

           रे   सा
प धु नि धु प म म गु रे सा।

                                                        प
अन्तरा। म प नि ध नि सां सां सां सां, धु नि सां, नि सां नि धु प, नि ध धु, प

रे   रे   सा
म म गु म प प धु नि धु प म म गु रे सा। आगे खट का विस्तार उसने ऐसा करके दिखाया है:—

              रे   सा
प नि धु धु प म गु म प नि ध नि सां सां गुं रें सां नि सां प धु म प रे म प धु प धु

           रे   रे   सा
नि धु प म म गु म प प नि धु धु प म म गु रे सा।

प्र०—यह प्रकार भी वस्तुतः भैरवी मेल में ही जायेगा। इस आधार पर एकाध सरगम हमने ऐसी निर्माण की तो चलेगी क्या, देखिये ?

सरगम—झपताल.

सा ×	रे	म २	ऽ	म	प ०	ऽ	म ३	प	प
प	धु	सां	ऽ	नि	सां	नि	धु	धु	प
नि	धु	नि	धु	प	म	गु	गु	ऽ	म

ध॒	प	नि॒	ध॒	प	म	ग॒	रे॒	रे॒	सा

अन्तरा.

(ग॒) म	नि॒	(नि॒) ध॒	ऽ	नि	सां	ऽ	नि	सां	ऽ
×		२			०		३		
(नि॒) ध॒	नि॒	सां	ऽ	सां	नि	सां	नि॒	ध॒	प
म	म	ग॒	ऽ	म	प	ध॒	नि॒	ध॒	प
ध॒	प	नि॒	ध॒	प	म	ग॒	रे॒	रे॒	सा

उ०—मेरी समझ से, तुम्हारी इस सरगम को क्षेत्रमोहन स्वामी का 'खट' कहना ठीक होगा। कारण उनके द्वारा कही हुई स्वरसंगति तुमने अपने सरगम में ठीक आयोजित की है। "सा रे म" इस छोटे से टुकड़े से क्षण भर श्रोताओं को ऐसा जान पड़ता है कि तुम जोगिया प्रारम्भ करने वाले हो, परन्तु आगे तुरन्त ही तुम्हारा राग 'नि॒ ध॒, नि॒ ध॒ प' 'म ग॒, ग॒ ऽ म' इस टुकड़े की वजह से जोगिया से पृथक हो जायगा।

प्र०—और पुनः आसावरी में भी 'सा रे॒, म ऽ ग॒' ऐसा करना पड़ेगा न ? और स्वामी जी के मत से आसावरी 'खट' का एक अवयवीभूत राग है ही, अतः जोगिया का संदेह होने का कोई कारण नहीं ?

उ०—हां, यह भी तुम्हारा कहना उचित प्रतीत होता है। अब गोस्वामी पन्नालाल खट कैसा कहते हैं, वह देखें। प्रथमतः वे खट के अवयवीभूत राग इस प्रकार बताते हैं:-

भैरवो गुर्जरीटोडी देशी गांधार एव च।
रामक्लीस्वरसंयुक्तः खटरागो भवेत् सदा ॥

प्र०—यह रागमिश्रण बुरा नहीं दीखेगा, ठीक है न ?

उ०—नहीं, उसको हम बुरा नहीं कहेंगे। आगे खट के चित्र उन्होंने इस प्रकार दिये हैं:—

जटाजूटाधारीशिवशिखरकैलासवसतिः।

प्र०—आगे न जाइये। यह श्लोक उन्होंने कल्पद्रुम से ही लिया है, इसमें बिलकुल संशय नहीं ?

उ०—खट के लक्षण पन्नालाल इस प्रकार कहते हैं:—

धैवतांशग्रहन्यासः धैवतादिकमूर्छनः ।
संपूर्णोऽपि प्रभाते च गीयते खटरागकः ॥

प्र०—उन्होंने खट का नादस्वरूप कैसा दिया है ?

उ०—वह इस प्रकार कहा है:—

म म प प, ध ध ध ध, प, प, म ग ग, म, प, ध ध, प ग, ग ग, रे रे सा । अन्तरा । प प ध, सां, सां, रें रें सां, रें रें सां, ध ध ध, प, ग ग, रे रे सा ।

प्र०—हमारी समझ से पन्नालाल को यह राग अवश्य मालुम होगा। तन्तकार होने के कारण वे अपना राग नोटेशन द्वारा अच्छी तरह न लिख सके होंगे। केवल यह स्वर किसी ने पढ़े तो उनका यह प्रकार इतना सुन्दर नहीं दीखेगा। आपको कैसा जान पड़ता है ?

उ०—तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। वे उत्तम कलावन्त थे, यह मैं जानता हूं। उनके द्वारा बताये गये स्वरूप विचारणीय अवश्य हैं। 'ध ध ध ध, प यह कृत्य सितार पर होगा ही।

री नि नि नि नि नि नि म म
"म, म, प प, ध ध नि प, म प, ध ध सां, नि सां, ध ध नि ध प, म प ग ग म,
नि नि म म
ध ध, नि ध प, ध प, ग म प, रे सा, ग म"

यह भाग खट में रागांगवाचक माना जाता है। यह तथ्य अधिकांश उनके द्वारा कहे गये स्वरूप में दिखते ही हैं। अभी तक मैंने तुमको भैरवांग लेने वाला प्रकार नहीं बताया। अब हम उस ओर बढ़ें। यह एक खट प्रकार सुनो:—

म ×	म	ग २	म	म	प ०	प	प ३	ऽ	प
नि ध	ध	नि ध	ध	ध	सां	नि	नि ध	ध	प
नि ध	ध	प	नि ध	ध	प	ऽ	प	म ग	म

नि			नि		प				
ध॒	ध॒	प	ध॒	प	ग	म	रे॒	रे॒	सा।

अन्तरा.

नि			नि						
ध॒	ध॒	प	ध॒	ध॒	सां	ऽ	सां	ऽ	सां
×		२			०		३		
रें॒	रें॒	रें॒	रें॒	सां	रें॒	रें॒	सां	ध॒	ऽ
प	ध॒	रें॒	रें॒	सां	नि	सां	सां	ध॒	ऽ
प	प	नि	ध॒	प	ध॒	प	म	प	प

संचारी.

					नि				
म	म	म	ग	म	ध॒	ध॒	प	ऽ	प
×		२			०		३		
नि					नि				
ध॒	ध॒	नि	ध॒	ध॒	ध॒	ध॒	प	ऽ	प
सा	ध॒	ध॒	प	ध॒	प	म	प	ग	म
नि	ध॒	प	ध॒	प	म	ग	रे॒	रे॒	सा।

आभोग.

(नि)ध	ध	(नि)ध	ध	नि	सां	ऽ	नि	सां	सां
×		२			०		३		
नि	रें	सां	ऽ	सां	नि	सां	सां	ध	ऽ
ध	रें	सां	ऽ	सां	सां	नि	सां	ध	प
ध	रें	सां	नि	सां	ध	प	म	प	(म)प

प्र०—यह प्रकार हमको अच्छा लगा। यह वास्तव में भैरव थाट का है। इसे हम सीख लें ?

उ०—और भी मेरे एक ध्रुपद गायक गुरु ने जो "खट" प्रकार मुझे सिखाया था, उसके स्वर इस प्रकार हैं:—

खट—झपताल.

(ध)प	प	प	ध	म	प	ध	नि	ऽ	नि
×		२			०		३		
(नि)ध	प	ऽ	प	म	प	ऽ	(म)ग	ऽ	म
(म)ग	(म)ग	म	ऽ	म	(नि)ध	प	(म)ग	(म)ग	म
प	नि	(नि)ध	ध	प	(म)ग	म	ग	रे	सा

अन्तरा.

सां	ऽ	नि	सां	ऽ	(नि)ध	ऽ	नि	सां	ऽ
×		२			०		३		
(नि)ध	ध	नि	सां	ऽ	रें	सां	नि	ध	प
(सां)नि	(सां)नि	(सां)नि	ऽ	नि	सां	ऽ	(नि)ध	ध	प
रें	सां	नि	सां	ऽ	नि	ध	नि	ध	प

संचारी.

म	म	म	ऽ	म	प	ऽ	प	ऽ	प
×		२			०		३		
म	म	प	ऽ	प	(नि)ध	सां	नि	ध	प
(म)ग	(म)ग	म	ऽ	म	म	नि	ध	ध	प
प	म	प	ग	ऽ	म	ग	रे	रे	सा।

आभोग.

सां	ऽ	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	(नि)ध	नि	सां
×		२			०		३		

नि	सां	रें	रें	सां	नि	सां	(नि) ध	(नि) ध	प
रें	रें	सां	ऽ	रें	सां	ऽ	(नि) ध	(नि) ध	प
नि	ध	प	म	प	(म) ग	ग	रे	रे	सा

ये सब गीत मैं तुमको आगे सिखाने वाला हूँ, चिन्ता न करो। अब मेरे गुरु मोहम्मद अली खां तथा आशिक अली खां ने मुझे खट का जो गीत सिखाया था, उसके आधार से सरगम कहता हूं, वह भी सुनो। इस सरगम में दोनों धैवत हैं तथा दोनों निषाद हैं। गन्धार सकारी है, ऐसा एक श्रोता ने कहा था। इसमें ऋषभ ऐसे चमत्कारिक ढंग से आन्दोलित होता है कि वह सुनने वालों को अधिकांश कोमल गन्धार मालूम देता है। इन स्वरों की ओर अच्छी तरह ध्यान देना।

सरगम—खट—झपताल

(नि) ध	प	(म) प	(म) रे	म	(म) रे	प	प	ऽ	प
×		२			०		३		
(ध) प	(ध) प	(ध) प	धप	सां	सां	ऽ	सां	(नि) ध	प
(म) रेम	नि	प	(म) प	ऽ	प	ऽ	(म) रे	(म) रे	म
(म) रेम	नि	प	पम	प	(म) रेम	प	(रे) म	(सा) रे	सा।

अन्तरा।

(प) म	प	(नि) ध	(नि) ध	(नि) ध	सां	ऽ	नि	सां	ऽ
×		२			०		३		

नि	नि	नि							
ध	ध	ध	सां	सां	रें	सां	सां	ध	प
ध	ध				ध				
प	प	नि	ध	म	प	ध	नि	सां	ऽ
सां	सां	सां	सां	सां	ध				
नि	नि	नि	नि	नि	प	ध	नि	सां	ऽ

प्र०—इस प्रकार को गाना वास्तव में कठिन होगा। पहिले चरण में "प रे म" (म म) हम को वास्तव में "प ग म" (म म) जान पड़ा। इसके अनुसार तीसरे चरण में "रे रे म" (म म) ये स्वर हमको "ग ग म" (म म) जान पड़े। उन ऋषभों के स्थान पर गन्धार लिये जांय तो कुछ बिगड़ जायगा क्या?

उ०—मुझे भी ऐसा ही जान पड़ा तथा मैंने भी उस्ताद लोगों से यही प्रश्न किया; इस पर उन्होंने कहा "जैसे हमारी तालीम हुई है वैसा आपको गाकर दिखाते हैं। आपको यदि यह पसन्द नहीं है तो आप ऐसा न गायें। जो हमने खुद अपने पिता के पास बैठकर सीखा है, वह हम किस प्रकार बदल सकते हैं? आपके शास्त्रों को उसमें कोई आपत्ति है तो शास्त्र में जैसा लिखा हो आप वैसा गाइये, हमारा कोई हर्ज नहीं। हमको शास्त्र कौन सिखाये?" उनका ऐसा शान्तिपूर्ण ढंग से दिया गया उत्तर सुनकर मुझे ही शर्म आई और मैंने कहा, खां साहेब मैं तुम्हारी ही तालीम गाऊँगा।

प्र०—तो हम भी वैसा ही करें। यह ऋषभ मेघ के ऋषभ जैसा है, बस ऐसा ही मन में समझलें?

उ०—तो फिर ठीक है; अब इस प्रकार के सम्बन्ध में अधिक छानबीन हम नहीं करेंगे। इसमें बीच-बीच में किंचित सारंग की छाया सुनने वालों को दिखाई देना सम्भव है, परन्तु आगे वह तुरन्त दूर हो जायगी।

प्र०—वहां हमारा ध्यान भी गया था। हम आप से यह पूछने वाले भी थे, परन्तु अब आपने स्वयं ही कह दिया तो वह प्रश्न ही समाप्त हुआ।

उ०—मोहम्मदअली खां ने और भी दो तीन गीत खट में कहे हैं। वे कुछ निराले प्रकार के हैं। उनमें से दो झपताल में हैं तथा एक धमार में है।

प्र०—उनकी कल्पना भी आप हमें देंगे?

उ०—हां, हां! देता हूँ। सुनो:—

खट-सरगम-झपताल.

सा	रे		म						
रे	नि़	सा	रे	म	प	ऽ	प	ऽ	प
×		२			०		३		
	म				प		नि		
प	प	म	प	प	सां	नि॒	ध॒	ध॒	प
म		नि	नि		नि			प	
ग	म	ध॒	ध॒	प	ध॒	प	प	ग॒	म
		नि					म		
म	नि॒	ध॒	ध॒	प	मप	गम	रे	रे	सा।

अन्तरा.

प		नि	नि						
म	प	ध॒	ध॒	ऽ	सां	ऽ	नि	सां	सां
×		२			०		३		
नि	नि							नि	
ध॒	ध॒	नि	सां	ऽ	रें	सां	सां	ध॒	प
सां	सां	सां							
नि॒	नि॒	नि॒	ध	म	प	ध	नि॒	सां	ऽ
		सां	सां						
रें	सां	नि॒	नि॒	ऽ	प	ध	सांनि	सांनि	सां
		म	म						
प	प	प	रे	म	प	प	प	ऽ	प।

खट—सरगम—झपताल.

			म						
सा	सा	सा	ग	म	प	ऽ	प	ऽ	प
×		२			०		३		
नि	नि	नि	नि	नि			नि	नि	
ध	ध	ध	ध	ध	नि	सां	ध	ध	प
				म	ग			म	
ध	नि	ध	प	प	म	रे	सा	ग	म
म			प		म		म		
नि	ध	प	ग	म	ग	म	रे	रे	सा।

अन्तरा.

सां					सां	सां			
नि	नि	सां	सां	ऽ	नि	नि	सां	सां	सां
×		२			०		३		
नि	नि				सां			नि	
ध	ध	नि	सां	ऽ	रें	सां	सां	ध	ध
सां	सां	नि							
नि	नि	ध	ऽ	म	प	ध	नि	सां	ऽ
		सां	सां						
रें	सां	नि	नि	ऽ	प	ध	नि	सां	ऽ
		म	म						
ध	प	प	रे	म	इ० ।				

मोहम्मद् अली खां ने मुझे जो धमार खट में बताया था, उसके बोल इस प्रकार हैं:-

खट—धमार.

तेरो कान मानत नाहीं मोसों करत है जोराजोरी।
बाट घाट में पकर लेत बैंया पकरत जोराजोरी॥
हूं अबला कछु बात न जानत बहुत दिनन की भोरी।
हर रंग कैसे जाओगे बचकर बांह पकर झकझोरी॥

प्र०—यह आपके गुरु जी द्वारा रची हुई दिखती है?

उ०—हां, यह उनकी ही रचना है। इसके स्वर कहता हूँ। सुनोः—

खट—धमार.

म			नि
ऽ ऽ ग म	प ऽ ऽ प ऽ	प ऽ	ध प ऽ
३	×	२	०
नि	ग नि		नि
सां ऽ ध प	म नि ध ध ध	ऽ प	ध प ऽ
म म	म		सा
ग ग म ऽ	ऽ नि ध प ग	म ग	रे सा ग
म			
रे सा, ग म।			

अन्तरा.

प नि			
म प ऽ ध ऽ	ऽ नि	सां ऽ ऽ	नि नि सां ऽ
×	२	०	३
सां रें			
रें गं रें सां ऽ	रें सां	नि सां ऽ	नि ध प प
म प		म म	नि नि
प नि ध प ऽ	प ऽ	ग ग म	ध ध सां ऽ

प म म			म
नि ध प प ग	म ग	रे सा ग	रे सा, ग म

अब संचारी, अभोग के स्वर नहीं कहूँगा। वह तुम्हारी कल्पना पर छोड़ता हूँ। ऐसा ही एक धमार मेरे रामपुर के गुरु वजीर खां ने सुनाया था। उसके बोल इस प्रकार हैं:—

खट–धमार.

कौन खेले होरी तोसे कृष्ण कन्हैया सगरि नर–नारिन में तू तो करत चीर फारि। कर गहत और मुख मींडत लिपट-लिपट लिपटोहि आवत, का कहूं तोसों समझ और मुखतें देवत काहे गारि ॥

उनके अन्तरे के बोल मुझे गलत जान पड़ते हैं; परन्तु उन्होंने जैसे कहे थे, वैसे मैंने लिख लिये।

प्र०—कोई हर्ज नहीं। वे आगे पीछे शुद्ध किये जा सकेंगे। अब उनके स्वर कहिये ?

खट–धमार.

सा म			नि
रे नि सा ऽ ग	ऽ म	प ऽ ऽ	ऽ ध नि प
×	२	०	३
नि नि नि नि नि			म
ध ध ध ध ध	सां ऽ	नि प ऽ	प ग ऽ म
		नि	म ग
प नि ध प ऽ	प ऽ	ध प ऽ	प ग म म
ध	म		
प ध नि ध प	ग म	ग रे सा	ग रे सा ऽ

———

अन्तरा.

नि	नि		
म प ऽ ध ऽ	ध ऽ	सां ऽ ऽ	सां नि सां ऽ
×	२	०	३

नि नि ध ध ऽ सां ऽ	रें सां	गं रें सां	नि नि सां ध ध प
नि नि ध ध ऽ गं रें	सां ऽ	रें सां ऽ	नि ध ऽ प ऽ
प ध नि ध सां	नि ध प	म ग म रे	ग रे सा ऽ।

प्र०—इसमें दोनों ऋषभ लिये हैं! नमस्कार है इस खट राग को पण्डित जी! विचारे संस्कृत ग्रन्थकार यह रूप देखकर स्तब्ध रह जांय तो इसमें क्या आश्चर्य? वे विचारे सुव्यवस्थित ग्रन्थ लिखने वाले, इस खट के लक्षण भला क्या लिखेंगे? इस राग को नाम भी बिलकुल उपयुक्त मिला है, बस इतना कहकर छोड़ दें। हम इस राग का साधारण चलन थोड़ा बहुत समझ गये हैं। अब हम इस का थोड़ा सा विस्तार करके दिखायें क्या? वह उत्तम तो नहीं होगा, परन्तु कैसा भी सही कुछ तो कहना ही है, इसलिये आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ:—

उ०—थोड़ा सा प्रयत्न करो। देखूं?

प्र०—अच्छा तो सुनिये:—

सा म रे म म नि म म सा
नि़ सा, रे म म प ग ग म, रे, सा, प ध प, नि ध प, ग ग म, रे सा। नि़ सा,
म नि म म म
रे नि़ सा, ग, म, प, प, ध ध, नि प, ध, सां, नि ध प, म प, ग, ग, म, प ग, म, रे सा।

सा नि नि नि म
नि़ सा ग, म, प ग म, ध ध ध, नि ध प, सां, नि ध प, रें सां नि ध प, म प ग,
म म
ग, म प ग, म रे सा।

म म म नि नि नि म
प ग, म प ग, सा ग, म प, ध प, नि ध प, सां ध ध, नि प, सा सा ग, म प,
म
ग, म, रे सा।

नि नि नि नि नि नि
म, म, म प, प, ध ध ध ध, सां, ध ध, प, ध ध, प, म प ग म रे, ग म प,
म ग, रे, सा।

म म नि प म म
प रे, रे प, प, म प, म प ध ध, सां, नि ध प, नि प, ग ग, म, नि ध प, म प,
ग म प, ग म, रे सा।

म म म म म म म
नि सा ग, ग; प ग, ध प ग, नि ध प, ग, सां, नि ध प, ग, रें सां, गं रें सां,
म
नि ध प, ग, म प ग, ग, म रे सा।

नि नि नि
म प, ध ध ध, सां, सां, रें सां, गं रें सां, ध ध सां, नि ध प, गं रें सां, रें सां,
म म म
ध ध, नि प, सां, नि ध प, म प ग, ग, रे सा।

नि नि नि नि म म म म
म म, प, प, ध ध ध, नि ध, प, सां, ध, प, प ग, ग, म प ग, ग, रे सा।

नि नि नि नि नि नि नि
म प ध ध, सां, सां, सां रें सां, गं रें सां, ध ध ध, सां, ध ध, नि ध प, प गं
नि नि नि म म म
रें सां, रें सां ध ध ध, नि प म प, ग, ग, ग, रे सा।

इस विस्तार में हमने केवल आपके बताये हुए सरगम के विभिन्न टुकड़ों का उपयोग किया है। अधिकांश आसावरी अङ्ग के भाग विस्तार में रखे हैं। बीच में एक तान भैरव अङ्ग की रखी है। भैरव, भैरवी तथा आसावरी ये तीनों अङ्ग एकत्र करके एक सम्मिलित आलाप करना हमसे नहीं सधेगा।

सा म
एक तान–नि सा ग, म, प, प, प, ध ध, नि ध, सां, नि ध, प, रें सां, नि ध, प,
म
ग, म, नि ध, ध, प, ग, म प, रे सा।

नि नि नि नि म
दूसरी–म, म प, प, प, ध ध ध ध, सां नि ध, प, ग म, ध ध, प, म प, म, म।

म नि नि म
तीसरी–रे नि सा, ग, म, प, प, प; ध ध, प, सां, ध, प, ग; म, नि ध, प, ध प,
म म
ग म, प, ग म रे सा।

म नि नि नि म नि म
चौथी–प, रे म रे, प, प, प, ध ध ध, ध, सां, नि ध प, ग म, नि ध प, ध प, ग,
म नि म
म, ग म, ध ध प, ग म, रे सा।

ऐंसी विभिन्न तानें परस्पर मिलाकर एक संयुक्त आलाप करना वास्तव में कठिन ही है पण्डित जी! न मालुम यह कृत्य हमारे गायक कैसे करते होंगे?

उ०—वास्तव में यह कृत्य जैसा तुम कहते हो, कठिन ही है। गायकों को जिस अङ्ग के गीत आते हैं, उसी अङ्ग से वे अपना विस्तार करते हैं। जिनको विभिन्न अङ्गों की चीजें आती हैं, वे भी तो एक समय में एक ही अङ्ग की चीज गाते हैं तथा वह जिस

अङ्ग की होती है उस अङ्ग की फिरत, अन्य समप्रकृतिक रागों को दूर रख कर करते हैं। एक ही समय में दो तीन अङ्गों का वे मिश्रण नहीं करते। यदि किसी चीज में ही दो अङ्ग मिले हुए होंगे तो उस चीज के वे भाग विभिन्न स्वरसमुदायों से श्रोताओं के सामने प्रस्तुत करेंगे। खट राग में अधिकांश गायक अपनी चीज के अनुमान से फिरत करते हैं। उदाहरणार्थ उनकी सारी चीज 'भैरव' स्वरों में गाने की हुई तो वे सा, म तथा प ये स्वर सदैव बढ़ायेंगे तथा ऋषभ एवं धैवत पर जोर कम देंगे। कुछ तो ऋषभ तथा निषाद बिलकुल निर्जीव रखते हैं; कारण उनको भैरव से पृथक रखना

नि

होता है। जैसे, म, म, प, प, प, धु प, म प ग, म, धु, सां, नि धु प, म प ग, म, सा,

नि नि नि

ग, म। धु धु धु, सां, सां, रें रें, सां, सां धु, रें सां, धु, प, नि धु, प, म प ग, म। ऐसे अङ्ग की सरगम मैंने तुमको बताई ही थी। इस अङ्ग का विस्तार करने के लिये उन्हें

नि

सा, ग, म, प ग, म, म प ग, म, धु प, म प ग; म, सा ग म प ग म, म, नि धु,

नि नि

धु, धु, म प, ग, म, सां, नि धु, प, म प, नि नि धु, प, म प ग, म, रें रें सां, नि धु, नि धु, प, म प ग, म, इस प्रकार करना पड़ेगा। इसमें मुक्त मध्यम कैसा उपयोगी रहता है वह देखा ? और उनकी चीज यदि भैरवी मेल के स्वरों की हुई तो उनका प्रयत्न 'भैरवी' अङ्ग

रे

दूर करने का होगा। ग, सा रे सा, धु नि सा ये स्वर आये कि समस्त राग पूर्ण हुआ। इस प्रकार 'धु प ग, म ग रे सा' ऐसे स्वर भी उनको दूर रखने पड़ेंगे। 'नि सा ग म धु धु प प' ऐसे समान स्वर के टुकड़े भी वे खट में नहीं ले सकते। तुमको मैंने अभी तक भैरवी राग का विस्तृत विवरण नहीं बताया, इसलिये यह बात कदाचित् स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आयेगी। यह राग अच्छी तरह समझ लेने पर मेरे कथन का तुरन्त स्पष्टीकरण होजायगा। हां तो, भैरवी अङ्ग का खट हुआ तो गायक क्या करते हैं, इस

म म नि

सम्बन्ध में हम बोल रहे थे। वे उसका प्रारम्भ ही 'ग ग, म, प, प, प, धु प, नि धु प, सां,

म प म

धु प, नि धु प, प ग, म, प धु, सां नि प, ग म प, रे सा' ऐसा कुछ करते हैं। फिर भी उनको कहीं-कहीं तीव्र ऋषभ दिखाना पड़ता है; जैसे, म धु, नि सां, सां, नि सां, नि सां, रें गं, रें सां, नि सां, नि धु, प, धु प, ग, म प धु, रें सां, नि सां, धु धु, नि प, रे सा। मेरी समझ से तुम्हारे लिये आसावरी अङ्ग का प्रकार ही ठीक पड़ेगा। तुमने जो विभिन्न चार तानें गाकर दिखाईं, उनमें चौथी उस अङ्ग की ही थी। उस अङ्ग की सरगम मैंने तुमको बताई ही है। बस उसके अङ्ग से तुम विस्तार करते जाओ। ऐसा प्रयत्न तुमने अभी-अभी किया ही था और वह बुरा भी नहीं था।

प्र०-अब हमको खट राग का परिचय पुनः एक बार संक्षेप में दे दें तो उत्तम होगा ?

उ०—कहता हूं। सुनोः-यह खट राग विभिन्न रागों के मिश्रण से उत्पन्न होने के कारण इसको विभिन्न थाटों में लेने का प्रयत्न तुम्हें दिखाई देगा। हम मुख्यतः आसावरी

मेल का प्रकार पसन्द करते हैं। उसमें तिरोभाव के लिये अन्य अङ्ग हम अवश्य दिखायें। कहीं भैरव अङ्ग थोड़ा लेना, कहीं तीव्र रिषभ और कहीं तीव्र धैवत भी-लेकिन वह आरोह-में दिखायें। इस प्रकार को शास्त्राधार मिलना कठिन है। शास्त्राधार केवल भैरवांग खट को थोड़ा बहुत मिलेगा। उस अङ्ग का प्रकार किसी ने गाया तो उस पर भी हम नहीं हंसेंगे। कोई भैरवी के स्वरों से खट गाते हैं तो थोड़ा सा उपयोग तीव्र ऋषभ का भी करते हैं। इस राग को बहुमत से आसावरी थाट में लेते हैं। इसमें

नि
'ध ध प, नि ध प, सां, नि ध प' यह स्वरसमुदाय उत्तरांग में बारम्बार आता है तथा
म म म
'प, ग म, प ग, ग, रे सा' यह पूर्वाङ्ग में आता है। पंचम तथा गंधार की संगति खट में अच्छी दीखती है। मध्यम मुक्त अनेक स्थानों में आता है। खट का वादी स्वर धैवत तथा संवादी गंधार है। आरोह में रिषभ तथा निषाद दुर्बल हैं, इस राग के उत्तरांग में आसावरी अथवा गांधारी का योग है। पूर्वाङ्ग में आरोह में गंधार आने से राग को स्वतंत्र रूप प्राप्त होता है। गंधार तथा धैवत ये स्वर खट में हर हालत में रहते हैं। भैरव प्रकार गाने वाले पूर्वाङ्ग बिलकुल लँगड़ा रखते हैं। उनका विस्तार अधिकतर उत्तरांग में होता है। यह राग मध्य तथा तार स्थान में बहुधा गाते हैं तथा वहीं अच्छा प्रतीत होता है। कोई खट में षड्जपंचम संवाद मानते हैं, परन्तु मैं वह मत पसन्द नहीं करता।

म म नि नि नि म नि नि
खट में तुमने "रे नि सा ग म;" "प प ग, म;" ध ध ध, नि प, ग म, "ध ध सां, रें सां,
नि नि म म
गं रें सां, सां, ध ध, नि प, ग, म" "प ग, म, रे सा" ये भाग बारम्बार सुनकर तथा प्रत्यक्ष गाकर याद कर लिये जांय तो यह राग गाना तुम्हारे लिये पर्याप्त सरल हो जायगा। खटराग सदैव अमुक ही स्वर से प्रारम्भ होगा, ऐसा नियम नहीं है। आरोह में एक गंधार आने से ही आसावरी, जौनपुरी तथा गांधारी राग तत्काल दूर होते हैं। 'प ग रे, नि सा, रे प ग रे, म प, रे म प' यह भाग खट में न होने से देसी की ओर तो देखने की आवश्यकता ही नहीं।

नि
पुन: देसी के उत्तरांग में "ध ध, सां नि ध प" ऐसा नहीं करते हैं। देसी से खट को पृथक करने का यह भी एक साधन होगा। सुहा, सुघराई, देवसाग इन रागों में 'प ग, म, रे सा' यह भाग है, परन्तु उत्तरांग में यह आसावरी अङ्ग नहीं चलेगा। सुघराई में तो उतरी धैवत नहीं है, सुहा तथा देवसाग में धैवत बिलकुल नहीं है, इसलिये वहां यह राग स्वतः

म म
पृथक होगा। 'प, रे रे, म प, प' ऐसा एक टुकड़ा खट में आता है; परन्तु वह देसी का नहीं है। उसको किसी ने सारंग का कहा, तो क्षम्य होगा। देखा? इस खट में कितनी उलझन है? बिचारे प्राचीन सीधे-सादे ग्रन्थकारों की तो बात ही छोड़ दो, परन्तु हमारे आज के बड़े संगीतज्ञ कहलाने वाले भी तो इस राग का समाधानकारक तथा सुसम्मत लक्षण नहीं कह सकते। तथापि प्रचार में क्या दीखता है तथा राग पहिचानने के कौनसे साधन हैं, यह कहा जा सकता है। और इसी लिये मैंने भी ये सब बातें तुमसे कही हैं। तुम तो मेरे गुरु द्वारा सिखाये हुए प्रकार गाते जाओ। उनके योग से तुम्हारा राग स्पष्ट पहिचानने योग्य रहेगा। दिन के दूसरे प्रहर के रागों में पंचम गन्धार की संगति जैसी बारम्बार दीखती है, वैसी इस खट राग में भी दिखाई देगी। गन्धार

आन्दोलित होता है, तब वहां एक प्रकार की गमक स्वतः उत्पन्न होती है तथा वह सुन्दर भी प्रतीत होती है। किन्तु ठहरो ! जयपुर के करामतखां ने मुझे एक ध्रुपद खट में सुनाया था, उसके स्वर कहूँ क्या ?

प्र०—अवश्य कहिये ?

उ०—सुनोः—

खट—चौताल—सरगम

(नि)सा	ऽ	सा	(म)ग	ऽ	म	रे	प	ऽ	(नि)ध	(नि)ध	(नि)ध
०		३		४		×		०		२	
(नि)ध	सां	ऽ	प	नि	प	(प)नि	ध	प	म	ध	प
(नि)ध	म	प	(म)ग	ऽ	(म)ग	(ग)प	(म)ग	(म)ग	म	रे	सा
ऽ	सा	प	(म)ग	ऽ	म						

अन्तरा.

(प)म	प	ऽ	प	(प)नि	प	सां	ऽ	सां	नि	सां	ऽ
×		०		२		०		३		४	
(नि)ध	(नि)ध	(नि)ध	प	सां	ऽ	सां	नि	(नि)ध	(नि)ध	ऽ	प
प	प	ऽ	ध	नि	सां	रें	सां	ऽ	(नि)ध	(ध)नि	प
(म)प	(म)ग	ऽ	म	रे	सा	ऽ	सा	ऽ	(म)ग	ऽ	म

संचारी.

(नि)सा	(नि)ध	(नि)ध	(नि)ध	ऽ	(नि)ध	(ध)नि	(ध)नि	(नि)ध	(नि)धनि	प	प
×		०		२		०		३		४	
प	(म)ग	ऽ	म	(म)नि	प	प	(म)ग	म	रे	सा	ऽ
(नि)सा	सा	ऽ	(सा)म	ऽ	म	ऽ	म	ऽ	प	ऽ	प
प	(म)ग	ऽ	म	ऽ	म	नि	प	ऽ	प	म	प

आभोग.

म	म	प	प	नि	प	सां	ऽ	सां	ऽ	सां	सां
×		०		२		०		३		४	
(नि)ध	(नि)ध	(नि)ध	(नि)ध	सां	ऽ	रें	सां	नि	ध	(नि)ध	म
प	ध	नि	सां	ऽ	सां	रें	मं	ऽ	सां	ऽ	सां
(म)प	(म)ग	ऽ	म	रे	सा						

ऐसा उनकी चीज का स्थूल रूप था। इतने से राग का चलन ध्यान में आ सकता है। अन्तरे में तीव्र धैवत का प्रयोग आरोह में जयपुर के गायकों के ही गाने में मुझे दिखाई दिया और वह बुरा भी नहीं दीखता। मोहम्मदरजा खान भी इस प्रकार के प्रयोग को मानते हैं। अब खट राग के लक्षण संक्षिप्त रूप से ध्यान में रखने के लिये श्लोक कहता हूँ।

प्र०—हां, ऐसा ही करिये। यह राग अब हम पहिचान सकते हैं, ऐसा जान पड़ता है ?

उ०—तो फिर यह श्लोक सुनोः—

आसावरीसुमेलाच्च खटरागः समुत्थितः ।
आरोहे चावरोहेऽपि संपूर्णस्तद्विदां मते ॥
धैवतः संमतो वादी गांधारो मंत्रिसंनिभः ।
गानमस्य समीचीनं द्वितियप्रहरेऽहनि ॥
वर्णयन्ति पुनः केचिदेनं पंचमवादिनम् ।
गग्रहं पंचमन्यासं बुधः कुर्यात्स्वनिर्णयम् ॥
प्रकृतिचपलश्चित्रो बहुभिर्गमकैर्युतः ॥
उत्तरांगप्रधानोऽयं संगवे भूरिरक्तिदः ॥
एके भैरवमेलेऽमुं वर्णयन्ति विपश्चितः ।
मिश्रमेलसमुत्पन्नं कथयन्ति पुनः परे ॥
गद्वयो रिद्वयश्चाथ धैवतद्वयसंयुतः ।
खटरागः श्रुतो लोके धगान्दोलनभूषितः ॥
रागतरंगिणीग्रंथे तथा हृदयकौतुके ।
कीर्तितः खटरागोऽयं गौरीमेलसमाश्रयः ॥
वरारी गुर्जरी गौरी श्यामा चासावरीतिच ॥
गांधारसंयुता एताः स्युः षड्राग इतीरितम् ॥

लक्ष्यसंगीते ।

आसावर्याः स्वरेभ्यो ध्रुवमजनि खटो मिश्ररागोऽयमुक्तः
धांशो गांधारमंत्री प्रकृतिचपलको मग्रहः पंचमान्तः ।
पूर्वांगे भैरवोऽस्य प्रविलसति सदाऽऽसावरी चोत्तरांगे
गायंत्येनं हि सर्वे सुकुशलमतयः संगवे श्राव्यकंठाः ।

रागकल्पद्रुमांकुरे ॥

भैरवासावरीत्यादिरागैः षड्भिः समन्वितः ।
धैवतांशो गसंवादी खटः सगव ईरितः ॥

चन्द्रिकायाम् ॥

धग वादी संवादि है मिले जहां खट राग ।
गावत गुनियन को बिकट है प्रसिद्ध खट राग ॥

चन्द्रिकासार ॥

निसौ गमौ पधौ पमौ पधपसा निधौ पमौ ।
पगौ मनी धपमपा गमौ गरी पुनश्च सः ।
षड्रागो मिश्रमेलोत्थो धैवतांशोऽपि संगवे ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ॥

प्र०—यह खट राग यद्यपि गाने में कठिन है, तथापि है बहुत मजेदार। इसमें धैवत तथा गन्धार साध लिये और ऋषभ-पंचम संगति साधली तो अधिकांश काम हो गया, ऐसा हम कहेंगे। आपकी आज्ञा हो तो आसावरी अङ्ग के खट की एक छोटी सी सरगम भी बनाकर हम दिखायें ?

उ०—अच्छा कैसी बनाओगे, देखें ?

प्र०—देखिये, प्रयत्न करता हूँ:—

खट—सरगम—एकताल (मध्यलय)

सा	रे		म		म	म					
रे	नि॒	सा	ग॒	ऽ	ग॒	रे	प	ऽ	प	ऽ	प
×		०		२		०		३		४	
प			नि॒	नि॒	नि॒	नि॒					
म	प	ऽ	ध॒	ध॒	ध॒	ध॒	सां	नि॒	ध॒	ऽ	प
प	नि॒			म		म			नि॒		
नि॒	ध॒	ऽ	प	ग॒	म	रे	प	ऽ	ध॒	नि॒	प
	म	म		म		म			रे	सा	
प	ग॒	ग॒	म	रे	प	ग॒	म	प	म	रे	सा

अन्तरा.

प			नि॒		नि॒	नि॒					
म	प	ऽ	ध॒	ऽ	ध॒	ध॒	सां	ऽ	नि	सां	सां
×		०		२		०		३		४	
सां	सां					सां	सां				
नि॒	नि॒	सां	ऽ	रें	सां	नि॒	नि॒	सां	नि॒	ध॒	प

सां नि॒	सां नि॒	सां नि॒	ध	ऽ	म	प	ध	नि	सां	ऽ	सां
रें	सां	सां नि॒	सां नि॒	ध	म	प	ध	नि	सां	ऽ	प
प नि॒	प	ऽ	प	म ग॒	म	म रे	प	ऽ	प	ऽ	प

उ०—मेरी समझ से यह राग तुम्हारे मनमें अच्छा बैठ गया है। तुम्हारी यह सरगम भी अच्छी रही।

मित्र! अब इस खट राग के सम्बन्ध में विशेष कुछ कहने के लिये नहीं रहा। अब तुम इसी आसावरी थाट से उत्पन्न होने वाला एकाध दूसरा राग भी देखलो।

प्र०—ठीक है, ऐसा ही करिये। इस थाट के जन्य राग आपने इस प्रकार कहे थे:—

आसावरी जौनपूरी देवगांधारझीलफौ।
सिंधुभैरविकासंज्ञाऽप्यडानाखटकौशिकाः॥
दरबारीकानडाख्या गांधारी देशिकाह्वया।
आसावरीसुमेलोत्था एते रागाः सुसंमताः॥

इनमें से आसावरी, जौनपुरी, गांधारी, देसी तथा खट ये तो हो ही गये, अब शेष जो रहे हैं, उनमें से कोई सा एक ले लीजिये?

उ०—मेरी समझ से हम पहले दरबारी तथा अडाणा देखें। ये अत्यन्त ही लोकप्रिय तथा साधारण राग हैं। ये अधिकांश गायकों को आते हैं तथा श्रोता भी इनसे अच्छी तरह परिचित हो गये हैं, यह बात मैं पहिले ही बताये देता हूँ।

प्र०—कोई हर्ज नहीं। हमको तो वे राग समझने हैं। अमुक पहले और अमुक बाद में, ऐसा हमारा आग्रह नहीं है। हम यह सब आपकी सुविधा पर छोड़ते हैं?

उ०—तो फिर पहले दरबारी-कानडा पर विचार करें। 'दरबारी-कानडा' यह संयुक्त नाम देखते ही तुम्हारे मनमें सहज ही यह प्रश्न उठेगा कि इस राग में 'दरबारी' तथा 'कानडा' इन दो स्वतन्त्र रागों का गुणीजनों ने योग किया होगा। परन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। इस नाम में 'दरबारी' को 'कानड़ा' का केवल विशेषण समझना चाहिये। अब आगे ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'दरबारी' विशेषण से किसका बोध होता है तथा यह शब्द कानडा के पहिले क्यों लगाया गया? इसका समाधान बहुत

कम लोग कर सकेंगे। बड़े-बड़े राजा महाराजाओं के महलों में दरबार लगा करते थे, यह तुम्हें मालूम ही है। दरबारी शब्द कानड़ा के साथ क्यों आया, यह अपना प्रश्न था। इसका उत्तर हमारे रामपुर के गुरु ने इस प्रकार दिया है कि मियां तानसेन ने कानड़ा राग को आज के स्वरूप में अकबर बादशाह के सामने भरे दरबार में गाया था, बादशाह उस प्रकार को देखकर बहुत खुश हुए। उस दिन से यह राग दरबार में बारम्बार गाया जाने लगा, तथा दरबार को प्रिय होने के कारण यह राग 'दरबारी' नाम से पुकारा जाने लगा। 'दरबारी' शब्द यावनिक है, यह स्पष्ट ही है। यह स्पष्टीकरण चाहे असत्य हो अथवा संदेहात्मक हो, परन्तु दूसरा समाधानकारक प्रमाण मिलने तक हमको यही स्वीकार करना उचित है।

प्र०—अभी-अभी आपने कहा कि तानसेन ने कानड़ा राग को आधुनिक स्वरूप दिया, तो उसके पूर्व उस राग का स्वरूप क्या कुछ भिन्न था?

उ०—इस प्रश्न का उत्तर एक शब्द में भी दिया जा सकता है। परन्तु ऐसा उत्तर न देकर कानड़ा राग का पूर्व इतिहास तुम्हारे सामने रखता हूँ, ताकि अपने प्रश्न का उत्तर तुम स्वयं प्राप्त कर सको।

प्र०—ठीक है, ऐसा ही करिये। वह इतिहास हमारे लिये उपयोगी ही होगा।

उ०—अब दरबारी शब्द का इतिहास बताने की तो आवश्यकता ही नहीं। और इसका सम्बन्ध कानड़ा से कैसे हुआ, यह भी मैंने बताया ही है। वस्तुतः मनोरंजक प्रश्न ऐसा है कि आज प्रत्यक्ष जो स्वरूप दरबारी का हम गायकों से सुनते हैं, क्या वही हूबहू तानसेन ने दरबार में गाया था? क्या हमारे गायक-वादकों का ऐसा समझना ठीक है?

प्र०—तो फिर यह बात ठीक नहीं है, ऐसा भी कौन सिद्ध कर सकता है? तानसेन के वंशज आज भी रामपुर में हैं ही? वे यह राग अपनी परम्परानुसार गाते होंगे न?

उ०—हां, तानसेन के वंशज आज के प्रचलित स्वरूप को ही स्पष्टरूप से गाते हैं। इतना ही नहीं, अपितु सारे देश में दरबारी के सम्बन्ध में क्वचित ही मतभेद होगा।

प्र०—फिर ऐसी शंका क्यों उत्पन्न हुई?

उ०—शंका का कारण यही है कि अकबर के समय के संस्कृत ग्रन्थकार "दरबारी-कानडा" नाम का उल्लेख नहीं करते। परन्तु वह सब मैं तुम्हारे सामने रखने वाला ही हूँ, इसलिये इस बात पर तत्काल हम चर्चा नहीं करेंगे। "कानड़ा" राग के अनेक प्रकार अपने गुणीलोग मानते हैं, ऐसा मैंने कहा ही था।

प्र०—हां, "जो दरबारी सो शुद्ध कहावे इ०" ऐसा एक सवैया भी आपने हमको सुनाया था। इसके अतिरिक्त बागेश्री, नायकी, सुहा, सुघराई, सहाना आदि कानडा प्रकार आपने हमको बताये हैं।

उ०—हां, ठीक है। हमारे यहां गायक कानडा के अठारह प्रकार मानते हैं। उनके नाम-निशान में कहीं कहीं अन्तर भी पड़ता है, परन्तु यह अठारह की संख्या अधिकांश को मान्य दिखाई देती है। इन प्रकारों के नाम पुनः एक बार कहे देता हूं। सुनो:-

१-दरबारी, २-नायकी, ३-हुसैनी, ४-कौंसी, ५-मुद्रिक, ६-सुहा, ७-सुघराई, ८-अडाणा, ९-साहाना, १०-बागेश्री, ११-गारा, १२-काफी, १३-जयजयवन्ती, १४-नागध्वनि, १५-टंकी, १६-कोलाहल, १७-मंगल, १८-श्याम कानडा। ये नाम गीतसूत्रसार में कृष्णधन बैनर्जी ने दिये हैं।

प्र०—बंगाल प्रान्त में प्रसिद्ध गायक काफी हो गये हैं, ऐसा दिखता है ?

उ०—वहां पहले मुसलमानों का शासन था। अतः सम्भव है ऐसा हुआ हो, परन्तु आज भी वहां सङ्गीत की स्थिति-कला की दृष्टि से-विशेष प्रशंसनीय होगी, ऐसा नहीं जान पड़ता। वहां बड़े बड़े रागनाम अवश्य दिखाई देंगे। कभी कभी वहां पुराने ध्रुपद भी गाये जाते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष सुनने पर वे श्रोताओं को ऐसे प्रतीत नहीं होंगे जैसे कि प्राचीन काल में गाये जाते थे। लेकिन हमें उधर के गायकों पर टीका-टिप्पणी करने का क्या अधिकार है ? उधर के लोगों ने उन्हें पसन्द किया तो इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है ? वहां की गायकी के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा है, वह अपने एक गुरुभाई द्वारा इस विषय में हुई चर्चा के आधार पर कहा है। लखनऊ की एक प्रसिद्ध गायन संस्था में बंगाल के किसी प्रसिद्ध ध्रुपदिया प्रोफेसर को रखने की बाबत एक प्रश्न उठा था, तब उसने अपना उक्त मत दिया था। अस्तु, मि० बैनर्जी के कानडाप्रकार मैंने कहे ही हैं। इसके अतिरिक्त रामपुर के नवाब के मुंह से मैंने सोरटीकानडा तथा खमाजीकानडा सुने थे जो याद आते हैं।

प्र०—सोरटीकानडा उन्होंने किस प्रकार गाया ?

उ०—सोरट के अंग, रे (म)म प, नि सां, प ध म रे, यह तुमको मालूम ही है। इसमें कोमल गन्धार तथा "ग॒ म रे सा" ये कानडा अङ्ग शामिल करने पर बहुत कुछ मतलब हल हो जायेगा। उन्होंने सोरटीकानडा में एक सादरा गाया, उसके बोल इस प्रकार थे:—नई नई नई नाचत लास तांडवे भेदन प्रकार देसी लेत गत। उरप तुरप लाग डांट पिरमल देसी सम परकास ता थेइ तन॥ इसके स्वर कुछ ऐसे थे:—

(सा)सां	सां	(प)नि॒	प	म	रे	रेग॒	सारे	म	प		
×		०		२		३		०			
नि	नि	सां	ऽ	पध	मप	(म)ग॒	ऽ	म	री		

सा रे	सा	निसा	रे	सा	ऽ	रे	रे	सा	ऽ

अंतरा.

प म	प	नि	सां	ऽ	सां	रें	नि	सां	ऽ
×		०		२		३		०	
सां रें	सां	प नि	प	नि	सां	ऽ	सां	रें	ऽ
म	प	ध	म	म रे	रे	रंग	सारे	ऽम	प
नि	नि	सां	ऽ	स्थाई के अनुसार					

यह प्रकार मुझे विशेष पसन्द नहीं आया। परन्तु ऐसे मिश्र प्रकारों का निर्माण गायक कैसे करते हैं, इसकी कल्पना तुमको सहज ही हो सकेगी। अब यह प्रकार देखो।

म ग ग

सा, नि सा, रे, ग (आन्दोलित), म प, ग, रे, नि सा, रे सा, नि ध, नि प, प रे, रे," यह टुकड़ा कानड़ा में लेते ही जयजयवन्तीकानडा होगा। परन्तु इस मिश्रण में धैवत बहुधा तीव्र होता है, यह मत भूलना। रामपुर में ताज खां के एक वंशज ने एक "गारा-कानडा" प्रकार गाया था, वह भी याद आ रहा है। उस चीज के बोल, "अरे ए कान जो-जो रस चाहें सो रस नाहीं। हूं तो ग्वालिन तेरोहि चाहूं तो पकर बुलाऊँ ॥ ऐसे

सा म सा सा

उन्होंने मुझे बताये थे। स्वर इस प्रकार लिये थे:—री, ग, री सा, नि, प ध, नि सा, रे

ग म ग रे सा ध

सा, री गरी नि सा, सा, रे सा, रे ग ग म प, म ग म रे ग रे, नि सा। म, म प, नि ध,

प म ग

नि सां, नि सां, रें सां नि ध नि प, नि प प, म प, ग (आन्दो०) म, री, सा। ये गीत ही मैं आगे तुमको सिखाऊँगा। ऐसा ही एक अप्रसिद्ध प्रकार ग्वालियर के सरदार बलवन्त-राव शिंदे के मुख से मैंने सुना था, उसका नाम "रायसा कानडा" उन्होंने बताया। उस समय उनके द्वारा गाये हुए बोल तथा स्वर मैंने लेखबद्ध नहीं किये; परन्तु यहां एक बात तुमको बताये देता हूं कि अप्रसिद्ध प्रकार अच्छी तरह गाकर उसके नियम भी स्पष्ट बता सकते हों ऐसे गायक अब पांच प्रतिशत भी मिल सकेंगे, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता।

प्रचार में जो आठ-दस कानडा प्रकार प्रसिद्ध हैं, केवल उनको गाने वाले अवश्य मिल जायंगे।

प्र०—जब यह कानड़ा प्रकार इतने आधुनिक हैं तो यह कई लोगों को अपने-अपने गुरु से ही प्राप्त हुए होंगे ?

उ०—इस प्रकार की शुद्ध गुरु परम्परा के गायक, देश में अब बहुत ही थोड़े निकलेंगे। बादशाही समाप्त होने के पश्चात् सौ-पचास वर्ष तक तो गायक परम्परा ठीक चली ऐसा कहते हैं, परन्तु गत सौ-डेढ़ सौ वर्षों में इस कला की बहुत दुर्दशा हुई।

प्र०—अब हम अप्रसिद्ध कानडा गाने के लिये किसी गायक से कहें तो "हमको नहीं आता है," क्या वह ऐसा स्पष्ट उत्तर देगा ?

उ०—ऐसा उत्तर देने के लिये जो मानसिक धैर्य चाहिये, वह अधिक लोगों में

म

नहीं होता। उनको पता है कि कानडा का मिश्रण ग म रे सा तथा "नि ध नि प" अथवा "नि प ग म" ऐसे टुकड़ों से किया जाता है। जिस राग का तुम नाम लोगे, उस राग के स्वरों में यह भाग किसी तरह बैठाकर तुम्हारे सामने रक्खा कि तुम्हारा मुंह बन्द हो जायेगा। उदाहरणार्थ, काफीकानडा, खमाजीकानड़ा, जयजयवन्तीकानड़ा, को ही ले लो। इनमें मुख्य भाग काफी अथवा कानड़ा का लेकर उनमें मेरे बताये हुए टुकड़े अच्छी तरह बैठाये कि बस काम बना। अमुक राग का मिश्रण, अमुक स्थान पर अमुक प्रकार से लिया है, ऐसा जानने वाले तथा समझने वाले गायक-वादक अब बहुत थोड़े दिखाई देंगे, मेरा कहने का इतना ही तात्पर्य था। कोई-कोई तो हमें ऐसे भी मिलते हैं, जिनके मत में गारा, काफी, जयजयवन्ती ये राग स्वतः ही कानड़ा हैं।

प्र०—इन रागों में दो गन्धार देखकर वे ऐसा समझते होंगे ?

म

उ०—ऐसा ही होगा। परन्तु जयजयवन्ती गाते हुए कहीं-कहीं ग म रे सा तथा कहीं-कहीं 'ध नि ध प' अथवा 'ध ध नि प' ऐसे भी टुकड़े कुछ लोगों द्वारा उसमें लिये हुए मैंने सुने हैं, यह एक निराला ही राग सजगया।

प्र०—परन्तु मिश्र राग में इस प्रकार के मिश्रण होंगे ही, यह बात नहीं कह सकते क्या ?

उ०—संभवतः ऐसे मिश्रण होंगे, परन्तु वे सब मिलाकर उत्तम तथा सुसंगत दिखाई देने चाहिये। दूसरी बात यह कि मिश्रण करने वाले को यह जानकारी भी होनी चाहिए कि यह मिश्रण कहां हुआ, कैसे हुआ, क्यों हुआ, तथा उसके कारण मूल राग में कहां, कौनसा तिरोभाव तथा आविर्भाव हुआ। उत्तम मिश्रण करके उसके नियमों का ज्ञान होना, इसी का नाम है विद्या। कभी कभी गायक बड़े घराने का होते हुए भी कोई राग ऐसे 'निरस ढंग' से गाता है कि उसके घराने के सम्बन्ध में श्रोताओं के मन मे श्रद्धा हटने लगती है। ऐसा एक प्रसंग मुझे याद भी है। हम दो-चार व्यक्ति एक बड़े घरानेदार

गायक के घर मिलने के लिये गये थे। बोलते-बोलते हममें से एक व्यक्ति ने उस गायक से प्रश्न किया कि आपको मुंद्रिक-कानडा आता है क्या ?

प्र०—परन्तु इस प्रकार एकदम कानडा का ही प्रश्न पूछने में कैसे आया ?

उ०—हमारी चर्चा पहिले से ही कानडा के विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में चल रही थी, अतः उसी सिलसिले में यह प्रश्न निकला।

प्र०—फिर उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

उ०—यह प्रश्न करने पर वे उस राग को बिल्कुल व्यक्त नहीं कर सके वे बहुत गम्भीर व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कि मेरे गुरु ने मुझे मुंद्रिक में एक ही चीज बताई थी। उसका अन्तरा मुझे याद है।

प्र०—स्थाई के स्वर उन्होंने किस प्रकार गाये ?

उ०—मैंने उनकी आज्ञा से वह अपनी डायरी में लिख लिये थे। वे इस प्रकार थे:—

नि़ नि़ सा म म
सा, ध़ नि़, नि़ सा, नि़ सा रे सा, नि़ सा, प, म प, ग॒ म ग॒ म ग॒, ग॒ म रे, सा,

म रे, सा, नि़ सा, प़ ध़ नि़ सा, रे, सा।

इसमें मुंद्रिका का भाग कौनसा है, तथा कानडा का कौनसा है, यह समझ में नहीं आया। उनको पूरी चीज याद नहीं थी, फिर भी मुंद्रिका के लक्षण क्या हैं तथा कानडा से वह कहां व कैसे पृथक होता है ? यह बात हमने उनसे पूछी; परन्तु उन्होंने कहा—इसका निर्णय तुम्हीं करलो। मुझे जितना भाग याद था, उतना सुना दिया।

प्र०—किन्तु सुनने वाले अपने आप निर्णय कैसे कर लेंगे ?

उ०—यही तो अड़चन है। उनका कहने का भावार्थ यह होगा कि तुम अन्य गायकों के मुख से मुंद्रिक राग सुनकर तथा तत्सम्बन्धी ग्रन्थों में क्या कहा है, यह देखकर मुंद्रिक के लक्षण निश्चित करलो।

प्र०—हमारे ग्रन्थकारों को 'मुंद्रिक कानडा' मालुम था क्या ?

उ०—तुम भूल गये ! भावभट्ट ने कानडा प्रकार के जो नाम दिये हैं, वे मैं तुमको पहले बता चुका हूँ। किन्तु कोई हर्ज नहीं, मैं फिर कहता हूँ:—

शुद्धकर्णाटरागश्च कर्णाटो नायकी ततः।
वागीश्वर्यादिकर्णाटः कर्णाटोऽड्डाणपूर्वकः॥
ततः सहानाकर्णाटः पूर्यादिकस्ततः परम्।
ततो मुन्द्रिककर्णाटो गाराकर्णाटकस्तथा॥

हुसेनीपूर्वकर्णाटः खंबावत्यादिकस्ततः ।
सोरटीपूर्वकर्णाटः काफीकर्णाटकस्तथा ॥
ततः कर्णाटगौडः स्यात् कर्णाटीति चतुर्दश ॥

उसने मुंद्रिककर्णाट के लक्षण मात्र नहीं दिये। यह राग अपने यहां कभी सुनने में नहीं आता। इसमें सब काफी थाट के स्वर हैं, ऐसा समझा जाता है।

प्र०—भावभट्ट ने जो नाम दिये हैं उनमें सुहा, सुघराई, कौंसी क्यों नहीं दिखाई देते ?

उ०—इस प्रश्न का उत्तर मैं कैसे दे सकता हूँ ? कदाचित् उसके समय में ये स्वतन्त्र निराले राग समझे जाते होंगे। पण्डित भावभट्ट ने जो प्रकार दिये हैं, उनमें से कुछ मैंने तुमको बताये ही हैं। "शुद्धकर्णाट" को भावभट्ट दरबारीकानडा समझता था, यह तुमको विदित ही है।

प्र०—हां; "जो दरबारी सो शुद्ध कहावे" यह उसने स्पष्ट ही कहा है।

उ०—अब शेष नाम देखें तो उनमें "कर्णाटी" ऐसा एक नाम हमें दीखता है। कर्णाटी यह कौनसा प्रकार है ? "कर्णाट" शब्द का अपभ्रंश 'कानडा' है, ऐसा समझकर हम चलें अर्थात् कानडा के स्वरूप की शोध "कर्णाट" राग के स्वरूप की ही शोध समझनी चाहिये। "कर्णाट गौड" ऐसा भी एक नाम संस्कृत ग्रन्थकार लिखते हैं, उसे थोड़ी देर के लिये एक स्वतन्त्र प्रकार मानकर तुम चलो तो भी ठीक रहेगा। कुछ ग्रन्थकार कर्णाट तथा कर्णाटी ये दोनों भी भिन्न प्रकार मानते हैं, किन्तु उनमें से कर्णाटी हमारी पद्धति में नहीं।

प्र०—'कर्णाट' अथवा 'कर्णाटी' का शार्ङ्गदेव पण्डित ने अपने संगीत रत्नाकर में उल्लेख किया है क्या ?

उ०—उसने "कर्णाट बंगाल" तथा कर्णाट गौड" ये राग "अधुनासङ्गीत" नाम से दिये हैं; परन्तु अकेले "कर्णाट" नाम का राग उसने नहीं दिया। किन्तु रत्नाकर तथा दर्पण ग्रन्थों के रागों का स्पष्टीकरण अभी होना बाकी है, यह मैं कह चुका हूं न ? अपने विवेचन को हमने रागतरंगिणी से प्रारम्भ किया है, यह तुम्हें विदित ही है।

प्र०—ठीक है। हम कर्णाट अथवा कर्णाटी नाम की प्राचीनता ही देख रहे थे। तो फिर यह राग रागतरंगिणी में कैसा कहा है, वह बता दीजिये ?

उ०—"कर्णाट" थाट लोचन पंडित ने कैसा माना है, यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ।

शुद्धाः सप्तस्वरास्तेषु गांधारो मध्यमस्य चेत् ।
गृह्णाति द्वे श्रुती गीता कर्णाटी जायते तदा ॥

इस श्लोक से तुम परिचित ही हो।

प्र०—हां, ठीक है। कर्णाट थाट अपने हिन्दुस्तानी सङ्गीत का "खमाज" थाट होगा, ऐसा आपका कहा हुआ वाक्य याद आता है। तो फिर लोचन के समय में 'कर्णाट' राग खमाज थाट में लेते थे, अर्थात् उसमें तीव्र गन्धार आता था, ऐसी मान्यता चली आरही है।

उ०—हां, वैसा होगा ही। इस श्लोक से और भी एक छोटी सी बात हमारी दृष्टि में यह आती है कि कर्णाट तथा कर्णाटी ये दोनों नाम एक ही राग के हैं, ऐसा लोचन का मत इस श्लोक से दिखाई देता है। लोचन के कर्णाट लक्षण से हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कर्णाट राग में तीव्र गन्धार तथा तीव्र धैवत स्वरों का प्रयोग किया जाता था। आज हमारे सभी गायक दरबारीकानडा कोमलगन्धार तथा कोमलधैवत से गाते हैं।

प्र०—इससे हमको आश्चर्य नहीं होता। कारण, लोचन के कुछ रागों में ऐसे ही परिवर्तन हमने पहले भी देखे हैं। बागेश्वरी, सुघराई आदि रागों में भी लोचन तीव्र गन्धार लेने को नहीं कहता है क्या?

उ०—हां, यह तुमने अच्छा ध्यान में रखा। उस पण्डित ने कर्णाट थाट के जन्य राग इस प्रकार बताये हैं:—

षाडवः कानरो रागो देशीविख्यातिमागतः।
वागीश्वरीकानरश्च खंमाइची तु रागिणी॥
सोरठः परजो मारुजैंजयंती तथापरा।
ककुभोऽपिच कामोदः कामोदी लोकमोदिनी।
केदारी रागिणी रम्या गौरः स्यान्मालकौशिकः।
हिंदोल सुघराई स्यादडानो रागसत्तमः॥
गारेकानरनामा च श्रीरागश्च सुखावहः।
कर्णाटसंस्थितावेते रागाः सन्तीति निश्चितम्॥

यह श्लोक मैंने पहिले तुमको बताया ही था; परन्तु जिस अर्थ में अब हम यहां कानडा राग पर विचार कर रहे हैं, उस अर्थ में यह श्लोक पुनः एकबार कह आगे बढ़ना मैंने उचित समझा।

प्र०—कोई हर्ज नहीं, हमको भी यह सुविधाजनक ही होगा। अब कानडा का वर्णन आगे चलने दीजिये?

उ०—लोचन, राग का नाद स्वरूप नहीं देता, यह बात तुम्हें मालुम ही है। हृदयकौतुककार कर्णाट अथवा कानडा राग के लक्षण इस प्रकार कहता है:—

गमौ मगरिसा निश्च सरिसा रिसगा रिसौ।
ससौ सासारिसा निश्च ससौ च सरिसा निधौ॥
पमौ ममपमाः पश्च धनिसा धनिपा ममौ।
गरिसा इति कर्णाटो गीयतेऽतिविरागिभिः॥

ये स्वर इस प्रकार लिखे जा सकेंगे:—

ग म म ग रे सा नि सा रे सा रे सा ग रे सा, सा सा सा सा रे सा नि सा सा सा रे सा नि ध प म म म प म प ध नि सा ध नि प म म ग रे सा।

मेरी राय में ऐतिहासिक दृष्टि से यह नादस्वरूप विशेष महत्व का होगा।

प्र०—कैसे ?

उ०—इसमें हमारे आज के दरबारीकानडा के पर्याप्त नियम दृष्टिगत होंगे। अधिकांश स्वरक्रम ऐसा ही रखकर हम इस स्वरूप में गन्धार तथा धैवत कोमल करदें तो हम अपने दरबारी के बहुत निकट आ गये, ऐसा स्पष्ट दिखाई देगा। लोचन के कुछ रागों में तीव्र गंधार के स्थान पर कोमल गंधार लगा है, इसके पर्याप्त प्रमाण मिलेंगे; परन्तु 'कानडा' राग में कोमल धैवत किसी भी ग्रन्थकार (संस्कृत) ने लेने को नहीं कहा। और वह कभी लिया भी गया, तो उसको किसने लिया ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है।

प्र०—सम्भवतः तानसेन ने उसे शामिल करके उस नवीन स्वरूप को 'दरबारी' नाम दिया होगा ?

उ०—कदाचित् ऐसा ही हुआ हो, परन्तु उस पर लिखित प्रमाण मिलने कठिन हैं।

प्र०—अभी-अभी आपने कहा था कि हृदय पण्डित के स्वर-स्वरूप में गन्धार तथा धैवत कोमल करने से हम अपने आज के दरबारी के निकट आजायेंगे, वह कैसे ?

उ०—हृदय का स्वरस्वरूप यदि ऐसा लिखा जाय:—

म　　म सा　　　　　　　　　म सा
ग, म, म, ग, रे, सा, नि सा, रे सा, रे सा, ग, रे, सा, सा, सा, रे, सा, नि सा,

　　　　　　　नि　　　　　　　म सा
सा, रे, सा, नि ध (नि) प, म म प, प ध, नि, सा, नि ध नि प, म, ग, रे, सा। तो हमारा दरबारीकानडा वहां अवश्य दिखाई देगा, परन्तु इस भाग की चर्चा, आगे दरबारी कैसे गाते हैं ? यह बताने के बाद करनी अधिक सुविधाजनक होगी।

प्र०—ठीक है, तो उसका विचार बाद में करेंगे। परन्तु जैसा आप कहते हैं, यदि वैसा हो तो हमारे आज के दरबारी स्वरूप के लिये ऐतिहासिक दृष्टि से हृदयकौतुक का स्वरूप विशेष उपयोगी होगा।

उ०—हृदयप्रकाश में ग्रन्थकार कर्णाट राग का वर्णन इस प्रकार करता है:—

कर्णाटस्तत्र संपूर्णः षड्जादिः परिकीर्तितः ।
सारिगमपधनिसां । सांनिधपमगरिसा ॥

प्र०—इस स्वरूप में कुछ तथ्य नहीं दीखता। केवल इस आरोहावरोह से राग-स्वरूप का क्या बोध होगा ? किन्तु इस स्वरूप से हमें कोई आश्चर्य भी नहीं होता ?

उ०—तुम्हारा कहना ठीक है। इसकी अपेक्षा कौतुक का स्वरूप विशेष उपयोगी होगा, इसमें संशय नहीं। अब हम यह देखें कि कर्णाट राग में गन्धार कोमल कब हुआ ? अर्थात् कौनसे ग्रन्थकार वह स्वर कोमल मानते हैं ? इस भाग में कहीं-कहीं पुनरुक्ति होना संभव है; परन्तु उससे कोई विशेष हानि नहीं। मेरा तो अभिप्राय यही है कि यह विषय अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जाना चाहिये। कुछ कानडा भेद काफी थाट के राग कहते हुए मैंने तुम्हें बताये ही थे। उस समय कानडा के सम्बन्ध में भी मुझे बोलना पड़ा था, ऐसा मुझे ध्यान है। अब हम स्वयं 'कानडा' राग पर ही विचार कर रहे हैं। संगीतपारिजातकार अहोबल पण्डित 'कानडी' तथा 'कर्णाट गौड' ऐसे दो राग कहते हैं। इनमें 'कर्णाट गौड' राग हमारा 'कानडा' नहीं, यह बात सब जानते हैं। 'कानडी' (कर्णाटी) रागिणी का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं:—

तीव्रगांधारसंपन्ना मध्यमोद्ग्राहवान्तिमा ।
सांशस्वरेणसंयुक्ता कानडी सा विराजते ॥

ऐसे लक्षण कहकर उसका नादस्वरूप उन्होंने इस प्रकार दिया है:—
म प ध नि सां रें गं मं गं रें सां नि ध नि ध नि ध प म प ध नि सां रें सां नि सां नि ध। इ०

प्र०—अहोबल के समय में कानडी में तीव्र गन्धार ही प्रयुक्त होता था, ऐसा इससे स्पष्ट दिखाई देता है। तो फिर श्रीनिवास पण्डित के तत्वबोध ग्रन्थ में भी इसी मत का अनुवाद होगा, ठीक है न ?

उ०—हां, श्रीनिवास का मत अहोबल के मत से मिलता ही है, इस लिये उसपर विचार करने की आवश्यकता नहीं। पुण्डरीक विट्ठल 'कर्णाट' राग कर्णाटगौड मेल से उत्पन्न बताते हैं तथा उस मेल के स्वर वे इस प्रकार देते हैं:—

शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः शुद्धो निषादो लघुमध्यमश्च ।
रिधौ यदा त्रिश्रुतिकौ भवेतां कर्णाटगौडस्य तदैषमेलः ॥
चन्द्रोदये ॥

इस स्वरूप में गन्धार तीव्र ही है, उसको लघुमध्यम संज्ञा दी गई है। किन्तु आगे पण्डित कहता है:—

कर्णाटगौडोऽपि तुरुष्कतोडी । विशुद्धबंगालकनामधेयः ।
छायादिको नट्टकनामधेयः । सामंतकाद्याः प्रभवंत्यमुष्मात् ।
न्यंशग्रहान्तो रिधवर्जितो वा । पूर्णस्तु कर्णाट इनास्तशोभी ॥

प्र०—तो फिर कर्णाट गौड राग को ही 'कर्णाट' अथवा 'कानडा' वह कहते थे, ऐसा दीखता है ?

उ०—हां, ऐसा ही प्रतीत होता है। उन्होंने कर्णाटगौड, तुरुष्कतोड़ी, शुद्धबंगाल, छायानट तथा सामंत ये पांच जन्य राग कह कर उनके लक्षण भी उसी क्रम से बताये हैं। उन लक्षणों में कर्णाटगौड के लक्षण पृथक से न बता कर केवल 'कर्णाट' इतना ही रागनाम दिया है।

राग माला में पुण्डरीक कहता है:—

शृङ्गारी पीतवस्त्रः कटकमुकुटसिंहासनच्छत्रयुक्तो
गौरांगः श्रीहुसेनी सुहृदभिमदकः पूर्ववागीश्वरीष्टः।
त्रिस्त्रिद्व्येकस्थिताः स्युः स्वररिगधनयः केकिकंठाभकोऽसौ
न्याद्यंतांशोऽरिधो वा विलसति दिवसांतेऽपि कर्णाटरागः॥

प्र०—यह वर्णन बहुत कुछ चन्द्रोदय के मत से मिलता जुलता है। रिग त्रिश्रुतिक, ध द्विश्रुतिक, नि एक गतिक कहे हैं, अर्थात् इस स्वरूप में गन्धार तीव्र ही है। हमारी समझ से इस कर्णाट के स्वर इस प्रकार होंगे:—'सा ग॒ ग म प ध नि॒ सां'।

उ०—हां, ये ऐसे ही होने चाहिये। राग मंजरी में पुण्डरीक कर्णाटमेल का वर्णन इस प्रकार करता है:—

तृतीयगतिगनिधा द्वितीयगतिकोऽपिरिः।
तदा कर्णाटमेलःस्यात् तत्र संभूतरागकाः॥
कर्णाटरागः सामंतः सौराष्ट्री छायनाटकः।
शुद्धबंगालतौरुष्कतोडिकाद्याह्यनेकशः॥

और आगे 'कर्णाट' राग लक्षण वह इस प्रकार देता है:—

नित्री रिधाभ्यां हीनो वा कर्णाटः सायमिष्टदः॥

प्र०—हमारी समझ से उसने इन तीनों ग्रन्थों में मेल स्वर वे ही बताने का विचार किया होगा; परन्तु छन्द में उसको निराले शब्दों में वर्णन करना पड़ा। ऐसी दशा में कुछ स्थानों में लेखकों ने भी गड़बड़ की होगी। मंजरी के लक्षणों में 'ग, नि, ध' त्रिगतिक बताये हैं। तब इस क्रम से तीव्र गन्धार, तीव्र निषाद तथा कोमल निषाद होने चाहिये थे। द्वितीय गतिक रि कहा है, वह पंचश्रुतिक रि होगी, कारण शुद्ध ऋषभ तीन श्रुति का था वह दो गति चढ़ना चाहिये। हमारी समझ से उसका वह ऋषभ हमारा हिन्दुस्तानी तीव्र ऋषभ होना चाहिये। ऐसा भी प्रतीत होता है कि इस थाट के जन्य राग सामंत, छायानट, शुद्ध बंगाल आदि हैं।

उ०—तुम कहते हो इस प्रकार की उलझन पुण्डरीक के कुछ वर्णनों में दिखाई देगी; परन्तु इस तथ्य पर पुण्डरीक स्वयं क्या कहता है वह भी देखो। प्रत्येक ग्रन्थ की परिभाषा उसने जैसी लिखी है,वैसी ही समझकर ले लेनी चाहिये। एक ग्रन्थ की परिभाषा दूसरे ग्रन्थ पर न लादी जाय, यह सतर्कता रखने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ हम "रागमंजरी" ग्रन्थ को लें। इस ग्रन्थ में शुद्ध तथा विकृत स्वर ग्रन्थकार किस प्रकार कहता है, देखो:—

वेदाचलांकश्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ तथा।
सप्तदश्यां च विंश्यां च द्वाविंश्यां च श्रुतौ क्रमात्।
षड्जादीनां स्थितिः प्रोक्ता प्रथमा भरतादिभिः॥

अर्थात् ४, ७, ९, १३, १७, २०, २२ इन श्रुतियों पर स्वर होंगे तो वह उनकी शुद्ध अवस्था-अथवा भरतादिक द्वारा कही गई प्रथम अवस्था या स्थिति माननी चाहिये। वहां से फिर "असपाः पूर्वपूर्वस्मात्संचरंत्युत्तरोत्तरम्" षड्ज तथा पंचम के अतिरिक्त शेष पांच स्वर क्रम से ऊपर चढ़ते जायेंगे। कैसे चढ़ेंगे यह भी वह बताता है:—

त्रिस्त्रिर्गतीस्ते प्रत्येकं याति गश्च चतुर्गतीः।

अर्थात् पांचों स्वरों को ऊपर तीन-तीन श्रुति-यानी गति-चढ़ाना होगा। परन्तु केवल गन्धार और भी एक गति ऊपर चढ़ सकेगा।

प्र०—यह हम समझ गये हैं। गन्धार तथा मध्यम में चार श्रुति का अन्तर होने से गन्धार चार श्रुति ऊपर चढ़ सकेगा, यह सहज ही समझा जा सकता है; किन्तु ठहरिये! षड्ज तथा पंचम भी तो चार-चार श्रुति के स्वर हैं। अन्य स्वरों को तीन ही गति देने से उनसे पहिले के स्वर अर्थात् निषाद तथा मध्यम सा तथा प के पहिले ही एक श्रुति तक चढ़ेंगे, ठीक है न? अहोबल पण्डित ने भी ऐसी ही कैद निषाद व पंचम स्वरों को लगाई थी। उनका भी गन्धार चार श्रुति ऊपर चढ़ता था। परन्तु प्रत्येक ग्रन्थकार की परिभाषा उसके ग्रन्थ से ही माननी उचित है।

उ०—भले ही ऐसा कहे, किन्तु "सा" तथा "प" इन दो स्वरों तक उनसे पहिले के स्वरों को नहीं चढ़ने देना चाहिये, बस यह तथ्य ध्यान में रखो। अब आगे रिगमधनि इन स्वरों की कोनसी गति है, तथा उनको मंजरी में ग्रन्थकार ने क्या नाम दिये हैं, यह बताता है:—

यद्यद्रागोपयोगः स्यात्तत्तदिच्छागतिर्भवेत्।
साधारणः कैशिकी चान्तरकाकलिनौ तथा।
साधारणः कैशिकी द्वौ क्रमाद्गतिर्गनिक्रमः॥

अर्थात् "साधारण, कैशिक, अन्तर व काकली" ये स्वर यानी वस्तुतः गन्धार तथा निषाद के क्रम से पहिली तथा दूसरी गति समझनी चाहिये। तात्पर्य यह कि "साधारण" को गन्धार की प्रथम गति तथा "कैशिक" को निषाद की प्रथम गति समझनी चाहिये। उसी प्रकार अन्तर तथा काकली को क्रमशः गन्धार एवं निषाद की दूसरी गति समझनी चाहिये। ऐसा भावार्थ है। अच्छा फिरः—

उर्ध्वखलस्तु गांधारो मध्यमोपरिसंस्थितः।
मस्यत्रिगतिभेदाश्च मनुः पद्मान्तिको नृपः॥

यदि गन्धार स्वर चार चढ़ा तो वह शुद्ध मध्यम के समान्तर होगा, अर्थात् मध्यम को दो नाम प्राप्त होंगे। यदि मध्यम स्वर त्रिगतिक हुआ तो उसको क्रम से मनुमध्यम, पद्मांतिक मध्यम, नृप मध्यम, ऐसे नाम दिये जायेंगे। आगे कहा है:—

अथ कैशिकनावाद्यौ ऊर्ध्वखलौ द्वितीयका॥
अत्युच्छृंखलनामानौ तृतीयगतिकौ रिधौ॥

भावार्थ यह है कि जब रि तथा ध स्वर एक श्रुति चढ़ेंगे, तब उनको कैशिक रि एवं कैशिक ध कहेंगे। जब वे ही स्वर दो गति चढ़ेंगे तब उनको "उर्ध्वखल रि, ध" कहेंगे और जब वे तीन गति चढ़ेंगे तब उनको "अति उच्छृंखल" नाम देंगे। इस वर्णन के अनुसार श्रुति का नकशा सामने रख कर विचार किया जाय तो कौनसी गति का स्वर हमारा है, यह निर्णय किया जा सकेगा। पुण्डरीक का शुद्ध ऋषभ, अपना हिन्दुस्तानी कोमल ऋषभ है, उसका शुद्ध गन्धार हमारा तीव्र अथवा शुद्ध ऋषभ है, यह तुम जानते ही हो। अतः त्रिगतिक रि तथा एकगतिक ग ये एक ही जगह आयेंगे। द्विगतिक ग— अर्थात्–अन्तर ग यह हमारा हिन्दुस्तानी तीव्र ग होगा। त्रिगतिक ग को मध्यम के नीचे एक श्रुति ऊपर का ग समझेंगे। यही नियम धैवत पर लागू होगा।

रागमाला ग्रन्थ में यही विचारशैली पुण्डरीक ने स्वीकार करके श्लोकों द्वारा स्वरस्थान बताने का प्रयत्न किया है। उस ग्रन्थ में भी "असपाः पूर्वपूर्वास्ते १०" श्लोक उसने लिये हैं। रागमाला में अनेक स्थानों पर अशुद्ध स्थल दृष्टिगत होते हैं, वहां पुण्डरीक के मन्जरी तथा सद्रागचन्द्रोदय ग्रन्थों की सहायता से स्वर स्थान कायम किये जा सकते हैं। इस पर भी शंका हो तो सोमनाथ पण्डित का रागविबोध ग्रन्थ देखना चाहिये।

प्र०—तो फिर इस कर्णाट अथवा कानडा राग के सम्बन्ध में रागविबोध में क्या कहा है, वह अभी बतायेंगे क्या?

उ०—उसमें "कर्णाट" मेल, अथवा कर्णाटगौड मेल का वर्णन इस प्रकार किया है:—

कर्णाटगौडमेले शुचिसमपास्तीव्रतमरिमृदुमौ च ॥
तीव्रधकैशिकिनौ स्युर्मेलादस्मादिमे रागाः ॥
कर्णाटगौडकोऽड्डाणो नागध्वनिविशुद्धबंगालौ ।
वर्णादिनाट इतरे तुरुष्कतोड्यादिकाश्च स्युः ॥

इस श्लोक के स्वर तुम आसानी से समझ जाओगे ।

प्र०—हां, वे स्वर "सा ग॒ ग म प ध नि॒" ऐसे होंगे । पुनः इस श्लोक में अडाणा, शुद्ध बंगाल, तुरुष्कतोडी ये राग इस मेल के जन्य रागों में बताये हैं, वे भी हमको ध्यान में रखने योग्य दिखते हैं । यह सारा वर्णन चन्द्रोदय के कर्णाटगौड मेल के वर्णन से बहुत मिलता जुलता है । इसमें कर्णाटगौड के स्वर, सा म प शुद्ध, निषाद शुद्ध, लघु-मध्यम तथा नि एवं ग त्रिश्रुतिक कहे हैं । सोमनाथ के "तीव्रतम रि तथा तीव्र ध" ये स्वर चन्द्रोदय के त्रिश्रुतिक ग तथा शुद्ध निषाद से मिलते हैं; उसी प्रकार सोमनाथ के मृदु-मध्यम एवं कैशिकी स्वर चन्द्रोदय के लघुमध्यम तथा त्रिश्रुतिक नि होंगे । ठीक है न ?

उ०—बिलकुल ठीक है । रागमन्जरी में पुण्डरीक कर्णाट मेल में स्वर इस प्रकार देता है:—

ग, नि तथा ध ये त्रिगतिक हैं तथा ऋषभ द्विगतिक है ।

इसका अर्थ यह होगा कि "ग एवं नि" स्वर हिन्दुस्तानी तीव्र ग तथा तीव्र नि होंगे, धैवत त्रिगतिक अर्थात् कैशिकी नि अथवा कोमल नि होगा । केवल ऋषभ द्विगतिक अर्थात् हिन्दुस्तानी तीव्र री होगा ।

प्र०—तो फिर कर्णाटगौड का मेल, "सा रे ग म प ध नि॒" ऐसा नहीं होगा क्या ? हमारा ऐसा तर्क है कि चन्द्रोदय तथा रागविबोध में, कर्णाटमेल के अन्दर जो दोनों गन्धार हैं उनमें से कोमल गन्धार के स्थान पर तीव्र ऋषभ लिया जाना चाहिये । चन्द्रोदय लिखा गया था तब पुण्डरीक बुरहानपुर की ओर था । जब वह उत्तर की ओर आया उस समय उसको कर्णाट थाट में दो गन्धार नहीं दिखाई दिये; परन्तु कोमल गन्धार की जगह उसको शुद्ध ऋषभ दिखाई दिया, इसलिये संभवतः उसने मंजरी में त्रिश्रुतिक रि न कहकर द्विश्रुतिक रि कही होगी । परन्तु यह सब हम तार्किक दृष्टिकोण से ही कह रहे हैं ।

उ०—तुमने जो तर्क किया है, उससे कोई हानि नहीं । "रसकौमुदीकार" श्रीकण्ठ भी कर्णाटगौड का थाट खमाज जैसा मानता है । उसके स्वरनाम इस प्रकार हैं:— "षड्ज, शुद्ध ग, पत म, शुद्ध म, शुद्ध प; शुद्ध नि, कैशिक नि" अर्थात् उसके स्वर हमारे हिन्दुस्तानी "सा रे ग म प ध नि॒" होंगे । परन्तु इन तमाम ग्रन्थकारों के समय में तीव्र गन्धार कर्णाट में था । पहले दो गन्धार थे तथा ऋषभ नहीं था, यह स्थिति बदलकर

ऋषभ कर्णाट में आया, परन्तु तीव्र गन्धार वैसा ही रहा। पुण्डरीक को उत्तर की ओर आने पर कर्णाट गौड में दोनों गन्धार नहीं दिखायी दिये, उनके स्थान पर तीव्र रे एवं गीत्र ग दिखाई दिये तो उसने यह संशोधन अपने रागमाला तथा रागमंजरी में किया और उसका ऐसा करना उचित ही था।

प्र०—आपका कहना यथार्थ है। अब हमको उसके ग्रन्थों में कोई शंका नहीं रही। आगे चलिये ?

उ० - हां, अब हमको दक्षिण की ओर के कुछ ग्रन्थ देखने रह गये। रागविबोध-कार ने कर्णाटथाट कैसा कहा है, सो मैंने कहा ही है। उसने कर्णाट राग का वर्णन इस प्रकार किया है:—

कर्णाटो निशिपूर्णो निन्यासांशग्रहः क्वचिद्रिधमुक्।

प्र०—यह वर्णन चन्द्रोदय के वर्णन से बहुत ही मिलता-जुलता है। उसमें पुण्डरीक ने ऐसा लिखा था:—

न्यंशग्रहान्तो रिधवर्जितो वा। पूर्णस्तु कर्णाट इनास्तशोभी।

पुनः मंजरी में भी ऐसा ही लिखा था:—

नित्री रिधाभ्यां हीनो वा कर्णाटः सायमिष्टदः ॥

उ०—यह तुमने बिलकुल ठीक कहा। अब पुण्डरीक ने सोमनाथ का वर्णन लिया अथवा सोमनाथ ने पुण्डरीक का लिया, इसका स्पष्टीकरण, इस प्रश्न के उत्तर पर अवलम्बित रहेगा कि पहिले किसका ग्रन्थ लिखा गया। यहां पर यह ध्यान रखना चाहिए कि पुण्डरीक भी तो मूलतः कर्णाटक का ही था। अब रामामात्य पण्डित स्वरमेलकलानिधि में "कंनडगौड" अथवा कर्णाटगौड के लक्षण कैसे कहते हैं, सुनो:—

देशाक्षीरागमेलस्य लक्षणं यदुदाहृतम्।
मेलः कंनडगौलस्य तस्माद्भेदोऽस्ति कश्चन ॥

तब देशाक्षीमेल वर्णन परम्परागत रहा, वह इस प्रकार है:—

षट्श्रुत्यृषभकः शुद्धषड्जमध्यमपंचमाः।
पंचश्रुतिर्धैवतश्च च्युतषड्जनिषादकः ॥
च्युतमध्यमगांधारश्चेत्येतत्स्वरसंयुतः।
देशाक्षीमेलकः प्रोक्तो रामामात्येन धीमता ॥

इसे ही कर्णाटगौड का मेल मानकर इससे निकलने वाले जन्यराग रामामात्य इस प्रकार कहता है:—

एकः कंनडगौलाख्यस्तथा घंटारवोऽपि च ।
शुद्धबंगालनामाच छायानाटस्ततः परम् ।
तथा तुरुष्कतोडी च नागध्वनिरतः परम् ।
देवक्रिया ह्येवमाद्या रागाः केचिद्भवंत्यतः ॥

प्र०—तो फिर पुण्डरीक अपने शास्त्र दक्षिण की ओर से ही लाया, ऐसा जान पड़ता है। उसने कर्णाट गौड मेल से निकलने वाले जन्य राग भी ऐसे ही कहे थे, आगे उत्तर की ओर आने पर उसने कर्णाटगौड मेल में से कोमल गन्धार छोड़ दिया और उसमें तीव्र ऋषभ स्वीकार किया।

उ०—ऐसा समझ लिया तो कोई हर्ज नहीं। कर्णाटगौड राग शार्ङ्गदेव पण्डित ने "उपांगानि" नाम से लिया है। उसने गौड राग के चार उपांग इस प्रकार कहे हैं; १–कर्णाटगौड, २–देशवालगौड (केदारगौड); ३–तुरुष्कगौड (मालवगौड), ४–द्राविड–गौड। इनमें से पहिले तोन आज भी दक्षिण में प्रसिद्ध ही हैं। कर्णाटगौड के लक्षण वह इस प्रकार कहता है:—

गेयः कर्णाटगौडस्तु षड्जन्यासग्रहांशकः ।

केवल इतने से स्वर का बोध नहीं होगा, यह हम मानते हैं, परन्तु उसने लक्षण कैसे दिये हैं, यह मैंने तुम्हें बताया है।

संगीतदर्पण में "कानडा" दीपक की एक रागिनी मानी गई है और उसका वर्णन इस प्रकार किया है:—

त्रिनिषादाऽथ संपूर्णा निषादो विकृतो भवेत् ।
मार्गीच मूर्छना ज्ञेया कानडेयं सुखप्रदा ॥

ध्यानम् ।

कृपाणपाणिर्गजदन्तखंडमेकं वहन्ती निजहस्तकेन ॥
संस्तूयमाना सुरचारणौघैः सा कानडेयं किल दिव्यमूर्तिः ॥

मूर्छना

नि सा रि ग म प ध नि

चतुर्दंडिप्रकाशिका में व्यंकटमखी ने कंनडगौड को श्रीराग के थाट से उत्पन्न होने वाला एक राग कहा है। उसका श्रीराग मेल तुमको विदित ही है, वह इस प्रकार है:—

षड्जश्च पंचश्रुतिकऋषभाख्यस्वरः परः ।
साधारणाख्यगांधारः शुद्धौ पंचममध्यमौ ॥

पंचश्रुतिर्धैवतश्च कैशिक्याख्यनिषादकः ।
एतैः सप्तस्वरैर्जातः श्रीरागस्य तु मेलकः ॥

प्र०—तो फिर उनकी इस उक्ति से "कर्णाटगौड" राग का तीव्र गन्धार नहीं के बराबर होकर वह राग काफी थाट का हुआ, ऐसा मानने में क्या हानि है ?

उ०—कोई हर्ज नहीं। श्रीराग का मेल हमारा काफी मेल होगा, यह मैं पहले अनेक बार कह ही चुका हूँ। अब सङ्गीतसारामृतकार कंनडगौड के सम्बन्ध में क्या कहता है, वह सुनोः—

श्रीरागमेलसंभूतो रागः कंनडगौलकः ।
निन्यासांशग्रहोपेतः सप्तस्वरसमन्वितः ॥
वक्रस्वरगतिश्लिष्टोऽसावारोहावरोहयोः ।
गेयोऽह्नः पश्चिमे याम उत्कलानामतिप्रियः ॥
उपांगमेनं शंसंति संगीतागमपारगाः ।

व्यंकटमखी ने भी कन्नडगौड का वर्णन किया है, वह इस प्रकार हैः—

गौलकेदारगौलो द्वौ छायागौलाभिधस्तथा ।
रीतिगौलः पूर्वगौलो गौलो नारायणाभिधः ॥
रागः कर्णाटगौडश्च सप्तगौला इमे पुनः ।
निषादग्रहनिन्यासनिषादांशाः प्रकीर्तिताः ॥

× × ×

रागः कन्नडगौलोऽयंजातः श्रीरागमेलतः ।
संपूर्णोऽपि कदाचित् स्यादारोहे त्यक्तमध्यमः ॥

हम वस्तुतः दरबारी कानडा राग पर विचार कर रहे थे। "कर्णाटगौड" राग-स्वरूप के सम्बन्ध में ये सारे संस्कृत ग्रन्थाधार मैं क्यों खोज रहा हूँ, ऐसा क्षणभर तुम सोचोगे, लेकिन इसका भी कारण है।

प्र०—ऐसा करने का कारण अवश्य होगा, यह हम जानते हैं; लेकिन अब आपने स्वयं ही यह शंका प्रकट की है, तब इस सम्बन्ध में दो शब्द कह देंगे तो उत्तम होगा।

उ०—मेरी समझ से वह उत्तम ही नहीं, बल्कि आवश्यक भी होगा। देखो, "दरबारी कानडा" इस संयुक्त नाम के "दरबारी" विशेषण के सम्बन्ध में, मैं अभी अभी तुमको बता चुका था कि "दरबारी" शब्द यावनिक है तथा वह "कानडा" शब्द के साथ अकबर बादशाह के समय से लगा है। दरबारी गायक तानसेन ने कानडा एक नये प्रकार से गाया और वह अकबर बादशाह एवं उनके दरबार को अत्यधिक पसन्द आया। अतः

बादशाह की आज्ञा से अथवा अनुमति से इस कानड़ा प्रकार को 'दरबारीकानड़ा' कहा जाने लगा। भावभट्ट के समय में अर्थात् शाहजहां बादशाह के समय में तो 'शुद्धकानड़ा' को 'दरबारीकानड़ा' समझा जाने लगा था, यह तुम्हें पता ही है। तब 'दरबारीकानड़ा' राग के लक्षण कोई तत्कालीन संस्कृत ग्रन्थकार कहता है अथवा नहीं, यह देखना नितान्त आवश्यक हो गया। इस समय के ग्रन्थकार कौन थे? यह भी प्रश्न सामने आया। उत्तर के नामांकित एवं सुबोध ग्रन्थकारों में लोचन, हृदय, अहोबल, श्रीनिवास, पुण्डरीक, भावभट्ट तथा श्रीकंठ का नाम आता है। तब उनके ग्रन्थों में दरबारीकानड़ा का उल्लेख है अथवा नहीं और यदि है तो उन्होंने उस राग के विषय में क्या कहा है, यह देखना भी आवश्यक हो गया। इसे देखने पर मालुम हुआ कि एक भावभट्ट के अतिरिक्त 'दरबारी-कानड़ा' राग का उल्लेख किसी अन्य ने नहीं किया। तब 'दरबारी' इस शब्द को छोड़कर मूल जो 'कानड़ा' राग है, उसीके सम्बन्ध में ग्रन्थकारों के मत देखने पड़े। उनमें ऐसा देखने में आया कि कुछ ग्रन्थकारों ने 'कानड़ा' कुछ ने 'कानड़ी' तथा कुछ ने 'कर्णाट' नाम पसन्द किये हैं। पुनः कुछ ने 'कर्णाटगौड' यह नाम पसन्द किया। 'कर्णाट' एक प्रान्त का नाम है, यह तुम जानते ही हो। उसी का अपभ्रन्श 'कानडा' अथवा 'कंनड' है। हमारी संगीत पद्धति में कुछ रागनाम प्रान्तों के आधार पर रखे गये हैं, यह तुम्हें विदित ही है। कर्णाट अथवा 'कानडा' राग का स्वरूप ग्रन्थकार किस प्रकार लिखते हैं, यह भी देखना पड़ा तो इस शोध में हमने देखा कि लोचन पण्डित ने 'कर्णाट' थाट मानकर उसमें पहिला ही राग 'षाडवः कानरो रागो' ऐसा कहा है। इससे यह निश्चित हो गया कि कर्णाट एवं कानड़ा में सम्बन्ध है। आगे लोचन पण्डित की ओर देखें तो उसने 'कानरः' राग के लक्षण नहीं कहे। वे लक्षण उसके अनुयायी हृदय-नारायण ने अपने हृदयकौतुक में कहे हैं, परन्तु उसने रागनाम 'कानड़ा' न कह कर केवल 'कर्णाटः' कहा है। हृदयप्रकाश में भी 'कर्णाटः' ऐसा नाम उसने दिया है; तब कानड़ा तथा कर्णाट अथवा कर्नाट एक ही राग के नाम हैं, यह भी सिद्ध होता है।

अच्छा, अब पुण्डरीक के ग्रन्थों की ओर बढ़ें। पुण्डरीक ने चन्द्रोदय में 'कर्णाट' थाट नाम छोड़कर 'कर्णाटगौड' स्वीकार किया तथा उस थाट के जन्य रागों में पहिला ही राग 'कर्णाट' कहा। इससे भी कर्णाट का सम्बन्ध कर्णाटगौड से स्वतः सिद्ध है। इसी पुण्डरीक ने राग मंजरी में पुनः थाट नाम कर्णाट तथा रागनाम भी कर्णाट कहा है। परन्तु राग लक्षण में किंचित् अन्तर करदिया है, यह तुमने देखा ही है। इसके पश्चात् हमें यह देखना है कि राग विबोध ग्रन्थ में क्या लिखा है। उसमें सोमनाथ ने थाट का नाम 'कर्णाट' इतना ही दिया है, परन्तु इस थाट के स्वर कहते समय 'कर्णाटगौडमेले शुचिसमपा इ०' इस प्रकार कहा है तथा उसने कर्णाट के राग लक्षण ऐसे लिखे हैं जो पुण्डरीक के कर्णाट लक्षण से मिलते हैं। इन तमाम तथ्यों से यह दीखता ही है कि 'कानडा' 'कर्णाट' तथा 'कर्णाटगौड' इन सबके स्वर समान ही थे। इतने पर भी यदि कोई कहे कि 'कर्णाटगौड' को मेलनाम स्वीकार करके, उसमें से कर्णाट की उत्पत्ति माननी चाहिये तो हम उससे विवाद नहीं करेंगे। हमारा प्रश्न ऐसा था कि दरबारीकानडा राग की शोध में हम कर्णाट एवं कर्णाटगौड राग की ओर क्यों चले गये?

प्र०—हमारी समझ से अब इस प्रश्न का कोई महत्व नहीं। आप तो अब अपने मूल विवेचन की ओर ही बढ़िये। चतुर्दंडिप्रकाशिकाकार ने 'कंनडगौड' यह नाम स्वीकार

करके उसमें कोमल गन्धार सम्मिलित किया, यह आपने कहा था। वही मत संगीत-सारामृतकार का आपने बताया था ?

उ०--हां, यह सब तुमने अच्छा ध्यान में रखा। अब हम दक्षिण के और भी एक ग्रन्थ की ओर ध्यान देंगे, वह 'रागलक्षण' नामक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में 'कर्णाटगौड' राग काफी थाट में कहा है, इतना ही नहीं वरन् 'दरबार' नाम का भी एक स्वतन्त्र राग इस ग्रन्थ में पाया जाता है।

प्र०—और उसके स्वर ?

उ०—दरबार के स्वर उसने काफी थाट के ही कहे हैं।

प्र०—यह बहुत अच्छा हुआ। 'दरबार' तथा कंनडगौड इन दोनों रागों में कोमल ग एवं कोमल नि स्वर हैं, यह हमको बहुत ही महत्व के जान पड़ते हैं ?

उ०—यही नहीं, अपितु दरबार राग के ग्रन्थकार द्वारा कहे हुए आरोहावरोह भी तुम्हारे लिये अत्यधिक उपयोगी होंगे।

प्र०—वे उसने कैसे कहे हैं ?

उ०--उसने 'दरबार' राग दो स्थानों पर बताया है। एक प्रकार 'खमाज' थाट का है, जिसका वर्णन उसने इस प्रकार किया है:—

हरिकांभोजिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः।
दरबार इतिप्रोक्तः सन्यासं सांशकग्रहम् ॥
आरोहे तु सुसंपूर्णं वक्रपूर्णावरोहकम्।
सा रे ग म प ध नि सां। सां ध नि प ध म प ग रे सा ॥

दूसरा प्रकार उसने काफी थाट के राग में लिया है तथा उसके आरोहावरोह इस प्रकार कहे हैं:-सा रे म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।

प्र०---इन दोनों में से हमारे लिये यह दूसरा उपयोगी प्रकार होगा, कारण इसमें गन्धार तथा निषाद कोमल हैं ?

उ०---इतना ही नहीं, वरन् इस दूसरे प्रकार में धैवत कोमल यदि किया तो दरबारी-कानडा का उत्तम आरोह होगा। अवरोह में हमको थोड़ी सी वक्रता रखनी पड़ेगी।

सा
हमारे आज के प्रचार में अवरोह 'सां, ध॒ नि॒ प, म प, ग॒, रे, सा' ऐसा है।

प्र०—यह सब विवरण हमारे लिये अत्यन्त उपयोगी तथा मनोरंजक होगा। आश्चर्य इतना ही होता है कि 'दरबारीकानडा' वस्तुतः उत्तर का राग होने पर भी उत्तर के संस्कृत ग्रन्थकारों ने तो इसका उल्लेख नहीं किया, और दक्षिण के ग्रन्थकारों ने कर दिया ?

उ०--यह आश्चर्य की बात अवश्य है, परन्तु इसका क्या इलाज? राजा टागोर ने संगीतसार संग्रह ग्रन्थ में कर्णाटी को पंचम राग की रागिनी माना है तथा उसके लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार कहे हैं:--

निषादत्रयसंयुक्ता विकृतोऽस्या निषादकः ।
मार्गाख्या मूर्छना प्रोक्ता कर्णाटीच सुखप्रदा ॥

उदाहरणम् ।

मयूरकंठद्युतिरिंदुमौलिर्गजेंद्रदंतार्पितकर्णपूरा ।
स्वरैः सुराणां परितोषकर्त्री कर्णाटिकेयं स्फुटशुभ्रवेशा ॥
नि सा रे ग म प ध नि नि ।

प्र०—अन्त में ये दो निषाद क्यों हैं पण्डित जी! जबकि 'निषादत्रय संयुक्ता' कहा है?

उ०—उसके इन लक्षणों का कोई विशेष उपयोग ही नहीं है, तो इन लक्षणों पर टीका टिप्पणी करने से क्या लाभ?

प्र०—हां, यह भी ठीक है। कर्णाटी के स्वर कौनसे हैं, यदि यही मालूम न हुए तो इन दो निषादों के प्रश्न पर विचार करना निरर्थक ही है?

उ०—उसी ग्रन्थ में उसने नारदसंहिता के मतानुसार 'कर्णाट' राग का इस प्रकार वर्णन किया है:--

कृपाणपाणिस्तुरगाधिरूढो ।
मयूरकंठोपमदेहकान्तिः ॥
स्फुरत्सितोष्णीषधरः प्रयाति ।
कर्णाटरागो हरिणान् विहन्तुम् ॥

और भी एक दो ग्रन्थों के उद्धरण उसने दिये हैं; परन्तु उस रागरूप के स्वर कौनसे हैं? इसकी स्पष्ट जानकारी न होने से उन्हें अब मैं यहां नहीं कहता हूँ। उसी प्रकार संगीतनारायण, संगीत चूडामणि आदि ग्रन्थों के मत भी कहने में कोई लाभ नहीं क्योंकि उनमें अन्य ग्रन्थों के केवल उद्धरण दिये हैं। स्वर सम्बन्धी कोई जानकारी नहीं है।

प्र०—ऐसा है तो वे मत उपयोगी नहीं होंगे।

उ०—अब 'पूरण' कवि के 'नादोदधि' ग्रन्थ में 'कानडा' राग के सम्बन्ध में क्या उल्लेख है, वह बताता हूँ:—

सब स्वर सब अस्थाई जानि। संचाई स्वर ताहि बखानि।
स्वर प्रच्छन कानरा विचारी। गावे गुनें सुनें पिया प्यारी ॥

सा यथा।

स रे ग म प ध नी स रे ग म प ध नि स रे

अथ कानडा स्वर प्रकास। यथा। चौताल

स रि स ध नि ध प प ध नि स रि स स स रि ग ग रि सा प म ग रि स ध प म ग रि स स नि ध प म ग री सा सा रि ग म प ध नि प म प ध नि स रि स ध प म ग ग रि सा सा रि ग म प ध नि सा सा नि ध प म ग रि सा सा ध प ध नि सा ध प ग ग रि ग ग रि सा।

अथ कानरा स्वरकल्प। चौताल

सरस नि धपे मगरसै सुरंगमपोधन सोधन सोरस रसनाधै पीमें गरसों साध पोधन सोधै पैमीगरसो पूरन स्वामी गुरुसो॥

इस कविता में स्वर तथा कविता के शब्दों का योग करके दिखाने का प्रयत्न किया है। हमारे गायक इस प्रकार को "बामायना" सरगम कहते हैं।

अथ कानरा स्तुतिः

सुजस विदित जग में मही प्रवीन सदां रछपाल दिन अद्भुत रूप सुहायौ।
तेरौई पतिव्रत गुनगावत सब रागिनी है धनि धनि कान्हरा कहायौ॥
सप्त स्वर सुहाइ सोहैं सप्त अस्थाई परज रिखब संचाई भयौ।
दीपक दूलहि मनवस कीन्हौं पूरन तव गुन गायौ॥

अथ कानरा स्वरूप। यथा।

निदिरवाल सोहत कृपान पान अभिमान हीयभर अतिहीसो गरव गहेली।
मतै दमत गजदंत करमें बिराजत भरी बीररस अलबेली।
तन सिंहासन पर आपराजित ऊपर फेरत छत्र समुत सहेली॥
एगन में धनीलत पागवनी गनी दीपक जाको त्रिय कानरा नवेली॥

इस प्रकार कानडा पंचांग पूरन कवि ने कहा है। इसमें पांच भाग हैं। पहिले भाग में राग के लक्षण, दूसरे भाग में कानरा की सरगम, तीसरे भाग में कानडा की "बामायना" सरगम, चौथे में कानडा की स्तुति तथा पांचवें में कानडा स्वरूप कहा है। 'कानडा' को दीपक राग की रागिनी बताया है।

प्र०—परन्तु कानडा में तीव्र तथा कोमल स्वर कौनसे हैं, यह कैसे निश्चित किया जाय ?

उ०—वहां पण्डित ने मूर्छना बताई है। परन्तु आगे तुम यह पूछोगे कि शुद्ध स्वर कौन से हैं ? तो इतनी सूक्ष्म जानकारी की तुमको आवश्यकता होगी, यह बात कवि के ध्यान में नहीं आई होगी। प्रचार में कानडा में कौन से स्वर आते हैं, यह पाठकों को विदित होगा ही, ऐसा मानकर वह चलता है। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि "नादोदधि" ग्रन्थ जयपुर की ओर धर्मग्रन्थ की भांति सर्वमान्य होगया था। यहां तुम पूछोगे कि उसमें लिखा हुआ न समझें तो ? परन्तु इस प्रश्न पर गायकों के यह उत्तर निश्चित थे कि "जिन यह भेद पाया उन वह लुकाया।"

जयपुर के एक वृद्ध गायक ने इस "नादोधत्" ग्रन्थ का पर्याप्त भाग मुझे मुँहज़बानी सुनाया था। उसने एक दो प्रसिद्ध रागों के पंचांग भी मुझे गाकर दिखाये थे, परन्तु वह कौन से ग्रन्थ में हैं, यह नहीं बताया।

प्र०—उसने कौनसे राग गाकर दिखाये थे ?

उ०—भैरव, तोड़ी, भैरवी आदि उसने गाकर दिखाये थे, ऐसा मुझे याद है।

प्र०—इस नादोदधि ग्रन्थ की रचना कौनसे सिद्धान्त पर की गई है ? अर्थात् जनक थाट और जन्य राग पद्धति पर अथवा राग रागिनी पुत्र आदि आधार पर ?

उ०—इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मैं पहले कुछ कह चुका हूँ, परन्तु यह प्रश्न अब तुम पूछ ही रहे हो तो इसके सम्बन्ध में कुछ और भी कह देता हूँ। नादोदधि की रचना ऐसी है:—

अथ सरस्वतीमत

दोहा.

जै सुभ मंगल दाहिनी वागेश्वरी प्रवीन।
वीणा पुस्तक धारिणी रागरंगलवलीन॥
भैरव पुनि हिंडोलहै मेघ बहुरि श्रीराग।
दीपक कौसक राग यह गावें सुमत सुभाग॥
सर्व रागिनी रागकौं माला सरस सुहाइ।
कंठकरें जो प्रेमसों दिन दिन द्युति अधिकाइ॥

छप्पय।

भैरवकी त्रिय पांच प्रथम भैरवी बखानौं।
पुनि विभाकरी होइ त्रतीय गूंजरी सुजानौं॥
चौथें हैं गुणकरी बिलावल पंचम राजें।
इनहूँके अब पुत्र कहौं विहिसुनि दुख भाजें॥
पुनि पुत्रनकी तियकही एकतें एक सरस।
इहि बिध बरनौं राग सब सरस्वती मत निज दरस।
कहौं भैरवी पुत्र देवगंधार उजागर।
पुनि विभाकरीसुविभास अतिहि गुनआगर।
पुत्र गुजरी के सुनौं देसाख समत अत।
प्रगट पुत्र गुनकरीकेइ गंधार धरन सत।
पुनि बिलावली सुपतिसु बेलावल जानें जगत।
जाके गान सुजात सुनि गुन मुनि अतिरतिमें पगत॥

अथ पुत्रवधू यथा ।

प्रथम देवगंधार वधू सुनाए सुघराई ।
पुनि बिभासकी वधू सरस सुहावन आई ।
भलो भांति देसाख प्रिया सोहैं मनलागी ।
जानि पुरुख गंधार त्रिया तूही रस पागी ।
विमल बिलावल पुरुख वहुली तन मन वारहि ।
भैरवकी वंस्यावली इहविधि जगविस्तारहि ॥

प्र०—अब ध्यान में आया। भैरव की जैसी यह वंशावलि है वैसी ही शेष पांच रागों की होगी। ये सब दोहे कहने की आवश्यकता नहीं। केवल रागिनियों के तथा पुत्रों के नाम यदि आप चाहें तो हमको बता दीजिये। अन्यथा इस सम्बन्ध में भी हमारा आग्रह नहीं है।

उ०—जिस प्रकार एक राग की वंशावलि अभी कह चुका हूं, वैसे ही शेष रागों की भी कहने में हर्ज नहीं दिखाई देता, परन्तु दोहों में न कहकर केवल राग नाम बताये देता हूँ:—

२—राग हिंडोल

रागिनी

१—तोड़ी, २—श्री, ३—आसावरी, ४—बंगाली, ५—सिंधु

पुत्र नाम	पुत्रवधू
१—तोड़ी रागिनी का—पुत्र 'बंखार' (भंखार)	१—भंखार—राग की वधू—रूपमंजरी
२—श्री रागिनी " —"शुद्धसालंक"	२—शुद्धसालंक वधू—पटमंजरी
३—आसावरी " —"खट"	३—खट—भीमपलासी
४—बंगाली " —विमल (बसन्त)	४—बसंत—बसंती
५—सिंधु " —पंचम	५—पंचम—रेवा

३—मेघराग

रागिनी

१—सारंगा, २—गौंडगिरी, ३—जीजावंती, ४—धूरिया, ५—खंबावती

पुत्र	पुत्रवधू
१—सारंगा—का पुत्र—सावंत	१—सावंत की वधू—सुघराई
२—गौडगिरी— " —गौड	२—गौड— " —गौडवती
३—जैजैवंती— " —नट	३—नट— " —देवगिरी
४—धूरिया— " —मल्हार	४—मल्हार— " —कुकुभ
५—खंबावती— " —मध्यमाद	५—मधुमाध— " —मधुमाधवी

४–श्रीराग

रागिनी

१–गौरी, २–गौरा, ३–लीलावती, ४–विहाग, ५–विजया, ६–पूरिया

पुत्र		पुत्रवधू	
१–गौरी का पुत्र	–कल्याण	१–कल्याण की भार्या	–अहीरी
२–गौरा "	–गौर	२–गौरा "	–सौराष्ट्रकी
३–लीलावती "	–नाराच (नवरोज)	३–नाराच "	–शिवराष्ट्र
४–विहाग "	–हेम	४–विहागपुत्रहेम "	–विहंगिनी
५–विजया "	–खेम	५–खेम "	–लछिमावती
६–पूरिया "	–नट	६–नाट "	–मारू

५–दीपक राग

रागिनी

१–कानरा, २–केदार, ३–अड़ाना, ४–मारु, ५–विहाग

पुत्रनाम	पुत्र भार्या
१–गारा	१–सुभगा
२–जलधर	२–लंकदहन
३–शंकराभरण	३–काफी
४–संकरारकण	४–पारवती
५–शंकराअरन	५–पूरवी

६–मालकौंस

रागिनी नाम	पुत्रनाम	पुत्रवधू
१–भटियारी	अहंग	सोहनी
२–मुरारी	विहंग	नागवती
३–सरस्वती	वैराग	सुअरघटी
४–कदंबी	गोरोचन	ललिता
५–रसाला	परज	रामकली

ऐसी वंशावली नादोदधिकार ने दी है। इस वंशावली के बहुत से राग उत्तम घराने के गायकों को आते हैं। कुछ स्थानों पर उसकी भाषा मेरी समझ में न आने के कारण, नाम में हेरफेर हुआ होगा, परन्तु ऐसी एक दो जगह ही निकलेंगी। यह वंशावलि कह कर 'पूरण' कवि कहता है:--

छप्पई।

निसिवासरमें अष्टजामघर।

अष्टजाममें साठिदंडकर॥

दस छक्कैं गिनि साठि कहावै ।
एक राग दस दंडहु गावै ॥
रविलखि भैरवादि सबजानौं ।
पूरन वेला सरब बखानौं ॥

दोहा.

निस काहूसे होत नहिं दिन सूरजसें होत ।
निसा सर्वदा जानिये जों नहिं रवि उद्योत ॥
यातें निसिमें द्यौसके रागानें नहिं दोष ।
निसिके दिन जो गाइये रविमाने मन रोष ॥

इसके पश्चात् ग्रन्थकार कुछ रागिनियों का 'सखी' वर्णन करता है। उदाहरणार्थ बिलावल की सखी (साखी ?) वह इस प्रकार कहता है:—

प्रथम सुद्धबिलावलि जानहु ।
इमन बिलावल दूजे मानहु ॥
गौड बिलावल तीजे कहिये ।
चौथे सखा हंस मन लहिये ॥
पुन विचित्र बहु चित्र विचित्रा ॥
पांचो सखा बिलावल मित्रा ॥

ऐसी ही सखी वह तोड़ी की कहता है । उनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) नायकीटोड़ी (२) हुसैनीटोड़ी (३) देसी टोड़ी (४) बिरावरी (५) दिलावरी (६) मुलतानी (७) बहादुरी (८) जीवनपुरी ।

श्रीराग की सखी इस प्रकार कही हैं:—

(१) मालसिरी (२) जेतसिरी (३) धनासिरी (४) धौलसिरी (५) फुलसिरी (६) रूपसिरी (७) वीरसिरी ।

तोड़ी के सखी समूह में (जौनपुरी) जीवनपुरी चुपचाप कैसी घुस आई है, यह दीखता ही है ।

मित्र ! इस विषयान्तर में हम बहुत दूर चले गये हैं। अब यह भाग छोड़ दें। इसके आगे का भाग भी मनोरंजक है, परन्तु यहां उसका विचार करना उचित नहीं होगा। इस नादोदधि ग्रन्थ को उत्तर के कुछ गायक विशेष उपयोगी मानते हैं, इसलिये उसमें क्या कहा है व कैसे कहा है, इसका नमूना तुमको मैंने दिखा दिया है ।

प्र०—'नादोदधिकार' के शुद्ध स्वर कौन से होंगे, यह समझने का कोई मार्ग है क्या ?

उ०—उसने स्वरों का सुबोध स्पष्टीकरण कहीं भी नहीं किया। अलबत्ता श्रुति, मूर्छना, बानी, छाप इनके सम्बन्ध में तो उसने पांडित्य उड़ेल दिया है। हां, कुछ रागों के उसने पंचांग दिये हैं, वे ध्यानपूर्वक देखे जांय तो उसका शुद्धमेल बिलावल ही होगा, ऐसा मानने के लिये पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—उदाहरणार्थ उसने भैरव का स्वरूप (चौताल में) किस प्रकार दिया है, वह देखोः-(इसमें तीव्र कोमल तथा मन्द्र मध्य तार के चिन्ह मैंने लगाये हैं)

सा सा रे रे सा म़ नि़ ध़ नि़ सा म म म प ग ग रे सा सा़ सा, सा म म प प ग ग म प ध ध म प, ग ग रे सा। ध ध ध नि सां, सां सां, रें रें नि सां ध ध ध, प, ग ग रे सा, म म म ध ध ध प, प ध नि सां ध प ध ध प, ग ग रे, सा।

स्वरकल्प—बामायना सरगम—

सुरस सोधे सीस गोपी गोरस स्याम गोप धैपाये रस धीन धनिन सौरसै साधपै गोरसपै मधै पोधनिसो धैप गरसै सिरे शौर शैधन सौ मागै रस। मूरतसों धन सोरेरेसै साध पूरन सोपा गौरसः।

इस कविता का अर्थ मुझ से नहीं होगा। परन्तु नादोदधिकार के शुद्ध तथा विकृत स्वर कौन से होंगे ? इतना ही हमें देखना है।

प्र०—हमको भी ऐसा ही जान पड़ता है कि उसका शुद्धमेल बिलावल ही होगा। उसने सब रागरागिनी पुत्रों के ऐसे ही पंचांग दिये हैं क्या ?

उ०—नहीं, नहीं, ऐसा करना उसको बहुत कठिन होता। परन्तु छः राग भैरवी, तोड़ी, सारंग, गौरी, कानडा तथा भटियारी, इन के पंचाङ्ग उसने कहे हैं। रागिनी के लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

देवशक्ति ज्यों तनधरे कहिये देवी सोइ।
रागशक्ति त्यौं रूप धरि कही रागिनी जोइ॥

प्र०—इस लक्षण में कोई विशेष तथ्य नहीं दिखाई देता। अब अपने दरबारी-कानडा की ओर पुनः बढ़ें। पूरन कवि के कानड़ा के लक्षण आदि विषयान्तर जो बीच में आये सो सब हमारे अच्छी तरह ध्यान में हैं। राजा टागोर साहेब के संगीतसार-संग्रह तक हम आगये थे। अब उससे आगे चलें ?

उ०—हां, संगीत कल्पद्रुमकार ने कदाचित् दर्पण से देवतामय स्वरूप लेकर आगे कर्णाटलक्षण इस प्रकार कहे हैं:-"धैवतांशग्रहन्यासो धैवतादिकमूर्छनः। प्रथमप्रहरे गान-वेलावलीस्वर संयुता।" देवगिरी शुक्लसंयुक्ता वेलावली मिश्रित यदा जायते कर्णाटोयं रसेवीरेप्रयुज्यते॥ ध नि सा रे ग म प ग॥

प्र०—यह वर्णन बिलकुल निरुपयोगी होगा न ?

उ०—हां, मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है। उसी प्रकार यह कानड़ा वर्णन जो उसने कहा है, वह भी निरुपयोगी ठहरेगा।

वज्रोदीप्तिसमानसुन्दरतनूरत्नान्विते कंकणे।
बाव्होमौक्तिकरत्नहारहृदयेस्तः कर्णयोः कुण्डले ॥
नानापुष्पसुवासवासिततनुः पीतांशुकैरावृतः।
संगीतेऽतिविचक्षणो दिविषदां संमोहनः कानरः ॥

भावभट्ट के ग्रन्थ को देखने की आवश्यकता नहीं, कारण उसने पुण्डरीक, हृदय तथा अहोबल के उद्धरण अपने ग्रन्थ में दिये हैं।

प्र०—तो फिर राधागोविन्दसंगीतसार में क्या कहा है, वह कहिये ?

उ०—उस ग्रन्थ में मेघ राग का पुत्र 'कानड़ा' बताया है। मूर्छना 'पधनिसारेगमप' ऐसी देकर "याको राति के प्रथम प्रहर में गावनो। यह तो याको बखत है। और रात्रि के दोय पहर तांई चाहो तब गावो" ऐसा आगे कहा है, फिर "यह राग सुन्यो नहिं यातें जंत्र बन्यो नहिं।" ऐसा लिखा है।

प्र०—तो फिर इस राग का नादस्वरूप नहीं दिया, ऐसा दीखता है ?

उ०—हां, यही कहना पड़ेगा। प्रतापसिंह ने दीपक की एक रागिनी 'कर्णाटी' कही है वह "राति के दूसरे पहर की दूसरी घड़ीतक गावनो" ऐसा कहा है। परन्तु वह प्रकार हमारा नहीं, क्योंकि उसमें ऋषभ स्वर कोमल बताया है।

प्र०—मालुम होता है उसी प्रकार का स्वरूप उसने बताया है ?

उ०—वह उसने इस प्रकार कहा है:—

नि प ध नि ध, सा, नि सा, रे सा, नि ध प, नि ध प, म ग रे सा। हमारे हिन्दुस्तानी दरबारीकानड़ा में उतरी ऋषभ कभी नहीं चलेगी।

प्र०—कदाचित् उसने 'कर्णाटगोड' ऐसा नाम पसन्द करके तो 'कानड़ा' नहीं लिखा होगा ?

उ०—उसने 'कान्हड़गौड' ऐसे एक प्रकार का वर्णन करके उसकी मूर्ति तथा मूर्छनादि कहे हैं तथा "यह राग सुन्यो नहिं। यातें जंत्र बन्यो नहिं।" ऐसा कहा है।

प्र०—तो फिर इस संगीतसार ग्रन्थ को छोड़ देना ही ठीक है। अब गोस्वामी पन्नालाल तथा राजा टागोर क्या कहते हैं, वह कहिये ?

उ०—हां, अब ऐसा ही करता हूं। पन्नालाल गोस्वामी ने 'दरबारी कानड़ा' कहा है, परन्तु उसके लक्षण संस्कृत श्लोकों में न देकर हिन्दी भाषा में दिये हैं, वे इस प्रकार हैं:-

"बड़ा बलवान हाथी का दांत पकड़कर बिठाया है जिसने; अंकुश लेकर हाथीपर सवार होने का इरादा है जिसका; राजाओं की सूरत, अच्छा लिबास पहने सुगंधी

लगाए हुआ, ऐसा दरबारी कानरा है" "कृपाणपाणिर्गजदन्तखंड० इ०" तुम सोचते होगे कि इसका श्लोक उन्होंने देखा होगा, परन्तु वे यह बात नहीं कहते तथा श्लोक भी नहीं बताते हैं। तब उनके 'कानडामूर्ति' के सम्बन्ध में टीका करने की आवश्यकता ही नहीं। उन्होंने कानड़ा का स्वरूप इस प्रकार कहा है:—

म म सा
म़ प़ ऩि सा रे ग ग रे सा, रे सा, रे ऩि सा, रे रे रे, सा, रे रे सा, ऩि सा रे
ऩि ऩि ऩि ऩि ऩि
ध़ ध़ (ऩि) प़ म़ प़ ध़ ध़ ध़, म़ प़, ऩि सा, रे ग ग रे रे रे सा, सा, सा। अन्तरा। म म म,
नि नि नि
प प प, ध ध ध सां, सां, म प नि सां, रें सां, रें रें सां, नि ध प, म ग, ग, रे रे रे सा।

प्र०—यह स्वरूप हमारे हिन्दुस्तानी स्वरूप से मिलता-जुलता है क्या ?

उ०—बहुत अन्शों में यह मिलता जुलता है। एक दो जगह जरा विसंगति जान पड़ती है। परन्तु वह नोटेशन का दोष होगा, ऐसा दीखता है।

प्र०—वह कौनसे स्थान पर ?

उ०—"नि ध प" ऐसा सरल प्रकार कानड़ा में नहीं आता। उसमें "नि ध नि प"
नि
अथवा 'ध नि प' ऐसा होता है। वे बजाते समय 'ध' पर आन्दोलन करते हैं, यह मैंने प्रत्यक्ष सुना था। परन्तु धैवत पर उँगली होने से 'ध प' ऐसा उसने लिखा होगा। आज यह कानड़ा स्वरूप मेरे बताने के पश्चात् यह भाग तुम अच्छी तरह समझ सकोगे। राजा साहेब टागोर अपने संगीतसार में इस कानड़ा का ऐसा वर्णन करते हैं:—"कानड़ा राग भरतमतसंमत; उसी प्रकार अन्य मतानुसार भी वह सम्पूर्ण जाति का ही है। नारदसंहिता के अनुसार यह सायंगेय कहा है, परन्तु आधुनिक मतानुसार यह रात्रि में गाया जाता है।"

प्र०—'भरत' तथा 'नारदसंहिता' के स्वर उन बेचारों की समझ में क्या आये होंगे ?

उ०—वे बिलकुल उनकी समझ में नहीं आये। तथापि 'कर्णाट' राग सम्पूर्ण है ऐसा उसमें कहा है, इतना उनके लिये पर्याप्त है। अस्तु, उस पर टीका टिप्पणी करने की हमें आवश्यकता नहीं। उन्होंने दरबारीकानड़ा का स्वरूप अच्छा कहा है, इसमें संशय नहीं। वह इस प्रकार है:—

ऩि सा, ऩि सा, रे सा, रे ऩि सा, सा, रे ऩि सा, प़ ऩि ध़ ऩि प़, म़ प़, ऩि प़ ऩि,
सा रे
सा, सा, सा, ऩि सा, ऩि सा, सा, रे रे, सा, रे, म ग, सा, रे, सा, रे ऩि सा, सा, म रे, सा,

रे ऩि सा, सा रे, ऩि सा, प़ ऩि ध़ ध़ ऩि प़, म़ प़, ऩि ध़, ऩि सा, ऩि सा, रे, म ग, प,
सा
म प, म ग, म रे, सा।

अंतरा—म प, नि ध नि सां, सां, सां, नि सां, नि सां, रें, मं गं, रें पं मं, गं गं, मं रें, सां, रें, नि नि सां, रें नि सां, नि, ध ध नि प, म प, नि ध नि प, ध म प, म प ध म प, म ग, ग नि प, ध म प, म, ग म रे सा।

इसमें एक दो स्थानों पर 'म प ध म प' ऐसा आया है, इसमें अवरोह में धैवत 'तानक्रियात्माक' अथवा 'मनाक्स्पर्श' इस न्याय से है, ऐसा समझकर चलना चाहिये। इसमें 'सां नि ध प' ऐसा अवरोह नहीं होगा, यह ध्यान में रखो।

दरबारीकानडा हमारे यहां अतिलोकप्रिय राग है, यह अनेक गायकों को आता है तथा श्रोता भी इससे भलीभांति परिचित हैं। विशेषतः यह कानडा प्रकार का "आश्रय राग" माना जाता है। इसका समय मध्य रात्रि मानते हैं। वादी ऋषभ तथा संवादी पंचम मानते हैं। आरोह में एकदम "सा रे ग म प" ऐसा जलद तान से नहीं होता, तथापि आरोह में गन्धार वर्ज्य नहीं समझना चाहिये। गन्धार तथा धैवत इन स्वरों पर एक प्रकार के आन्दोलन हैं। गन्धार पर जो आन्दोलन है वह अत्यन्त वैचित्र्यदायक है तथा उसके कारण श्रोतागण "कानडा" मानने को तैयार हो जाते हैं। इस राग में ग ग रे ग रे ग, "रे, ग सा" यह भाग खास दरबारीकानडा वाचक है। अतः यह मैं किस प्रकार कहता हूँ, तुम ध्यान देकर देखो और घोट लो। यह भाग सधजाने पर दरबारीकानडा सध गया, ऐसा कहा जा सकता है। कानडा के अन्य प्रकारों में यह आन्दोलित गन्धार ऐसा नहीं आयेगा। उनमें 'ग म, रे सा" ऐसा प्रकार अवश्य होगा; परन्तु "ग ग रे ग, रे, सा" ऐसे सावकाश आन्दोलन नहीं आयेंगे। वे आये तो तत्काल इस राग पर दरबारी की छाया आयेगी। दरबारी में "ग म रे सा" ऐसा भी बीच-बीच में भाग आयेगा, कारण वह कानडांग है। उत्तरांग में "ध नि प," "सां ध नि प" अथवा "नि ध नि प," इस प्रकार होगा। उसमें अवरोह में ध वर्ज्य है, ऐसा नियम प्रचार में मानते हैं। अतः "सां नि ध प" अथवा "नि ध प" ऐसे सरल स्वरसमुदाय निषिद्ध हैं। "मप, ध ग" ऐसा क्वचित् होता है, परन्तु यह धैवत, "द्रुतगीतोऽवरोहे न रक्तिहृत्" इस न्याय से लिया जाता है। कोई तो 'प, ध ग' ऐसा भी करते हैं। परन्तु यह धैवत उत्तम गायक ऐसी सफाई से लेते हैं कि श्रोताओं को उस समय वह 'प नि ग' ऐसा ही जान पड़ता है। उत्तरांग में "ध ध नि प, म प,' ऐसा सर्वत्र प्रयोग दिखाई देगा। यह भाग भी तुमको अच्छा तैयार करके रखना पड़ेगा। दरबारीकानडा में ऋषभ से धैवत पर किया गया 'पात' बहुत सुन्दर प्रतीत होता है, जैसे 'नि सा रे ध नि प'।

प्र०—अब हमको यह बता दीजिये कि अपने हिन्दुस्तानी गायक आजकल यह राग कैसे गाते हैं ?

उ०—हां, वह भी कहता हूं सुनो:—

सा, नि़ सा, रे, सा, नि़ सा, ध़ नि़ सा, म़ प़ ध़, नि़, सा, नि़ रे, सा।

सा, रे, रे, ध़, रे, सा, नि़ सा रे, ध़, ध़, नि़ प़, म़ प़, ध़ ध़, नि़, सा, सा, रे, सा।
नि़ सा, ध़ नि़ सा, प़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, नि़ सा, रे, सा, नि़ सा रे ध़, सा ध़, नि़ प़, म़ प़, ध़ ग़, म़ प़, ध़ नि़ सा, सा, सा रे, सा।

नि़ सा रे सा, म, रे, सा, प म प, ग॒, रे, सा, नि़ रे, सा, रे ध़, नि़ सा, ध़, नि़ प़ म़ प़ ध़, ध़, नि़ सा, नि़ सा रे रे, ग॒ ग॒ रे ग॒ रे ग॒, रे रे, सा, म़ प़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा नि़ सा; रे, सा, म़ प़ सा ध़, नि़ प़, म़ प़, ग॒, प ग॒ म़ प़ ध़, रे, रे, सा, नि़ रे, सा।

नि़ सा रे रे, ग॒, म ग॒, प ग॒, म, रे, सा, नि़ सा, म रे सा, नि़ सा रे ध़, सा ध़, नि़ प़, म़ प़, ध़, नि़ सा। रे रे, ग॒ ग॒ रे ग॒ रे ग॒, रे रे, ग॒ सा। नि़ रे सा।

सा, नि़ सा, ध़ नि़ सा, म़ प़ ध़ नि़ सा, नि़ सा, रे, ध़ नि़ प़, म़ प़, ध़, नि़ सा, सा, रे रे, ग॒ ग॒ रे ग॒ रे ग॒, रे, ग॒ सा। नि़ रे सा।

नि़ सा रे रे ग॒, रे ग॒, म ग॒, प ग॒, नि प, म प ग॒, म प ग॒, प ग॒, म, रे, सा।

नि़ सा, रे ध़, नि़ सा, म़ प़ ध़ नि़ सा ध़ नि़ सा, नि़ सा, रे सा, प म प ग॒ ग॒ रे ग॒ रे, रे, सा।

म म, प प, ध॒ ध॒, नि सां, सां, नि सां, नि सां रें रें सां, सां, नि सां रें ध॒, नि प, म प, ध॒, रें सां, मं रें सां, नि सां, सां, रें ध॒ ध॒, नि प, म प, ध॒, सां, नि प, म प, ध॒ ग॒, रे रे, सा नि़ रे सा।

नि नि प नि नि म प सा
म, म, प, प, ध ध, नि प, म प, सां, ध ध, नि प, म प, म प ध ग, रे रे, सा ।

नि नि नि मं सां
म प ध ध, नि सां, नि सां, नि सां रें, सां, नि सां रें ध, नि प, गं, रें, सां, नि सां,

नि प म सा सा
रें ध, नि प, म प सां, नि प. म प ग, म, रे, सा । नि रे सा ॥

मैं समझता हूँ इतने विस्तार से यह राग अच्छी तरह तुम्हारे ध्यान में आगया होगा। यह राग आलाप से मुक्त है तथा इसकी प्रकृति गम्भीर है, ऐसा गुणी लोग समझते हैं। ग्वालियर के सुप्रसिद्ध गायक हद्दू खां यह राग बहुत अच्छा गाते थे, ऐसी उनकी ख्याति है। दरबारी, मालकंस, तोड़ी तथा बिहाग ये उनकी विशेष पसन्द के राग थे तथा ये राग वे अपनी मोटी और कसी हुई आवाज से बड़े उत्तम गाते थे। इसका यह अर्थ नहीं है कि बाकी राग वे अच्छे नहीं गाते थे, परन्तु कुछ गायकों को कुछ विशिष्ट राग "चढ़े हुए" होते हैं, यह सभी जानते हैं।

प्र०—यह समझने की बात है। अब इस दरबारीकानडा की हमको पर्याप्त जानकारी हो गई है। अब इसकी कोई सरगम बता दीजिये ?

उ०—ठीक है, ऐसा ही करता हूँ:—

दरबारीकानडा—चौताल. (विलम्बित).

सा
रे

रे	(नि) ध	नि	प	सा	ऽ	ऽ	(सा) नि	सा	ऽ	सा	(सा) नि
३		४		×		०		२		०	
(नि) रे	रे	सा	ऽ	(सा) नि	सा	रे	(सा) रे	(म) ग	ऽ	ऽ	(ग) म
रे	रे	सा	ऽ	नि	सा	ऽ	(सा) रे	रे	सा	(सा) नि	सा
रे	(नि) ध	(प) नि	प	म	प	ऽ	(नि) ध	नि	सा	ऽ	(नि) ध
नि	रे	सा	ऽ	(प) म	प	नि	(म) ग	म	(सा) रे	सा,	(सा) रे

———

अंतरा.

			नि				नि				
म	प	ऽ	ध	नि	सां	ऽ	ध	नि	सां	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
सां						सां			नि	प	
नि	सां	रें	रें	सां	ऽ	नि	सां	रें	ध	नि	प
मं	मं			मं					सां		
गं	गं	मं	पं	गं	मं	रें	सां	ऽ	रें	रें	सां
प			प		प			प			प
म	प	ऽ	सां	ऽ	नि	प	प	म	प	ऽ	नि
म	म		सा				सा				
ग	ग	म	रे	ऽ	सा	ऽ	रे				

सरगम–त्रिताल. (मध्यलय)

म				सा			सा	म				सा			
रे	म	रे	सा	नि	सा	रे	रे	ग	ऽ	ऽ	रे	रे	ऽ	सा	ऽ
०				३				×				२			
सा	सा							सा			नि				
नि	नि	सा	ऽ	नि	सा	रे	सा	नि	सा	रे	ध	नि	नि	प	प
											म		सा		
म	प	ध	नि	सा	ध	नि	सा	म	म	प	ग	म	रे	ऽ	सा।

अन्तरा.

				नि	नि										
म	म	प	प	ध	ध	नि	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	नि	नि	सां	ऽ
०				३				×				२			

नि̱ नि̱ सां ऽ	रें रें सां ऽ	नि̱ सां रें (नि̱) ध̱	नि̱ नि̱ प प
म प सां ऽ	(नि̱) ध̱ नि̱ प प	(प) म प नि̱ ग̱	म (सा) रे ऽ सा।

प्र०—अब यह राग ध्यान में रखने के लिये श्लोकों में इसके लक्षण कहिये ?

उ०—ठीक है। सुनोः—

आसावरीसुमेलाच्च जातो रागः सुनामकः।
कर्णाटाव्हयको लक्ष्ये प्रौढालापार्ह उत्तमः॥
ऋषभः संमतो वादी संवादी पंचमो मतः।
गानं सुनिश्चितं चास्य तृतीयप्रहरे निशि॥
अपभ्रन्शस्तु कर्णाटशब्दस्य कानडा जने।
दरबारीति यवनैर्गीतत्वाद्राजसंसदि॥
सदांदोलितगांधारो विलंबितलयान्वितः।
मंद्रमध्यप्रचारोऽयं निपसंगमनोहरः।
कर्णाटस्य प्रकारास्ते बहवो लोकविश्रुताः।
आरोहे दुर्बलो गःस्यादवरोहे न धैवतः॥
सरिमपधनिसैः स्याद्रोहणमतिरक्तिदम्।
सधनिपमपगरिसैरवरोहणं मतम्॥

लक्ष्यसंगीते।

प्रोक्तः कर्णाटरागो मृदुगमधनिको मंद्रमध्यस्वरस्थो।
वादी तीव्रर्षभोऽत्र श्रवणमधुरसंवादिना पंचमेन।
आरोहे दुर्बलो गः प्रविलसति सदांदोलनं गे प्रयुक्तं
धो वर्ज्यश्चावरोहे विदित इह भवेत् पूर्वकाले निशीथात्।

कल्पद्रुमांकुरे।

मृदू गनी धमौ रिस्तु तीव्रोंऽशः पसहायकः।
गांधारांदोलनं यत्र कर्णाटः स निशि स्मृतः॥

चन्द्रिकायाम्।

मृदु गमधनि तीखो रिखब अवरोहत ध न लाग।
रिप बादी संवादितें कहत कानडा राग।

चन्द्रिकासार।

स्री सनी सुरिमपा धनी सनी पमौ पगौ ।
रिसौ रयंशा तु दर्बारी मध्यरात्रे गदोलितो ॥

अभिनवरागमंजर्याम्

प्र०—दरबारीकानड़ा अच्छी तरह हमारी समझ में आ गया । अब 'अड़ाना' लेंगे न ?

उ०—मेरी समझ में अब उसे ही लेना अधिक सुविधाजनक होगा । अड़ाना तथा दरबारी एक दूसरे के निकटवर्ती राग माने जाते हैं, तथा ये दोनों कानड़ा प्रकार हैं, ऐसा समाज में प्रसिद्ध है । इन दोनों में बहुत से स्वरसमुदाय साधारण हैं । ये अधिकतर समप्रकृतिक राग ही समझे जाते हैं । इनमें अन्तर क्या है ? यह बात गायकों से पूछें तो वे कहते हैं:-"साहेब, दरबारी नीचे को देखती है और अड़ाना ऊपर को देखता है" ऐसा संक्षेप में वे हमको उत्तर देते हैं । कुछ कहते हैं कि "दरबारी अस्ताई है, अड़ाना अन्तरा है ।"

प्र०—इन बातों का मर्म अच्छी तरह से समझ में नहीं आया ?

उ०—उनका कहने का अभिप्राय यह है कि दरबारी का विस्तार मंद्र तथा मध्य स्थानों में अधिक होता है तथा अड़ाना का विस्तार मध्य एवं तार स्थान में अधिक होता है । और यह उनका कथन एक दृष्टि से ठीक भी है ।

प्र०—अर्थात् भैरव और रामकली का जैसा सम्बन्ध है, वैसा ही कुछ रहस्य इन दोनों रागों के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिये, ऐसा ही कहें न ?

उ०—यह तुम्हारे ध्यान में ठीक आया । उसी प्रकार का सम्बन्ध दरबारी तथा अड़ाना दोनों रागों में है । अड़ाना में तुम मन्द्रसप्तक में विशेष काम करने लगे तथा वह भी विलम्बित अलाप लेकर, तो श्रोताओं को यह अवश्य भान पड़ेगा कि तुम दरबारी गा रहे हो । दरबारी में "म ग॒ मरे॒ मरे॒ प॒, रे ग॒, सा सा" ऐसे सावकाश आन्दोलन गन्धार पर लेकर आगे षड्ज से मिलते हैं, किन्तु ऐसा अड़ाना में नहीं चलता, उसमें 'ग॒ म, म रे सा' ऐसा झटके से आकर षड्ज से मिलना पड़ता है । परन्तु यह सब तथ्य तुमको अब आगे दीखेगा ही । उसी प्रकार उत्तरांग में आरोह करते समय दरबारी तथा अड़ाना के खास अङ्ग कुछ निराले हैं ।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—ग्वालियर के प्रसिद्ध सरदार बलवंतराव भैय्या साहेब तथा उसी प्रकार मेरे मित्र कै० छमैन साहिब ने मुझसे जो कहा, वह याद आता है कि दरबारी में "म प ध॒, नि॒ नि सां, नि॒ सां" ऐसा करके षड्ज से मिलें तथा अड़ाना में म प ध॒, सां, नि सां इस प्रकार नि॒ आकर मिलें तो ये दोनों राग पृथक दिखाई देंगे ।

प्र०—क्या प्रचार में हमको यह नियम सदैव दिखाई देगा ?

उ०—सभी गायक इस नियम का पालन करते ही हैं, ऐसा मेरा कहना नहीं है। कारण, ख्याल गायकों को जहां-जहां रुकावट हुई, वहीं-वहां उन्होंने नियम में परिवर्तन कर लिया; परन्तु दरबारी तथा अड़ाना के शुद्ध आरोहावरोह तुमसे कोई पूछे तो तुमको इस नियम को ध्यान में रखकर उत्तर देना चाहिये, ऐसा मैं समझता हूँ।

प्र०—वह किस प्रकार ?

उ०—दरबारी के आरोहावरोह स्वरूप तुमको मैंने बताये ही हैं। वह इस प्रकार हैं:-

आरोह—सा रे ग, म ग म ग ग, रे रे, सा रे, म प, ध, नि सां। अवरोह—सां, ध नि ध, नि प, म प, ग म ग ग, रे, सा।

अब अड़ाना का आरोहावरोह स्वरूप कहता हूं, वह सुनोः—

सा, रे म प ध, सां। सां ध, नि प, ग म, रे, सा।

प्र०—सबसे पहले हमको इसमें एक बात स्पष्ट दीखती है, वह यह कि अड़ाना में गन्धार पर आन्दोलन नहीं। उसके योग से प्रारम्भ में ही दोनों रागों में बहुत कुछ भेद दिखाई देता है। हमारे इस कथन में कुछ तथ्य है, या नहीं ?

उ०—निःसन्देह, यह इन दोनों में बहुत बड़ा भेद है। अनेक श्रोता तो गन्धार के इस आन्दोलन से ही दरबारी तत्काल अलग पहचान लेते हैं। उत्तरांग में 'ध नि सां' इस प्रकार अड़ाना में कभी नहीं होगा, ऐसा नियम मानकर चलने की आवश्यकता नहीं। दरबारी राग पूर्वाङ्ग वादी में गिना जाता है, इसलिये उसमें 'ध नि सां' ऐसा हमेशा न करके 'ध सां' ऐसा भी गायकों ने किया तो राग भ्रष्ट नहीं होगा; उसी प्रकार अड़ाना में कभी 'ध सां' तो कभी 'ध नि सां' ऐसा भी होना संभव है। कोई यह भी कहते हैं कि अड़ाना का आरोही निषाद दरबारी के निषाद की अपेक्षा कुछ अधिक ऊंचा है।

प्रः—उनके इस कथन में कुछ तथ्य है क्या ?

उ०—सूक्ष्म स्वरों की उलझन में हम नहीं पड़ेंगे, यह तुम जानते ही हो। परन्तु कई बार अड़ाना में तीव्र निषाद जितना सुन्दर दिखता है उतना वह दरबारी में नहीं दिखाई देता। दरबारी में "म प ध, नि ध नि, सां" ऐसा करके निषाद लिया जाय तो "स्वरसङ्गति" के नियम से वह कुछ नीचा लगे तो आश्चर्य नहीं। पुनः अड़ाना में धैवत पर आन्दोलन न होने से "सां ध नि सां" ऐसे स्वरसमुदाय में वह षड्ज की

म सा
तरफ अधिक झुका हुआ दिखाई देगा। उसी प्रकार पूर्वाङ्ग में "सा रे ग॒ म ग॒ ग॒, रे सा" इसमें जो आन्दोलित गन्धार है,वह भी अडाना में आने वाले गंधार से कुछ उतरा हुआ है ऐसा सर्वत्र समझा जाता है। परन्तु "प ग॒, म रे सा" ऐसा टुकड़ा दोनों रागों में कभी कभी आता है, तब वही गन्धार अपने स्थान पर स्वतः बदल जाता है। किसी स्वर का सम्बन्ध जब नीचे के स्वरों से होता है तब वह कुछ उतरा हुआ दिखाई देता है तथा ऊपर के स्वरों से हुआ तो वही कुछ चढ़ा हुआ दिखाई देता है, यह भेद सूक्ष्म दृष्टि के लोगों को ही दिखता है। इसी कारण समझदार व्यक्ति इस सूक्ष्म स्वर को निश्चित करने के झंझट को विशेष प्रोत्साहन देना पसन्द नहीं करते।

प्र०—हां, यह आपने हमको पहले भी बताया था। गला स्वरसङ्गति के योग से स्वतः अपना स्थान ढूँढ लेता है, योग्य स्थान मिले बिना मन को सन्तोष ही नहीं होता, ऐसा भी आपने कहा था। हां, तो अडाना किस प्रकार प्रारम्भ किया हुआ दिखाई देगा?

उ०—वह विभिन्न प्रकार से प्रारम्भ किया जाता है, जैसे:—"म, प सां, ध॒ नि,
प प म प सां सां प म
सां;" सां नि॒ म, प नि॒ ग॒, म, प," नि॒ म, प सां; "नि नि सां, रें नि सां; "नि॒ प, ग॒, म प सां;" ऐसा अनेक तरह से यह राग प्रारम्भ किया हुआ दिखाई देगा; परन्तु इन सब प्रकारों में महत्वपूर्ण बात तुमको क्या देखने में आई, बताओ तो?

प्र०—यह राग अभी अच्छी तरह हमारी समझ में नहीं आया, इसलिये हमारा तर्क कदाचित् गलत हो सकता है, परन्तु इन सारे उठावों में एक बात हमारी दृष्टि में ऐसी आई कि, तार षड्ज से जितनी जल्दी मिल सकें उतनी जल्दी मिलने में गायकों का सारा झुकाव रहता है। षडज के पहले के स्वर, केवल उस स्वर से मिलने की पूर्व तैयारी के लिये ही जान पड़ते हैं। हमको क्षण भर ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि यह चीज षड्ज से ही प्रारम्भ होती तो गायक अधिक प्रसन्न होता।

उ०—तुमने बिलकुल ठीक पहचाना। यही इस राग का मर्मस्थान है। गायक विभिन्न प्रकार से तान लेकर जब नीचे षडज तक आता है, तो फिर तारषडज पर जाने का उसका मोह नहीं छूटता। यदि वह मन्द्र सप्तक में अधिक देर ठहरेगा तो उसका राग दरबारी या कोई दूसरा ही दिखने लगेगा, ऐसा उसको हमेशा भय रहेगा। हमारे गायकों के तारषड्ज पर अवलम्बित अनेक ख्याल तुम्हें दिखाई देंगे। सां ध॒ नि, सां, रें
नि॒ म म सा
सां, सां ध॒ नि॒ प, म प सां, ग॒ ग॒ म, रे, सा, सां" यह भाग इस राग में बारम्बार
प नि
तुम्हारी दृष्टि में आयेगा। वैसे ही, "नि॒ म प, सां ध॒ नि सां, रें, सां, सां ध॒, नि सां,
प नि॒ प म सा नि॒
नि॒ प, म प ध॒, रें सां, रें नि सां, नि॒ प, म प सां ध॒ नि॒ प, प ग॒, म, रे, सा, म प ध॒ सां,

मं सां
गं मं रें सां" यह स्वरसमुदाय जहां-तहां तुम्हें दिखाई देगा। तुम ये सब मेरे साथ बोलकर बारम्बार अच्छी तरह घोट लोगे तो ये विशेष हितकारी होंगे। अडाना के चलन में कहीं न कहीं ये स्वरसमुदाय आयेंगे ही।

प्र०—हम ऐसा अवश्य करेंगे। अडाना यदि इस प्रकार तार सप्तक से ही प्रारम्भ हो तो फिर अन्तरा कहां से शुरू होता होगा?

उ०—क्यों? इसमें क्या कठिन बात है? वह अनेक बार ऐसा होगा:—"म प
नि नि
धु, सां" अथवा "म प धु, नि सां," फिर आगे "नि सां, नि सां, रें सां, नि सां रें नि सां,
नि मं सां
धु, नि प, म, प नि सां रें, गं मं, रें सां, ऐसा करने में आयेगा। यह राग विशेष कठिन नहीं, अतः बहुत से गायकों को आता है। अब आगे जाने से पहले अडाना के लक्षण भी कहे देता हूं, तो सब ठीक हो जायगा; क्यों?

प्र०—हम भी यही सोच रहे थे।

उ०—तो फिर सुनो। आडाना राग आसावरी थाट से उत्पन्न होता है। इसमें वादी स्वर षड्ज तथा सम्वादी स्वर पंचम है। इसके गाने का समय रात्रि का तीसरा प्रहर मानते हैं। अडाना सर्व सम्मत से एक कानडा प्रकार माना जाता है। इस राग के आरोह में गन्धार वर्ज्य करते हैं तथा "सा रे म प" इस तरह से आरोह क्रम रखते हैं। अवरोह में धैवत वर्ज्य है।

प्र०—इसमें "सां नि धु प" ऐसा हुआ तो आसावरी का भास होगा, ठीक है न?

उ०—हां, यह तुमने ठीक कहा। आरोह में निषाद छोड़ देना चाहिये, ऐसा बहुत से गुणी लोगों का मत है। आरोह में धैवत तथा गन्धार वक्र हैं जैसे:—"सां धु नि
सा म
प, म प गु, म रे सा;" दरबारी की अपेक्षा अडाना में "गु म रे सा" यह टुकड़ा
म सा
अनेक बार दिखाई देगा। अडाना में दरबारी के अङ्गभूत स्वरसमुदाय, "गु, रे रे, सा" यह कभी नहीं लेते। अडाना में सारंगांग जहां-तहां दिखने की संभावना रहती है।

प्र०—परन्तु इस राग में जब गन्धार तथा धैवत स्वर हैं तो फिर वे अङ्ग इतने अधिक क्यों दिखते होंगे?

उ०—जलद तानें लेते समय "गन्धार तो लेते ही नहीं, यदि वह लिया तो तुरन्त ही काफी की छाया सामने आजावेगी। "म प सां धु नि सां, नि सां रें सां, रें मं रें सां"

ऐसे भाग आते हैं। इसमें धैवत की झलक है। पूर्वाङ्ग में "सा रे म प" यह सारंग
प
का भाग तो स्पष्ट ही। है अवरोह में "सां नि प" ऐसा बारम्बार होगा, वहां भी सारङ्ग दिखेगा। परन्तु यहीं क्यों? कानडा तथा सारङ्ग एक दूसरे का जवाब हैं, यह मैंने कहा ही था न? संभवतः तुम कहोगे कि दरबारी तथा अडाना में धैवत कोमल है, परन्तु वह स्वर कैसे, किसने व कब सम्मिलित किया, यह आज तक समझ में नहीं आया। धैवत बिलकुल न लेने वाले अथवा तीव्र लेने वाले गायक भी मेरे देखने में आये हैं; तथापि धैवत न लेकर अथवा उसे तीव्र लेकर अन्य रागों से अडाना की उलझन पैदा करने की अपेक्षा कोमल धैवत लेकर दरबारी की पंक्ति में उसको बिठाना विशेष सुविधाजनक होगा, ऐसा हम कहेंगे। दरबारी मन्द्र तथा मध्य स्थान में विस्तार पाता है तथा यह अडाना मध्य एवं तार स्थान में विस्तार पाता है, यह तुम्हें भली-भांति विदित हो ही चुका है। अडाना में गन्धार पर दरबारी जैसे आन्दोलन नहीं। दरबारी में तो ये आन्दोलन रागवाचक होकर एक महत्वपूर्ण चिन्ह समझे जाते हैं। अडाना में मेघ तथा कानडा इन दो रागों का मिश्रण होता है, ऐसा गायक लोग समझते हैं।

प्र०—अडाना के लक्षण अब अच्छी तरह हमारी समझ में आगये। यह राग कहां से आया, इसे प्रथम कौन प्रचार में लाया? इसके सम्बन्ध में हमारे ग्रन्थकार कुछ कहते हैं अथवा नहीं, इस विषय पर कुछ कहने योग्य हो तो कहिये?

उ०—यह राग आधुनिक एवं यावनिक है, ऐसी मान्यता हमारे गायकों में है। परन्तु उसे अमुक गायक प्रथम प्रचार में लाया तथा अमुक समय में लाया, यह कहना कठिन ही है। इसका नाम मुसलमानी दीखता है इसलिये अमीर खुसरू ईरान से इसे लाया था, ऐसा कुछ गायक कहते हैं, परन्तु उनके इस कथन का कोई आधार नहीं है। "मादनुल मूसीकी" नामक उर्दू ग्रन्थ में इसके बारे में कुछ कहा है, ऐसा मेरे सुनने में आया है। किन्तु मुझे उस भाषा की जानकारी न होने से उसमें क्या कहा है, यह मैं नहीं कह सकता। वह ग्रन्थ अब प्रकाशित हो चुका है; अतः उसमें क्या कहा है, यह तुम देख लेना। रागों के नाम-धाम सम्बन्धी झंझट में हम नहीं पड़ते यह तुम जानते ही हो।

प्र०—इस प्रकार की बातों का टागोर साहेब संग्रह करते हैं तो वे इस सम्बन्ध में कुछ क्यों नहीं बोलते?

उ०—वे अडाना के सम्बन्ध में इस प्रकार कहते हैं:—

"अडाना यह आधुनिक राग है। सुघराई, कानडा, सारंग ये तीनों राग मिलने से अडाना उत्पन्न हुआ है। आडाना में सारंग इतना अधिक दीखता है कि कोई कोई कुतूहलवश उसको 'रात का सारङ्ग' कहते हैं। सभी घरानों के गायक अडाना की जाति सम्पूर्ण मानते हैं।"

किन्तु इससे 'अडाना का उत्पादक कौन है;' यह बात समझ में नहीं आयी। उन्होंने अन्य कुछ रागों के उत्पादकों के नाम अपने सङ्गीतसार में दिये हैं, जैसे:—

१–सरपर्दा—अमीरखुसरू
२–शुक्लबिलावल—मियां बक्सू
३–दरबारीतोडी—मियां तानसेन
४–सूहा तोडा—सुलतान हुसेन
५–सुघराई तोडी— "
६–लाचारी तोडी—
७–जौनपुरी तोडी—
८–बहादुरी तोडी—बक्सू आदि

अब अडाना राग हमारे ग्रन्थों में कहा गया है अथवा नहीं ? इस प्रश्न की ओर बढ़ें। सङ्गीत रत्नाकर में यह राग नहीं दिखाई देता। यह प्राचीन होता तो "रागांग, भाषांग, उपांग तथा क्रियांग" देशी संगीत के इन नामों में मिलने की संभावना थी, परन्तु यह उनमें कहा हुआ नहीं दीखता। सङ्गीत दर्पण, सङ्गीत दामोदर, नारद–संहिता इन ग्रन्थों में भी वह नहीं कहा गया तथापि लोचन पंडित के "रागतरंगिणी" में यह राग मिलता है।

प्र०—तो फिर यह आधुनिक नहीं, बल्कि बहुत पुराना है ?

उ०—हां, कम से कम चार-पांच सौ वर्षों से यह हमारे देश में है। अन्य रागों का वर्णन करते समय मैंने तरंगिणी के श्लोक कहे थे, उनमें नाम अडाना बारम्बार आया था, किन्तु उस समय इस इस राग की विशेष चर्चा न करने से इस नाम की ओर खास तौर से तुम्हारा ध्यान नहीं गया। जिस श्लोक में लोचन अडाना कहता है, वह इस प्रकार है:—

हिंदोलः सुघराई स्यादडानो समस्तमः।
गारकानरनामा च श्रीरागश्च सुखावहः॥
कर्णाटसंस्थिताश्चैते सप्ताः सन्तीति निश्चितम्॥

प्र०—ठीक, यह श्लोक हमको याद है। सुघराई कहते समय यह आया था।

उ०—कर्णाट थाट को स्पष्टतया कहा है। वह हमारा हिन्दुस्तानी खमाज थाट है। उस थाट की व्याख्या पुनः लिखे देता हूँ:—

शुद्धाः सप्तस्वरास्तेषु गांधारो [illegible] चेत्॥
गृह्णाति द्वे श्रुती गीता कर्णाटी जायते तदा॥

अडाना के अवयवीभूत रागों का वर्णन लोचन इस प्रकार करता है:—

कान्हड़ो वंगपालाभ्यां विभासमिलनादपि।
अडाना रागिणी प्रोक्ता [illegible]॥

'वंगपाल' अर्थात् 'बंगाल' स्पष्ट ही है। कुछ प्रान्तों में विभास चढ़े स्वरों से गाते हैं; यह मैंने पहले कहा ही था। वहां अडाना का यह मिश्रण बिलकुल विसंगत है, ऐसा कहने का कोई कारण नहीं।

प्र०—नहीं नहीं, यह विसङ्गत है, ऐसा हम कभी नहीं कहेंगे। पंडितों के समय में जो प्रचार होगा वे उसी का वर्णन करेंगे, यह सहज ही समझा जा सकता है। उसके पश्चात रागस्वरूप बदल गये हों तो इसका क्या उपाय ?

उ०—हां, यह सही है। अडाना राग का नादरूप हृदयनारायणदेव ने अपने कौतुक ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है:—

धसौ रिमौ पमौ धश्च रिसौ निधपमा गमौ।
परिसाः कथितो लोकैरडानः पूर्णतां गतः॥

उसी पण्डित ने आगे अपने हृदयप्रकाश में आडाना के लक्षण इस प्रकार कहे हैं:-

धैवतादिरडानाख्यो धैवतांशस्वरो मतः।
प्रसिद्धस्तु निषादादिर्यज्ञानंदेन कीर्तितः॥
धसा रिमप मधनिसां निधपमगरिसा॥

प्र०—ठहरिये ! यज्ञानन्द पण्डित का कुछ परिचय मिल सकता है क्या ? यह पण्डित सन्यासी मालुम होते हैं ?

उ०—उनसे मैं परिचित नहीं हूँ तथा उनके ग्रन्थ के सम्बन्ध में भी जानकारी नहीं दे सकता। इस ग्रन्थकार का नाम वास्तव में अज्ञात ही है। अच्छा, आगे चलें। अहोबल पण्डित ने पारिजात में अडाना नहीं कहा। तब श्रीनिवास के ग्रन्थ की ओर देखने की आवश्यकता ही नहीं। अब उत्तर के प्रसिद्ध ग्रन्थकारों में से रहा पुण्डरीक। उसके सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला तथा रागमंजरी इन तीनों ग्रन्थों में अडाना का नाम नहीं दिखाई देता। वह कुछ यावनिक रागों के नाम अपनी रागमाला व मंजरी में देता है, परन्तु अडाना राग के सम्बन्ध में कुछ नहीं बोलता। उसके ऐसा करने का कारण मैं कैसे बता सकता हूं ? और उसे कहने के लिये तुम भी मुझ से आग्रह नहीं करोगे।

प्र०—हां, यह कहने की आवश्यकता नहीं। अब भावभट्ट क्या कहता है वह बताइये ?

उ०—भावभट्ट 'अडाना' राग के सम्बन्ध में इस प्रकार कहता है:—

"इयं मदुक्तिः।
मेघरागेण संयुक्तः कर्णाटो यदिगीयते।
तदाडानाख्यरागोऽयं भेदः कर्णाटसंभवः"
संकीर्णरागाध्यायकारेण यल्लिखितं तद्विचार्यताम्॥

उक्तो मल्हारसंयुक्तस्तत्र निः काकली भवेत् ।
कर्णाटस्य तदाभावो भावभट्टेन कीर्तितः ॥
कर्णाटगो निषादस्तु शुद्धोऽसौ परिकीर्तितः ।
केनचिदेकगतिस्तु तदा कैशिकसंज्ञकः ॥
तदा तु मेघ एवस्यान्नतु मल्लारनामता ।
गौरीमेले समुत्पन्नो रागतत्वेन भाषितः ॥
तृतीयगतिको निस्तु मंजर्यां परिभाषितः ।
अनूपसिंहभूपाग्रे सन्तैः सम्यग्विचार्यताम् ॥
नृत्यस्यनिर्णयेऽप्युक्तस्तीत्र एव न काकली ।
कर्णाटगौडमेलेऽसौ सोमनाथेन कीर्तितः ॥
पूर्णोऽड्डाणःपाद्यो धांशः सन्यास उल्लसेद्रात्रौ ॥

परन्तु इसमें नवीनता कुछ नहीं। ये ग्रन्थ तुमने देखे ही हैं। मेघ तथा कानडा दोनों राग मिलाकर "अडाना" गाते हैं, बस यह मत ध्यान में रहने दो। भावभट्ट का स्वतः का ऐसा मत नहीं है। उसका आधार हृदय, अहोबल तथा पुण्डरीक हैं, यह मैं बारम्बार कहता आया हूँ। कर्णाट में कौनसा निषाद लेना चाहिये, इसकी चर्चा हमको यहां नहीं करनी है। हमें तो उसका मत देखना था।

प्र०—यह अच्छी तरह समझ में आगया। अब कल्पद्रुम का मत बताइये ?

उ०—संगीत कल्पद्रुमकार ने अड़ाना वर्णन इस प्रकार किया है:—

अड़ानः पूर्णः प्रोक्तः मध्यमग्रहसंयुतः रात्रौ प्रथमे यामे गीयते विबुधैर्जनैः। मल्लार-कन्हरामिश्रनायकीखटसंयुता अडानोत्पत्तिर्विज्ञेया। मपधनिसारेग। कहकर लक्षण इस प्रकार बताये हैं:—

पूर्णोऽड्डाणश्चसंप्रोक्तो मध्यमग्रहसंयुतः ।
रात्रौ तु प्रथमे यामे गीयते विबुधैर्जनैः ॥
मल्लारकानरायुक्तनायकीस्वर संयुतः ॥

इसे हम उत्तम तो नहीं कहेंगे, परन्तु चलने योग्य अवश्य है। इसी ग्रन्थकार ने ऐसा एक हिन्दी दोहा कहा है:—

पहले कानडासुरभरे नायकी औ मल्लार ।
राग अडाणा होत है गावत गुनी बिचार ॥

अब हम राधागोविन्दसार की ओर बढ़ें।

प्र०—हां, तो प्रतापसिंह क्या कहते हैं, वह देखें ?

उ०—वे कहते हैं। 'शिवजीनें × × अपने मुखसों मल्लार राग संकीरन कानड़ो गाइके वाको अडानो नाम कीनो।" आगे चित्र कह कर:—"शास्त्रन में तो यह सात सुरनसों गायो है, निधपमगरेसागरे" यातें सम्पूर्ण है। याको रातिके दूसरे पहरमें गावनो। यह तो याको बखत है। और राति में चाहो तब गाओ"।

जंत्र—

अडाना–संपूर्ण.

ग	म	प	म	ग	सा
म	प	ध	प	प	
प	ध	प	ग	ग	
ध	नि	म	ध	म	
प	ध	ग	म	रे	

यह नाद स्वरूप उत्तम है। यह हमारे आज के प्रचलित अडाना स्वरूप से बहुत कुछ मिलता है, इसमें 'ध प' ऐसा आया है। वहां वस्तुतः 'ध नि प' ऐसा ही प्रतापसिंह के गायक–वादक लेते होंगे। अन्त में 'ग म रे सा' यह भाग ठीक है।

पन्नालाल गोस्वामी ने नादविनोद में "अडाना" इस प्रकार कहा है:—

प़ प़ प़ प़ रे सा, नि़ रे सा, ग ग, प म प, रे रे रे, सा सा सा। अन्तरा। म प

　　　　　　　　　गं गं गं　　　　म म

प, प, सां सां रें सां, नि सां, प प नि सां, रें रें रें प म प, ग ग, रे रे रे सा, सा सा।

इस स्वरूप में धैवत वर्ज्य किया हुआ दिखता है, परन्तु प्रचार में कोमल धैवत गायक लेते हैं, इसमें संशय नहीं। धैवतहीन प्रकार मैंने भी सुना है।

प्र०—वह प्रकार आपने कैसा सुना था?

उ०—वह इस प्रकार था:—

प़　　म म म　　　　प　　　　म म　　　　　सा　　　　सा

नि़, प, प, ग ग, म, प, नि प, म प, ग ग, म, प ग, म, रे, सा, नि़ सा, रे, सा, म

　प　　　प　　　　　म म　सा

प, नि प, सां, नि प, म नि प, ग ग, म, रे, सा। म, प, नि सां, सां नि सां, म प नि सां,

　　प प　　　म　　　　प　　　　　मम　सा

रें, सां, नि नि प, म नि, प, सां, नि प, म, प, ग ग म, रे, सा।

प्र०—ठीक है। किन्तु पण्डित जी, यह प्रकार कानों को कुछ विचित्र सा ही लगता है। यह कुछ सूहा जैसा क्यों दीखता है? इसमें धैवत वर्ज्य है इसलिये ही ऐसा प्रतीत होता है क्या?

उ०—तुम्हारा यह तर्क ठीक है। दिन के सूहा राग का रात्रि का 'जवाब' अड़ाना है

म म
ऐसा कहने वाले कुछ गायक अवश्य मिलते हैं। सूहा राग में, "नि़ सा, ग॒ ग॒, म, रे सा
म म म म सा
रे नि़ सा, ग॒ म, प म, ग॒ म नि॒ प, ग॒ म रे सा।" यह भाग अधिक है। अड़ाना मध्य तथा तार सप्तक में अधिक चमकता है, ऐसा समझा जाता है। परन्तु 'अड़ाना' तथा सूहा में भेद सम्भालने की बहुत आवश्यकता है, इस कारण अड़ाना में कोमल धैवत शामिल करने की जो युक्ति है, वह बहुत मजे की है। यह कोमल धैवत अब सर्वत्र बहुमान्य होगया है। यह कृत्य कदाचित् ख्यालियों ने किया होगा, परन्तु यह अच्छा है, इसमें सन्देह नहीं। इसी प्रकार दरबारीकानडा में भी जो कोमल धैवत सम्मिलित हुआ है, उसके सम्बन्ध में कहना पड़ेगा। अस्तु, दरबारी तथा अड़ाना में साधारण तथा असाधारण स्वरसमुदाय कौनसे हैं, यह मैं तुमको पहले ही बता चुका हूँ तथा अड़ाना के लक्षण भी सविस्तार कह चुका हूं।

प्र०—हां, ये सब हमने अच्छी तरह ध्यान में रखे हैं। जबकि 'नगमाते आसफी' ग्रन्थ का लेखक मुसलमान है तो वह अड़ाना के सम्बन्ध में कुछ क्यों नहीं कहता?

उ०—वह अड़ाना के स्वर आदि नहीं कहता, परन्तु अड़ाना राग भरत मत से दीपक के अष्टपुत्रों में से एक है, ऐसी उसने शोध की है। वे अष्ट पुत्र उसने इस प्रकार बताये हैं:-१खेम, २-टंक, ३-नटनारायण, ४-बिहागड़ा, ५-फरोदस्त, ६-रहसमंगल, ७-मंगलाष्टक, ८-अडाणा। इस पर कदाचित तुम सोचोगे कि नाट्यशास्त्र का लेखक 'भरतमुनि' भी यही है क्या? परन्तु इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। यह नाट्यशास्त्र वाला भरत नहीं होगा, ऐसा चाहो तो तर्क कर सकते हो।

प्र०—ठीक है, तो अब राजा टागोर क्या कहते हैं, वह भी कहिये? आपने बताया ही था कि उनकी राय में यह 'रात का सारंग' समझा जाता है। किन्तु अड़ाना का स्वरूप उन्होंने कैसा लिखा है, वह बता दीजिये?

उ०—उन्होंने अड़ाना का स्वरूप इस प्रकार दिया है:—

नि॒ नि॒ रे ग॒ रे म म म नि ग॒ रे सा
सा सा, म, म, म प, नि॒ प, प प, प, सां, सां ध॒ नि॒ प, म म, म प, नि॒ प, म ग॒ म,
सा ध ध नि नि प म
रे सा। अन्तरा। म प; प नि॒ प, नि सां, सां सां सां, सां, सां, रें सां सां रें सां, नि॒ प, नि॒ प,
ग॒ रे रे रे
म प नि सां रें मं, मं रें सां, सां ध॒ नि॒ प, म ग॒ प, म प, नि॒ प, म ग॒ म, रे, सा। विस्तार।
गं प रे ग॒ रे
नि़ सा ग॒ म प, नि॒ म प, नि सां, रें मं मं रें सां, सां ध॒ नि॒ प, म ग॒ म, म, म प, नि॒ प,

रे
म ग म; रे, सा। अडाना का यह स्वरूप सुन्दर है। इसमें वे 'कण' अच्छी तरह नहीं लगा सके, परन्तु अडाना के नियम उनको मालूम थे, ऐसा स्पष्ट दिखाई देगा। उनके स्वरूप में सारंग भी अच्छे प्रमाण में रखा गया है। उत्तरांग में 'ध नि प' तथा पूर्वाङ्ग में 'ग म रे सा' ये टुकड़े होने चाहिये थे। इससे मालूम होता है कि बंगाल प्रांत में अडाना हमारे यहां जैसा ही गाते हैं।

प्र०—हां, इससे ऐसा स्पष्ट दीखता है। अब नादविनोद का मत कहिये। अब उत्तर के ग्रन्थ पूरे हो चुके ऐसा समझना चाहिये?

उ०—पन्नालाल कहता है:—

"लंबा है शरीर जिसका स्त्रियोंका प्यारा भोली-भोली बातां करके अपनी प्यारी का भेद दरियाफ्त कर रहा है, दरपरदा अपने मिलने की जगह बताकर हंसकर बहाना बतानेवाला ऐसा अडाना है"।

प्र०—संभव है इन्होंने यह वर्णन 'अडाना' के शाब्दिक अर्थ को लेकर ही किया हो? विशेषरूप से अडानापन का बहाना करके अपना मतलब निकालने का उसका यह अडाना दीखता है। परन्तु अडाना हिन्दी शब्द है क्या?

उ०—मेरी समझ से 'अडाना' हिन्दी में भी अपने यहां (मराठी) के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। मुझे पहिले तो ऐसा जान पड़ा था कि पन्नालाल ने कल्पद्रुम के संस्कृत श्लोक का भाषान्तर किया होगा, परन्तु वैसा नहीं दीखता। कल्पद्रुम में संस्कृत श्लोक इस प्रकार है:—

स्मरन प्रविष्टन्स्मरचारु मूर्ति वीरेरसे व्यंजितरोमहर्षः।
पाणौ कृपाणं किल रक्तवर्ण अड्डाणरागः कथितो मुनींद्रैः॥
पूर्णोऽड्डाणः सुसंप्रोक्तो मध्यमग्रह ईरितः।
रात्र्याच प्रथमे यामे गीयते विबुधैर्जनैः॥
म प ध नि सा रे ग म ग रे सा नि ध ध नि सा।
ग म प ध नि सा ग रे सा नि ध म ग रे सा॥

प्र०—तो फिर उनके वर्णन का दूसरा आधार नहीं दीखता। खैर, अब उनका नादस्वरूप कहिये?

उ०—हां, सुनो:—

प़ प़ प़ प़ रे सा, ऩि रे सा ग ग प म प रे रे रे सा सा सा।

गं गं गं म म
म प प प सां सां रें सां नि सां प प नि सां रे रे रे, रे प म प ग ग रे रे रे सा।

प्र०—यह स्वरूप हमको बिलकुल पसन्द नहीं आया। यह स्वर किसी ने गाये अथवा बजाये तो इनमें अडाना दिखाने की बहुत ही कम सम्भावना रहेगी। संभव है

इस राग को ठीक तरह से लिख न सके हों, इसलिये ऐसा हुआ हो। इसमें धैवत बिल्कुल नहीं है, और पूर्वाङ्ग में "प रे रे सा" है, इससे तो सारंग नहीं होगा। अतः हमारा समाधान नहीं होता।

उ०—छोड़ो भी। उसमें जो कहा है वही तो मैं कहूँगा। उनके मन में क्या था, मुझे क्या मालूम ? अब दक्षिण के ग्रन्थों की ओर हम अपनी दृष्टि डालें वहां पहिला ग्रन्थ रामामात्य का "स्वरमेल कलानिधि" है। उसमें ग्रन्थकार ने अडाना नहीं कहा। सोमनाथ पण्डित अपने रागविबोध में अडाना "कर्णाट" मेल में कहकर उसका स्वरूप इस प्रकार वर्णन किया है:—

पूर्णोऽड्डाणः पाद्यो धांशः सन्यास उल्लसेद्रात्रौ।

अर्थात् उसके मत से अडाना में पंचम मह, धैवत अंश तथा षड्ज न्यास हैं। उसके कर्णाट मेल के स्वर तुमको विदित ही हैं। गाने का समय रात्रि है, ऐसा वह लिखता है।

प्र० हां, उसके कर्णाटमेल में "सा ग़ ग म प ध नि" ऐसे स्वर हैं। परन्तु क्यों जी ! इतने संस्कृत ग्रन्थमत आपने बताये, उनमें कोई भी कोमल धैवत का उल्लेख नहीं करता है और देशी भाषा में लिखने वाले सभी अडाना में कोमल धैवत मानते हैं, यह एक महत्वपूर्ण बात नहीं है क्या ?

उ०—यही मैंने तुमसे अभी अभी कहा था। अब हम दक्षिण के चतुर्दण्डि-प्रकाशिका, सारामृत तथा रागलक्षण ग्रन्थों को क्रम से देखें। इनके पश्चात फिर और संस्कृत ग्रन्थ देखने की आवश्यकता नहीं।

प्र०—हां, यह भी आपका कहना ठीक है। जो अपनी समझ में न बैठे, ऐसी ग्रन्थोक्ति एकत्रित करने से क्या लाभ ? अच्छा तो व्यंकटमखी अडाना के सम्बन्ध में क्या कहते हैं, वह बताइये ?

उ०—वे इस राग स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहते। उन्होंने उन्नीस मेल तथा तज्जन्य पंचावन रागों के ही लक्षण कहे हैं। तत्पश्चात कुछ देशी रागों के नाम बताये हैं, उनमें "अडाना" भी एक है, किन्तु यह बातें मैं तुमको पहले बता चुका हूँ।

प्र०—तो पुनः एक बार और कहिये न ? अभी अडाना का वर्णन चल ही रहा है, अतः उसे दुबारा कहने में कोई हानि नहीं।

उ०—ठीक है। व्यंकटमखी कहते हैं:—

सुरटी दरबारश्च नायकी यमुना च सा।
पूर्व्याकल्याणठाणोऽपि बृन्दावनी जुजावती॥
देवगांधार परज् रामकल्यश्च शाहना।

× × ×

इसमें बहुत से उत्तर के हैं, यह ध्यान में रखने योग्य है।

प्र०—हां, ठीक है। अच्छा, अब तुलाजीराव अडाना कैसा कहते हैं?

उ०—वे व्यंकटमखी के अनुयायी थे। उन्होंने अडाना का बिलकुल वर्णन नहीं किया। हमारे यहां संगीत रत्नाकर के राग तथा उनके मेल छोड़ देने का जो कोई पण्डित प्रयत्न करते हैं उनको सारामृत ग्रन्थ के कुछ रागवर्णन उपयोगी होंगे, ऐसा मैंने पहले भी कहा था, वह तुम्हें याद होगा। तुलाजीराव ने अपने सिद्धान्तों के कारण नहीं बताये यह ठीक है, परन्तु उनके समय के पंडितों की इस राग के स्वरों के सम्बन्ध में क्या कल्पना थी, यह दिखाई देगा। आजकल "भिन्न षड्ज" की अपूर्व शोध करके "कोलंबस" का सम्मान प्राप्त करने वाले विद्वानों ने तुलाजीराव के मेल का कुछ उपयोग किया तो उनका ध्यान उसकी ओर जाये, ऐसी हमारी इच्छा है। दूसरे के ग्रन्थों में किया हुआ वर्णन अर्थात् दूसरों की जूठन हम क्यों लें? ऐसा भी कदाचित् उनकी समझ में आना सम्भव है। परन्तु हमारे कहने में क्या हर्ज है? उन्होंने वर्तमान लेखकों के रिवाज के अनुसार तुलाजी की उक्ति को तोड़ मरोड़ कर अपना एक निराला ही मत स्थापित करने का जो प्रयत्न किया है, हमें उसका कोई दुख नहीं।

प्र०—"वर्तमान लेखकों के रिवाज", कैसे?

उ०—अपने यहां आधुनिक सङ्गीत पर लिखे हुए ग्रन्थों की ओर ध्यान से देखें तो अनेक बार हंसी आती है। मानलो, अपने ग्रन्थ में मैंने कोई एक रागलक्षण लिखा। उसे कुछ लेखकों ने लेकर उसकी तोड़ मरोड़ करके अर्थात् मेरे लक्षण में 'ग म प' हुआ तो "प म ग' अथवा 'म प ग' अथवा और कुछ करके लिख दिया। मैंने कोई नियम कहा होगा तो वे यह लिख देंगे कि वादी संवादी का यह नियम गलत है। हम जो नियम लिख रहे हैं वही बहुजन संमत है।

प्र०—परन्तु उनको जैसी शिक्षा मिली वैसा उन्होंने लिखा, इसमें उनका क्या दोष?

उ०—उन लेखकों ने शिक्षा कहां, कब व कितनी प्राप्त की, इसका पता लगे तब न? सभी लेखक ऐसे हैं यह तो मैं नहीं कहता। परन्तु मेरी जानकारी के अनेक ऐसे हैं कि जनको उत्तम शिक्षण कभी मिला ही नहीं। उनके मन में जो आया, वह लिखा दिया। यह स्वतन्त्रता का युग है, इसलिये कौन किसे रोकने वाला है? कुछ लेखक तो एक का मेल दूसरे का वादी नियम, तीसरे का वर्ज्यावर्ज्य नियम अपने ग्रन्थ में लेकर यह लिख देते हैं कि प्राचीन शास्त्रों तथा गुणी लोगों के मत से ऐसा है। उनको संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं का काम चलाऊ ज्ञान भी नहीं! जहां कहीं उनकी स्वतः की पद्यरचना तथा उनके स्वर देखें तो उनमें अनेक विसंगति दिखाई पड़ती हैं, परन्तु आजकल अनुत्तरदायित्व के समय में ऐसा होना आश्चर्य की बात नहीं। दूसरों के ग्रन्थों से ज्यों के त्यों उद्धरण ले लेने पर अपनी विद्वत्ता कहां रहेगी? इस भय से उनको ऐसा करना ही पड़ता है। वे स्वयं अपनी प्रशंसा भी करते ही रहते हैं। और मजे की बात तो यह है कि जिनके उद्धरण लेकर ले उलटपुलट करते हैं, फिर उन्हीं को मूर्ख सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं तथा स्वयं बुद्धिमान बनने की चेष्टा करते हैं।

प्र०—परन्तु दूसरों के ग्रन्थों का उल्लेख करके, वे स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि मैं अमुक ग्रन्थ अथवा गुरु के आधार से ऐसा कहता हूँ ?

उ०—कौन से ग्रन्थ, वे उनको कहां से मिले, किसने समझाये, कहां समझाये, उनके गुरु का अधिकार कितना था, उसके अनुसार उनको राग नियम कौन से गुरु ने सिखाये, उस गुरु की व उनकी तालीम कितनी, कहां तथा कैसे हुई ? ये कठिन प्रश्न उत्पन्न होते हैं न ? आजकल तुम महाराष्ट्र में ही देखो, जिनको संस्कृत तथा अँग्रेजी ये दो भाषाएें अच्छी तरह आती हों तथा जो अच्छे गुरु के पास प्रत्यक्ष गायन सीखकर इस विषय पर लिखने के लिये प्रवृत्त हुए हों, ऐसे व्यक्ति मिलने बहुत ही कठिन होंगे। ऐसे लेखक, लोगों को बदनाम करते हुए कहते हैं कि हम अपने स्वर्गीय पिता के पास सीखे हैं । और फिर कहते हैं, यह हमारे घराने की परम्परा से ही चला आता है, मैं यह बातें अनुभव मे कहता हूँ । जिनको दस पांच ख्याल व ध्रुपद भी अच्छी तरह से गाने नहीं आते तथा संस्कृत ग्रन्थों में क्या कहा है तथा क्यों कहा है, यह भी पता नहीं, वे भी आज ग्रन्थकार के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं। वास्तव में सङ्गीत पर उपयोगी ग्रन्थ लिखने के लिये शास्त्र एवं कला इन दोनों का उत्तम ज्ञान होना चाहिये, परन्तु अब गायन पर भला बुरा लिखने की यत्र-तत्र प्रवृत्ति पैदा हो गई है, यही क्या कम है ? कुछ समय पूर्व "गायन पर ग्रन्थ" यह बात सुनते ही लोगों को आश्चर्य होता था । जो सुन्दर ग्रन्थ, अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखे गये होंगे वे तो चिरस्थायी रहेंगे ही। अस्तु, हम कहां बहते चले जा रहे हैं,इन बातों में हम तुलाजीराव को भी भूल गये। वह अच्छा लेखक था, उसने अपने ग्रन्थ में व्यंकटमखी तथा पुण्डरीक के नाम स्पष्ट दिये हैं।

प्र०—उसने रत्नाकर के कुछ रागों के जो मेल कहे हैं, वे कौनसे राग हैं ?

उ०—मैंने इन रागों का पहले एक बार उल्लेख किया है, तुमको याद नहीं रहा होगा।

प्र०—आपने अवश्य बताये थे, परन्तु उनको पुनः बतादें तो भी कुछ हानि नहीं है। अब हमारा भी ज्ञान भंडार समृद्ध होता जा रहा है, अतः इस जानकारी का आगे-पीछे हम उपयोग भी कर सकेंगे।

उ०—तो ठीक है, कहता हूँ। तुलाजीराव ने जिन रागों के स्वर दिये हैं वे इस प्रकार हैं:—

१-वेगवाहिनी, २-सिंधुरामक्री, ३-हेजिज्जी, ४-गांधार पंचम, ५-भिन्नपंचम, ६-वसन्त भैरवी, ७-भिन्नषड्ज इत्यादि। इनके मेल कहने से पूर्व तुलाजीराव का शुद्ध मेल पुनः एक बार कह देता हूँ:—

सर्वेषु रागमेलेषु मुखारीमेल आदिमः।
शुद्धैः सप्तस्वरैर्युक्तो मुखारीमेल ईरितः॥
चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।

द्विर्द्विर्निषादगांधारौ त्रिस्त्री ऋषभ धैवतौ ॥
शुद्धा इत्युक्तसंख्याकश्रुतिकाः साद्योमताः ।
अस्मिन्मेले मुखारीच ग्रामरागाश्च केचन ॥
लोकप्रसिद्धनामायं शास्त्रसिद्धाभिधस्त्वसौ ।
शुद्धसाधारित इति तुलजेंद्रेण निश्चितः ॥

आगे सुनोः—

शुद्धाः स्युः षड्जरिमपा गांधारोन्तरसंज्ञकः ।
पंचश्रुतिर्धैवतश्च कैशिक्याख्यनिषादकः ॥
मेलोऽयं वेगवाहिन्या एतैः सप्तस्वरैर्युतः ।
मेलेऽस्मिन् सांप्रतं वेगवाहिन्येकैव दृश्यते ॥
षड्जग्रहांशकन्यासा संपूर्णा वेगवाहिनी ।
स्वमेलजा दिनस्यान्ते ज्ञेया संगीतपारगैः ॥

इति वेगवाहिनी ।

शुद्धाः सपरिधाः साधारणगांधार एव च ।
अन्तराख्यनिषादोपि विकृतपंचममध्यमः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तः सिन्धुरामक्रिमेलकः ।
अस्मिन्मेले सिंधुरामक्रिया पन्तुवरालिका ॥
सिन्धुरामक्रिरागोऽयं संपूर्णः सग्रहांशकः ।
सायंकाले तुगातव्यः स्वमेलोत्थोऽत्वयं बुधैः ॥

यह अपने तोड़ी अथवा मुल्तानी रागों के मेल होंगे।

गांधारोंऽतर संज्ञोऽन्ये शुद्धाः षड्जादयः स्वराः ।
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तो हेजिज्जीरागमेलकः ॥
हेजिज्जी प्रमुखा रागा अस्मिन्मेले भवंति हि ।
हेजिज्जीरागः संपूर्णो यामेह्न गीयतेऽन्तिमे ॥
काकल्याख्यनिषादोऽन्ये शुद्धाः षड्जादयः स्वराः ।
युता एतैर्यत्रसामवराली मेलकस्तु सः ॥
अस्मिन्सामवरालो च रागो गांधारपंचमः ।
भिन्नपंचम रागाद्या अन्ये रागा भवन्ति हि ॥
शुद्धाः स्युः सरिमपधा गांधारोन्तरसंज्ञकः ।
कैशिक्याख्यनिषादश्च एतैः सप्तस्वरैर्युतः ॥

वसंतभैरवीरागमेलः स्यात्पंचमोऽल्पकः ।
मध्यमग्रामजन्यत्वसंदेहं जनयत्ययम् ॥
शुद्धाः स्युः सरिमपधा गः साधारणसंज्ञकः ।
काकल्याख्यनिषादश्च एतैः सप्तस्वरैर्युतः ॥
मेलः स्याद्भिन्नषड्जस्य भिन्नषड्जादयः पुनः ।
केचिद्रागा भवन्त्यत्र भिन्नषड्जश्च लक्ष्यते ॥
रिन्यासः प्रथमे यामे गेयोऽह्न गीतवेदिभिः ॥

इन सारे रागों के थाट तुम्हारे लिये सहज में ही समझने योग्य हैं। अतः उनका यहां वर्णन नहीं करता हूँ। इन रागों के स्वर तुलाजी को किस तरह मिले? यह प्रश्न तुम्हारे मन में उठेगा। सम्भवतः उसने कुछ रागों के स्वर व्यंकटमखी के ग्रन्थों से लिये होंगे तथा कुछ अपने अधीनस्थ विद्वानों के परम्परागत ज्ञान के आधार से उसने दिये होंगे। दक्षिण में वैष्णवों के कुछ मठ हैं, उनमें अलवार नामक भगवद्भक्तों के कुछ गीत रत्नाकर की "जाति" में बताये गये हैं, ऐसा सुनते हैं। संभवतः वे दो सौ वर्षों तक पर्याप्त उत्कर्ष की स्थिति में भी रहे होंगे। परन्तु इस चर्चा में हमें अधिक नहीं पड़ना चाहिए।

प्र०—हां, यह भी आपका कहना ठीक है। अडाना के सम्बन्ध में आगे चलने दीजिये?

उ०—अब इस राग के सम्बन्ध में विशेष कुछ कहने को शेष नहीं रहा, ऐसा मैं समझता हूं। अडाना को यदि ऊँचे स्वरों में गाया जाय तो बहुत अच्छा लगता है। तार षड्ज का इसमें साम्राज्य होने से ऐसा होता है। कोई चंद गायक अपना गायन समाप्त होने के पूर्व अन्त में "अडाना" जलद लय में गा जाता है। उसके ऐसा करने से, सामने बैठे हुये लोगों को कभी-कभी बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। ऐसी दशा में उसके बाद गाने वाले गायक की आवाज यदि अच्छी नहीं हुई और वह अडाना के पहले का कोई राग गाने लगा, तो उसका गाना जमने में बहुत समय लग जाता है।

प्र०—यह समझ गये। अब हमको अडाना राग का थोड़ा सा विस्तार करके दिखा दीजिये?

उ०—हां, सुनोः—

म म सा प म म सा
सा, नि़ सा, ग, म, पग, म रे सा, नि़ सा रे म रे सा, नि प, ग, म प ग म, रे.
म म नि नि नि म
सा। नि़ सा, रे नि़ सा, म, ग म, नि प, ध ध नि प, म प सां, ध, नि प, म प ग, म,
सा म म नि नि नि नि नि
रे सा। प म प, ग, म, नि प, ध ध सां, नि सां, रें सां, ध ध नि प, म प ध, सां ध नि

प म सा
सां, नि प, म प नि ग म, रे, सा ।

म म नि नि नि नि म
सा, रे सा, ग म रे सा, प ग म रे सा, ध ध नि प, म प ध सां ध, नि प, म प ग
म म सा
ग म, नि प, म प ग म, रे सा ।

म
सा, रे सा, ग म प ग म रे सा, नि सा रे म प ग म प ग म रे सा, नि नि प म
म पं
प ग म प ग म रे सा, सां ध, नि प म प ग म प ग म रे सा, रें रें सां, नि प म प सां ध
म सा
नि प, म प ग म, रे, सा ।

नि नि नि मं
सां, नि सां, ध नि सां, म प ध सां, ध सां, रें सां, गं मं रें सां, नि सां रें, सां, ध
मं सां निनि
नि सां म प सां ध नि प, गं मं रें सां, नि, सां, रें सां, ध ध नि प, म प सां, ध नि प, म
म सा
प नि ग म, रे, सा ।

नि नि नि मं
म प ध ध ध सां, नि सां, नि सां, रें, सां, नि सां रें ध नि प, म प नि सां रें गं
सां प म सा
मं, रें, सां, नि सां रें ध, नि प, म प सां, नि प, म प ग, म, रे, सा ।
नि नि नि नि नि
ध नि सां, रें सां, ध सां, म प ध, सां, नि सा रे म प ध, सां ध सां, रें मं रें सां,
मं नि नि म सा
गं मं पं गं मं रें सां, मं मं रें सां, नि सां रें ध, सां, ध, नि प, म प ग, म, रे, सा ।

मेरी समझ से तुम जैसे जिज्ञासुओं को इस विस्तार से राग की कल्पना सहज ही हो जायगी ।

प्र०—वह हमको अच्छी प्रकार होगई है । अब इस राग के लक्षण श्लोकों में कहिये ?

उ०—वैसा ही करता हूं:—

आसावरीसुमेलाच्च जातोऽड्डाणो गुणिप्रियः ।
आरोहे हीनगांधारो धगवक्रो विलोमके ॥
षड्जवादी पसंवादी गीयते प्रायशो जने ।
गानं चास्य समीचीनं तृतीयप्रहरे निशि ॥

दौर्बल्याद्धगयोः किंचित्सारंगांगं भवेत्स्फुटम् ।
विलोमे पगसंगत्या भवेत्तदपवारणम् ॥
कर्णाटके यथा प्रोक्ता मंद्रमध्यविचित्रता ।
तारमध्यगता चात्र प्रोच्यतेऽसौ विचक्षणैः ॥
कर्णाटमेलने प्रोक्तो रागोऽयं लोचनादिकैः ।
तीव्रधैवतगांधारो न तल्लक्ष्येऽद्य संमतम् ॥
मग्रहस्तारषड्जांशः प्रतिलोममनोहरः ।
तृतीययामके रात्र्यां नूनं स्यादतिरक्तिदः ॥

लक्ष्यसंगीते ।

रागोऽड्डाणः प्रसिद्धो मृदुनिगमयुतस्तीव्रधस्तीव्ररिश्च
तारः षड्जोऽत्र वादी सहचरति सदा पंचमो मध्यसंस्थः ।
आरोहे दुर्बलौ तौ भवत इह धगौ धं मृदुं केचिदाहुः
कर्णाटस्यैव भेदः सरससुमधुरं गीयतेऽसौ निशिथे ॥

(कल्पद्रुमांकुरे ।

कोमला निगमास्तीव्रौ रिधावंशस्तु तारसः ।
पसंवादी मतोऽड्डाण आरोहे धगदुर्बलः ॥

चंद्रिकायाम् ।

तीवर रिध कोमल निगम धगदुर्बल दरसाहि ।
पसंवादी वादिवें कहत अडाणा ताहि ॥

चंद्रिकासार ।

मपौ धसौ धनी पश्च मपौ ममौ रिसौ तथा ।
तारषड्जांशकोऽड्डाणो रात्र्यां तृतीययामके ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—ये श्लोक उत्तम हैं । अब एक दो अडाना की सरगम और बता दीजिये, फिर इस राग की ओर नहीं देखना है ।

उ०—हां, वह भी कहता हूं । सुनो:—

अडाणा—झपताल

सां	सां				सां		नि॒		
नि	नि	सां	ऽ	रें	नि	सां	ध॒	नि॒	प
×		२			०		३		
प					प		म	म	
म	प	सां	ऽ	सां	नि॒	प	ग॒	ग॒	म
प		प			म		सा		
म	प	नि॒	म	प	ग॒	म	रे	रे	सा
सां		मं					नि॒		
नि	सां	रें	मं	रें	सां	ऽ	ध॒	नि॒	प ।

अन्तरा.

प		नि॒	नि॒	नि॒					
म	प	ध॒	ध॒	ध॒	सां	ऽ	नि	सां	ऽ
×		२			०		३		
सां							नि॒		
नि	सां	रें	रें	सां	नि	सां	ध॒	नि॒	प
मं	मं			मं			सां		
ग॒ं	ग॒ं	मं	पं	ग॒ं	मं	रें	रें	सां	ऽ
सां		मं					प		
नि	सां	रें	मं	रें	सां	ऽ	नि॒	म	प ।

संचारी.

प					नि॒	नि॒	प	प	
म	म	प	ऽ	प	ध॒	ध॒	नि॒	नि॒	प
×		२			०		३		

		त्रि त्रि	प
म प	सां ऽ सां	ध ध	नि प ऽ
×	२	०	३
म	म	म	
रे म	नि नि प	ग म	रे रे सा
सा	म		प
नि सा	रे म म	प प	नि नि प

—————

आभोग.

प	त्रि त्रि त्रि		त्रि
म प	ध ध ध	सां ऽ	ध नि सां
×	२	०	३
सां			त्रि
नि सां	रें मं रें	सां ऽ	ध नि प
पं	मं मं		
मं पं	गं गं मं	रें सां	रें नि सां
			नि
नि सां	मं रें सां	नि सां	ध नि प

—————

अडाणा–त्रिताल. (मध्यलय)

प	त्रि त्रि		सां
म म प प	सां ऽ ध ध	नि सां ऽ रें	नि नि सां ऽ
०	३	×	२
प	प ध	म म	
म प सां ऽ	नि नि प प	ग ग म सा	रे रे सा ऽ

सा म	नि̱ नि̱		
नि़ सा रे म	प प ध̱ ध̱	रें सां ऽ रें	नि नि सां ऽ
मं		नि̱	
नि सां रें मं	रें सां नि सां	नि सां रें ध̱	ऽ नि̱ ऽ प।

अंतरा.

प	नि̱ नि̱		
म म प प	ध̱ ऽ ध̱ ऽ	सां ऽ ऽ ऽ	नि नि सां ऽ
०	३	×	२
सां मं		सां नि̱	
नि सां रें मं	रें सां नि सां	नि सां रें ध̱	ऽ नि̱ ऽ प
मं मं	मं		नि̱ नि̱
ग̱ं ग̱ं मं पं	ग̱ं मं रें सां	नि सां रें सां	ध̱ ध̱ नि̱ प
म म प प	इ०		

मेरी समझ से अब और सरगमों की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

प्र०—इतना पर्याप्त है। यह राग भी भली प्रकार समझ में आगया। अब आगे का लीजिये ?

उ०—मित्र ! आसावरी थाट से उत्पन्न होने वाले जिन जन्य रागों के बारे में कहने का मैंने विचार किया था, उनमें से अब केवल तीन ही शेष रहे हैं। वे इस प्रकार हैं:—कौंसी, झीलफ तथा सिंधभैरवी।

प्र०—हां, ठीक है।

आसावरी जौनपूरी गांधारो देवपूर्वकः।
सिंधुभैरविका देसी षड्रागः कौशिकस्तथा ॥

दरबार्याख्यकर्णाटः कर्णाटोड्डाणपूर्वकः ।
नायकीसहिता एते ह्यासावरीसुमेलने ॥

इस थाट के उपरोक्त रागों का हम वर्णन करने वाले थे । इनमें से आसावरी, जौनपुरी, देवगांधार अथवा गान्धारी, देसी, खट, दरबारीकानडा तथा अडाना तो हो गये हैं। अब कौंसी, झीलफ, सिंधभैरवी तथा नायकी ये चार शेष रहे हैं।

उ०—हां, खूब याद रक्खा ! नायकीकानडा में कभी कभी धैवत कोमल लिया हुआ सुनने में आता है, इसलिये इसके सम्बन्ध में भी दो शब्द मैं कहना चाहता था। वस्तुतः यह प्रकार हम गाते नहीं तथा इसे मान्य भी नहीं करते ।

प्र०—परन्तु नायकी में धैवत लिया जाय तो उस राग प्रकार की दरबारी तथा अडाना रागों से उलझन नहीं होगी क्या ? वह राग प्रारम्भ कैसे करते हैं ?

उ०—ऐसा प्रकार रामपुर में ताजखां, अहमदखां के घराने के एक वंशज द्वारा एक बार गाया हुआ मैंने सुना था; वह कुछ इस प्रकार था:—

नि म ग प म म प नि प
सा ग, (आंदोलित) म रे, सा, सा, ग प, प, प सां (दीर्घ) ध (आंदोलित) नि
म म प नि म री
प, म, ग, प ग (आंदोलित) प, नि म प, मप, ग (आंदोलित) म रे, सा रे नि सा ॥

प्र०—यद्यपि इस प्रकार में 'रि प' संगति नहीं, तथापि यह कुछ स्वतन्त्र जैसा अवश्य दीखता है; आगे उसने अन्तरा कैसा गाया ?

उ०—सम्भवतः ऐसा गाया था:—

नि रें नि म मं मं सां
सां, सां, सां, रें नि सां सां, ध (आन्दोलित) नि प, म नि प, सां, गं गं मं रें सां,
प प म
रें नि सां, सां, नि प, ग ग म, रे, सा । यह प्रकार शाहजादा छमनसाहेब ने भी सुना था। उन्होंने इसे मुझ से संग्रह में रखने के लिये कहा था । वे स्वयं नायकी में धैवत वर्ज्य मानते थे । नायकी में जो कोई धैवत लेते हैं वे उस स्वर का प्रमाण बहुत कम रखते हैं,
नि नि
इसमें संशय नहीं । कोई स्थाई में धैवत बिलकुल न लेकर अन्तरा में कहीं 'सां, ध ध नि प' इस प्रकार से लाने का प्रयत्न करते हैं।

प्र०—ऐसा वे क्यों करते हैं ?

उ०—इसलिये कि हमारा राग दरबारी तथा अडाना में मिल न जाय । उनको
म म सा
राग नियम कायम करना तो आता ही नहीं। "ग ग म, रे, सा" यह भाग तो पूर्वाङ्ग में

प म म नि नि नि
लाना ही पड़ेगा और नि प, ग ग म, नि प, ध ध ध नि प, ये टुकड़े उत्तरांग में आयेंगे
सा
ही। नायकी का प्रस्तार तारसप्तक में विशेष नहीं करना चाहिये तथा पूर्वाङ्ग में नि सा रे
सा म सा
रे, ग (आन्दोलित) रे, सा' ऐसी दरबारी की छाप भी नहीं लानी चाहिये; इस अनुमान से वे अपना राग कायम करते हैं। मैं स्वयं धैवत वर्ज्य किये जाने वाले मत को पसन्द
स ध म म प प प म म स
करता हूँ। नि नि प, प म, प, म, प, रे म, प, म प, नि प, सां नि प, ग ग, म, रे सा।
नि प सां नि नि म म सा
सां सां, सां, सां नि प, नि सां रें सां, सां रें ध ध नि प, म, म प, सां ग ग, म, रे सा।
नि
ऐसा नायकी प्रकार एक गायक ने मेरे सामने गाया था। उसने कहा इसमें "ध, नि सां"
नि
अथवा "ध सां, नि प" ऐसा हम नहीं करते अस्तु, जब हम यह प्रकार गाते ही नहीं तो इसकी विशेष चर्चा करना भी पसन्द नहीं करेंगे।

प्र०—तो फिर अब कौंसी, झीलफ तथा सिंधभैरवी ये तीन राग रहे। इनमें से कौनसा लेना चाहिये ?

उ०—इन तीन रागों में से सिंधभैरवी अथवा सिंधुभैरवी यह एक क्षुद्रगीतों से युक्त प्रकार है। इसमें ख्याल तथा ध्रुपद गाये हुए सुनने में नहीं आते। अतः कुछ गायक इसे एक भैरवी प्रकार मानते हैं। ये राग एक दूसरे के बहुत निकट हैं।

प्र०—तो फिर भैरवी पहले बताकर फिर सिन्धुभैरवी कहें तो कैसा रहेगा ?

उ०—यही मैं सोच रहा था। मेरी समझ से ऐसा करना सुविधाजनक ही होगा। जैसे आसावरी तथा जौनपुरी निकटवर्ती राग हैं; वैसे ही कुछ अंशों में भैरवी तथा सिंधभैरवी के सम्बन्ध में कह सकेंगे।

प्र०—तो फिर भैरवी वर्णन पूरा होने पर ही सिंध भैरवी हमको बताइये ताकि उसकी पर्याप्त चर्चा हो सके ?

उ०—हां, यह भी ठीक है। पहिले हम "कौंसी" राग पर विचार करें। इस राग को प्रारम्भ करने के पूर्व एक दो बातों की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करता हूं। पहिली तो यह कि कौंसी तथा मालकंस को भिन्न-भिन्न राग मानने का व्यवहार है, दूसरी यह कि ग्रन्थों में "कौंसी" नाम न होकर "कौशिक" दिखाई देगा। हमारे मालकौंस को ग्रन्थकार "मालवकौशिक" अथवा "मालकोश" (मालकंस) कहेंगे। 'कौशिक कानड़ा' एक कानड़ा प्रकार है, ऐसा गायक मानते हैं तथा इसे वे अप्रसिद्ध राग भी कहते हैं।

प्र०—तो फिर उसके स्वरूप के सम्बन्ध में मतभेद होगा, ऐसा प्रतीत होता है ?

उ०—यह तुम्हारी शंका उचित है। अप्रसिद्ध राग आया कि वहां मतभेद सामने आये, और मतभेद आने पर फिर क्यों व किसका सही है ? यह प्रश्न आयेगा ही।

उसके पश्चात् हम कौनसा मत मानते हैं, यह कहना ही पड़ेगा। मैं मुख्यतः अप्रसिद्ध रागों के सम्बन्ध में जयपुर के मुहम्मदअली खां साहेब को तथा रामपुर के नवाब साहेब के गुरु वजीर खां, इन दोनों की परम्परा मानता हूँ, यह तुमको विदित हो ही गया है। रामपुर के शाहजादा छमन साहेब, तानसेन के घराने के मुहम्मदअली खां की परम्परा तथा प्यारखां, जाफरखां की परम्परा के बहादुरहुसैनखां की परम्परा को मानते थे। वे तानसेन की परम्परा के अनुयायी थे, इसी कारण मैं उनका मत मान्य करता हूँ। ऐसी स्थिति में मुहम्मदअलीखां तथा छमन साहेब को भी मैं गुरुस्थान पर मानता हूं। यह तुम्हें विदित ही है। कहने का तात्पर्य यही है कि अप्रसिद्ध राग अन्य गायकों ने कैसे भी गाये, तो भी यदि वे मेरी गुरू परम्परा से नहीं मिलते तो उनका मत मुझे ग्राह्य नहीं होगा। यह बुरा है अथवा यह गलत है ऐसा भी मैं नहीं कहूंगा। इसके विपरीत वे मुझे अच्छे लगे तो मैं उनका संग्रह तो कर लूंगा, परन्तु उस मत के आधार से अपने गुरू द्वारा सिखाये हुए गीतों में संशोधन नहीं करूँगा।

प्र०—आपका यह विचार हमें बहुत पसन्द है। ऐसा हेर-फेर करने से "बूढ़ा और उसका बैल" इस कहावत जैसा प्रसंग कभी आ सकता है। अस्तु, अब कौंसी के सम्बन्ध में आगे चलिये?

उ०—हां, हम मतभेद के सम्बन्ध में बोल रहे थे। अप्रसिद्ध राग भरी सभा में कोई गायक नहीं गाता। इसके दो-तीन कारण हैं। पहिला यह कि प्रायः वे राग किसी के सुनकर उड़ाये हुए होते हैं, दूसरा यह कि उनको अपने रागों के नियम विदित न होने के कारण अपना गाया हुआ प्रकार सही है अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में स्वयं निश्चय नहीं होता और तीसरा कारण यह है कि सभा में स्वर-ज्ञानी तथा रागज्ञानी श्रोता अथवा गायक-वादक हुए तो अपना राग उड़ा लेंगे, यह उनको भय रहता है।

प्र०—परन्तु यदि किसी ने सभा में अप्रसिद्ध राग की फरमाइश की तो?

उ०—तो उस राग के निकट का कोई राग गाने लगते हैं, और यह न हो सका तो फरमाइश किये हुए राग में परिचित चीज न गाकर कोई नये बोल लगाकर सैकड़ों तानें लेते रहते हैं और चीज को पूरी न करके जब तक लोग ऊब न जायें तब तक वे उसे "पीसते" रहते हैं।

प्र०—परन्तु यह अधम कार्य नहीं है क्या?

उ०—हम तुम ऐसा कह सकते हैं; परन्तु कुछ गायकों के लिये तो यह भूषण ही समझा जायेगा। क्योंकि हमारे समाज में ऐसे अनेक श्रोता निकलेंगे, जो इस कृत्य की प्रशंसा ही करेंगे! वे कहेंगे, "क्या मजा है, देखिये! गायक ने एक घन्टे में सैकड़ों तानें लेकर दिखाईं और सभा में बड़े-बड़े समझदार बैठे थे, परन्तु क्या मजाल जो कोई उसका राग पहचान ले। एक तान एक तरह की, तो दूसरी में स्वर निराले ही। यह काम ये ही लोग कर सकते हैं, पण्डित जी! हमारे शास्त्री पण्डितों को तो मुँह से केवल गप्पें हाँकना ही आता है! ऐसे गायकों की एक तान से वे कहीं के कहीं उड़ जायेंगे।"

ऐसे श्रोताओं पर क्रोध आने की अपेक्षा हमें तरस ही आता है। गायकों का पूर्व इतिहास, उनकी तालीम, उनकी परम्परा, उनका ज्ञान तथा उनके सम्बन्ध में अन्य विद्वान गायकों के मत, इन बातों के सम्बन्ध में ऐसे श्रोताओं को लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता। उन श्रोताओं को स्वर तथा राग का भी बहुत कम ज्ञान रहता है। उनको इस बात की कल्पना भी नहीं होती कि आजकल के हमारे विद्वानों का ज्ञान कितना परिष्कृत हो चुका है। इस बात की कल्पना श्रोताओं की अपेक्षा सभा में गाने वाले गायकों को पूर्णरूप से हो गई है। ऐसे पण्डित सभा में हुए तो गायकों का गाना पहले ही आधा रह जाता है और ऐसे समय यदि अप्रसिद्ध राग की फरमाइश होगई तो उनकी मुसीबत ही आ जाती है। अव्वल तो वे बेचारे वैसा राग वहां गाते ही नहीं और यदि गाने ही लगे तो उस पण्डित को लक्ष्य करके कहते हैं, "साहब! आपके सामने ऐसे राग गाना हमें पहाड़ सा मालूम होता है। आपने अच्छे-अच्छे लोगों को सुना है और उनसे सीखा है, अब हम आपको क्या खुश कर सकते हैं? हां, पेट के वास्ते चिल्लाना है। जो कुछ बुरा बावला है सो आपके सामने रखते हैं। सच्चा झूंठा आप अपना देख लीजियेगा। पढ़ते-लिखते तो हम हैं नहीं, न हम ऐसे रागों के सुर बेवरे (स्वर-विवरण) समझते हैं।"

एक दृष्टि से ये बिचारे सच ही कहते हैं। उनको रागों के सामान्य नियम बताने कौन बैठा है? कुछ यहां से उड़ाया कुछ वहां से उड़ाया, ऐसा करके उन्होंने संग्रह किया होगा तो वे हमारे रागों की क्या चर्चा करेंगे? परन्तु सौभाग्य से अब इस विषय में कुछ सुधार दिखाई देने लगा है। अप्रसिद्ध रागों का भी विवाद अब काफी कम हो गया है। अशिक्षित पुराने गायक भी अब धीरे-धीरे स्वरज्ञानी तथा रागज्ञानी तरुण एवं उत्साही श्रोताओं के सन्मुख गाने का साहस करने लगे हैं। यह सब समय का प्रभाव है। जिस प्रकार बूढ़े पहलवान नवीन पीढ़ी से कुश्ती लड़कर अपनी कीर्ति खोने को तैयार नहीं होते; उसी तरह हमारे पुराने अशिक्षित गायकों का भी विचार हो तो इसमें क्या आश्चर्य? उन्होंने जब बड़े-बड़े दंगल मारे थे तब श्रोताओं में इस विषय की इतनी अभिरुचि व इतनी विद्वता नहीं थी। परन्तु आज के श्रोताओं में स्वयं चार-चार पांच-पांच सौ चीजें गाने वाले तथा उनके राग नियमों को जानने वाले निकल आते हैं, तब उनके सामने पहिले जैसी धांधली चलने वाली नहीं है, यह वे जानते हैं।

प्र०—कोई वृद्ध गुणी, तरुण गुणी की बराबरी नहीं कर सकता, यह बात समझ में आने योग्य है क्या?

उ०—ऐसा वृद्ध गुणी यदि वास्तव में विद्वान हुआ तथा अच्छी घरानेदार तालीम का हुआ और उसने सभा में अपनी चीज ठीक ढङ्ग से, योग्य नियमों को साधकर गाई तो उसकी ओर कोई उंगली नहीं उठा सकेगा। हमारे विद्वान यह नहीं कहते कि वृद्ध को तरुण का काम करना ही चाहिये, वे तो केवल उनके दंभ तथा ढोंग का तिरस्कार करते हैं। मैं बंगाल प्रान्त में पच्चीस वर्ष से नहीं गया। अतः वहां के विद्वान सङ्गीत विषय में अब कितने आगे बढ़ गये हैं, यह मुझे पता नहीं। परन्तु अन्य प्रान्तों में विभिन्न प्रकार के उत्तम अप्रसिद्ध राग गाकर दिखाने वाले पुराने गायक अब उँगलियों पर गिनने लायक

भी होंगे अथवा नहीं, कौन जाने ? ऐसी दशा में जो राग पन्द्रह वर्ष पूर्व अप्रसिद्ध गिने जाते थे, वे अब हमारे अच्छे परिचित रागों में हैं। उस समय जो अप्रसिद्ध राग विवादग्रस्त थे वे आज समझ में आने लगे हैं। यदि यह विवाद समाप्त होजाय तथा उसके सम्बन्ध में कुतूहल होना बन्द हो जाय तो हमारे विद्वानों तथा गायकों का अज्ञात, किन्तु ग्रन्थाश्रित रागों की ओर प्रवृत्त होना स्वाभाविक होगा। इस प्रकार के उत्तम नियमों के राग, ग्रन्थों में सैकड़ों की संख्या में मिल सकते हैं। परन्तु चलो मित्र ! अब यह विषयान्तर छोड़कर हम अपने विषय की ओर बढ़ें ?

प्र०—हां, "कौंसी" राग के सम्बन्ध में मतभेद है, ऐसा आप कहते थे ?

उ०—ठीक है। समाज में "कौंसी" राग बहुधा दो तरह के गाया हुआ सुनने में आता है। एक तरह के कौंसी में बागेश्री अंग तथा दूसरे में मालकंस अङ्ग दिखाते हैं।

प्र०—तो फिर ये दोनों प्रकार हमारे स्वरूप से पृथक होते होंगे ?

उ०—उसमें सारी भिन्नता धैवत से उत्पन्न होती है। बागेश्री अङ्ग के कौंसी में तीव्र धैवत तथा मालकंस अङ्ग के कौंसी में वही स्वर कोमल लेते हैं। इन दोनों प्रकारों में से बागेश्री अंग का प्रकार समाज में विशेषरूप से दृष्टिगोचर होता है। मालकंस अङ्ग का प्रकार उसकी अपेक्षा कम दिखाई देगा।

प्र०—परन्तु बागेश्री एक कानडा प्रकार है तथा कौंसी भी कानडा ही हुआ, तो बागेश्री अंग का कानडा प्रकार पृथक कैसे होगा ?

उ०—ऐसी शंका तुम्हारे जैसे जिज्ञासु के मन में उत्पन्न होना स्वाभाविक है। बागेश्री से कौंसी पृथक सम्भालना कुछ कठिन ही है। बागेश्री के नियम तो ढक जायेंगे, स्वर बागेश्री के होंगे, वादी बागेश्री का ही होगा, इन तमाम बातों को साधकर कौंसी गाना अधिकांश गायकों के बस का रोग नहीं रहता। मुझे याद है, एक बार मैं व मेरे एक स्नेही संगीतज्ञ एक प्रसिद्ध नरेश के विशेष निमन्त्रण पर अतिथि बनकर उनकी राजधानी में गये थे। वहां एक ख्याति प्राप्त गायक का सभा में गायन चल रहा था। कर्म-धर्मसंयोग से उनसे किसी ने "कौंसी कानडा" गाने की फरमाइश की। फरमाइश सुनकर तुरन्त ही "कोन गत भई" ऐसे शब्दों की चीज उस गायक ने प्रारम्भ की तथा आड़ी-टेढ़ी तानें मारनी शुरू कीं। उसी महफिल में ग्वालियर के ख्याल सुने हुए एक गृहस्थ मौजूद थे। उन्होंने उस गायक से कहा, "क्यों जी ! "कौन गत भई" यह चीज तो ग्वालियर में बागेश्री की प्रसिद्ध है। वह कौंसी कब से हुई ? तुम तो अभी बागेश्री जैसा ही गारहे हो। इन दोनों रागों में तुम कैसा व कहां अंतर रखते हो ?"

प्र०—उसे ग्वालियर की चीज तथा वहां बागेश्री में उसे गाते हैं, ऐसा विशेष-रूप से उन्होंने क्यों कहा ?

उ०—इसका कारण यह होगा कि वह गायक अपनी परम्परा ग्वालियर के हद्दू-हस्सू खां से बताते है, ऐसा उस गृहस्थ ने सुना होगा। यद्यपि वह गायक स्वतः ग्वालियर का नहीं था।

प्र०—यह तो बड़ी मजेदार बात है। अच्छा, फिर क्या हुआ?

उ०—फिर क्या, गायक तनिक सकपका कर बोले, "हां साहेब, यह चीज ग्वालियर में बागेश्री में ही गाते हैं यह मुझे पता है, परन्तु हम उस राग को कौंसी कहते हैं। हम बागेश्री और कौंसी एक ही समझते हैं।" उसका यह उत्तर सुनकर मेरे साथी हँसने लगे; वे सभ्य थे और वह गायक बिचारा पैसे कमाने के लिये आया था, इस बात को ध्यान में रखकर उन्होंने इस विवाद में आगे भाग नहीं लिया।

प्र०—परन्तु उस गायक को उसके गुरु ने कौंसी और बागेश्री को एक ही राग बताया होगा, तो फिर वह और क्या उत्तर दे सकता था?

उ०—ऐसा उसके गुरु ने कहा होगा, यह हम नहीं मानते, क्यों कि उसके गुरु को कौंसी याद नहीं थी। इतना ही नहीं, बल्कि ग्वालियर में कौंसी गाते समय मैंने किसी को सुना ही नहीं। उस गायक के गुरु हमारे सुपरिचित ही थे। उस बिचारे को चालीस राग से अधिक नहीं आते थे। यद्यपि वह गायक बहुत उच्चकोटि के थे, परन्तु उनको अपने अप्रसिद्ध राग प्राप्त नहीं हुए, ऐसा वे स्पष्ट कहते थे। साथ ही वे निरक्षर भी थे, इस कारण विभिन्न प्रकार के रागों की छानबीन तो वे क्या करते? अतः उन पर हंसने का भी कोई कारण नहीं। जो राग उनको आते थे, वे उन्हें बहुत सुन्दर गाते थे। उनके अनेक शिष्य आज महाराष्ट्र में उनके नाम पर पेट भर रहे हैं। अशिक्षित गायक वादकों से रागों के सूक्ष्म भेद की चर्चा यथासंभव नहीं करनी चाहिये, यह तुमसे मैंने कहा ही है।

प्र०—हां, आपका यह कथन हमारे ध्यान में है। यदि कौंसी में ऐसा मतभेद हुआ तो हम कौनसा मत स्वीकार करें?

उ०—मेरी समझ से तुमको ये दोनों मत मान्य करने पड़ेंगे। ऐसी दशा में मालकंस अङ्ग की कौंसी तुमको बहुत ही कम सुनने का प्रसङ्ग आयेगा। तुमको बहुधा बागेश्री अङ्ग की ही अधिक दिखाई देगी।

प्र०—अर्थात् इस कौंसी में "मध निध मग॒, मग॒ रेसा" यह भाग आता रहेगा, ऐसा प्रतीत होता है?

उ०—नहीं, यह भाग आया तो उस राग को तुम्हारे श्रोता "बागेश्री" कायम कर देंगे। ऐसा भाग तो टालने में ही सब चातुर्य है।

प्र०—अच्छा, मालकंस अङ्ग की कौंसी कैसी दिखेगी?

उ०—उसमें तुमको प्रायः बागेश्री तथा मालकन्स का संयोग दिखाई देगा! इन दोनों रागों का संयोग उत्तरांग में होना कठिन ही है; क्यों कि मालकन्स में धैवत कोमल तथा बागेश्री में वही तीव्र होता है।

प्र०—तो फिर उत्तरांग में यह योग कैसे निभाया जा सकता है?

उ०—जिन्होंने मुझे इस अङ्ग की चीज सिखाई थी उन्होंने अन्तरा स्पष्ट मालकंस के स्वरों में गाया था, परन्तु समाप्ति के समय मालकंस में वर्जित स्वर बड़ी खूबी से लगाये। पूर्वाङ्ग में मध्यम बढ़ाया और वहां से जब वे षडज से जाकर मिले तब क्षण-भर मुझे भीमपलासी की भी याद आई। नि़सा म, मग॒ पग॒, मग॒रेसा, यह भाग बागेश्री तथा भीमपलासी दोनों में साधारण है।

प्र०—तो फिर उन्होंने इस राग का प्रकार कैसा गाया, यह हमको धीरे-धीरे समझायेंगे क्या?

उ०—हां, हां, अवश्य समझाऊँगा। उन्होंने अपनी चीज इस प्रकार प्रारम्भ की। देखो:—

सा, म, म, म ग॒, प ग॒, म ग॒ रे सा,

प्र०—हां! तो फिर उसमें भीमपलासी का भास होगा ही। अच्छा, आगे चलिये?

उ०—हां! सा, म, म, म ग॒, सा, नि॒ ध॒, सा, म, म ग॒, रे ग॒, प ग॒, म ग॒, रे सा, सा नि॒ ध॒, नि॒ सा, सा, म, ग॒, प ग॒, रे, सा। इस तरह से उन्होंने अपनी चीज की स्थाई रखी।

प्र०—फिर, आगे अन्तरा?

उ०—अन्तरा उन्होंने इस प्रकार गाया, देखो:—

ग॒, म नि॒ ध॒, नि॒ सां, नि॒ सां, नि॒ सां, मं ग॒ं, मं ग॒ं रें सां, सां नि॒ ध॒, म, ध॒, नि॒ सां, सां नि॒ ध॒, नि॒ ध॒, म ग॒, रे ग॒, ग॒ म, नि॒ ध॒, नि॒ सां, सां, नि॒ ध॒, नि॒ ध॒ म, म ग॒, प, म ग॒, रे, सा, सा, म इ०!

प्र०—इस प्रकार में बागेश्री तो हमको कहीं नहीं दीखती, पण्डित जी!

उ०—इसमें बागेश्री है, ऐसा मैं भी तो नहीं कहता? यह निराला ही प्रकार मानना पड़ेगा। कोई कहेंगे स्थाई एक राग की तथा अन्तरा दूसरे राग का, ऐसा

प्रकार होने से यह राग सागर का उदाहरण नहीं होगा क्या ? उनको इस बात का यही उत्तर दिया जा सकता है कि उन गायकों ने मुखड़ा मिलाने के समय अस्थाई का भाग शामिल करके अपना कृत्य सुसङ्गत कर लिया है। प ग, म ग रे सा यह टुकड़ा कुछ बागेश्री अङ्ग सामने लायेगा।

प्र०—परन्तु ऐसे प्रकार का विस्तार कैसा करेंगे ?

उ०—हां, वास्तव में यह जरा कठिन हो जायेगा। मेरी समझ से उसके पूर्वाङ्ग में किंचित् भीमपलासी तथा बागेश्री का योग करना पड़ेगा। आरोह में ऋषभ आया तथा उसी तरह धैवत आया तो भीमपलासी तुरन्त ही दूर हो जायेगा।

म म म
"नि सा, म, म, म ग, म ग, रे ग, प ग म ग रे सा, नि ध म, रे सा, ग,
म म सा
रे सा, म, प, प, म ग रे ग, म प ग, रे, सा, नि सा रे सा, नि ध सा, म प,
म म सा नि म म
सा, ग, म ग, पग, म ग रे सा, नि सा म,। ध नि सा, रे ग, रे ग, रे सा, म, प ग,
म म म म
ग, रे ग, रे सा म, सा म, प ग, सा म ध म, ग, नि ध म, ग, प ग, म ग रे सा, नि सा,

म, म, नि, सा म, प ग, म ध नि ध म, सां नि ध म, ग, प ग, म ग, रे सा, नि सा, म,
म ध नि सां ध नि सां, सां, नि ध नि ध म, मं गं मं गं रें सां, सां नि ध, नि ध, म, ग,

प ग, म ग रे सा नि सा म।

इस तरह से इस प्रकार का विस्तार होगा। परन्तु यह कठिन है, यह मैं कह ही चुका हूं। मेरे गुरु जयपुरवासी मुहम्मदअली खां ने यह प्रकार मुझे बताया और कहा कि मुझे इसमें यही बस एक चीज आती है। उन्होंने विस्तार इसी तरह से करके मुझे दिखाया। इसमें बागेश्री तथा मालकंस का थोड़ा बहुत योग अवश्य दिखाई देगा। तुम यह राग किसी अच्छे घराने के गायक से सुनकर इसकी खूबियां और अच्छी तरह ध्यान में रख लेना, ताकि तुम भी इसे अच्छी तरह गा सको। परन्तु भरी महफिल में जब कि अन्य गायक-वादक भी वहां बैठे हों, तब इस राग की फरमाइश नहीं करनी चाहिये। अन्यथा एक बार मेरे साथ जो प्रसङ्ग आया था, वही आयेगा।

प्र०—आपके साथ कौनसा प्रसङ्ग आया ? आपने ऐसी फरमाइश सभा में किसीसे की थी क्या, जो इतना वितण्डावाद हुआ ?

उ०—नहीं, नहीं, मैंने स्वयं कोई फरमाइश नहीं की तथा राग भी कौशिक नहीं था। वह निराला ही कुछ प्रकार था जो चमत्कारिक रीति से रचा हुआ था; परन्तु उसका सारा अपयश मेरे सिर आया।

प्र०—वह कैसे हुआ ? कहने में कुछ अड़चन न हो तो बताइये ?

उ०—कहता हूँ:—एक रजवाड़े में सङ्गीत परिषद् का आयोजन था। वहां एक छोटी सी महफिल उस राज्य के दीवान साहेब ने की थी। उसमें मैं तथा मेरे कुछ मित्र दीवान साहेब के आमन्त्रण से गये थे। उस महफिल में उस राज्य के कलावन्त तथा कलाकार अपने-अपने वाद्य लेकर उपस्थित हुए। इतना ही नहीं, बल्कि उसमें स्वयं राजपुत्र भी उपस्थित थे। दीवान साहेब ने राजकुमार से मेरा तथा मेरे मित्र का परिचय कराया एवं मुझे सङ्गीत का बेहद शौक है, यह बात भी उन्होंने राजकुमार से कही। यह सुनकर राजकुमार ने मुझे अपने निकट बैठाकर सभा में गाये जाने वाले राग का परिचय समय समय पर देते रहने की विनती की। गाना वगैरह होने के बाद राजकुमार ने मुझ से प्रश्न किया, सबसे कठिन राग कौनसा है ?

प्र०—यह कैसा प्रश्न पण्डित जी ?

उ०—राजकुमार ही तो ठहरे! भला उनको सङ्गीत का विशेष ज्ञान क्या होगा ? उन्होंने इधर-उधर की गप्पें सुनी होंगी, इसलिये ऐसा प्रश्न मुझसे किया, यह मैं समझ गया। प्रथम तो मैंने उत्तर देने में टालमटोल की, परन्तु उनका आग्रह होने से मैंने उत्तर दिया कि महाराज कठिन तथा सरल, रागों के ऐसे वर्ग गुणी लोग नहीं करते। वे प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध अथवा "मामूली व अच्छुत" ऐसे बहुधा करते हैं। इस पर उन्होंने प्रश्न किया कि "दीपक" राग किसी को नहीं आता, ऐसा कहते हैं, क्या यह सच है ? मैंने उत्तर दिया कि महाराज, वह राग आज हमारे गायक नहीं गाते हैं, यह सही है। हमारे शास्त्रों में दीपक राग के स्वर कहे हैं और उनकी सहायता से कोई भी गा सकता है। परन्तु वह राग आज प्रचार में नहीं, ऐसा समझा जाता है। यह सुनकर वे कहने लगे कि यह बीनकार जो हमारे सामने बजाने बैठा है, इसको मैं दीपक बजाने को कहता हूँ, फिर देखें वह क्या कहता है। इस पर मैंने तुरन्त ही समझाया कि भरी महफिल में ऐसी फरमाइश करना अनुचित होगा। सम्भव है उस वादक को बहुत बुरा लगे और उसका उत्साह भंग हो जाय। तब उन्होंने कहा कि अप्रसिद्ध राग अभी-अभी आपने बताये वे कौनसे ? मैंने कहा ऐसे राग तो बहुत हैं। उदाहरणार्थ कौंसीकानडा, नायकी-कानडा आदि। इस प्रकार के राग अच्छे घराने के गायक-वादक ही गाते हैं। यह सुनकर उन्होंने अपनी दूसरी तरफ बैठे हुए एक हाईकोर्ट जज से धीरे से कहा कि उस बीनकार से नायकी कानडा बजाने को कहिये।

प्र०—फिर ?

उ०—फिर क्या! राजकुमार की आज्ञा थी। बात धीरे-धीरे बीनकार तक पहुँच गई। उसके निकट बैठे हुए वहां के कालेज के प्रोफेसर ने उस बीनकार को रोककर नायकी बजाने के लिये कहा। यह प्रकार पहले कभी मेरे सुनने में नहीं आया। उस समय वह बीनकार बिहाग राग के अलाप बजा रहे थे, इतने में ही आर्डर उनके पास जा पहुँचा। उसे सुनकर वे लाल पीले होगये। आस पास कई दूसरे गायक-वादक बैठे थे। वे यह देखने के लिये कि अब क्या तमाशा होता है, आगे खिसक आये।

प्र०—फिर उस बीनकार ने "नायकी" बजाना प्रारम्भ किया न ?

उ०—नहीं, वह बिहाग ही बजाते रहे। इतने में राजकुमार मेरी तरफ बढ़े और मुझसे पूछने लगे कि बीनकार का नायकी राग ठीक है क्या ?

प्र०—तो वहाँ आपके लिये उत्तर देने की समस्या पैदा होगई होगी ?

उ०—हां, "नायकी" है ऐसा कहता हूँ तो अन्य गुणी लोग हसेंगे, और उसने अभी तक नहीं बजाया, ऐसा कहता हूँ तो राजकुमार रुष्ट होंगे। तब मैंने यह सुझाया कि हमारी फरमाइश उनके सुनने में नहीं आई होगी तथा सुनने में आई भी होगी तो जो राग चल रहा है उसे पूरा करके वे नायकी बजाने वाले होंगे। परन्तु इतने से मामला खतम नहीं हुआ। राजकुमार ने कड़ककर दीवान से कहा कि बीनकार से यह राग बन्द कराकर "नायकी" बजाने के लिये कहो। दीवान जी का आर्डर उस प्रोफेसर ने पुनः बीनकार को बताया, तथा बिहाग राग न बजाने के लिये भी कहा।

प्र०—फिर ?

उ०—वे बीनकार मुझ पर बहुत क्रुद्ध हुए। कारण वे समझे कि यह फरमाइश खासतौर से सभा में उनको अपमानित करने के लिये राजकुमार की ओर से करवाई गई। यह समझ कर उन्होंने हलकी आवाज में उत्तर दिया कि "नायकी बायकी सुनना हो तो हमारे मकान पर चले आना।" इस उत्तर का अँग्रेजी भाषान्तर प्रोफेसर ने दीवान साहेब से कहा जो राजकुमार ने सुन लिया। यह सुनते ही एकदम खलबली मच गई। राजकुमार एकदम खड़े हो गये और कहने लगे, "What ? does the fellow want me to go to his house to hear his Nayaki ?" आगे यह मामला इतना बढ़ा कि उस बेचारे बीनकार की नौकरी जाने की नौबत आगई, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। मैंने उस प्रोफेसर से कहा कि, अजी प्रोफेसर ! आपने उस बीनकार की हिन्दी न समझ कर न जाने क्या कह दिया। वे कहते हैं कि, "नायकी" राग बजाने का प्रसङ्ग न आने से उसका उनको विस्मरण होगया है। उस राग के स्वर तथा चीज वे घर जाकर देखेंगे, तब उसको बजा सकेंगे। प्रोफेसर चतुर थे। वे मेरा आशय तत्काल समझ गये और कहने लगे, "ठीक है। उनकी हिन्दी भाषा अच्छी तरह मेरी समझ में नहीं आयी। उन्होंने "मकान" कहा इससे मुझे ऐसा लगा।"

बस, फिर तो राजकुमार खूब हँसने लगे और उस प्रोफेसर के हिन्दी ज्ञान के सम्बन्ध में मजाक उड़ाने लगे। वे बोलेः—"यह बीनकार अब घर जायेगा और नायकी देखकर आयेगा तब फिर बजायेगा। जाने दो। उससे कह दो कि इतना कष्ट करने की आवश्यकता नहीं।" अन्य तमाम गायक वादक फिर मेरे पास आये और कहने लगे "पण्डित जी ! आपने आज हम लोगों की इज्जत रखली। नहीं तो इस बिचारे बुड्ढे बीनकार की नौकरी जा रही थी।" अस्तु, सारांश यही है कि महफ़िल में किसी का अप्रसिद्ध राग की फरमाइश नहीं करनी चाहिये। हां ! जहां गुणी लोगों की परीक्षा लेने का काम तुम्हें सौंपा गया हो, वहां कैसी भी फरमाइश कर सकते हो।

मालकंस अङ्ग का "कौंसी" प्रकार तो मैंने कहा ही है; तथा उसका थोड़ा सा विस्तार भी करके दिखाया है। अब दूसरा एक मेरे गुरु ने मुझे बागेश्री अङ्ग का "कौंसी" जैसा सिखाया था वह भी कहता हूँ। इस प्रकार में सारे स्वर काफी थाट के होंगे, यह दिखता ही है। उन्होंने इस प्रकार का एक ध्रुपद सिखाया है, उसके आधार पर एक सरगम सुनाता हूँ।

सरगम—कौंसीकानडा. चौताल

म				म	म	म			म		म
प	धम	ऽ	पध	ग॒	ग॒	ग॒	म	प	ग॒	ऽ	ग॒
३		४		×		०		२		०	
				सा	रे			रे		म	म
म	रे	सा	ऽ	रे	नि़॒	सा	रे	नि़॒	सा	ग॒	ग॒
				नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	ध			नि॒
म	रे	सा	ऽ	सा	ध	ध	ध	नि॒	प	ऽ	ध
				नि॒							
नि	रें	सां	ऽ	ध	नि॒	प	म	प	ध	म	ऽ।

अन्तरा.

सां				सां				रीं	सां		
नि	सां	ऽ	सां	नि	सां	ऽ	रें	नि	नि	सां	ऽ
×		०		२		०		३		४	
ग	नि॒	नि॒	नि॒	ध			नि॒				
म	ध	ध	ध	नि॒	प	ऽ	ध	नि	रें	सां	ऽ
नि॒	नि॒										
ध	ध	नि॒	प	म	ऽ।						

प्र०—यह स्वरूप बागेश्री से तो पृथक दिखाई देता है, पण्डित जी! भले ही यह हमको नहीं आता, परन्तु इसे सुनते ही कुछ बागेश्री का भ्रम होने लगता है; किन्तु यह

चमत्कार उन स्वरों की विशेष रचना में है अथवा और कोई कारण है, पता नहीं ? स्वर तो सब बागेश्री के हैं।

उ०—यह स्वरूप तुमको निराला प्रतीत हुआ, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। म ध नि ध, म ग, सां नि ध म ध नि ध, म ग।' यह भाग उसमें आया तो बागेश्री स्पष्ट हो गई। परन्तु इस सरगम में बागेश्री को दूर रखने वाला स्वर पंचम है। उसको ऐसी जगह रखा है कि जहां-जहां बागेश्री होने का भय है, वहां-वहां वह उसको उससे दूर रखने का प्रयत्न करता है, यही तो गीत-रचना की कुशलता है। कुछ गायक तो तान लेते समय बागेश्री में भी चार उड़ानें मार कर उसी पंचम के आधार से कौंसी में

म सा

पुनः आकर मिलते हैं। अब यह टुकड़ा देखो:—'म ध ध नि ध प, ध म, प ग, रे सा'; सां नि ध, नि प, ध म, प ध म, प ग, रे सा। इसमें थोड़ी सी बागेश्री की झलक आती है, परन्तु पंचम तथा "नि प" के प्रयोग से राग स्वतन्त्र रहता है।

प्र०—बागेश्री अङ्ग का 'कौंसी' जो हमको प्रचार में दिखाई देता है, उसका प्रारम्भ किस प्रकार करते हैं ?

प म म

उ०—वह कभी तो इस प्रकार शुरू होगा—नि प, म प, ग म नि ध, नि प, ग म रे

म नि नि म नि म म म म

सा, सा म, म, प ग म, ध ध नि प ग और कभी वह सा म, म ग, प म, प ग, ग री ग।

म सा नि

म ग। रे रे, सा और कभी कभी वह ऊपर से, 'सां, नि सां, नि ध, ध नि ध प, ध म, नि

म म

प, म ग, म ध नि ध, प ध म, ग, रें सां, नि ध म ग, प ध म, ग, रे सा' ऐसा भी प्रारम्भ किया हुआ दीखेगा। यह राग किसी अमुक प्रकार से ही सदैव प्रारम्भ होगा, यह नहीं कहा जा सकता। इसमें 'नि ध नि प; प ध, म, नि प, ध म; ये टुकड़े सदैव ध्यान में रखने लाभदायक होंगे। थोड़ा बहुत स्वरूप बागेश्री जैसी दीखेगा; परन्तु पंचम से बागेश्री दूर होती है, अतः गायक वहां स्वभावतः कौंसी दिखाने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु चूँकि हम बागेश्री अङ्ग की कौंसी पर विचार कर रहे हैं, इसलिये राजा टागोर के ग्रन्थ में इस राग का स्वरूप स्वरों में कैसा कहा है, वह भी अभी कह दूं क्या ?

प्र०—यदि वह भी बागेश्री के स्वरों का हो तो अभी कहना ही ज्यादा अच्छा होगा ?

उ०—तो सुनोः—

रे नि रे

प सांनि सांनि ध ध नि प म, म ग म, रे सा, सानि सानि सा म म ग, म, प ध नि

रे

ग रे सा रे सा।

म प नि ध नि ध नि सां, सां, सां, नि रें नि सां सां नि सां, नि ध नि सां

(प) नि सां नि रें सां, नि ध ध नि म प म प म म ग ग म, (सा) रे, सा, सा म, (रे म) ग, म, प,

म नि प म, म ग (सा) रे, सा इ०

ऐसा ही विस्तार आगे है, परन्तु उसे कहूंगा तो तुम ऊब जाओगे, यह मैं नहीं चाहता।

प्र०—यहां पर हम आपसे एक प्रश्न पूछना चाहते हैं कि अप्रसिद्ध रागों के जो विस्तार ये ग्रन्थकार इस प्रकार कहते हैं, वे अपनी चीजों के अनुमान से ही कहते हैं, या राग नियम तथा वादी-संवादी जी जानकारी से विस्तार करते जाते हैं?

उ०—मेरी समझ से उनको इस प्रकार के रागों में कोई दूसरी चीज जो उस्ताद के पास से मिली हुई होती है, उसके अनुमान से वे विस्तार करते होंगे और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। जो लोकप्रिय चालीस-पचास राग प्रसिद्ध हैं, उनमें गायकों को सैकड़ों चीजें आती हैं। अतः उन रागों के अलाप किसी अमुक चीज के आधार से करने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु अप्रसिद्ध रागों में यह बात नहीं। उनमें चीज के अनुमान से ही चलना होता है। इसीलिये एक अलाप दूसरे के अलाप से भिन्न होता है। अस्तु, क्षेत्रमोहन ने कौंसी का विस्तार जो दिया है, वह तुमने देखा ही है। इसमें उन्होंने, 'ध नि ध प, नि प' तथा म ग ग म, रे सा' यह भाग कैसा रखा है, वह देखलो तो पर्याप्त होगा।

प्र०—हां, 'नि ध, नि ध, प, म, नि प, म ग, म, रे सा ये स्वर हम अच्छी तरह से ध्यान में रखें। अब हमको मालकंस अंग के कौंसी की एक सरगम बतादीजिये?

उ०—उस अङ्ग का मैंने एक ध्रुपद सीखा है। उसकी सहायता से एक सरगम कहता हूँ सुनोः—

कौंसी कानडा—चौताल

(रे) नि	सा	म	म	म	ग	(ग) म	(प) म	प	म	ऽ	ग
०		३		४		×		०		२	
(ग) म	ग	ऽ	(सा) रे	ऽ	सा	(ध) नि	ध	नि	सा	ऽ	(नि) सा
म	ऽ	म	ऽ	(म) ग	(म) ग	(ग) म	ग	ऽ	(सा) रे	ऽ	सा।

अन्तरा.

म		नि									
ग	म	ध	नि	सां	ऽ	ऽ	सां	नि	सां	सां	ऽ
×		०		२		०		३		४	
नि				सां							
ध	नि	सां	ऽ	मं	गं	रें	सां	नि	ध	म	ग
म		नि		सां			नि				
ग	म	ध	नि	नि	सां	ऽ	सां	नि	ध	म	ग
ग⌒			सा								
म	ग	ऽ	रे	ऽ	सा।						

तुमको मैंने अभी तक मालकंस राग नहीं बताया है, इसलिये इस सरगम में उस राग के अङ्ग कौन से हैं, यह तुम नहीं समझोगे। फिर भी यह सरगम अपने संग्रह में रहने दो। इस अङ्ग से इस राग का विस्तार कैसा करते हैं, यह थोड़ा सा मैं कह चुका हूं। ऋषभ तथा पंचम स्वर आते ही मालकंस गायब होने लगता है, यह ध्यान में रखो!

प्र०—क्या नादविनोदकार ने इस राग का वर्णन नहीं किया?

उ०—हां, उसने भी किया है। अब मैं उसका ही प्रकार कह रहा हूं, सुनो:—

"सुर्ख लिबास पहिनें हुए मौलसिरी का इतर लगाए हुए पान रच रहा है मुखमें जिसके, आंखों में सरूर, नादविद्याका जानने वाला तंबुरेके साथ गा रहा है, ऐसा कौंसी कान्हरा राग है" यह वर्णन मैंने पढ़ा तब तीस वर्ष पहले पन्नालाल बम्बई में जिस ठाटबाट में घूमते थे उसी की मुझे याद आई। वे गाते नहीं थे यह ठीक है, परन्तु सुर्ख लिबास आदि का वर्णन उनकी रुचि के अनुकूल था, अतः इस कल्पना के लिये उनको विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा होगा। आजकल के हमारे कुछ खां साहेब भी ऐसी ही शान से बनठन कर नहीं रहते हैं क्या? दिल्ली तथा लखनऊ जैसे शहरों में तो जन साधारण भी "सुर्ख लिबास पहने हुए व इतर लगाये हुए" आज तुमको सैकड़ों की संख्या में दिखाई देंगे। तब उनकी कौंसी की कल्पना में कोई कौतुक अथवा नवीनता है, ऐसा मैं नहीं समझता। अब इसने कौंसीकानडा की सरगम कैसी कही है, सो देखो:—

नि नि नि म म नि नि
म म म, ग ग, प म प, ग ग, रे सा, ध ध ध प, ग, म, प ग, रे सा म प, ध ध,
मं मं म म म
सां सां, नि सां रें सां, गं मं, गं मं, ग म प, ग ग, रे सा। यह स्वरूप अशुद्ध नहीं। इसमें

"नि ध" "ध म" इन संगतियों को विशेषरूप से टाला है, वैसे ही "नि प"
नि नि नि
ऐसा भी उसने स्पष्ट नहीं लिखा, परन्तु "ध ध ध प" से वह भाग दिखाई दे सकेगा, ऐसा कह सकते हैं।

प्र०—आगया ध्यान में। तन्तकार तो ऐसा ही लिखेंगे। अच्छा, प्रतापसिंह ने कौंसी कैसी कही है?

उ०—उनके ग्रन्थ में कौंसी नहीं दिखाई देती।

प्र०—तो फिर हमारे संस्कृत ग्रन्थकारों ने इस राग का वर्णन तो किया होगा, उनके मत कहिये?

उ०—हां, अब ऐसा ही करता हूं:—

लोचन पण्डित ने कौशिक राग केदार मेल में इस प्रकार कहा है:—

केदारस्वरसंस्थाने श्रुतः केदारनाटकः ॥

× × ×

कौशिकस्तु तथा गेयो माहूरागो विचक्षणैः ॥

तरंगिणियाम्।

प्र०—परन्तु यह आपका बताया हुआ वह मालकौंस अथवा मालवकौशिक तो नहीं है न?

उ०—नहीं। मालवकौशिक उसने कर्णाट थाट में कहा है। जैसे:—

कर्णाटस्थितिमध्ये तु येषां संस्थितयो मताः।

× × ×

केदारी रागिणी रम्या गौरः स्यात् मालकौशिकः ॥

प्र०—तो फिर यह स्पष्ट ही है। आगे चलिये?

उ०—हृदयपण्डित ने कौतुक में कौशिक के लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

गमधाः काकली निश्च ससौ निधमगा रिसौ।

षाडवः कथितः सद्भिः कौशिकः कुशिकप्रियः।

हृदयकौतुके ॥

प्र०—कुशिकप्रियः यह शोध वह कहां से ले आया पण्डित जी?

उ०—"कौशिक" इस नाम से। इसमें शोध करने के लिये कैसा प्रयत्न किया है? कुशिकस्य अपत्यं पुमान् कौशिकः।

प्र०—ऐसा ? तो फिर आगे चलिये।

उ०—हृदयप्रकाश में कौशिक राग बिलकुल नहीं कहा। अहोबल ने भी पारिजात में इस राग का वर्णन नहीं किया, तब तत्वबोध में तो होगा ही नहीं। पुण्डरीक के तीनों ग्रन्थों में कौशिक कहा हुआ नहीं दिखता। भावभट्ट के तमाम ग्रन्थों में कौशिक नहीं दिखाई देता। उसी प्रकार स्वरमेल कलानिधि, रागविबोध, चतुर्दण्डिप्रकाशिका, सारामृत तथा रागलक्षण इन दक्षिण के ग्रन्थों में भी यह राग नहीं मिलता। केवल टागोर साहेब के संगीतसार संग्रह ग्रन्थ में एक "कौशिक" नाम की रागिनी का वर्णन मिलता है:—

बांगाल्याः कौशिकी जाता षड्जन्यासग्रहांशिका।
सकंपमंद्रगांधारा हास्ये च करुणे रसे॥

उदाहरणम्,

विच्छेदभीता दयितेन सार्धम् रक्तेक्षणा स्वेदयुताननेन।
श्यामा सुवेशा ललितांगयष्टिर्मुहुर्भ्रमन्ती खलु कौशिकीयम्॥

परन्तु यह अपने कौशिककानड़ा के ही लक्षण हैं, ऐसा मानने का कोई आधार नहीं।

प्र०—यह कौनसा मत होगा ?

उ०—इस विषय में हम इतने गहरे क्यों जायें! ऐसा करने से लाभ कुछ दिखता नहीं। "प्रयत्न ऐसो कीजै जामें फल कछु होय" ऐसा कहते हैं। अतः व्यर्थ परिश्रम करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रचार में कौशिककानडा कितने ही प्रकार का तुम्हें दिखाई देना सम्भव है। इतना ध्यान रखो तो काफी है।

प्र०—हां, यह भी आपका कहना ठीक है। अब इस राग के लक्षण ध्यान में रखने के लिये पूर्वानुसार श्लोक कह दीजिये तो अच्छा होगा। मालकंस अंग का कौंसीकानड़ा मधुर है, उसमें हमको रचयिता का चातुर्य भी दिखाई दिया। उसमें ऋषभ तथा पंचम की योजना बहुत सुन्दर है। उनके योग से बागेश्री अथवा भीमपलास मालकंस से अच्छे मिलते हैं, इससे हमने इतना ही आशय निकाला है। वस्तुतः गायक को मालकंस गाकर उसमें कुशलता से ऋषभ तथा पंचम ये दोनों स्वर लेने पड़ते हैं; परन्तु इनको लेते समय श्रोतागण इसे "बिगड़ा हुआ मालकंस" ऐसा नाम न दे दें, इसलिये इस कृत्य में विशेष सावधानी रखनी चाहिये। मध्यम मुक्त रखने से राग की गम्भीरता स्वतः बढ़ेगी।

उ०—यह श्लोक कहने से पूर्व मेरे एक गुरुबन्धु को तानसेन घराने के एक गायक ने जो एक गीत सिखाया था, उसकी मुझे याद आगई है। उस गीत के आधार से एक छोटी सी सरगम इस मालकंस अंग के कौंसी की कह देना चाहता हूँ। उस गीत में ऋषभ पंचम स्वर अवरोह में हैं, परन्तु वे किसी को भी विशेष अच्छे नहीं लगेंगे। मूल गीत की ताल झंपा है; परन्तु मैंने सरगम चौताल में रखी है।

कौंसी--चौताल.

म

प

	म			ग	नि						सां
प	ग	ऽ	म	म	ध	ऽ	नि	मां	ऽ	ऽ	रीं
३		४		×		०		२		०	
				म	म						नि
सां	नि	ध	म	ग	ग	म	ग	रे	सा	ऽ	ध
नि	सा	ऽ	सा	म	ग	ऽ	म	ग	रे	सा,	प।

अन्तरा.

म		नि									
ग	म	ध	नि	सां	ऽ	सां	नि	सां	ऽ	सां	ऽ
×		०		२		०		३		४	
नि											
सां	ऽ	रें	सां	ऽ	नि	ध	ऽ	नि	ध	म	ग
म		नि									
ग	म	ध	नि	सां	ऽ	रें	सां	नि	ध	प	म
म	म										
ग	ग	म	ग	रे	सा	ऽ	प।				

प्र०—इस सरगम के अन्तिम दो चरण हमको विशेष सुन्दर नहीं लगे, तथापि हम इसे भी अपने संग्रह में रक्खेंगे। अब श्लोक में लक्षण कहिये?

उ०—हां, सुनोः—

आसावरीसुमेलोत्था कौशिकीकानडा मता ।
आरोहे रिपहीनाऽसौ संपूर्णा चावरोहणे ।।
मध्यमः संमतो वादी साहचर्ये तु षड्जकः ।
गानं समीरितं तस्या निशीथे भूरिरक्तिदम् ।।
कानडा मालकोशश्च मिलतोऽत्र यथायथम् ।।
काफीमेल गता कौंसी पूर्वमेव मयोदिता ।।
म ध नि स नि ध मैः स्यान्मालकोशांगदर्शनम् ।
पगमगरिसैः कुर्याद्बुधस्तदंगवारणम् ।।१।।
अप्रसिद्धमिदं रूपं गायनोत्तमनिर्मितम् ।
समुद्भूतं यथान्यायमवश्यं रक्तिदं भवेत् ।।

लक्ष्यसंगीते ।

निसौ मगौ म प ग मा गरी समौ धनी च सः ।
निधौ मधौ नि ध म पा गमौ गरी पुनश्च सः ।
कर्णाटः कौशिकाख्यातो निशीथे मध्यमांशकः ।।

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्र०—कौंसीकानडा के सम्बन्ध में आपकी दी हुई जानकारी पर्याप्त होगी। दोनों प्रकार का कौंसी हमको प्रचार में दिखाई देना सम्भव है, यह हम ध्यान में रखेंगे। एक प्रकार बागेश्री अङ्ग का होगा व दूसरा मालकंस अङ्ग का। ये दोनों हम स्वीकार करके चलें। बागेश्री अङ्ग के कौंसी में पंचम पर ध्यान देना आवश्यक है। मालकंस अङ्ग की कौंसी में ऋषभ तथा पंचम स्वर बहुत सुन्दर लगें, इस प्रकार से लेने में सारी विशेषता है। इन दोनों अङ्गों के सरगम हमको मिल ही गये हैं तथा गीत आगे आप कहेंगे ही। ऐसी दशा में अब इस राग के सम्बन्ध में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

उ०—ठीक है। अब दो शब्द 'फ़ीलफ' राग के सम्बन्ध में कह दूं तो यह थाट सम्पूर्ण हुआ समझो। "फ़ीलफ" राग के सम्बन्ध में हम विस्तृत चर्चा नहीं कर सकेंगे। यह राग अति दुर्लभ एवं अप्रसिद्ध समझा जाता है। नाम से यह यावनिक स्पष्ट प्रतीत होता है। इसको अमीर खुसरू ने अपने सङ्गीत में सम्मिलित किया था, ऐसा गायक कहते हैं। इसका उल्लेख अर्थात् स्वरादि के सम्बन्ध में जानकारी उर्दू तथा पर्शियन ग्रन्थों में मिलेगी, ऐसा एक मुसलमान गायक ने मुझ से कहा था। ये दोनों भाषाएं मुझे न आने के कारण तथा इन भाषाओं के सङ्गीत सम्बन्धी ग्रन्थ मिलने की सुविधा न होने से इन ग्रन्थों में क्या कहा है ? यह मैं नहीं कह सकता।

प्र०—यदि अमीर खुसरू इस राग को यहां लाया है तो यह राग बहुत पुराना होना चाहिये। इसका स्वरूप हमारे संस्कृत ग्रन्थकारों ने दिया ही होगा ?

उ०—मैं अभी यही कहने वाला था। सोमनाथ पण्डित ने अपने रागविबोध में इस रागनाम का उल्लेख किया है, ऐसा मैंने पहले कहा ही था; परन्तु उस समय 'झीलफ' राग के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा था। कर्णाटगौड मेल के स्वर कह कर उस मेल के जन्य राग सोमनाथ ने ऐसे कहे हैं:—

कर्णाटगौडकोऽड्डाणो नागध्वविशुद्धबंगालौ।
वर्णादिनाट इतरे तुरुष्कतोड्यादिकाश्च स्युः ॥

इस श्लोक में "तुरुष्कतोडी" यह पर्शियन नाम देखकर पाठकों को कदाचित् आश्चर्य होगा, यही सोचकर उसने टीका में इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—"इयंतुरुष्क-तोडी" इराखपर्यायतया कर्णाटगौडस्य समच्छायत्वेन परदा इति लोके। तथाच कैश्चिच्च-त्तद्रागसमच्छायाः परदाख्या द्वादश रागा उच्यन्ते। तोड्याः समृध्यया हुसेनी। भैरवस्य जुलुफः। रामक्रियायाः मूसली। आसावार्या उज्वलः। विहंगडस्य नवरोजः। देशकारस्य वाखरेजः। सैंधव्या हिजेजः। कल्याणयमनस्य पंचग्रहः। देवक्रयः पुष्कः। वेलावल्याः सर्पर्दा। कर्णाटस्य ईराखः। अन्योपरागाणां सुगादुगा इति।"

प्र०—तो फिर कर्णाटगौड मेल के स्वरों में भैरव स्वर मिश्र होने पर "जुलुफ" अथवा "झीलफ" राग उत्पन्न होगा, ऐसा ग्रन्थकार का आशय दीखता है ?

उ०—ऐसा ही मालुम होता है। यदि झीलफ के प्रचलित स्वरूप की ओर देखें तो ग्रन्थकार के कथन में कुछ अर्थ भी दीखता है। झीलफ राग का वर्णन दूसरे किसी संस्कृत ग्रन्थकार ने नहीं किया। दक्षिण के ग्रन्थों में केवल राग लक्षणकार को छोड़कर किसी ने इस राग का उल्लेख नहीं किया। परन्तु रागलक्षणकार का राग हमारा झीलफ ही है अथवा नहीं, इस पर मतभेद होना सम्भव है।

प्र०—यह क्यों ? उसने "झीलफ" नाम नहीं दिया क्या ?

उ०—नहीं। तभी तो मैंने विवादग्रस्त कहा। उसने रागनाम "जुझाहुली" ऐसा दिया है। उसी राग का दूसरा नाम "भुजस्कांवली" दिया है।

प्र०—यह भी क्या नाम हैं ! फिर भला विवाद क्यों न उत्पन्न होगा। अच्छा, इस विचत्र राग के स्वर उसने कैसे कहे हैं ?

उ०—इस राग को उसने "गायकप्रिय" मेल का जन्य बताकर वर्णन किया है।

प्र०—ठहरिये। "गा य" अर्थात् यह तेरहवां मेल होगा और उसके स्वर, "स रा गु मा प धा ना सा" ऐसे होंगे। यानी ये हिन्दुस्तानी "सा रे॒ ग म प ध॒ ध सां" होंगे। ठीक है न ? अच्छा तो उसने जुझाहुली के लक्षण कैसे कहे हैं ?

उ०—इस प्रकार कहे हैं ?

गायकप्रियमेलाच्च जुभाहुली सुनामकः ।
सान्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ॥
आरोहेऽप्यवरोहे च रिवर्जं वक्रमेव च ॥
स म ग म प ध नि सां । सां नि ध प म ग रि ग सा।

यहां पर "रिवर्ज" कह कर अवरोह में रि कैसे लिया, यह तुम सोचोगे ? परन्तु इसका समाधान यह है कि इस जगह "आरोहे तु रिवर्जे स्यादवरोहे रिवक्रकम्" ऐसा समझना चाहिये ।

प्र०—यह ध्यान में आगया। परन्तु हमारी समझ से आरोह में एक धैवत तथा अवरोह में दूसरा लिया जाय तो हमको एक नया प्रकार अवश्य मिलेगा । अच्छा, भीलफ एवं जुभावली में कुछ साधारण अन्तर है क्या ?

उ०—मार्मिक लोगों को ऐसा कुछ अवश्य दीखेगा। धैवत तक तो "जुभाहुली" भैरव जैसा ही नहीं दीखता क्या ?

प्र०—अच्छा फिर ?

उ०—भीलफ में भी कोई पूर्वाङ्ग में भैरवाङ्ग मानते हैं। भीलफ में ऋषभ बिलकुल न लेने वाले भी दिखाई देते हैं।

प्र०—तो फिर "जुभाहुली" तथा भीलफ इन दोनों में सहज ही सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। कदाचित् भीलफ को ही जुभाहुली यह विचित्र नाम दक्षिणी पण्डित ने दिया होगा । वहां "व्याजु, कमास, फरजु "ऐसे नाम हमारे "विहाग, खमाज तथा परज" रागों के हमने देखे ही थे ? तो फिर भीलफ के लक्षण हम कैसे समझें ?

उ०—वे इस प्रकार समझो कि "भीलफ" राग आसावरी थाट में मानते हैं। इसके पूर्वाङ्ग में भैरव का तथा उत्तरांग में आसावरी का मिश्रण होता है । कुछ गायक इस राग को भैरव थाट का एक जन्य राग समझते हैं। इस राग में ऋषभ स्वर कोई वर्ज्य मानते हैं तथा कोई उसे दुर्बल मानते हैं। वादी धैवत और संवादी ऋषभ होगा। जो ऋषभ वर्ज्य करते हैं वे पंचम वादी तथा षड्ज संवादी मानते हैं । जीलफ गाने का समय दिन के पहले प्रहर का अन्त मानते हैं।

प्र०—आपके कथनानुसार प्रचार में भीलफ दो तरह से हमारी दृष्टि में आना संभव है। कोई तो इसे भैरवांग से गाते हैं और इसमें ऋषभ बिलकुल वर्ज्य करते हैं और यदि लिया भी तो अति दुर्बल अथवा अवरोह में थोड़ा सा दिखाते हैं । दूसरे भीलफ में भैरव तथा आसावरी का योग दिखाते हैं। ये दोनों प्रकार यदि आप हमें स्वरों द्वारा व्यक्त करके दिखायेंगे तो हमारी समझ में यह राग स्पष्टरूप से आ जायेगा ।

उ०—अब ऐसा ही करता हूं। उत्तर भारत के मेरे एक स्नेही राजा नवाबअली खां साहेब को तानसेन के घराने के मुहम्मद अलीखां ने एक गीत झीलफ में सिखाया था। उस गीत के थोड़े बहुत स्वर इस प्रकार थेः—

		प							
सा	सा	ग	म	म	प	प	प	ऽ	प
×		२			०				
		नि					नि		
प	प	ध	ऽ	ध	सां	ऽ	ध	ध	प
		प				नि			
प	म	ग	म	म	प	ध	सां	ऽ	सां
						म			
प	प	म	ग	म	प	प	म	ग	म।

अन्तरा।

		नि							
प	प	ध	ध	प	सां	ऽ	सां	ऽ	सां
×		२			०		३		
नि									
ध	ध	सां	ऽ	सां	सां	ऽ	नि	ध	प
प		प				नि			
म	प	ग	म	म	प	ध	सां	ऽ	सां
नि						म			
ध	ध	प	ऽ	म	प	प	म	ग	म।

प्र०—यह स्वरूप बुरा नहीं दीखता। इसमें ऋषभ वर्ज्य होने से यह बहुत स्वतन्त्र हो गया है। इसमें पंचम अथवा मध्यम वादी तथा षड्ज सम्वादी अच्छा दिखाई देगा। इसमें निषाद एक स्थान पर असत्प्रायः आया है। वहां "ध ध प ?" ऐसा भी कर सकते थे।

उ०—हां । तुम इस स्वरूप का जुम्फाहुली राग से मिलान करना चाहते हो। जुभाहुली में ऋषभ तथा निषाद नहीं हैं, उसमें दोनों धैवत (एक के बाद दूसरा) साथ-साथ आते हैं जो कि अशास्त्रीय हैं, इसी कारण तीव्र धैवत तुम छोड़ देते हो, ऐसा प्रतीत होता है। यह तुम्हारी कल्पना वास्तव में विचारणीय है। और आगे चलकर अवरोह में तीव्र निषाद अल्पप्राय लेने में भी हर्ज नहीं, ऐसा भी कहा जा सकता है । कदाचित् उत्तर के झीलफ को "जुम्फाहुली" नाम रागलक्षणकार ने दिया होगा । जुम्फाहुली के अवरोह में ऋषभ वक्र है। उसे वक्र रखकर भी तुम कोई सरगम तैयार कर सकोगे ?

प्र०—ऐसा प्रयत्न करके देखें ?

उ०—अवश्य ।

प्र०—अच्छा तो हम एक सरगम इस प्रकार कहते हैं, देखो:—

सा	सा	म	ग	म	प	प	ध	ऽ	प
×		२			०		३		
प	प	ध	सां	ऽ	ध	ध	नि	ध	प
म	प	(प)ग	ग	म	प	ध	सां	ऽ	सां
ध	प	ग	म	प	ग	म	रे	ग	सा ।

अन्तरा.

प	प	ध	ध	प	सां	ऽ	ध	सां	ऽ
×		२			०		३		
ध	ध	सां	ऽ	सां	ध	सां	नि	ध	प
म	प	(प)ग	ऽ	म	प	ध	सां	ऽ	सां

नि	धु	प	म	प	ग	म	रे	ग	सा।

उ०—इस सरगम को बुरी तो नहीं कह सकते। चाहो तो इसे जुभाहुली की समझ कर संग्रह में रखलो। यह भीलफ में भी चलेगी, ऐसा यदि गायक कहें तो ठीक ही है अन्यथा जुभाहुली की समझकर रहने दो। परन्तु जुभाहुली में से तीव्र धैवत क्यों निकाल दिया? यह समझाने की तुम्हारी तैयारी होनी चाहिये। अस्तु, अब दूसरा एक 'भीलफ' प्रकार दिल्ली के मुजफ्फर खां ने तथा आगरा के कालेखां ने कुछ दिन हुए बड़ौदा में गाया था, उसकी सरगम जैसी उन्होंने गाई, वैसी ही मैं तुमको बताता हूँ। सुनो:—

भीलफ—झपताल.

सा नि ×	सा	म गु २	म गु	म	प ०	ऽ	प ३	ग म	म
प	धु	नि	सां	रें	सां नि	सां	नि धु	ऽ	प
सां नि	सां नि	सां	ऽ	रें	सां	नि	धु	प	प नि
ध	प	म गु	म गु	प	म	गु	रे	रे	सा।

अंतरा.

प म ×	प	नि धु २	नि धु	नि	सां ०	सां	सां ३	ऽ	सां
सां नि	सां	रें	रें	सां	सां नि	सां	नि धु	नि	ध

प	म म		म
म प	ग ग म	प प	प ऽ प
		रें	नि
रें रें	सां ऽ रें	नि सां	ध नि प।

प्र०—जान पड़ता है आपने इस राग प्रकार के नियम उनसे नहीं पूछे ?

उ०—उन बेचारों ने स्पष्ट कह दिया कि नियम आप ही देखलें, यह हम कुछ नहीं समझते। इसमें दोनों धैवत तथा दोनों निषाद प्रयुक्त हुए दिखते ही हैं। उन्होंने जो गीत गाया वह एक प्रसिद्ध तराना था जो मैंने पहले भी सुना था। यह भी एक प्रकार अपने पास रहने दो। अब भैरव तथा आसावरी दोनों अङ्ग जिसमें हैं, ऐसा प्रकार कहता हूँ। हमारे शहर में लगभग चालीस वर्ष पूर्व इमदादखां नाम के एक प्रसिद्ध गायक थे। उनके भाई विलायतहुसैन खां ने मुझे यह प्रकार सिखाया था। उनके सिखाये हुए गीत के आधार पर एक सरगम कहता हूँ। यह अच्छी तरह ध्यान में रखना।

झीलफ–धमार.

म
ग म

प ऽ ऽ प ऽ	प ऽ	ध म ऽ	प ऽ ऽ ध
×	२	०	३
नि			प
नि ऽ ऽ ध ऽ	प ऽ	ध म ऽ	प ग म ऽ
नि	प	म	
ध प ऽ म प	ग म	रे रे ऽ	सा ऽ ऽ ऽ
सा		प	म
नि सा ऽ ग ऽ	ऽ म	प ग ऽ	म ऽ ग म।

अन्तरा.

प नि			नि
म प ऽ ध ऽ	ऽ नि	सां ऽ ऽ	ध नि सां ऽ
×	२	०	३

नि॒ ध॒ ऽ प ऽ	ऽ ध॒	म प ऽ	(प)ग ऽ म ऽ
(नि)ध॒ प ऽ म प	ग म	(म)रे॒ रे॒ ऽ	सा ऽ ऽ ऽ
(सा)नि़ सा ऽ ग ऽ	म ऽ	प (प)ग ऽ	म ऽ (म)ग म।

गोस्वामी पन्नालाल ने नादविनोद में झीलफ के स्वरकरण ऐसे किये हैं:—

सा रे॒ सा म म प प सा नि़ सा प म प ग म प नि ध॒ प म ग रे॒ सा। अन्तरा—प प प ध॒ ध॒ ध॒ सां नि सां नि सां ध॒ नि सां गं गं रें॒ सां प ध॒ प म म प प रें॒ सां नि ध॒ प म प म ग रे॒ सा।

प्र०—यह भैरव थाट का एक प्रकार है, इतना ही इससे विदित होगा। परन्तु मेरी राय में उसके स्वरूप का उत्तम बोध इससे नहीं होगा। केवल, ऋषभ उसने अवरोह में लिया है।

उ०—हां, इस विस्तार से इतना ही ज्ञात होता है। इस झीलफ जैसा एक राग अपने संस्कृत ग्रन्थ में मेरे देखने में आया है। इतना ही नहीं, बल्कि इस राग में मैंने जब एक गीत गाया तो उसे कुछ मुसलमान गायकों ने भैरव अङ्ग का झीलफ बताया, यह घटना मुझे याद है।

प्र०—वह कौनसा राग है तथा कौनसे ग्रन्थ में आपके देखने में आया ?

उ०—वह राग मैंने रागलक्षण में देखा है, वहां उसका उल्लेख इस प्रकार है:—

मायामालवगौलाच्च मेलाज्जातः सुनामकः।
देवरंजीती रागश्च सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहे गरिगवर्जंचाप्यवरोहे तथैव च।
स म प ध॒ नि स। स नि ध॒ प म स।

प्र०—यह राग अभी अभी कहे हुए झीलफ स्वरूप से बहुत कुछ मिलेगा, ऐसा हमें प्रतीत होता है। हम मुहम्मदअली खाँ द्वारा गाये हुए स्वरूप के सम्बन्ध में बोल रहे हैं। उन्होंने ऋषभ बिलकुल ही छोड़ दिया था, परन्तु गन्धार थोड़ा सा लिया था, ठीक है न ? अच्छा, वह रि तथा ग, वर्ज्य किया हुआ स्वरूप हमको दिखायेंगे क्या ?

उ०—उस गीत के बोल इस प्रकार हैं:—

त्रि ×	वि	ध २	गा	ऽ	म ०	नि	ति ३	हूँ	ऽ
लो	ऽ	क	ऊ	ऽ	द्धा	ऽ	र	नी	ऽ
ता	ऽ	प	त्र	य	वा	ऽ	र	नी	ऽ
ब	त	छि	ना	ऽ	गं	ऽ	गे	ऽ	ऽ
त्र	य	दे	ऽ	व	मा	ऽ	नी	ऽ	ऽ
त्र	य	स्रो	ऽ	त	त्रा	ऽ	नी	ऽ	ऽ
पा	ऽ	प	ह	र	नी	ऽ	त्र	ई	ऽ
त्र	य	लो	ऽ	च	न	ऽ	त्र	ई	ऽ
ति	रि	वे	ऽ	नि	सं	ऽ	गे	ऽ	ऽ।

अब इस गीत का स्वरूप देखो:—

राग देवरंजनी–झपताल.

नि̣ सा ×	सा	सा म २	ऽ	म	प ०	प	नि ध॒ ३	नि ध॒	प
नि ध॒	नि ध॒	नि ध॒	नि ध॒	ऽ	सां	ऽ	नि॒	ध॒	प

ध			नि						
प	ध	सां	ध	नि	ध	पम	प	म	ऽ
प					सां				
म	प	ध	सां	ऽ	म	प	म	ऽ	म
म									
सा	सा।								

अन्तरा.

		नि							
प	प	ध	ऽ	ध	सां	ऽ	नि	सां	ऽ
×		२			०				
		सां			सां		नि		
नि	सां	मं	ऽ	सां	नि	सां	ध	ऽ	प
ध									
प	ध	सां	ध	नि	ध	पम	प	म	ऽ
म							नि	नि	
सा	सा	म	ऽ	म	प	प	ध	ध	ऽ
					ग				
ध	ध	सां	ऽ	म	म	प	म	ऽ	म।

प्र०—इस स्वरूप को यदि कोई क्षीलक समझे तो आश्चर्य नहीं। ग वर्ज्य होने से यह अधिक मनोरंजक हो गया है। इसे हम अच्छी तरह से ध्यान में रखेंगे। इसमें कोमल निषाद विवादी के रूप में कितना अच्छा लगता है?

उ०—हां, यह स्वरूप भी अपने संग्रह में रहने दो। यह तुम्हारे सुनने में कम ही आयेगा।

प्र०—आसावरी थाट के जिन रागों का वर्णन करने के लिये आपने कहा था, वे समाप्त हुए। अब भैरवी थाट की ओर बढ़ेंगे न?

उ०—हां, अब उसी थाट पर विचार करेंगे। भैरवी थाट के थोड़े से ही राग प्रचार में हैं। इस थाट के जो राग मैं तुमको बताने वाला हूँ वे इस प्रकार हैं:-भैरवी, सिंधभैरवी, विलासखानीतोडी तथा मालकंस। चलते-चलते दो शब्द "भूपाल" राग के सम्बन्ध में भी कहूँगा। "भूपाली" रात्रि का राग है जबकि "भूपाल" को सवेरे का मानते हैं। एक में सारे स्वर तीव्र हैं तथा दूसरे में सब कोमल हैं। भूपाली में वादी ग है तथा भूपाल में वादी ध है।

प्र०—अर्थात् जैसे रात्रि का यमन तथा प्रातःकाल की भैरवी, वैसे ही थोड़ा बहुत यह प्रकार दिखता है ?

उ०—हां, ऐसा समझो तो भी हर्ज नहीं। तो अब हम भैरवी थाट के प्रथम राग भैरवी पर विचार करेंगे। भैरवी राग हमारे यहां इतना साधारण तथा लोकप्रिय होगया है कि ऐसा कोई गायक नहीं मिलेगा, जिसको यह न आता हो। इसी प्रकार इस राग से सभी श्रोता भी भली भांति परिचित हैं। इस राग में सैकड़ों छोटे बड़े गीत दिखाई देते हैं। एक बात सुनकर तुमको आश्चर्य होगा कि भैरवी राग में ख्याल क्वचित् ही सुनने में आयेंगे। इसमें बड़े ख्याल नहीं मिलेंगे, ऐसा भी कहें तो अनुचित न होगा।

प्र०—आपने कहा कि इस राग में सैकड़ों गीत सुनने में आयेंगे, वे कौन से गीत हैं ?

उ०—जो ख्याल के अतिरिक्त बचें, वे। अर्थात् ध्रुपद, धमार, होली, टप्पा, ठुमरी, तराने ये सभी तुमको पर्याप्त संख्या में इस राग गाये हुए दिखाई देंगे।

प्र०—ऐसा क्यों होता है ? इस राग में ख्याल क्यों नहीं गाये जाते ?

उ०—यही प्रश्न मैंने अपने गुरु जी से भी किया था। इस पर उन्होंने कहा था कि इस राग में विलम्बित लय के ख्याल, ध्रुपद जैसे दिखेंगे अथवा वे विलासखानी तोड़ी जैसे दिखाई देंगे, इसीलिये उस्ताद लोगों ने इस राग में ख्यालों की बन्दिशें नहीं कीं। उनका बताया हुआ यह कारण समाधानकारक ही होगा, ऐसा मैं नहीं कहता। भैरवी में चंचल प्रकृति की चीजें विशेष सुन्दर प्रतीत होती हैं, इसीलिये कदाचित् उसमें ख्याल नहीं गाते हैं। इनकी बन्दिश न होने का कारण कोई नहीं बताता, तो फिर इस विषय पर विशेष चर्चा करना निरर्थक है। खमाज में भी हमारे गायक ख्याल नहीं गाते, यह तुमको मालूम ही है। यही बात पीलू, कालिंगड़ा, तिलककामोद के बारे में भी कही जा सकती है।

प्र०—कारण नहीं मिलते तो क्या हानि है, उनके बिना हमारा काम रुकने वाला नहीं है। आप भैरवी के सम्बन्ध में आगे चलिये ?

उ०—हां, भैरवी मेल के स्वर तो तुमको भली प्रकार विदित ही हैं।

प्र०—जी हां, वे सब कोमल हैं, यह हमको मालुम है। भैरवी मेल "सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि॒" ऐसा हमने सीखा है।

उ०—ठीक है। प्रचार में इस मेल को "भैरवी" मेल कहते हैं। दक्षिण के पण्डित इस मेल को "हनुमतोडी" मेल कहते हैं। भैरवी राग हमारे यहां अति प्राचीन काल से चला आता है तथा लोकप्रिय भी है।

प्र०—अर्थात् इसका हमारे तमाम संस्कृत ग्रन्थकारों ने उल्लेख किया है, ऐसा समझना चाहिये ?

उ०—हां। लेकिन इससे यह अनुमान न करलें कि प्राचीन ग्रन्थकारों का मेल तुम्हारे आज के भैरवी मेल जैसा ही था।

प्र०—यह तो कुछ आश्चर्यजनक बात हुई। यह राग अत्यन्त लोकप्रिय, समस्त गायकों की जानकारी का तथा अति प्राचीन है; यह कहकर फिर यह कहना कि इसको ग्रन्थाधार प्राप्त नहीं है, क्या यह विसंगत नहीं होगा ? हां, किसी ग्रन्थकार ने एकाध स्वर भिन्न कहा हो तो कोई बात नहीं, परन्तु आपके कहने का आशय तो यह प्रतीत हुआ कि हमारे आज के भैरवी थाट को प्राचीन काल में 'भैरवी" नहीं कहते थे ?

उ०—मेरी समझ से इस विषय में चर्चा अभी न करना ही ठीक होगा। कारण जब तुम्हारे सामने सब ग्रन्थकारों के मत रखूंगा तब प्राचीन काल में भैरवी मेल कौनसा था तथा आज कौनसा है, यह तुमको स्पष्ट ही दिखाई देगा। इस सम्बन्ध में पहिले बीच-बीच में भी तुमको बता चुका हूं, परन्तु उस समय खास तौर पर भैरवी राग की ही चर्चा न होने से इस पर विशेष जोर नहीं दिया होगा। लोचन ने भैरवी के स्वर कैसे कहे हैं, वह तुमको याद नहीं हैं क्या ?

प्र०—हां, ठीक है। वह भैरवी के स्वर काफी जैसे मानता था। परन्तु उसका मत हमको बिलकुल नहीं जंचा। लेकिन आप हमको सब ग्रन्थकारों के भैरवी सम्बन्धी मत अब बता रहे हैं, यह बहुत अच्छी बात है। इससे सब स्पष्टीकरण होजायगा।

उ०—तो फिर हम पहले रत्नाकर की ओर चलें। शार्ङ्गदेव पण्डित कहता है:—

धांशन्यासग्रहा तारमंद्रगांधारशोभिता।
भैरवी भैरवोपांगं समशेषस्वरा भवेत् ॥

भैरव, भिन्नषड्ज नामक ग्राम से उत्पन्न होता है, ऐसा उसने कहा है। भिन्न-षड्ज की व्याख्या देकर फिर—

× भैरवस्तत्समुद्भवः।
धांशो मान्तो रिपत्यक्तः प्रार्थनायां समस्वरः।

भैरव के ऐसे लक्षण उस पण्डित ने कहे हैं। यह भैरव सब कोमल स्वरों का था, ऐसा एक पण्डित ने मुझसे कहा था। यद्यपि उस वर्णन से वह भिन्नषड्ज का मेल स्पष्ट नहीं कर सका। तथापि उसका कथन केवल परम्परानुगत था।

सङ्गीत दर्पणकार ने भैरवी भी भैरव राग की एक रागिनी मानी है। वह कहता है:—

संपूर्णा भैरवी ज्ञेया ग्रहांशन्यासमध्यमा।
सौवीरी मूर्छना ज्ञेया मध्यमग्रामचारिणी।
कैश्चिदेषा भैरववत् स्वरैर्ज्ञेया विचक्षणैः॥

प्र०—इस तीसरे चरण से प्राचीन काल में भैरव तथा भैरवी के मेल समान थे, ऐसा नहीं दिखता क्या ?

उ०—हां, इस चरण से ऐसा संकेत अवश्य मिलता होगा। भैरव से आगे भिन्नषड्ज के स्वरों का संकेत होगा। अस्तु, आगे दर्पणकार भैरवी का इस प्रकार चित्रण करता है:—

स्फटिकरचितपीठे रम्यकैलासशृंगे।
विकचकमलपत्रैरर्चयन्ती महेशम्।
करधृतघनवाद्या पीतवर्णायताक्षी
सुकविभिरियमुक्ता भैरवी भैरवस्त्रीः॥

सङ्गीतसार संग्रह में भैरवी भैरव की ही रागिनी कही गई है:—

कासारमध्यस्फटिकोच्चगेहे पंकेरुहैर्भैरवमर्चयन्ती।
तारस्वराबद्धविशुद्धगीता विशालनेत्रा किल भैरवीयम्॥

मूर्छना

सा री ग म प ध नि-

प्र०—इस मत में भैरव के लक्षण कैसे कहे हैं ?

उ०—वह दर्पण के अनुसार ही हैं। 'गंगाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः"

प्र०—हां, अब ध्यान में आया। अच्छा तो आगे चलिये ?

उ०—इसी सारसंग्रह में नारदसंहिता का मत दिया है। उस मतानुसार भैरवी मालव राग की रागिनी कही गई है। उसका वर्णन इस प्रकार है:—

चंद्रप्रभा चारुमृगी सुनेत्रा बिंबाधरा चारुकलां वहन्ती।
पिकस्वरातीवमनोहरन्ती सा भैरवी नाम बुधैः प्रदिष्टा॥

अब हम अपनी सुबोध ग्रन्थमाला की ओर चलते हैं। सर्व प्रथम लोचन पण्डित का मत सुनो:—

शुद्धाः सप्तस्वरा रम्या वादनीयाः प्रयत्नतः ।
तेन वादनमात्रेण भैरवी जायते शुभा ॥
अन्ये तु भैरवीरागे धैवतं कोमलं विदुः ।
तदशुद्धं यतस्तस्मान्नायं रागोऽनुरंजकः ॥

यहां भैरवी में तीव्र ऋषभ है। यह एक महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य बात है। जो ग्रन्थकार यह ऋषभ लिखेंगे अथवा इसे कोमल बतायेंगे, उनको आज की भैरवी का आधार समझना चाहिये। अब लोचन के अनुयायी हृदय पंडित अपने कौतुक तथा हृदयप्रकाश में भैरवी का कैसा वर्णन करते हैं, वह देखो:—

शुद्धाः सप्तस्वरा रम्या वादनीयाः प्रयत्नतः ।

प्र०—ये लक्षण भैरवी मेल के नहीं कहे जा सकते। ये लोचन के ही हैं।

उ०—अच्छा, अब भैरवी के लक्षण सुनो:—

सरिगा मपधनिमाः सनिधाः पमगा रिमौ ।
रोहावरोहयोगेन संपूर्णा भैरवीमता ॥

प्र०—अर्थात् ये बिलकुल काफी के आरोहावरोह हुए ?

उ०—हां, हृदयप्रकाश में ऐसा कहा है:—

शुद्धसप्तस्वरे मेले सैंधवो भैरवीत्यपि
× × ×
सांशन्यासा च संपूर्णा षड्जादिर्भैरवी भवेत् ।

प्र०—यह सब "कौतुक" के अनुसार ही हैं। इसलिये इस सम्बन्ध में चर्चा की आवश्यकता ही नहीं ?

उ०—ठीक है। तो फिर इन तीन ग्रन्थों के अनुसार भैरवी का मेल काफी स्पष्ट है। अब हम अहोबल तथा श्रीनिवास के ग्रन्थों का अवलोकन करें:—

सस्वरांशग्रहन्यासा भैरवी स्याद्धकोमला ।
रिणारोहे तु पन्यासा पंचमेनोभयोरपि ।
षड्जेनाप्यवरोहे तु सर्वदा सुखदायिनी ॥

प्र०—यहां धैवत कोमल कहा गया, यह अच्छा हुआ। परन्तु ऋषभ अब भी काफी का ही रहा ?

उ०—हां, तुम्हारा ध्यान उधर खूब गया। श्रीनिवास कहता है:—

षड्जादिमूर्छनायुक्ता भैरवी स्याद्धकोमला ।
सा रि ग म प ध नि सां । नि ध प म ग रि सा ॥

ये लक्षण तो अहोबल ने कहे ही हैं। अब पुण्डरीक विट्ठल के तीनों ग्रंथों को देखें। सर्वप्रथम सद्रागचन्द्रोदय में इस प्रकार कहा है:—

चतुःश्रुती यत्र रिधौ भवेतां
साधारणो गोऽपिच कैशिकी निः ।
तथा विशुद्धाः रामपा भवन्ति
श्रीरागकल्पाभिहितः स मेलः ॥

यह मेल कहकर उसमें जन्य राग भैरवी का इस प्रकार वर्णन किया है:—

सांशग्रहान्ता रिपमुद्रिता च
पूर्णा सदा भैरविका विगेया ।

प्र०—ये पण्डित पुनः लोचन तथा अहोबल की ओर चले गये, ऐसा दीखता है। जान पड़ता है इनको अहोबल का मत पसन्द नहीं था ?

उ०—परन्तु धैवत कोमल करना तो लोचन ने भी नापसन्द किया था न ? अथवा ऐसा भी हो सकता है कि अहोबल ने पुण्डरीक के पूर्व ही प्रसिद्धि प्राप्त करली हो। खैर कुछ भी सही। पुण्डरीक 'रागमाला' में इस प्रकार कहता है:—

धन्नासी मेलजाक्ता स्वरसकलयुता चादिमध्यान्तषड्जा ।
तन्वंगी चंद्रवक्त्रा कनकसमतनुः श्वेतवस्त्रं दधाना ।
भाले सिंदूरबिंदुर्विकसितवदना सर्वश्रृङ्गारकाढ्या ।
नृत्यन्ती गीयमाना द्रविडजनरता भैरवी सा प्रभाते ॥

इसमें धन्नासीमेल की ओर भी देखना आवश्यक है। वह उसने इस प्रकार कहा है:—

सर्वांगे भूषणाढ्या धनिरिगविधुगा सत्रिकास्ता रिधाभ्याम्

प्र०—आगे जाने की आवश्यकता नहीं। यह भी काफी थाट ही होगा, कारण रे तथा ध एक गतिक अर्थात् चतुःश्रुतिक होंगे तथा ग एवं नि एक गतिक यानी साधारण ग व कैशिक नि होंगे ?

उ०—हां, ठीक है। अब पुण्डरीक की मंजरी की ओर बढ़ें उसमें वह कहता है:-

निगौ तृतीयगतिकौ गौडीमेलःप्रकीर्तितः ।

× ×

मालवगौडकःपूर्वी भैरवी पाडिका ह्यतः ।
सत्रिका रिपमुद्राच पूर्णा भैरविका सदा ॥

प्र०—यह क्या ! भैरवी का थाट गौरी ? ये पण्डित तो सबसे ही निराले निकले । भैरवी में तीव्र ग, तीव्र नि ?

उ०—ठहरो ! ऐसे विद्वान लोगों की आलोचना का उत्तरदायित्व न लो । पुण्डरीक के अतिरिक्त लोचन तथा हृदय ने भी आसावरी गौरीमेल में नहीं कही है क्या ? इन विद्वानों का मत सुनकर फिर वर्तमान प्रचार में क्या है व क्यों है, बस इसपर विचार करते जाओ । विद्वानों की आलोचना करने का अधिकार व्यंकटमखी जैसे पंडितों को है । हमारे तुम्हारे जैसे को नहीं, इस बात को न भूलो ।

प्र०—नहीं, नहीं । पुण्डरीक की आलोचना करना ही हमारा लक्ष्य नहीं था । वह हमारे भैरवीमेल जैसा मेल अपनी मंजरी में कहता है, ऐसा हमको क्षणभर प्रतीत हुआ था । उसने आसावरी गौरी मेल में कही थी, यह हमको अब याद आया । उसने भैरवी में रे, ध कोमल ले लिये, यही क्या कम है ? अस्तु, आगे चलिये ?

उ०—हां, अब उत्तर के संस्कृत ग्रन्थकारों में से भावभट्ट रहा । उसका स्वतः का कोई मत नहीं है । उसने अनूपरत्नाकर में रत्नाकर, पारिजात, रागमाला तथा दर्पण इन ग्रन्थों के मत ही बताये हैं और वे सब मैं कह ही चुका हूँ ।

प्र०—तो फिर अब दक्षिण के ग्रन्थों की ओर बढ़िये ?

उ०—हां, अब ऐसा ही करना पड़ेगा । प्रथम रामामात्य के स्वरमेलकलानिधि में क्या कहा है, वह देखो:—

शुद्धषड्जः पंचश्रुतीरिषभश्च तथापरः ।
स्यात्साधारणगांधारः शुद्धौ पंचममध्यमौ ॥
पंचश्रुतिर्धैवतश्च कैशिक्याख्यनिषादकः ।
एतैःसप्तस्वरैर्युक्तः श्रीरागस्य च मेलकः ॥
अस्मिन्मेले संभवन्ति ये रागास्तानथ ब्रुवे ।
श्रीरागो भैरवी गौली धन्यासी शुद्धभैरवी ॥

प्र०—रामामात्य का भैरवीमेल काफी थाट जैसा ही था, यह स्पष्ट दीखता है । उसने भैरवी तथा शुद्ध भैरवी ये भिन्न प्रकार माने हैं, ऐसा प्रतीत होता है । 'गौली' इस मेल में न जाने कैसे आई ?

उ०—परन्तु गौली अथवा गौडी को इस श्रीमेल में लाने की बाबत व्यंकटमखी ने उसको ऐसा अधिकार दिया था न !

× गौडी रागस्त्वयं ।

जातो मालवगौलाख्यरागमेलादिसंस्थितः ।
रागाणां पुनरेतेषां जन्म श्रीरागमेलतः ।
कथं विकत्थसे राम रामराम तव भ्रमः ॥

आगे, सोमनाथ अपने रागविबोध में भैरवी कैसी कहता है, सुनो:—

श्रीरागमेलके रिस्तीव्रः साधारणोऽथ धस्तीव्रः ।
कैशिक्यपि शुचिसमपा मेलादस्माद्भवन्त्येते ॥
श्रीरागमालवश्रीर्धन्याश्रीभैरवी तथा धवला ।
× × ×
भैरव्यंशन्यासग्रहा रिपमुद्रिता सदा पूर्णा ॥

प्र०—यह काफी थाट हुआ । 'रिपमुद्रिता सदापूर्णा' यह भाग उसने पुण्डरीक के चन्द्रोदय से तो नहीं लिया ?

उ०—यह कौन कह सकता है ? कदाचित् लिया भी हो । अब व्यंकटमखी अपनी भैरवी कैसी कहता है, वह भी देखो:—

षड्जश्च पंचश्रुतिकर्षभः साधारणाव्हयः ।
गांधारो मध्यमः शुद्धः पंचमः शुद्धधैवतः ॥
कैशिक्याख्यनिषादश्चेत्येतावत्स्वरसंभवः ।
भैरवी नाम रागः स्यादितिमेलसमाव्हयः ॥
रागो मल्लहरी घंटारवो वेलावली तथा ।
भैरवी चैव चत्वारो धन्यासांशग्रहाः स्मृताः ।
सायान्हरागः संपूर्णस्तूपांगभैरवो स्मृतः ।
वादी षड्जोऽत्र संवादी पंचमः स्याद्विवादिनौ ।
स्वरौ निषादगांधारौ रिधौ चैवानुवादिनौ ॥

चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम् ।

प्र०—इन्होंने भैरवी आसावरी थाट की मानी है, यह कितना उत्तम रहा । और एक कदम आगे बढ़कर वे ऋषभ कोमल कर दें तो हमारा कितना काम हो गया । परन्तु क्यों जी ! इन्होंने भैरवी संन्ध्याकाल का राग कैसे कहा है ?

उ०—व्यंकटमखी दक्षिण के ग्रन्थकार हैं न ? वहां आज भी यह राग संध्या समय गाया जाता है, ऐसा सुनते हैं । वहां के प्रचार से हमारा कोई विरोध नहीं । ऐसी दशा में उनका भैरवी प्रकार हमारे प्रकार से भिन्न ही रहा न ? हमारी पद्धति

हमारे लिये, उनकी उनके लिये। हमारी भैरवी को वे हिन्दुस्तानी भैरवी कहते हैं तथा अपनी भैरवी को शास्त्रोक्त भैरवी कहते हैं। और उनकी भैरवी शास्त्रोक्त नहीं, ऐसा कौन कह सकता है?

प्र०—और हमारी?

उ०—वह शास्त्रोक्त नहीं है। यह तुम अभीतक देखे हुए ग्रन्थों से निश्चय नहीं कर पाये हो क्या? परन्तु इससे तुमको तनिक भी दुखी होने की आवश्यकता नहीं। हमारी हिन्दुस्तानी भैरवी अब दक्षिण में लोकप्रिय होती जा रही है। इसीकी उन्होंने नकल की है, ऐसा भी कहते हैं। हमारी भैरवी को उधर तोड़ी कहते हैं। और तोड़ी का थाट सारे ग्रन्थकारों का हमारी भैरवी थाट जैसा है, यह बात भी गलत नहीं। और ये सब तुम आगे देखोगे ही।

प्र०—यह तो मामला उलटा हो गया! तो क्या हमें अपनी भैरवी को तोड़ी कहना चाहिये तथा तोड़ी को और कुछ नाम देना चाहिये?

उ०—मेरी समझ से तुमको इतनी उलझन में पड़ने की आवश्यकता नहीं। कारण कुछ भी हो, हमारा प्रचार बदला जरूर है। हमारे भैरवी को दक्षिण में तोड़ीमेल में लेते है, यह भी ठीक है। परन्तु वे अपनी तोड़ी हमारी भैरवी से कुछ भिन्न रखते हैं।

प्र०—अर्थात् क्या उनकी तोड़ी के आरोहावरोह नियम पृथक हैं?

उ०—हां।

प्र०—वह तोड़ी के आरोहावरोह कैसे लेते हैं?

उ०—उनकी तोडी के आरोहावरोह रागलक्षणकार के मत से इस प्रकार हैं:—

हनुमत्तोडिमेलाच्च तोडिरागः प्रकीर्तितः।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते॥
आरोहेऽप्यवरोहे च पवर्जं षाडवं तथा॥

आजकल उधर के गायक उनकी तोडी में पंचम शामिल करते हैं तथा उसको हिन्दुस्तानी भैरवी नाम देकर गाने लगे हैं, ऐसा हमारे सुनने में आया है। रागलक्षणकार ने शुद्ध भैरवी तथा भैरवी ऐसे दो प्रकार कहे हैं। उनमें से शुद्ध भैरवी प्रकार उसने काफी थाट में लेकर उसके आरोहावरोह "सा ग॒ म नि॒ ध सां। सां नि॒ ध म ग॒ रे सा।" ऐसे कहे हैं। भैरवी के लक्षण उसने इस प्रकार दिये हैं:—

नठभैरवीरागाख्यमेलाज्जातः सुनामकः।
भैरवीराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहे तु सुसंपूर्णमवरोहे पवर्जितम्॥
सा रे ग॒ म प ध॒ नि॒ सां। सां नि॒ ध॒ म ग॒ रि सा।

यह प्रकार आसावरी थाट का है। अभी तुमने इतने संस्कृत आधार देखे, परन्तु क्या उनमें एक भी ऐसा तुम्हें दिखाई दिया, जो तुम्हारी आजकी भैरवी का समर्थन करता हो? तब यह स्पष्ट हो जाता है कि आज हम भैरवी में जो कोमल ऋषभ लेते हैं, वह निराधार है। यह स्वर भैरवी में कैसे आया तथा कौन व कब लाया, यह प्रश्न अब विद्वानों के सामने है।

प्र०—अच्छा, परन्तु "संगीतसार एवं नगमाते आसफी" ये ग्रन्थ सौ-सवा सौ वर्ष के हैं। इनमें भैरवी का थाट कैसा कहा है?

उ०—देखो। राधागोविन्द संगीतसार में प्रतापसिंह कहते हैं:—

"शिवजीनें बाकी रागिनिनमेंसों विभाग करिवेको अघोरमुखसों गायकें दूसरी भैरवी नाम रागनी भैरवकी छाया युक्ति देखी भैरवको दीनी। अथ भैरवी रागिनी स्वरूप लिख्यते। पीरो जाको रंग है, बड़े जाके नेत्र हैं। अरु सुन्दर कैलास के शिखर में स्फटिक आसनपें विराजमान फूले कमलके पत्रनसों शिवका पूजन करत है।"

प्र०—और आगे जाने की आवश्यकता नहीं। यह दर्पण की कल्पना का भाषान्तर किया गया है। आगे स्वर?

उ०—स्वरों के सम्बन्ध में वे कहते हैं:—"शास्त्रमें तो यह सात स्वरनसों गाई है। म प ध नि सा रे ग म। यातें संपूरन है। अथवा ध नि सा ग म ध। यातें औडव है, याको घडीके तडके तलक दिन उगेताईं गावनो" आगे फिर जंत्र इस प्रकार दिया है:—

सा	ध	सा	रे
ध	प	रे	ग
प	म	ग	रे
नि	ग	म	सा

यह स्वरूप हमारी भैरवी का है, इसमें संशय नहीं। यह उन्होंने शास्त्रों से कैसे तैयार किया, यदि यह तथ्य भी स्पष्ट कर दिया होता तो कितना अच्छा रहता। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, इसका क्या इलाज? ग्रहांशन्यास के सम्बन्ध में उन्होंने 'अनूपविलास' ग्रन्थ का हवाला दिया है।

प्र०—इसमें कुछ अर्थ नहीं। आसफीकार ने भैरवी कैसी कही है?

उ०—उसने भैरवी भैरव राग की रागिनी मानी है तथा उसकी 'मार्गरूप' तान ऐसी दी है:—

ध प प म प म म ग ग रे सा नि ध म़ प़ ध़ सा सा सा।

प्र०—तो फिर प्रतापसिंह तथा रजाखान के समय में भैरवी को वर्तमान मेल प्राप्त हो गया था, यह स्पष्ट है। हमारी समझ से भैरवी में रे, ग, ध, नि ये चारों स्वर मुसलमान गायकों के समय में कोमल हुए होंगे। इनमें ग, ध, नि ये तो पहले ही कोमल होगये थे। ऋषभ मुसलमान गायकों ने अथवा अकबर काल के हिन्दू गायकों ने कोमल किया होगा?

उ०—तुमको ऐसा तर्क करने का अधिकार नहीं, यह तो मैं कैसे कह सकता हूँ? सम्भव है, "ध नि सा रे ग म प ध" यह मूर्छना देखकर उनको यह कल्पना हुई हो। अस्तु, अब पन्नालाल तथा उनके शास्त्रगुरू कृष्णानन्द व्यास क्या कहते हैं, वह देखो! कल्पद्रुमकार कहता है:—

न्यासांशग्रहमध्यमहि संपूरण पुनि होइ।
एक पहरलौं भैरवी गावत है सबकोइ॥

आगे जो स्वरूप दिया है वह इस प्रकार है:—

गिरिकैलास में बिलासहास करि बैठि फटिकको चौकीपर गिरिजासी जानी है।

प्र०—यह वर्णन कहने योग्य नहीं है। यह तो 'स्फटिकरचितपीठे रम्यकैलाशशृङ्गे' इस श्लोक का ही भाषान्तर है?

उ०—अच्छा, आगे नादस्वरूप सुनोः—

सा ग म नि ध नि ध प ध प म प ध प म ग रे सा। सा नि ध नि स रे ग म ध ध प म प ध प म ग रे सा नि ध नि सा।

प्र०—इसमें तीव्र कोमल स्वर कैसे पहिचानने चाहिये?

उ०—वहां तुम्हारे नियम हैं हीः-लक्ष्यप्रधानं खलु शास्त्रमेतत् इ० "स्वर ग्रन्थों के तथा उनमें तीव्र कोमल तुम्हारे उस्ताद के" यह नियम स्वीकार करके चलें तो कठिनाई कहां रही?

प्र०—क्या व्यास ने संस्कृत ग्रन्थाधार नहीं दिया है?

उ०—दिया तो है। सुनोः-"स्फटिकरचितपीठे रम्य कैलासशृङ्गे"।

प्र०—नहीं, नहीं, ऐसा नहीं?

उ०—यह नहीं तो दूसरा लो (मेषकर्णकृत रागमालायाम्)

स्वर्णाभा सोमवक्त्रा हिमकरधवलं वस्त्रमेषा वहंती
कंठे रत्नानि हारं द्विरदवरशिरोजातमुक्ताफलानि।
सिंदूरं भालमध्ये प्रहसितवदना हस्तयोः कंकणे द्वे
नृत्यन्ती गीयमाना चरणकमलयोर्नूपुरे द्वारवीथ्याम्॥

इति भैरवी।

प्र०—और उसके स्वर?

उ०—स्वर-वर कुछ नहीं।

प्र०—तो फिर इस श्लोक का कुछ उपयोग नहीं ?

उ०—अच्छा, यह कुछ काम में आसकता हो तो देखो:—

धैवत ग्रह है भैरवी ध नि सा रि ग म प जान।
संपूरन निमि अंतमें गावत चतुरसुजान।
टोडी गुजेरी जनम रामकली मिले आय।
भैरवी रागनि होत है भैरव प्रिया कहाय॥

प्र०—यह भी कुछ नहीं रहा। पन्नालाल भैरवी कैसी कहते हैं वह बताइये ?

उ०—उन्होंने नादविनोद में भैरवी इस प्रकार कही है:—"स्फटिकरचित पीठे इ०" परन्तु उस लक्षण की तुमको आवश्यकता नहीं, ऐसा दीखता है। वह कहकर ग्रन्थकार कहता है:—

धैवतांशग्रहंन्यासं धैवतादिकमूर्च्छना।
संपूर्णा भैरवी ज्ञेया प्रातःकाले प्रगीयते॥

उसका स्वरस्वरूप इस प्रकार है:—

म म प धु म प गु गु रे सा, ध्रु प, धु म प, गु, म प ध्रु प ध म प, गु म प, गु गु गु रें रें रे सा। गु म धु, गु म धु, नि सां, ध्रु प गु रे सा, गुं सां, गु म प नि धु प म गु, गु गु म प गु म प, गु गु गु रे रे रे सा।

आगे विस्तार ऐसा किया है:—

म़ प़ धु़ नि़ सा, सारे म म प म धु नि सां, गु रे सा, नि धु प म गु रे सा, रे गु, ध नि सां, नि सां, गु म नि धु, गु म गु रे सा, नि़ सा, धु़, धु़ नि़ सा, रे गु, म प म गु रे सा, म गु रे सा। इस प्रकार के और भी कुछ समुदाय उसने आगे दिये हैं। यह स्वरूप बिलकुल शुद्ध है। आज हम भैरवी ऐसी ही गाते हैं। भैरवी राग सम्पूर्ण होने से तथा उसमें चाहे जैसा घूम सकने के कारण कैसे भी स्वर लिये जांय तो हानि नहीं होगी। अब राजा टागोर भैरवी कैसी कहते हैं, वह देखो:—

संपूर्णा भैरवीज्ञेया ग्रहांशन्यासमध्यमा।
कैश्चिदेषा भैरववत् स्वरैर्ज्ञेया विचक्षणैः॥

यह शास्त्राधार कहकर आगे नादस्वरूप इस प्रकार देते हैं:—

नि़
सा नि़ सा, रे गु म गु रे सा, सा रे नि़ रे सा नि़ धु़ नि़ धु़ प़ म़ प़ नि़ धु़ नि़ धु़ नि़ सा, सा गु रे गु म गु रे सा म गु म धु प म गु म, नि धु प म गु, सा, म गु रे गु सा।

प्र०—तो क्या टागोर के गुरु को यह मालुम था कि भैरव में समस्त स्वर पहले से कोमल थे ?

उ०—इसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। वे अपना भैरव प्रचारानुसार ही गाते थे। इस श्लोक में "सम्पूर्णा भैरवी ज्ञेया" यह वाक्य उनको दिखाई दिया, वह लेकर उन्होंने इसका उपयोग किया। श्लोक पूर्ण करने के विचार से उन्होंने दूसरा चरण उद्‌धृत किया है। राजा टागोर, क्षेत्रमोहन के शिष्य थे। उनको सारे ग्रन्थकारों का शुद्धमेल बिलावल जान पड़ा, यह मैं तुमको बता ही चुका हूँ। अब एक मत शेष रहा "पूरण" कवि का। यह कवि "नादोदधि" में क्या कहता है, सुनोः—

भैरवी स्वरप्रकाश यथा !

ताल फाक्‌ता।

सा सा ग ग म प रे ग ग रे रे प नि नि ध नि नि प रे म म रे रे सा सा सा प रे ग ग रे सां नि नि नि नि सां नि नि नि सा म म ध ध ध ध म म रे रे सा प प रे रे म म नि नि नि ध रे रे रे सां नि म ध ध म रें रें सां म म सा म म नि नि नि नि ध रे रे रे सा प प ग रे सा।

अथ भैरवी कल्र।

चौताल

सगम प्यारौं रूपनिधान परमरससुखपरगास।
निमैंमें न राख मन मेरौं सरस परमनोनी धौंरिस।
नामी धानरसमसे में नागरश सुमन सुगंध।
ना शामें पग्यौ मगन पूरण रस परस॥

भैरवी स्तुति।

जयजय जननी जगमयी गुनमंगल करग भैरवी भैरवप्यारी।
धैवत अस्थाइ बिनस्वर प्रछंनक ताहीकौं अगमगति जानिबूझकर हैं बेद चारी।
जापें क्रिया रतहै पावत सकल फल काम नाम जपे ध्यान सुधारी।
पूरण प्रकाश नाद बाइसोंउ भेद उदारन अनभव बिसारी॥

भैरवी स्वरूप।

"स्फटिकरचित पीठे" श्लोक के आधार पर यह हिन्दी में लिखा है, इसका उल्लेख यहां नहीं किया। इस ग्रन्थकार की भाषा उत्तर के किसी देहात की है, ऐसा उधर के एक पण्डित ने मुझे बताया था।

प्र०—बस, अब हमारे प्रचलित भैरवी के लक्षण बता दीजिये?

उ०—हां, अब ऐसा ही करता हूं:—

भैरवी राग हमारे भैरवी थाट से उत्पन्न होता है। इसमें षड्ज तथा पंचम स्वर शुद्ध हैं तथा शेष सारे स्वर कोमल हैं। यह राग सम्पूर्ण है। इसमें वादी स्वर मध्यम तथा संवादी षड्ज है। किसी के मत से वादी धैवत एवं संवादी गन्धार है। गाने का समय प्रातःकाल का पहिला प्रहर मानते हैं। आरोह में कभी-कभी तीव्र ऋषभ का प्रयोग दृष्टिगत होता है, उसे विवादी स्वर समझना चाहिये। प्राचीन ग्रन्थकार भैरवी का मेल काफी अथवा आसावरी मानते थे, यह तुमने देखा ही है। भैरवी राग अत्यंत लोकप्रिय है तथा प्रायः सभी गायक वादकों को आता है। इस राग में ख्याल बहुधा नहीं गाये जाते। ध्रुपद, धमार, तराने, टप्पे, ठुमरी आदि गीत भैरवी में सुनने में आते हैं। प्रत्येक महफिल के अन्त में बहुधा भैरवी गाने का रिवाज है। भैरवी में सारा वैचित्र्य "सा ग प म ध" इन स्वरों पर अवलम्बित है। केवल सा रे ग म ग रे सा, ध नि सा, रे नि सा, ऐसे सरल स्वर भी यदि गाये जांय तो श्रोता यही कहेंगे कि तुम भैरवी गा रहे हो। उत्तरांग में "सां नि ध प, नि ध प ध म प ग म ग रे सा" ऐसा करने पर तुम्हारा राग भैरवी होगा। यहां एक बात यह ध्यान में रखनी होगी कि धैवत पर झटका अथवा मुकाम नहीं होने देना चाहिये।

प्र०—यह समझ में आ गया। धैवत पर मुकाम "नि ध, प" ऐसा होते ही आसावरी अङ्ग सामने आने का भय रहता है, यही न?

उ०—हां, तुम ठीक समझे। जो गायक मध्यम को वादीत्व देते हैं, वे उस स्वर को बारम्बार सामने लाने का प्रयत्न करते हैं।

प्र०—यह वे किस प्रकार करते हैं, क्या आप थोड़ा सा करके दिखायेंगे?

उ०—वे उस मध्यम को इस प्रकार से सामने लाते हैं—सा रे म, प ग, रे सा, ध नि सा, रे सा, म, रे सा, म, प म, ध प म, प म ग, रे सा, ध प ध, म, म म, सा रे म, प ध प म, सां नि ध प, ध म, सा रे ग म ग रे सा।

प्र०—यह भी प्रकार बुरा नहीं दिखता। परन्तु इस प्रकार से मध्यम आगे आया तो भैरवी की प्रकृति कुछ गंभीर नहीं होगी क्या?

उ०—तुम बहुत अच्छी तरह समझ गये। ऐसा अवश्य होगा। यह सब गायक की इच्छा पर है। उसको जो भाव श्रोताओं के सन्मुख उस समय चित्रित करना होता है, उसके अनुसार वह करता है। भैरवी में बिलकुल छोटा रागवाचक स्वरसमुदाय कहें तो
रे म
ग ग, सा रे सा" होगा। यह कान में पड़ते ही श्रोता भैरवी की अपेक्षा करेंगे, उसी प्रकार
नि म
उत्तरांग में, "ध प, ध म प ग" ये स्वर आये कि भैरवी निश्चत हुई। फिर गायक मन्द्र सप्तक में इस प्रकार गाता है, "रे, सा ध नि सा ध म ध नि सा रे सा।" कुछ गायक मनोरंजन के लिये गाते-गाते षड्ज परिवर्तन करके इस प्रकार गाते हैं,

रे
ग, री ग, म ग, प म ग, ध प ध म प ग, रे ग तथा फिर "रे सा" इस छोटे से टुकड़े से मूल भैरवी राग में जाकर मिलते हैं। यहां तीव्र ऋषभ विवादी के नाते प्रयुक्त होता है, यह तुम्हारे ध्यान में ही है।

प्र०—यह हमको विदित है। उसमें वे कोमल गन्धार को क्षणभर षड्ज मानकर अपनी तानें लेते होंगे। यह तथ्य सहज ही समझने योग्य है। प्राचीन काल में एक ही राग में विभिन्न स्वरों को कारणवश अंशत्व देते थे, उसमें भी ऐसा ही कुछ रहस्य होगा। ऐसा करने से गायन बहुत ही रक्तिवर्धक होता होगा, ऐसा मैं समझता हूं। परन्तु यह कृत्य करने के लिये उत्तम स्वरज्ञान तथा रागज्ञान की आवश्यकता है।

उ०—हां, यह तुम्हारा कहना यथार्थ है। अस्तु, भैरवी का उठाव प्रचार में

म
विभिन्न प्रकार से किया हुआ दृष्टिगोचर होगा। कभी "सा, सा रे म, प, ग, सा रे नि सा" ऐसा होगा; कभी "सा रे म, ग, रे सा म ग रे सा" ऐसा होगा; कभी "ध प ध म प ग, रे सा, रे ग म ग रे सा" और कभी तो "नि सा ग म ध, प ऐसा भी उठाव होगा।

प्र०—यह ठीक ही है। देशी सङ्गीत में उद्ग्राह नियम शिथिल हो गया है, यह आपने पहले बताया ही था। भैरवी का अन्तरा किस प्रकार प्रारम्भ किया हुआ दिखाई देगा?

उ०—अन्तरा कभी-कभी इस प्रकार प्रारम्भ होता है, "सा, रे ग, म, ग म, प, प, ध प ग रे सा;" कभी वही "म, ध नि सां" अथवा "ध म ध नि सां" ऐसा भी प्रारम्भ होता है। यह चीज की रचना करने वाले की सुविधा एवं कुशलता पर अवलम्बित है। कुछ भी हो, परन्तु अन्तरा में ये टुकड़े प्रायः दिखाई देने सम्भव हैं।

प्र०—अब हमको थोड़ा सा भैरवी का विस्तार करके दिखायेंगे क्या? उससे भैरवी का चलन हमारे ध्यान में आजायेगा क्योंकि उसमें इच्छानुसार स्वर ले सकते हैं, ऐसा आपके कहने से विदित होता है।

उ०—ठीक है। थोड़ा सा करके दिखाता हूं:—

ग, सा रे सा, ध नि सा रे नि सा, सा रे ग म ग रे सा।

सा ग रे ग, ध प, म प ग, रे सा, रे ग म, ग, रे सा, ध नि सा रे नि सा, म ग, रे, सा।

नि प
सा, नि सा, ध, ग, रे ग, म ग, प म ग, ध, प म ग, म ग सा, रे ग, म, ग, रे सा, सा रे नि सा।

नि़ सा ग, म ग, प म ग, ध प ध म प ग, नि नि ध प ध म प ग, नि ध, प, ध म प ग, सा रे ग, म ग रे सा।

नि़ सा ग, रे ग, म ग, प म ग, ध प ध म प ग, नि नि ध ध प ध म प ग, सां, नि, ध, प, ध म प ग, रे सा, रे ग, म. ग रे सा।

नि़ सा ग ग रे सा, नि़ सा ग म प ग, म ग रे सा, नि़ सा ग म प ध म प ग, म ग रे सा, नि़ सा ग म प ध नि ध प ध म प ग, म ग रे सा, नि़ सा ग म प ध नि सां नि ध प ध म प ग, म ग रे सा।

नि़ सा ग म प, ग म प, ध प, नि ध प, सां, नि, ध, प, गं, रें, सां, नि, ध, प, सां, नि, ध, प, ध म प ग, सा, रे ग, म ग रे सा।

सा ध प ध म प ग म, नि ध, सा, रे ग म, ग रे सा, ध़ नि़ सा रे नि़ सा, प म ग रे सा।

ध म, ध, नि सां रें सां, नि नि सां, गं रें सां, नि, ध, प, सा ध, प, ध, म प ग, सा, रे ग, म, ग रे सा।

प्र०—इतना पर्याप्त है। अब भैरवी लक्षण श्लोकों में कहिये ?

उ०—कहता हूं:—

ग्रंथोक्ततोडिकामेलः स लक्ष्ये भैरवीरितः।
अस्मान्मेलात्समुत्पन्ना भैरवी लोकविश्रुता॥
धवतोऽत्र मतो वादी कैश्चिन्मध्यम ईरितः।
आरोहे चावरोहे च संपूर्णा सरला मता॥
उत्तरांगप्रधानत्वात्प्रातर्गेयत्वमीचितम्।
सरिगमगरिसैः स्यात्स्वरूपं सुपरिस्फुटम्॥
काफीमेलसमुत्पन्ना लोचनेन प्रकीर्तिता।
तथैव हृदयेशेन स्वग्रंथे परिकीर्तिता।
श्रीरागमेलने प्रोक्ता पुंडरीकेन धीमता।
तन्मेलजैव संप्रोक्ता विबोधे रागपूर्वके॥
रागलक्षणकारेण भैरवी वर्णिता स्फुटम्।
नठभैरविकामेले पुरावृत्तमितीरितम्॥

लक्ष्यसंगीते।

आमान्त्यस्यां रिगमधनयः कोमला मोऽत्रवादी
सः संवादी क्वचिदपि धगौ वादिसंवादिनौ च।

प्रातर्गेया सुरुचिरतरा स्वैरिणी सर्वगम्या ।
संपूर्णा सा जनयति सुखं भैरवी रागिणीयम् ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

यत्र मध्यः स्वरो वादी संवादी षड्ज ईरितः ।
स्वैरिणी गीयते प्रातर्भैरवी सर्वकोमला ॥

चंद्रिकायाम् ।

सब कोमल सुर भैरवी संपूरन सुर होइ ।
मस वादीसंवादि हैं सब जो चाहै कोइ ॥

चंद्रिकासार ।

निसौ गमौ पधौ निश्च सनिधपा मगौ रिसौ ।
संपूर्णा भैरवी प्रोक्ता धैवतांशा प्रभातगा ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

भूपाल के सम्बन्ध में मैं बोलूंगा, ऐसा मैंने अभी अभी कहा था। यह राग हमारे उत्तर के बहुत ही कम गायकों को मालूम है। इस राग का थाट भैरवी है। वादी धैवत तथा संवादी गन्धार है। गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर है। इस राग में मध्यम तथा निषाद वर्ज्य हैं। यह राग दक्षिण में गायकों को भली भांति विदित है, ऐसा सुनते हैं। रागलक्षणकार कहता है:—

हनुमत्तोडिमेलाच्च जातो भूपालनामकः ।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ॥
आरोहेऽप्यवरोहे च मनिवर्जं तथौडुवम् ।
स रि ग प ध सां । सां ध प ग रि सा ॥

मेरे एक गुरु ने मुझे इस राग में एक छोटा सा गीत सिखाया था, उसकी सरगम भी तुमको बताता हूं:—

भूपाल—झपताल

ध प	ध	सां	ऽ	सां	रें	सां	त्रि ध	ध	प
×		२			०		३		
गं	गं	रें	रें	सां	रें	सां	ध	ध	प
म ग	ग	ध	ध	प	म ग	ग	ग रे	ग रे	सा।

अन्तरा.

प	प	(त्रि)ध॒	ध॒	प	सां	ऽ	रें॒	सां	ऽ
×		२			०		३		
सां	रें॒	गं॒	गं॒	रें॒	गं॒	रें॒	सां	ऽ	सां
गं॒	गं॒	रें॒	गं॒	रें॒	सां	ऽ	ध॒	ध॒	प
(प)ध॒	सां	ध॒	ध॒	प	(म)ग॒	प	ग॒	रे॒	सा।

यह इतना सरल राग है कि इसमें कोई नई सरगम रचने में तुम्हें कठिनाई नहीं होगी।

प्र०—हम ऐसा प्रयत्न करके देखें क्या?

उ०—अवश्य करो।

प्र०—अच्छा तो करता हूँ:—

भूपाल—झपताल

(त्रि)ध॒	ध॒	प	(त्रि)ध॒	प	ग॒	ग॒	रे॒	रे॒	सा
×		२			०		३		
सा	रे॒	ग॒	रे॒	सा	रे॒	सा	ध़॒	ध़॒	प़
प़	प़	ध़॒	ऽ	ध़॒	सा	ऽ	ग॒	रे॒	सा
सां	ध॒	प	ध॒	प	(म)ग॒	ग॒	रे॒	रे॒	सा।

अन्तरा.

प	प	ध	सां	ऽ	रें	रें	गं	रें	सां
×		२			०		३		
सां	रें	गं	रें	गं	रें	सां	ध	ध	प
प	गं	रें	रें	सां	रें	सां	ध	ध	प
सां	सां	ध	ध	प	ग	ग	रे	रे	सा।

सरगम. (दूसरी)

ग	रे	सा	सा	रे	ग	ऽ	प	ग	ऽ
×		२			०		३		
प ग	प	ध	प	ग	ध	प	ग	रे	सा
सा	रे	ग	रे	ग	प	ग	ध	प	ग
सां	ध	प	ग	ध	प	ग	रे ग	रे	सा।

अन्तरा.

प	ग	प	ध	प	सां	ऽ	सां	रें	सां
×		२			०		३		
सां	रें	गं	रें	सां	रें	रें	सां	ध	ऽ

(प) ध गं	रें रें सां	रें सां	ध सां ध
ध सां	ध ध प	ग प	ग रे सा।

उ०—मेरी समझ से इस राग का स्वरूप तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आगया है। पहिली सरगम विशेष सुन्दर है।

प्र०—आपने कहा था कि भैरवी के पश्चात् सिंधभैरवी के विषय में वर्णन करूंगा। भैरवी होगई, इस लिये अब सिंधभैरवी के बारे में विचार किया जाय, ऐसी हमारी प्रार्थना है।

प्र०—हां ऐसा मैंने अवश्य कहा था। तो अब सिंधभैरवी के सम्बन्ध में दो शब्द कहता हूं। प्रथम एक महत्व की बात यह ध्यान में रखो कि सिंधभैरवी एक क्षुद्र गीत का प्रकार माना जाता है। इस राग में बड़े ख्याल अथवा ध्रुपद सुनने में नहीं आते। इसमें ठुमरी, दादरे गजल तथा कभी कभी टप्पे आदि इस प्रकार के गीत दिखाई पड़ते हैं। "सिंधभैरवी" नाम का राग हमारे संस्कृत ग्रन्थों में नहीं दिखाई देता।" सिंध तथा भैरवी" इन दो रागों के संयोग से सिंधभैरवी नाम उत्पन्न हुआ होगा, ऐसा इसके नाम से प्रतीत होता है। किन्तु सिंध को 'सिंदूरा" न समझना। महाराष्ट्र में "सिंध" नामक राग गाने में नहीं सुनाई देता। कुछ तन्तकार सिंध को गत सितार पर बजाते हुए मैंने सुने हैं।

प्र०—तो फिर वे तन्तकार सिंध को कौन से थाट में लेते हैं?

उ०—वे इस राग को काफी थाट के स्वरों से बजाते हैं और बीच-बीच में दोनों गंधार का प्रयोग करके दिखाते हैं।

प्र०—इस प्रकार का नमूना हमको आप दिखा सकेंगे क्या?

उ०—एक छोटी सी गत सिंध राग की मैंने बचपन में सीखी थी। उसके स्वर कुछ इस प्रकार थे:—

सिंध—मध्यलय.

नि ध	नि नि रे रे	ग ग म म	ग ग रे रे	सा ऽ म ग
	०	३	×	२
रे रे नि स़ा	नि नि प ध	नि ऽ सा ऽ	सा ऽ, नि ध।	

म म	ग ऽ ग ऽ	म ऽ म ऽ	ग ग रे रे	सा ऽ म ग
रे रे नि सा	नि नि प ध	नि नि सा ऽ	सा ऽ, नि ध ।

और भी एक गत मुझे इस प्रकार आती थी:—

(प) म म प सा	ऽ नि ध प	(प) म म प (सा) नि	ऽ सा रे सा
×	२	०	३
रे ऽ ऽ ऽ	(म) ग ग रे रे	(ग) रे ग रे म	ग ग रे रे
(सा) नि नि सा म	ऽ ग रे सा	नि सा ग रे	नि नि ध प ।

प्र०—तो फिर इस सिंध राग को भैरवी से मिलाने के लिये इसमें ऋषभ तथा धैवत तीव्र करने पड़ेंगे ? लेकिन तब सिंधभैरवी काफीथाट का राग नहीं होगा क्या ?

उ०—सिंधभैरवी में नियम से केवल ऋषभ तीव्र होता है, शेष स्वर भैरवी के ही रहते हैं। कुछ गायक बीच-बीच में भैरवी का स्पष्ट दिखाने के लिये दोनों ऋषभ का प्रयोग करते हैं। यह सिंधभैरवी राग अनेक बार भैरवी से मिला हुआ दीखता है। गायक कौनसा राग गा रहा है, यह तीव्र ऋषभ के प्रमाण से निश्चित करने में आता है। बड़ी महफिलों में प्रसिद्ध गायक सिंध भैरवी राग नहीं गाते। गाने के लिये कहने पर वह "हमको नहीं आता है" ऐसा कहने के लिये भी तैयार हो जाते हैं।

प्र०—सिंधभैरवी किस प्रकार गाते हैं, यह आप किसी सरल उदाहरण के द्वारा हमको समझा सकेंगे क्या ?

उ०—इस राग में एक छोटा सा 'दादरा' है, जिसको बहुत से लोग जानते हैं। उसका स्वरूप कहता हूँ, जिससे इस राग की तुमको थोड़ी बहुत कल्पना होजायगी। "सा ध प, ध म प, नि ध प, सां नि ध प, ग ध प, ग" ये स्वर भैरवी में आते हैं, यह तो तुमको पता ही है। अब इनका योग तीव्र ऋषभ से कैसी कुशलता से करते हैं, यह ध्यान से देखो:—

सिंधभैरवी–दादरा.

नि॒	सा ×	ऽ	रे	ग॒ ०	म	ऽ	म रे ×	ग॒	ऽ	सा रे ०	ऽ	नि॒
	सा	ऽ	रे	ग॒	म	ऽ	म रे	ग॒	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
	नि॒ सा	प	प	ध॒	म	प	म रे	ग॒	ऽ	सा रे	ऽ	नि॒
	सा	ऽ	रे	ग॒	म	ऽ	म रे	ग॒	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ।

अन्तरा.

सा नि॒ ×	सा	ऽ	म ग॒ ०	ऽ	म	प ×	प	ऽ	नि॒ ध॒ ०	प	ऽ
म	म	प	नि॒	ध॒	ऽ	म प	ऽ	म रे	ग॒	ऽ	ऽ
सा	ध॒	ध॒	प	ऽ	ध॒	म	प	ऽ	म ग॒	रे	सा नि॒
सा	ऽ	रे	ग॒	म	ऽ	म रे	ग॒	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ।

एक लोकप्रिय ठुमरी के आधार से सिंधभैरवी की एक और सरगम दूसरी ताल में कहता हूँ।

सरगम–त्रिताल.

सा	सा प २	प	प	नि॒ ध॒	म प ०	म रेग॒	रे	नि॒	सा ३	ऽ	ऽ	सारे	म ×	ऽ	ऽ,	रे ग॒
	रे	रे	ग॒	म	ऽ	म रेग॒	रे	नि॒	सा	ऽ	ऽ	सारे	म	ऽ	ऽ	ऽ।

अन्तरा.

सा	सारे	म	म	प	प	(नि॒) ध॒	प	म	म	प	प	नि॒	ध॒	प	म
०				३				×				२			
सा	ध॒	प	प	(नि॒) ध॒	(नि॒) ध॒	म	प	म	ऽ	ऽ	सा	रे	म	प	ध॒
म	प	(म) ग॒	ग॒	(सा) रे	नि़॒	ऽ	सारे	म	ऽ	ऽ,	सा				

सिंधभैरवी में कोई दोनों ऋषभ लेते हैं, यह मैंने कहा ही था। कोई कहते हैं कि मन्द्र पंचम को षड्ज मानकर भैरवी गायें तो सिंधभैरवी होगी। उनके मत से भैरवी में षड्ज परिवर्तन किया तो सिंधभैरवी होती है।

प्र०—यह बात आप यदि किसी उदाहरण द्वारा समझायें तो जल्दी समझ में आ जायेगी?

उ०—तुम अपना सितार हाथ में लो और मन्द्र पंचम स्वर अर्थात् बायें हाथ की ओर दांडी पर जो दूसरा पर्दा पंचम का है, उसको षड्ज मानकर ऐसे स्वर बजाओ:—

प़	ग॒	रे	ग॒	सा	रे	नि़॒	सा	म	ग॒	नि़॒	सा	नि़॒	ध़॒	प़	ऽ
प़	ध़॒	सा	ऽ	नि़॒	ध़॒	नि़॒	ऽ	ध़॒	प़	ऽ	सा	नि़॒	ध़॒	प़	ऽ।

अब पहिला जो पंचम स्वर (प़) है इसको षड्ज माना तो ग॒ रे॒ ग॒ ये स्वर उस षड्ज के क्या होंगे, बताओ तो?

प्र०—हमारी समझ से वे "ध॒ प ध॒" होने चाहिये, कारण षड्ज उसमें मध्यम होगा?

उ०—बिलकुल ठीक है। तो अब मन्द्रपंचम के षड्ज से मेरे द्वारा कही गई सरगम कैसी होगी, वह तो कहो?

प्र०—वह इस प्रकार होगी:—

सा	ध॒	प	ध॒	म	प	ग॒	म	नि॒	ध॒	ग॒	म	ध॒	रे॒	सा	ऽ
सां	रे	म	ऽ	ध॒	रे	ग॒	ऽ	रे॒	सा	ऽ	म	ग॒	रे॒	सा	ऽ।

वास्तव में यह भैरवी होगी। अब षड्ज परिवर्तन का हिसाब हमारी समझ में आया।

उ०—ऐसे कुछ कुछ मत सिंधभैरवी सम्बन्धी गायकों के मुख से प्रायः सुनने में आते हैं। आजकल भैरवी में तीव्र रि, तीव्र ध, तीव्र नि तथा कभी-कभी तो तीव्र म भी विवादी के रूप में गायक कुशलता से प्रयुक्त करते हैं। तब शुद्ध सिंधभैरवी अर्थात् भैरवी से बिलकुल भिन्न विशेष रूप से सुनने में नहीं आती।

प्र०—आपके कहने का तात्पर्य ऐसा जान पड़ता है कि जो गायक अपने गीत में केवल आसावरी मेल के ही स्वर लेंगे, उनका राग बिलकुल शुद्ध "सिंधभैरवी" और जो दोनों ऋषभ अथवा दोनों धैवत लेंगे, उनका राग सिंध-भैरवी एवं भैरवी राग का मिश्रण समझा जायगा।

उ०—पूर्णरूपेण नियम परिपालन की दृष्टि से ऐसा बन्धन स्वीकार करना उचित ही होगा, किन्तु मैं यह भी कहूँगा कि इस प्रकार के मिश्रण समाज को बहुत पसन्द आते हैं।

प्र०—अब मैं समझा। काफी-सिंदूरा, देस-सोरट, परज-कालिंगड़ा आदि प्रकार भी तो लोकप्रिय हैं। समप्रकृतिक तथा निकटवर्ती राग एक दूसरे में मिलेंगे ही। इसका हमें आश्चर्य नहीं होता। अच्छा; अब आगे चलें।

उ०—अब सिंधभैरवी के लक्षण कहता हूँ। यह राग आसावरी थाट से उत्पन्न होता है। इसको सम्पूर्ण जाति के रागों में ही गुणीलोग मानते हैं। वादी धैवत तथा संवादी गन्धार है। गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर है। इसमें ऋषभ तीव्र आरोह तथा अवरोह दोनों ही में आ सकता है, यह इसमें तथा भैरवी में एक भेद है। इस राग का विस्तार मन्द्र एवं मध्य स्थान में विशेष सुन्दर प्रतीत होता है। कोई सिंधभैरवी में दोनों ऋषभ लेते हुए दिखाई देते हैं। कोई कहते हैं कि भैरवी मंद्रसप्तक के स्वरों से गाई जाय तो उसको सिंधभैरवी कहेंगे। यह राग क्षुद्रगीतों से युक्त है। इसमें ख्याल, ध्रुपद बहुधा नहीं गाये जाते। "सा, रे ग म, रे ग, रे नि सा ध प ध म प ग रे ग, सा, रे ग रे नि सा" ऐसा स्वरसमुदाय होगा तो वहां सिंध-भैरवी अथवा उसका योग दिखाई देने लगेगा। इस राग में दादरा, ठुमरी प्रायः सुनने में आते हैं। बड़े गायक महफिल में यह राग फरमाइश के बिना नहीं गाते। फिर भी वे जब भैरवी गाते हैं तब बीच-बीच में इस राग के भाग उनके गाने में स्वतः आते रहते हैं। इस राग में टप्पे तार सप्तक में जाने वाले भी कभी-कभी सुनाई देंगे। इस राग का हमारे ग्रन्थकारों ने उल्लेख नहीं किया।

प्र०—संस्कृत ग्रन्थकार इस राग का वर्णन नहीं करते, यह तो समझ में आने योग्य बात है, परन्तु प्रतापसिंह, पन्नालाल, राजा टागोर के ग्रन्थों में भी सिंधभैरवी पर कुछ नहीं लिखा गया ?

उ०—नहीं। उन्होंने भी इस राग के विषय में कुछ नहीं कहा। उन्होंने सिंध, सैंधवी, सिंदूरा ये अवश्य कहे हैं। परन्तु उनका हमारे इस सिंधभैरवी से कोई सम्बन्ध

नहीं। इस राग के सम्बन्ध में मैं भी कुछ कहना नहीं चाहता था; किन्तु हमारे यहां इस राग के क्षुद्रगीत कभी-कभी सुनने में आजाते हैं, इस कारण इस विषय में कुछ शब्द कहने पड़े। इस राग का स्वरूप कई बार गायकों की मौज पर अवलम्बित रहता है। भैरवी में वे तीव्र ऋषभ का विशेष प्रयोग करने लगे और ऐसा करने का कारण उनसे किसी ने पूछा तो "साहेब, ये सिंध-भैरवी है निखालस भैरवी नहीं है" ऐसा उत्तर देते हैं। अतः इन दोनों रागों में क्या भेद है, यह कहने का मेरा तात्पर्य था।

प्र०—इस रागिनी के लक्षण श्लोकों में बतायेंगे क्या ?

उ०—कहता हूँ। सुनोः—

आसावरी सुमेलाच्च भैरवी सिंधुपूर्विका।
आरोहे चावरोहेऽपि संपूर्णा धैवतांशिका॥
वर्णयन्ति पुनः केचिदेनां मध्यमवादिनीम्।
गानं सुनिश्चितमस्या द्वितीयप्रहरे दिने॥
ऋषभद्वययोगोऽत्र दृश्यते लक्ष्यके क्वचित्।
परिवर्त्य पुनः षड्जं गायन्ति गायनाः क्वचित्॥
आधुनिकं स्वरूपं स्यादेतत्प्राहुर्विचक्षणाः।
मंद्रमध्यप्रचारेण वैचित्र्यं तनुते ध्रुवम्॥

× × × ×

यस्यां तीव्रो भवति रिषभः कोमला एव सर्वे।
वादी यस्यां विलसति सदा मध्यमः सोऽप्यमात्यः॥
एके प्राहुर्मृदुलमृषभं चावरोहे कदाचित्।
प्रातर्गेया परममधुरा भैरवी सिन्धुपूर्वा॥

कल्पद्रुमांकुरे॥

कोमल सब तीवर रिखब वादी मध्यम होइ।
संवादी खरजहि जहां सिंध भैरवी सोइ॥

चन्द्रिकासार॥

पगौ रिगौ सरी निश्च सधौ पधौ सनी धपौ।
सिंधुभैरविका धांशा मंद्रमध्यप्रचारिणी॥

अभिनवरागमंजर्याम्।

प्र०—अब कौनसा राग लेना चाहिये ?

उ०—मेरी समझ से अब हम बिलासखानी पर कुछ विचार करेंगे। यह राग हमारे गुणी लोग भैरवी मेल में मानते हैं, यह मैंने कहा ही था। इस राग को "तोडी" क्यों कहते हैं, यह प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं। कारण, माननीय ग्रन्थों का तोड़ी थाट हमारा भैरवी थाट ही है। ऐसी दशा में आसावरी, जौनपुरी, देसी, खट आदि तोड़ी प्रकार हैं, ऐसा मैंने कहा ही है। इसके विरुद्ध जिस थाट को आज हम तोड़ी कहते हैं, उसको हम यही कहें अथवा और कुछ, क्षणभर के लिये ऐसा प्रश्न उत्पन्न होगा। परन्तु यह सब प्रत्यक्ष तोड़ी का विचार करते समय हम देखेंगे।

प्र०—बिलासखानी-तोड़ी नाम से ऐसा दिखता है कि इस राग का बिलास खां ने निर्माण किया था। ठीक है न ?

उ०—हां, गायक लोग ऐसा ही समझते हैं। बिलास खां, तानसेन का पुत्र था, ऐसा कहते हैं। इस सम्बन्ध में एक छोटी सी दन्तकथा है।

प्र०—वह कौनसी ?

उ०—कहते हैं कि तानसेन का जिस समय देहान्त हुआ, उस समय बिलासखां देश में कहीं भ्रमण कर रहे थे। पिता के देहान्त का समाचार सुनकर वे तुरन्त घर आये और अपना हिस्सा मांगने लगे। तब यह निश्चित हुआ कि तानसेन का प्रत्येक पुत्र तानसेन के मृत शरीर के आगे गाये और जिसके गाने से तानसेन का शव हिलने लगे उसे ही तानसेन का प्रिय पुत्र समझा जाय।

प्र०—मुसलमान गायकों की क्या-क्या मजेदार कथायें हैं! अच्छा फिर ?

उ०—फिर तानसेन के लड़के शव के सामने गाने लगे। बिलासखां ने जब अपनी यह तोड़ी गाई तब तानसेन की "लाश" हिलने लगी; इतना ही नहीं बल्कि वह ठहाका मार कर हंस पड़ी! तब सबने उठकर बिलास खां को भारी सन्मान दिया। यह कथा मैंने रामपुर के एक प्रसिद्ध गुणी व्यक्ति से सुनी थी।

प्र०—परन्तु यह बात सत्य कैसे मानी जा सकती है ?

उ०—यह माननी ही चाहिये, ऐसा तुमसे कौन कहता है ? इसे सही भी मत मानो और गलत भी न कहो, बस। परन्तु यह तोड़ी प्रकार है बहुत सुन्दर, इसमें कोई सन्देह नहीं। यह जितना सुन्दर है, उतना ही कठिन भी है।

प्र०—अर्थात् इसमें वर्ज्यावर्ज्य स्वरों की बड़ी उलझन जान पड़ती है ?

उ०—नहीं नहीं, यह राग तो सम्पूर्ण है, परन्तु विभिन्न स्वर संगतियों के द्वारा इसे भैरव से पृथक रखने में विशेष कुशलता है। बिलासखानी में "सा रे ग म ध नि" ऐसी सरल तान नहीं लेते।

प्र०—ऐसा करने पर तत्काल ही भैरवी सामने आने का भय रहता होगा ?

उ०—हां, कोई तो हमको ऐसा भी कहते हैं कि बिलासखानी में गन्धार अति कोमल लेना चाहिये।

प्र०—तो फिर इस राग में श्रुतियों की उलझन पैदा होगी ?

उ०—नहीं, ऐसी उलझन पैदा होने का कोई कारण नहीं। इस राग में स्वरसंगति ही ऐसी हैं कि स्वर अपना स्थान स्वयं खोज लेते हैं।

प्र०—तो यह भी एक मजे की ही बात रही। यह बिलासखानी बहुधा प्रारम्भ कैसे होता है ?

उ०—अनेक गीत इस प्रकार आरम्भ होंगे:—सा, (सा)रे नि, सा, रे ग, रे, (ग)रे सा।

प्र०—यह उठाव विलक्षण ही दीखता है। इसमें क्षण भर के लिये हम भैरवी को भूल ही जाते हैं, यद्यपि ये ही स्वर उसके हैं।

उ०—यही भाग तोड़ी का है। आगे इस प्रकार करते हैं:—"रे ध, ग, म ग, रे, (ग)रे, सा" यह भाग प्रथम बहुत सावकाश गाकर अच्छी तरह से बिठा लेना चाहिये।

प्र०—यह राग हमारे शास्त्रकारों को विदित था क्या ?

उ०—बिलासखां, तानसेन के पुत्र थे, इसलिये यह राग नवीन तो कहा ही नहीं जा सकता। परन्तु यह किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में नहीं दिखाई देता। किन्तु ऐसा क्यों व कैसे हुआ होगा, यह अभी कैसे कहा जा सकता है ?

प्र०—अच्छा, संस्कृत ग्रन्थकारों ने इसका उल्लेख नहीं किया, परन्तु देशी भाषा के ग्रन्थों में तो इसका वर्णन दिया होगा ?

उ०—देशी भाषा के ग्रन्थों में हम राधागोविन्द संगीतसार, नादविनोद तथा टागोर साहेब का ग्रन्थ संगीतसार ही ले रहे हैं। कहीं-कहीं नगमातेआसफीकार का मत देख लेते हैं। परन्तु इन चारों ग्रन्थों में बिलासखानी तोड़ी कही हुई नहीं दिखाई देती।

प्र०—तो फिर आप जो वर्णन बतायेंगे उसका आधार प्रचलित गायकी ही मानना पड़ेगा ?

उ०—मैं भी यही समझता हूं। इसीलिये मैंने प्रारम्भ से ही कहा है कि इस बिलासखानी पर हम थोड़ा सा ही विचार करेंगे।

प्र०—इस राग में बहुधा कौनसे प्रकार के गीत सुनने में आयेंगे ?

उ०—यह राग रामपुर के गायक बहुत सुन्दर गाते हैं। उनको इस राग में अनेक ध्रुपद आते हैं और वे ठीक भी हैं। तानसेन का पुत्र बिलासखां तो ध्रुपदिया ही

होना चाहिये। रामपुर में तानसेन परम्परा की बड़ी मान्यता है, ऐसा मैंने पहले कहा ही था। मेरे गुरु नवाब साहेब (रामपुर) ख्याल तो प्रायः सुनते भी नहीं।

प्र०—क्यों ?

उ०—उनका कहना है कि ख्यालियों की तानबाजी में राग का धर्म भली प्रकार नहीं रहता। उन्होंने मुझ से कहा कि "बचपन में मैंने अनेक ख्याल तथा ठुमरियां सीखी थीं, परन्तु आगे चलकर उनको गाना मेरे पसन्द नहीं आया अतः उनको मैंने छोड़ दिया।" अब वे ध्रुपद-धमार के अतिरिक्त कुछ नहीं गाते, यह मुझे विदित है।

प्र०—आप तो ख्याल गाते हैं, यह उनको पसन्द नहीं होगा तो फिर ?

उ०—यह स्पष्ट ही है। फिर भी वे बहुत सौम्य प्रकृति के हैं अतः इतना जानते हुए भी मुझे कुछ भला बुरा नहीं कहते। मुझे भी तो जितने ख्याल पसन्द हैं, उतने ही ध्रुपद-धमार गायन भी पसन्द हैं। अस्तु, बिलासखानी राग बिलकुल अप्रसिद्ध है। इसको उत्तम प्रकार से गाने वाले तुमको क्वचित् ही दिखाई देंगे।

प्र०—इस राग का उल्लेख नये पुराने कोई ग्रन्थकार नहीं करते हैं तो इसको कैसा गाना चाहिये, यह आप हमको बताइये ?

उ०—मैं अब यही करने वाला हूँ। इस राग का उठाव बहुधा कैसा करते हैं, यह तो मैं कह ही चुका हूं। अब बिलासखानी का विस्तार करके दिखाता हूँ, वह सुनोः—

सा रे नि, सा, रे ग, ग, रे, सा, सा, रे ध, ध ग रे ग रे, सा सा नि सा रे, सा।

सा ध, सा रे सा ध, ध ग, रे ग, म ग रे, सा, प ध, म ग रे ग, रे, सा, रे नि सा रे ग।

सा, रे, सा, ग रे, सा, रे नि ध, प, ध, ग, रे रे ग म ग, रे ग, रे सा, नि सा, रे ग।

ध नि ध, सा, ग रे, सा, प ग, रे ग, ध सा रे ग, प ध सा रे ग, रे ग, रे, सा।

ध ध, नि ध, प ध नि ध, सा, रे नि ध, सा, ग, म ग, प ध, म ग, म ग, रे ग, रे सा।

सा, रे ग, रे ग, म ग, ध प, ग, नि ध, सां, नि ध, प, म ग, रे ग, रे, सा, नि सा, रे ग। प, प, ध ध, सां, ध सां, रें नि रें सां, गं रें, गं रें, सां, सां नि सां, रें नि ध, नि ध प, गं मं गं रें, सां, रें नि ध, प, प ध, म ग, रे ग, म ग, रे, सा, सा, नि, सा रे ग।

सा सा ध, प, प ध म ग, ग, म ग, रे सा, ध नि रे ग रे सा, ध, ग, म ग, रे, सा, ध नि सा रे ग, प ध, म ग, रे ग म ग रे, सा।

प ध, रें ध, सां, रें नि सां रें गं, मं गं रें, सां, सां रें नि ध, ध म ग, रे ग म ग, रे सा, ध नि सा रे ग, प ध म ग, रे ग, म ग रे, सा।

तुम्हारे जैसे समझदार विद्यार्थी को इतना विस्तार पर्याप्त होगा। इस राग में "ग म प" अथवा "प म प" ऐसे टुकड़ों को किस युक्ति के साथ टाला गया है, यह देखा ही होगा। "सा रे ग म, ग रे सा" ऐसे झटकों से गाया तो वहां भैरवी तत्काल खड़ी हो जायगी। इस राग में म, नि तथा प इन तीनों स्वरों का प्रयोग विशेष सावधानी से करने की आवश्यकता है। "ध प म प ग" किया तो भैरवी सामने आयेगी। वैसे ही, "सां नि ध प ध म प ग" ऐसी सरल तान नहीं ली जा सकती। "सा रे ग, रे ग, रे, सा," "ध नि ध, ग, म ग, रे, सा," "ध नि सा, रे ग, रे ग, रे, सा, रे ग, म ग, रे, सा" इन अङ्गभूत टुकड़ों को मैं कैसे गाता हूँ, कहां कहां कैसे ठहरता हूँ, यह तुमको विशेष ध्यान देकर देखना चाहिये। इनको मेरे साथ बारम्बार बोलकर यदि अच्छी तरह से बिठालो तो ठीक रहेगा। अपने मन में तोड़ी की छाप सदैव रखनी चाहिये। "सा, रे ग, रे ग, रे, सा, ध सा, रे नि ध, ग, रे ग, रे, सा" इन स्वरों में बिलासखानी की सारी खूबी है। इन स्वरों का प्रभाव श्रोताओं पर अच्छी तरह छा जाने पर फिर, "सा, रे ग रे, सा, ध सा, रे ग, म ग, रे, सा" ऐसा मध्यम दिखाने में हानि नहीं। आगे "ध म ग, नि ध, म ग, रे ग, रे, सा"। तोड़ी में भी पंचम का प्रमाण धैवत की अपेक्षा कम ही रखते हैं, यह आगे दिखेगा। एक बार तोड़ी का प्रभाव श्रोताओं पर जमा कि फिर भैरवी के थोड़े स्वर लेकर तिरोभाव किया हुआ बुरा नहीं दिखता। जहां तहां धैवत तथा गंधार का राज्य बिलासखानी में दिखाई दे, यही सारी खूबी है। "ध नि सा" ऐसा एकदम कहा तो भैरवी दिखेगी, और "ध नि सा रे ग, रे ग, रे, सा" ऐसा किया तो श्रोताओं को तोड़ी का स्वरूप दिखाई देने लगेगा। इसमें का निषाद उनको क्षणभर दिखेगा भी नहीं। वैसे ही "ध ग, रे ग, म ग रे सा," म ग रे, सा यह भाग मैं किस प्रकार कहता हूँ, यह तुम अच्छी तरह ध्यान में रखो। "प ध नि सां, नि सां" एकदम ऐसे स्वर कहे कि भैरवी सामने आजायेगी। परन्तु उसमें "प, ध, सां, रें नि, सां रें गं, रें गं, रें सां" ऐसा किया तो बिलासखानी दिखेगी।

प्र०—इस राग में ख्याल गाते ही नहीं होंगे क्या ?

उ०—इस राग में कुछ गायक एक प्रसिद्ध ख्याल गाते हैं। उसके बोल "नीकी घुंगरिया, ठुमकत चाल सहेली" इ० इस प्रकार हैं। नवाब साहेब इस चीज को ध्रुपद कहकर गाते हैं। ये बोल पढ़ते ही ऐसा मालुम होता है कि यह ख्याल में अच्छे लगते होंगे। यह चीज मैं तुमको आगे सिखाऊँगा। बिलासखानी तोड़ी में दरबारी तोड़ी तथा आसावरी का "मिलाप" होता है, ऐसे मेरे गुरुभाई साहेबजादा छमनसाहेब कहते थे। वे आसावरी उतरे ऋषभ को मानते थे।

प्र०—अब इसकी कोई सरगम बतादें तो यह राग हमारे ध्यान में आजायेगा ?

उ०—ठीक है, बताता हूँ।

सरगम बिलासखानी—झपताल.

सा रे	नि	सा	ऽ	ऽ	ग	ऽ	रे	ग	ऽ
×		२			०		३		
म	ग	रे	ग	म	ग	रे	सा	ऽ	सा
रे	नि	ध	ऽ	ध ग	रे	ग	म	ग	ऽ
ध	म	ग	रे	ग	म	ग	रे	रे	सा।

अन्तरा.

प	प	ध	ऽ	ध	सां	ऽ	सां नि	सां	ऽ
×		२			०		३		
सां नि	सां	रें	गं	रें	सां	ऽ	रें	नि	ध

प ध	गं	रें	गं	रें	सां	रें	नि	ध	ऽ
नि	ध	म	ग	रे	ग	म	ग	रे	सा।

इस राग में स्वरस्थान भली प्रकार संभालने में तथा विभिन्न स्वरसंगतियों को यथायोग्य गाने में सारी कुशलता है, यह तथ्य तुम्हारे ध्यान में आ ही गया है। अब बिलासखानी के लक्षण संस्कृत श्लोकों में कहता हूं, इससे तुमको यह राग अपने ध्यान में रखने के लिये सुभीता होगा।

भैरवीमेलसंजाता तोडी बिलासखानिका।
निर्मिता तानसेनस्य विलासाख्येन सूनुना॥
धगसंवादसंपन्ना नित्यं संपूर्णरूपिणी।
गानं चास्याः समीचीनं द्वितीयप्रहरेऽहनि॥
सरिनिस रिगरिग मगरिस स्वरैर्भृशम्।
स्वरूपं स्यादभिव्यक्तं प्रायः प्रज्ञा वदन्ति ते॥
आसावरी तथा तोडी मिलतोऽत्र यथायथम्।
आरोहे मनिदौर्बल्यं वैचित्र्यं चावरोहणे॥
यथान्यायं सुगीतौ चेन्मनिषादौ स्वराविह।
अवश्यं भैरवीभिन्नं रूपं तत्र समुद्भवेत्॥

प्र०—बिलासखानी तो होगई, अब कौनसा राग लेंगे?

उ०—अब हम 'मालकौंस' राग पर विचार करेंगे। इस राग का नाम 'मालकोश, मालवकौशिक' आदि भी हमारे सुनने में आता है। परन्तु उद्दिष्ट राग यही है। कूचबिहार राज्य निवासी कै० कृष्णधन बैनर्जी इस राग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं कि 'मालकोश' 'मल्लकौशिक' शब्द का अपभ्रंश है। उनके मत से 'कौशिक' शब्द का एक अर्थ 'व्यालग्राही' अथवा 'सतपुड़ा' पर्वत होता है। सतपुड़ा पर्वत को 'माल' कहते हैं। प्राचीनकाल में माल प्रान्त के लोग उच्चकोटि के गायक थे, ऐसा इतिहास से विदित होता है। आज भी सतपुड़ा के लोग 'तुम्बडी' उत्तम बजाते हैं। उनके प्रान्त में जो राग विशेष लोकप्रिय थे, उनको 'मल्लकौशिक' कहा जाता था। हेमन्तऋतु में सारा पहाड़ी प्रदेश सूखकर मैदान हो जाता था, इस कारण माल देश के लोगों को वहां से प्रवास करना पड़ता था। इस ऋतु में ये लोग उत्तर की ओर आते थे और अपने प्रान्त का मल्लकौशिक अथवा 'मालवकौशिक' राग वहां गाते थे। अर्थात् यह राग उन लोगों से ही हमारे संगीत में आया है।

प्र०—संभवतः बनर्जी का यह मत आपने पहले भी हमको एकबार बताया था। यदि 'मालव' शब्द का अर्थ 'मालवा' ऐसा स्पष्ट है; तो मालकौंस राग भी वहीं से संग्रहीत किया गया होगा, ऐसा भी कहा जा सकता है क्या? वहां तुम्बडी बजती है, ऐसा कहने से तो मालकौंस का गौरव विशेष नहीं बढ़ेगा, श्री बैनर्जी ने अपने मत को कौनसा आधार दिया है? और 'कौशिक' यह सतपुड़ा का नाम है, ऐसा अर्थ कोष में मिलता है क्या?

उ०—उसने अपना क्या आधार दिया है, ऐसा मुझे नहीं दिखाई दिया। सतपुड़ा को कौशिक प्राचीन भूगोल में कहते थे, अथवा नहीं, यह भी मुझे पता नहीं। यह इतना महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है। उसने अपने गीतसूत्रसार में क्या कहा है, यह मैंने तुमको बताया। इस बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिये इतनी जल्दी करने की आवश्यकता नहीं। 'मालकोश' अथवा 'मालवकौशिक' राग 'मालवा' प्रान्त से आया, यह उसके नाम से ही स्पष्ट दीखेगा। महत्व की जो बात है, वह तो वस्तुतः आगे की है।

प्र०—वह कौनसी?

उ०—वह मालकोश के स्वरों की है।

प्र०—अर्थात् हम मालकोश में जो स्वर प्रयुक्त करते हैं, वे प्राचीनकाल में वैसे नहीं थे, ऐसा आपके कहने का तात्पर्य जान पड़ता है?

उ०—तुम बिलकुल ठीक समझे। हम जो मालकंस रूप गाते हैं उसको प्राचीन ग्रन्थाधार नहीं।

प्र०—परन्तु यह राग प्राचीन ग्रन्थकारों ने कहा अवश्य होगा। कारण, यह मुख्य छः रागों में से एक है, ऐसा आप बारम्बार कहते ही आये हैं?

उ०—यह बहुत से ग्रन्थकार कहते हैं; परन्तु इसका मेल "भैरवी" कोई भी नहीं कहता।

प्र०—तो फिर यह भैरवी मेल के समान होगा? हमारे संगीतशास्त्र की स्थिति भी कैसी विचित्र है! फिर भी हम अपने को संगीतशास्त्री कहलाने के लिये तैयार हैं! हम अपने मुख्य छः रागों का कितना अभिमान करते हैं! किन्तु अपने एक भी राग का प्राचीन आधार दिखाने की हमारे अन्दर सामर्थ्य नहीं। भैरव राग को ही देखो तो वह प्राचीन एक तरह का और हमारा आज का भैरव बिलकुल ही निराला। हिन्डोल की भी यही दशा है। श्रीराग पुराना अलग और आज का अलग, दीपक की तो बात ही मत पूछो। मालकंस के सम्बन्ध में भी यही रोना है! तो फिर हमें अपने असली गुरु मुसलमान गायक बताने में लज्जा क्यों आती है, यही समझ में नहीं आता?

उ०—इस प्रकार हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाने से काम नहीं चलेगा। समयानुसार संगीत में परिवर्तन नहीं होगा क्या? प्राचीन संगीत को पत्थर की लकीर मानना तुम पसन्द करोगे क्या? दक्षिण के अनेक राग ग्रन्थाधारित हैं, परन्तु उनकी गायकी पर हम नहीं हंसते हैं क्या? और हमारी गायकी उनकी अपेक्षा अच्छी है, ऐसा हम नहीं कहते हैं क्या? समय अपना काम नियमित रूप से करता जा रहा है। अतः निरुत्साहित

होने की आवश्यकता नहीं। अन्य विषयों के सम्बन्ध में तो हम नवीनता ग्रहण करेंगे और केवल सङ्गीत में सामवेद तक पीछे रह जायगे, यह कैसे सुसंगत होगा ?

प्र०—ऐसा नहीं जी ! परन्तु मुस्लिमकाल में पंडितों ने हमारा 'मालकोश' नये ढंग से नहीं लिखा था क्या ? सामवेद का 'मालकोश' ही हमको चाहिये, ऐसा हम ऊटपटांग विधान क्यों बनायें ?

उ०—परन्तु उस समय के विद्वानों के समय में मालकोश का रूप आज जैसा नहीं था, तो वे भी कैसे लिख सकते थे ?

प्र०—तो फिर हमारा मालकंस स्वरूप आधुनिक है, ऐसा कह सकते हैं ?

उ०—मालकोश कब से आया, यह तो तुम ही जानो। मैं तो अब तमाम उपलब्ध मत तुम्हारे सामने रखता हूँ।

प्र०—तो फिर हमारी समझ से मालकोश सम्बन्धी ग्रन्थमत पहले ही कह कर फिर उसका प्रस्तुत स्वरूप कहना सुविधाजनक होगा। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो हम आपसे ऐसा करने के लिये प्रार्थना कर सकते हैं ?

उ०—मुझे क्या आपत्ति है ? यह लो, मैं ग्रन्थमत कहना आरम्भ करता हूं। प्रथम शार्ङ्गदेव मालवकौशिक कैसा कहते हैं, वह सुनो:—

अथ मालवकौशिकः।

कैशिकीजातिजः षड्जग्रहांशान्तोऽल्पधैवतः ॥
सकाकलीकः षड्जादिमूर्छनारोहिवर्णवान् ॥
प्रसन्नमध्यालंकारो वीरे रौद्रेऽद्भुते रसे।
विप्रलंभे प्रयोक्तव्यः शिशिरे प्रहरेऽन्तिमे ॥
दिनस्य केशवप्रीत्यै, मालवश्रीस्तदुद्भवा ॥

यह शार्ङ्गदेव पंडित के ग्रामरागों में से एक है।

प्र०—क्यों जी ! ऐसे विस्तृत लक्षण हमारे आज के प्रत्येक राग के हो सकते तो कितना अच्छा होता ?

उ०—धीरे धीरे हमारे विद्वान इस प्राचीन रचना से भी अधिक सुलभ एवं मनोहर राग रचना करेंगे। प्रथम रागरूप निश्चित तथा बहुमान्य होने चाहिये। एकबार ऐसा हुआ तो फिर सब स्वतः ठीक हो जायंगे। यह सब हमारे जीवन में तो कैसे होगा ? प्रत्येक पीढ़ी को इस पवित्र कार्य में यथाशक्ति तथा यथामति सहयोग देना चाहिये, ऐसा ईश्वरीय संकेत है। अस्तु अब संगीतदर्पणकार क्या कहता है, सुनो:—

षड्जांशकग्रहन्यासः पूर्णो मालवकौशिकः।
मूर्छनाप्रथमा ज्ञेया ककलीस्वरमंडिता ॥

ध्यानम् ।

आरक्तवर्णो धृतरक्तयष्टिः वीरः सुवीरेषु कृतप्रवीर्य्यः ।
वीरैर्धृतो वैरिकपालमाला माली मतो मालवकौशिकोऽयम् ॥

उदाहरणम्

सारिगमपधनिसा ।

प्र०—यह पण्डित शाङ्गदेव के "वीरे रौद्रेऽद्भुते रसे" इस वर्णन से तो नहीं लिया ?

उ०—यह कौन कह सकता है ? कदाचित् ऐसा हो, यह हनुमन्मत हुआ ।

प्र०—परन्तु क्यों जी ! इस वर्णन का हमारे लिये क्या उपयोग ?

उ०—तुम्हारे संग्रह में यह भी पड़ा रहेगा । कभी कोई माई का लाल तुम्हारे पास आया व उसने मालकौंस की कल्पना जानने की इच्छा प्रकट की तो उसे खोजने के लिये तुम कहाँ जाओगे ?

प्र०—परन्तु वह प्रामाणिक कैसे सिद्ध होगी ?

उ०—क्यों ? वहां प्रमाणिकता का क्या प्रश्न है ? यह कल्पना कहकर तदनुसार अमुक स्वर मालकंस के ठहरते हैं, ऐसा झूंठ कहने का प्रयत्न यदि तुमने किया तो वह अवश्य अयोग्य होगा । परन्तु उसकी इच्छानुसार तथा जैसे हैं वैसे ही स्वर उसको दिये तो उसमें अप्रमाणिकता कैसे होगी ?

प्र०—परन्तु उस कल्पना का वह बिचारा क्या उपयोग कर सकेगा ?

उ०—ऐसी दशा में आजकल के विद्वानों की अपरिमित बुद्धि क्या तुमको विदित नहीं है ? कोई विद्वान इनमें ऐसा निकला कि जिसको मालकौंस के स्वर निश्चित करने के लिये यह कल्पना (ध्यान) परिपूर्ण प्रतीत हुई तो ?

प्र०—ठीक है, तो चलने दीजिये ?

उ०—अब हम लोचन पण्डित का मत देखें । उसने "मालकौशिक" नाम कहकर उसका मेल कर्णाट कहा है ।

प्र०—तो फिर उसके समय में "मालकौशिक" खमाज थाट में गाते थे, ऐसा दीखता है ?

उ०—खमाज के स्वरों से उस समय वह गाया जाता था, ऐसा कहने की अपेक्षा उसने अपने वर्गीकरण में वह राग खमाज मेल में लिया है, बस इतना ही कहा जा सकता है । सम्भवतः उस समय ऐसा व्यवहार होगा भी ।

प्र०—परन्तु "मालव कौशिक" नाम में से "व" अक्षर उसने क्यों निकाला होगा ?

उ०—ऐसा छन्द को बराबर रखने के लिये किया होगा, परन्तु एक अर्थ में उसका यह कृत्य हमारे लिये बहुत अच्छा ही हुआ ? उसके योग से हम "मालकौंस" नाम

के विशेष निकट आगये। हृदयनारायणदेव ने कौतुक में तो मालकौशिक के लक्षण नहीं कहे किन्तु उसने हृदयप्रकाश में इस प्रकार कहे हैं:--

सन्यासः षाडवः सादिः कथितो मालकौशिकः।
सरिगधनिसा। सानिधमगरिसा।

इस स्वरूप में "पंचम" नहीं, यह ध्यान में रखना। आरोह में "मध्यम" नहीं है किन्तु यह सम्भवतः लिपिकार के प्रमाद से हुआ होगा।

अहोबल पण्डित ने "मंगलकोश" नाम का एक राग कहा है, परन्तु वह हमारा "मालकोश" नहीं। कारण वह उसने गौरी मेल में बताया है। "मंगलकोश" के लक्षण उसने ऐसे दिये हैं:--

धैवतोद्ग्राहधांशान्तो गौरीमेलसमुद्भवः।
रागो मंगलकोशाख्यो धनिस्वरसमन्वितः॥

कहीं "धनी यत्र समन्वितौ" पाठ है। यह सङ्गति अपने मालकंस में हमें अवश्य दीखेगी; परन्तु यह थाट हमको पसन्द आने वाला नहीं है।

प्र०--अहोबल ने इस राग का उदाहरण कैसा दिया है?

उ०--इस प्रकार दिया है:--

धनिसारिगमपध पमपपमगरिस रिसनिधसनिधसनिधधनिस रिस निधध निससा।

गमपमगरिसा रिसा निधसानिधनिसा।

इस प्रकार में रि, प वर्ज्य करके गन्धार निषाद कोमल करें तो यह प्रकार कुछ परिमाण हमारे आज के मालकंस के निकट आयेगा। परन्तु इतना परिवर्तन हुआ होगा, ऐसा मानने की अपेक्षा यह राग ही पृथक मानना विशेष सुविधाजनक होगा।

प्र०--हां, हमारा भी यही विचार है।

उ०--श्रीनिवास के मत पर विचार करने की आवश्यकता नहीं। पुण्डरीक विट्ठल ने सद्रागचंद्रोदय में तथा रागमाला में मालवकौशिक राग नहीं कहा; परन्तु वह उसने "रागमंजरी में इस प्रकार कहा है:--

एकैकगतिकौ रिधौ निगौ मालवकौशिके।
सत्रिः सायं च रसिको मालवकौशिकोऽधगः॥

प्र०--इसमें रि, ध एक गतिक अर्थात् चार-चार श्रुति के यानी तीव्र होंगे; तथा निषाद एवं गन्धार भी "एकगतिक" वहां कोमल होंगे। कुल मिलाकर यह राग काफी थाट का हुआ, ऐसा ही कहें न?

उ०—हां, तुमने ठीक कहा । भावभट्ट ने अपने ग्रन्थ में पारिजात, हृदयप्रकाश तथा मंजरी इन तीनों ग्रन्थों के उद्धरण लिये हैं । अतः उन्हें यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं ।

प्र०—तो फिर अब दक्षिण के ग्रन्थों की ओर बढ़ना चाहिए ?

उ०—हां, परन्तु वहां केवल रामामात्य ने "मंगलकौशिक" नाम का एक राग कहा है तथा वह भी उसने 'मालवगौड' मेल में बताया है, अतः वह हमारा 'मालकोश' नहीं। सोमनाथ ने इस राग का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया। व्यंकटमखो ने भी 'मंगलकोश' मालवगौड मेल में कहा है। उसीका अनुकरण तुलाजीराव ने सारामृत में किया है, अर्थात् उसने भी यह राग मालवगौड मेल में कहा है।

प्र०—अब कल्पद्रुमकार क्या कहता है, यह देखना रह गया ?

उ०—हां, एक अर्थ में उसे आजकल का भावभट्ट ही कहना चाहिये। किन्तु उसने आधुनिक दृष्टिकोण से केवल राग संकर आदि का ही वर्णन किया है। उसका स्वतः का आधार तो संगीतदर्पण तथा मेषकर्ण की रागमाला है। उसको हरिवल्लभ के दर्पण का भाषान्तर भी मिल गया था, ऐसा दीखता है। वह 'मालकोश' इस प्रकार कहता है:—

आरक्तवर्णो धृतरक्तयष्टिर्वीरः सुवीरेषु कृतप्रवीर्य्यः ।
वीरैर्धृतो वैरिकपालमालामाली मतो मालवकौशिकोऽयम् ॥

प्र०—यह कल्पना उसने निःसन्देह दर्पण से ली है ?

उ०—हां, ऐसा ही दीखता है। परन्तु आगे सुनोः—

पलासीमालवयुक्तः कौशिकश्चततःपरम् ।
जायते मालकोशोऽयं मध्यमस्वरग्रहस्ततः ॥

इतना ही नहीं, और सुनोः—

रिषभपंचमत्याग मधनिसागमस्वरा निशायां तृतीयप्रहरे ज्ञेयः मालवकौशिकः ।

यह श्लोक थोड़ा बहुत संशोधन करके इस प्रकार लिया जा सकता है:—

रिषभपंचमत्यक्तो मधनिसगमस्वरः ।
निशि तृतीयप्रहरे ज्ञेयः मालवकौशिकः ॥

प्र०—ऐसा करने से हम अपने प्रचलित मालकंस स्वरूप के निकट आजाते हैं क्या ?

उ०—हमारा मालकंस स्वरूप विलकुल ऐसा ही है। और एक श्लोक उसने दिया है, उसे भी सुनोः—

रिपवर्जितसंप्राप्तः औडुवः परिकीर्तितः ।
कौशिककानडाजातः क्वचिद्वागेश्वरीयुतः ॥

प्र०—किन्तु इसमें एक बात यह सिद्ध होती है कि नवीन सङ्गीत पद्धति के लिये नवीन व्याकरण लिखने की आवश्यकता समाज को महसूस होने लगी थी ?

उ०—यह तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु उस समय के हमारे विद्वानों ने इस विषय की ओर जितना ध्यान देना चाहिये था, उतना दिया नहीं, सारांश "कला थी तब विद्या नहीं थी और विद्या थी तब कला नहीं" यही कहना पड़ता है। यह ढङ्ग पिछले सौ-दो-सौ वर्षों में संभवत: ऐसा ही रहा होगा। अब विद्या है तथा उसका उपयोग संगीतोन्नति में करने की इच्छा भी है, तो वह कला नहीं। फिर भी ईश्वर की कृपा से जहां ये दोनों बातें थोड़ी बहुत अनुकूल हैं, वहां इनका सुयोग भी होना ही है, यह शुभ चिन्ह है। और एक वर्णन व्यास ने रागमाला में दिया है, वह इस प्रकार है: —

श्यामांगः पीतवासा मधुरिपुगलजो वंशवाद्यस्त्रिभंगी।
कंठे रत्नैकमालो विरचिततिलकः कुंकुमैर्भालमध्ये।
रागोऽयंमालकोशी प्रचरतु शिशिरे कंठदेशे जनानां।
प्रायः सूर्योदयान्ते स्वरनिचयविदांतुष्टये भूपतीनाम् ॥

कल्पद्रुम में एक हिन्दी वर्णन मालकंस का ऐसा है:—

मालकोशको खरजग्रह ओडव रिप बिन गाय।
शरदरैन चौथे पहर सुनि पाहन पिघलाय ॥

प्र०—अर्थात् मालकंस गाने से पत्थर पानी हो जाता है ?

उ०—इसका अर्थ यह जान पड़ता है कि पत्थर जैसे कठोर हृदय का मनुष्य भी उससे द्रवित हो जाता है। आगे सुनो: —

तन जोबन जोर मरोर निसोरसबीर छक्योमन धीरधरे।
करमें करवाललिये छबिसों पटलाल प्रवालकि जोतिहरे ॥
रति कोक कलापरबीन महादग देखत रूप अनूपधरे।
यह मालवकोस अनंगभर्यो तरुनीमनरंजन रंगकरे ॥

प्र०—इस वर्णन का हमारे लिये क्या उपयोग ?

उ०—यह उपयोगी होगा इसलिये मैंने नहीं कहा, बल्कि तुम्हारे मनोरंजन के हेतु कह दिया है। किसी अवसर पर तुमको किसी ने मालकंस गाने के लिये कहा और तुम्हें दूसरी कोई चीज याद न हुई तो इस कविता को ध्रुपद कहकर गा सकोगे।

प्र०—ऐसा भी कोई करते हैं क्या ? और तालस्वर ?

उ०—बुद्धिमान को क्या रुकावट है ? अस्ताई, अन्तरा, संचारी तथा आभोग इन चारों भागों में कविता के इन चार चरणों का उपयोग किया कि बस काम हुआ।

कविता तो उत्तम है ही। ऐसे ध्रुपद नट तथा आसावरी राग के मैंने सुने भी थे। इनमें कुछ भी अनौचित्य नहीं। और एक कविता सुनोः—

दोहा.

मालकोस नीले बसन श्वेतछरी लिय हाथ।
मुतियनकी माला गरे सकलसखी हैं साथ॥

सवैया

कौसककी अबमान भलो तनु गौर विराजत हैं पट नीले॥
माल गरे कर श्वेतछरी रसप्रेम छक्यो छबि छैल छबीले।
कामिनि के मनमोहन है सबके मनभावत रूपरसीले।
भोर भये उठि बैठ्योहि भावत नागरनायक रंगरंगीले॥

प्रः—इसमें कहीं सङ्गीत दर्पण का वर्णन विशेष दिखाई नहीं दिया?

उ०—वह चाहिये तो देखोः—

दोहा.

तीन सकारिनिसों बन्यो ओडव रिप सुरहीन।
तीन पहरपर मालवहि गावहिं बड़े प्रबीन॥

कंचनतें कमनीयकलेवर कामकलानिमें कोविद मानो।
माते महारसबीरहिमें नितराते रुचें बसनों जगजानो।
बैरिनुमारि कपालकिमाल धरीबहुबीरनि हैं मनमानो।
जो हरिवल्लभ रूप अनूप सुमालवकौशिक राग बखानों॥

अच्छा मित्र! अब रागविनोद का अवलोकन करें? पन्नालाल क्या कहते हैं, देखोः—

आरक्तवर्णो धृतरक्तयष्टिः।

यह श्लोक तुम्हारा सुपरिचित ही है, इसलिये इसे हम छोड़ दें। आगेः—

मध्यमांशग्रहन्यासः पंचमस्वरवर्जितः।
खाडवजातिर्विज्ञेयो मालवकौशिकसंज्ञकः॥

इस श्लोक को मैंने थोड़ा सा संशोधित करके लिया है। प्रचार में रि तथा प दोनों स्वर हम वर्ज्य करते हैं।

उत्पत्तिः ।

मालवाकानडायुक्तः बागीश्वरीसुमिश्रितः ।
कौशिको जायते यत्र मध्यमो मुख्य ईरितः ॥

अब स्वरकरण सुनोः--

म ग, म ध नि ध म ग, सा, ग सा, नि ध नि ध म ध नि सा, सा, नि ध, मग, सा ।

ग म ध नि सां, ध नि सां, गं सां, मं गं सां, नि ध म ग, सा, नि ध म ग, सा ॥

यह स्वरूप बिलकुल ठीक है । आगे विस्तार सुनोः--

म ग म ध नि ध म ग सा, ग सा, म म ग सा, नि ध म, ग ग सा, ग ग सा, नि ध नि सा, रे सा नि ध म म, ध नि सा, सा, ध नि सा, ध नि सा, ग ग सा, म म ग ग सा, नि ध, म ग ग, म ध नि सां, सां, नि ध, सां, नि ध म म ग ग रे सा, नि ध म ग, म ध, ग, ग, सा। अन्तरा विस्तार। ग ग म म ध ध नि सां, ध नि सां, रें सां, नि ध, नि ध म ग, म ग, सा, नि सा, म ग, म ग, नि ध नि ध, म ग, ग ग सा, नि ध, म, ग म ग सा, नि ध, म ग, नि सां, गं सां, ग म नि सां, ग म ध नि रें सां, नि ध म, ग ग, सा ।

इसके अवरोह में उसने विवादी न्याय से ऋषभ रखा है। वह अच्छी तरह गाया जाय तो बुरा नहीं दिखेगा। हमारे मुख्य छः रागों के प्रभाव का गायक कैसे वर्णन करते हैं, वह भी कहे देता हूँः--

भैरवस्वर वाको कहे कोल्हु चले जो धाय ।
मालकोश तब जानिये पाहन पिघल बहाय ॥
चले हिंडोला आपतें सुनत राग हिंडोल ।
वर्षे जल घनघोर अति मेघराग के बोल ॥
श्रीराग के सुर सुनें सूखो वृक्ष हराय ।
दीपक दीपक बर उठे जो कोउ जानत गाय ॥

प्र०—इन दोहों में वैचित्र्य, "जो कोउ जानत गाय" इस भाग में है । राग-परिणाम सन्तोषजनक न हुआ तो गायक को राग ठीक से मालुम नहीं, ऐसा समझना चाहिये। ये दोहे पहिले भी एकबार सुने थे, ऐसा याद आता है; परन्तु यहां मालकंस का प्रभाव बताने के लिये इनको फिर से कह दिया यह उचित ही हुआ। अब प्रतापसिंह का मत कहिये। इनके शिवजी इस राग के सम्बन्ध में क्या कहते हैं ?

उ०– सुनोः—

"शिवजी के वामदेव नाम दूसरे मुखसों मालकंस भयो । देवतान के अङ्ग दैत्यन के जुद्धतें छिन्न भिन्न भये तिन के यथायोग्य करिवे के लिये यह राग अमृत रूप है । याको श्रवण करके देवतान के अङ्ग यथायोग्य भये । कौशिक राग को नाम शास्त्र में मालकौशिक और लौकिक में मालकौंस कहत हैं । स्वरूप । लाल जाको रंग और हातमें पीरे रंग की छड़ी लिये है आप बड़ो वीर है ।"

प्र०—यह सब दर्पण से लिया हुआ प्रतीत होता है, अतः इसे कहने की आवश्यकता नहीं ।

उ०—अच्छा तो रहने दो । अब जंत्र सुनोः—

सा म ग (चढ़ी) म ग । रे ग प ग रे सा; नि़ ध़ नि़ सा म ग प, म ग म ग, रे सा, ग सा ।

प्र०—यह स्वरूप आपको कैसा लगता है ?

उ०—यह बिलकुल अच्छा नहीं । ऐसे प्रकार को कभी कोई मालकंस नहीं कहेगा । इसे व्यंकटमखी के मतानुसार "कांतारकूपे वेष्ठव्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते"—ऐसा कहना पड़ेगा; अथवा "कांतारकूपे वेष्टव्यं भुजमुद्धृत्य गायनैः ।"

प्र०—परन्तु मालकंस जैसा सरल एवं लोकप्रिय राग सवासौ वर्ष पूर्व जयपुर में ज्ञात नहीं था, यह भी आश्चर्य की बात है !

उ०—परन्तु उनका यह मालकंस कदाचित् पृथक ही होगा । इस राग की वास्तविक परीक्षा वह कौनसी बताते हैं, वह भी सुनो—

"अथ मालकंस राग की परीक्षा लिख्यते । जो सिघड़ी आरणा छाणा धरिके मालकौंस राग गाईये तो बिनाहिं अग्नि डारे सिगड़ी प्रज्वलित होई वह मालकौंस साँचो जानिये ।"

अब राजा टागोर के गुरु क्या कहते हैं, वह देखो—सङ्गीतसार में ऐसा कहा है:—

सङ्गीत सुधाकर के लेखक सिंहभूपाल के मत से मालकंस में ऋषभ तथा पंचम स्वर विवादी हैं । हनुमन्मत में मालकौंस सम्पूर्ण जाति का है । हमारे देश में प्रचारानुसार मालकंस कभी सम्पूर्ण नहीं माना जा सकता । हम भी इस राग में रि और प वर्ज्य करते हैं; परन्तु हमारे यहां यदि हनुमन्मत के व्यवहार को देखा जाय तो मालकंस सम्पूर्ण ही मानना पड़ेगा । सम्पूर्ण जाति का प्रकार "शब्दकल्पद्रुम" में मिलेगा । वहां मालकौंस स्वरूप ऐसा दिया है:—

प़ नि़ री री प री
सा, सा, नि़ ध़, ध़ नि़ सा, म ग म, सा, म ग, म, ध नि ध म, ग म ध नि सां,
री
नि ध म, ग, म, ध नि ध म, ग म सा ।

री प री री प
अन्तरा. ग ग म, ध नि सां, सां, सां, मं गं मं सां, नि सां, नि ध म, ग म ध नि
री
ध म, म ग म सा ॥

अब इसका विस्तार हम छोड़े देते हैं। उसके दिये हुए यह स्वरकरण अशुद्ध नहीं।

प्र०—अब हमको अपने प्रचलित मालकंस के लक्षण स्पष्टतः बता दीजिये ?

उ०—कहता हूं—सुनोः—

मालकंस राग को हम भैरवी थाट में मानते हैं। इस राग में ऋषभ तथा पंचम ये दोनों स्वर वर्ज्य हैं, इसलिये इसे कोई आसावरी थाट में भी मानते हैं। मैं भी उसको पहले आसावरी थाट में मानता था। परन्तु मेरे गुरु ने इसे भैरवी थाट में लेने को मुझ से कहा तथा इसका कुछ कारण भी बताया, अतः तब से मैं इसे भैरवी थाट में मानने लगा।

प्र०—उन्होंने क्या कारण बताये ?

उ०—उन्होंने कहा कि मालकंस में रे तथा प वर्ज्य होने से नि सा ग म ध नि सां, म ध नि सां; ध नि सां, "ध म ध नि सां" ये समुदाय बारम्बार दृष्टिगोचर होंगे और यही समुदाय कई बार तुम्हें भैरवी में भी दिखाई देंगे। "नि ध, प" इस प्रकार से धैवत पर आसावरी में जो प्रयोग होता है वैसा मालकंस में क्षणभर पंचम न लेने पर अच्छा नहीं लगेगा। "ग म ध नि सां, ध नि सां नि सां, गं सां, मं गं सां," ऐसे टुकड़े भैरवी में भी कभी-कभी आयेंगे, परन्तु आसावरी में वे अच्छे नहीं लगेंगे।

प्र०—तो फिर मालकंस तथा भैरवी में कुछ चलन-साम्य है, ऐसा ही कहें न ?

उ०—हां, ऐसा यदि समझा जाय तो कोई विशेष हानि नहीं दीखती। भैरवी के आरोह में रि तथा प दुर्बल हैं, ऐसा भी कोई कहते हैं। अस्तु, अब मालकंस के लक्षण सुनो !

प्र०—हां वही चलने दीजिये ? थाट सम्बन्धी यह थोड़ा सा मतभेद हमने जान लिया।

उ०—मालकंस में वादी मध्यम तथा संवादी षड्ज है। मध्यम यथास्थान मुक्त होकर राग की रंजकता बढ़ाता है। मालकंस की जाति औडुव-औडुव है। इसका गाने का समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। यह राग अधिकांश गायकों को आता है तथा विशेष लोकप्रिय भी है। यह अत्यन्त सरल है। केवल रि, प छोड़कर यदि तुम स्वर-समुदाय कहने लगो तो वहां भी मालकंस दीखने लगेगा। केवल मुक्त मध्यम योग्य स्थान पर दिखाने में सावधानी रखनी पड़ती है। इस राग का विस्तार तीनों स्थानों में होता है और वह सुन्दर दीखता है। यह राग मनोगत कराने के लिये गायक अपने शिष्यों को सर्वप्रथम ऐसे स्वरविन्यास सिखाते हैं:—सा म, म ग, म ग सा; नि सा, ध नि सा, म, म, म ग, म ध नि ध, म, ग म ग सा। आगे उत्तरांग में यह भाग सिखाते हैं:—म, म

ग, म ध नि सां, ध नि सां, गं सां, मं गं सां, सां, नि ध, म ध नि ध, म, ग म सा । ये स्वर मैं किस प्रकार कहता हूं, कहां, कैसे और कितना रुकता हूं, यह तथ्य ध्यान में आ गया न ?

प्र०—अच्छी तरह । अब इस राग का थोड़ा सा विस्तार हम आपको करके दिखायें क्या ?

उ०—ऐसा करोगे तो मुझे बहुत आनन्द आयेगा ।

प्र०—अच्छा तो, लीजिये:—

सा नि सा, म, म, म ग, म ग सा, ग, म ध, नि ध म, ग म ग सा ।

सा, नि सा, ध नि, सा, म ग, म ध नि ध, म ग, ध, म ग, म ग, सा ।

सा, नि सा; ग ग सा, म ग सा, नि ध म ग म ग सा, सां, नि ध, म ध नि ध, म ग, म ग, सा ।

सा, नि सा, ध नि सा, म म ग ग, म ध नि ध म म ग ग, म ध नि सां नि ध म म ग ग, नि ध म म ग ग, म म ग ग, म ग सा ।

सा, नि सा, ध नि सा, म ध नि सा, ध नि सा, म, म ग, नि ध म ग, सां, नि ध म ग, नि ध म ग, गं सां, नि ध, म ध नि ध म ग, ध म ग, म ग, सा ।

म ध नि सा, ध नि सा, ग ग म ध नि सा, म, म ग, ध म ग, नि नि ध म ग, सां नि ध म ग, गं सां, नि ध म ध नि ध म ग, ध म ग, म ग, ग, सा ।

नि सा म, ग, म, ध म, नि ध म, सां, नि ध, म, गं, सां नि ध म, मं गं, सां, नि ध, म ध नि ध म, सां, नि ध, म, ग म ग, सा ।

सां, नि सां, ध नि सां, म ध नि सां, ग म ध नि सां, सा ग म ध नि सां, गं सां, मं गं, सां, मं मं गं मं गं, सां, गं, सां, सां, नि ध, नि ध, म ग म ध नि सां नि ध म ग, ग म ग सा ।

ग म ध, नि सां, सां, गं सां, गं मं गं सां, गं सां, नि सां, नि ध, मं, गं मं गं सां, गं सां, नि ध, मं, गं मं गं, सां, नि सां, नि ध; नि ध, म ग, म ध नि सां नि ध, म ग, ध, म ग, ग, म ग सा ॥

ऐसा विस्तार चलेगा न ?

उ०—मेरी समझ से इसमें कोई मीनमेख निकालने की गुञ्जाइश नहीं। यह राग तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह से आ गया। अब इस विषय में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। अब मालकंस की एक छोटी सी सरगम कहकर, उसे ध्यान में रखने के लिये श्लोक द्वारा उसके लक्षण कहता हूं:—

मालकंस–झपताल.

म		त्रि							
ग	म	ध	नि	सां	नि	ध	म	ऽ	म
×		२			०		३		
म		त्रि							
सां	ऽ	ध	नि	सां	नि	ध	म	ऽ	म
मं	मं	मं		गं	मं				
गं	गं	गं	मं	मं	गं	मं	गं	ऽ	सां
म									
ग	म	नि	ध	सां	नि	ध	म	ऽ	म।

अन्तरा.

म		त्रि							
ग	म	ध	ऽ	नि	सां	ऽ	सां	ऽ	सां
×		२			०		३		
नि									
सां	ऽ	सां	ऽ	सां	गं	सां	नि	ध	ऽ
त्रि					मं				
ध	नि	सां	ऽ	सां	गं	मं	गं	सां	ऽ
म		त्रि							
ग	म	ध	नि	सां	नि	ध	म	ऽ	म।

भैरवीमेलसंजातो रागो लोके गुणिप्रियः ।
मालकोश इतिख्यातो रिपवर्जित औडुवः ॥
मध्यमः संमतो वादी संवादी षड्ज ईरितः ।
गानं तस्य समीचीनं तृतीयप्रहरे निशि ॥

आलापनार्हता चास्य संमता गानवेदिनाम् ।
शुद्धमध्यमवादित्वं भवेद्गांभीर्यवाचकम् ॥
मुक्तत्वं मे स्वरे नित्यं रागस्वातंत्र्यमादिशेत् ।
गमधनिसनिधमस्वरै रूपं परिस्फुटम् ॥
विदग्धा गायनाश्चात्र कुर्वन्ति बुद्धिपूर्वकम् ।
क्वचिद्रिपप्रयोगं ते विलोमे रक्तिवृद्धये ॥
तरंगिण्याव्हये ग्रंथे रागोऽयं स्यात्प्रकीर्तितः ।
कर्णाटमेलने स्पष्टं तीव्रधगस्वरान्वितः ॥
स एव रागमंजर्यां पुंडरीकविपश्चिता ।
अधगः सत्रिकः प्रोक्तः काफीरागाख्यमेलने ॥
केषुचिच्छास्त्रग्रंथेषु रागो मंगलकौशिकः ।
गौरीमेलसुसंजातो स चास्माद्भेदमर्हयेत् ॥
प्राचीनग्रंथकारैर्यो हिंदोलः संप्रकीर्तितः ।
मालकोशः स एवात्र इति लक्ष्यविदां मतम् ॥

लक्ष्यसंगीते ।

रागाग्र्यो मालकोशिमृदुलगमधनिः प्रौढपंचस्वराढ्यो ।
गंभीरोच्चस्वभावस्त्यजति स ऋषभं पंचमं चापि नित्यम् ॥
वाद्यस्मिन्मध्यमः संप्रविलसति भृशं षड्जसंवादियुक्तः ।
प्रख्यातस्त्वौडुवोऽयं प्रकटयति रुचिं यो निशीथात् परस्तात् ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

मृदूगमौ धनी चैव समौ संवादिवादिनौ ।
परिहीनो मालकोशिर्निशीथात्परमौडुवः ॥

चंद्रिकायाम् ।

कोमल सब पंचम रिखब दोऊ बरजित कीन ।
समसंवादीवादितें मालकंस को चीन ।

चंद्रिकासार ।

निसौ गमौ धनी सश्च सनी धमौ गमौ गसौ ।
मालकोशोऽरिपः प्रोक्तो मध्यमांशो निशीथगः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्रिय मित्र ! अब हम अपनी पद्धति के अन्तिम थाट तोड़ी से निकलने वाले रागों पर विचार करें।

प्र०—तोड़ीथाट से कौनसे राग उत्पन्न होते हैं तथा उनमें से हमको आप कितने और कौनसे राग बतायेंगे ?

उ०—हमारे गायक हमको बहुत से तोड़ी प्रकारों के नाम बताते हैं; जैसे शुद्धतोड़ी, दरबारीतोड़ी, लाचरीतोड़ी, गुजरीतोड़ी, लक्ष्मीतोड़ी, बहादुरीतोड़ी, मुद्रातोड़ी, अहीरी-तोड़ी, हुसेनीतोड़ी, अंजनी, बिलासखानीतोड़ी, फिरोजखानीतोड़ी, इत्यादि । इनके अतिरिक्त खट, गांधारी, जौनपुरी, देसी आसावरी को भी कोई तोड़ी प्रकार में गिनते हैं, यह मैंने पहले कहा ही है। किन्तु इतने अधिक तोड़ी प्रकार तुमको बताने का मेरा विचार नहीं है। कारण, इनमें से कई तो बिलकुल अप्रसिद्ध हैं और कुछ विवादग्रस्त हैं। सर्वप्रथम मैं "शुद्धतोड़ी" कहूँगा, फिर लाचारी, गुजरी तथा लक्ष्मी प्रकार मैंने कैसे सुने हैं, वह स्वरों में बताऊंगा। ये सब प्रकार जिसको आते हैं तथा जो इनके भेद अच्छी तरह समझा सके, ऐसा गायक तुमको क्वचित् ही दिखाई देगा। इन प्रकारों के लिये ग्रन्थाधार तो मिलेंगे ही नहीं, क्योंकि हुसेनी, बहादुरी, फिरोजखानी, बिलासखानी ये तो स्पष्टरूप से आधुनिक एवं यावनिक नाम हैं। कुछ ग्रन्थकारों ने 'हुसेनी' नाम का प्रकार बताया है, वह कैसा कहा है, यह मैं बताऊंगा तब तुम्हें पता लग ही जायेगा। इन तोड़ी प्रकारों में से कुछ राधागोविन्द संगीतसार में, नाद विनोद में तथा बंगाली संगीतसार में स्वरों में बताये हुए पाये जाते हैं। परन्तु उनको प्रत्यक्ष गाने वाले तथा उनको समझ कर गाने वाले अब देश में विशेष नहीं रहे, ऐसा खेद के साथ कहना ही पड़ता है। बंगाल प्रान्त में कुछ ध्रुपदिये तोड़ी के प्रकार गाते हैं, परन्तु सङ्गीत परिषदों में इस प्रकार के लोग मेरे देखने में नहीं आये। इस तोड़ी थाट के मुख्यतः तीन राग सीखने हैं– तोड़ी, गुर्जरी तथा मुलतानी। इनमें से तोडी यदि तुम्हारी समझ में आगया तो गुर्जरी की विशेष चर्चा करने की आवश्यकता नहीं रहेगी

प्र०—ऐसा क्यों

उ०—तोडी में पंचम वर्ज्य किया कि गुर्जरी-तोडी हुई, ऐसी मान्यता है। परन्तु इस विषय में हम आगे चलकर बोलेंगे। तोडी के प्रकार मुसलमान गायकों ने दो-दो, तीन-तीन प्रकार मिलाकर उत्पन्न किये हैं, ऐसा कुछ गायक मानते हैं। मैंने देश में भ्रमण करते समय कई गायकों से तोडी प्रकार की जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की, परन्तु उनमें से कई नहीं बता सके। रामपुर के एक प्रसिद्ध तथा घरानेदार तंतकार से मैंने "बहादुरी तोड़ी" की जानकारी देने के लिये प्रार्थना की थी, परन्तु उसे बताने का प्रयत्न करते समय उनकी ऐसी फजीहत हुई कि मैंने स्वयं ही इस विषय में उनका पीछा छोड़ दिया।

प्र०—उन्होंने कैसा प्रयत्न किया था ?

उ०—पहले दिन उत्तर न देते हुए उन्होंने कहा, "आप इस विषय पर कल बात करिये।" दूसरे दिन बड़े ठाठ से मौज में आकर कहने लगे, 'पंडित जी, ऐसे रागों की फरमाइश बहुत कम होती है, इसलिये इन रागों का रियाज हमलोग नहीं करते। मगर

जब आपने पूछा तो मुझे घर जाकर किताबों में देखना पड़ा।" इस पर मैंने कहा कि "बहादुरी आपको कौन सी पुस्तक में मिली? अगर छपी हुई हो तो मैं भी उसे मंगा लूंगा।"

प्र०—फिर उन्होंने क्या उत्तर दिया?

उ०—वे कहने लगे, "छपी हुई किताब में मैंने नहीं देखी। मेरे वालिद ने कुछ-कुछ राग मुझे समझाये थे, वे सब मैंने अपने हाथ से एक बही में लिख रखे थे" तब मैंने कहा "आप अपनी वह बही ले आते तो और भी ताड़ी की किस्में उसमें से अपन निकाल लेते।" इस पर उन्होंने कुछ उत्तर ही नहीं दिया। बहादुरी के सम्बन्ध में वे कहने लगे, "पंडित जी मैंने इसको खूब अच्छी तरह से सोचा। मुझे यह मालुम हुआ कि बहादुरी में तोड़ी और देसकार मिलते हैं। मुझे याद है कि यही बात मेरे वालिद ने भी कही थी।"

प्र०—फिर उन्होंने वह प्रकार गाकर दिखाया क्या? तथा उसमें ये दोनों राग कैसे व कहां मिलते हैं, यह प्रत्यक्ष करके दिखाया?

उ०—हरे, हरे! वह कैसे गाते। प्रारम्भ से वे तोड़ी गाने लगे और फिर उसमें देसकार सम्मिलित करने का बेढंगा प्रयत्न करने लगे। वह भी उनसे सधा नहीं। एकबार चढ़ी धैवत और तीव्र ऋषभ तोड़ी में लगादी, फिर वह निकाल कर दोनों मध्यम और दोनों निषाद लेने लगे। यह निरर्थक प्रयत्न देखकर मैंने कहा—साहब, आप अपने वालिद की चीज गा दीजिये, सुर मैं खुद देख लूंगा। "लेकिन चीज वालिद ने सिखाई हो तब ना? अन्त में उनको स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा कि "पंडित जी, मुझे बहादुरी की तालीम नहीं मिली। मैंने अपने वालिद के मुँह से सुना था कि इस राग में तोड़ी और देसकार की सूरतें मिलती हैं।"

वास्तव में वे स्वयं उच्चकोटि के तंतकार थे और मैं उनको गुरु मानता हूँ, अब उनका स्वर्गवास हो गया है। वैसे लोगों के अबदर्शन भी दुर्लभ हैं। मुझे उनकी बातों पर विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। मुसलमान गायकों में राग की परीक्षा आरोहावरोह से तथा वादी स्वर से करने की चाल प्रायः नहीं दीखती। उस समय के वृद्ध गायक-वादक निरक्षर होने के कारण रागों के मिश्रण की ओर विशेष ध्यान देते थे। उनमें से अनेक को तो स्वरज्ञान भी नहीं होता था। अमुक राग में अमुक राग मिला हुआ दिखायें, ऐसी उनकी परम्परागत मान्यता थी। तुम्हारे जैसे बुद्धिमान तथा तर्क करने वाले विद्यार्थी को यह बात कैसे पसन्द आयेगी? परन्तु ऐसे गायक सौ-डेढ़सौ वर्षों में ही हुए समझने चाहिये, यानी मेरे कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि जिन्होंने मुरक्किबात प्रकरण लिखे, सहस्रों उत्तमोत्तम गीत रचे वे भी ऐसे ही निरक्षर थे, अथवा उनको स्वरज्ञान नहीं था। इस बात से सभी सहमत होंगे कि गत सौ-डेढ़ सौ वर्षों के गायक-वादक पहले की अपेक्षा बहुत निम्नकोटि के थे। अभी कुछ दिन हुए किसी उत्सव के निमित्त मैं बड़ौदा गया था। वहां बाहर के कुछ गायक-वादक भी आये थे। उनसे कुछ प्रश्न पूछने का मुझे अवसर मिला था। किन्तु उनमें से एक भी गायक मेरे पूछे गये रागों में से किसी भी राग का स्पष्टीकरण नहीं कर सका। अधिक क्या, उन रागों में तीव्र, कोमल स्वर कैसे व कौनसे लगते हैं, यह भी वे लोग नहीं बता सके। यह देखकर परीक्षक कमेटी को बहुत आश्चर्य हुआ।

प्र०—परन्तु उन गायकों ने उत्तर क्या दिये ?

उ०—कुछ राग तो उनको आते ही नहीं थे। कुछ में किसी ने कोई दूसरा ही गीत कहा। वे कहने लगे, "पंडित जी, आपके सामने क्या हम बयान कर सकते हैं ? आपने अच्छे-अच्छे गुणियों को सुना है। तीव्र, कोमल की हमें कुछ खबर नहीं, न हमको आरोही-अवरोही की मालूमात है। जो एक-दो चीजें जैसी हमने सुनी हैं, वैसी आपके सामने गा देते हैं। सुर आप ही अपने देख लो।" किन्तु इससे यह न समझलेना कि वे सब बेकार गायक थे, उनमें एक-दो अच्छे भी थे। बाद में जब उनके मुजरे हुए तो वहां उन्होंने कुछ प्रसिद्ध राग बहुत अच्छे गाये। अप्रसिद्ध राग उनको नहीं आये तो इसमें आश्चर्यजनक कोई बात नहीं थी। सारांश यह कि गायकों में 'मुरक्किबात' प्रकरण बहुत ही महत्व पूर्ण माना जाता है। अस्तु, तोड़ी प्रकार के सम्बन्ध में कल्पद्रुमकार कहता है:—

आसावरि अरु सिंधु मिलि टोडीका अनुमान।
गावत गुनी गंधारहि करडी मध्यम ठान॥
जहं बराटि श्रीरागपुनि टोडि मिले समभाग।
गुर्जरि तबही होत है तीव्र स्वरहिके लाग॥
भीमपलासि वराटिका धनाश्री मिलि आय।
टोडी तबही होत है गावत गुनी बनाय॥
टोडि और आसावरी काफी सुर समभाग।
देसी तोडी होत है उपजत है अनुराग॥
देसि बहादुरि अडाइका मिले तीन हूँ आय।
जौनपुरी उतपत भई पहर दिन चढे गाय॥

भला इस वर्णन से तुमको क्या बोध हो सकता है ? इसे एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देना चाहिये। इससे कल्पद्रुमाकर की समझ में भी कुछ नहीं आया होगा। उसने कहीं सुना वह लिख दिया। प्रत्येक गायक का प्रकार सुनकर तथा उसके गीत के स्वर अच्छी तरह देखकर उसके राग के नियम ढूँढ निकालने का सदैव अभ्यास करना चाहिये। तुम्हारे नियम में एकबार भूल भी हो जाय तो उससे निराश नहीं होना चाहिये। अस्तु, अब अपने मुख्य विषय की ओर आवें ?

प्र०—हां, आप प्रथम 'शुद्धतोडी' बताने वाले थे ?

उ०—ठीक है। शुद्धतोड़ी के लक्षण मैं पहले ही कह दूं तो अच्छा होगा। तोड़ी मेल के स्वर ये हैं:—"सा रे ग मं प ध नि सां" यह तुमको विदित ही है। तोड़ी राग इसी थाट से उत्पन्न होता है। उसका आरोहावरोह सम्पूर्ण है। तोड़ी में वादी स्वर धैवत तथा संवादी किसी के मत से गंधार और किसी के मत से ऋषभ है। हम सम्वादी गन्धार मानेंगे। "नि सा रे ग, रे ग, रे, सा" इतने स्वरों से तोड़ी दीखने लगती है। अतः कोई गन्धार को वादित्व देने लगते हैं, परन्तु इस उत्तरांग प्रधान राग में अन्य

स्वरों की अपेक्षा धैवत ही तुम्हें विशेष प्रमाण में दिखाई देगा। तोड़ी गाने का समय दिन का दूसरा प्रहर मानते हैं। कोई-कोई आसावरी, जौनपुरी, गांधारी, देसी तथा खट ये टोड़ी प्रकार मानते हैं तथा वे उन्हें उसी प्रहर में गाते हैं। इन चार-पांच रागों में कोई अव्यवस्थित रूप से तीव्र मध्यम लेने का भी प्रयत्न करते हैं, यह मैं पहले कह ही चुका हूं। ग्रन्थोक्त थाट भैरवी, तोड़ी थाट जैसा होने के कारण वैसा प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं, यह तथ्य तुम्हारे ध्यान में आ ही गया होगा।

प्र०—यहां एक प्रश्न पूछने की इच्छा होती है; वह यह कि 'तोड़ी' तथा 'शुद्धतोड़ी' ये दोनों राग क्या पृथक माने जायें? 'शुद्ध' उपपद से एक दो प्रसंगों पर पृथक प्रकार माने गये थे, इस कारण पूछ रहा हूँ?

उ०—तुमने यह पूछकर बहुत ही अच्छा किया। सन् १६१८ में, दिल्ली की अखिल भारतीय संगीत परिषद में तोड़ी के विभिन्न प्रकारों पर चर्चा होकर जो निर्णय हुए थे, इस प्रश्न से उनकी मुझे याद आगई। उस सभा में हिन्दुस्तान के बहुत से प्रसिद्ध गुणी एकत्रित हुए थे, यह मैंने तुमको पहले कहा ही था।

प्र०—तो फिर उस समय तोड़ी के कौनसे प्रकारों पर चर्चा हुई तथा उनके स्वरों के सम्बन्ध में क्या निश्चय हुआ?

उ०—वहां चर्चा करते समय बीच-बीच में गुणी लोग अपने गीत गाकर दिखाते थे और चर्चा करते रहते थे। उस सभा में तोड़ी प्रकारों की जो चर्चा हुई थी, वह इस [प्रका]र थी:—

(१) शुद्धतोड़ी:—इस तोड़ी की चर्चा में एक ऐसा मनोरंजक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि "शुद्धतोड़ी, दरबारी और मियां की तोड़ी" ये तीनों निराले प्रकार हैं अथवा एक ही प्रकार के ये विभिन्न नाम हैं? इस विषय पर बहुत छानबीन हुई। किसी ने दरबारी-तोड़ी के मन्द्र सप्तक में कोमल निषाद तथा मध्य सप्तक में दोनों ऋषभ लाने का प्रयत्न किया। परन्तु यह कृत्य उससे अच्छी तरह नहीं बन पड़ा। किसी ने मन्द्रसप्तक में बहुत सी तानें तोड़ी की गाकर मियां की तोड़ी पृथक दिखाने का प्रयत्न किया। वहां उसको शुद्धतोड़ी से अपना प्रकार पृथक रखते नहीं बना, कारण शुद्धतोड़ी में भी मन्द्रसप्तक का काम हो सकता है, ऐसा दिखाई दिया। आरोहावरोह तथा वादी-संवादी पृथक कोई कह नहीं सका। सेक्रेटरी होने के नाते मैंने गुणी लोगों से स्पष्ट प्रश्न किया कि "दरबारी तोड़ी में दरबारीकानड़ा का भाग लाना चाहिये अथवा नहीं? यदि वैसा किया जाय तो कहां व कैसे करना चाहिये, यह अपनी चीज गाकर समझाइये?

प्र०—मालूम होता है आपने ऐसा प्रश्न विशेषरूप से पूछा?

उ०—हां, कारण एक गायक ने मुझे वैसे अङ्ग की एक चीज सिखाई थी। खैर, आगे "भवति न भवति" होकर ऐसा तय हुआ कि "शुद्ध तोडी, दरबारीतोडी तथा मियां की तोडी" ये तीनों नाम एक ही प्रसिद्ध राग तोड़ी के हैं। मैंने वह स्वरूप इस प्रकार गाकर दिखाया, नि़, सा रे ग, रे ग, मं प, ध प, मं प ध मं ग, रे ग, रे सा, नि़ ध़, ग रे ग, ध मं ग, रे ग, रे; सा, नि़, सा रे ग" इसे वहां बैठे हुए लोगों ने शुद्ध तोड़ी कहकर स्वीकार किया।

(२) बिलासखानी तोडी:—इस प्रकार के सम्बन्ध में यह निश्चय हुआ कि यह तोडी, भैरवी के ही स्वरों से गाने में आनी चाहिये। रामपुर के एक प्रसिद्ध गायक ने बिलासखानी के अपने ध्रुपद गाये तथा अन्य लोगों ने उससे अपनी सहमति प्रकट की। बिलासखानी मैंने तुमको बताई ही है। उसके स्वर "सा, रे नि, सा रे ग, रे ग, रे, सा, रे

ग

ध, ग, रे ग, म ग, रे ग, रे, सा" ऐसे सबने मान्य किये।

(३) गुर्जरी अथवा गुजरी तोडी:—इस राग के सम्बन्ध में यह निश्चय हुआ कि शुद्ध तोडी में जो पंचम होता है उसे निकाल दिया जाय तो "गुजरी" उत्पन्न होगी। एक गायक ने "जा जा रे पथिकवा" यह प्रसिद्ध चीज गुजरी में गाई।

प्र०—क्या ग्वालियर में इसको किसी भिन्न राग में गाते हैं?

उ०—वहां यह शुद्ध तोडी में गाई जाती है। अर्थात् इसमें वे स्पष्टरूप से पंचम लेते हैं। किन्तु यदि ऐसा हो तो भी विशेष हानि नहीं। चीज से राग कायम नहीं होता, बल्कि राग से चीज प्रसिद्ध होती है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि राग की परख उसके स्वरों से होती है। उस बैठक में एक गायक ने गुजरी की एक प्रसिद्ध चीज गाई, वह इस प्रकार थी, "एरि माई आज बधावरा साजनवा घरघर अति अनंद सन बाजिलो मंदिलरा। चतुर मालनियां बिन-बिन लाई सुघर मालनियां हार गुथाई बेला चमेली केवरा।" इस चीज के अन्तरा के प्रारम्भ में जो थोड़ा सा पंचम था, वह वहां नहीं होना चाहिये था और यदि हो भी तो उसे "मनाक्-स्पर्श" न्याय से, "रक्तिलाभाय" आदि नियमानुसार समझना चाहिये, यह तय हुआ। गुजरी का स्वरूप इस प्रकार गाया गया; सा ध, ध, नि मं ध, नि सां, नि ध, मं ग, ध मं ग, रे ग, रे, सा, नि सा, रे नि ध, ग, मं ग, ध मं ग, रे ग, रे, सा।

(४) देसी तोड़ी:—इस राग के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के मत सामने आये। वे मैंने तुमको बताये ही थे। देसी का स्वरूप सर्वसम्मति से ऐसा निश्चित हुआ:—

म री म नि म म री प

सा, रे प ग, रे, नि, सा, रे म प रे म प, ध प, म प ग, रे, प ग, रे, नि, सा, सां प, ध

म म री

प, म प ध प, ग रे, नि सा रे प ग रे, नि, सा। मैंने उस सभा में देसी का ग्रन्थोक्त इतिहास पढ़कर सुनाया था। कुछ गायकों ने धैवत तीव्र लिया, कुछ ने कोमल लिया तथा कुछ ने दोनों लिये। देसी में धैवत दुर्बल है, यह सर्व सम्मति से तय हुआ। "रे प

म

ग रे, नि, सा" यह अङ्ग देसी का सर्वसम्मत तय हुआ। रामपुर के गायकों ने कोमल-देसी सुनाई। वह प्रकार बहुत से व्यक्तियों को मालुम नहीं था, ऐसा दिखाई दिया।

(५) जौनपुरी तोड़ी:—यह प्रकार नया एवं सरल होने के कारण इस पर चर्चा करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। यह राग "गांधारी" नामक प्राचीन राग से गायकों ने उत्पन्न किया है, यह निश्चित हुआ। इसमें तीव्र ऋषभ लिया जाना चाहिये, ऐसा भी सर्व सम्मति से तय हुआ।

(६) गांधारी तोड़ीः—इसके कुछ अङ्ग जौनपुरी जैसे और कुछ आसावरी जैसे हैं, ऐसा निश्चित हुआ। गांधारी के आरोह में चढी ऋषभ तथा अवरोह में उतरी ऋषभ लेनी चाहिये, यह भी सर्वानुमति से तय हुआ। ऐसा करने से वह आसावरी, जौनपुरी, देसी से सहज ही पृथक हो जायेगी। रामपुर के गायकों ने गान्धारी दोनों ऋषभ लगा-कर गाई, जिसे गुणी लोगों ने पसन्द किया। कुछ लोगों ने ऐसा तर्क किया कि जौनपुरी प्रचार में आने पर गान्धारी में दोनों रिषभ लेने पड़े होंगे। किन्तु ऐसा होने से राग पहिचानना सरल हो गया, ऐसा सबने अनुभव किया। रामपुर के गायकों ने ध्रुपद गान्धारी में गाये जो इस प्रकार थेः—

(१) बीर बटोई मेरी श्यामसों कहियो तुमबिन गैयां गैयां।
ना कोऊ हेरत ना कोऊ टेरत बनबन फिरत हैं गैयां॥

(२) कहियो ऊधौ तुम जो नेह बीज बो गवन कीनो माधो बिरबा लागो राधा के मन॥ इ०

(३) व्यास नाम अनगन गुन ग्यान नीके सगुन लगन धरी॥ इ०

(४) कान्हजू कानन सुनी न आंखन देखी होरी में ऐसी बाराजोरी इ० धमार।

नि नि म सा गं गं ग
"सा ध, ध, प ध, ग, रे, म, प, ध, सां, नि सां, रें रें सां, ध प, म प ग रे, सा"
ऐसा गांधारी का स्वरूप कायम हुआ।

(७) आसा-तोडीः—आसावरी तथा तोडी मिलाकर गाना निश्चित हुआ। इसमें सारे स्वर कोमल तथा अवरोह में गन्धार वर्ज्य करने का नियम गुणी लोगों को पसन्द आया, जिसे तुम जानते ही हो।

(८) लक्ष्मीतोडीः—यह प्रकार सभी ने अप्रसिद्ध बताया। इसमें दोनों गन्धार, दोनों निषाद तथा दोनों धैवत लेकर रामपुर के गायकों ने अपना यह ध्रुपद गाकर दिखायाः—

रूपवंती गुणवन्ती भागवंती मानवती है मन तोरोहि नीको।
अरे त्रिया तू ऐसी नीकी लागत है तोसों तपत दीपक लागत फीको॥

तालसूल

अन्य लोगों को इस राग में कोई चीज मालुम न होने से इस पर विशेष चर्चा नहीं हुई।

प्र०—उन्होंने लक्ष्मीतोड़ी का रूप कैसे गाया?

उ०—वह स्थल रूप से इस प्रकार थाः—

लक्ष्मीतोड़ी—झपताल.

सा ×	ऽ	सा २	ऽ	रे	ग ०	ग	म ३	ऽ	म
म	म	प	ऽ	प	नि ध	नि ध	नि ध	नि	प
म ग	म ग	म	म ग	ऽ	रे	रे	सा	ऽ	सा
नि	नि	सा	ऽ	म ग	म ग	रे	सा	ऽ	सा।

अन्तरा.

नि ध ×	नि ध	सां २	ऽ	सां	सां ०	ऽ	नि ३	सां	ऽ
रें	सां	नि	नि	सां	ध	ध	नि	प	ऽ
नि ध	नि ध	सां	ऽ	सां	नि	सां	नि ध	नि ध	प
नि	ध	प	ऽ	प	म ग	म ग	रे	रे	सा।

यही गीत बाद में मेरे गुरु वजीरखां ने मुझे सिखाया था। वह मैं तुमको बताऊँगा। वहां एक गायक बैठे थे, उन्होंने कहा कि अन्तरा "म म। प ऽ प। (नि)ध नि। प ऽ प नि नि। सां ऽ रें। नि सां। ध नि प।।" ऐसा प्रारम्भ किया हुआ मैंने सुना था। परन्तु

लक्ष्मी तोड़ी वहां किसी ने नहीं गाई, इस कारण उस पर विशेष चर्चा नहीं हुई। यह गीत खास लक्ष्मी तोड़ी का है. इसमें किसी ने विरोध नहीं किया।

(६) बहादुरी तोड़ी—इस तोड़ी में दोनों ऋषभ, गन्धार कोमल, मध्यम तीव्र, पंचम, धैवत कोमल तथा निषाद तीव्र का प्रयोग है, ऐसा निर्णय हुआ। फिर भी यह तोड़ी उन चालीस गुणी लोगों में से एक ने भी नहीं गाई। यह प्रकार दुर्मिल एवं अप्रसिद्ध है, ऐसा सबको प्रतीत हुआ। हमने इसे ऐसा सुना था, हमने इसे वैसा सुना था, इस प्रकार की वे कानाफूसी करने लगे। परन्तु सभा में उसको विश्वास पूर्वक गाकर बताने की किसी ने हिम्मत नहीं की।

शेष तोडी प्रकार वहां एकत्रित लोगों को नहीं आते थे, इस कारण उनकी चर्चा आगे की परिषद् पर छोड़ दी गई।

प्र०—यह लक्ष्मी तोड़ी हमको विशेष पसन्द नहीं आई इसे एक अनोखी चीज समझकर संग्रह में भले ही रखलें, परन्तु यह कानों को मधुर नहीं लगी।

उ०—तुम्हारा यह कहना कुछ अंशों में सही है। इस प्रकार में सुसंगति कम है, ऐसा मुझे भी प्रतीत हुआ। वजीर खां मेरे गुरु थे, इसी कारण इस चीज़ का मैंने संग्रह किया। ऊटपटांग स्वरों का प्रयोग करके कोई राग निराला दिखाया भी जाय तो उस पर "रंजयतीतिरागः" वाला सिद्धांत कैसे लागू हो सकता है? हां, अच्छी याद आई, वहां "लाचारी तोड़ी के सम्बन्ध में भी चर्चा हुई तो उसके स्वर इस प्रकार निर्णीत हुए:-षड्ज, तीव्र ऋषभ, दोनों गन्धार, मध्यम शुद्ध तथा पंचम, धैवत तीव्र (कोई दोनों धैवत लेने को कहते हैं) तथा दोनों निषाद। उस सभा में जयपुर के मोहम्मद अली खां वाला ख्याल मैंने गाकर दिखाया। वह लोगों को पसन्द आया तथा कुछ ने ऐसा भी कहा कि "यह ठीक है"।

प्र०—उस ख्याल का स्वरूप कैसा था?

उ०—उसकी सरगम ही मैं तुमको बताये देता हूँ, गीत बाद में सिखाऊंगा। सुनो तो:—

लाचारी-तोडी-आडाचौताल

ऽ	गम	ऽ	पधमप	(म) ग॒	रे	(म) ग॒	(सा) रे	(रे) नि़	सा	सा	(म) ग	(ग म रे) ग	रेगम
४		०		×		२		०		३		०	
म	ऽम	(म) गम	पध	(सां) नि॒	ध	नि॒	प	म	ग	(रे) ग	रेगम	म	ऽम
ग	म	प	ध	नि॒	ध	नि॒	प	म	ग	(रे) ग	रेगम	म	ऽम।

अन्तरा.

							सां सां नि नि
सां प नि ध ४	म पप ०	सां निसां ×	सां सां २	रें सां ०	नि ध ३	प म ०	
ग रेगम	म ऽ	प प(म)	म ग	म म(ग)	म(प) प	प मप	
ध(प)म प	मप, मप(प)	नि(प) ध	नि प	म ग	ग(रे) रेगम	म ऽम(ग)।	

केवल सरगम से यह राग तुम्हारे ध्यान में भली प्रकार नहीं आयेगा, यह मैं जानता हूँ। परन्तु इसके स्थूलरूप की थोड़ी बहुत कल्पना हो जाये, इसलिये इसे कह रहा हूं। जब मूल गीत बताऊंगा तब राग का माधुर्य एवं सरगम की यथार्थता तुमको स्पष्टरूप से दिखाई देगी।

प्र०—वह चीज कौनसी है? उसके बोल बताने में कोई हानि न हो तो कहिये?

उ०—वह चीज इस प्रकार है:—

लागोही आवे मोसों करत निठुराई एकहूँना माने री।
मंमदसा हे सुन्दर बालमुवा सदारंगीली पीत जतावे॥
लागोहि आवे॥

यदि यही चीज कोई दूसरे किसी राग में अथवा भिन्न स्वरों से गावे तो भी उसको भला बुरा न कहो; किन्तु तुम अपना ढंग मत छोड़ो!

प्र०—हम अपनी गुरु परम्परा को मानकर चलेंगे। उसे हम कभी नहीं छोड़ेंगे। कुछ अन्य प्रकार सुनने में आयेंगे और वे अच्छे लगेंगे तो उन्हें भी संग्रह करेंगे, परन्तु हमारे गुरु का मत ही हमारा मत है, ऐसा स्पष्ट कहेंगे।

उ०—इसका मुझे विश्वास है। अच्छा, मैंने जो अभी सरगम कही, वह किस ढंग से कही, उसमें कहां-कहां कैसे में रुकता हूं, छोटी बड़ी आवाज कैसे करता हूँ, यह सब तथ्य तुम अच्छी तरह ध्यान में रखलो। फिर मेरे साथ दस-बीस बार उसी प्रकार कहो तो इस राग की कल्पना तुमको भली प्रकार हो जायगी।

प्र०—हां, परन्तु क्यों जी ! यह तोड़ी प्रकार जितना मधुर है, उतना ही इसे गाना कठिन भी है, ऐसा हमको प्रतीत होता है।

उ०—यह तो ठीक है। तोड़ी गाना तथा सिखाना सदैव कठिन मानते हैं। मेरे गुरु रावजी बुवा बेलबागकर ने एकबार मुझ से कहा था कि उन्होंने अपनी ७५ वर्ष की आयु में वारिसखां जैसा तोड़ी गाने वाला नहीं सुना। उसने एक बार दो घण्टे तक तोड़ी गाई और श्रोता बिलकुल नहीं ऊबे। बल्कि कुछ लोगों के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली थी। आंसू दुख के नहीं, आनन्द के। उसका गाना रुकने पर कितनी देर तक हमारे मस्तिष्क में उसके मधुर आलाप का प्रभाव रहा, यह बात भी उन्होंने कही।

प्र०—अब इस प्रकार के गायक दिखाई पड़ना कठिन ही है ?

प्र०—मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है। परन्तु यह विद्या तो "जो करे उसकी है" किन्तु आगे-पीछे तुम में से ही कोई अथवा आगे की पीढी में ऐसा कोई कलाकार नहीं निकलेगा, यह क्यों सोचते हो ? विशेष उत्तम स्वर ज्ञान एवं रागज्ञान होने पर और तत्पश्चात् नियमित अभ्यास करने से गले में "उज्वलता" (रोशनी) पैदा होती है, ऐसा गायकों के मुख से हम सुनते हैं। परन्तु यह सब परिश्रम तथा दीर्घोद्योग पर निर्भर है।

प्र०—हां, आपने कहा ही था कि:—

शनैर्विद्या शनैरर्थानारोहेत् पर्वतं शनैः।
शनैरध्वसु वर्तेत योजनानि परंव्रजेत् ॥
योजनानि सहस्राणि शनैर्याति पिपीलिका।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥

आपकी कृपा और सहायता से हमको पर्याप्त ज्ञानलाभ हुआ है। अब आगामी कार्य हमारे ऊपर अवलम्बित रहेगा।

उ०—हां, बिलकुल ठीक है। हमको बहुत ज्ञान होगया, ऐसा कभी गर्व नहीं करना। आज भी ऐसे अनेक राग होंगे कि जिनकी कल्पना भी तुमको न होगी। कहा जाता है कि तानसेन से किसी ने प्रश्न किया कि, मियां अब तो तुमको कुछ भी सीखने को नहीं रहा होगा ? इस पर उन्होंने नदी में उंगली डुबाकर बाहर निकाली और उसके सिरे पर जो जलबिन्दु था, उसकी ओर संकेत करके बोले कि इस नदी की समस्त जल-राशि की तुलना में जो मूल्य इस जलबिन्दु का है, उतना भी मेरे ज्ञान का संगीतरूपी सागर की तुलना में मूल्य नहीं है। अस्तु, अब तोड़ी की ओर चलें ?

प्र०—हमारे ग्रन्थकार तोड़ी के सम्बन्ध में क्या कहते हैं, वह अब कहिये ?

उ०—ठीक है ऐसा ही करता हूँ। परन्तु वे सारे ग्रन्थमत प्रचलित तोड़ी के लिये बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध होंगे।

प्र०—ऐसा क्यों ? ग्रन्थकार हमारे प्रचलित भैरवी थाट को "तोड़ी" कहते हैं, इसीलिये ऐसा कहते होंगे ? कुछ भी सही, पर तोड़ी का वर्णन ग्रन्थकारों ने कैसा किया है, वह तो हम समझ जायेंगे।

उ०—हां, इतना उपयोग अवश्य हो सकता है। तोड़ी के सम्बन्ध में एक बात आश्चर्य जनक है, वह यह कि संस्कृत ग्रन्थों में मतभेद नहीं है।

प्र०—यह तो वास्तव में आश्चर्य की बात है पण्डित जी! अच्छा तो वे मत हम को बता दीजिये?

उ०—कहता हूं:—

शार्ङ्गदेव पण्डित ने रत्नाकर में इस प्रकार कहा है कि "तोड़ी" राग "शुद्ध-षाडव" नामक ग्रामराग से उत्पन्न होता है। वह कहता है:—

विकारीमध्यमोद्भूतः षाडवो गपदुर्बलः।
न्यासांशमध्यमस्तारमध्यमग्रहसंयुतः॥
काकल्यंतरयुक्तश्च मध्यमादिकमूर्च्छनः।
अवरोह्यादिवर्णेन प्रसन्नान्तेनभूषितः॥
पूर्वरंगे प्रयोक्तव्यो हास्यशृङ्गारदीपकः।
शुकप्रियः पूर्वयामे तोडिकास्यात्तदुद्भवा॥
मध्यमांशग्रहन्यासा सतारा कंप्रपंचमा।
समेतरस्वरा मंद्रगांधारा हर्षकारिणी॥

प्र०—यदि तोड़ी के सम्बन्ध में सारे ग्रन्थों में एक मत है तो उन मतों की सहायता से शुद्धषाडव ग्राम से इसका सम्बन्ध छुड़ाना चाहिए, ऐसा हमको प्रतीत होता है।

उ०—यह कृत्य तुमको सध सके तो आगे-पीछे तुम करना। अब दर्पण में तोड़ी का वर्णन किस प्रकार किया गया है, वह देखो:—

मध्यमांशग्रहन्यासा सौवीरी मूर्छना मता।
संपूर्णा कथिता तोडी तज्ञैः श्रीकौशिके मता।
ग्रहांशन्यासषड्जां च केचिदेनां प्रचक्षते॥

ध्यानम्

तुषारकुंदोज्वलदेहयष्टिः काश्मीरकर्पूरविलिप्तदेहा।
विनोदयन्ती हरिणं वनान्ते वीणाधरा राजति तोडीकेयम्॥

म प ध नि स रि ग म। अथवा। स रि ग म प ध नि सां

इस तोडी के आधार पर एक छोटी सी बात याद आगई, वह सुनने योग्य है। कुछ दिन पहले एक प्रसिद्ध शहर में अखिल भारतीय सङ्गीत परिषद् का आयोजन किया गया था। उस परिषद में एक सुप्रसिद्ध चित्रकार रागरागिनी के स्वनिर्मित चित्र लेकर आये थे।

वे अकस्मात् मेरे निवास स्थान पर भी आये और कहने लगे कि अपने शिष्य वर्ग में से मधुर आवाज वाले एक-दो गायक थोड़ी देर के लिये आप मुझे दे सकें तो बड़ा आभारी हूंगा। मैंने तुरन्त ही दो-तीन नाम बताए तथा हर तरह से उनकी सहायता करने का वचन दिया। बातचीत में आगे मैंने उनसे पूछा कि वे उन शिष्यों से कौनसा राग गाने को कहेंगे। यह पूछने का कारण यही था कि जिन रागों के चित्र वे दिखाना चाहते थे, वह मेरे शिष्यों को आते थे अथवा नहीं, यह मुझे मालूम हो जाता। मेरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि मैंने भैरव, भैरवी, तोड़ी आदि प्रसिद्ध रागों के ही चित्र बनाये हैं, वे चित्र मैं सभा के समक्ष रखूं, तब आपके शिष्यों को वे राग गाकर दिखाने हैं। यह सुनकर मैंने उनसे भैरव का चित्र कैसा बनाया है, उसे दिखाने को कहा। उन्होंने तुरन्त ही "गंगाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः" यह वर्णन मेरे सन्मुख प्रस्तुत किया। उसी प्रकार "स्फटिक रचितपीठे" आदि भैरवी का वर्णन उन्होंने बताया। यह सुनकर मैंने उनसे कहा कि मैं नहीं समझता कि मेरे शिष्यों को इस वर्णन का भैरव गाना आयेगा। उनको मेरी इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि भैरव तो साधारण राग है तथा सबको आता है, ऐसा मैंने सुना है। तब उनके हाथ में पुस्तक देकर मैंने बताया कि उस भैरव में रि तथा प वर्ज्य हैं, एवं वह स्वरूप मालकंस जैसा होगा।

प्र०—आपका स्पष्टीकरण सुनकर उनको बहुत ही आश्चर्य हुआ होगा?

उ०—हां। परन्तु वे बहुत सभ्य व्यक्ति थे और अपनी कला में अत्यन्त प्रवीण थे। तुरन्त ही उनके ध्यान में आगया कि उनके प्रत्येक चित्र में ऐसा प्रसंग आने की सम्भावना है कि उनका चित्र एक ओर तथा राग का नादस्वरूप एक ओर। तात्पर्य यह कि वह विसंगति तत्काल ही उनकी समझ में आगई और वे कहने लगे कि अब तो कार्यक्रम आज के लिये छप चुका है, इसलिये राग-रागिनी के नये रूप आपके शिष्यों ने गाये तो कोई हानि नहीं, परन्तु इस विसंगति के सम्बन्ध में मुझे पता नहीं था। अब घर पहुँच कर मैं इस के सम्बन्ध में आपसे पत्रव्यवहार अवश्य करूंगा।

प्र०—तो फिर उस दिन सभा में क्या हुआ?

उ०:—सभा को चित्रकार का परिश्रम बहुत पसन्द आया तथा मेरे शिष्यों ने वे राग गाये जिससे उनकी प्रशंसा हुई। इस प्रकार के प्रसङ्ग मैंने अन्य स्थानों पर भी देखे थे, अतः मुझे इसमें कोई आश्चर्य प्रतीत नहीं हुआ। मैंने तुमसे कहा भी तो था कि ऐसा कभी-कभी होता ही रहता है।

प्र०—हां, स्वरूप एक ओर तथा चित्र एक ओर, ऐसा कभी-कभी होता है, यह आपने कहा था। परन्तु इस बात का कोई इलाज नहीं है क्या?

उ०—इतनी जल्दी तो कोई इलाज मुझे नहीं दिखाई देता। किसी ग्रन्थकार ने स्वर स्वरूप ठीक बताकर फिर उसका देवतामय स्वरूप भी दिया हो, तो हो सकता है कि उसकी सहायता से किसी ने नई चित्र सृष्टि की हो।

प्र०—परन्तु ऐसे ग्रन्थकारों ने भी कहीं नये स्वरूप और पुराने देवतामय स्वरूप न मिला दिये हों?

उ०—यह तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। सोमनाथ भैरव का वर्णन कैसा करता है, देखो:—

धांशग्रहसंन्यासः संपूर्णो भैरवः प्रातः।

यह हुआ स्वर स्वरूप। अब देवतामय स्वरूप सुनो:—

डमरुत्रिशूलधारी पन्नगहारी सितोलसद्भसितः।
धृतशशिगंगोऽतिजटोऽजिनविकटो भैरवोऽसमदृक् ॥

प्र०—यह तो "गंगाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः" श्लोक का ही वर्णन है। उसने जो सम्पूर्ण भैरव कहा है तो "भैरव मेले शुद्धाः सरिमपधा अन्तरश्च कैशिकिः।" यह नियम भी लागू होगा। ठीक है न?

उ०—बिलकुल स्पष्ट है। अब सोमनाथ का तोडी वर्णन सुनो:—

कलितविपंची विपिने लालितहरिणाऽरुणांबरा हरिणी।
धवलांगरागरचना मृदुगुवचना भूषिता तोडी ॥

प्र०—यह भी दर्पण के वर्णन से मिलता है। हमारी समझ से यह अन्ध परम्परा ऐसे ही चलती रही, अतः इसकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। अब आगे के ग्रन्थकारों को देखिये।

उ०—आगे का ग्रन्थ है, रागतरंगिणी। उसमें तोडी के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है:—

प्र०—परन्तु लोचन केवल तोडी थाट का वर्णन करता है, लक्षण तो कहता ही नहीं।

उ०—हां, यह भी ठीक है।

शुद्धाः सप्तस्वराः कार्या रिधौ तेषुच कोमलौ।
टोडी सुरागिणी ज्ञेया ततो गायकनायकैः ॥

इसमें रागनाम "तोडी" है, यह ध्यान देने योग्य है।

प्र०—यह "टोडी" नाम कैसे आया, पण्डित जी?

उ०—इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर देना कठिन है। कोई कहते हैं कि ग्रीक संगीत में "Doric" एक मेल था, वह इस टोडी जैसा था। अतः सम्भव है वहां से यह नाम हमारे यहां आया हो। वहां "Dorians" नाम के लोग थे, यह इतिहास से पता चलता है। उस समय ग्रीस देश से हिन्दुस्तान का आवागमन जारी था,

ऐसा भी समझा जाता है। खैर, जो कुछ भी हो। हृदय पण्डित ने तोडी थाट को अपने हिन्दुस्तानी भैरवी थाट जैसा कह कर टोडी-लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

घनिसारिगमाश्चैव पधौ धपमगा रिसौ।
निधौच कथिता विज्ञैः संपूर्णा टोडिका मता॥
धनिसारिगमपध। धपमगरिसानिसा।

यही पंडित अपने हृदयप्रकाश में कहता है:—

कोमलर्षभधा पूर्णा गांशा तोडी निरूप्यते।
सरिगमपधनिस। सनिधपमगरिसा।

सद्रागचन्द्रोदय में पुण्डरीक कहता है:—

शुद्धौ सरी मध्यमपंचमौच।
शुद्धस्तथा धैवतको यदि स्यात्॥
साधारणो गोऽपिच कैशिकीनिः।
तदा तु तोड्याव्हयकस्य मेलः॥

× × ×

मांशग्रहान्ता पधकंपयुक्ता।
तोडी-भवेत् प्रातरसौ तु पूर्णा॥

फिर "नृत्यनिर्णय" में कहता है:—

सव्ये हस्ते सुदंडी त्वपरकरतले तालयुग्मं दधाना।
लिप्तांगा चंदनाद्यैः सुशबरवसना सर्वभूषाभियुक्ता॥
प्रौढा तांबूलवक्त्रा विकसितनयना मोहिनी मुक्तचूर्णा।
पूर्णा माद्यंतमध्या प्रथमगतिगनिस्तोडिका प्रातरेव॥

प्र०—यह तो सब हमारा भैरवी थाट ही होगा। अच्छा, आगे चलिये?

उ०—रागविबोध में सोमनाथ कहता है:—

तोडी मेले साधारणकैशिकिनौच शुद्धसरिमपधाः।
तोडीप्रमुखा रागा मेलात् प्रादुर्भवंत्यस्मात्॥

× × ×

गाद्यंशसांतपूर्णा तोडी कंप्राणु संगवरुक्॥

इस श्लोक में "कंप्राणु" अर्थात् "अणुकम्पनशीला" ऐसा टीका में कहा हुआ है। अहोबल पण्डित पारिजात में कहता है:—

षड्जपूर्वा तु तोडीस्याद्यत्रोक्तौ कोमलौ रिधौ।
न्यासः स्याद्धैवतस्तस्यां गांधारांशेन शोभिता॥

प्र०—ये सब ग्रन्थकार तोडी के सम्बन्ध में एक ही मत के जान पड़ते हैं।

उ०—हां! तो अब दक्षिण के ग्रन्थों की ओर बढ़ें। प्रथम रामामात्य अपने "स्वरमेलकलानिधि" में तोडी का कैसा वर्णन करता है, देखो:—

× × ×

नारायणी गौलरागस्ततस्तोडी वरालिका।
तुरुष्कतोडी रागश्च रागः सावेरिका तथा॥
आर्द्रदेशीत्यादयश्च रागाः स्युरधमाः क्रमात्॥
सर्वेष्वेतत्पुरोक्तेषु मध्यमेषूत्तमेषुच॥
अन्तर्भूताश्च संकीर्णाः पामरग्रामकाश्चते।
रागास्तावत् प्रबंधानामयोग्या बहुलाश्चते॥
तस्मान्नते परिग्राह्या रागाः संगीतकोविदैः।

प्र०—यह पण्डित समझदार जान पड़ते हैं! इनको तोडी एक तुच्छ प्रकार जान पड़ा! न जाने इनको तोडी में क्या संकीर्णता दिखाई दी?

उ०—छोड़ो भी। उनके द्वारा तोडी का वर्णन न होने से हमारा कौनसा काम रुका है। उन्होंने गुर्जरी मालवगौड थाट में कह कर उसका वर्णन इस प्रकार किया है:-

पवर्जिता रिग्रहांशन्यासा षाडविका स्मृता।
कदाचिदवरोहे सा पयुता गुर्जरी भवेत्।
दिनस्य प्रथमे यामे गेया सा गानकोविदैः॥

यह लक्षण ध्यान में रखो। गुर्जरीतोडी के वर्णन के समय काम आयेगा। अब "रागविबोध" में तोडी मेल कैसा है, वह भी देखो:—

तोडी मेले साधारणकैशिकिनौच शुद्धसरिमपधाः।

प्र०—यह तो स्पष्ट हमारा हिन्दुस्तानी भैरवी थाट हुआ। परन्तु हम जिसे आज हिन्दुस्तानी पद्धति में तोडी थाट कहते हैं, उसको सोमनाथ ने कैसा वर्णित किया है?

उ०—इसका उत्तर इस श्लोक में है:—

शुद्धवराटीमेले साधारणतीव्रतममृदुसाः स्युः ।
शुच्यथसरिपधमस्माद्भवन्ति रागो वराट्याद्याः ॥

प्र०—ऐसा ? हमारे तोडी थाट को वह शुद्धवराटी नाम देंगे ?

उ०—हां, वह वराटी के लक्षण इस प्रकार बताते हैं:—

शुद्धवराटी पूर्णा सांशांता रिग्रहा च मध्याह्ने ।

यह वर्णन एक अर्थ में ठीक है । गुर्जरी को उन्होंने मालवगौड थाट में कहा है तथा उसके लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

गुर्जरिका रिन्यासग्रहांशका पवियुता प्रभातार्हा ।

चतुर्दण्डिकार व्यंकटमखी ने तोडीराग को देशीराग की नामावली में लिया है। उन्होंने इसके लक्षण नहीं कहे । अपने हिन्दुस्तानी तोडी मेल को उन्होंने "शैत्रपन्तुवराली" नाम दिया है। तुलाजीराव ने अपने तोडी मेल को "सिन्धुरामक्रिमेल" कहा है । चतुर्दण्डि में तोडी मेल को "जनुतोडी" नाम दिया है, वह हमारा भैरवी थाट होगा ।

रागलक्षण में तोडी मेल के सब स्वर कोमल हैं तथा उसका नाम "हन्नुमतोडी" कहा है। हमारे हिन्दुस्तानी तोडी थाट को इस ग्रन्थ में "शुभपन्तुवराली" नाम दिया है। यह ध्यान में रखो कि दक्षिण के ये सब ग्रन्थकार गुर्जरी को मालवगौड में लेते हैं।

प्र०—दक्षिण के ग्रन्थकार हमारे हिन्दुस्तानी तोडी थाट को "वराली" नाम देते हैं; उस थाट को हमारे उत्तर के ग्रन्थकार क्या नाम देते हैं, यह बताने से रह गया है ?

उ०—लोचन तथा हृदय ने तो इस थाट का बिलकुल वर्णन नहीं किया है । उन्होंने जो तोडी कहा है, वह हमारा भैरवी थाट होता है, यह तुम देख ही चुके हो। अहोबल ने "तोडीवराटी" ऐसा विचित्र संयुक्त नाम एक थाट को देकर उसके लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

रिधौच कोमलो प्रोक्तौ यत्र तीव्रतरश्चमः ।
उद्ग्राहकौ पधौ स्यातां वराटीतोडिका तथा ॥

प्र०—पहले के वराटी मेल का नया नाम तोड़ी है, इस श्लोक से ऐसा ध्वनित नहीं होता क्या ?

उ०—यहां चाहे जितना तर्क-वितर्क करो, लेकिन हमारी तोडी में निषाद तीव्र है, उसका उल्लेख अहोबल द्वारा किया हुआ कहीं नहीं दीखता । परन्तु इतनी उलझन में पड़ने की आवश्यकता नहीं । अब इन तमाम प्राचीन ग्रन्थों को एक ओर रखकर देशी भाषा के ग्रन्थों की ओर बढ़ें ।

प्र०—आपने बिलकुल मेरे मन की बात कहदी। तो फिर प्रतापसिंह तोड़ी कैसी कहते हैं, बता दीजिये ?

उ०—उन्होंने तोड़ी मालकंस की एक रागिनी मानी है और उसका स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया है:—"और केसर कपूर को अङ्ग राग लगाये है। बनमें हिरनों से बिहार करे है। और हाथ में वीणा बजावे है"। यह स्पष्ट दीखता है कि उन्होंने यह वर्णन "दर्पण" से लिया है। आगे वे कहते हैं, "याको लौकिकमें मीयांकी टोड़ी कहे हैं !"

प्र०—तो फिर इसका अर्थ यह हुआ कि शुद्धतोड़ी को "मियांकीतोड़ी" कहते हैं ?

उ०—ठीक है, लेकिन उनका तोड़ी जंत्र तो एकबार देखलो। वह इस प्रकार है:-

मालकंसकी प्रथम रागनी टोडी–संपूर्ण.

ग	प	म	रे
रे	ध	ग	ग
ग	नि	रे	सा
म	ध		

प्र०—यह प्रकार भैरवी मेल का जान पड़ता है। यह हमारी प्रचलित तोड़ी तो नहीं होगी ?

उ०—तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। कदाचित् तोड़ी को मालकंस राग की रागिनी कह कर उन्होंने यह स्वरूप तोड़ी को दिया होगा। उन्होंने और भी कुछ तोड़ी प्रकार कहे हैं, वे इस प्रकार हैं:-तोड़ीबराली, छायातोड़ी, बहादुरीतोड़ी, जौनपुरीतोड़ी, मार्गतोड़ी, लाचारीतोड़ी, काफीतोड़ी।

प्र०—इन प्रकारों के जंत्र भी उन्होंने दिये हैं क्या ?

उ०—हां ! मैं अब वही कहने वाला था। सुनो:—

टोडी बराली–संपूर्ण.

नि़	ध	प	सा
सा	म	रे	
रे	ग	ग	
प	रे	रे	

इस जंत्र में उन्होंने दोनों गन्धार का प्रयोग किया है। संभवतः ऐसा उन्होंने वराटी के योग के कारण किया होगा। इस प्रकार के वर्णन में "चेती संकीर्णआसावरी" उन्होंने कहा है। अब छाया-तोड़ी का जंत्र सुनोः—

छायातोडी औडव—नि प वर्ज्य.

म	ध	रे	ग
ध	ग	सा	रे
सा	म	म	सा
रे	ग	ग	
ग	म	रे	
म	ग	सा	

यह प्रकार भी हमारे प्रचलित तोड़ी जैसा नहीं है, अब बहादुरी-तोड़ी का जंत्र देखोः-

बहादुरीतोडी—सम्पूर्ण.

म	ध	रे	रे	ग	रे
प	म	सा	सा	प	सा
म	प	नि	नि	ग	नि
प	ग	सा	ध	रे	सा
ध	रे	रे	सा	सा	
प	ग	सा	रे	ग	

इस पर विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। जौनपुरी का जंत्र में पहले कह ही चुका हूँ। अब मार्गतोड़ी सुनोः —

मार्गतोडी—षाडव. प हीन.

ध्	मं	म
नि्	प	ग्
ध्	ध्	रे्
मं	मं	सा
ग्	ग्	
रे्	रे्	

प्र०—इसमें दोनों मध्यम क्यों लिये गये ? कोमल म यदि एक स्थान पर उन्होंने न लिया होता तो यह हमारा तोड़ी रूप होगया होता ?

उ०—हां ! यह मार्गतोड़ी उन्होंने कहां से ली, कुछ कहा नहीं जा सकता। संगीत-पारिजात में "मार्गतोड़ी" इस प्रकार कही है:—

मार्गतोड्यां पहीनायां कोमलाख्यौ रिधौ स्मृतौ।
सन्यासौ मध्यमांशः स्यान्मूर्छना तत्र धादिका ॥

अस्तु, अब लाचारीतोड़ी का जंत्र देखो:—

लाचारी टोडी—संपूर्ण. (काफी, पटमंजरी, देसी, संकीर्ण टोडी)

प	म	सा	रे्	ध्	रे्
म	ग्	ग्	सा	प	सा
ध	म	म	नि्	म	
प	प	प	ध्	ग्	
ध्	म	म	नि्	रे्	
प	रे्	ग्	ध्	सा	

काफी तोड़ी का जंत्र वह इस प्रकार देते हैं:—

प	ध	नि	रे	म	सा
ध	नि	ध	सा	प	म
प	ध	प	रे	ध	ग
म	नि	म	म	म	रे
प	सा	ग	प	प	सा

ये सब जंत्र देख लेने पर निश्चत रूप से यह कहा जा सकता है कि इनमें से एक भी जंत्र तुम्हारे लिये उपयोग नहीं है। प्रतापसिंह को प्रचलित तोडी ज्ञात नहीं होगी, ऐसा तो प्रतीत नहीं होता, किन्तु उनके दिये हुए वर्णन से ऐसा कहा भी जा सकता है। हिन्दू तथा मुसलमान गायक उनके अधीन रहे होंगे, तिस पर भी ऐसा क्यों था, यह कौन बता सकता है? खैर, अब हम देखें कि इस विषय में पन्नालाल क्या कहता है।

प्रथम उसने दर्पण के तोडी लक्षण बता कर फिर उसके लक्षण इस प्रकार कहे हैं:-

गांधारग्रहसंयुक्ता कचिन्मध्यमईरितः ।
संपूर्णा तोडिका ज्ञेया आद्ययामे प्रगीयते ॥

आगे स्वरकरण ऐसा दिया है:—

ध़ नि़ सा रे ग ग रे सा रे रे सा रे नि़ सा रे ग ग रे नि़ ध़ ग ग ग रे रे रे सा।

प प प ध ध ध सां सां ध नि सां, ध नि सां रें गं गं रें नि ध ग ग रे नि ध मं ग ग ग रे रे रे सा ॥

आगे विस्तार ऐसा है:—

सा रे ग मं ध ध नि ध नि ध, मं ध मं ग, रे ग मं ध ध, नि ध मं ध मं ग, ध ध मं मं ग ग, रे ग मं ध ध, मं ध मं ग, ग ग मं मं ग ग, ध ध मं मं, ग मं ध ध, ग मं ध।

प्र०—हमारी समझ से इतना पर्याप्त है। यह स्वरूप हमारे प्रचलित तोड़ी से मिलेगा। ठीक है न ?

उ०—हां, अवश्य मिलेगा। संस्कृत लक्षणों में "क्वचिन्मध्यम ईरितः" ऐसा कहा हुआ देखकर उसने स्थायी तथा अन्तरा भाग में केवल एक बार ही मध्यम का प्रयोग किया, ऐसा जान पड़ता है। परन्तु वही आगे विस्तार में विशेष मात्रा में प्रयुक्त है। इससे उस तोड़ी में वही स्वर विशेष प्रयुक्त हैं, ऐसा दिखाई देगा। उसने "बहादुरीतोड़ी, लाचारीतोड़ी तथा अहीरीतोड़ी" के स्वर कहे हैं:—

प्र०—वे कैसे बताये हैं ?

उ०—कहता हूं।

सरगम—बहादुरी तोड़ी

धृ धृ प़ प़ धृ धृ रे रे सा, रे नि़ सा रे ग ग ग रे सा, धृ नि़ रे रे रे सा सा सा।

सा नि़ सा ग ग प मं प ध नि सां रें रें सां नि ध ग ग मं ध नि ध मं ग रे रे रे सा॥

प्र०—इसमें बहादुरी के प्रमुख अङ्ग कौनसे हैं? केवल मन्द्र सप्तक में सरगम प्रारम्भ करना ही बहादुरी का लक्षण कैसे कहा जा सकता है?

उ०—तुम्हारा प्रश्न उचित है। अवरोह में थोड़ा पंचम लिया है, किन्तु उसने कोई नियम नहीं बताया। इस कारण "बहादुरी" के सम्बन्ध में निश्चित कल्पना नहीं हो सकती। अन्तरे में उसने आरोह में भी पंचम लिया है। उसके दिये हुए स्वरकरण से ऐसी एक तालयुक्त सरगम रची जा सकती है:—

सरगम–सूल.

धृ ×	धृ	प़ ०	प़	धृ २	धृ	रे ३	रे	सा ०	ऽ
रे	नि़	सा	रे	ग	ग	ग	रे	सा	ऽ
नि़	सा	ग	ग	प	मं	ध	नि	ध	ध
ध	नि	सां	रें	नि	ध	मं	ग	रे	सा।

अन्तरा.

ध ×	ध	प ०	प	ध २	ध	रें ३	रें	सां ०	ऽ
ध	नि	सां	रें	गं	गं	रें	गं	रें	सां

गं	रें	सां	रें	नि	ध	नि	ध	प	प
ग	मं	ध	नि	ध	मं	ग	रे	सा	ऽ ॥

परन्तु यह आशा करना व्यर्थ है कि कोई इसको बहादुरी कहेगा।

लाचारी तोड़ी का स्वरांकन उसने इस प्रकार किया है:—

म
ग म प ध ध प ध ध प म रे, ग म प प रे रे सा सा नि नि प म प म ग रे ग म प प रे रे रे सा सा सा।

म
म म प नि नि सां सां नि सां रें रें सां रें रें सां नि ध प म ग रे ग म प प रे रे सा

म
नि नि प म प म ग रे ग म प रे रे रे सा सा सा।

प्र०—इस स्वरसमुदाय से कुछ भी जानकारी प्राप्त होती नहीं दिखती?

उ०—उसको नोटेशन लिखना न आने के कारण रागस्वरूप का बोध न हुआ तो आश्चर्य नहीं। अब उसने अहीरीतोडी कैसी कही है, वह भी देखो:—

ध ध सा रे ग म ग रे रे सा, प प म ग रे रे सा, ध सा रे ग रे सा।

प ध प ध सां रें गं रें सां पं मं गं रें सां नि ध प, म ग रे सा रे सा, नि ध प म ग रे सा ध ध सा रे ग रे सा।

यह प्रकार उसने भैरव थाट में कहा है, यह स्पष्ट दिखता ही है।

प्र०—क्षेत्रमोहन स्वामी ने तोड़ी कैसी कही है, वह भी बता दीजिये?

उ०—वे कहते हैं कि "सङ्गीत दर्पण" तथा "सङ्गीतसार" ग्रन्थ में तोडी इस प्रकार कही है:—

संपूर्णाकथितातज्ज्ञैस्तोडी श्रीकौशिकेमता।
ग्रहांशन्यासषड्जाच कैश्चिदत्रप्रचक्षते॥

प्र०—इसमें "श्रीकौशिके" कहा है, इससे क्या अर्थ समझना चाहिये?

उ०—तोडी मालकोश की रागिनी है, इसलिये ऐसा कहा होगा। आगे स्वरकरण सुनो:—

प़ नि़
सा सा सा ग रे सा रे रे नि़ ध़ ध़ नि़ ध़, प़, मं़ प़ नि़ ध़ नि़ सा, सा सा सा, सा सा
रे
ग मं प ध प मं ग ग प मं ध प नि ध ध मं ग रे सा। अन्तराः—

रें ध
मं प मं नि ध, नि सां सां सां नि नि सां गं मं पं धं मं गं सां रें सां, नि सां नि रें गं
प रे सा
रें सां रें नि नि ध प मं ग ग प मं ध मं ग रे सा।

इसमें उन्होंने जो कोमल निषाद यथा स्थान रखा है वह तीव्र था अर्थात् यह स्वरूप हमारे यहां (महाराष्ट्र) के तथा उत्तर के प्रचार से मिला था। परन्तु बंगाल अर्थात् गौड-बंगाल ही जो ठहरा। उसमें स्वतः का कुछ न हुआ तो वह बंगाल कैसे रहेगा ? वहां के रागस्वरूप तो स्वतन्त्र हैं ही, परन्तु उनकी गायकी भी स्वतः की ही है। उन गायकों की परिषद् में जो कार्य कुशलता दिखाई देती है, उस आधार से ऐसा कहना पड़ता है।

प्र०—यहां एक सूक्ष्म प्रश्न पूछना चाहता हूँ। किसी ने यदि हमसे प्रश्न किया कि तुम जो तोड़ी आज प्रचार में गाते हो, उसको कुछ प्रमाण या "शास्त्राधार" है क्या ? तब हमें क्या उत्तर देना चाहिये ?

उ०—इस प्रश्न का उत्तर देना सरल तो नहीं है, फिर भी थोड़ा बहुत युक्तियुक्त उत्तर दिया जा सकता है और वह इस प्रकार कि प्राचीन ग्रन्थकार हमारे आज के तोडी को "वराली" अथवा "वराटी" कहते थे। उसी को आगे तोडी नाम दिया गया। इसके प्रमाण स्वरूप सङ्गीत पारिजात के "तोड़ी-वराटी" संयुक्त नाम को प्रस्तुत किया जा सकता है। उसमें तीव्र निषाद स्पष्टरूप से नहीं बताया गया, किन्तु वह "वराटी" की व्याख्या से लेना पड़ेगा।

प्र०—ठीक। तो अब हमको प्रचलित तोड़ी का स्वरूप बता दीजिये ?

उ०—हां, ऐसा ही करता हूँ। यह राग सम्पूर्ण है। इसमें चाहे जैसे स्वर लें तो भी उसमें तोडी दीखेगीः—

ग रे, सा, नि़ सा रे ग, मं ग, ध मं ग, रे ग, रे, सा, नि़ रे, सा।

नि़, सा रे ग, रे ग, मं ग, ध मं ग, मं ध नि ध मं ग, रे ग, रे सा नि़ रे, सा।

नि़ नि़ सा रे ग, मं ग, ध मं ग, मं प ध मं प मं ग, रे ग, ध नि ध प मं प ध मं प मं ग, मं ग, रे ग, रे, सा।

सा, नि़, सा रे ग, रे ग, मं ग, रे ग, नि़, रे नि़ ध़, नि़, ध़ नि़ सा, रे ग रे, सा।

सा, नि़, रे नि़, ध़ नि़ ध़ प़, मं़ ध़ नि़ ध़ नि़, रे सा, ग रे, सा, मं ग, रे, सा, ध मं ग रे, सा। नि़ रे, सा।

धृ धृ नि़ सा, धृ नि़ सा, मं़ धृ नि़, धृ नि़ सा, ग॒, रे॒ ग॒, मं ध॒ मं ग॒, रे॒ ग॒, रे॒, सा, नि़ रे॒ सा।

नि़ नि़ सा रे॒ ग॒, रे॒ ग॒, मं ग॒, ध॒ मं ग॒, मं ध॒ नि ध॒ मं ग॒, सां, नि ध॒ मं ध॒ नि ध॒ मं ग॒, रे॒ ग॒, रे॒, सा।

अब पंचम विशेष मात्रा में लो।

ग॒ मं प, मं प, रे॒ ग॒ मं प, ध॒ प, नि ध॒ प, सां, नि ध॒, प, मं प ध॒ मं प मं ग॒, रें॒ नि ध॒ प, मं प ध॒ म प मं ग॒, रे॒ ग॒, रे॒, सा, नि़ रे॒ सा।

प्र०—बस, अब दो तानें अन्तरे में और लीजिये?

उ०—हां, सुनो। मं ग॒, मं ध॒, नि, सां, सां, रें॒ गं॒ रें॒ सां, नि सां रें॒ नि ध॒, मं ध॒ नि रें॒ गं॒ रें॒, सां, नि रें॒ नि ध॒ प, मं प, नि ध॒, प, मं प ध॒ मं, रे॒ ग॒, रे॒, सा।

इस राग की जानकारी तुम्हारे ध्यान में आगई हो तो अब मैं कुछ श्लोक कहता हूं:—

वराटीतोडिकामेलो यो ग्रंथेषु निरूपितः।
समादृतः स एवात्र तोडीति लक्ष्यवेदिभिः॥
अस्मान्मेलात्समुत्पन्ना रागिणी तोडिकाह्वया।
आरोहे चावरोहे च संपूर्णा लोकविश्रुता॥
धैवतः संमतो वादी गांधारो मंत्रितुल्यकः।
गानमस्याः समीचीनं द्वितीयप्रहरेऽहनि॥
संगतिर्धगयोरत्र भवेद्रक्तिप्रदायिनी।
आरोहे स्याद्रिपाल्पत्वं वैचित्र्यमवरोहणे॥
प्रातःकालोचितं नैव तीव्रमस्य प्रयोजनम्।
लोके प्रतीयमानत्वात् स्वीकृतमपवादकम्॥
ग्रंथोक्ततोडिमेलोऽसौ लक्ष्ये भैरविनामकः।
इति मया पुरैवोक्तं पुनरुक्तिर्निरर्थिका॥
दरबारी तथा लक्ष्मी लाचारी च बहादुरी।
हुसेनीनामिका तोडी तोडी विलासखानिका॥
एवं बहुविधास्तोडयो रागांतरविमिश्रिताः।
प्रसिद्धिं च समानीता लोके यवनगायकैः॥

लक्ष्यसंगीते

मनी तीव्रौ यस्यां खलु धगरयः संति मृदवः ।
मतो वादी षष्ठोऽस्य तु सहचरो गोऽतिमधुरः ॥
गभीरा संपूर्णा प्रकटसग्रहन्यास सुभगा ।
प्रसिद्धा तोडीयं दुरधिगमना संगवचरा ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

मनी तीव्रौ धगरयः कोमलाः स्युर्धगौ स्मृतौ ।
वादिसंवादिनौ यत्र तोडी सा संगवे मता ॥

चंद्रिकायाम् ।

तीखे मनि कोमल रिधग वादी धैवत साज ।
संवादी गंधार है तोडी राग बिराज ॥

चंद्रिकासार ।

धनी सरी गरी सश्च मपौ धपौ मगौ रिगौ ।
संपूर्णा टोडिका ज्ञेया धैवतांशा च संगवे ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

तोड़ी राग हमारी समझ में अच्छी तरह आगया। अब इसी का एक प्रकार "गुर्जरी" अथवा "गुजरी" आप बताने वाले थे, वह कहिये ?

उ०—हां। अब उसी पर बोलता हूँ। गुर्जरी के सम्बन्ध में एक दो महत्वपूर्ण बातें पहिले कह ही चुका हूं।

प्र०—जी हां, वह मेरे ध्यान में हैं। आपने कहा था कि गुर्जरी का अधिकांश स्वरूप तोड़ी जैसा ही है, किन्तु तोड़ी में पंचम स्वर है तथा गुर्जरी में वह वर्ज्य है।

उ०—तुमने बिलकुल ठीक कहा। वास्तव में गुर्जरी का यही स्वरूप समझना चाहिये। कुछ गायक गुर्जरी में थोड़ा सा पंचम लेकर "इसका उच्चार अलग है और तोड़ी का अलग" ऐसा भी कहते हैं। किन्तु वस्तुतः वे उन दोनों रागों के भेद को दिखा नहीं पाते, ऐसा मेरे देखने में आया है। मेरे मत से यह पंचम वर्ज्य करने का नियम विशेष उपयोगी होगा। फिर इसको थोड़ा बहुत ग्रन्थाधार भी है ही !

प्र०—ग्रन्थाधार है, यह कैसे कहा जा सकता है ? अभी-अभी आपने ही तो कहा था कि "गुर्जरी" के मेल को ग्रन्थकार भैरव मानते आये हैं।

उ०—हां, मैंने कहा था, परन्तु मैं केवल "पंचम" वर्ज्य करने के सम्बन्ध में कह रहा था, थाट के विषय में नहीं। वैसा ही यदि कहें तो तोड़ी को भी आज का थाट देने में कितनी अड़चन पड़ती ? गुर्जरी को तोड़ी का थाट देने पर उसमें पंचम नियम से

वर्ज्य होगा, केवल इतना ही मेरे कहने का अभिप्राय था। ऐसे उदाहरण हमने देखे हैं कि ग्रन्थकारों ने अनेक राग जो पहले भैरवथाट में कहे थे, वे कालान्तर में विभिन्न थाटों में चले गये। हृदय ने मालवकौशिक राग कर्णाट थाट में कहा, वही आगे पुण्डरीक ने काफीमेल के स्वरों में कहा था न? तत्पश्चात वह भैरवी थाट में आया, यह सब तुमने देखा ही है। अस्तु, दक्षिण के ग्रन्थकार गुर्जरी को मालवगौड़ थाट में लेते हैं तथा उसमें पंचम वर्ज्य करते हैं, यह मैं अभी-अभी कह ही चुका हूँ। उत्तर में भी गुर्जरी भैरवथाट में ही मानते थे, ऐसा स्पष्ट दीखता है। तरंगिणी तथा कौतुक में वर्णन इस प्रकार हैं:-

गौरीसंस्थितिमध्ये तु येषां संस्थितयो मताः।
तेषां नामानि कथ्यन्ते क्रमेणैतान्यशेषतः॥

× × ×

गौरा भैरवरागश्च विभासो रागसत्तमः।
रामकरी तथा गेया गुर्जरी बहुली ततः॥

प्र०—पहले गुर्जरी भैरव थाट में ली जाती थी, यह इससे स्पष्ट दीखता है?

उ०—परन्तु हृदय पण्डित गुर्जरी के लक्षण कैसे बताता है, देखोः—

गपौ धसौ सधपगा रिसाविति मताः स्वराः।
औडुवस्वरसंस्थाना रागिणी गुर्जरी कृता॥

गपधसां सांधपगरिसा।

प्र०—क्या यह स्वरूप कुछ विभास जैसा नहीं होगा?

उ०—तुम्हारी यह धारणा ठीक है, परन्तु हृदय ने कौतुक में विभास राग का वर्णन इस प्रकार किया है:—

पधौ निसौ निधपमा गरिसाः कथिताः स्वराः।
भासमानो विभासोऽसौ संपूर्णो भुवि भासते॥

प्र०—तो विभास, गुर्जरी से अवश्य ही प्रथक होगा?

उ०—मालुम होता है कि यह गुर्जरी राग हमारे यहां अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आता है। संभव है इसके स्वरूप के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत मतभेद भी रहा हो!

प्र०—आप किस आधार पर कह रहे हैं?

उ०—यह राग रत्नाकर में विभिन्न ग्रामरागों के जन्य में रखा गया है, इसी आधार से ऐसा कहा जा सकता है। उदाहरणार्थः—

मध्यमग्रामसंबंधो धैवत्यार्षभिकोद्भवः।
रिन्यासांशग्रहः क्वापि मान्तः पंचमषाडवः॥

विलसत्काकलीकोऽपि कलोपनतयाऽन्वितः ।

प्रसन्नाद्यन्तकलितारोहिवर्णः शिवप्रियः ॥

वीररौद्राद्भुतरसो नारीहास्ये नियुज्यते ।

ऐसा "पंचम षाडव" ग्रामराग कहकर फिर गुर्जरी का इस प्रकार वर्णन किया है:-

तज्जा गुर्जरिका मान्ता रिग्रहांशा ममध्यभाक् ।

रितारा रिधभूयिष्ठा शृंगारे ताडिता मता ॥

इसके अतिरिक्त रत्नाकर में महाराष्ट्र गुर्जरी, सौराष्ट्र गुर्जरी, दक्षिण गुर्जरी, द्राविड गुर्जरी आदि गुर्जरी भेद (उपांग) कहे गये हैं। देखो:—

पंचमेनोज्झिता मंद्रनिषादा ताडितोत्सवे ।

गीयतामृषभान्तांशा महाराष्ट्री च गुर्जरी ॥

गुर्जर्येव रिकंपाढ्या सौराष्ट्री गुर्जरी भवेत् ।

दक्षिणागुर्जरी कंप्रमध्यमा ताडितेतरा ॥

रिमंद्रतारा स्फुरिता हर्षे द्राविडगुर्जरी ॥

प्र०—परन्तु इनके स्वर ? वहीं तो गाड़ी अड़जाती है ?

उ०—वह तो अवश्य अड़ेगी ही। इनको अहोबल के पारिजात में देखो, ऐसा उत्तर कैसे दिया जा सकता है ?

प्र०—पारिजात में क्या देखना है ?

उ०—उसमें अहोबल ने दक्षिण गुर्जरी तथा उत्तर गुर्जरी के स्वर दिये हैं, परन्तु वे कहां से व कैसे लिये, यह नहीं कहा जा सकता।

प्र०—अहोबल ने इन दोनों गुर्जरी के स्वर किस प्रकार बताये हैं ? कदाचित् महाराष्ट्री तथा सौराष्ट्री के स्वर उत्तर गुर्जरी में एवं दक्षिणा व द्राविडी के स्वर दक्षिण-गुर्जरी में लिये जायें, ऐसी तो उसकी योजना नहीं थी ?

उ०—उसके मनमें क्या था, कौन कह सकता है ? परन्तु अहोबल ने दक्षिण-गुर्जरी इस प्रकार बताई है:—

गुर्जरी मालवोत्पन्नावरोहे मनिवर्जिता ।

गश्लिष्टमध्यमोपेता धैवतश्लिष्टसस्वरा ॥

गांधारमूर्छनोपेता दाक्षिणात्या प्रकीर्तिता ॥

प्र०—यहां थाट तो भैरव का स्पष्ट है। "श्लिष्ट" पद से "संगति" समझना चाहिये क्या ?

उ०—ऐसा ही दीखता है। आगे "उत्तर गुर्जरी" सुनो:—

औत्तरा गुर्जरी ज्ञेया शुद्धगा पूर्ववत् सदा ।

प्र०—इस प्रकार में "शुद्ध गा" अर्थात् जिसमें कोमल गन्धार है ? तो फिर यह गुर्जरी, भैरवी थाट के समीप जाने लगी, क्या ऐसा कहना चाहिये ? रे तथा ध ये दो स्वर तो कोमल ही हैं। नी तीव्र है जो हमको ऐसा ही चाहिये था। अब प्रश्न केवल मध्यम का रहा। भैरव थाट के कुछ रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग हमने देखा ही है। हमको इस उत्तर गुर्जरी के लक्षण बहुत उपयोगी जान पड़ते हैं। रागों में ऐसा क्रमिक परिवर्तन लोकरुचि के अनुसार होना ही चाहिये ?

उ०—मेरा कहने का तात्पर्य यह नहीं कि तुम्हारा कथन अनुचित है। परन्तु दक्षिण की गुर्जरी तथा उत्तर की गुर्जरी में ऐसा भेद हो चला था, ऐसा इससे अवश्य दिखाई देता है। परन्तु हमारा प्रश्न यह था कि रत्नाकर के गुर्जरी के स्वर कदाचित् अहोबल के कारण छूट गये होंगे। कोई कहते हैं अहोबल ने तत्कालीन परिवर्तन का उल्लेख किया होगा। परन्तु शार्ङ्गदेव की महाराष्ट्र अथवा सौराष्ट्री गुर्जरी उसने समझली थी, यह कैसे निश्चित किया जा सकता है ?

प्र०—हां, यह कठिनाई अवश्य आयेगी ?

उ०—रत्नाकर में और भी एक-दो प्रकार गुर्जरी के दिये हैं, किन्तु उनका वर्णन मैं अब नहीं करूंगा। पुण्डरीक ने चन्द्रोदय में गुर्जरी मालवगौडथाट में कह कर उसके लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

र्यंशग्रहान्ता ससमुद्रिता वा स्याद्गुर्जरी प्रातरियं विगेया ।

रागमाला में थाट वही बताकर लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

संधत्ते हस्तमूले करिरदवलयान्यंघ्रिमंजीरयुग्मं
नासाग्रे हेमपुष्पं कनकसमनिभं कंचुकीं रक्तवस्त्रम् ।
बिंबोष्ठी रक्तवर्णा दिवसुररचिता मुक्तकच्छाप्यसौ वा
रामक्री मेलसौख्या त्रिसमयरिरसौ गुर्जरीयं प्रभाते ॥

रामक्रीमेल के स्वर × × × × अनलगतिगनी राजते सर्वदैव ॥ यह मैंने तुमको बताये ही थे।

प्र०—यह भैरव थाट ही होगा। यहां एक बात जो मेरे मस्तिष्क में आई है, आपसे पूछना चाहता हूँ। वह यह कि "गुर्जरी" के वर्णन में "मुक्तकच्छा" यह पद कवि ने क्यों लिया ? कदाचित् यह रागिनी गुजरात प्रान्त से संग्रहीत की गई होगी, क्या ऐसा उसको जान पड़ा ? अथवा वहां की स्त्रियां "कच्छ" (लांग) नहीं लेती हैं, यह देखकर उसने ऐसा कहा है ?

उ०—तुम्हारे इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। मुझे स्मरण है "नृत्य निर्णय" में भी पुण्डरीक ने "मुक्तकच्छाप्यसौ वा" कहा है। इस उक्ति से तुम्हारे कथन को बल मिलेगा, परन्तु वहां भी एक अड़चन आयेगी। उत्तर हिन्दुस्तान में कच्छ लेने का रिवाज कहीं नहीं है, तो फिर गुर्जरी का सम्बन्ध गुजरात से क्योंकर हो सकता है ?

प्र०—परन्तु "गुर्जरी" क्या गुर्जर प्रान्त का राग स्पष्ट नहीं दीखता है क्या ? इसी प्रकार सौराष्ट्री गुर्जरी अर्थात् काठियावाड़ के सौराष्ट्र प्रान्त की गुर्जरी; यह भी तो स्पष्ट ही है ?

उ०—तुम्हारा ऐसा कहना अनुचित नहीं है। अस्तु, रागमंजरी में पुण्डरीक ने "गुर्जरी" गौरी मेल में कह कर उसके लक्षण इस प्रकार बताये हैं:—

रित्रिका पेन हीना वा गुर्जरी प्रातरिष्टदा ।

अब अधिक संस्कृत मत कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । भावभट्ट ने बीच ही में अपनी विद्वता तथा अपना ग्रन्थ अध्ययन दिखाने का प्रयत्न किया है, यह देखकर हंसी आती है ।

प्र०—वह तो केवल संग्रहकार है न ? फिर उसको यह बुद्धिमानी दिखाने का का अवसर कैसे आया ?

उ०—हृदयप्रकाशकार ने गुर्जरी में "गांधारग्रह" कहा है इसी से ज्ञात होता है कि भावभट्ट ने निराधार लिखा है । वस्तुतः प्राचीन लक्षण उसको भली भांति विदित थे, ऐसा मानने के लिये कोई आधार नहीं है ।

प्र०—तो फिर उसने क्या कहा है, वह हमको भी सुना दीजिये ?

उ०—गुर्जरी के लक्षण रत्नाकर, रागविबोध, मंजरी, चन्द्रोदय तथा निर्णय से उद्धृत कर अन्त में वे हृदयप्रकाश की ओर बढ़े। उस के लक्षण इस प्रकार उद्धृत किये:—

× × × गादिर्धांशा मनित्यागादौडुवेष्वथ गुर्जरी ।

फिर स्पष्ट कहते हैं:—

गादिकं तु मतं कस्य भो संगीतविशारदाः ।
पूर्वाचार्यैर्विरोधोऽत्र कथं तैः प्रतिपादितः ॥
कल्लिनाथमतं प्राहाथ जनार्दननंदनः ।
संगता समयो रिन्योः संपूर्णा निग्रहांशिका ॥
षड्जांता देशजा टकविभाषा गुर्जरी मता ।
शुद्धपंचमभाषास्याद्गुर्जरी पग्रहांशिका ।
पान्ता समोच्चा संपूर्णा गपापन्यासभूषिता ।

प्र०—यह इतना "अकाण्डताण्डव" किस लिये पण्डित जी ? पहले के आचार्यों ने "रिग्रहा" कहा और हृदय ने "गादिः" कहा । इसका मतलब हमारी समझ में बिल्कुल नहीं आया ।

उ०—मैं भी यह गुत्थी ठीक से नहीं सुलझा सका हूँ । मैं नहीं समझता कि भावभट्ट ने रत्नाकर तथा कल्लिनाथ के मत समझ लिये थे । उसने अपने समय के

पण्डितों पर अपनी धाक जमाने के लिये ऐसा कहा होगा, ऐसा अनुदार मत हम कैसे दे सकते हैं? इन बातों को तो सुनकर छोड़ दो, बस! ऐसे लेखक आज भी हैं तथा पहिले भी थे, इतना ही इससे सारांश लेना है।

अब "राधागोविन्द संगीतसार" में गुजरी के बारे में क्या कहा है, वह देखेंगे। प्रतापसिंह ने गुजरी को मेघ राग की एक रागिनी कहा है, उसका जंत्र उन्होंने इस प्रकार दिया है:—

सा रे ग रे ग ध प ध म (असली) ग रे सा, नि सा ग रे सा ध सा रे ग रे सा।

प्र०—यह भैरवी थाट प्रकार होगा; इसलिये हमारे काम में नहीं आयेगा।

उ०—अब सङ्गीत कल्पद्रुम का मत कहूँगा, परन्तु इससे पहले दर्पण का मत कह देना सुविधाजनक होगा।

प्र०—इसका कारण हम समझ गये। कल्पद्रुमकार अपने शास्त्राधार दर्पण से लेता है तथा पन्नालाल वही कल्पद्रुम से लेता है, इसलिये आप ऐसा कह रहे होंगे?

उ०—हां, कारण तुम बिलकुल ठीक समझे। दर्पण में गुर्जरी मेघ की रागिनी कही गई है तथा उसका वर्णन इस प्रकार दिया है:—

श्यामा सुकेशी मलयद्रुमाणां मृदूल्लसत्पल्लवतल्पमध्ये।
श्रुतिस्वराणां दधती विभागं तन्त्रीमुखा दक्षिणगुर्जरीयम् ॥
ग्रहांशन्यासऋषभा संपूर्णा गुर्जरी मता।
पौरवीमूर्छना यस्यां बंगाल्यासहमिश्रिता ॥

दर्पणे।

कल्पद्रुमकार ने ऐसी ही कल्पना करके आगे लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

धैवतांशग्रहन्यासा संपूर्णा गुर्जरी मता।
वराडीतोडिसंजाता देशीमिश्रितजन्मभूः।

प्र०—यह वर्णन हमारी गुजरी के बहुत निकट आगया है, परन्तु कल्पना पुरानी ही है।

उ०—हां, ऐसा अवश्य हुआ है। नाद विनोदकार कहता है:—

धैवतांशग्रहन्यासा संपूर्णा गुर्जरी मता।
सप्तमी मूर्छना तस्या बहुल्यासहमिश्रिता।
रामक्रीटोडिसंयुक्ता वराटीमिश्रितापुनः।
गुर्जरी जायते विद्वन् आद्ययामे प्रगीयते ॥

इससे हम और भी आगे आगये। अब नादविनोद का गुर्जरी का स्वरकरण सुनो:—

नि नि धु धु धु मं धु मं धु, मं गु, रे सा, सा सा सा मं मं मं धु नि धु धु मं मं गु गु रे रे रे सा सा सा।

मं मं मं धु धु धु नि नि सां धु नि सां रें गुं गुं रें सां गुं गुं रें सां नि धु मं गु रे रे रे सा सा सा ॥

आगे विस्तार ऐसा है:—

नि धु मं धु मं गु रे सा सा नि धु मं गु रे रे सा नि धु मं गु गु रे, सां नि धु मं गु गु रे सा, नि धु मं धु मं धु मं गु रे रे सा।

प्र०—इतना पर्याप्त है। यह स्वरूप हमारे प्रचलित गुर्जरी जैसा होगा, ठीक है न?

उ०—हां, बिलकुल ठीक है, स्वररचना विशेष सुन्दर नहीं, फिर भी स्वरूप शुद्ध है। अब क्षेत्रमोहन स्वामी गुजरी के विषय में क्या कहते हैं, सुनो:—

ग्रहांशन्यासऋषभा संपूर्णा गुर्जरीमता।

इति संगीतदर्पणेऽपि।

रागसर्वस्वसार कर्ता शिल्हन तथा उसी प्रकार मिर्जाखान के मत से भी गुर्जरी सम्पूर्ण है। सुप्रसिद्ध सोमेश्वर, गुर्जरी में पंचम वर्ज करने को कहता है। आगे फिर, लोभान्मोहाच्च ये केचिद्गायन्तिच विरागतः सुरसा गुर्जरी तस्यरोषं हन्तीति कथ्यते" ऐसा प्रायश्चित करके कहता है कि ग्वालियर के राजा मान चार प्रकार के गुर्जरी भेद मानते थे। इसके अतिरिक्त दक्षिणगुजरी, सौराष्ट्र गुजरी आदि प्रकार संस्कृत ग्रन्थकारों ने कहे हैं, परन्तु उनका हमारे प्रान्त में विशेष प्रचार नहीं दिखाई देता।

प्र०—यह तो सब हुआ, पर वे स्वयं गुजरी कैसे गाते थे?

उ०—अब उनका प्रकार भी सुनो:—

नि नि   सा   मं प   सा
सा सा गु मं धु प मं प, गु, मं प, धु, सां, नि धु, प मं प, गु,

          मं   रे सा
अन्तरा—प मं धु सां सां सां सां, गुं रें सां नि सां, मं धु, प मं प, गु प, गु रे सा ॥

प्र०—यह तो गुर्जरी में पंचम लेते हैं?

उ०—हां, यह दीखता ही है। हमारे यहां पंचम नहीं लेते, यह मैं कह ही चुका हूँ। अस्तु, अब कुल मिलाकर तुमने क्या निष्कर्ष निकाला, वह बताओ?

प्र०—हमारी समझ से आज जो स्वरूप हम गारहे हैं उसके उत्तम आधार संस्कृत ग्रन्थ नहीं। अनेक ग्रन्थकार गुर्जरी का मेल भैरव थाट जैसा मानते हैं। महाराष्ट्र में पंचम वर्ज्य करने का प्रचलन है और ऐसा करना ही विशेष सुविधाजनक है। कारण, ऐसा करने से तोडी तथा गुर्जरी को सहज ही पृथक किया जा सकता है। गुर्जरी का स्वरूप बिलकुल तोडी जैसा ही आपने बताया था, जो कि हमारे ध्यान में है। गुर्जरी के गीत बहुधा कैसे प्रारम्भ होते हैं?

उ०—कोई रिषभ से और कोई धैवत से आरम्भ करते हैं। पंचम वर्ज्य करके चाहे जहां से गीत आरम्भ करो; राग गुर्जरी होगा। ऐसा तोडी का अन्य कोई प्रकार प्रचार में न होने से गुर्जरी पहचानना बिलकुल सरल था। गुर्जरी अप्रसिद्ध राग नहीं। परन्तु प्रचार में शुद्ध तोडी अधिक गाया जाता है, कारण वह सम्पूर्ण एवं सरल है। जो ऋषभ से प्रारम्भ करते हैं, वे प्रायः चलन इस प्रकार रखते हैं:-

"रे रे रे, सा, नि सा, रे, नि ध, नि ध, म ध नि सा, रे, ग रे ग रे सा; जो धैवत से प्रारम्भ करते हैं वे चलन इस प्रकार रखते हैं:—"ध ध नि ध म ग, ध म ग, रे ग, म ध, नि म ग, रे ग रे सा ॥ कोई गायक ऐसा कहते हैं कि शुद्ध तोडी मन्द्र-मध्य-प्रचारिणी है तथा गुर्जरी मध्य-तार-प्रचारिणी है।

प्र०—अर्थात् "गुजरी ऊपर को देखती है और शुद्धटोडी नीचे को देखती है" ऐसा थोड़ा बहुत नियमपालन वहां करना चाहिये, यह तथ्य सुझाने का उसका अभिप्राय जान पड़ता है।

उ०—हां! परन्तु प्रचार में यह नियम सदैव पालन किया हुआ दिखाई देगा ही, ऐसा मैं नहीं समझता। गुर्जरी में मन्द्र सप्तक में विशेष काम नहीं करते, यह बात भी एक दृष्टि से गलत नहीं। तोडी में पंचम का प्रमाण धैवत की अपेक्षा कम ही है। इसमें भी म ध नि सा, रे, सा ग, म ग, ध म ग, रे ग, रे सा। यह भाग आता ही है। शुद्धतोडी आलापाई राग माना जाता है तथा उसमें गायक-वादक मन्द्र सप्तक में बहुत काम करते हैं। तार सप्तक में ये दोनों राग जाते हैं।

प्र०—तो फिर "ऊपर को नीचे को" ऐसा जो गायक कहते हैं, वह 'झक्कीपन' तो नहीं होगा ?

उ०—मैं कब कहता हूँ कि वे लोग झक्की हैं। गुर्जरी के अनेक गीत मध्य तथा तार सप्तक में तुम्हें प्रचार में दिखाई देंगे ही, परन्तु मन्द्र स्थान में काम करके पंचम को अन्त तक तुमने यदि वर्ज्य करके रखा, तो श्रोता तुम्हारे राग को प्रायः गुर्जरी कहेंगे। कभी-कभी गुजरी के गीत गांधार से शुरू होते हैं। जैसे:—ग ग रे रे सा नि सा, रे ग, ग रे ग, रे सा।

प्र०—अब हमको गुजरी का थोड़ा सा विस्तार करके दिखा दीजिये ?

उ०—ठीक है, ऐसा ही करता हूं:—

ग, रे सा, नि सा, रे ग, रे ग, म ग ध म ग, रे ग, रे सा, नि रे सा।

नि नि सा रे ग, म रे ग, म ध, नि ध, म ग, रे ग, म ध नि सां नि ध, नि ध म ग, रे ग, रे सा, नि रे सा।

नि सा ग रे, सा, नि, रे नि ध, म ध नि सा, ध नि सा, रे, ग, म ग, ध म ग नि ध म ग, रे ग, रे सा।

सा रे ग, रे ग, म ग, म ध नि ध म ग, नि ध म ग, सां, नि ध म ग, नि ध म म ध नि ध म ग, ग रे सा म ग म ध, नि ध म ग, रें नि ध म ग, म ध नि सां नि ध म ध म ग, ध म ग, म ग, रे, सा ।

म ग म ध, रें, सां नि, सां रें गं रें सां, नि नि सां रें नि ध, गं, रें, सां, नि, सां रें, नि ध, म ध, सा सा ग ग, म ध, रें, नि ध, म ध, म ग, रे ग, रे सा ।

प्र०—गुजरी का चलन तो हमारी समझ में आ गया, इसलिये विशेष विस्तार की आवश्यकता नहीं। अब गुजरी में कोई सरगम बता दीजिये ?

उ०—अच्छा, कहता हूं:—

गुजरी—झपताल.

ध	ध	म	ध	म	ग	रे	ग	रे	सा
×		२			०		३		
नि़	सा	ग	रे	सा	नि़	रे	नि़	धृ	धृ
म़	धृ	सा	ऽ	सा	रे	रे	ग	रे	सा
नि	ध	म	ध	म	ग	रे	ग	रे	सा।

अन्तरा.

म	ग	म	ध	म	सां	ऽ	नि	रें	सां
×		२			०		३		
नि	रें	गं	रें	सां	नि	सां	रें	नि	ध
गं	गं	रें	गं	रें	नि	सां	रें	नि	ध
म	ध	नि	ध	म	ग	रे	ग	रे	सा।

गुर्जरी—त्रिताल.

म॑	ग	म॑	ध	रें	ऽ	सां	ऽ	नि	ध	ऽ	म॑	ध	म॑	ग	ऽ
३				×				२				०			
ध	म॑	ग	रे	ग	रे	सा	ऽ	म॑	ध	नि	ध	म॑	ध	म॑	ग

———

अन्तरा.

म॑	ग	म॑	ध	सां	ऽ	सां	ऽ	रें	गं	रें	सां	नि	रें	नि	ध
३				×				२				०			
ऽ	गं	ऽ	रें	सां	रें	नि	ध	म॑	ध	नि	ध	म॑	ग	रे	सा।

अब श्लोकों में गुर्जरी के लक्षण कहता हूँ:—

तोडीमेलसमुत्पन्ना गुर्जरी कीर्त्यते बुधैः ।
आरोहे चावरोहेऽपि नित्यं स्यात्पविवर्जिता ।।
धैवतः संमतो वादी रिर्गोवाऽमात्यसंनिभः ।
गानं सुनिश्चितं तस्या द्वितीयप्रहरेऽहनि ।।
मध्यतारविचित्रासौ मन्यते गायनैः क्वचित् ।
मते तेषां पुनस्तोडी मंद्रमध्यप्रचारिणी ।।
ग्रंथेषु गुर्जरी प्रोक्ता स्पष्टं भैरवमेलने ।
रित्रिका पेनहीना साऽथवा पूर्णा प्रभातगा ।।
अद्यापि गीयते चासौ संपूर्णा कुत्रचिज्जने ।
तोडीमेलसमुत्पन्ना नतल्लक्ष्येऽत्र संमतम् ।।

लक्ष्यसङ्गीते ।।

तोडिकैव किल गुर्जरी मता ।
पंचमेन रहिता यदा भवेत् ।।
संवदृषभधैवतांशिनी ।
गीयते सुमतिभिश्च संगवे ।।

कल्पद्रुमांकुरे ।

आरोही अवरोहिमें पंचम सुरको छोड़ि ।
धरि वादीसंवादि तें कहत गूजरी टोड़ि ॥

चन्द्रिकासार ।

निसौ रिगौ मधमगा निधौ मगौ रिगौ रिसौ ।
गुर्जरीतोडिका धांशा संगवे पंचमोज्झिता ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

प्रिय मित्र ! अब तोड़ी थाट जनित रागों में केवल एक मुलतानी राग ही कहने से रह गया है । तोड़ी के कुछ प्रकार आसावरी थाट में बताये तथा तीव्र मध्यम लिये जाने वाले शुद्ध तोड़ी व गुजरी (तोड़ी थाट के) अभी कह ही चुका हूँ । फिरोजखानी, अहीरी, अंजनी, बहादुरी आदि प्रकार सर्वथा अप्रसिद्ध हैं वे तुम्हारे सुनने में कम ही आयेंगे, अतः उनके सम्बन्ध में मैंने कुछ नहीं कहा है । पन्नालाल ने अपने नादविनोद में "अहीरीटोड़ी" का स्वरकरण दिया है, परन्तु वह अधिकांश भैरव जैसा दीखेगा तथा तुम उससे व्यर्थ ही उलझन में पड़ जाओगे; यह सोचकर मैंने उनका वर्णन भी तुम्हारे सामने नहीं रखा है । उन प्रकारों को "अहीरी तोड़ी" क्यों कहते हैं, ऐसा प्रश्न तुम्हारे मनमें यहां अवश्य उत्पन्न होगा ।

प्र०—वह प्रकार भी यदि आप हमको बतादें तो ठीक रहेगा, क्योंकि राग सम्बन्धी मतभेद तो हम देखते ही आये हैं ? फिर इस अहीरीटोड़ी से ही हमको विशेष उलझन क्या हो सकती है ? बताने में कोई विशेष अड़चन न हो तो उसे सुनने की हमारी इच्छा है । वह प्रकार भैरव जैसा दिखाई देगा, ऐसा आपने कहा था; किन्तु गुर्जरी भी तो ग्रन्थकारों ने भैरव थाट में कही है न ?

उ०—ठीक है । यदि यह बात है तो मुझे कहने में कोई आपत्ति नहीं । परन्तु उस स्वरूप के सम्बन्ध में विशेष जानकारी मैं नहीं दे सकता । "अहीरभैरव" का नाम मैंने भैरव थाट के एक राग का वर्णन करते समय सम्बोधित किया था, जो तुम्हारे ध्यान में होगा ही । अब नादविनोदकार ने "अहीरीतोड़ी" कैसी कही है, वह बताता हूं । उसके स्वरूप का वर्णन करने की आवश्यकता नहीं । नादस्वरूप इतना कहता हूं:—

ध़ ध़ सा रे॒ ग म ग रे॒ सा, प प म ग रे॒ रे॒ सा, ध़ ध़ सा रे॒ ग रे॒ सा । अन्तरा—
प ध॒ प, ध॒ सां, रें॒ गं रें॒ सां पं मं गं रें॒ सां, नि ध॒ प म ग रे॒ सा, रे॒ सा, ऩि ध़॒ प़ म़ ग़
रे॒ सा ध़॒ ध॒ सा रे॒ ग रे॒ सा ।

इस स्वरूप के आरोह में निषाद नहीं है, इतनी ही विशेष बात है । स्वरों पर कण लगे न होने से कौनसे स्वर पर कितना जोर देना चाहिये, यह समझने का साधन नहीं है ।

प्र०—अच्छा । लेकिन प्रतापसिंह अथवा राजा टागोर ने "अहीरी" के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है क्या ?

उ०—प्रतापसिंह ने तो "अहीरी" का वर्णन नहीं किया; परन्तु टागोर साहेब ने अवश्य किया है ।

प्र०—वह उन्होंने कैसा किया है ?

उ०—उनका प्रकार सुनो:–उन्होंने 'नारदसंवाद' का आधार देकर वर्णन किया है।

प्र०—परन्तु आधार स्वरूप श्लोक कैसे कहे हैं ?

उ०—वे इस प्रकार हैं:–"आभीरी त्रिवणीतुल्या संपूर्णा कथिता बुधैः"। आगे कहते हैं कि दामोदर के मत से भी आभीरी सम्पूर्ण है।

प्र०—परन्तु यह वर्णन आभीरी का होगा। हमारा प्रकार तो "अहीरी" है न ?

उ०—वे अहीरी तथा आभीरी को एक ही मानते हैं। आभीर अहीर जाति का नाम है। उत्तर में इस जाति को 'अहीर' कहते हैं। अतः आभीरी तथा आहीरी एक ही राग के नाम हैं, ऐसा मानने में विशेष दोष दिखाई नहीं देता। अब अहीरी का नादस्वरूप सुनो, वह इस प्रकार है:—

नि़ नि़ सा सा नि़ नि़
सा सा सा, म धु धु म, ग रे ग प, ग रे सा सा, रे रे ग, म, ग रे प़ सा नि़ धु़

म नि म
नि़ सा रे ग रे सा। अन्तरा। म म म, प, प, प म प, धु सां, सां, नि धु, प धु, धु, प,

म
धु प, म प, धु प म प, सा म, प, प धु धु प, धु, नि नि नि धु प, धु म, म धु धु, म, सा ग

सा नि
रे ग प, ग रे सा, सा, रे रे ग म, ग रे, प़ सा नि़ धु़ नि़ सा, रे ग रे सा। इसने भी आरोह में निषाद टालने का प्रयत्न किया है। मध्यम बीच-बीच में मुक्त है।

दक्षिण के रागलक्षण ग्रन्थ में 'अहीरी' तथा 'आभीरी' दोनों पृथक राग बताये गये हैं। देखो:—

हनुमत्तोडिमेलाच्च अहीरी नामिकाह्यभूत्।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्चते ॥
संपूर्णं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे समग्रकम्।
सा रे सा ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।

आभीरी का वर्णन उसने इस प्रकार किया है:—

नठभैरवीरागाख्यमेलाज्जातः सुनामकः।
आभीरीराग इत्युक्तः सन्याससांशकग्रहम् ॥
आरोहे रिधवर्ज चाप्यवरोहे समग्रकम् ॥
सा ग म प नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।

प्र०—इस मतभेद की अधिक गहराई में जाने का हम आपसे आग्रह नहीं करेंगे। यह राग हमारे सुनने में क्वचित ही आयेगा, ऐसा आपने कहा ही था।

उ०—हां, यह मैं पहले कह ही चुका हूं। अंजनी तोड़ी के सम्बन्ध में भी यही बात है। काश्मीर की ओर प्रवास करते समय 'अच्छाबल' नाम के एक स्थान पर एक पंजाबी गृहस्थी से संगीत सम्बन्धी चर्चा करने का अवसर आया था, उसने अंजनीटोड़ी का एक ध्रुपद मुझे सुनाया था, ऐसा स्मरण होता है।

प्र०—उसने तोड़ी में कौनसे स्वर लिये थे ?

उ०—इस प्रकार लिये थे:—"सा रे ग म ध ध नि नि सां"। कोमल धैवत उसने आरोह में लिया तथा तीव्र अवरोह में कई जगह लिया था। उसके ध्रुपद के शब्द इस प्रकार थे:—

अंजनीतोडी–चौताल.

निद्राहू नहीं आवेरी माई। श्याम बिना मैको। कबहूं आवेंगे नंदलाल ॥ मोरमुकट चंदनकी भाल। मुखतें मुरली अधर। गले सोहत बनमाल ॥ गोपनके संग आवत। खेलन गलहू बैजंती माल। कृष्ण प्रभु छबि पर। तन मन धन वार डारूं। निरखत भई आनिहार ॥

इस ध्रुपद के स्वर उसने जैसे गाये, वैसे ही मैंने लिख लिये। वे इस प्रकार हैं:—

म म
सा रे म, प प, सां नि सां ध प, प म प ग। रे ग, रे ग सा, रे ग सा। सा सा म,
म नि नि नि नि
रे म प नि ध प, नि नि सां रें नि ध प ॥ म ध ध नि नि सां सां सां। म ध ध सां गं गं रें
म प
सां सां नि ध प। प प सां रें रें नि ध ध म। प नि सां रें नि ध म ॥ सां सां सां, सां नि
म म नि नि
सां नि ध प ग रे। ग ग रे सा सा सा सा म ग प नि सां, नि ध प म म म ध ध सां सां
नि
सां। ध ध ध ध सां सां रें रें सां नि सां ध प। सां नि सां सां रें नि ध म म प सां रें नि ध प ॥

वे शौकीन ग्रहस्थ थे तथा गायक को घर बुलाकर सीखे थे। उनका नाम मंगलसेन कपूर था तथा वे पंजाब में वजीराबाद के रहने वाले थे। इस गीत पर वे स्वर कौनसे लेते थे, यह तथ्य तुम समझ ही सकोगे।

"अहीरी" का उल्लेख रागतरंगिणी में लोचन ने इस प्रकार किया है:—

गुर्जर्या देशकारश्चेत् कल्याणोऽपि युतो भवेत्।
अहीरी रागिणी रम्या तदैव भुवि जायते ॥

परन्तु मित्र ! अब यह निरुपयोगी भाग छोड़कर हमें मुलतानी राग की ओर बढ़ना चाहिये।

प्र०—हम भी यही कहने वाले थे। अब आप हमें मुलतानी के सम्बन्ध में जानकारी दीजिये ?

उ०—ऐसा ही करता हूं। पहला प्रश्न इस राग के सम्बन्ध में यह उत्पन्न होता है कि "मुलतान" से इस राग का नाम "मुलतानी" हुआ है? दूसरा प्रश्न ऐसा होता है कि क्या यह आधुनिक प्रकार है? पहिले प्रश्न का उत्तर तो सहज ही दिया जा सकता है। बंग, कलिंग, सौराष्ट्र, मालव आदि प्रान्तों के नाम से कुछ राग यदि सङ्गीत में स्पष्ट दिखाई देते हैं तो फिर मुलतानी नाम भी "मुलतान" प्रान्त से प्रचार में आया होगा, ऐसा स्वाभाविक रूप से समझ में आता है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में यह नहीं कहा जा सकता कि यह सर्वथा आधुनिक राग है।

प्र०—क्या इसको हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने वर्णित किया है?

उ०—समस्त संस्कृत ग्रन्थकारों ने इसका वर्णन किया हो, ऐसा तो नहीं। मुलतानी का नाम प्रथम रागतरंगिणी में हमें दृष्टिगोचर होता है। तत्पश्चात् हृदयकौतुक तथा हृदयप्रकाश में यह पाया जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में मुलतानी का वर्णन देखने में नहीं आता।

प्र०—तरंगिणी में मुलतानी का उल्लेख कैसा किया गया है?

उ०—इस प्रकार है:—

मालवः स्याद्गुणमयः श्रीगौरी च विशेषतः।
× × ×
त्रिवणः स्यान्मूलतानी धनाश्रीश्च वसंतकः।
× × ×
गौरीसंस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः॥

हृदय ने कौतुक में आगे मुलतानी के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

गमपाश्च निसौ रोहे सनिधाः पमगा मगौ।
रिसौ च मूलतानी स्यात्संपूर्णेयं प्रभासिका॥
गमपनिसां सांनिधपमगरेसा॥

इति मूलतानी धनाश्रीः।

प्र०—यहां "मूलतानी धनाश्री" ऐसा संयुक्त नाम क्यों दिया है?

उ०—यह नाम हृदय ने तरंगिणी से लिया है; परन्तु श्लोक में उसने रागनाम "मुलतानी" ही दिया है। उस समय मुलतानी को धनाश्री अङ्ग की मुलतानी कहते होंगे। संभवतः लोचन ने धनाश्री राग धनाश्री संस्थान में (अपने पूर्वी मेल में) कहा है तथा गौरी मेल में (अर्थात् भैरव थाट में) "त्रिवणः स्यान्मूलतानी धनाश्रीश्च वसंतकः॥ ऐसा कहकर धनाश्री के लक्षण पृथक नहीं कहे। यह देखकर "मुलतानी धनाश्री" ऐसा संयुक्त नाम हृदय ने पसन्द किया होगा। परन्तु "मुलतानी" तथा "मुलतानीधनाश्री"

वह एक ही मानता था, यह उसके लक्षण से स्पष्ट दिखता है। हृदयप्रकाश में वह फिर कहता है:—

पूर्णा गादिरथाऽऽरोहे मूलतानी धनासिरी।

परन्तु एक अर्थ में उसने धनाश्री नाम मुलतानी से जोड़कर एक उपयोगी उदाहरण उपस्थित किया, ऐसा भी कोई कह सकता है।

प्र०—वह कौनसा ?

उ०—इससे मुलतानी को धनाश्री के नियम लागू करने में सुविधा हुई ?

प्र०—अर्थात् आरोह में रि, ध वर्ज्य तथा अवरोह सम्पूर्ण है, इसके बारे में आप कह रहे होंगे ?

उ०—हां, मुलतानी में आज भी यह नियम दिखाई दे सकता है। लोचन ने धनाश्री, पूर्वी थाट में कही है तथा उसके लिये भी यही नियम बताया है। अच्छा, अब आगे चलें। तोडी थाट में शुद्धतोडी, गुर्जरी तथा मुलतानी राग अत्यन्त प्रसिद्ध एवं अपने-अपने नियमों से स्वतन्त्र हैं। इनमें से तोड़ी तथा गुर्जरी की ओर तो देखने की भी आवश्यकता नहीं।

प्र०—यह हम सब भली प्रकार समझ गये। पंचम के नियम से इन दोनों रागों में विशेष सुविधा हो गई है। इसी कारण "मन्द्रमध्य" तथा "तारमध्य" के प्रचार की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रही।

उ०—हां, यथार्थ है। श्लोक में मुलतानी "प्रभासिका" कही गई है, परन्तु हमारे यहां यह राग अपरान्ह काल में गाते हैं। किसी का मत है कि मुलतानी में "ग, म, नि" के स्थान तोडी के स्थानों की अपेक्षा कुछ विशेष ऊँचे हैं। परन्तु इस उलझन में तुमको पड़ने की आवश्यकता नहीं।

प्र०—आपका यह कहना भी उचित है। तोडी सम्पूर्ण है, गुजरी में पंचम वर्ज्य तथा मुलतानी के आरोह में रिध वर्ज्य हैं। अतः प्रथम तो केवल इसी से राग प्रथक होगा फिर श्रुतियों की उलझन का वहां क्या प्रश्न है ? इन वर्ज्य स्वरों के कारण स्वरसङ्गति स्वतः ही ऐसी होगी कि गला स्वयं योग्य स्वरस्थान तलाश कर लेगा।

उ०—यह तथ्य तुम बिलकुल ठीक समझे। "सा रे ग, रे ग, मं ग, ध मं ग"

सा मं प

वैसे ही "नि़ सा, मं ग, मं प" इस प्रकार में स्वर स्थानों पर विशेष प्रकाश डाला जा सकता है। इन स्वरों को मेरे साथ बार-बार कहकर बिठा लेना चाहिये। मुलतानी

मं मं मं मं

के गीत कभी "प, प ग, रे सा, नि़ सा," कभी "ग मं प, नि, सां, रें सां" तो कभी "नि़ सा, मं ग, प" इस प्रकार प्रारम्भ होते हैं। वे कैसे भी शुरू किये गये हों, परन्तु

मं मं

उनमें "प ग, रे सा, नि़, सा" यह भाग आना ही चाहिये। श्रोता भी बहुधा इसी से मुलतानी को पहचानते हैं।

प्र०—तो फिर मुलतानी में इसको जीवभूत ही समझना चाहिये क्या ?

उ०—हां; यह कहना अनुचित न होगा। योग्य शिक्षक अपने शिष्यों को मुलतानी

सा सा ग म॑ म॑
गाने से पूर्व, नि़ सा, म॑ ग, म॑ ग, म॑ प, नि ध, प, म॑ प, म॑ ग, ग म॑ प, ग, रे सा, स्वर यह
म॑ सां
भली प्रकार गाकर सिखाते हैं। उत्तरांग में ग म॑ प, नि, सां गं रें सां, ये स्वर सिखाते हैं। इन स्वरों को गाते समय मैं कहां, कैसे ठहरता हूँ, "कण" कैसे लगाता हूँ, यह ध्यान में रखो।

प्र०—जलद् तानों के आरोह में धैवत छूटने से गायकों को कुछ कठिनाई होती होगी ?

म॑ प
उ०—कोई विशेष नहीं। "ग म॑ प नि, नि़ सा, म॑ ग म॑, प, नि" यह टुकड़ा तैयार होने से अड़चन नहीं पड़ती। "ग म॑ प नि सां गं रें सां" ऐसी तान सहज ही ली जा सकती है। फिर भी कुछ गायकों को प्रमाद के कारण अथवा अज्ञानतावश "म॑ ध नि सां रें गं रें सां" ऐसी तान सपाटे से लेते हुए मैंने सुना है। यह भाग उत्तरांग में होने के कारण, किसी गायक ने जानबूझ कर ऐसा तिरोभाव किया भी तो श्रोता उसको क्षण-भर के लिये क्षमा कर सकते हैं, परन्तु पूर्वाङ्ग में "सा रे ग" अथवा "नि़ रे ग" ऐसा यदि तिरोभाव करने लगे तो श्रोता तुरन्त ही यह समझेंगे कि इसको मुलतानी नहीं आता। पहले तो उस को ऐसा प्रकार आयेगा ही नहीं।

प्र०—शास्त्रदृष्टि से "म॑ ध नि सां रें गं रें सां" ऐसा करना भूल ही होगी ?

उ०—इसमें क्या संशय है ? परन्तु ऐसे प्रकार. क्वचित ही दिखाई पड़ते हैं।
म॑
बहुधा "ग म॑ प नि सां गं रें सां" ऐसी तान ही तुम्हारे देखने में आयेगी। अव्वल तो जिसको स्वरज्ञान नहीं, उसको गाने का अधिकार ही कैसे हो सकता है ?

प्र०—हां, यह भी आपका कथन अनुचित नहीं। स्वरज्ञानविहीन गायक की स्थिति दयनीय होती है। किसका ठीक व किसका सही है, यह समझने का उन बिचारों को कोई साधन नहीं। दूसरों का भला बुरा ठहराना तो दूर रहा, स्वतः अपना ठीक है अथवा नहीं,यही वे निश्चित नहीं कर पाते। अच्छा अब हमको मुलतानी के लक्षण बतायेंगे क्या ?

उ०—हां, कहता हूँ। सुनो:—मुलतानी राग तोड़ी थाट से उत्पन्न होता है। इसकी जाति औडुव-सम्पूर्ण है। उसके आरोह में ऋषभ तथा धैवत स्वर वर्ज्य हैं। अवरोह सम्पूर्ण है। वादी स्वर पंचम तथा संवादी षड्ज है। गाने का समय दिन का तीसरा प्रहर सर्वसम्मत है। यह राग अपरान्ह योग्य होने के कारण इसमें षड्ज, पंचम व मध्यम स्वरों का बाहुल्य रहेगा ही। ऋषभ तथा धैवत प्रमाण से अधिक हुए तो वहां तोड़ी की

म॑ म॑
छाया उत्पन्न होने की सम्भावना है। इसीलिये प ग, रे सा" इस टुकड़े में ग पर रुक कर

"रे सा" जल्दी से ले लेने हैं। यह कलापूर्ण भाग तुम जैसे बुद्धिमानों की समझ में तुरन्त ही आ जायेगा तथा सध भी जायेगा! मुलतानी में मध्यम तथा गन्धार स्वरों की पुनरावृत्ति होती है।

प्र०—वह कैसे? क्या आप इसको एक बार प्रत्यक्ष करके दिखायेंगे?

उ०—देखो:—"प, (म) म ग म ग, ग म प, (म) ग, रे सा"

प्र०—जैसी आपने वसन्त राग में पुनरावृत्ति बताई थी वैसी ही इसमें है।

उ०—हां, तुम ठीक समझे। मुलतानी राग रात्रि के वसन्त का दिन गेय जवाब है, ऐसा हमारे हिन्दुस्तानी सङ्गीत विद्वानों का मत है। यहां तुमको ऐसी शंका होगी कि एक राग पूर्वी थाट का तथा दूसरा तोडी थाट का है, इनमें उक्त न्याय कैसे लग सकता है? इसका उत्तर यह है कि तानसेन के घराने के गायक जो रामपुर में हैं, वे "उतरी-वसंत" कहकर एक राग गाते हैं, उसमें गन्धार कोमल है।

प्र०—अच्छा? वह राग उस समय गाने में कठिनाई होती होगी?

उ०—हां, 'उतरी वसंत' गाना जरा कठिन अवश्य है।

प्र०—वह प्रकार यदि कहने लायक हो तो हमको बता दीजिये?

उ०—उस राग का मेरे रामपुर के गुरुबन्धु से मुझे एक धमार प्राप्त हुआ है, उसके स्वर तुमको बोलकर दिखाता हूँ उसमें गन्धार इतना सूक्ष्म रहता है कि वह कोमल है अथवा तीव्र, यह विशेषरूप से देखे बिना समझ में नहीं आता। वह बड़ी खूबी के साथ दोनों तरफ झांकता है। "वसंत" में उठाव म (ध) ध रें, सां, नि ध, नि ध, प" बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। इसमें जो ऋषभ है, उसे कुछ लम्बा रखना पड़ता है और धैवत पर एक टुकड़ा समाप्त करना पड़ता है। ये सारी बातें तुम्हारे ध्यान में होंगी ही, अब उस धमार की सरगम सुनो:—

(ध) म	ग	ऽ	(ध) मध	रें	सांनि	सां	नि	ध	प	निध	नि	ध	प
३				×					२		०		
प	ऽ	ऽ	प	(प) ध	प	मप	म	ग	ऽ	(नि) सां	सां	ऽ	ऽ
नि	ध	प	प	(प) म	मग	मग	रे	सा	नि़	ध़	(नि़) सा	रे	सा

म म ध			
प ऽ ग, म	ध सां ऽ ऽ ऽ	नि ध	प मप ध।

अन्तरा.

म म ध	ध		सां
प ग ऽ म ध	सां सां	सां सां सां	नि सां सां सां
×	२	०	३
सां	नि	सां	
नि सां सां नि ध	ध नि	सां गं रेंसां	नि सां नि ध
			सा
नि ध प प प	म ग	म ग रे	नि ऽ ध ऽ
नि सा ध नि			ध ध
सा मग म ध सां	नि ध	प मप ध	म ग, म ग।

प्र०—यह चीज बहुत कठिन रहेगी, ऐसा दीखता है। क्योंकि इसे हमने बारबार आपके साथ गाया तब जमी। हमारे मस्तिष्क में मुलतानी घूम रही थी, सम्भव है इस कारण उलझन पैदा हुई हो। खैर, आगे चलिये?

उ०—हां, रात्रि में गायक जैसे 'उतरी बसंत' गाकर संधिप्रकाश राग की ओर बढ़ते हैं, उसी प्रकार मुलतानी होने पर गायक पूर्वीथाट के रागों की ओर बढ़ते हैं।

प्र०—अर्थात् ये दोनों राग सीमावर्ती अथवा परमेलप्रवेशक राग ही हैं?

उ०—हां, मैं इसी ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करने वाला था। मुलतानी में "सा, प तथा नि" ये विश्रान्ति स्थान माने जाते हैं। अर्थात् गायक इन पर हजारों तानें लाकर छोड़ते हैं।

प्र०—अधिकांश संस्कृत ग्रन्थकारों ने मुलतानी राग का वर्णन नहीं किया, ऐसा आपने कहा था। परन्तु प्रतापसिंह, पन्नालाल तथा टागोर साहेब ने तो अपने ग्रन्थों में इसका उल्लेख किया है?

उ०—हां, इनके ग्रन्थों में यह राग अवश्य वर्णित हैं। इसलिये उन्हीं के ग्रन्थों का हम अवलोकन करते हैं। प्रथम राधागोविन्द संगीतसार में जंत्र इस प्रकार दिया गया है:—

मुलतानी–धनाश्री—संपूर्ण. (पहाड़ी संकीर्ण धनाश्री)

नि़	म॑	म	म॑	म॑
सा	ध॒	प	प	ग॒
ग॒	ग॒	ग॒	म	रे॒
म॑	म॑	म॑	ग॒	सा
प	प	प	प	

प्र०—यह क्या, इसमें दो–दो मध्यम ? यह क्यों ? यह स्वरूप कैसा लगता है, पण्डित जी ?

उ०—यह मुलतानी और धनाश्री का योग है। मुलतानी धनाश्री नाम उसको हृदय के ग्रन्थ से हाथ लगा होगा। परन्तु स्वर समझ में नहीं आये होंगे, ऐसा जान पड़ता है। तब दोनों प्रकार के मध्यम रख दिये जायं तो सारी अड़चन दूर हो जायगी, ऐसा उसे प्रतीत हुआ होगा। ये दोनों मध्यम गाये जा सकते हैं अथवा नहीं, अथवा किसी ने गाये तो अच्छे लगेंगे या नहीं, इसका विचार करने की उसे क्या आवश्यकता थी ? जिसकी "अतिरिक्त" बुद्धि होगी वही इस जंत्र को गावेगा, यह उसका निश्चित उत्तर हो सकता है। कोई विवेकहीन ग्रन्थकार यदि राग को ऐसा संयुक्त नाम देने लगे तो उसके ग्रन्थ का स्पष्टीकरण करने वालों को और दूसरा कौन सा उपाय सोचना चाहिये ?

प्र०—लोचन अथवा अहोबल ने तीव्र म अथवा कोमल ग लेने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा क्या ?

उ०—उन्होंने कहा है। परन्तु राजासाहेब के अधीनस्थ हिन्दू मुसलमान गायकों ने यह स्वर रखने का आग्रह किया होगा तब उनका भी मन रखना तो आवश्यक था।

प्र०—ठीक है, पण्डित जी ! तो अब पन्नालाल मुलतानी के बारे में क्या कहते हैं, वह कहिये ?

उ०—हां, वे मुलतानी का विस्तार इस प्रकार करते हैं:—

नि़ सा ग॒ म॑ प म॑ ध॒ प म॑ म॑ ग॒ ग॒ ग॒ ग॒ ग॒ ग॒ रे॒ सा, नि़ सा ग॒ म॑ प ध॒ प, नि़ सा ग॒, नि़ सा ग॒, म॑ प ध॒ प म॑ ग॒ म॑ ग॒, प ग॒ ग॒ रे॒ सा, नि़ ध॒ प म॑ ग॒, ग॒ म॑ प, नि ध॒ प, म॑ प, नि सां, नि ध॒ प नि ध॒ प ध॒ प म॑ ग॒ ग॒ म॑ प ग॒ ग॒ रे॒ सा, नि़ सा ग॒ म॑ प, नि ध॒ प, म॑ ग॒, म॑ प नि सां, रें॒ सां, नि ध॒ प म॑ प ग॒, म॑ प, ग॒ ग॒ रे॒ सा। अन्तरा:—

प म॑ ग॒ म॑ प, प नि सां, रें॒ सां, नि ध॒ प, म॑ प, ग॒ ग॒ रे॒ सा, नि़ ध॒ प़ म॑ प़, म॑ प़ नि़ ध॒, प़ नि़ ध॒ प़ सा, नि़, प़ सा नि़, प़ म॑ प़ ध॒ प़ ग॒, ग॒ ग॒ ग॒ ग॒ रे॒ सा, नि़ सा ग॒, नि़ सा ग॒ म॑, नि़ सा।

प्र०—इतना पर्याप्त है। ये पण्डित थाट तथा वर्ज्यावर्ज्य नियम संभालकर सितार पर स्वर बढ़ाते गये, ऐसा दीखता है। यहाँ लगातार छः गन्धार के प्रयोग से यह बात हमारे ध्यान में आई। इस विस्तार से हमको आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि राग अशुद्ध नहीं है ?

उ०—वादकों का प्रकार सरगम द्वारा इसी तरह दिखाना पड़ता है। अब राजा टागोर के ग्रन्थ में चेत्रमोहन स्वामी क्या कहते हैं, वह सुनो:—"शब्दकल्पद्रुमकार कहता है कि मुल्लानी राग भरत सम्मत है तथा वह मेघराग की रागिनी है। कोई उसमें तीव्र मध्यम के स्थान पर शुद्ध मध्यम का प्रयोग करते हैं।"

मुलतानी—संपूर्ण.

नि़ नि़ नि़ प़ रे प
सा सा सा ग रे सा, नि़ सा रे नि़ ध़ प़ मं़ ग ग मं़ प़ नि़ सा, सा नि़ सा, ग ग, मं
नि सा रे प
ध प, ध प मं ग, रे सा। अन्तरा। प मं ग मं प नि सां, सां, नि नि, सां गं रें सां नि सां,
रे नि
सां नि ध प, मं, ग ग प मं ध प ध प मं ग रे, सा ॥

आगे का विस्तार वह नहीं कहता। इस प्रकार में भी थाट तथा वर्ज्यावर्ज्य नियम ठीक दिखाई देते हैं।

प्र०—हां, यह सब हमारे ध्यान में है। यह मुलतानी राग हमको विशेष कठिन प्रतीत नहीं हुआ पण्डित जी !

उ०—इसके नियम अत्यन्त सरल हैं। इसे प्रत्यक्ष उत्तम रीति से गाते हुए योग्य स्थानों पर उचित प्रकार से स्वरोच्चारण करने में कुशलता है।

प्र०—तो फिर अब इस राग का थोड़ासा विस्तार हमको बताइये और फिर इसकी कोई सरगम भी कहिये ?

उ०—ठीक, ऐसा ही करता हूँ:—

सा सा प मं
सा, नि़ सा, मं ग, मं प, मं प, ध मं प, मं ग, मं ग, ग मं प मं ग, रे सा,
नि़ रे सा।

सा मं
सा, नि़ सा, प़ नि़ सा, मं ग, प, ध मं प, नि ध, प, ग मं प, सां, नि ध, प, मं ग,
मं मं
ग मं प ध मं प ग, प ग, रे सा, नि़ रे सा।

सा मं
सा, नि़ सा, प़ नि़, सा, मं़ प़ नि़, सा, मं ग, रे सा, नि़ सा ग मं प, मं प, ध मं प,
मं
मं ग, मं ग, ग मं प मं ग, रे सा, नि़ रे सा।

सा
निं सा, पं निं सा, निं सा, मं ग, रे सा, प, मं प, नि ध, प, सां, नि ध, प, रें सां,
मं
नि ध, प, मं प, ध मं प मं ग, ग म प नि ध प, मं ग, प मं ग, मं ग, रे सा।

मं मं मं
निं सा ग मं प, ग मं प, मं प, ध प, नि ध, प, सां नि ध, प, निं सा ग मं प नि
मं
सां रें सां नि ध प, नि ध, प मं प ध मं प, मं ग मं ग, नि ध, प, मं प, मं ग, ग मं प
मं ग, रे सा।

मं
निं सा रे सा, निं सा मं मं ग ग रे सा, निं सा प मं ग ग रे सा, निं सा ग मं प ध
मं मं
मं प मं ग ग रे सा, निं सा ग मं प नि ध प मं प मं ग ग रे सा, निं सा ग मं प नि सां रें
सां नि ध प मं प मं ग ग रे सा, निं सा ग मं प नि सां गं रें सां नि ध प मं प मं
ग ग रे सा।

मं
सां, नि सां, प नि सां, मं प नि सां, ग मं प नि, सां, रें सां, गं रें सां, मं मं गं गं
मं
रें रें सां, नि नि सां रें नि सां नि ध, प, मं प, नि ध, प, मं ग मं ग, निं सा ग, मं ग, प मं
ग, नि ध, प, मं ग, प ग, रे, सा।

सां मं मं
प प ग, मं प, नि, सां, रें सां, गं रें सां, नि, सां, गं मं पं, गं, रें सां, नि, सां, रें
मं मं
सां, नि ध, प, ग मं प, नि सां, गं रें सां, नि ध, प, मं प, ग, मं ग, ग मं प मं ग, रे सा॥

मेरी समझ से इतना विस्तार तुम्हारे जैसे चतुर विद्यार्थी के लिये पर्याप्त होगा। अब मुलतानी को ध्यान में रखने के लिये कुछ श्लोक कहता हूँः—

तोडीमेलसमुत्पन्ना मूलतानी निरूपिता।
आरोहे रिधहीनासौ पंचमांशा जनप्रिया॥
मगयोः संगतिश्चित्रा तयोरेव सुदोलनम्।
भवेद्रक्तिप्रदं नित्यं तृतीयप्रहरोत्तरम्॥
आरोहे रिधहीनत्वमपराह्णत्वसूचकम्।
प्रसिद्धो नियमोऽह्येष सूरीणां पूर्ववर्तिनाम्॥
मध्याह्नार्हान् धगाल्पांस्तान् रागान् गीत्वा यथोचितम्।
प्रवर्तते रिधत्यक्तान् गातुं गातुर्मनः स्वयम्॥
मूलतानीगते गे तु तीव्रत्वारोपणे पुनः।
झटित्युत्पत्स्यते तत्र पूर्वीरागस्य मेलनम्॥

शेषयामे दिने प्रायः समपाः प्रबलाः स्मृताः ।
निरवद्यं रहस्यं तत्को न वेत्तीह मर्मवित् ॥
धन्याः खलु पंडितास्ते यैरिदं कौतुकं महत् ।
निर्मितं बुद्धिसामर्थ्यात् संततं विश्वमोहनम् ॥
निसमगपमधपमगपमगरिससाः ।
स्वरैरेतैः स्वरूपं स्यान्मूलतान्याः परिस्फुटम् ॥

लक्ष्यसंगीते ।

यस्यां तीव्रौ मनीस्तः खलु ऋषभधगाः कोमला भांति यत्र ।
प्रख्यातः पंचमोंऽशः स्फुरति सहचरोऽप्यत्र षड्जोऽभिगीतः ।
आरोहे वर्जितौ तौ भवत इह रिधौ स्युश्चसर्वेऽवरोहे ।
प्रायः कालेऽपराह्णे सुचतुरमतिभिर्गीयते मूलतानी ॥

कल्पद्रुमांकुरे ।

कोमला रिधगा यत्र वादिसंवादिनौ पसौ ।
आरोहे रिधहीना सा मूलतान्यपराह्णगा ॥

चन्द्रिकायाम् ।

तीवर मनि कोमल रिगध आरोहत रिधहानि ।
पसवादीसंवादितें गुनि गावत मुलतानि ॥

चन्द्रिकासार ।

निसौ मगौ पमधपा निधौ पगौ पगौ रिसौ ।
मूलतानी भवेत् पांशाऽऽरोहेऽरिधाऽपराह्णगा ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ॥

मुलतानी का चलन तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आजाये, इस अभिप्राय से एक छोटी सी सरगम भी कहता हूं:—

मुलतानी—सरगम—त्रिताल.

(सा) नि़	सा	म	ग	प	म	ध	प	म	प	नि	ध	प	म	(म) ग	ग
(म) ग	म	प	नि	सां	रें	नि	सां	नि	ध	प	(म) ग	प	(म) ग	रे	सा।

अन्तरा.

(म)प	म	ग	म	प	नि	ऽ	सां	नि	सां	गं	रें	नि	सां	नि	ध
प	नि	सां	रें	नि	सां	नि	ध	नि	ध	प	ग	प	(म)ग	रे	सा।

सरगम—मुलतानी—एकताल. (मध्यलय).

(म)प	प	ग	ग	रे	सा	नि़	सा	म	ग	प	ऽ
(म)ग	म	प	ध	म	प	म	ग	ऽ	म	ग	ऽ
(म)ग	म	प	नि	सां	गं	रें	सां	नि	ध	प	ग।

अन्तरा.

प	प	(म)ग	म	प	नि	सां	ऽ	रें	रें	सां	ऽ
नि	नि	सां	(सां)गं	रें	सां	नि	नि	सां	नि	ध	प
(म)ग	म	प	नि	ऽ	सां	(सां)गं	रें	सां	नि	ध	प
(म)प	सां	नि	ध	प	ग	प	प	ग	रे	सा	ऽ।

उपसंहार



प्रिय मित्र ! मेरा पहले से ऐसा निश्चय था कि प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रन्थों का मनन करके उत्तरी संगीत का इतिहास तुम्हारे समक्ष यथा सम्भव स्पष्ट करने तथा उसी प्रकार यथाशक्ति व यथामति तुम्हें जानकारी करादूं कि आज उत्तर में तथा महाराष्ट्र में प्रसिद्ध घरानेदार कलावन्त कौन से राग गाते हैं तथा कैसे गाते हैं। मेरे इस संकल्प से तुम परिचित ही हो। मैं समझता हूं, ईश्वर की कृपा से मेरा संकल्प पर्याप्त मात्रा में सिद्ध हुआ है। तुमने प्राचीन ग्रन्थ सब समझ ही लिये हैं, संभवतः अब ऐसा शायद ही कोई राग हो, जिसे तुम न समझ सको। अपने यहां भरत तथा शार्ङ्गदेव के ग्रन्थों को संगीत का विपुल भण्डार माना जाता है। प्रत्येक नवीन लेखक इन ग्रन्थों के सामने नतमस्तक होकर जो लिखना होता है वह लिखता है। ऐसी प्रवृत्ति आज सर्वत्र देखने में आती है। यद्यपि मैं इन ग्रन्थों के संगीत पर विशेष प्रकाश नहीं डाल सका हूँ तथापि मेरे कहने का भावार्थ केवल इतना ही है कि उपलब्ध ग्रन्थों में से अनेक ग्रन्थों में क्या कहा गया है, यह तथ्य तुम्हारी समझ में आजाय। उसी प्रकार प्रचलित संगीत में आज जो अनेक राग हैं, उनको गायक कैसे गाते हैं तथा उन रागों के सम्बन्ध में उपलब्ध ग्रन्थों में क्या कहा गया है, इसकी भी जानकारी तुम्हें हो चुकी है। भरत-शार्ङ्गदेव के ग्रन्थों में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना, जाति तथा राग योजना रागरूप देकर बताई गई है। आगे के ग्रन्थकारों को इस योजना का रहस्य बताना चाहिये। कुछ ग्रन्थकारों ने समझ में न आने के कारण अथवा उक्त ग्रन्थों को निरर्थक समझकर उनकी उपेक्षा करते हुए अपने-अपने ग्रन्थ लिखे हैं, ऐसा स्पष्ट दीखता है। प्रथम बाईस श्रुति परिश्रम से सिद्ध करके, उन पर नियम स्वरान्तरों से ग्राम की शृङ्खला तैयार करना, बाद में उस शृङ्खला से विभिन्न मूर्छना, विभिन्न स्वरों से उत्पन्न करना, उन मूर्छनाओं के स्वरान्तरों से भिन्न-भिन्न ग्रहांश के द्वारा जाति पैदा करना तथा जाति से फिर राग उत्पन्न करना। यह सब कृत्य उन ग्रन्थकारों को द्राविड़ी प्राणायाम जान पड़ा हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। इसकी अपेक्षा षड्जग्राम नामक शुद्ध स्वर सप्तक लेकर उसमें आवश्यकतानुसार विकृत स्वर सम्मिलित करके, उन स्वरों की सहायता से प्रथम मेल तथा उससे राग उत्पन्न करने का जो उपक्रम उन्होंने किया वह अधिक सुविधाजनक तथा तुरन्त समझ में आने योग्य था, ऐसा भी कोई कह सकता है।

भरत-शार्ङ्गदेव के ग्रन्थ हमारी समझ में आगये, ऐसा प्रकट करके कुछ आधुनिक पंडितों ने उन ग्रन्थों का स्पष्टीकरण देकर कुछ छोटे-मोटे लेख भी प्रकाशित किये अवश्य हैं, परन्तु उन लेखों से अभी तक किसी पाठक का समाधान नहीं हुआ। समाधान न होने का एक कारण यह कहा जा सकता है कि उन प्राचीन ग्रन्थकारों की श्रुति एक नियत प्रमाण की थी, दूसरे शब्दों में यह कहें कि उन ग्रन्थकारों की बाईस श्रुतियां एक नियत प्रमाण में एक दूसरे से ऊंची चढ़ती जाती थीं। हमारे आधुनिक विद्वान यह मानकर चलते हैं कि भरत शार्ङ्गदेव के चतुःश्रुतिक, त्रिश्रुतिक तथा द्विश्रुतिक स्वर पाश्चात्य विद्वानों के Major Minor तथा Semitone समझने चाहिये। भरत-शार्ङ्गदेव की विचारधारा

मैंने तुम्हें समझा ही दी है। तब हमारे विद्वानों के सिद्धान्त पाश्चात्य पाठकों को नहीं जंचे तो कौनसी आश्चर्य की बात है ? अच्छा, इन पाश्चात्यों के स्वरान्तरों से रत्नाकर में वर्णित राग भली प्रकार अलग हो ही जाते हैं, ऐसा कहें तो यह भी नहीं हो सकता। फिर इन विद्वानों की गणित सिद्ध श्रुतिमालिका लेकर हम क्या करें, यह सहज ही कहने में आता है। मेरी तो उनसे यही विनती है कि उनको भिन्न-भिन्न स्थानों में अपने आधुनिक वाद्य लेजाकर भरत-शार्ङ्गदेव के श्रुतिस्वर, ग्राममूर्छना का प्रदर्शन करके अज्ञ समाज को समझाने की व्यर्थ चेष्टा नहीं करनी चाहिये, बल्कि सीधे रत्नाकर के रागाध्याय की ओर बढ़ना चाहिये तथा उन रागों को उन्हीं ग्रन्थों के वर्णन से व स्वतः शोध किये हुए श्रुति स्वरों से गाया जा सकता है, यह सिद्ध करके दिखाना चाहिये। यह कार्य कैसे करना चाहिये, इसका मैं यहां संक्षेप में वर्णन करता हूं। सुनोः—

रत्नाकर का पहिला "शुद्धसाधारित" नामक राग लें। उसकी व्याख्या शार्ङ्गदेव इस प्रकार करता हैः—

षड्जमध्यमया सृष्टस्तारषड्जग्रहांशकः।
निगाल्पो मध्यमन्यासः पूर्णः षड्जादिमूर्छनः।
अवरोहिप्रसन्नान्तालंकृतो रविदैवतः।
वीररौद्ररसे गेयः प्रहरे वासरादिमे॥
विनियुक्तो गर्भसंधौ शुद्धसाधारितो बुधैः॥

यह राग "षड्जमध्यमा" जाति से उत्पन्न होता है। इस जाति का वर्णन ग्रन्थ में ऐसा हैः—

अंशाः सप्त स्वराः षड्जमध्यमायां मिथश्च ते।
संगच्छन्ते निरल्पोऽशांगाद्दते वादितां विना॥
निलोपे निगलोपेच षाडवौडुविते मते।
षाडवौडुवयोः स्यातां द्विश्रुती तु विरोधिनौ॥
इ. इ. इ.

इस जाति से यह राग अमुक ग्राम का निश्चित होता है। अब हाथ में वीणा लो और तीव्र "रे, ध, ग" स्वरों में तार मिलाओ। अमुक मूर्छना बताई है, अतः चिकारी पर अमुक स्वर मिलाओ। आगे (आवश्यक होने से) अमुक "तानक्रिया" करो। ऐसा करने से जो स्वरपंक्ति उत्पन्न होगी, उसमें अमुक स्वर को ग्रह मानकर जाति उत्पन्न करने से इस राग का स्वरूप ऐसा होगा। आगे स्वरकरण ग्रन्थकार ने दिया ही है; वह इस प्रकार पढ़ना चाहिये। उसमें अवरोही "प्रसन्नान्त" अलंकार अमुक है तथा अमुक तरह से गाया जाना चाहिये। सारांश यह कि ग्रन्थकार का "शुद्धसाधारित" राग का अमुकमेल उनका अमुक स्वरूप ऐसा स्पष्ट करके समझाया जाय तथा उनमें अन्श स्वर कौनसे तथा क्यों हैं, यह भी समझा दिया जाय तो बस पर्याप्त होगा। इस प्रकार से रत्नाकर के रागों का स्पष्टीकरण हो तो पाठकों को उस पर मनन करने में सुभीता होगा तथा टीकाकारों के

मुंह स्वतः बन्द होजायेंगे। रागों का स्पष्टीकरण करने से पूर्व रत्नाकर में वर्णित श्रुतिवीणा का भी स्पष्टीकरण किया जाना वांछनीय है। हमारे आधुनिक विद्वानों को दोषी ठहराने का हमें भी अधिकार नहीं। उन्होंने कुछ मनोरञ्जक तर्क भी किये हैं, यह हम स्वीकार करते हैं; परन्तु अब केवल तर्कों पर ही सन्तुष्ट न रहकर रत्नाकर के राग उन्हें हाथ में लेने चाहिये, ऐसी हमारी उनसे विनती है।

मैं अपने संभाषण में सोलह-सत्रह मध्यकालीन ग्रन्थों की विशेष चर्चा कर चुका हूँ, यह तुम्हारे ध्यान में होगा ही। वे ग्रन्थ ये हैं:—

१—राग तरंगिणी	९—अनूपसंगीतविलास
२—हृदय कौतुक	१०—अनूपसङ्गीत रत्नाकर
३—हृदयप्रकाश	१०—अनूपांकुश
४—संगीत पारिजात	१२—रसकौमुदी
५—संगीत राग तत्वविबोध	१३—स्वरमेलकलानिधि
६—सद्रागचंद्रोदय	१४—रागविबोध
७—राग मंजरी	१५—चतुर्दण्डिप्रकाशिका
८—रागमाला	१६—सङ्गीतसारामृत
	१७—रागलक्षण

प्रचलित सङ्गीत का वर्णन करते समय मैंने लक्ष्यसंगीत, अभिनव-राग मंजरी, संगीतसुधाकर, कल्पद्रुमांकुर, संगीतचन्द्रिका ग्रन्थों में जो कहा गया है, उसका भी उल्लेख किया है। देशी भाषा के ग्रन्थ संगीत कल्पद्रुम, संगीतसार, गीतसूत्रसार, राधागोविन्द संगीतसार, नग़माते आसफी आदि का भी मैंने अवलोकन किया था। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त संगीतनारायण, संगीतशिरोमणि, सङ्गीतचूड़ामणि,सङ्गीतसमयसार, नारदसंहिता, सङ्गीतविनोद, सङ्गीतचन्द्रिका, सङ्गीतलक्षणदीपिका आदि ग्रन्थ भी मैंने देखे हैं, परन्तु इन ग्रन्थों में रागरूपों का स्पष्टीकरण न होने से उनकी मैंने विशेष चर्चा नहीं की। मेरी समझ से हिन्दुस्तानी सङ्गीत के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह मेरे द्वारा बताये गये इन सत्रह ग्रन्थों का भली प्रकार अध्ययन करें और उसके पश्चात् भरत-शाङ्गदेव के ग्रन्थों की ओर बढ़ें। उन १७ ग्रन्थों में वर्णित को आज हम गा रहे हैं, यह बात तो नहीं, किन्तु उनकी सहायता से हमारे आज के सङ्गीत पर, उसके इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। इन ग्रन्थों में से प्रथम बारह ग्रन्थ उत्तर के सङ्गीत के लिये तथा शेष दक्षिणी के लिये उपयोगी हैं, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। प्रथम पांच का शुद्ध मेल "काफी" है तथा शेष सबका शुद्धमेल "कनकांगी" जैसा है।

एक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सभी ग्रन्थकार "मेल व तज्जन्य राग" पद्धति से हमारे रागों का वर्णन करते हैं। एवं वे अपनी-अपनी पद्धति प्रायः बारह स्वरों की सहायता से ही वर्णित करते हैं। उत्तर के ग्रन्थों में से प्रथम पांच ग्रन्थकारों ने हमारे राग "काफी" सदृश्य शुद्धमेल के आधार पर दिये हैं, यह मैंने कहा ही है। इनमें से अहोबल हृदय तथा श्रीनिवास इन तीनों ने तो अपने शुद्धमेल के स्वर तार की लम्बाई द्वारा स्पष्टरूप

से बतलाए हैं, यह तुम जानते ही हो। उनके शुद्ध स्वरों के तुलनात्मक आन्दोलन यदि हम रखें तो वे इस प्रकार होंगे। सा=२४०, (ग्रहीत) री=२७०, ग=२८८, म=३२०, प=३६०, ध=४०५, नि=४३२, सां=४८०। इनमें से धैवत के अतिरिक्त शेष सभी स्वर हर जगह मान्य होने योग्य हैं। शेष पांच स्वरों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। पाश्चात्य पंडित धैवत के आन्दोलन ४०० मानते हैं। कई बार मुझसे यह प्रश्न पूछा जाता है कि तुम अपनी सङ्गीत पद्धति का बारह स्वरों के आधार पर वर्णन करते हो तो अपने उन बारह स्वरों के आन्दोलन के आधार क्यों नहीं बताते? इस पर एक उत्तर मैं यह देता हूं कि हमारे गायक आन्दोलनों को लक्ष्य करके राग नहीं गाते। गाते समय एक ही राग में विभिन्न स्वरों की संगति होने से स्वरस्थान स्वतः कुछ आगे-पीछे हो जाते हैं जो मार्मिक व्यक्तियों को दिखाई देते हैं। इसका एक प्रमाण यह है कि उत्तम प्रकार से गाते समय गायक का साथ सच्चे शास्त्रसिद्ध स्वरों में तैयार की हुई हारमोनियम पेटी से नहीं हो सकता। गायक जो स्वर आरोह में लेता है, अवरोह में लेते समय उन्हीं के स्वरस्थान कहीं-कहीं आगे पीछे हो जाते हैं, जो मार्मिक श्रोताओं को ही दिखाई देते हैं। यही क्यों? किसी भी थाट के स्वर पहले एक गायक से गाने को कहो और वे ही गाने के लिये दूसरे से कहो तो उन दोनों के स्वरस्थानों में कहीं-कहीं किंचित् अन्तर दिखाई देगा। गायक जब गाने लगता है, तब उसके मन में इष्ट राग का चित्र अथवा स्वरूप स्वतः अंकित हो जाता है तथा उस चित्र के विभिन्न भाग अथवा रागवाचक स्वरसमुदाय उसके मन में नियमित रूप से आते रहते हैं। उनकी सहायता से वह अपना राग कुशलता पूर्वक श्रोताओं के सन्मुख प्रस्तुत करता है। प्रत्येक गायक अपनी पसन्द के अच्छे नामी कलावन्तों के गायन संग्रह कर लेता है तथा उसके आधार से कुछ स्वरसङ्गति वह अपने मन से भी तैयार कर लेते हैं। प्रत्येक राग सिखाते समय सुयोग्य गुरू उस राग का खास अङ्गभूत भाग अपने शिष्यों को सबसे पहले बताते हैं, उसमें भी तो यही मर्म है। फिर भी जब कि हम अपनी पद्धति बारह स्वरों पर कायम करते हैं तो वे बारह स्वर कौनसे हैं? ऐसा यदि किसी ने प्रश्न किया तो हमें उसको कुछ तो उत्तर देना ही चाहिये। बारह स्वरों में से काफी थाट के सात स्वर तो अहोबल के ग्रन्थ की सहायता से सबने स्वीकार कर ही लिये हैं। अब बात केवल पांच स्वरों की ही रही, वे हैं:—रे कोमल, ध कोमल, ग तीव्र, म तीव्र और नि तीव्र। तीव्र गन्धार स्थान के सम्बन्ध में अहोबल कहता है:- मेरूधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत्'' ४०५ आन्दोलनों का धैवत स्वीकार करके तीव्र गन्धार के आन्दोलन हम निकालें तो वे ३०१$\frac{१}{४}$ आते हैं। पाश्चात्यों की शोध के अनुसार वे ३०० हैं। ये सब आन्दोलन एक सैकन्ड में होने के कारण १$\frac{१}{४}$ भाग छोड़ देने में हम आपत्ति नहीं समझते और वह हमने छोड़ दिया तो तीव्र ग तथा तीव्र नि के आन्दोलन क्रमशः ३०० व ४५० होंगे। अब प्रश्न केवल कोमल रे, कोमल ध तथा तीव्र म का ही रहा। इनके लिये किसी भी संस्कृत ग्रन्थ की सहायता हमको नहीं मिल सकती। कोमल ऋषभ के सम्बन्ध में अहोबल स्पष्ट रूप से कहता है:—भागत्रयान्विते मध्ये मेरोः ऋषभसंज्ञितात्। भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमलरिस्वरम्।' उसकी इस युक्ति के अनुसार यदि हम देखें तो कोमल ऋषभ के आन्दोलन २५६$\frac{३}{५}$ होंगे। पश्चात्य पण्डित इस स्वर के आन्दोलन २५६ मानते हैं। मेरी समझ से गंधार के आन्दोलन ३०० स्वीकार कर लेने पर, $\frac{१६}{१५}$ प्रमाण अर्धान्तर का अर्थात् Semitone स्वीकार करने में कोई हानि नहीं

दिखती। कोमल धैवत उस कोमल रिषभ का संवादी है अर्थात् उस स्वर के आंदोलन ३८४ होंगे अथवा पंचम की आंदोलन संख्या में $\frac{16}{15}$ से गुणा करने पर भी कोमल धैवत नहीं निकलेगा। तीव्र मध्यम स्वर शुद्ध मध्यम के आगे दो श्रुति पर होने के कारण उसके आन्दोलन $३२० \times \frac{16}{15} = ३४१\frac{1}{3}$ होंगे। गायक गाते समय आन्दोलनों का विचार करके कभी नहीं गाते, बल्कि राग के कुछ नियमित भाग मन में सोचकर उनमें नियमित स्वरसङ्गति लेकर अपना राग चित्रित करते हैं।

उत्तम गायक का विभिन्न प्रकार के अलंकारों से अपने राग को सजाकर गाते समय, कभी श्रुतिपेटी वादक साथ करने लगे तो उस गायक को अनेक चमत्कार दिखाई देंगे। एक ही राग के आरोह में तथा अवरोह में विभिन्न प्रकार की स्वरसंगतियों के कारण स्वरस्थान स्वतः आगे-पीछे होते हुए दिखाई देंगे। अर्थात् अमुक राग में अमुक स्वर अमुक श्रुति पर होना चाहिये, ऐसा निश्चित करना कठिन है, यह तथ्य उसको दिखाई देगा। शास्त्रीय प्रयोग करके देखने के लिये श्रुति पेटी वाद्य का हम कभी विरोध नहीं करेंगे। परन्तु उस विषय में जाने की हमें अब आवश्यकता नहीं है। दक्षिण में भी अभी २२ श्रुतियां कायम करने का प्रयत्न जारी है तथा बीच-बीच में उन श्रुतियों को राग में विभाजित करने का प्रयोग भी होता आ रहा है। यह सारा परिश्रम प्राचीन ग्रन्थकारों द्वारा कहे गये "वादी तथा सम्वादी" इन दो शब्दों पर अवलम्बित है। इन पुराने शब्दों को लेकर हमारे आधुनिक विद्वान क्या-क्या नये सिद्धान्त उन प्राचीन ग्रन्थकारों के पल्ले बांध रहे हैं, यह देखें तो उन ग्रन्थकारों पर आश्चर्य करने का प्रश्न सामने आता है।

उसी प्रकार प्राचीन ग्रन्थकारों के एक और शब्द के सम्बन्ध में कहना पड़ता है, वह शब्द है "मूर्छना"। भरत-शार्ङ्गदेव अपने ग्रन्थों में "मूर्छना" शब्द का प्रयोग करते हैं, यह बात सही है। फिर भी यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि उनके रागों में मूर्छना कैसी थी, अर्थात् उनके योग से राग के स्पष्टीकरण में कैसी सहायता मिलती थी, यह आज-तक हमारे किसी विद्वान ने सिद्ध करके नहीं दिखाया। भरत-शार्ङ्गदेव अपनी वीणा पर पहले तार कैसे मिलाते थे, विवाद तो यहीं से है! उसके सम्बन्ध में हमारे विद्वान उन ग्रन्थकारों के श्लोक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करके, वे तार कैसे मिलाते थे, यह बताना पसन्द नहीं करते। और पाठकों को अपने विद्वानों के सिद्धान्तों के समर्थन में कोई प्रमाण वाद्याध्याय में नहीं मिलता, यह भी एक बड़ी कठिनाई है।

मध्यकालीन ग्रन्थकार लोचन हृदय, श्रीनिवास, अहोबल अपने ग्रन्थों में मूर्छना का उपयोग किस प्रकार करते हैं, यह मैं तुमको बता ही चुका हूं। राग-व्याख्या में जो मूर्छना उन्होंने कही होगी उसके आधार पर उनकी पहिली "उद्ग्राहतान" स्पष्ट दीखती है। एक ही मेल में विभिन्न मूर्छनाओं से, मेल में के वर्ज्यावर्ज्य स्वरों को सम्भालकर वे भिन्न-भिन्न प्रकार के राग मानते थे, ऐसा मानने के लिये अच्छा आधार भी है। उन्होंने प्रत्येक राग का स्वरकरण दिया है, अतः उस स्वरकरण में उन्होंने कैसी मूर्छना का प्रयोग किया, यह जाना जा सकता है। इन ग्रन्थकारों के बाद के लेखकों ने मूर्छना शब्द का प्रयोग न करके "ग्रहांशन्यास" शब्द का प्रयोग करके शुरूआत की तथा स्वरकरण देना उचित नहीं समझा। आगे तो "ग्रहांशन्यास" नियम भी परिवर्तित होता गया, आजकल वादी तथा संवादी स्वर प्रत्येक राग के सम्बन्ध में कहे जाते हैं, और वे भी अपनी अपनी गुरु परम्परानुसार कायम करने में आते हैं। इससे हम कितने आगे बढ़ गये हैं, यह दिखाई देगा।

हम किसी की विचारधारा का उपहास नहीं करना चाहते, हम तो हमेशा स्पष्ट व निर्विवाद लेखों का आदर करेंगे। दक्षिण में आज "मूर्छना" को राग का आरोह तथा अवरोह मानने वाले अनेक पण्डित मिलेंगे।

संगीत विद्या में, प्रगति के विरुद्ध जाने पर किसी की चल नहीं सकती। पाश्चात्य सुधार का प्रभाव हमारे सुधार पर कितने ही प्रकार से हो रहा है, यह हम प्रायः देखते ही हैं। वाद्य कला में पाश्चात्यों ने अनेक नये नये शोध व आविष्कार किये हैं; वृन्दवादन के सम्बन्ध में उनकी कल्पना हमारी कल्पना की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गई है। नृत्य कला के हेतु वहां की महिलाऐं हमारे देश में आती हैं तथा हमारी कला के मर्म का अध्ययन करके लौट जाती हैं। वहां जाकर वे इसका उपयोग नये ढंग से वहां के श्रोताओं को करके दिखाती हैं, यह सब कैसे भुलाया जा सकता है? इतना ही नहीं, वरन् हमारी आजकल की सङ्गीत कला को अब एक जंगली प्रकार न समझ कर एक विचारणीय कला के रूप में पाश्चात्य मर्मज्ञ पंडित मानने लगे हैं। सारांश यह कि ऐसे समय में हमारे सङ्गीत की राष्ट्रीयता पर उस पाश्चात्य सुधार का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता; परन्तु उस भावी स्थिति पर आज ही विचार करने की आवश्यकता हो, ऐसी भी बात नहीं। सङ्गीत में हमारा लक्ष कैसा था, तथा आज कैसा है, केवल इतना ही बताने का मेरा उद्देश्य था।

प्रचलित सङ्गीत पर संभाषण करने का यह हमारा चौथा प्रसङ्ग है। अपने संभाषण में हमने एक नियत क्रम निश्चित कर लिया था कि हमारे आज के प्रचार में जो लगभग सवासौ-डेढ़ सौ राग गाये जाते हैं, वे सब उनके स्वरूप के अनुसार मुख्य दस थाटों में पहले बांट दें और फिर एक-एक थाट को लेकर उस मेल के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक राग के स्वतन्त्र नियम देख लिये जायं। मेल थाट संख्या दस ही क्यों? ऐसा यदि किसी ने प्रश्न किया तो उसको हम यह विनम्र उत्तर देंगे कि हम प्रस्तुत विवेचन के लिये अपनी दृष्टि से दस मेल ही पर्याप्त समझते हैं। किसी ने मेल अधिक और किसी ने कम माने तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं। मेल कितने व क्यों लिये जायें यह प्रत्येक ग्रन्थकार अपनी सुविधानुसार निश्चित करता आया है। प्रचलित रागस्वरूप सामंजस्यरूप से वर्णित किये जायं तो बहुत उत्तम है। देश में अनेक स्थानों पर स्वीकृत दस मेल की पद्धति पसन्द की हुई दिखाई देती है। इसलिये वह हमने स्वीकार की, यह अच्छा ही हुआ।

दस मेल के, उनके स्वरों पर से, हमने प्रथम तीन समुदाय किये थे, वह तुमको याद ही होंगे। पहले समुदाय में "रे, ध तथा ग" इन तीन शुद्ध स्वरों को लिये जाने वाले मेल का समावेश किया था। वे मेल हैं कल्याण, बिलावल तथा खमाज। दूसरे समुदाय में रे कोमल तथा ग नि शुद्ध लिये जाने वाले मेल लिये और तीसरे समुदाय में ग तथा नि कोमल लिये जाने वाले मेल हमने माने। अर्थात् दूसरे समुदाय में भैरव, पूर्वी तथा मारवा और तीसरे समुदाय में काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोडी मेल हमने माने। ऐसी रचना करते समय हमने एक यह तथ्य भी अपने ध्यान में रखा था कि इस वर्गीकरण से राग का समय भी स्थूलदृष्टि से एकदम ध्यान में आजाता है। आशा है यह सब बातें तुम्हारे ध्यान में होंगी ही।

पिछले तीन संभाषणों में जिन-जिन रागों का हम वर्णन कर चुके हैं तथा उनके सम्बन्ध में जो स्थूल नियम बता चुके हैं, उनका पुनः संक्षिप्त रूप में उल्लेख करदें तो हितकारी

होगा। हमारा संभाषण विशेष लम्बा हो गया है अतः अब अधिक विस्तृत चर्चा करते रहना अनुचित होगा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। फिर भी पिछले संभाषणों में तथा इस चर्चा में बहुत ही समय लग गया। अतः पिछली बातों का सिंहावलोकन यदि मैं करूं तो अप्रासंगिक नहीं होगा।

पहिले प्रसङ्ग में कल्याण, बिलावल तथा खमाज इन तीन थाटों में आने वाले रागों पर हमने विचार किया था। कल्याण मेल में जो राग हमने लिये थे, वे इस प्रकार थेः—

१–इमन, २–भूपाली, ३–शुद्धकल्याण, ४–जेतकल्याण, ५–चन्द्रकान्त, ६–मालश्री, ७–हिंदोल, ८–हमीर, ९–केदार, १०–छायानट, ११–कामोद, १२–श्यामकल्याण, १३–गौडसारंग।

यमनीबिलावल राग में दोनों मध्यम होने से हमने उसे कल्याण मेल में लिया था, परन्तु वह बिलावल प्रकार होने के कारण तथा उसका सारा चलन बिलावल जैसा होने से वह बिलावल थाट में ही रखना उचित था। अस्तु, इन १३ रागों का हमने पुनः वर्गीकरण मध्यम होने व न होने के आधार पर इस प्रकार किया हैः—

वर्ग १ ला.	वर्ग २ रा.	वर्ग ३ रा.
(१) भूपाली.	(५) इमन	(८) हमीर
(२) शुद्धकल्याण	(६) मालश्री	(९) केदार
(३) चंद्रकान्त	(७) हिंदोल	(१०) छायानट
(४) जयत्कल्याण		(११) कामोद
		(१२) श्यामकल्याण
		(१३) गौड सारंग

प्रथम वर्ग के रागों में मध्यम स्वर सर्वथा वर्ज्य होता है और यदि वह लिया भी जायगा तो केवल अवरोह में। दूसरे वर्ग में केवल एक तीव्र मध्यम आता है। तथा तीसरे वर्ग के रागों में दोनों मध्यम आते हैं। इन दो मध्यम के रागों में तीव्र मध्यम अल्प रहता है तथा वह भी बहुधा आरोह में ही रहता है। केवल शुद्ध मध्यम आरोहावरोह में रहता है और वह विशेष प्रमाण में रहता है। इस अन्तिम विधान से तुम्हारे मन में क्षणभर यह विचार आयेगा कि ये दोनों मध्यम के राग बिलावल थाट में गये होते तो अधिक शोभित होते। इतना ही नहीं, बल्कि मैं तुम्हें याद दिलाता हूं कि संकृत ग्रन्थकारों ने ये राग बिलावल थाट में ही कहे हैं। तो फिर हम उसे कल्याण थाट में क्यों लेते हैं? यह एक प्रश्न सामने आता है। इस प्रश्न का उत्तर मैंने पीछे दिया ही था, परन्तु उसे यहां दो शब्दों में पुनः कहता हूँ। प्रथम कारण तो यह है कि इन तमाम रागों में तीव्र मध्यम आता है तथा उन तमाम रागों का चलन अथवा स्वरूप बिलावल जैसा न होकर कल्याण जैसा है, यह दूसरा कारण हुआ। कुछ संकृत ग्रन्थकार तो इनमें से अनेक रागों को कल्याण प्रकार ही मानते हैं, जैसेः—

शुद्धकल्याणरागश्च ततः कल्याणनाटकः।
हंमीरपूर्वकः पूर्या भूपालीपूर्वकस्ततः ॥

जयश्रीपूर्वकल्याणः क्षेमकल्याणनामकः ।
ततः कामोदकल्याणः श्यामकल्याणकस्तथा ।
ऐमनादिककल्याणश्चाहीर्यादिस्ततः परम् ।
ततस्तिलककामोदः कल्याणास्ते त्रयोदश ।।

अनूपांकुशे ।।

इतना ही क्यों ? अपने सभी गायक-वादक भी इन रागों को कल्याण प्रकार ही मानते हैं। ऐसी दशा में इन समस्त रागों में तीव्र मध्यम आज सर्वत्र क्षम्य माना जाता है। इतने पर भी जो कोई इनको बिलावल मेल में लेने को तैयार होंगे, उनको भी इन रागों का वर्णन सायंगेय कल्याण अङ्ग के राग कहकर करना पड़ेगा। मेरी समझ से हमने उनको कल्याण थाट में मानकर अच्छा ही किया। अस्तु, इस प्रकार से यह वर्गीकरण करके फिर प्रत्येक राग के सम्बन्ध में प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थों में क्या कहा है, यह मैंने तुमको बताया था। इसके पश्चात प्रत्येक राग का प्रचलित ग्रन्थाधार तथा स्वरूप का उल्लेख किया। यह सब भाग अभिनवराग मंजरी में संक्षेप में किस प्रकार कहा है, देखो:—

कल्याणीमेलसंजाता रागाः प्रोक्तास्त्रयोदश ।
विभक्तास्ते त्रिधा लक्ष्ये ह्यमैकमद्विमा इति ।।
भूपाली शुद्धकल्याणश्चंद्रकान्तो जयंतकः ।
अमे वर्गे निधीयन्ते लक्ष्यलक्षणकोविदैः ।।
मालश्रीरिमनाख्यातो हिंदोलो लक्ष्यविश्रुतः ।
एकमध्यमसंपन्ना भवेयुर्धीमतां मते ।।
छायानाटहमीराव्हश्यामकामोदनामकाः ।
केदारगौडसारंगौ द्विमध्यमविभूषिताः ।।

अभिनवरागमंजर्याम् ।।

वर्गीकरण ध्यान में रखने के लिये यह श्लोक विशेष उपयोगी हैं। आगे इन रागों में परस्पर भिन्नता के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है:—

भूपाल्यां तु मनी न स्तः शुद्धाख्ये रोहणे न तौ ।
भूपालीतुल्यको जैत्रः पंचमांशो भिदां भजेत् ।।
आरोहणे मरिक्तः स्याच्चंद्रकान्ताभिधो जने ।
शुद्धकल्याणसादृश्यं दधन् रक्तिप्रदो निशि ।।

इमनः स्यात् सदा पूर्णो मालश्रीररिधा ततः ।
हिंदोले रिपहीनत्वं प्राबल्यमुत्तरांगके ॥
द्विमध्यमेषु रागेषु नियमो गुणिसंमतः ।
आरोहे स्यान्निवक्रत्वं गवक्रं चावरोहणे ॥
सनी धपौ मपधपा गमौ रिसावरोहणम् ।
अनुलोमे प्रधानांगं रागरूपं प्रदर्शयेत् ॥

इस श्लोक में असाधारणरूप से रागों के भेद का संक्षेप में उल्लेख किया हुआ दिखाई देता है। इस श्लोक की सहायता से "भूपाली-जेत" "शुद्धकल्याण-चन्द्रकांत" श्याम-कामोद-छायानट" आदि समप्रकृतिक रागों का पृथकरण सुलभ रीति से किया जा सकता है। जो राग प्रत्यक्ष वर्ज्यावर्ज्य स्वरों से ही भिन्न हैं, उनकी परस्पर भिन्नता के सम्बन्ध में कोई कठिनाई नहीं। जैसे—इमन, मालश्री तथा हिंदाल। इमन में सातों स्वर आरोहावरोह में आते हैं; मालश्री में रे ध वर्ज्य हैं। तथा हिन्दोल में रे और प वर्ज्य हैं। ये राग सहज ही पृथक हो जाते हैं। भूपाली तथा जेतकल्याण इन दोनों रागों में कुछ गायक म नि स्वर वर्ज्य मानते हैं। उसमें भेद वादी स्वरों से पहचाना जाता है। जेत के अवरोह में रे तथा ध अति दुर्बल रहते हैं ऐसा भी एक भेद है। जो गुणी शुद्ध-कल्याण में म नि वर्ज्य मानते हैं उनका भी प्रकार भूपाली जैसा दिखाई देना संभव है। उसमें फिर रे, ध स्वरों की अपेक्षा रे, प स्वर अधिक उपयोग में लाकर तथा मन्द्रस्थान में विशेष विस्तार करके और अनेक तानें ऋषभ स्वर पर छोड़कर भेद दिखाते हैं। कोई प ग व सां ध ऐसी तानों में म-नि स्वरों का अन्श दिखाकर शुद्धकल्याण भूपाली से पृथक करते हैं। शुद्धकल्याण में म, नि वर्ज्य करने के लिये रागतरंगिणी में स्पष्ट सम्मति दी है:-

गपौ धसौ सधपगा रिसाविति च सुस्वराः ।
औडुवो गायकश्रेष्ठैः शुद्धकल्याण उच्यते ॥

तरंगिण्याम् ।

तरंगिणीकार ने जो पूरियाकल्याण कहा है, उसे भी कभी-कभी हमारे उत्तर के गायक-वादक प्रयोग में लाते हैं; परन्तु उसमें वे ऋषभ कोमल तथा कभी-कभी दोनों ऋषभ लेते हैं। दक्षिण में भी पूर्वकल्याण नामक एक राग प्रचार में है। उसमें ऋषभ कोमल तथा शेष सब स्वर तीव्र हैं। उस पूर्वकल्याण का चलन तरंगिणी के अनुसार साधारणतः इस प्रकार होगा:—"मं ध नि सां, नि ध, प, मं ग, ध प, मं ग, रे सा, नि सा ग, मं ध नि ध, प, सां नि ध, प, प ग, ध प मं ग, सां नि ध नि ध, प, मं ग, ध प, मं ग, प ग रे सा" यह स्वरूप भी बहुत मधुर है। दोनों मध्यम लिये जाने वाले कल्याण थाट के रागों का पृथक्करण करना कुछ कठिन है। इसका एक कारण यह है कि उनमें कई राग सम्पूर्ण हैं तथा कई का अवरोह "सां नि ध प मं प ध प ग म रे सा" इस प्रकार होता है। परन्तु मंजरी में कहे अनुसार उन रागों को उनके आरोह के विशिष्ट स्वर-विन्यास द्वारा पृथक करने में विशेष कठिनाई नहीं होती। हमारे गुणी लोगों ने इन रागों को पृथक करने का जो साधन अर्थात् स्वरविन्यास निश्चित किये हैं, वे इस प्रकार हैं:—

(१) सा रे सा, ग म ध, नि ध, सां, नि ध, प, मं प, ध, प, ग, म रे, ग म ध प, ग, म रे, सा = हमीर।

(२) सा म, म प, प ध, प म, म प ध प म, प म, सा रे, सा = केदार।

(३) ध, प, रे, ग, म, प, म, ग, म रे, सा, सा, ध़, प़, प़ रे, रे, ग, म, प, म, ग, म रे, सा = छायानट।

(४) सा, रे प, प ध, प, ग म प, ग म रे सा = कामोद।

(५) सा, रे, मं प, प ध प, मं प ध प, म रे, नि़ सा, रे मं प, ग म रे, नि़, सा = श्यामकल्याण।

(६) सा, ग रे म ग, प, मं प, ध प, म ग, रे ग रे म ग, प रे, सा = गौडसारंग।

ये राग हमेशा इसी प्रकार से प्रारम्भ होंगे अथवा समाप्त किये जायेंगे, ऐसा कठोर नियम तो निर्धारित नहीं किया जा सकता। इनको अलग-अलग से पहचानने के लिये ये स्वरविन्यास साधन होंगे, इतना ही इसका मर्म है। दो मध्यम लिये जाने वाले इन रागों का अन्तरा कई बार ऐसा दिखाई देगाः—"प प सां, सां, रें सां, सां नि ध, सां, रें सां, नि ध, प" इतना भाग होने पर फिर प्रत्यक्ष रागवाचक स्वरविन्यास युक्तिपूर्वक जोड़ने में आयेगा।

कल्याण मेल के राग सम्पूर्ण करके फिर हमने बिलावल मेल को हाथ में लिया था, यह तुम्हें याद होगा ही। ऐसा करने से पूर्व अन्य कई विषयों पर भी हम बोल गये थे; जैसे १२ स्वरों से ७२ थाटों की उत्पत्ति, प्रत्येक मेल से गणित दृष्टि से रागों की उत्पत्ति आदि। उत्तर में "रागरागिनी पुत्रभार्या" ऐसी राग रचना का वर्णन करने वाले ग्रन्थों पर भी हमने थोड़ी बहुत टीका की थी। वह टीका हमने किसी दोष दृष्टि से नहीं की, अपितु हमारे कहने का आशय इतना ही था कि वह रचना उस काल में कौनसे तत्वों पर की गई थी, इसका स्पष्टीकरण ग्रन्थों में नहीं मिलता। तथा पुनः आज के रागस्वरूप ग्रन्थों के राग स्वरूपों से सर्वथा भिन्न हो जाने के कारण वह प्राचीन रचना आज असुविधा-जनक होगी। वैसी रचना नये रूपों को लगाने की अपेक्षा आजकल के ग्रन्थकारों की "मेल व तज्जन्यराग" पद्धति अधिक सुविधाजनक एवं अनुकरणीय है, ऐसा हमने निश्चित किया था। "रागरागिनी पुत्रभार्या" स्वीकार करके देशीभाषा में नये रागों का वर्णन करने वाले ग्रन्थकार पाठकों को पहले से ही भ्रम में डाल देते हैं, यह भी हमने कहा था। नये रागों के लिये ऐसी रचना विशेष बुद्धिमत्ता एवं कुशलता का काम है, उसे सफल बनाने के लिये पहले राग स्वरूपों के सम्बन्ध में सर्वत्र मतैक्य होना आवश्यक है। अस्तु, बिलावलमेल की चर्चा करते समय हमने सत्रह-अठारह उत्तम रागों पर विचार किया था। वे राग इस प्रकार थेः—

१ अल्हैया बिलावल	९ मांड	१७ पहाड़ी
२ यमनी बिलावल	१० दुर्गा	६०
३ कुकुभ बिलावल	११ बिहाग	
४ शुक्ल बिलावल	१२ देशकार	
५ लच्छासाख बिलावल	१३ नट	
६ सर्पर्दा बिलावल	१४ शंकरा	
७ देवगिरी बिलावल	१५ मलुहा	
८ नट बिलावल	१६ हेम	

इनमें से पहले आठ तो प्रत्यक्ष बिलावल प्रकार ही हैं, वे समप्रकृतिक हैं। हमारे गायक-वादक कभी-कभी बिलावल प्रकार को सवेरे का कल्याण भी कहते हैं। उनका यह कथन गलत नहीं। अनेक जानकार लोगों का यही मत है कि रात्रि के कल्याण प्रकारों का मिश्रण बिलावल राग से होने से ये विभिन्न बिलावल प्रकार बने हैं। ये बिलावल प्रकार रात्रि के तमाम रागों के प्रातर्गेय "जवाब" हैं, ऐसा अनेक गायकों के मुंह से हम सुनते हैं। अब यह प्रश्न विवादग्रस्त रहता है कि प्रत्येक बिलावल प्रकार में रात्रि का कौनसा राग मिश्रित हुआ है। यह प्रश्न प्रत्येक बिलावल प्रकार के अंगवाचक स्वर-विन्यास पर अवलम्बित रहेगा। मेरी समझ से इस विषय पर संगीत परिषदों में भली प्रकार चर्चा होने के पश्चात् जो निर्णय हो वह अधिक समाधानकारक होगा। समस्त बिलावल प्रकारों में जो एक निश्चित अवरोह दिखाई पड़ता है वह इस प्रकार है:-सां नि ध, प, म ग, म रे, सा" रात्रिगेय दो मध्यम वाले रागों में भी यह अवरोह होता है, परन्तु उनमें रात्रिसूचक एक भाग "मं प ध प" भी स्पष्ट रहता है, यह तुम्हें स्मरण होगा ही। बिलावल प्रकार में कई बार अन्तरा "प, ध नि ध, नि सां, रें सां" ऐसा प्रारम्भ होता है। यह टुकड़ा विशेष महत्व का है। अतः इसे हमेशा ध्यान में रखना हितकारी होगा। रात्रि के रागों में "प प सां, सां, सां ध, सां रें सां" ऐसा कुछ आता है, ठीक है न? अब हम इन बिलावल प्रकारों के अंगवाचक स्वरविन्यास देखेंगे:—

(१) ग रे, ग प, नि ध, नि सां, सां, सां, नि ध, नि॒ ध प, म ग, म रे, सा। ये स्वर आते ही श्रोता समझ जाते हैं कि गायक अल्हैयाबिलावल गा रहा है। अल्हैया के कुछ स्वर-समुदाय अन्य प्रकारों में भी कहीं-कहीं दिखाई देंगे। "प ध म ग, म रे, सा" यह समुदाय अनेक प्रकारों में दिखाई देगा। बिलावल में "म, प, ध, सां" इनमें से कोई स्वर वादी होता ही है, कारण बिलावल उत्तरांग प्रधान है। निषाद स्वर बहुधा वादी नहीं होता।

(२) सा, रे ग, रे, सा, नि॒ ध॒ नि॒, प॒ ध॒ नि॒ सा, ग, म ग, प मं प, म ग, म रे, सा। यह समुदाय यमनीबिलावल प्रदर्शित करेगा। इस राग का विस्तार अल्हैया की सहायता से ही होगा क्योंकि यह आश्रय राग है। परन्तु बीच-बीच में यमनीबिलावल के विशिष्ट लक्षण का आविर्भाव करना पड़ता है।

ध
(३) सा, नि़ ध़, सा, रे ग, ग ग, ग रे, सा, सा ग, प, ध नि प, म ग, म रे, सा। इसे देवगिरी का रागवाचक भाग मानते हैं। बीच-बीच में गायक देवगिरी के अवरोह में धैवत वक्र करने का प्रयत्न करते हैं। फिर भी इसमें तीव्र मध्यम नहीं लेते, ताकि यमनी से यह पृथक रहे। यमनी तथा देवगिरी राग कई जगह परस्पर मिश्रित होते हैं। उनमें फिर तीव्र मध्यम तथा धैवत का वक्रत्व ही मार्गदर्शक चिन्ह रहता है। देवगिरी में कोई दोनों मध्यम लेने को कहते हैं; परन्तु मेरी समझ से उस राग में कोमल मध्यम ही लेना उपयुक्त है।

(४) शुक्लबिलावल एक स्वतन्त्र प्रकार माना जाता है। इसमें मध्यम मुक्त है, इस कारण यमनी, देवगिरी तथा अल्हैया रागों से सहज ही यह पृथक हो सकता है। शुद्ध-बिलावल के समप्रकृतिक रागों में कुकुभ (एक प्रकार का) तथा नटबिलावल हैं; परन्तु इनमें राग पृथक्करण के हेतु गायकों ने कुछ युक्तियाँ कायम कर रखी हैं। शुक्लबिलावल में "म रे प, नि ग, सां ग," ऐसी सङ्गतियां गायक यह राग गाते समय विशेष रूप से प्रयुक्त करते हैं। कुकुभ तथा नटबिलावल में ये सङ्गतियां शोभा नहीं देतीं। शुक्लबिलावल का स्वरस्वरूप साधारणतः इस प्रकार है:—

म सां
सा, सा, रे म, म, म प, प, म ग, म, म रे, प, प, ध सां ग म, प, म ग, म रे, सा,

नि ग, म, सां, नि ध, नि ध ध म ग, म रे, सा, रे ग म प ध नि ग, म, रे, सा।

यह बिलकुल स्वतन्त्र है। कोई शुक्ल बिलावल में रे ध दुर्बल रखने को कहते हैं, फिर भी जो मैंने बताये हैं वे संगति भेद स्पष्ट दिखाते हैं।

(५) कुकुभबिलावल राग दोनों प्रकार से सुनने में आता है। एक तो ऐसा है:— "सा ग, म, नि ध प, म प, म ग, सा, ग, ग, म, ध नि सां, सां ध नि प, ध म, ग सा, ग, ग, म।" इस प्रकार में ऋषभ दुर्बल रहता है। मध्यम मुक्त है। दूसरा प्रकार ऐसा है:—

म
"रे, रे, ग म ग रे, सा, नि़ सा रे, सा, ध़, नि़ प़, म म, म प, ध म प, सां, ध, प, ध म ग, म रे, सा।" इसमें किंचित् जयजयवन्ती का भास होने की सम्भावना है, परन्तु कुकुभ में कोमल गन्धार का प्रयोग वर्जित है। पहिला प्रकार प्रथम देखते ही शुक्लबिलावल जैसा जान पड़ेगा, परन्तु उसमें "म रे प," "ध नि ग" ये सङ्गतियां नहीं हैं, यह ध्यान में रखो।

(६) नटबिलावल राग में नट तथा बिलावल का योग स्पष्ट दिखाई देता है। इस राग का थोड़ा बहुत स्वरूप इस प्रकार है:—"सा, ग, ग म, म, म प, म ग, म रे, नि ध प, म, प म ग, रे ग, म प, म ग, म रे सा।" इसमें, रे ग म प" भाग नट का समझा जाता है। इसके अतिरिक्त "सा ग, ग म," यह भाग भी नट का ही है। इनसे "सां, ध नि ध प, म ० म ग, म रे सा" यह अल्हैया भाग मिलाने पर नटबिलावल होगा।

(७) लच्छासाख बिलावलः—"प, म ग, म, प म ग, म रे सा, सा रे ग, म, नि ध प, म ग, म, रे सा, सां, नि ध, प, म ग म रे सा, सा म, ग, प प, ध नि ध प, म ग" इस प्रकार से यह राग साधारण दीखता है। परन्तु "लच्छासाख" पहिचानने में अनेक गायकों को कठिनाई होती है, यह मैं अनुभव से कह सकता हूँ। राजा प्रतापसिंह अपने सङ्गीत-सार में लच्छासाख की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार करते हैं:—"शिवजीनें × इमन शुद्ध संकीर्ण बिलावल गाइके वाको लछासाख बिलावल नाम कीनो।" इससे उनके मतानुसार इस राग में इमन (शुद्ध कल्याण) तथा बिलावल का योग होगा अथवा नहीं,कौन जाने? मैंने इस राग में दो तीन ध्रुपद तथा एक दो ख्याल सीखे हैं। परन्तु लच्छासाख के स्पष्ट लक्षण मेरे गुरु जी नहीं बता सके, किन्तु इसमें मुझे कोई आश्चर्य प्रतीत नहीं हुआ। वे बोलचाल में निरक्षर हैं, उनके गुरु ने उनको जो चीजें सिखाई, उनकी बाबत केवल इतना ही कहा होगा कि यह अमुक राग की हैं, तो फिर वे भी अधिक क्या कह सकते हैं?

(८) सरपरदाबिलावलः—यह बिलावल प्रकार अधिक सरल है। इसका स्वरूप इस प्रकार है:—

सा, रे ग म ध, प, म ग, म रे, सा, ग म ध, प, सा रे ग, म रे, सा। सा रे ग, ग, रे, ग, म प म ग, रे, सा, ग म प, म ग, म रे, सा। प्रतापसिंह के मत से इसमें गौड तथा बिलावल का योग है।

इस तरह हमने इन आठ बिलावल प्रकारों पर विचार किया। ये स्वरस्वरूप, मैंने जो चीजें सीखी हैं उनके आधार पर कहे हैं। इनके सम्बन्ध में मतभेद अवश्य होंगे; परन्तु ऐसे मतभेदों से भी कुछ तत्वबोध ही होगा। इन बिलावल प्रकारों की जितनी चीजें तुम्हें मिल सकें उतनी संग्रह करके फिर स्वतः नियम तथा निर्णय कायम करो। हमारे मिश्र स्वरूप को ग्रन्थाधार शायद ही मिलेगा। इनमें कुछ प्रकार मुसलमान गायकों ने सम्मिलित किये हैं। इसलिये उनके सम्बन्ध में उर्दू तथा पर्शियन ग्रन्थों में कुछ विशिष्ट जानकारी हो तो क्या मालुम? वे ग्रन्थ मुझे नहीं मिले, अतः उनमें क्या है, यह मैं नहीं कह सकता। "नगमाते आसफी" ग्रन्थ में कुकुभ के सम्बन्ध में उल्लेख इस प्रकार है:— "सम्पूर्ण है। ध नि सा रे ग म ये स्वर हैं। ग्रह धैवत है। समय प्रातःकाल।" ग्रन्थकार ने इस राग को मालकंस की रागिनी माना है। किन्तु इस प्रकार की जानकारी से हमारा समाधान नहीं हो सकता,

बिलावल प्रकार पूरे करके हम देशकार, बिहाग, शंकरा आदि रागों की ओर बढ़े थे। देशकार राग सरल एवं अत्यन्त लोकप्रिय है। यह उत्तरांगप्रधान है। केवल "सां, ध
प
प ग प ध, ध, प," ये स्वर सावकाश कहे कि देशकार उत्पन्न हुआ। भूपाली से यह कितने ही प्रकार से निराला है। ग, रे, सा, ध़ सा, रे ग, रे ग, प ग, ध प ग, रे ग, रे, सा, सां ध प ग, ध प ग, रे सा। ये स्वर गाने पर तुरन्त भूपाली दिखाई देने लगेगा। कोई देशकार के अवरोह में निषाद का अल्प प्रयोग करते हैं। कोई कहते हैं, वैसा थोड़ा सा निषाद यदि लिया गया तो चढ़े स्वरों का विभास तथा देशकार सहज ही पृथक हो जाते हैं। हम

विभास को भैरव थाट में मानते हैं तथा दूसरा एक विभास मारवाथाट में मानते हैं, यह तुम्हें स्मरण होगा ही।

किसी को बिहाग व शंकरा इन दोनों रागों में किंचित् साम्य प्रतीत होगा, परन्तु यह राग सर्वथा भिन्न हैं। मेरी समझ से बिलावल प्रकार के अतिरिक्त बिलावल थाट के अधिकांश राग स्वतन्त्र हैं, ऐसा कहना गलत न होगा। बिहाग राग के आरोह में रि, ध वर्ज्य हैं तथा अवरोह में सभी स्वर आ सकते हैं। अर्थात् "नि़ सा ग म प, नि, सां। नि ध प, म ग, रे सा" बिहाग का यह आरोहावरोह सर्वमान्य है। इस राग की सारी खूबी "प, ग म ग प ग, म ग, रे सा" इस स्वरसमुदाय में है। इसके अतिरिक्त "ग म प, नि, सां, नि प, प ग म ग, प ग, म ग, रे सा नि़ सा" ये स्वर भी बिहाग में रंजकता बढ़ाने वाले होंगे। रि, ध स्वर अवरोह में यदि आये भी तो उन्हें अति दुर्बल रखना पड़ता है। उनको यदि विशेष महत्व दिया गया तो तुरन्त ही बिलावल राग की छाया दिखाई देने लगेगी। "शंकरा" राग दो तीन तरह से प्रचार में दिखाई पड़ता है। उसमें मुख्य विशेषता मध्यम तथा ऋषभ इन दो स्वरों को असत्प्रायः रखने में है। शंकरा की पहचान "सां नि प, नि ध सां नि, प ग, प ग, सा, प़ सा, ग सा, प ग नि प ग, प ग सा" इन स्वरों में है। कोई शंकरा राग में ऋषभ का अल्प प्रयोग करते हैं, कोई सब स्वर लेकर शंकरा गाते हैं तथा उसको सम्पूर्ण मानते हैं परन्तु "मध्यम" वर्ज्य करना बहु-संमत है। ऐसा करने से विहाग सहज ही पृथक हो जाता है। विहाग के अवरोह में थोड़ा सा कोमल निषाद लिया जाय तो वह "विहागड़ा" हो जाता है, ऐसा गायक लोग कहते हैं। एक वृद्ध गायक ने मुझे बिहागड़ा राग में एक गीत सिखाया था, उसके स्वर इस प्रकार थे:—ग म ध, प ध नि॒ ध, प म ग सा, ग ग, प म, म ग म, प ध नि, सां, सां, नि॒ ध, प म प म ग रे सा। ऐसा प्रकार मैंने और भी दो तीन गायकों से सुना था। बिहागड़ा अप्र-सिद्ध रागों में से है, यह कहना पड़ेगा। बिहाग में कोई दोनों मध्यम लेते हैं, वह कृत्य भी बुरा नहीं दीखता। "नट" राग बिलावल थाट से ही उत्पन्न होता है। इस राग का स्वरूप मैंने तुम्हें बताया ही था। इस राग की सारी खूबी "सा ग, ग म, म, प म, ग, ग, म, प, सां ध नि प, म ग, रे, ग, म प सा रे सा" इन स्वरों में हैं। मध्यम मुक्त रखने से एक विचित्र ही परिणाम होता है। अवरोह में "ध नि प" यह भाग ध्यान में रखने योग्य है। पूर्वाङ्ग में "रे ग म प, सा रे सा" इनमें थोड़ा सा छायानट का भास हो सकता है; परन्तु वह इस राग में आवश्यक है। यह राग अधिक सुनने में नहीं आता।

"मांड" बिलावल थाट से उत्पन्न होता है। इस राग को गायक "धुन" कहते हैं। यह "सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सां। सां ध नि प, ध म प ग म रे, ग सा। इन पल्टों से निकला होगा, ऐसा तर्क कुछ गायक करते हैं। इस राग के वज़न से यह

तर्क गलत भी नहीं जान पड़ता, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। परन्तु इस राग में सर्वत्र ऐसी वक्रता दिखाई देगी ही—यह नहीं कहा जा सकता। पूर्वाङ्ग में "ग, सा रे ग, सा" तथा उत्तरांग में "सां नि ध म प, ध नि, प ध नि सां" ऐसे स्वरसमुदाय बारम्बार दिखाई देंगे। "सां नि ध, म प, प ध नि, प ध सां, रें गं सां" यह मांड का खास अङ्ग समझा जाता है। आजकल सङ्गीत नाटकों में इस राग का प्रचार विशेष दिखाई देता है। गुजरात में मांड राग अति लोकप्रिय है। मांड, पीलू तथा पहाड़ी राग आजकल नाटकों में प्राय: सुनने में आते रहते हैं तथा वे सबके पहिचाने हुए हैं। "पहाडी" राग प्राचीन ग्रन्थों में भी दिखाई पड़ता है; परन्तु उसके स्वर उस भैरव जैसे थे, ऐसा प्रतीत होता है। आज हमारे गायक तीव्र रे, ध स्वर लेकर यह राग गाते हैं। ऐसा प्रकार पंजाब में विशेष लोकप्रिय है। इस प्रकार में म, नि वर्ज्य अथवा अल्पप्राय हैं। पहाड़ी का स्थूल-रूप इस प्रकार होगा:—"ध़ सा, रे ग, ग रे ध़, सा, रे ग, सा, ध़, प ध़ सा। ग प, ध सां, ध प, ग रे ध़ सा रे ग, सा ध़, प़ ध़ सा। ग, ग, ग रे, ध़ सा, रे ग सा, ध, सां ध, प, ग, रे, ध़, सा रे ग, सा ध़। कोई ध़ नि़ प़ ध़ सा, ग, म ग रे; ध़ सा, रे ग, सा ध़ ऐसा करते हैं। पूर्व की ओर पहाडी में झिंझोटी मिश्रित करके उसको "पहाडी-झिंझोटी" नाम देते हैं। अर्थात् वहां पहाडी को सम्पूर्ण मानते हैं। उस प्रकार का उदाहरण मैंने बताया ही था। मुझे स्वयं म, नि वर्ज्य किया जाने वाला प्रकार विशेष पसन्द है। पहाड़ी को हमारे गायक एक "धुन" समझते हैं। इसमें क्षुद्रगीत अधिक हैं। "मलुहा" भी एक बिलावल थाट का राग समझा जाता है। इस राग का विस्तार मंद्र तथा मध्य दोनों स्थानों में अधिक अच्छा प्रतीत होता है। इस राग का स्वरस्वरूप संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है:—

सा, रे सा, म़, म़, प़, सा, सा, रे, सा, ग, ग, म रे, ग म प, ग म रे नि़ सा। सा, ध़ प़, म़ प़, सा, नि़ सा, प, म ग, म रे, सा, सा, म ग, प, म प ध नि, ध प प सा, प प, म ग म री, नि़, सा। मलुहा में अन्तरा थोड़ा सा तार सप्तक में चला जाय तो भी हानि नहीं, किंतु वह मंद्र तथा मध्य सप्तक में वैचित्र्यपूर्ण जान पड़ता है, मेरे कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है। "मलुहा" केदार राग का प्रकार समझा जाता है।

"हेम-कल्याण" राग को भी गुणीलोग बिलावल थाट में मानते हैं। इसकी प्रकृति कुछ मलुहा जैसी ही है। मलुहा में तथा इस राग में अन्तर ऐसा माना जाता है है कि मलुहा में "नि़ सा" इस प्रकार निषाद आ सकता है तथा इस राग में निषाद वर्ज्य करते हैं। वैसे ही धैवत आरोह में नहीं आता। "हेम" अप्रसिद्ध रागों में ही गिना जाता है। यह थोड़े ही गायकों को आता है। हेम में कामोद तथा कल्याण का मिश्रण बताया जाता है। हेम एक कल्याण प्रकार माना जाता है, यह मैंने कहा ही था। इस राग का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार होगा:—

प़ प़ ध़ प, सा, सा रे सा, ग म रे सा, सा म ग प, प ग, म रे, सा, रे सा, ध़ प़, सा, ग म प, ग म रे सा।

सा, म ग, प, ध प सां ध प, ध प, ग म प, ग म रे सा, रे सा, ध़ प़ सा।

इस राग का विस्तार मैंने तुमको बताया ही है, इसलिये इसकी अधिक चर्चा हम अब नहीं करेंगे। "दुर्गा" नामका एक राग बिलावल थाट में कहा जाता है। यह राग पिछले पच्चीस वर्षों से समाज में विशेष लोकप्रिय हुआ है। इसमें गंधार तथा निषाद वर्ज्य करते हैं। इस राग का जीवभूत स्वरविन्यास "प, म, प ध म रे, प, ध म रे, रे, सा। सां ध, सां रें ध, म रे, प" होगा। प्रत्येक गायक यह भाग दुर्गा गाते समय बार-बार अपने गायन में लायेंगे, ऐसा मानकर चलने में कोई हानि नहीं। यह राग दक्षिण में "शुद्धसावेरी" नाम से प्रसिद्ध है। अनेक लोगों के मत से यह वहीं से उत्तर भारत में आया है। ऐसा हो तो भी उसे जिस रूप में आज उत्तर के गायकों तथा श्रोताओं ने पसन्द किया है, उस रूप को उत्तर पद्धति में ही स्थान देना योग्य होगा। उत्तर का भूपाली "मध्यम से तार मध्यम तक के सप्तक में म नि वर्ज्य करके गाया तो दुर्गा जैसा स्वरूप उत्पन्न होगा" ऐसा एक मार्मिक गायक ने मुझसे कहा था। 'दुर्गा' गाते समय शुद्ध मल्लार राग को प्रथक रखने का ध्यान रखना चाहिये। शुद्धमल्लार के सम्बन्ध में मैंने अभी-अभी कहा ही था। "सा रे म, म प, प, म प ध सां, ध प म" ये स्वर बोले तो शुद्धमल्लार दिखने लगेगा।

'गुणकली' नामक एक राग भी बिलावल थाट में मानने का प्रचार है। यह शुद्ध स्वरों का गुणकली बहुत थोड़े गायकों को आता है। परन्तु गुणक्री अथवा गुणकरी भैरव थाट का एक अलग राग है। उस राग से इस राग की तुलना न करो। गुणकरी स्वतन्त्र प्रकार है। गुणकली में मुझे कई गुरुओं ने गीत बताये थे। उन गीतों की सहायता से मैंने तुमको गुणकली का स्वरूप बताया था। पहिले गीत के स्वर इस प्रकार थे:—"प प ध नि सां रें (जलद) सां ध, नि ध, प, प सां, ध, ध प, प ध प, ग म रे सा, सा ध़ प़, सा, प, म ग, सा रे सा। प सां, सां, सां ध सां गं गं रीं पं गं, प ग, सां ध सां, ध प, ग, प ग, प, सां ध सां, सां रें गं, सां, सां ध प, प ग, म रे, सा,

दूसरे गीत का स्वरूप साधारणतः ऐसा है:—

सा, ग रे सा नि़ ध, नि़ ध़ प़, सा, रे सा, ग प, रे, सा, सा, ग रे सा, नि़ ध़ प़, सा। प प, नि ध, सां, सां, नि ध, नि ध, सां रें सां नि ध प, प प ध सां, ध प, ग, प रे सा।

इन दोनों स्वरूपों में से किसी ने गुणकली गाई तो तुरन्त ही तुम्हारी पहचान में आजायेगी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु पहचानने का प्रयत्न अवश्य कर सकोगे, इसलिये इसे ध्यान में रखो। बिलावल थाट के रागों का वर्णन करते समय मैंने एक और राग का भी उल्लेख किया था और वह था "हंसध्वनि"। यह राग दक्षिण में अति लोकप्रिय है तथा हमारे उत्तर की ओर भी कभी-कभी सुनने में आता है। इसलिये

इसके सम्बन्ध में कह गया था। हंसध्वनि के आरोहावरोह में म तथा ध स्वर वर्ज्य हैं। इस कारण से यह बिलावल थाट के अनेक रागों से प्रथक हो जाता है। यह राग हमारे यहां कुछ नाटकों में दिखाई पड़ता है।

बिलावल थाट के कई रागों का हमने अभी सिंहावलोकन किया। प्रत्येक राग के वादी और सम्वादी स्वर मैंने तुम्हें बताये ही हैं। इस थाट के रागों में समस्त बिलावल प्रकार तथा देशकार स्पष्टतः उत्तरांग वादी हैं अर्थात् उनमें म, प, ध, इनमें से कोई एक स्वर वादी रहेगा ही। "बिहाग तथा शंकरा" रात्रि के द्वितीय प्रहर के राग हैं। इनमें वादी गन्धार मानने का व्यवहार है। "नट" राग में वादी मध्यम है, उसी तरह वह मलुहा-केदार में माना जाता है। "मांड" सर्वकालिक मानते हैं। पहाडी में ग वादी तथा हेम में सा वादी मानने का व्यवहार है।

आजकल के परिवर्तित संगीत में:—

रागवृन्दे तथाऽप्यत्र कामचारप्रवर्तनात्।

लक्ष्यमार्गमनुल्लंघ्य बुधः कुर्याद्यथोचितम्॥

इस विषय के अनुसार चलना हितकारी है। हम भी इसी नियम से चलते आये हैं। यह नियम शार्ङ्गदेव पण्डित के समय से चलता आ रहा है। उस पण्डित ने कहा था:—

यतो लक्ष्यप्रधानानि शास्त्राण्येतानि मन्वते।

तस्माल्लक्ष्यविरुद्धं यत्तच्छास्त्रं नेयमन्यथा॥

इसमें आश्चर्य करने की कोई बात भी नहीं। वस्तुतः यह नियम सर्वदा लागू होने योग्य है।

पहिले सम्भाषण में बिलावल जन्यराग समाप्त करके फिर हम खमाज अर्थात् तीसरे वर्ग रि, ध, ग तीव्रस्वर लिये जाने वाले थाट के जन्य रागों की ओर बढ़े थे। खमाज थाट के रागों में ११ अतिप्रसिद्ध हैं। उनके नाम तुम्हें इस श्लोक में दिखाई देंगे:—

खमाजश्चाथ झिंझूटी सोरटी देसनामकः।

खंबावती तथा दुर्गा रागेश्वरी तिलंगिका॥

जयावंती तथा गारा कामोदस्तिलकाद्यकः।

एकादश मता एते खंमाजाभिधमेलने॥

अभिनवरागमंजर्याम्।

इन ग्यारह रागों के अतिरिक्त बडहंस, नारायणी, प्रतापवराली, नागस्वरावली तथा गौडमल्लार रागों की भी हमने कुछ चर्चा की थी। इन रागों में से बडहंस तथा गौड-मल्लार की हमने इस प्रसङ्ग में पर्याप्त चर्चा की थी। कुछ गुणी लोग इस राग को काफी थाट में लेते हैं; इसलिये हमने भी वैसा ही किया। बडहंस का वर्णन करते समय मैंने उस राग पर काफी थाट की चर्चा करते हुए यह संकेत किया था कि इस पर मैं फिर बोलूंगा, यह तुम्हें याद होगा ही। नारायणी, प्रतापवराली तथा नागस्वरावली राग हमारे यहां दक्षिण से आये हैं, ये राग मधुर हैं तथा इनके लक्षण स्पष्ट हैं, जैसे:—

कांभोजीमेलनोत्पन्ना नागपूर्वस्वरावली ।
आरोहेऽप्यवरोहेच नि रि वर्ज्यं यथौडवम् ॥
कांभोजीमेलनात्तत्र संजातो रागसत्तमः ॥
प्रतापाद्यवराल्याख्यो रिषभांशग्रहो मतः ॥
आरोहणे निगौ नस्तोऽवरोहे स्यान्निवर्जनम् ।
गानमस्य समादिष्टं द्वितीयप्रहरे निशि ॥

लक्ष्यसंगीते ।

नारायणी के सम्बन्ध में उसी ग्रन्थ में लक्षण इस प्रकार कहे हैं:—

कांभोजीमेलसंजाता नारायणी प्रकीर्तिता ।
अरोहे गनिहीना ऽसाववरोहे गवर्जिता ॥

यह स्पष्ट है कि उत्तर में खमाज थाट के तमाम रागों से ये तीनों राग बिलकुल अलग हैं। उत्तर में प्रसिद्ध जिन ग्यारह रागों का मैंने अभी उल्लेख किया है उनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। वर्गीकरण से शास्त्र सुलभ हो जाता है, ऐसा विज्ञजनों का मत है। खमाज मेल के जन्यरागों के वर्ग इस श्लोक में किस प्रकार दिखाये हैं, देखो:—

खंमाजीमेलजा रागा विभज्यन्ते द्विधा बुधैः ।
अंशस्वरानुरोधेन रहस्यं बहुविश्रुतम् ॥
खमाजो झिंझुटी दुर्गा खंबावती तिलंगिका ॥
रागेश्वरी तथा गारा रागा गांधारवादिनः ॥
सोरटी देसकाख्यातो जयावंती गुणिप्रिया ।
तिलकादिककामोद एते प्रोक्ता रिवादिनः ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

इन रागों के अंश स्वरों से दो वर्ग करके फिर इन रागों की परस्पर भिन्नता कैसी स्पष्ट बताई है, देखो:—

अनुलोमे विलोमेच संपूर्णा झिंझुटी मता ।
आरोहे रिस्वरस्त्यक्तः खमाजो लोकविश्रुतः ।
रिपत्यक्ताऽपरा दुर्गा तैलंगी स्याद्रिधोज्झिता ।
रागेश्वरी स्वयं दुर्गाऽवरोहे ऋषभान्विता ॥
खमाजनियमभ्रष्टा खंबावती समीरिता ।
मंद्रमध्यस्थगा गारा झिंझूट्यंगपरिष्कृता ॥
सोरटीत्वधगादऽऽरोहे देसः संपूर्ण ईरितः ।
जयावन्ती द्विगांधारा परिसंगमनोहरा ॥
विहंगदेससंचारी कामोदस्तिलकादिकः ।
अथैतेषां क्रमाल्लक्ष्म ब्रुवे लक्ष्यज्ञसंमतम् ॥

अभिनवरागमंजर्याम् ।

इस श्लोक में वर्णित पारस्परिक भिन्नता का वर्णन अलग से करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । उन रागों के अंगवाचक भाग स्वरों में देखें:—

ध़ सा, रे म ग, प, म ग, रे सा, ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग, ग म प म ग, ध प म ग, सा रे ग, सा, ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग । ये स्वर कहे कि झिंझोटी स्पष्ट दिखाई देगा, अर्थात् इससे यह निश्चित हुआ कि झिंझोटी सम्पूर्ण प्रकार है ।

ऩि सा ग म प, नि ध, ग म ग, प, ग म ग रे सा, ग म ध नि सां नि सां, रें सां, नि ध, ग म प, सां नि ध, ग म ग आरोह में इस प्रकार रे वर्ज्य करके कहा तो 'खमाज' उत्पन्न होगा ।

"तिलंग" तथा "खमाज" समप्रकृतिक राग हैं, परन्तु तिलंग में रि ध स्वर आरोह तथा अवरोह इन दोनों में भी वर्ज्य हैं । अतः रागभेद स्पष्ट है । कोई गायक तिलंग के अवरोह में ऋषभ का अल्प प्रयोग करते हैं । वह विवादी के नाते आता है, ऐसा मानना चाहिये । तिलंग का स्वरस्वरूप "ऩि सा ग म प, नि प, सां नि प, ग म ग, प ग, म ग सा । नि, सां, नि प, सां नि प, गं मं गं, गं मं गं सां, सां नि प, ग म ग, प ग म ग, सा" ऐसा होगा ।

'दुर्गा' राग गत दस-बीस वर्षों से उत्तर भारत में प्रसिद्ध हुआ है । दुर्गा नाम तो प्राचीन ही है; परन्तु रागस्वरूप नवीन है । बिलावल थाट के दुर्गा राग से यह राग पृथक है, यह नहीं भूलना चाहिये । इस दुर्गा राग के उत्तराङ्ग में बागेश्री जैसा भास होगा । इस राग का स्वरूप इस प्रकार होगा:—'सा ऩि ध़, सा, म ग, म ध नि ध, म ग, म ध,

नि सां, गं मं गं सां, सां, नि ध, म ग, ध म ग, ग, सा।" यह राग गाने में सरल है, ऐसा गायक मानते हैं। 'रागेश्री' इस राग का समप्रकृतिक राग है। इन दोनों रागों के आरोह में रे, प स्वर वर्ज्य हैं; परन्तु अवरोह में रागेश्वरी राग में थोड़ा सा ऋषभ लिया जाता है और वह दुर्गा में बिलकुल नहीं लिया जाता। यही दोनों में मुख्य भेद है। इन दोनों रागों का अधिकांश चलन समान ही दीखता है। रागेश्वरी का स्वरस्वरूप देखोः—

'सा, रेसा, नि ध; नि सा, म ग, म ध नि ध, म ग, रे सा, ग म ध, नि सां, मं गं रें सां, नि ध, म ध नि ध, म ग, रे सा।" किसी का मत है कि पंचम रहित बागेश्री के गन्धार को यदि तीव्र कर दिया तो रागेश्वरी राग होगा। यह बात किसी हद तक ठीक हो सकती है, परन्तु रागेश्वरी में ऋषभ केवल अवरोह में तथा बिलकुल अल्पप्रमाण में लिया जाता है, यह भूल जाने से काम नहीं चलेगा।

'खंबावती' नाम भी प्राचीन ही है। कई लोग तो खंबावती खमाज का प्राचीन नाम ही मानते हैं। एक अर्थ में उनकी यह मान्यता निराधार नहीं है। सङ्गीत रागकल्पद्रुम में खमाज को सैंकड़ों चीजें दी गई हैं और वे 'खंबावती की बताई गई हैं। तरंगिणीकार ने खमाज का 'खंबाइची' नाम लिखा है। शार्ङ्गदेव पण्डित ने अपने 'अधुना प्रसिद्ध' रागनाम में 'स्तम्भतीर्थी' ऐसा एक नाम देकर, रागलक्षण कहते समय 'खंबाइति' नाम का प्रयोग किया है। उसकी वह 'खंबाइची' हमारे खमाज जैसी थी अथवा नहीं, यह अलग प्रश्न है। हमारा आशय केवल इतना ही था कि खंबावती को खमाज समझने में साधारण लोगों की भूल है अथवा नहीं। वह भूल नहीं कही जा सकती, फिर भी हमारे आज के प्रचार में खंबावती तथा खमाज ये दो राग भिन्न माने गये हैं, यह गलत नहीं। इन दोनों रागों का थाट एक ही है अर्थात् वह खमाज ही है। फिर भी इन दोनों रागों में गायकों ने थोड़ा सा भेद रखा है। मंजरी में कहा है कि खमाज राग का मुख्य नियम मोड़ने से खंबाइती अथवा खंबावती होगा। वह नियम आरोह में ऋषभ न लेने का है, यह ध्यान में आयेगा ही। सारांश, खमाज के आरोह में ऋषभ नहीं तथा खंबावती के आरोह में वह स्पष्ट मौजूद है। परन्तु इतने से ही खंबावती का स्वरूप तैयार हो जायगा, यह न समझना। झिंझोटी के आरोह में भी ऋषभ है। खंबावती का खास स्वरूप इस प्रकार हैः—'सा, रे

म प, ध, प ध सां, नि ध प ध म, ग, म सा। म, म प, नि, सां सां रें गं सां, नि ध, ध नि

म

प, ध सां नि ध, प, ध म, ग, म सा। इसमें 'रे म प;' 'ध म ग, म सा' ये महत्व के टुकड़े

हैं। 'नि ध प, ध म" ऐसे टुकड़ों में पंचम की वक्रता तथा "ध म" की सङ्गति कितनी सुन्दर दीखती है! परन्तु ये सब भाग राग का आविर्भाव करने के लिये हैं, यह हमेशा ध्यान में रखो। अवरोह में ऋषभ दुर्बल है। इस राग की फिरत विशेष प्रमाण में खमाज

जैसी दिखाई देगी, परन्तु 'रे म प ध, प ध सां, नि ध, प ध म, ग म सा' इन टुकड़ों से खंबावती पृथक होगी। ये अङ्गवाचक टुकड़े किसी के मत से 'मांड' नामक धुन के हैं और किसी के मत से झिंझोटी के हैं। झिंझोटी में थोड़ा सा ऐसा भाग रहता है, यह

सही है। अब तुम्हीं देखो; 'सा, रे ग सा, ध़, प़ ध़ सा, सा, रे म प ध, म ग, ग म सा, रे, प म ग, सा, रे ग, सा, ध़, प़ ध़ सा' यह शुद्ध झिंझोटी है अस्तु, आगे चलो।

"गारा" राग भी इसी थाट में माना गया है। इसका विस्तार मन्द्र तथा मध्य इन दोनों स्थानों में विशेष खुलता है। इस राग में दोनों गन्धार आते हैं; और वे आने ही चाहिये। नहीं तो गारा न होकर झिंझोटी होगा। तीव्र ग अधिक महत्व का रखना पड़ता है। इस राग का स्वरस्वरूप कितना मधुर है, देखो:—

सा, ध़ नि़, म ग, म प, म ग, म, रे ग॒ रे सा, नि़ सा, नि॒ ध़, नि॒ प़, म़ प़ ध़, नि़ सा, रे नि़ सा, ध़ नि़, ग। सा ग, ग, म ग, सा ग म प, म, रे ग॒ रे सा, प, म प, ग म, रे ग॒ रे सा, रे, नि़ सा, नि॒ प़, म़ प़, ध़, नि़ सा। ऐसे स्वरसमुदाय आते ही श्रोताओं को तुरन्त ही गारा प्रतीत होने लगता है। गारा का जीवभूत स्वरसमुदाय 'रे ग॒ रे सा, नि॒ ध़, प़ ध़ नि़, सा' है। गारा राग अति लोकप्रिय है। कुछ गायक इसमें ख्याल ध्रुपद गाते हैं।

इस प्रकार खमाज थाट के गंधार वादी राग हमने देखे। अब ऋषभ वादी जो चार शेष रहे, उनकी ओर बढ़ें। प्रथम देस तथा सोरठ इन समप्रकृतिक रागों की ओर चलें। देस तथा सोरट राग इतने समान स्वरूप के हैं कि इनको पृथक से पहिचानना अथवा पृथक से गाना अत्यन्त कठिन होता है। इन दोनों रागों में मुख्य अन्तर गन्धार का है। देस में गन्धार स्पष्ट है और सोरट में वही अस्तप्राय है। इन दोनों रागों में अन्तरा "सा, रे, म प, नि सां, सां, रें नि॒ ध प" इस प्रकार शुरू होता है जिससे श्रोता भ्रम में पड़ जाते हैं। परन्तु इन दोनों रागों को पृथक करने के लिये और भी एक-दो जगह गायकों ने निश्चित की हैं। जैसे:—'रे, म प, नि॒ ध प, सां, नि॒ ध प, प ध प म ग रे ग सा' यह करने पर सोरट कभी नहीं होगा। 'सा, रे, म प, नि, सां, रें नि॒ ध प, ध म रे, रे प म रे रे, रे, सा' यह प्रकार शुद्ध सोरट है। 'म रे' में गन्धार गुप्त है। कोई 'ग म रे' अथवा 'म ग रे' ऐसा प्रकार सोरट में करते हुए दिखाई देंगे। लेकिन उनको भी गन्धार दुर्बल रखना पड़ेगा। उत्तर के गायक एक और इसमें सुझाव रखते हैं कि देस के अवरोह में ऋषभ की संगति में थोड़ा कोमल गन्धार का स्पर्श लेने की अनुमति होनी चाहिये। उदाहरणार्थ, रे ग॒ सा रे, म प, नि, सां' यह उठाव उनके मत में देस का होगा। सोरट में 'रे, म प, नि, सां' ऐसा उनके मतानुसार करना पड़ेगा। मेरी समझ से देस का जीवभूत भाग 'प ध प म ग रे ग सा, रे रे म प, नि॒ ध प' जो मैंने अभी कहा, वह देस को पृथक रखेगा। शेष प्रकारों में श्रोताओं को देस और सोरट का मिश्रण जान पड़ेगा। ऐसे मिश्रण हम प्राय: सुनते रहते हैं। समप्रकृतिक रागों में ऐसे अनेक मिश्रण होते हैं जो हम

देखते हैं। उदाहरणार्थ, 'यमन तथा यमनकल्याण' 'खमाज और तिलंग', 'काफी और सिंदूरा' 'परज और कालिंगड़ा', 'आसावरी तथा जौनपुरी' 'मधमाद तथा बिंदरावनी' 'सूहा और सुघराई' आदि। वस्तुतः ये मिश्रण श्रोताओं को विशेष पसन्द हैं। ये मिश्रण भली प्रकार समझकर व्यक्त करने में सारी विशेषता है, यह ध्यान में आ ही जायेगा। देस तथा सोरट दोनों राग मध्य रात्रि के लगभग गाने का रिवाज है।

"तिलककामोद" राग को हम खमाजथाट में लेते हैं। इसका कारण यह कि इसमें हमारे यहां कोमल निषाद लेते हैं। बंगाल प्रान्त में भी तिलककामोद में कोमल निषाद लेते हैं। केवल उत्तरप्रदेश में वह निषाद इस राग का शत्रु समझा जाता है। उनका प्रकार भी अच्छा है। 'सां नि॒ ध प, ध म ग, सा रे ग सा नि़' ऐसा हमारे यहां चलेगा। उत्तर में 'सां, प ध म ग, सा रे ग, सा नि़' ऐसा करना पड़ता है। तिलककामोद में देस तथा बिहाग का मिश्रण होता है, ऐसा मानते हैं। आरोह में धैवत सर्वथा दुर्बल है। कोई उसे वर्ज्य भी मानते हैं। तिलककामोद का स्वरस्वरूप इस प्रकार है:—प़ नि़ सा रे ग सा,
म
रे प, म ग, सा रे ग, सा, नि़, प़ नि़ सा रे ग सा; सा रे ग सा, रे ग सा, रे म प, नि सां रें सां प ध म ग, सा रे ग सा, नि़, प़ नि़ सा रे ग सा।

अन्तरा इस प्रकार होगा:—रे, म प, नि, सां, रें पं मं गं, सां रें गं सां, सां प ध म ग, सा रे ग सा, नि़, प़ नि़ सा रे ग सा।

"जयजयवन्ती" राग बहुत ही कुतूहलपूर्ण है। इसमें दोनों गन्धार आते हैं। इस राग से आगे मध्यरात्रि के कानड़ा प्रकारों में प्रवेश करते हैं, इस कारण इस राग को 'परमेलप्रवेशक' राग भी कहते हैं। दूसरे भी ऐसे परमेलप्रवेशक राग हमारी पद्धति में हैं, जैसे:—'मुलतानी'। 'रे रे, ग॒ रे सा, नि॒ ध़ प़, रे, ग म प, ग म, रे ग॒ रे, नि॒ ध, म प ध, ग म रे, ग॒ रे नि़ सा, रे ग॒ रे, नि़ सा, रे नि॒ ध़ प़, रे' यह जयजयवन्ती का जीवभूत स्वर-समुदाय है। मंद्रपंचम से एकदम ऋषभ पर आने का कृत्य अति सुन्दर प्रतीत होता है। जयजयवन्ती का अन्तरा देस अथवा सोरट जैसा ही होता है, जैसे:—रे, म प, नि सां, रें, रें, गं॒ रें सां, रें नि॒ ध प, म ग, म प ध म, ग॒ रे, प ग॒ रे, नि़, सा, रे ग॒ रे सा, रे नि॒ ध़ प़, रे'।

जहां खमाजथाट में, खमाज, तिलंग, झिंझोटी तथा खंबावती राग समप्रकृतिक हैं, वहां दुर्गा तथा रागेश्वरी भी समप्रकृतिक ही कहे जा सकते हैं। देस, सोरट तथा तिलककामोद भी समप्रकृतिक होंगे। गारा तथा जयजयवन्ती इन दोनों रागों में कुछ भाग साधारण हैं। समप्रकृतिक राग गाते समय एक राग में समप्रकृतिक राग का कुछ भाग लेने में आता है। ऐसा जहां आता है वहां स्वतः थोड़ा बहुत तिरोभाव उत्पन्न होता है। परन्तु प्रस्तुत राग के अंगवाचक भाग यथास्थान लाकर उसका आविर्भाव किया जाय तो विसंगति उत्पन्न नहीं होगी, अपितु वैचित्र्य ही बढ़ेगा।

दक्षिण के ग्रन्थों में बिलावल तथा खमाजथाट में और भी कई राग उनके आरोहा-वरोह देकर वर्णित किये गये हैं। उनमें से कुछ हमारी उत्तरपद्धति में सहज ही सम्मिलित होने योग्य हैं।

वर्ज्यावर्ज्य स्वरों से वादी कौनसा स्वर होगा, यह बुद्धिमान लोगों की समझ में सरलता से आ जाता है और यह तथ्य समझ लेने पर राग रात्रिगेय है अथवा दिनगेय है, यह निश्चित हो ही जाता है। वादी स्वर कायम होने पर कौनसा स्वर दुर्बल, कौनसा सम व कौनसा प्रबल है, यह निश्चित करना गायक की कुशलता पर निर्भर है। फिर भी जो राग आज दक्षिण में लोकप्रिय हैं, वे प्रथम सुनकर तथा उनके जीवभूत भाग ज्यों के त्यों रखकर फिर उनको उत्तर के ढांचे में ढाला जाय तो मेरी समझ से वे राग सर्वत्र आदर पायेंगे। ऐसे रागों को प्रत्यक्ष संस्कृत ग्रन्थों का आधार होने से उनकी योग्यता के सम्बन्ध में शंका उत्पन्न ही नहीं होती। उत्तर के अनेक राग दक्षिण के कलावन्तों के संग्रह में आज दिखाई देते हैं। दक्षिण के राग संग्रहीत करके उनको उत्तर के मनोहर स्वरूपों में गाने में कोई आपत्ति नहीं। दक्षिण के आरभी, हंसध्वनी, नारायणी, नागस्वरावली, प्रतापवराली, आनन्दभैरवी, यदुकुल, कांभोजी आदि राग हमारे नाटककारों ने उत्तर के संगीत में सम्मिलित कर ही लिये हैं। उत्तर-दक्षिण में आपसी आवागमन बढ़ने से ऐसा होना ही था और मेरे मत से ऐसा होना आवश्यक भी है। दक्षिण में आज भी एक ऐसी गलत फहमी है कि उत्तर के संगीत में कोई पद्धति आदि नहीं है। यह भ्रम अब अखिल भारतीय संगीत परिषदों की सहायता से बहुत कम होता जा रहा है। हमारे संगीत की पद्धति वहां के पण्डितों ने अभीतक भलीप्रकार नहीं समझी है। हमारे रागों में उन्हीं के अनुसार मेल तथा आरोहावरोहादि सब कुछ हैं, यह तथ्य जैसे-जैसे उनको दिखाई देगा वैसे-वैसे उनका ध्यान उत्तर संगीत की ओर विशेषरूप से आकर्षित होगा।

अपने दूसरे संभाषण में तत्कालीन परिस्थिति को लक्ष्य कर हमें प्रथम श्रुति तथा स्वर के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करना आवश्यक हुआ था, यह तुम्हें याद होगा ही। अपनी पद्धति लोकप्रसिद्ध बारह स्वरों पर ही आधारित होने के कारण हमने उसकी चर्चा आरंभ में नहीं की। किन्तु जब देश में विभिन्न विद्वानों ने श्रुति स्वर पर लेख लिखने आरम्भ किये तब उनके लेखों का मर्म तथा उनकी योग्यायोग्यता के सम्बन्ध में तुमको भी कुछ जानकारी कराने के अभिप्रायः से हमने उसकी चर्चा की थी। उन विद्वानों ने अपने सिद्धान्त के समर्थन में भरत, शार्ङ्गदेव, अहोबल तथा सोमनाथ इन चारों के ग्रन्थों का आश्रय लिया था। उनके लेखों का उत्तर बिलकुल संक्षेप में दिया जा सकता था, परन्तु उतने से तुम्हारा समाधान नहीं हो पाता, इसलिये उन विद्वानों के मत पर हमने विस्तार पूर्वक विचार किया। वस्तुतः,

"मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमः कार्यः। पंचमश्रुत्युत्कर्षादपकर्षाद्वा यदन्तरं मार्दवादायतत्वाद्वा तत्प्रमाणश्रुतिः॥ भरतनाटयशास्त्रे।"

द्वे वीणे सदृशे कार्ये यथा नादः समो भवेत्।
तयोर्द्वाविंशतिस्तंत्र्यः प्रत्येकं तासु चादिमा॥
कार्या मंद्रतमध्वाना द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक्।
स्यान्निरंतरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यन्तराश्रुतेः॥
अधराधरतीव्रास्तास्तज्जो नादः श्रुतिर्मतः॥

संगीतरत्नाकरे।

पृथुवक्ष्यमाणवीणामेरौ स्थाप्याश्चतस्र इति तंत्र्यः ।
मंद्रतमध्वनिराद्या त्रयं क्रमोच्चस्वनं किंचित् ॥
न्यस्याः सूक्ष्माः सार्योऽथ द्वाविंशतिरधश्चरमतंत्र्याः ।
तंत्री यथेयमुच्चोच्चतररवा किमपि तासु स्यात् ॥
द्वयंतर्नेष्टोन्यरवः श्रुतय इति रवाः इहान्त्यतंत्र्यां सः ॥

रागविबोधे ॥

भागत्रयान्विते मध्ये मेरो रिषभसंज्ञितात् ।
भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमलरिस्वरम् ॥

सङ्गीत पारिजाते ॥

इन ग्रन्थोक्तियों में सम्पूर्ण विवेचन का संक्षिप्त उत्तर है। परन्तु वह समस्त भाग अब अच्छी तरह तुम्हें मालूम ही है अतः पुनः उसको हम नहीं दोहरायेंगे। पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का अनुसरण मात्र, हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारों को न तो मान्य था, और न मान्य हो ही सकता है, यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिये। हम प्रगति के विरोधी नहीं हैं, ऐसा हम बारबार कहते ही आये हैं। पाश्चात्यों के मेजर, मायनर तथा सेमीटोन यद्यपि कुछ स्थानों पर हमारे ग्रन्थों में लागू किये गये हैं, तो भी उससे पाश्चात्यों के सब स्वर हमारे ग्रन्थकारों के गले नहीं मढ़े जा सकते। "मध्यम तथा पंचम" में अन्तर $\frac{९}{८}$ के परिमाण में है, ऐसा संगीत पारिजात से सिद्ध किया गया तो उसी पारिजात में शुद्ध रे तीन श्रुति की होकर उसका षड्ज से प्रमाण $\frac{९}{८}$ पड़ता है। सोमनाथ के शुद्ध रे का प्रमाण तो दक्षिण में $\frac{१६}{१५}$ माना जाता है और उसी का शुद्ध रे तीन श्रुति का ही है, यह तथ्य कैसे भुलाया जा सकता है?

सङ्गीत पारिजात की सहायता से काफी थाट के स्वरान्तर हमको भली प्रकार मिलते ही हैं। ४०५ आन्दोलन के धैवत से ३०१$\frac{१७}{४३}$ का गन्धार मिलेगा ही। चाहें तो उसे ३०० आन्दोलन का करने के लिये हम अपनी सम्मति दें, किन्तु अपने प्रचलित सङ्गीत में नवीन श्रुतिस्वर पंक्ति कायम करके हम विरोध करने के लिये तैयार नहीं हैं। हमारे कहने का आशय यही है कि वह पंक्ति कायम करने के लिये ग्रन्थों की खींच तान करने की आवश्यकता नहीं। राग में श्रुति-स्वर का विभाजन करते समय वास्तविक कठिनाई आयेगी।

श्रुतिस्वर की चर्चा करके फिर हमने भैरव थाट के जन्य रागों पर विचार किया था। भैरव मेल में जो राग आते हैं, उनके नाम लक्ष्य संगीत तथा अभिनवराग मंजरी में इस प्रकार दिये गये हैं:—

भैरवश्च कलिंगश्च रंजनी मेघपूर्विका ।
सौराष्ट्री जोगिया चैव रामकेली प्रभातकः ॥

विभासो गौर्यहीरी स्यात्पंचमो ललिताद्यकः ।
सावेरी चाथ बंगालो भैरवः शिवपूर्वकः ॥
आनन्दभैरवोऽप्यत्र गुणक्रिया हिजेजकः ।
इत्येते भैरवान्मेलाज्जाता रागा बुधैर्मताः ॥

लक्ष्यसङ्गीते ॥

भैरवाख्यसुमेलाच्च जाता रागास्त्रयोदश ।
उत्तरांगप्रधानत्वात् प्रातर्गेयाः सुसंमताः ॥
भैरवो रामकेलिश्च कलिंगो जोगियाव्हयः ।
बंगालोऽथ विभासश्च रंजनी मेघपूर्विका ॥
प्रभाताख्योऽथ सौराष्ट्री भैरवः शिवपूर्वकः ।
आनन्दभैरवो गुणकर्याहीर्यादिभैरवः ॥

अभिनवरागमंजर्याम ॥

ये सब राग उस समय तुमने अच्छी तरह से समझ लिये थे तथा संभाषण समाप्त होने से पूर्व तुमने उन रागों की पारस्परिक भिन्नता के सम्बन्ध में मुझसे प्रश्न भी किये थे, यह मुझे स्मरण है । इसलिये इस सिंहावलोकन के समय उन रागों के सम्बन्ध में मुख्य बातों पर दो-दो शब्द कहूंगा । लक्ष्यसंगीत में भैरव के जन्यराग लगभग पन्द्रह अथवा सोलह कहे गये हैं और अभिनवरागमंजरी में तेरह ही कहे हैं । मंजरी में "गौरी, हिजाज व ललितपंचम" ये तीन नहीं बताये गये ।

इन तमाम रागों के सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि केवल एक गौरी राग के अतिरिक्त शेष सब रात्रि के अन्तिम प्रहर में अथवा प्रातःकाल गाये जाने वाले राग हैं । शास्त्रकारों ने गौरी को भैरव मेल में लिया है । इसमें तीव्र मध्यम वर्ज्य होने से उन्होंने ऐसा किया । यद्यपि गौरी भैरव मेल में लिया है, तो भी वह पूर्वाङ्ग प्रधान है तथा उसे सायंकाल में गाते हैं; इस सम्बन्ध में कहीं मतभेद नहीं । कोमल मध्यम लिये जाने वाले गौरी का स्वरस्वरूप इस प्रकार है:—

सा नि़ ग नि़
प ग,रे॒, सा, सा, रे॒, सा, नि़, सा रे॒ ग, रे॒, सा, प ग रे॒ सा, सा ध॒, प, म, प ग, रे॒, प ग, रे॒, सा । प, ध॒ प, सां, रें॒ सां, सां रें॒, गं रें॒ सां, सां नि ध॒ प, म, प ग, रे॒ ग, सां, नि ध॒ प, म प ग, रे॒, ग, रे॒, सा ।

यह स्वरूप अति सुन्दर है । इस स्वरूप में प्रातःकाल का भास होने योग्य कुछ नहीं । "ललितपंचम" राग को इस थाट में लेने का कारण इतना ही है कि इसमें धैवत

कोमल है। ललित-स्वरूप में युक्ति से पंचम शामिल करने पर "ललित पंचम" होता है, ऐसी मान्यता है। एक गायक ने ललितपंचम का स्वरूप इस प्रकार कहा थाः—

सां नि ध प, मं ध नि ध, प, म, म ग, नि ध मं ग, मं ग रे सा, सा म, म ग, प ध प, म, म ग, मं ग रे सा। मं ध सां, रें सां, नि रें गं रें सां, रें सां, नि ध प, मं ध नि ध प, म, म ग, मं ध नि ध मं ग, मं ग रे, सा।

दूसरे एक गायक ने इसको केवल "पंचम" नाम ही दिया। उसने कहा कि उसके गुरु के मतानुसार "पंचम" राग दो प्रकार से गाया जाता है। एक में पंचम वर्ज्य करते हैं और दूसरे में लेते हैं। किसी भी पंचम प्रकार में ललितांग थोड़ा बहुत रहेगा ही, यह भी उसने कहा। पंचम वर्ज्य किया जाने वाला एक प्रकार भी तुमको मैंने बताया ही था।

भैरव मेल के जन्य रागों में कई तो भैरव प्रकार ही हैं। अर्थात् उनमें भैरव अंग प्रधान रहेगा ही। भैरव से अन्य अङ्गों का संयोग करना हो तो भैरव के खास अङ्ग ये हैं:—

रे रे, सा, ध, सा, रे, सा, ग म रे, रे, सा, ग म, ध, प, म प म ग, म रे सा। प, ध, नि सां, ध, नि सां, रें, सां, नि सां ध, गं मं पं, मं गं, मं रें, सां, नि सां, ध, नि ध, ध, प, म ग, म प, ध, ध, प, म ग म रे, ग म प म ग, म रे, रे,सा। इन स्वरसमुदायों से यह बात ध्यान में आजायेगी। इनमें से 'रे, सा, ध, नि सा, म ग रे, प म ग, म रे, सा' इतना भाग ही भैरव दिखा सकता है। लखनऊ के एक गायक ने मुझसे जो कहा था वह इस समय याद आता है। उसने बताया था कि हमारी परम्परा में 'म रे सा' ऐसा ही भैरव में करना संमत है। भैरव में मध्यम से ऋषभ पर मींड से बार-बार आते हैं। यह कृत्य सुन्दर अवश्य दीखता है, परन्तु अवरोह में गन्धार वर्ज्य करना ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता। उस गायक का कथन यह भी था कि 'म ग रे, सा' किया जाय तो वह 'रामकली' होगा। मेरी समझ से उसके इस मत को कोई विशेष आधार नहीं। भैरव का समप्रकृतिक राग 'रामकली' ही होगा। हमारे गायक यह मानते हैं कि भैरव का विस्तार मन्द्र व मध्य स्थानों में तथा रामकली का विस्तार मध्य व तार स्थानों में विशेष होता है। उन्हीं के शब्दों में 'भैरव नीचे को देखता है और रामकली ऊपर को देखती है।' उनका यह कहना कुछ अन्शों में ठीक भी है। अब यह रामकली का स्वरूप देखो ताकि उसके कथन का मर्म तुम्हारे ध्यान में आजायेः—

सा, ध, ध, प, म, म प, प ध, प, नि ध, प, प ग, म ध, प म ग, रे सा, सा रे सा. प ग, म ग रे, सा, ध प, ग म ध प, प ध प, नि सां नि ध, प, प ग, म ध प, नि ध, रें

सां, नि धु, प, प ग म ग, रे, सा। धु, प, ग म प, धु, नि धु, प, ग प, सां, नि धु, प, प, प,
नि नि
धु, सां, नि सां, धु सां, रें सां, गं रें सां, सां, धु धु प, म ग, म प, धु, रें सां नि धु, धु प, प ग, म ग, रे सा।

ये दोनों राग समप्रकृतिक होने के कारण प्रायःएक दूसरे में मिल जाते हैं इससे कभी कभी तो जानकार लोग भी भ्रम में पड़ जाते हैं। यह भ्रम दूर करने के लिये ख्याल गायकों ने रामकली में दोनों मध्यम लेने का व्यवहार प्रारम्भ किया जो एक अर्थ में ठीक ही हुआ। 'धु, प, मं प धु नि धु, प, प ग, म ग, रे सा' यह तान सब उलझन दूर कर देगी। आज कल तो इस तान पर ही रामकली की पहिचान अवलम्बित है। ध्रुपद गाने वाले बहुधा तीव्र मध्यम लेना पसन्द नहीं करते; परन्तु उनका अपना राग भैरव से पृथक रखना कुछ कठिन हो जाता है। कोई रामकली बिलकुल तार सप्तक से आरम्भ करते हैं। रामकली में पंचम स्वर विशेष महत्व का रहता है, इसमें संशय नहीं। दो गन्धार लिये जाने वाले रामकली राग का भी मैंने उल्लेख किया था जो तुम्हें स्मरण होगा ही; उसका स्वरूप इस प्रकार था:—

'प सा, सा रे ग, म, धु, धु, प, प, ग, ग म धु प, प गु, प रे सा"

यह स्वरूप मनोरंजन के लिये संग्रह करलो। फिरत सब रामकली की करके कहीं कहीं कोमल गन्धार का स्पर्श करके राग पृथक दिखाने का प्रयत्न करना चाहिये। ये दो गन्धार वाला प्रकार बिलकुल अप्रसिद्ध है।

आनन्दभैरव के पूर्वाङ्ग में भैरव तथा उत्तराङ्ग में बिलावल का कुछ अङ्ग दिखाया जाता है। इन दोनों अङ्गों का मिश्रण कठिन होने से बीच में मध्यम मुक्त रखते हैं। ऐसा करने से भैरव का प्रभाव कम होकर कुछ ललिताङ्ग सामने आजाता है। और उसके आने पर फिर तीव्र धैवत लेने के लिये पर्याप्त जगह हो जाती है। देखो:—ग, म ग रे, रे,
ग
सा, सा, रे ग, म, म प, सां, ध नि प, म ग, म रे, प म ग रे, रे, सा। आनन्दभैरव अप्रसिद्ध राग है, यह क्वचित् ही सुनने में आता है। आनन्द भैरव तथा आनन्दभैरवी ये दोनों पृथक राग हैं, यह ध्यान रखना चाहिए। आनन्दभैरवी आसावरी थाट में है। 'शिवमत भैरव' एक विवादग्रस्त प्रकार है। कोई कहते हैं कि संस्कृत ग्रन्थों में रे, प वर्जित जो भैरव राग दिया गया है उसे 'शिवमत भैरव' मानना चाहिये। उसके स्वर कैसे हैं व क्यों हैं, यह प्रश्न किया जाय तो वे उत्तर नहीं दे सकते। उस भैरव का चित्र शिवजी का अवश्य है परन्तु उस चित्र से तीव्र कोमल स्वरों का क्या बोध हो सकता है? किसी का कहना है कि पुण्डरीक विट्ठल ने जो अपनी रागमाला में कोमल गन्धार तथा कोमल निषाद लिये जाने वाले तथा ऋषभ व पंचम वर्ज्य किये जाने वाले शुद्ध भैरव का वर्णन किया है, उसे 'शिवभैरव' मानना अधिक सयुक्तिक होता। वह शिवजी के मुख से उत्पन्न हुआ है, यह भी एक कारण उनके मत में दिया जा सकता है। ऐसा भैरव कुछ हमारे मालकंस जैसा दिखाई देगा। इसमें मध्यम कम करके धैवत तथा गन्धार विशेष रूप से आगे लाने पड़ते हैं

दूसरे कहते हैं कि 'शिवमत भैरव' वही है जो हम हमेशा प्रचार में गाते हैं। वह प्रथम महादेव के मुख से उत्पन्न हुआ इसलिये उसको 'शिवमत भैरव' कहते हैं। परन्तु आज जिसे हम गाते हैं वही महादेवजी के मुख से निकला, इसका क्या प्रमाण? सारांश यह कि 'शिवमतभैरव' हमेशा विवादग्रस्त ही रहेगा। मेरे गुरु ने जो मुझे बताया था, वह मैंने तुमसे कहा ही है। वह इस प्रकार है:—

प म नि म म
ग, ग, म रे, ग प, म ग, म रे सा, सा, रे, सा, रे ग रे सा, सा धु, सा, ग, ग

नि नि
म रे, सा। प, धु, नि, सां, सां, रें, सां, धु नि सां, रें गं रें सां, नि सां धु नि धु प, प धु

नि नि
नि सां, धु प, म ग, म रे, सा। सा धु, धु, नि धु प, प ध नि सां धु, धु, प, ग ग रे, ग

प
म प म ग रे, सा। प, धु, नि सां, सां, रें सां नि सां धु, धु प, प ध नि सां, धु, धु, प, ग,

प
ग, म रे, ग प म ग, म रे, सा।

इस स्वरूप को ग्रन्थाधार नहीं मिलेगा, यह अलग कहने की आवश्यकता ही नहीं। इसमें एक जगह तीव्र धैवत आया है। यह ध्यान में होगा ही।

'बंगाल भैरव' में निषाद वर्ज्य है तथा अवरोह में ग वक्र है। यह प्रकार अप्रसिद्ध है। 'अहीरभैरव'. राग बहुत थोड़े गायकों को मालुम होगा। इसके पूर्वाङ्ग में भैरव तथा उत्तराङ्ग में काफी के स्वर हैं। इसका अन्तरा तीव्र ऋषभ से प्रारम्भ किया हुआ मैंने तुमको बताया ही था। यह राग अपने गुरू के अतिरक्त मैंने अन्य किसी गायक के मुख से नहीं सुना। इसलिये समाज में इसके सम्बन्ध में क्या मतभेद हैं, कहा नहीं जा सकता। इस प्रकार के राग गाने वाले पुराने गायक अब हमारे प्रान्त में नहीं रहे, यह भी यहां कह देना उचित है। अहीरीतोडी एक निराला राग है। प्रभातभैरव हमारे यहां सुनने में आता है। इसमें भैरव, कालिंगड़ा तथा ललित का मिश्रण दिखाई देता है, इसमें दोनों मध्यम लिये जाते हैं तब कुछ ललितस्वर रूप दीखता है। सौराष्ट्र-भैरव में दोनों धैवत का प्रयोग होता है, यह एक चमत्कारिक रूप ही है। इस राग की फिरत भैरव की करते हैं तथा बीच बीच में 'ग म ध, सां, ध म, ध, नि सां,' ऐसी भेदवाचक तान लेकर 'म, प, म ग, रे सा' इस प्रकार से भैरव में आकर मिलते हैं। यह राग भी अप्रसिद्ध है। ये समस्त राग मैंने यथा सम्भव पहिले कहे ही हैं इसलिये अब केवल संकेत मात्र से तुमको उनकी याद दिलानी है। 'सौराष्ट्र' में मेरी कही हुई सरगम तुम्हारे ध्यान में होगी ही। स्वर स्वरूप इस प्रकार होगा:—ग ग म ग रे, सा, ग म, ग रे, सा। ध म, म ध, नि सां, म ग म ग रे, सा। म, म, प, प, धु धु, नि धु प, सां, सां, धु, प, म ग म ग, रे रे सा। यह स्थूलस्वरूप है। पं० व्यंकटमखी ने इस राग में दो धैवत दिये हैं। 'कालिंगड़ा' राग बिलकुल सरल और प्रसिद्ध है। स्वरूप इस प्रकार है:—"नि, सा रे ग, म, म धु प म ग, सां, नि धु, प, ग म, प धु म म धु प म ग, म ग रे सा, नि सा रे ग।" ये स्वर कहते ही कालिंगड़ा दीखने लगेगा। यह राग नाटकों में तथा हरिकीर्तनों में प्रायः सुनने में आता है।

यह बिलकुल सरल राग है। 'मेघरंजनी' राग हमारे यहां दक्षिण से आया है। इसमें पंचम तथा धैवत दोनों स्वर वर्ज्य होने से यह इस थाट के अन्य समस्त रागों से तुरन्त पृथक हो जाता है। यह राग अब हमारे यहां विशेष लोकप्रिय होगया है। इसमें वादी मध्यम स्वर है जो बहुत सुन्दर दीखता है।

'जोगिया' राग हमारे यहां बहुत प्रसिद्ध है। सङ्गीत नाटकों में यह प्रायः सुनने को मिलता है। इस राग का वास्तविक स्वरूप इस प्रकार है:—'सा रे म, प, धु सां। सां, नि धु प, धु म, रे सा।' परन्तु कई बार इसके अवरोह में गन्धार लिया हुआ दिखाई देता है। कोई कभी-कभी अवरोह में कोमल निषाद का भी प्रयोग करते हैं। इस राग का आसावरी राग से सुन्दर योग होता है तब उसके आरोह में तीव्र ऋषभ तथा अवरोह में कोमल निषाद बहुत सुन्दर दीखता है। दक्षिण में जोगिया को 'सावेरी' कहते हैं। सावेरी के अवरोह में गंधार रहता है। जोगिया के अवरोह में गन्धार लेने से तान लेने में सुविधा होती है।

'गुणक्री' अथवा 'गुणकरी' राग स्वतन्त्र ही है। इसमें गन्धार तथा निषाद वर्ज्य हैं। इस राग को कोई जोगिया अंग से भी गाते हैं; जैसे:—'म, म, रे रे सा, प, धु, म, म रे सा' परन्तु मुझे भैरवांग से गाया जाने वाला प्रकार पसन्द है, वह इस प्रकार है:—'सा, सा रे, रे सा, धु, सा, रे, सा, म प म रे सा, सा धु प, म प म, रे सा।" गुणक्री में वादी धैवत अच्छा दीखता है। इस राग की प्रकृति गम्भीर है। प्रातःकाल में इसका गायन भला प्रतीत होता है।

'विभास' भैरव थाट का राग है, इसमें म नि वर्ज्य हैं। इसकी प्रकृति गम्भीर है तथा यह लोकप्रिय है। "धु, प, ग प, धु, प, ग रे सा, सां, धु, प" ये स्वर कहते ही ही, विभास राग तत्काल दीखने लगता है। भैरव मेल के इतने राग ध्यान में रहें तो पर्याप्त हैं। इनमें से आठ अथवा नौ तो भैरव अङ्ग के ही हैं और अनेक प्रातर्गेय एवं धैवत वादी वाले हैं। इस मेल का केवल गौरी प्रकार ही सायंगेय है।

भैरव मेल के रागों के लक्षण ध्यान में रखने के लिये यह श्लोक उपयोगी होगा:—

भैरवः स्यात्सदा पूर्णः कलिंगोऽपि तथैव च।
एकस्मिन् धैवतो वादी द्वितीये पंचमः स्मृतः॥
आनंदभैरवे तीव्रो धैवतोऽहीरभैरवे।
रिद्वयं निद्वयं चाथ धैवतस्तीव्रसंज्ञकः॥
बंगाल भैरवोऽनिः स्यादवरोहे गवक्रितः।
प्रभातभैरवः प्रोक्तो ललितांगपरिष्कृतः॥

सौराष्ट्रे धैवतद्वन्द्वमपधा मेघरंजनी ।
रामकली द्विमा प्रोक्ता द्विनिषादा च लक्ष्यके ॥
आरोहे गनिहीना स्याज्जोगियाऽथ गुणक्रिया ।
आरोहे चावरोहे च गनिस्वरैर्विवर्जिता ॥
गद्वयं निद्वयं चापि भैरवे शिवपूर्वके ।
विभासे मनिवर्ज्यत्वमिति सर्वे त्रयोदश ॥

लक्ष्यसंगीते ॥

अब हम पूर्वी थाट जनित रागों की ओर बढ़ें। पूर्वी एक संधिप्रकाश मेल में से है, यह तुमको विदित ही है। पूर्वी थाट पर विचार करते समय, हमने संभवतः बारह-तेरह रागों की चर्चा की थी। वे राग ये थेः—१-पूर्वी, २-श्री, ३-गौरी, ४-रेवा, ५-मालवी, ६-त्रिवेणी, ७-टंकी, ८-पूरियाधनाश्री, ९-जेताश्री, १०-दीपक, ११-परज, १२-वसंत, १३-विभास। ये नाम ध्यान में रखने के लिये यह श्लोक उत्तम हैः—

मेले पूर्व्यभिधानके प्रकथिता गौरी च रेवा पुनः ।
मालव्यप्यथ सा त्रिवेण्यथ च जैतश्रीश्च टंकी तथा ॥
वासंती परजाभिधा प्रकथिता पूर्याधनाश्रीरथ ।
श्रीरागश्च विभासदीपकमुखा रागास्तदुत्पत्तिकाः ॥

अभिनवरागमंजरी में पूर्वी थाट के प्रसिद्ध राग केवल दस ही दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैंः—

रागा दश प्रसिद्धाः स्युः पूर्वीमेलभवा जने ॥
श्रीगौरी मालवी टंकी पूर्वी जेताश्रिका तथा ॥
त्रिवेणी पूरियापूर्वधनाश्रीः सायमीरिताः ।
वसंती परजाख्या च रात्र्यामन्तिमयामके ॥

वस्तुतः प्रचार में ये ही दस राग हमें सुनाई देते हैं। दीपक तो कोई गाता ही नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि उसके गाने से आज दीपक नहीं जलते। कुछ गायक जो कारण बताते हैं वह यह है कि इस राग से तानसेन जल गये थे तब से इस राग को शाप लग गया है; परन्तु इस दीपक के सम्बन्ध में लोचन पण्डित ने जो कहा था कि "सर्वैर्मिलित्वालेख्यः॥ यह तुम्हारे ध्यान में होगा ही। इससे यह राग लोचन के समय से लुप्त हुआ होगा, ऐसा तर्क किया जा सकता है। लोचन तानसेन के पूर्व हुआ माना जाता है। अस्तु, पूर्वी थाट के परज, वसंत तथा विभास तीनों राग उत्तरांग वादी हैं तथा शेष सब पूर्वाङ्ग वादी हैं। "परज" तथा "वसंत" कुछ-कुछ समप्रकृतिक

होने के कारण इनको एक दूसरे से पृथक रखने में कुशलता की आवश्यकता है। इन दोनों रागों में अनेक तानें सामान्य होंगी, यह माना जा सकता है। इन दोनों रागों में एक छोटी सी बात ध्यान में रखने योग्य है कि वसंत के आरोह में कई गायक पंचम वर्ज्य करते हैं। "मं ध़ रें सां, नि, ध़, प" ऐसी सावकाश तान ली तो वसंत दिखने लगेगा। "मं ध़ नि, सां, रें सां, नि ध़ प, ग म ग" ऐसा किया तो परज दिखेगा। वसन्त में' 'मं ग, मं ग" ऐसे टुकड़े हमेशा आते रहते हैं, वह परज में नहीं आते। इन टुकड़ों को "मगयोः पुनरावृत्तिः" कहते हैं। परज में "नि" एक विश्रान्ति स्थान है। जैसेः—"प ध़ प ध़ नि नि सां, नि नि सां रें सां नि ध़ नि" ऐसा वसन्त में नहीं होता। वसंत में "धैवत" एक विश्रान्ति स्थान है। जैसेः—सां, नि ध़, रें नि ध़, नि रें गं रें सां नि ध़"। परज में "ग म प ध़ नि सां, रें सां नि ध़ प, ध़ प ग म ग" ऐसी तान चलेगी; किन्तु वसंत में ऐसी नहीं ली जाती। "मं ध़ रें सां" इस टुकड़े में किंचित् श्री राग का भास इस ऋषभ के कारण होगा। पूर्वी थाट का विभास अप्रसिद्ध राग समझा जाता है। विभास में म, नि स्वर वर्ज्य अथवा सर्वथा दुर्बल रहेंगे, ऐसा एक साधारण नियम गायक मानते हैं। विभास राग शंकराभरण, भैरव, पूर्वी तथा मारवा इन चार थाटों में चार प्रकार से सुनने में आता है। मैंने एक सरगम तुमको पूर्वी थाट के विभास की बताई थी, वह तुम्हें याद होगी ही। विभास में धैवत हमेशा वादी होना चाहिये तथा पंचम पर मुकाम होना चाहिये और उसमें "प ग" अथवा "ग प" सङ्गति होनी चाहिये। कोई पूर्वी थाट के रागों के स्थूलदृष्टि से दो वर्ग करते हैं। पहले में कुछ श्रीराग का अङ्ग है तथा दूसरे में पूर्वी अङ्ग है। पहिले वर्ग में श्री, गौरी, मालवी, त्रिवेणी, टंकी, वसंत राग लिये जाते हैं तथा शेष सब राग दूसरे वर्ग में लेते हैं। यह वर्गीकरण केवल सुविधा के लिये है। श्री अङ्ग केवल "सा, रे़, रे़, सा" इतने से टुकड़े में है। किन्तु यह विलक्षण एवं स्वतन्त्र है, इसमें संशय नहीं। किसी का कहना है कि इस अङ्ग में ऋषभ अति कोमल रहता है, इसलिये वह निराला ही दिखता है। परन्तु तानों में ऋषभ प्रायः वैसा नहीं रहता, इस तथ्य को मार्मिक व्यक्ति समझते हैं। अब हम पूर्वी-जन्य सायंगेय रागों पर संक्षेप में विचार करें।

"पूर्वी" राग आरोहावरोह में सम्पूर्ण है। इसमें दोनों मध्यम आते हैं; परन्तु कोमल मध्यम "ग म ग" इस प्रकार से ही आता है यानी "ग म प" ऐसा नहीं करते। पूर्वी का स्वर स्वरूप इस प्रकार है:-"नि़, सा रे़ ग, म ग, मं प, ध़ प, ग म ग, नि ध़ प, मं ग, म ग, रे़ ग, ध़ मं ग, रे़ ग रे़, सा।" वादी गंधार है। पूरियाधनाश्री में पूर्वी अङ्ग है; परन्तु कोमल मध्यम सर्वथा वर्ज्य है। इसके अतिरिक्त इस राग में "मं रे़ ग" यह टुकड़ा हमेशा रहता ही है। पूर्वी में यह कभी चलेगा ही नहीं यह बात तो नहीं है; किन्तु यह टुकड़ा पूर्वी का रागवाचक नहीं है। पूरियाधनाश्री का स्वरूप इस प्रकार है:-"ग रे़ सा, नि़ रे़ सा, नि़ रे़ ग, मं रे़ ग, प मं ध़ प, नि ध़ प, रें नि ध़ प, मं ग मं रे़ ग, मं ध़ मं ग, रे़ सा।"

"रेवा" राग बिलकुल स्वतन्त्र है। इसमें म तथा नि स्वर वर्ज्य हैं। हम इस राग को पूर्वी थाट में लेते हैं। क्योंकि यह सायंगेय है और इसमें पूर्वी अङ्ग है। इसका स्वरूप इस प्रकार है:—

"ग, रे॒ ग, प ग, रे॒ सा, सा रे॒ ग, प, प ध॒, प ग, सा रे॒ ग, रे॒ ग, सा रे॒ं सां, ध॒ प, ग, प ग, रे॒ सा।" यह राग बिलकुल अप्रसिद्ध है।

"जेताश्री" राग के आरोह में ऋषभ तथा धैवत वर्ज्य हैं तथा अवरोह सम्पूर्ण है। इस राग के सम्बन्ध में गायकों में मतभेद पाया जाता है। किसी का मत है कि इस राग में दोनों धैवत लेने चाहिये, किसी के मत से इसके आरोह में धैवत वर्ज्य किया जाय, और रिषभ लिया जाय। आरोह में रिषभ व धैवत वर्ज्य करने के लिये 'संगीत-पारिजात' में इस प्रकार उल्लेख है:—

कोमलाख्यौ रिधौ यत्र गनी च तीव्रसंज्ञितौ।
मस्तीव्रतरसंज्ञः स्याज्जयश्रीनामके पुनः॥
आरोहणे रिधौ न स्तो निस्वरोद्ग्राहमंडिते॥

मेरे गुरु ने भी मुझे ऐसा ही बताया है। आरोह में रिषभ लिया हुआ मैंने सुना है; परन्तु वह आरोह में दुर्बल ही रहता है। जेताश्री का स्वरूप इस प्रकार है:-

रे॒　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　रे॒
सा, ग प म॑ ग, म॑ ग, रे॒ सा, नि़ सा, ग, म॑ प, ध॒ प, नि ध॒ प म॑ ग, म॑ ग, रे॒ सा,।
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　म॑
प, ध॒ प, सां, सां, रे॒ं, सां नि सां, गं रे॒ं सां, रे॒ं नि ध॒ प। म॑ प, रे॒ं सां नि ध॒ प, प, म॑ ग,
रे॒
म॑ ग, रे॒ सा।

"दीपक" राग लुप्त हो गया है, ऐसी मान्यता होने के कारण इसके प्रचलित स्वरूप के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर भी हम लक्ष्यसङ्गीत में वर्णित स्वरूप को पसन्द करेंगे। उसमें वर्णन इस प्रकार है:—

कामवर्धनिकामेलाद्दीपको गुणिसंमतः।
आरोहणे रिवर्ज्यं स्यादवरोहे निवर्जितम्॥

आरोह में रिषभ तथा अवरोह में निषाद वर्ज्य होने के कारण यह स्वरूप स्वतन्त्र ही होगा और भी कुछ ग्रन्थों में वर्णित दीपक का स्वरस्वरूप मैंने तुमको बताया ही था; इस राग की एक-दो सरगम भी मैंने कही थी। यह राग बहुत मधुर है।

अब जिन रागों में थोड़ा सा श्रीअङ्ग आता है, उनको हम देखलें। प्रथम श्रीराग ही देखें।

श्रीराग के आरोह में गन्धार तथा धैवत वर्ज्य हैं तथा अवरोह में सब स्वर आते हैं। कभी-कभी गायक धैवत के नियम की ओर तान लेते समय दुर्लक्ष्य करते हैं; परन्तु ऐसा करना उचित नहीं है। श्रीराग की सारी खूबी 'सा रे, ग रे, सा' इस टुकड़े में है, यह मैं कह ही चुका हूँ। श्रीराग का चलन बहुधा इस प्रकार रहता है:—सा, ग रे सा, प, मं प धु प, धु मं ग, रे मं ग, रे, सा, सा रे सा। मं प, नि, सां, रें, सां, रें नि धु प, मं प नि धु प, धु मं ग रे मं ग रे, ग रे, ग रे, सा।

"गौरी" राग अनेक प्रकार से गाया हुआ प्रचार में दिखाई पड़ता है। कोई एक तीव्र मध्यम लेकर तथा श्री अङ्ग सम्हालकर इसे गाते हैं, कोई दोनों मध्यम लेकर गाते हैं। श्री तथा गौरी के अन्तर का वर्णन गायक इस प्रकार करते हैं "श्री नीचे को देखता है और गौरी ऊपर को देखता है।" कोई कहते हैं कि आरोह में धैवत लेकर मध्य एवं तार स्थान में श्री गाया जाय तो गौरी होगा। इस प्रकार का उदाहरण एक गायक ने मुझे इस प्रकार दिया था:—'प, मं ग, मं रे ग, रे सा, मं धु, नि सां, रें सां, रें नि धु प, प मं ग रे, ग रे, सा, सा प, प मं ग नि रे, ग रे सा। नि, सां, रें नि धु प।' यह स्वरूप बुरा नहीं दीखता। कोई गौरी में कालिंगड़ा राग के कुछ अङ्ग लाते हैं। यह गौरी राग अब प्रचार में सर्वविदित होगया है।

"मालवी" राग स्वतन्त्र है। इसके आरोह में निषाद वर्ज्य है तथा अवरोह में धैवत वर्ज्य है। फिर भी कोई अवरोह में थोड़ा धैवत का स्पर्श क्षम्य मानते हैं। मालवी का स्वरूप ऐसा होगा:—"सां, नि प, ग, मं ग, रे सा, सा ग, मं धु, रें सां, सां, रें नि, प, मं ग, मं ग, रे सा।"

"त्रिवेणी" में मध्यम वर्ज्य है। इसलिये यह एक स्वतन्त्र स्वरूप है, ऐसा कहा जा सकता है। त्रिवेणी का स्वरस्वरूप ऐसा होगा:—'सा, रे, ग रे सा, सा रे, ग प ग, प रे, सा, सा, प, प, धु प, सां, नि धु, प, प ग, रे ग रे सा'

"टंकी" राग को कोई 'श्रीटंक' भी कहते हैं। इस राग में भी मध्यम वर्ज्य करने को कहा जाता है। परन्तु ऐसा करने से 'त्रिवेणी' से उसकी उलझन होने की संभावना है; उसे दूर करने के लिये कोई 'त्रिवेणी' में तीव्र म लेने को कहते हैं। मुझे 'त्रिवेणी' में मध्यम वर्ज्य करना पसन्द है, कारण ऐसा करने को पारिजात का आधार है। जैसे:—

गौरीमेलसमुद्भूता त्रिवेणी मस्वरोज्झिता।
अवरोहणवेलायां षड्जोद्ग्राहांशरिस्वरा॥

इस श्लोक में मेल तो गौरी कहा है, परन्तु इस मेल के कई राग पूर्वी मेल में चले गये हैं, यह प्रसिद्ध ही है। 'त्रिवेणी' में वादी ऋषभ है, जो हमको मान्य है। मेरी समझ

से टंकी के अवरोह में थोड़ा सा तीव्र मध्यम लिया जाय और वादी पंचम मान लिया जाय तो ये दोनों राग सहज ही पृथक हो सकते हैं। कोई त्रिवेणी में धैवत तीव्र लेते हैं; परन्तु यह मत हमको पसन्द नहीं आयेगा।

पूर्वीथाट जनित रागों की पारस्परिक भिन्नता को ध्यान में रखने के लिये यह श्लोक विशेष उपयोगी होगाः—

संपूर्णाऽथ द्विमा पूर्वी मध्यमाल्पा तु टंकिका।
श्रीरागो ह्यधगो रोहे त्रिवेणी मस्वरोज्झिता॥
कलिंगांगा भवेद्गौरी जेताश्रीररिधा मता।
मालवी त्वनिरारोहेऽवरोहेऽपि धदुर्बला॥
धनाश्रीः पूरियाद्यासौ पूर्व्यंगा चैकमध्यमा।
द्विमध्यमा तथा तारषड्जचित्रा वसंतिका॥
अपारोहे मगावृत्ता भवेद्रक्तिप्रदा निशि।
परजाव्हा भवेत् पूर्णा द्विमोत्तरांगशोभना॥

अभिनवरागमंजर्याम्।

अब हम मारवा थाट के रागों की ओर बढ़ें। मारवा थाट पर किये गये एक-दो आक्षेप मैंने सुने हैं। पहला यह कि मारवा राग में पंचम वर्ज्य है तो फिर मारवाथाट मानना ठीक कैसे कहा जा सकता है? दूसरा यह कि मारवा में ऋषभ कोमल है तथा धैवत तीव्र है इसलिये इसको थाट मानना अनुचित होगा। यह दूसरा आक्षेप करने वालों का मन्तव्य ऐसा दीखता है कि प्रत्येक थाट के उत्तरांग तथा पूर्वाङ्ग में षड्ज पंचम भाव तत्त्व रखना चाहिये। पहिले आक्षेप का उत्तर इतना ही है कि मारवामेल तथा मारवा राग ये दोनों पृथक हैं। मारवाथाट वस्तुतः ऐसा है:—सा रे॒ ग मं प ध नि सां। और मारवा राग ऐसा है:—सा रे॒ ग मं ध नि ध सां। थाट का नाम उससे उत्पन्न होने वाले किसी लोकप्रिय राग के नाम पर देने की परिपाटी प्राचीनकाल से है। दूसरे आक्षेप के लिये भी कुछ-कुछ ऐसा ही उत्तर होगा। फिर हम यह कह सकते हैं कि जो कोमल रे तथा तीव्र ध लिये जाने वाले अनेक राग हम आज गाते हैं, सुविधा के हेतु यदि उनका मारवा थाट मान लिया तो यह कोई भारी अपराध नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में चतुर्दण्डिप्रकाशिका, रागलक्षण आदि ग्रन्थों में ऐसा थाट स्वीकार किया गया है। प्रत्येक थाट के स्वरों में षड्ज पंचम भाव रहना ही चाहिये, ऐसा संस्कृत ग्रन्थकार नहीं कहते। मुख्यतः रागों के वर्गीकरण की सुविधा के लिये थाट रहता है, यह स्पष्ट ही है। व्यंकटमखी ने ७२ थाट बताये हैं, और उन्होंने ऐसा क्यों किया; यह भी स्पष्ट बताया है। शुद्ध सप्तक में स्वर षड्ज-पंचम भाव के नियम से रखे गये होंगे और इस नियम के हम विरुद्ध नहीं हैं।

मारवा थाट से उत्पन्न होने वाले बारह राग हमने देखे थे। उनके नाम इन श्लोकों में दिये गये हैं:—

मेलेऽस्मिन्मारवाख्ये श्रमदुरधिगमे पूरिया संमतेयं
तत्रैवैषा प्रसिद्धा विलसति ललिता सोहनी मालिगौरा ।
झंखारा साजगिर्यप्यथ तदनु वराटी च जैत्रो विभासः
सन्त्यन्ये पंचमाद्यास्त्विह खलु बहवो भट्टिहारादयोऽपि ॥

ये ही नाम अभिनवरागमंजरी में इस प्रकार कहे गये हैं:—

मारवामेलनोत्थास्ते रागा द्वादश विश्रुताः ।
सायंगेया भवेयुः षट् प्रातर्गेयास्तथैव च ॥
पूरिया मारवा जेता गौरा साजगिरी तथा ।
वराटी सहिता एते सायंगेया मता बुधैः ॥
ललितः पंचमश्चैव भट्टियारो विभासकः ।
भङ्खारः सोहनी ख्याता प्रातर्गेया विदां मते ॥

इस श्लोक में मारवा मेल जन्य रागों के नाम बताकर उन रागों के सायंगेय तथा प्रातर्गेय ऐसे वर्ग कहे हैं। सायंगेय राग पूर्वाङ्गवादी तथा प्रातर्गेय राग उत्तरांगवादी रहते ही हैं। वैसे ही प्रथम वर्ग के राग दिन के अन्तिम प्रहर में तथा दूसरे वर्ग के राग रात्रि के अन्तिम प्रहर में गाये जाते हैं।

अब हम संक्षेप में इन बारह रागों के लक्षण देखेंगे। 'पूरिया' तथा 'मारवा' राग समप्रकृतिक हैं। इन दोनों में भी पंचम वर्ज्य है। पूरिया राग की प्रकृति विशेष गम्भीर है। इस राग का मुख्य चलन इन स्वरसमुदायों से दिखाई देगा:—"ग, नि़ रे॒ सा, नि़ ध़ नि़,

ग
मं ग, मं ध मं ग, नि़ रे॒ ग, मं ग, नि़ रे॒ सा, नि़ ध़ नि़, मं़ ग़, मं़ ध़ नि़, ध़ नि़, नि़ रे॒ ग,

ग
नि़ रे॒ सा, नि, मं ध, मं, ग, नि़ रे॒ ग, मं ध मं ग, मं ग, नि़ रे॒ सा।"

इस राग का प्रभात का 'जवाब' सोहनी राग है, ऐसा गायक कहते हैं। उस राग का चलन ऐसा है:—'सां, नि ध नि, मं ग, मं ध नि सां, रें॒, सां, नि रें॒ नि सां, मं ध, ग, मं ध नि सां, रें॒ सां, सां, नि ध, मं ध नि सां नि ध, ग, गं, मं गं, रें॒, सां, सां, नि ध, ग मं ध, ग, मं ग रे॒ सा।' सोहनी उत्तरांगवादी होने के कारण इसका चलन मध्य तथा तार स्थान में अधिक शोभा देता है। इसके अतिरिक्त सोहनी के मुख्य रागवाचक स्वर-समुदाय यह हैं, 'मं ध नि सां रें॒, सां, नि ध नि सां, नि ध, ग'। ये पूरिया में इस प्रकार नहीं लिये जाते। कोई पूरिया में धैवत कोमल लेने को कहते हैं, कोई दोनों धैवत लेने को कहते हैं; परन्तु हम धैवत तीव्र ही लेंगे। पूरिया में गायक-वादक मींड का काम बड़ी सुन्दरता से करते हैं। मन्द्र सप्तक में किया गया काम पूरिया में विशेष प्रिय लगता है। इस राग को कोई पूर्व रात्रि में गाते हैं परन्तु इसका वास्तविक समय सन्ध्याकाल है। 'मारवा' राग प्रायः 'खड़े' स्वरों में गाते हैं अर्थात् इसमें मींड व नाजुक काम विशेष

नहीं रहता। ऐसा यदि कोई करने लगे तो वहां पूरिया थोड़ा बहुत सामने आजायेगा। मारवा में पर्याप्त हिंडोल अङ्ग दिखाई देगा। परन्तु हिंडोल में ऋषभ वर्ज्य है तथा मारवा में वह बहुत महत्वपूर्ण स्वर है। मारवा की अनेक तानें रिषभ पर लाकर समाप्त करते हैं तथा वहां यह राग बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। जैसेः—ध म॑ ग रे॒, ग म॑ ग रे॒, सा, रे॒ नि़ ध़, म़॑ ध़ सा, रे॒, ग रे॒, म॑ ग रे॒, नि ध म॑ ग रे॒, ध म॑ ग रे॒, ग म॑ ग रे॒, सा। ग, म॑ ध सां; सां, रें॒, गं रें॒, मं॑ गं रें॒, सां, नि रें॒ नि ध म॑ ध म॑ ग रे॒, नि ध म॑ ग रे॒, ध म॑ ग रे॒, ग म॑ ग रे॒, सा। मारवा की यह समस्त तानें श्रोता तत्काल पहचान लेंगे। ऋषभ का ऐसा महत्व देखकर कुछ लोग रिषभ को वादित्व देते हैं, परन्तु रिषभ का जितना बाहुल्य है, उतना ही गन्धार का होने से कुछ लोग मारवा में गंधार को वादी मानते हैं। वे कहते हैं रि, ध संवाद की अपेक्षा ग, ध संवाद ही अधिक सयुक्तिक होगा। उनके कथन में भी सार्थकता है। मारवा के आरोह में नि कई बार वक्र किया हुआ दिखता है, फिर भी इस राग में, "नि रे॒ नि ध म॑ ध म॑ ग रे॒" ऐसी तान आ सकती है, यह ध्यान में रखने की बात है। मारवा में निषाद दुर्बल है तथा पूरिया में वह एक महत्व का स्वर है, यह भेद भी ध्यान में रखो। उसी प्रकार धैवत स्वर भी बहुत महत्व प्राप्त करता है उतना वह पूरिया में महत्वपूर्ण नहीं है।

"जेत" एक विवादग्रस्त राग है। "जेत कल्याण" तथा "जेत" यह दोनों राग अलग-अलग हैं। जेतकल्याण कल्याण थाट का राग है, उसमें म, नि वर्ज्य हैं तथा पंचम वादी स्वर है। आरोह में रि, ध बिलकुल दुर्बल हैं। "प ध ग" ऐसा एक छोटा सा स्वरसमुदाय महत्व का है, यह मैंने कहा ही था। जेत राग में ऋषभ कोमल है। इसमें भी पंचम को वादी मानते हैं, म, नि दुर्बल हैं। जेत में रि, ध कौनसे व कैसे होंगे इस सम्बन्ध में अनेक बार विवाद उत्पन्न होता है। कोई कहता है वे "न चढ़े न उतरे" ऐसे होंगे और कोई कहता है जेत में दोनों रे तथा दोनों ध होंगे। ऐसी मनोरंजक बहस हमारे देखने में प्रायः आती है। मेरे गुरु का कहना है कि जेत में दोनों ऋषभ तथा दोनों धैवत लेने चाहिये। उन्होंने जेत इस प्रकार गाया थाः—

प नि़ म॑ रे॒ नि़ ध़
"ग प ग, सा ग, प म॑, ध॒ प ग, प म॑ ग, ग रे॒ सा, रे॒ सा सा, रे सा, प़ ध़ प़,।
प रे॒ सा नि़
ग प सां, सां, सां रें सां, (प) ग, ग, रे॒ सा, प ग प म॑ ध॒, प, प ग, सा ग, प म॑ ध॒ प, ग,
रे॒
ग रे॒ सा। ऐसा प्रकार उन्होंने सावकाश गाया। यही चीज मैंने कई नामी गायकों के मुख से सुनी। यद्यपि प्रत्येक ने कहीं-कहीं अपना "अङ्गसुभाव" इसमें शामिल किया तो भी कुल मिलाकर स्वरूप ऐसा ही था। सारांश यह कि जेत में दोनों रि, ध, पंचम वादी, म नि बिलकुल दुर्बल; इन बातों को मानकर चलना ही सुविधाजनक होगा।

"साजागिरी" राग सर्वथा अप्रसिद्ध है। मेरे गुरु के कहे अनुसार इसमें दोनों मध्यम तथा दोनों धैवत होंगे। उन्होंने जो प्रकार गाया, निःसन्देह वह अति मधुर था। मैंने तुम्हें वह ज्यों का त्यों सुनाया था। सार्यगेय रागों में दोनों मध्यम प्रयुक्त राग पूर्वी है।

साजगिरी में पूर्वी का अन्श बिलकुल गौण है। कुछ स्थानों पर तो मध्यम मुक्त है। साजगिरी में पूर्वी तथा पूरिया का मनोरंजक मिश्रण है, ऐसा क्षणभर कहा जाय तो उचित ही होगा। वादी स्वर गन्धार है। साजगिरी का स्वर स्वरूप इस प्रकार होगा:-

"सा, नि़ रे़ ग रे़ मं ग, रे़ सा, सा, नि़ रे़ ग रे़ सा, सा, नि़ ध़, सा, सा, नि़ रे़ ग,

ग प

नि़ रे़ नि़ ध़, मं ध़, सा, ग, म, नि, मं ध ग, मं मं ग रे़ सा। मं ग, मं प, ध़ प, सां, सां,

ग प

सां नि रें नि ध़ प, प ध ग, प, प, ध, सां, नि रें नि, मं ध ग, मं मं ग रे़ सा। साजगिरी राग बहुत कम सुनने में आता है।

"मालीगौरा" राग भी प्रचार में कम ही सुनने में आता है। फिर भी यह सर्वथा अप्रसिद्ध है, यह नहीं कहा जा सकता। अच्छे गायकों को तो यह अवश्य आता होगा। इसमें धैवत स्वर के सम्बन्ध में कभी-कभी विवाद उत्पन्न होता है। किसी के मत से धैवत कोमल और किसी के मत से तीव्र होता है। कोई इस राग में दोनों धैवत लेने को कहते हैं। मेरे गुरु भी दोनों धैवत लेते थे। पूरिया में पंचम लेने से जैसा प्रकार दिखेगा, वैसा ही मालीगौरा राग थोड़ा बहुत दिखता है। इस राग में वादी कुछ लोग ऋषभ और कुछ लोग गन्धार मानते हैं। ऋषभ का वादित्व सुन्दर दिखता है। मालीगौरा का स्वरूप बहुधा तुम्हारे सुनने में ऐसा आयेगा:—

नि़ ध़ ध़ नि़

ध़ नि़ सा रे़ नि़ ध़, नि़ ध़ प़, मं ग, मं ग मं ध़, सा, नि़ रे़ सा, नि़ रे़ ग, नि़ रे़ सा, सा

प ध रे़ ध

प, प, मं ध़ मं ग, मं ध़ मं ग, ग; रे़ सा। मं ध सां सां, नि रें सां, नि रें नि ध, मं नि ध

रे़

मं ग, रे़ रे़ सा, सा ध, मं ग, ग, रे़ सा। किन्तु सर्वदा प्रत्येक गायक ऐसा ही गायेगा, यह नहीं समझना चाहिये। बल्कि इसके गाने का कुल मिलाकर स्वरूप इस प्रकार का होगा, इतना ही मेरे कहने का अभिप्राय है।

"वराटी" राग को गायक "बराडी" भी कहते हैं। संस्कृत शब्द "वराटी" का अपभ्रन्श होकर यह नाम बना होगा, ऐसा समझा जाता है। "वराटी" को कुछ गायक पूर्वी मेल में लेते हैं। अर्थात् उनके मत से "वराडी" में कोमल धैवत है। मेरे गुरु वराटी में धैवत तीव्र मानते हैं। तानसेन के वंशज मुहम्मदअली खां ने मेरे एक मित्र को बरारी के ध्रुपद सिखाये थे। उनमें उन्होंने धैवत तीव्र ही लिया था। बरारी का स्वरूप मुहम्मदअली खां ने इस प्रकार गाया था:—

नि

ग रे़ ग, रे़ सा, सा, रे़ सा, रे़ सा, सा प, प, नि ध प, मं ग, रे़ सा। प ध प, सां,

सां रें सां, सां नि सां रें सां, मं ध सां, सां रें सां, नि ध प, मं ग, ग, रे़ सा। मेरे गुरु ने

मुझे स्वरूप सिखाया था:—प ध ग. प ध म॑ ग, ग रे॒, रे॒ ग, ध म॑ ग, रे॒ सा, सा रे॒, रे॒ ग, रे॒ सा, सा, सा नि॒ रे॒ ग, प ग, प, प ध, सां, प ध ग।" यह राग धैवत से भिन्न-भिन्न प्रकार से गायक गा सकते हैं, फिर भी तुम धैवत तीव्र ही स्वीकार करके चलो, तो मेरी समझ से ठीक है। संस्कृत ग्रन्थकारों ने वराटी के भिन्न-भिन्न प्रकार कहे हैं। इस प्रकार ये छः सायंगेय राग हुए।

अब शेष उत्तरांग वादी रागों को हम देखें। उनमें से सोहनी के सम्बन्ध में मैं बोल ही चुका हूँ। "ललित" राग रात्रि के अन्तिम प्रहर में विशेष वैचित्रदायक रहता है। ललितांग उस प्रहर में सर्वथा स्वतन्त्र है। वह अङ्ग "नि॒ रे॒ ग म, म, म ग" इतने स्वरों में है। ललित में दोनों मध्यम आते हैं तथा वे भी एक के बाद एक, ऐसे क्रम से आ सकते हैं। "नि॒ रे॒ ग म, म, म॑ म ग" ऐसा प्रकार अनेक बार दिखेगा। इसके आगे "म ग, म॑ ध म॑ ग, म ग" ऐसा आया कि, ललित स्पष्ट हुआ। "धैवत तथा मध्यम" की संगति ललित में विशेष चित्ताकर्षक रहती है। ललित में पंचम हमेशा वर्ज्य रहता है।

ललित का स्वर स्वरूप ऐसा है:—"ग, म॑ ग रे॒ सा, म, म, म ग, म॑ ध म॑ म ग, म॑ ध सां, नि रें॒ सां, नि रें॒ नि ध, म॑ ध म॑ म, म॑ ग, म॑ ग रे॒ सा।"

"पंचम" राग दो प्रकार से गाया हुआ सुनने में आता है। एक प्रकार में पंचम वर्ज्य रहता है तथा आरोह में ऋषभ दुर्बल रहता है। मध्यम दोनों लेने में आते हैं। कोमल मध्यम जब लेते हैं तब ललितांग थोड़ा सा आगे आजाता है; परन्तु ललित के अनुसार मध्यम का संयोग तथा "ध म" की वह ललित वाली विशिष्ट सङ्गति पंचम में नहीं रहती। वह प्रकार ऐसा है:—"म॑ ध सां, सां, सां नि ध, म॑ ध म॑ ग, म॑ ग रे॒ सा, नि॒ सा म, म, म ग, म॑ ध सां, नि ध" इत्यादि।

दूसरे प्रकार में ललितांग अधिक होकर उसमें पंचम स्वर स्पष्ट रहता है। उसका स्वरस्वरूप ऐसा है:—"ग, म॑ ग, रे॒ सा, म, म, म ग, प, म॑ ध म॑ म, म ग, म॑ ध सां, सां, रें॒ सां, रें॒ नि ध, म॑ ध म॑ म ग, रे॒ ग, म॑ ग रे॒ सा।" यह प्रकार भी बहुत मोहक है। पंचम की प्रकृति गंभीर है। जिस राग में मध्यम मुक्त रहता है, उसकी प्रकृति बहुधा गम्भीर ही रहती है, यह मैं कह ही चुका हूँ।

'भटियार' राग अप्रसिद्ध ही मानते हैं। इसमें शुद्ध मध्यम आता है, तब थोड़ा ललितांग दिखाई पड़ता है। परन्तु ललित वाली मध्यम की संगति आदि इस राग में वैसी नहीं रहती। वादी मध्यम है। कोई इस राग का नाम 'भट्टिहारी' बताते हैं। इसका स्वर-स्वरूप कुछ इस प्रकार है:—"सा ध, ध प, म, म, प ग, म॑ ध, सां, सां, नि ध प, म, प ग, म॑ ध, म॑ ग, प ग, रे॒ सा। म॑ ध सां, सां, नि रें॒ सां, रें॒ गं, रें॒ सां, सां म, म प ग, म॑

ध सां, रें नि ध मं ग, मं ग रे सा।' दूसरा एक शुद्ध स्वरों का भटियार भी इसी नाम से प्रसिद्ध है, वह अपने यहां क्वचित ही सुनने में आता है। उत्तर में कुछ लोग उसे गाते हैं।

'भंखार' अथवा 'भख्खार' राग भी रात्रि के अन्तिम प्रहर में गाया जाता है। उसमें ललितांग नहीं है, वादी पंचम मानते हैं। उसका स्वरूप इस प्रकार है:—'ग रे सा, ग, म प म ग, मं ध, मं ग, प ग, रे सा, नि़ सा, रे ग, म ग, मं ध मं ग, ग रे सा। नि़ सा ग म प, म प, म ग, ग, प म ग, रे सा, नि़, सा रे ग, म ग, ध मं ग, प ग, रे सा।' भटियारी से यह स्वरूप पृथक रखना कठिन नहीं है।

'विभास' राग भी मारवा थाट के रागों में से एक है। कोई कहते हैं कि संध्याकाल में जैसे 'वराटी' वैसे ही प्रातः काल में विभास समझना चाहिये। उनका कहना सार्थक भी है। सोहनी राग पूरिया का प्रातःकालीन 'जवाब' है, यह हमने कहा ही था। यह प्रतिच्छाया का प्रश्न हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति में विशेष महत्व का है। इसका उत्तम निर्णय हमारे विद्वानों को कभी अवश्य करना पड़ेगा। यह निर्णय होने पर हमारी सङ्गीत पद्धति का गौरव बहुत बढ़ जायगा। विभास सम्पूर्ण राग है; फिर भी उसमें मध्यम तथा निषाद का प्रयोग सोच विचार कर करना पड़ता है। उनको लाकर राग से सायंगेयत्व टालने में सारी कुशलता है। 'ग प' की सङ्गति इस राग में बहुत ही वैचित्र्य दायक है। इस राग का स्वरूप इस प्रकार है:—

'सा, नि़, रे ग, प ग, रे सा, रे सा, नि़ ध़, मं़ ध़, सा, रे सा, ग प, प ध, प ग, मं ग रे सा। मं ध सां, सां, रें सां, नि रें गं रें सां, सां नि ध, मं ध सां, सां रें नि ध, मं ग, प ग, रे सा।' यह स्थूलस्वरूप है। पूर्व तथा उत्तर रागों के सम्बन्ध में तथा स्वरों की विकृति से किये जाने वाले रागों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में अभिनवरागमंजरी में ऐसा उल्लेख किया गया है:—

पूर्वरागास्तथोत्तररागा जाताः समंततः।
सर्वेभ्य एव मेलेभ्य इति लक्ष्यविदां मतम्॥
रागा उत्तरपूर्वास्ते भवेयुः प्रतिमूर्तयः।
स्वस्वपूर्वाद्यरागाणामिति मर्मविदो विदुः॥
रात्रिगेयास्तथा दिनगेया रागा व्यवस्थिताः।
मध्यमेनानुरूपेण यतोऽसावध्वदर्शकः॥
स्वरविकृत्यधीनाः स्युस्त्रयो वर्गा व्यवस्थिताः।
रागाणामिह मर्मज्ञैर्गानसौकर्यहेतवे॥
रिगधतीव्रका रागा वर्गेऽग्रिमे व्यवस्थिताः।

संधिप्रकाशनामानः क्षिप्ता वर्गे द्वितीयके ॥
तृतीये निहिताः सर्वे गनिकोमलमंडिताः ।
व्यवस्थेयं समीचीना गानकालविनिर्णये ॥
प्रातर्गेयास्तथा सायंगेया रागाः समंततः ।
संधिप्रकाशवर्गे स्युरिति सर्वत्र संमतम् ॥
ततः परं समादिष्टं गानं लक्ष्यानुसारतः ।
रिगधतीव्रकाणां वै रागाणां भूरिरक्तिदम् ॥
गनिकोमलसंपन्ना रागा गीता विशेषतः ।
मध्यान्हे च तथा मध्यरात्रे संगीतविन्मते ॥

यह व्यवस्था हमेशा ध्यान में रखने की है । राग के स्वर देखते ही, वह कौन से समय का होगा, यह तुरन्त ही निश्चय किया जा सकता है । यही इन सब श्लोकों का रहस्य है । मारवा थाट के रागों की पारस्परिक भिन्नता मंजरी में इस प्रकार कही है:—

अथैतेषां क्रमाल्लक्ष्म ब्रूमो लक्ष्यानुसारतः ।
पूरियामारवारागावपौ संगीतविन्मते ॥
सायंगेया सदा पूर्या पूर्वांगप्रबला मता ।
सत्युत्तरांगप्राबल्ये सोहन्यंगं प्रदर्शयेत् ॥
हिंदोलांगयुता मार्वा रिधसंवादमंडिता ।
गनिसंवादनात्पूर्या ह्यवश्यं भेदमादिशेत् ॥
साजगिरी मता लक्ष्ये द्विधा द्विमा मनीषिभिः ।
प्रतिमूर्तिर्विभासस्य सायंगेया वराटिका ॥
द्विधैवतस्तथा द्विऋषभो जैत्रो भवेत् पृथक् ॥
कल्याणीमेलजो लक्ष्ये जयत्कल्याण ईरितः ॥

यह सायंगेय राग हुए । अब प्रातर्गेय देखो:—

ललितांगं स्वतंत्रं तदवश्यं भेदमादिशेत् ।
हिंदोलांगसमापन्नः पंचमो द्वंद्वमध्यमः ॥
सोहन्यां पंचमाभावो धगसंगत्यभीष्टदा ।

सपाः पंचमभखारभटियारविभासकाः ॥
पंचमो ललितांगः स्याद्भखारस्तद्भावतः ।
भट्टियारस्तु संपूर्णो मध्यमांशो मते विदाम् ॥
विभासाख्यः सुसंपूर्णो गपसंगतिशोभनः ।
मनिदौर्बल्यतोऽवश्यं प्रातः स्यादतिरक्तिदः ॥

इस प्रकार हमने पहले तीन संभाषणों में लगभग ८० रागों पर विचार किया था। इसके अतिरिक्त उत्तर के तथा दक्षिण के उपलब्ध एवं सुबोध ग्रन्थों के श्रुतिस्वर प्रकरण पर भी हमने विचार किया था। बीच-बीच में कुछ देशी भाषा के ग्रन्थों की योग्या-योग्यता के सम्बन्ध में थोड़ी बहुत चर्चा भी हमने की थी। कहीं कहीं हमारी टीका कुछ कठोर अवश्य हुई है, फिर भी वह हमने निन्दा के भाव से नहीं की है। हमारा कहना इतना ही था कि इस बीसवीं शताब्दि में ग्रन्थ लिखने वालों को देव-धर्म की बात सङ्गीत में लाने की कोई आवश्यकता नहीं है। रागों की कल्पना तथा उनको सिद्ध करने के लिये जप, पूजा, अर्चना आदि का वर्णन करने की अपेक्षा वे पहिले कैसे थे और आज कैसे हैं, यह स्पष्ट करके बताने से पाठकों को वास्तविक लाभ होगा, ऐसा हमारे कहने का तात्पर्य था। पहले सोलह हजार गोपियों ने कृष्ण के सामने सोलह हजार राग गाये, उनमें से अब ३६ ही रह गये। इस कथन में कितनी सार्थकता है? उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, कल्लिनाथ, हनुमान के मतों की रागरागिनियों में क्या तथ्य है? ॐ केवल इस एक शब्द से सब सङ्गीत शास्त्र निकला, केवल इतना कहने से पाठकों को कितना बोध होगा? सारांश यह कि प्रत्येक लेखक को अपनी विद्वता तथा अपने अधिकार को पहचान कर ही सङ्गीत पर लिखना चाहिये, इतना ही सुझाने का हमारा आशय था। लोचन, अहोबल, हृदय, पुण्डरीक, रामामात्य तथा व्यंकटमखी के ग्रन्थ कितने सुन्दर हैं। इस प्रकार के वास्तविक उपयोगी ग्रन्थ जितने निकलें उतने ही थोड़े हैं। उर्दू, पर्शियन के हस्तलिखित ग्रन्थ खोजकर उनके भाषान्तर करने का किसी ने निश्चय किया तो यह एक उपयोगी कार्य होगा। उस भाषान्तर की सहायता से हिन्दू कला पर मुसलमानी कला के कौन से प्रभाव हुए हैं, यह समझना सरल हो जायगा। इतना ही नहीं, वरन् हमारी सङ्गीत कला मुसलमानों ने डुबा दी, ऐसा जो आक्षेप हम हमेशा सुनते हैं, उसके सत्यासत्य पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा। लायब्रेरियों में सङ्गीत सम्बन्धी उर्दू तथा पर्शियन भाषा के कई ग्रन्थ हैं। मुझे वह भाषा न आने के कारण उनका उपयोग मैं नहीं कर सका। मुझे स्मरण है कि काश्मीर के एक सेशन जज ने मुझे एक छोटा सा ग्रन्थ पर्शियन भाषा में लिखा हुआ दिखाया था। उसमें रागों का उपयोग विभिन्न रोगों को अच्छा करने के लिये दिखाया गया था, इस प्रकार के ग्रन्थ खोजकर प्रकाशित करना अत्यन्त उपयोगी कार्य होगा। रामपुर, लखनऊ, काश्मीर आदि स्थानों में इस प्रकार के ग्रन्थ तलाश करने पर अवश्य मिलेंगे, अस्तु।

इस चौथे अर्थात् प्रस्तुत संभाषण में हमने मुख्यतः काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी इन चार मेलों के जन्य रागों के सम्बन्ध में विचार किया। प्रत्येक राग का

यथासम्भव वर्णन करके तथा उसका सविस्तार स्वरकरण बताकर प्राचीन एवं अर्वाचीन संस्कृत ग्रन्थों के श्लोकों में वर्णित उसके लक्षण मैंने तुमको बताये थे वे सब तुम्हारे ध्यान में होंगे ही। उसी प्रकार इस संभाषण के प्रारम्भ में ही हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति के रागों के सम्बन्ध में कुछ साधारण नियम रत्नाकर के श्रुति व मूर्छना की थोड़ी बहुत चर्चा गायकों के घराने का संक्षिप्त इतिहास आदि मैंने कहे थे, जो तुम भूले नहीं होगे। सारांश यह कि इस उपसंहार में अब काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोडी इन चार थाटों के जन्य रागों की पारस्परिक भिन्नता हम देखेंगे। अतः अब हम प्रथम "काफी" थाट के जन्य रागों को लें।

इस थाट में अपने वाले जन्य रागों में से जो बिलकुल अप्रसिद्ध एवं विवादग्रस्त हैं, उनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी मिलना कठिन है। इन रागों के लक्षण अपने गुरु द्वारा कहे गये गीतों के आधार पर मैंने बताये हैं। विवादग्रस्त एवं दुर्मिल रागों के जितने गीत घरानेदार गायकों के पास मिलें, उतने प्राप्त करके फिर उनके आधार पर उन रागों के लक्षण नियमबद्ध करने चाहिए, ऐसा जानकार व्यक्तियों का अभिमत है।

काफी थाट के जन्य रागों के अङ्ग आधार से हमने पांच वर्ग किये थे:—

काफी अङ्ग के राग, (वर्ग पहला)

१–काफी, २–सिंदूरा, ३ पीलू।

कानडा अंग के राग (वर्ग दूसरा)

१–बहार, २–बागेश्री, ३–सूहा, ४–सुघराई, ५–नायकी, ६–सहाना, ७–कौंसी, कौशिक); ८–देवसाख।

धनाश्री अङ्ग के राग (वर्ग तीसरा)

१–धनाश्री, २–धानी, ३–भीमपलासी, ४–हंसकंकणी ५–प्रदीपकी (परदीपकी)

सारंग अङ्ग के राग (वर्ग चौथा)

१–शुद्ध सारंग, २–मधमाद, ३–बिंद्रावनी, ४–बडहंस, ५–सामंत सारंग, ६–मियां की सारंग, ७–लंकादहन सारंग, ८–पटमंजरी।

मल्लार अङ्ग के राग (वर्ग पांचवां)

१–शुद्धमल्लार, २–गौडमल्लार, ३–मियां की मल्लार, ४–सूरमल्लार ५–मेघमल्लार, ६–रामदासीमल्लार, ७–चरजू की मल्लार, ८–चंचलससमल्लार, ९–मीराबाई की मल्लार, १०–नटमल्लार, ११–धूलियामल्लार।

इस मल्लार अङ्ग में और भी कुछ मल्लार, जैसे–देस मल्लार, जयजयवन्ती मल्लार आदि भी कुछ लोग शामिल करते हैं। काफी मेलजन्य रागों का भी स्थूलदृष्टि से

पांच अंगों में वर्गीकरण किया गया है। इसके सम्बन्ध में यदि मतभेद हो तो भी उससे डरकर अपना निश्चित मत व्यर्थ ही बदलने को तैयार मत होना। मतभेद यदि औचित्य-पूर्ण एवं साधार दिखाई दे तो उसे भी संग्रह करते जाओ, यह मैं कहता ही आया हूं। यह काफी जन्य रागों का अङ्गवर्गीकरण मैंने सरल श्लोकों में कहा था,वह तुम्हारे ध्यान में होगा ही।

काफी अङ्ग का पहिला राग "काफी" है। उसको काफी मेल के जन्यरागों का आश्रय राग कहते हैं। काफी राग सरल, सम्पूर्ण एवं सुबोध माना जाता है। इस थाट के स्वर चाहे जैसे पलट-उलट कर कहें तो भी वहाँ थोड़ा बहुत काफी राग दिखाई देगा ही। "सा सा रे रे, ग॒ ग॒, म म, प, म प ध नि॒ सां नि॒ ध प म ग॒ रे" इतने स्वर ऐसी सरलता से कहे जायें तो भी रागस्वरूप हर हालत में बना रहेगा। काफी में वादी पंचम मानते हैं। यह राग अधिकांश गायकों को आता है। इसमें बड़े ख्याल नहीं होते। इस राग में मैंने टप्पे तथा ध्रुपद सुने हैं। काफी में कभी-कभी ठुमरी भी सुनने में आती हैं। काफी राग का उल्लेख लोचनकृत रागतरंगिणी में भी है अतः यह हमारे सङ्गीत में अति प्राचीन है, ऐसा कहने में कोई आपत्ति नहीं। लोचन ने काफी का समय मध्यान्ह बताया है। उसमें ग तथा नि कोमल होने से मध्यान्ह अथवा मध्यरात्रि का समय निश्चित होगा ही। फिर भी प्रचार में इस राग को सर्वकालिक मानने का रिवाज दिखाई देता है। काफी का प्रस्तार बहुधा मध्य तथा तारस्थान में अधिक रहता है। स्वरूप ऐसा होगा:--"सा रे रे ग॒ सा, रे प, म प ध नि॒ सां, नि॒ ध, म प, ग॒ रे, रे नि॒ ध नि॒ प ध म प, ग, म प, म, सा नि़, सा ग॒ रे म ग॒ रे सा नि़।"

काफी अंग का दूसरा राग 'सिंदूरा' है। ग्रन्थों में इस राग को 'सैंधव' अथवा 'सैंधवी' कहा है। सैंधवी नाम रत्नाकर में भी दृष्टिगत होता है; परन्तु उस सैंधवी के स्वरों का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। अहोबल तथा हृदयनारायण ने 'सैंधव' के जो लक्षण कहे हैं, वे हमारे वर्तमान प्रचार से बहुत मिलते हैं। सैंधवी राग का आधुनिक नाम 'सिंधोड़ा' अथवा सिंदूरा है। इस राग को अच्छा ग्रन्थाधार प्राप्त है। सिंदूरा के आरोह में ग तथा नि स्वर वर्ज्य हैं तथा अवरोह सम्पूर्ण मानते हैं। फिर भी आजकल सिन्दूरा में 'नि सां रें ग॒ं रें सां' अथवा 'म प नि सां रें ग॒ं रें सां, सां, नि॒ ध, म प ग॒ रे, म ग॒ रे सा, ध म प, नि सां, रें ग॒ं रें सां।' ऐसी तानें प्रायः सुनने में आयेंगी। इससे ऐसा दीखता है कि प्रचार में यद्यपि सिंदूरा के आरोह में नि वर्ज्य करने का नियम गायक निभाते नहीं हैं, तथापि वे आरोह में कभी गन्धार नहीं लेते, इस कारण काफी राग सहज ही पृथक हो जाता है। लक्ष्य सङ्गीत के अनुयायी होने के कारण हमें निषाद नियम को शिथिल करना चाहिये। उसी शास्त्रनियम का पालन करना उचित है जिसके कारण राग का माधुर्य कम न हो, ऐसा मेरा स्वतः का मत है। काफी तथा सिंदूरा समप्रकृतिक राग हैं। सिंदूरा में भी वादी पंचम मानते हैं। इस राग में विशेष मींड कार्य शोभा नहीं देता।

काफी अङ्ग का तीसरा राग पीलू है। 'पीलू' नाम किस भाषा का है तथा वह कैसे आया, यह नहीं कहा जा सकता। पीलू का स्वरूप अति मधुर एवं लोकप्रिय है, इसमें कोई संशय नहीं। पीलू को राग मानने के लिये बड़े गायक प्रायः नाक भौं सिकोड़ते हैं,

वे उसको एक 'धुन' समझते हैं तथा वह क्षुद्र गीतार्ह है, ऐसा भी कहते हैं। पीलू में बड़े बड़े ख्याल नहीं हैं, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। एक दो ध्रुपद मैंने सीखे हैं; परन्तु वे विशेष प्राचीन नहीं होंगे, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। ठुमरी, दादरे, तथा गजलों से पीलू राग समृद्ध है। प्रचार में जो पीलू गाया जाता है उसका स्वरूप चमत्कारिक है, इसमें सन्देह नहीं। उसमें पूरे बारहों स्वर आ सकते हैं। सम्भवतः इसीलिये घरानेदार गायकों को इस राग के सम्बन्ध में विशेष स्वाभिमान नहीं रहता। प्रचार में पीलू इस प्रकार गाया हुआ दिखाई देता है, 'ग॒, रे ग॒, नि़ सा, नि़, सा रे॒ सा, नि़ ध़ प़, मं़ प़, ध़ नि़ सा, ग॒, नि़ सा। नि़ सा ग म प, म प, ग ग, म, ध प, ग॒, नि़ सा, ग॒ रे ग॒ म, ग॒ नि़ सा, नि़, सा रे॒ सा नि़ ध़ प़, ध़ नि़ सा'। ऐसे स्वरूप में कोई क्या आरोहावरोह लगा सकता है? फिर भी एक स्थूल नियम ऐसा दिखाई देता है कि तीव्र स्वर इस राग के आरोह में आते हैं। पीलू के खास अंग 'ग॒, नि़ सा, रे॒ नि़ ध॒ प़, प़ ध॒ नि़ सा, ग॒, नि़ सा' हैं, ऐसा निश्चयात्मक-रूप से समझा जाता है। पीलू के प्रस्तार में ये अङ्ग न आने पर श्रोता उसे पीलू बताने की हिम्मत नहीं कर सकते। अतः ये अङ्ग ध्यान में रखने योग्य हैं।

रामपुर में जो पीलू प्रकार गाया जाता है वह शास्त्रदृष्टि से बहुत उच्चकोटि का समझा जायगा, ऐसी मेरी धारणा है। उस प्रकार में निषाद के अतिरिक्त अन्य सभी स्वर कोमल हैं। उस पीलू का आरोहावरोह स्वरूप 'सा रे॒ ग॒ म प ध॒ नि सां। सां नि ध॒ प म ग॒ रे॒ सा' ऐसा होगा। यह स्वतन्त्र रूप है, ऐसा भी कोई कह सकते हैं। पीलू का ऐसा स्वरूप मुझे मेरे मित्र स्व० सादतअली खां साहेब उर्फ छम्मन साहेब, रामपुर ने बताया था। उन्होंने पीलू ऐसा गाकर दिखाया था:—'प़ ध़ नि़, सा, ग॒, रे॒ सा, ग॒, रे॒, सा,

म

नि़, सा रे॒, सा नि़ ध़ प़, प़ ध॒ नि़, सा। सा, ग॒, म प, म, ध॒ प, ग॒, प ग॒, नि़ सा, ग॒, रे॒ सा, रे॒, नि़ सा, सा नि़ ध॒ प़, ध़, नि़ सा, ग॒, नि़ सा।' यद्यपि यह स्वरूप भी सर्वथा शुद्ध होगा, तथापि प्रचार में क्वचित् ही दिखाई देगा। इस प्रकार के पीलू के थाट को दक्षिण की मेल पद्धति में 'भिन्नषड्जमेल' अथवा 'धेनुका मेल' नाम दिया हुआ दिखाई देगा। स्पष्ट है कि ऐसे स्वरूप में जलद तान लेना कठिन काम होगा। इसीलिये गायकों ने इस थाट में तीव्र स्वर सम्मिलित कर लिये होंगे, ऐसा भी कोई कह सकता है।

धनाश्री अङ्ग के राग

अब हम धनाश्री अङ्ग के रागों को देखें। ऐसा करते समय मुख्यतः हमारा लक्ष्य उस राग के असाधारण धर्म की ओर विशेष होगा। रागों के बिल्कुल संक्षिप्त स्वरस्वरूप भी बीच-बीच में देने पड़ते हैं, फिर भी उन रागों में भेद किस स्थान पर तथा कैसा है, इतना ही हमें देखना है। ये सब राग मैं तुम्हें बता चुका हूँ अतः पुनः विस्तृत विवरण देने से तुम ऊब जाओगे। तो अब देखो:—धनाश्री राग काफी मेल का राग है। इसके आरोह में रे तथा ध स्वर वर्ज्य हैं। अवरोह सम्पूर्ण है। इस वर्णन से यह शंका होना स्वाभाविक है कि फिर यह राग भीमपलासी से पृथक कैसे होगा? इसका सरल उत्तर 'वादिभेदे रागभेदः' होगा। धनाश्री में वादी स्वर पंचम है तथा भीमपलासी में वादी स्वर मध्यम है। यदि हम धनाश्री गाने लगें तो वह श्रोताओं को भीमपलासी प्रतीत होगा,

इसमें सन्देह नहीं। वहां वादी स्वर का महत्व उनकी समझ में नहीं आयेगा। काफी थाट के धनाश्री राग को हम हरिकीर्तनों में बारम्बार सुनते हैं। धनाश्री का स्वरूकरण इस प्रकार

म म
होगा:—'प, प ग॒, प ग॒, रे, सा, नि॒ सा, ग॒, म प, प, ध प, नि॒ ध प, म ग॒, म प ग॒, ग॒, रे,
म म म
सा, नि॒ सा ग॒ म प। नि़ सा, प़ नि॒ सा, रे, सा, ग॒, रे सा, प, म प, नि॒ सा ग॒ म प, ध प, नि॒ ध प, सां, नि॒ ध, प, म प, ग॒, म प ग॒, रे, सा।' इसमें पंचम का बाहुल्य कितना है, देखो ! इस स्वरूप को उत्तम ग्रन्थाधार प्राप्त हैं। अहोबल कहता है:—

आरोहे रिधहीनास्यात् पूर्णा शुद्धस्वरैर्युता।
गांधारस्वरपूर्वा स्याद्धनाश्रीमध्यमान्तिका॥

यही श्रीनिवास तत्वबोध में कहता है। आजकल प्रचार में इस स्वरूप को भीमपलासी कहने लगे हैं तथा धनाश्री 'पूरियाधनाश्री' समझी जाने लगी है। किसी गायक से हमने धनाश्री की फरमाइश यदि की तो वह पूरियाधनाश्री अवश्य प्रारम्भ करेगा। मालुम होता है, मुसलमान गायकों को यह काफी थाट की धनाश्री विदित नहीं थी।

भीमपलासी राग के अधिकांश नियम धनाश्री जैसे ही हैं। उसके आरोह में भी रे, ध वर्ज्य हैं तथा अवरोह में सब स्वर आते हैं; किन्तु भीमपलासी में वादी मध्यम है। इसका स्वरस्वरूप इस प्रकार है:—

सा सा
नि॒ सा, म, म, म ग॒, सा म ग॒, म प, म, प ग॒, म ग॒ रे सा, नि॒, सा, म़ प़ नि॒, सा,
नि॒
म ग॒ रे सा, सा म, नि॒ सा म, प म, ध प म, सां नि॒ ध, प, म, प म, नि॒ सा, म, ग॒ म प, म ग॒, म ग॒ रे सा, नि॒ सा म।'

मार्मिक श्रोताओं को इन दोनों रागों का भेद स्पष्ट दिखाई देगा। फिर भी उलझन को दूर करने के हेतु धनाश्री को पूरियाधनाश्री मानने का ही व्यवहार हो गया है। 'धनाश्री' राग को पूर्वी थाट में मानने के लिये भी ग्रन्थाधार हैं। उदाहरणार्थ—लोचन तथा हृदय के ही ग्रन्थ देखो। वे धनाश्री थाट का उल्लेख इस प्रकार करते हैं:—

रिषभः कोमलो गस्तु द्वे श्रुती मध्यमस्य चेत्।
गृहाति द्वे श्रुती मश्च पंचमस्य विशेषतः॥
धैवतः कोमलो निश्च षड्जस्य द्वे श्रुती यदा।
गृह्णाति रागिणी रम्या धनाश्रीर्जायते तदा॥

उस समय यदि गायकों ने धनाश्री पूर्वीथाट में गाई तो उसमें कौनसा आश्चर्य है? काफी के स्वरों में भीमपलासी और धनाश्री रागों के वादी स्वर भली प्रकार सम्हालकर

जो पृथक रख सकें वे जी चाहें जैसा करें। किन्तु जिनसे यह कृत्य सध न सके वे काफी थाट का भीमपलासी और पूर्वी थाट का धनाश्री अथवा पूरियाधनाश्री मानकर गायें। यहां एक कठिनाई उत्पन्न होगी कि धनाश्री के सम्बन्ध में तो यह ग्रन्थाधार ठीक है, परन्तु भीमपलासी के सम्बन्ध में ग्रन्थकार क्या कहते हैं? उनको तरंगिणी और हृदय-कौतुक में इसका यह उत्तर मिलेगा कि उस ग्रन्थकार के समय भीमपलासी के आरोह में रे, ध वर्ज्य अवश्य थे; परन्तु उसमें ग, नि स्वर तीव्र थे। अर्थात् वह राग बिलावल थाट में उस समय माना जाता था। इससे ऐसा दीखता है कि जब भीमपलासी के ग और नि स्वर कोमल हुए तब धनाश्री के स्थान पर भीमपलासी माना जाने लगा। धनाश्री का सम्पूर्णत्व देखकर पूरियाधनाश्री राग निर्मित हुआ। कोई भीमपलासी के रे, ध कोमल मानते हैं और कोई उन्हें 'न चढे न उतरे' मानते हैं। हम तो उनको स्पष्ट तीव्र मानते हैं।

"धानी" राग धनाश्री का ही अधूरा स्वरूप है। इसमें रे, ध स्वर आरोह तथा अवरोह दोनों में वर्ज्य होते हैं। ग, नि स्वर वादी-संवादी हैं। इसका आरोहावरोह स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है:—नि़ सा, ग, म प, नि सां। सां नि प, म ग सा। ग, सा, ग म प, नि प नि सां, गं सां, नि प, म ग, ग सा।" धानी को अहोबल ने औडव धनाश्री लिखा है। कोई अवरोह में ऋषभ का स्पर्श क्षम्य मानते हैं। वह प्रकार अहोबल के मत से षाडव-धनाश्री होगा; किन्तु हम औडव स्वरूप ही पसन्द करते हैं।

"हंसकंकणी" इस अङ्ग का चौथा राग है। हंसकंकणी में भी धन्यासी अङ्ग है, इसलिये इसके आरोह में रे, ध वर्ज्य हैं। परन्तु इस राग में दोनों गन्धार का प्रयोग होता है, अतः यह धनाश्री, धानी और भीमपलासी इन तीनों रागों से स्वतः भिन्न हो जाता है। तीव्र ग तथा नि स्वर केवल आरोह में लेने चाहिये। वादी स्वर पंचम है।

प म म सा म

स्वरकरण ऐसा होगा:—"ग, ग, म प ग, रे सा, नि़ सा, ग, म, प, म ग। म प, नि,

ध

नि सां, सां, नि सां, गं, रें सां, नि ध प, प, नि ध प, म ग, म, नि़ सा, ग, म, प, म ग।" हंसकंकणी राग अप्रसिद्ध रागों में ही गिना जाता है। परन्तु यह धीरे-धीरे अब प्रचलित होने लगा है।

"प्रदीपकी" धनाश्री अङ्ग का पांचवां राग है। इसके आरोह में भी रे, ध वर्ज्य हैं। अवरोह सम्पूर्ण है। कंकणी के समान इसमें भी दोनों गन्धार का प्रयोग होता है; परन्तु

सा सा

इसका वादी मध्यम है। इसका स्वरूप नि़, सा, म ग रे सा, नि़ ध़ प़, म़; नि़, प़, नि़ सा, ग, म, म प म, ग म, नि ध प, म, ग म, प ग, रे सा। म प सां, सां, रें सां, नि सां मं गं रें सां, नि ध प, म, ग म, प नि ध प, म, ग म, प ग, रे सा।

कुछ मार्मिक व्यक्तियों का कथन है कि धनाश्री में दोनों गन्धार के प्रयोग से हंसकंकणी होगी और भीमपलासी में दोनों गन्धार लेने से प्रदीपकी होगी। उनका यह कथन थोड़ा बहुत सही है, यह मानना पड़ेगा। गायकों ने कदाचित् इसी युक्ति से यह राग उत्पन्न किये होंगे। परन्तु यह ध्यान रहे कि ये दोनों प्राचीन राग हैं और इनके प्राचीन स्वरूप भिन्न होने की सम्भावना है।

रामपुर के नवाब साहेब ने मुझे प्रदीपकी का जो स्वरूप बताया था वैसा अन्य स्थानों पर सुनने में नहीं आया। उसका स्वरूप कुछ बिहाग जैसा था, यह मैंने तुमको बताया ही था। उसका कुछ स्वरूप इस प्रकार थाः—ग, म, प म ग, सा, सा ग म, ग

ध ध

सा, सा, ग म प, नि नि सां, सां प, प, ग, म। प, नि नि, सां, गं मं गं, सां, प ग म, ग, सा। प सां, सां, गं मं गं, सां, ग, म ग, म प, नि, सां, सां प, ग म प, ग, म ग, सा। इसको मैंने कई स्थानों पर गाया; परन्तु किसी ने इसको प्रदीपकी नहीं कहा। संभव है इसका भीमपलासी से योग करने पर प्रदीपकी दिखाई देती।

कानड़ा अंग के राग

म सा

अब हम कानड़ा अङ्ग के रागों की ओर बढ़ें। इन रागों में केवल 'ग, रे रे, सा' यह दरबारीकानड़ा का भाग नहीं आयेगा। इस अङ्ग के रागों के उत्तरांग में 'प नि प' अथवा

नि म

'ध नि प' तथा पूर्वाङ्ग में 'ग म रे सा' ये भाग बहुधा रहते हैं। ये भाग कुछ मल्हार प्रकारों में भी तुम्हें दिखाई देंगे। परन्तु इस विषय में आगे कहूँगा। पहले तो हम 'बहार' एवं 'बागेश्री' पर विचार करें। इन दोनों रागों में कई स्वरसमुदाय साधारण हैं। फिर भी ये दोनों राग आरोहावरोह में ही भिन्न हैं। बहार का आरोहावरोह 'नि सा

म म नि म

ग म प ग म, ध नि सां। सां, नि प, म प, ग म, रे सा।' तथा बागेश्री का 'सा, नि ध, नि सा, म ग, म ध नि सां। सां, नि ध, म ध नि ध, म ग, म ग रे सा।' ऐसा होता है और ऐसा किया हुआ शोभा देगा। आरोह में बहार तथा बागेश्री किंचित् निकट आयेंगे; परन्तु अवरोह में ये दोनों राग बिलकुल निराले दीखते हैं। बागेश्री के अवरोह में 'म ग रे सा' यह स्वरसमुदाय आ सकता है; परन्तु बहार में नहीं आयेगा। बहार का अवरोह थोड़ा सा अड़ाना राग के अवरोह जैसा बताया जाता है। 'ध नि सां रें नि सां' 'ग म, ध नि सां' 'नि सा म, म ग, म ध नि सां' ये टुकड़े दोनों रागों में आ सकते हैं। बहार के आरोह में बहुधा ऋषभ वर्ज्य रहता है। किन्तु बागेश्री में कहीं-कहीं वह आरोह में लिया जाता है। 'सा रे ग म, ध नि सां। सां, नि ध, म ग, रे सा।' बागेश्री में ऐसा आरोहावरोह भी अशुद्ध नहीं होगा। कुछ लोग बागेश्री में पंचम इस प्रकार लेते हैं:—'सां, नि ध, म ध नि ध, म प ग म ग रे सा।' कोई बागेश्री में पंचम आरोह में लेते हैं। जैसे:— 'सा रे, रे ग, प म प, ग, रे, सा।' इस प्रकार में श्रोताओं को कुछ काफी का आभास होता है; परन्तु फिर आगे—'म ध, प ध नि, ध, प म प ग, म ग रे सा' आदि लेने से वह सन्देह कम होने लगता है। बागेश्री में धनाश्री तथा कानड़ा का योग है, ऐसा कुछ ग्रन्थों में उल्लेख है। अतः उसमें पंचम का प्रयोग मानते होंगे। हृदय पण्डित ने बागेश्री में पंचम वर्ज्य कहा है, परन्तु उसके समय में वह राग खमाज थाट का था। उसके पश्चात फिर गन्धार कोमल का प्रयोग होने लगा होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

बहार का आरोहावरोह मैं कह ही चुका हूँ। 'नि ध प, म प, ग म, ध, नि सां' ऐसा भाग बहार में अशुद्ध नहीं होगा। इसके बाद फिर 'सां, नि प म प, ग ग म, रे रे सा' ऐसा भाग आया कि राग बहार कायम हो जाता है। फिर भी अवरोह के उस

धैवत को 'द्रुतगीतो न रक्तिहृत्' ही कहेंगे। बहार रागनाम यावनिक है, यह अलग बताने की आवश्यकता नहीं। बहार राग में गुणी लोगों द्वारा रचे हुए सुन्दर-सुन्दर ख्याल सुनने में आते हैं। बहार का अनेक रागों से योग होता है और तब उन रागों को बहार का नाम मिलाकर बोलते हैं। जैसे:—भैरवबहार, बसन्तबहार, हिंदोलबहार, अड़ानाबहार, जौनपुरीबहार आदि। ऐसे मिश्र रागों में 'ध नि सां रें नि सां, नि॒ ध प, म, प ग॒ म' यह भाग जहां-तहां दिखाई पड़ता है। मुक्त मध्यम यदि दोनों रागों में हुआ तो बहार के मिश्रण के लिये वह एक उत्तम स्थान रहता है। बहार मिश्रित रागों की फिरत करना कुशलता का काम है। मुख्य राग की फिरत रखकर उसमें योग्य स्थान पर बहार दिखाकर पुनः मूल राग का आविर्भाव करना आसान कार्य नहीं।

बसंतबहार, हिन्दोलबहार तथा भैरवबहार का मिश्रण मैंने तुमको समझाया था। अतः उसे हम दोहराना नहीं चाहते। अब हम 'सुहा' तथा 'सुघराई' इन समप्रकृतिक रागों पर विचार करेंगे। इन दोनों रागों में सबसे पहला बड़ा भेद यह है कि सूहा राग में धैवत सर्वथा वर्ज्य है तथा सुघराई के अवरोह में उसका अल्प प्रयोग क्षम्य मानते हैं। ये दोनों राग हमेशा एक दूसरे में मिले हुए दीखते हैं। गायक तो हमेशा अपने राग को 'सुहा-सुघराई' ऐसा संयुक्त नाम भी देते हैं। मालुम होता है सुघराई राग को पहले 'कुडाई' कहते थे। इन दोनों रागों में भेद कायम करने का प्रश्न 'अखिल भारतीय संगीत परिषद्' दिल्ली में भी रखा था। वहां भी यह तय हुआ कि सूहा में धैवत का प्रयोग नहीं करना चाहिए और सुघराई के अवरोह में सरल अथवा वक्र धैवत लेने में हानि नहीं।

अर्थात् 'नि॒ ध प' अथवा 'ध प' अथवा 'ध (नि॒)नि॒ प' इस प्रकार से सुघराई में धैवत लेने में हानि नहीं। 'सां नि॒ ध प' ऐसा प्रकार बहुधा सुघराई में गायक नहीं गाते। ऐसा करने से तुरन्त ही खमाज की छाया सामने आयेगी। सूहा तथा सुघराई में सारंग राग की छाया अधिक दिखाई देने की सम्भावना है, परन्तु सारंग में गन्धार नहीं है, सुघराई में धैवत बहुधा 'ध नि॒ प' इस प्रकार से अधिक आता है। एक गायक ने सुघराई का एक गीत मुझे इन स्वरों में सुनाया था:—'(नि॒)ध प, प, प रे सा, सा रे, सा (म)ग॒ (म)ग॒ म रे, सा, नि॒ सा रे म म, प, प नि॒ प, सां, नि॒ प, म।' सुघराई में कानड़ा प्रकार दिखाया जाने के कारण 'ध नि॒ प' ऐसा करना अनुचित न होगा। सूहा राग का यह चलन अच्छा दीखेगा:—

"नि॒ सा (म)ग॒, म, प प, (म)ग॒ म, नि॒, म प, सां, नि॒ प, प (म)ग॒ म, प, (म)ग॒ म प, ग॒ म रे सा, नि॒ सा म, म, प, प ग॒ म। म प सां, सां, नि॒ सां, नि॒ सां, रें सां, सां, नि॒ प, म प ग॒, म, प, सां नि॒ प, ग॒ म प, ग॒ म, रे सा।' सूहा दूसरे ढंग से भी गाया जाता है; परन्तु मैं यहां एक प्रकार और कहे देता हूँ। मेरे गुरु रामपुर के नवाब साहेब ने मुझे सुघराई का स्वरूप ऐसा बतलाया था:—सा (नि)ध, (नि॒)ध (नि॒)नि॒ प, (म)प रे म, म प, नि॒ प, सां, नि सां, (म)ग॒ (म)ग॒, म, नि॒ प, (म)म प (म)ग॒ ग॒, म, म (रे)रे, (नि॒)ध (नि॒)ध नि॒ प, प (म)ग॒, (म)म, म रे, सा। म प, नि॒ प, नि, सां, सां, रें सां, मं रें सां, नि सां रें सां, प नि॒ प, म प, नि सां, रें सां, प, नि॒ प, सां, प (म)ग॒, (म)म रे, सा। मेरी समझ

से यह रूप स्पष्ट रागवाचक होगा । सूहा में वादी मध्यम तथा सुघराई में वादी पंचम मानते हैं । इस राग में अनेक ख्याल गाये जाते हैं; परन्तु वे 'सूहा-सुघराई' इस संयुक्त नाम से होते हैं । सूहा तथा सुघराई राग का लोचन तथा हृदय पण्डित ने कैसा उल्लेख किया है, वह तुमको मैंने बताया ही है।

अब हम नायकीकानडा देखें। इस कानडा प्रकार में धैवत है अथवा नहीं और यदि है तो तीव्र अथवा कोमल ? यह प्रश्न कभी-कभी उठता है । मेरे गुरु के मतानुसार नायकीकानडा में धैवत वर्ज्य मानना चाहिये। इस राग में 'धु नि प' ऐसा धैवत का स्पर्श मैंने सुना है; किन्तु वह मुझे पसन्द नहीं है। नायकी की दूसरी पहचान एक यह ध्यान में रखने योग्य है कि पूर्वाङ्ग में 'रे प' की संगति इस राग में अवश्य दीखती है। रामपुर के वजीर खांसाहेब ने भी इस संगति को ध्यान में रखने के लिये मुझसे कहा था। उत्तरांग में 'प नि प, सां नि प, मप' यह प्रकार होगा ही। रामपुर वालों के मतानुसार नायकी का साधारणतः आरोहावरोह स्वरूप 'सा, रे प ग, म रे, सा, रे नि सा, रे प ग म, प, सां, नि प, म, म प ग म, रे सा ।' ऐसा होगा । नायकी के सम्बन्ध में इतनी बात ध्यान में रखनी चाहिये कि नायकी एक कानड़ा प्रकार है। इसलिये षड्ज से मिलते समय "ग म रे सा" इस टुकड़े से बहुधा गायक मिलते हैं । 'रे प ग म रे सा' इस प्रकार की सङ्गति नायकी में अवश्य दिखाई देगी, धैवत वर्ज्य होगा । उत्तरांग में 'प नि प' अथवा 'सां नि प' ऐसा किया जायेगा। उत्तरांग में सारंग की थोड़ी सी छाया दीखेगी; परन्तु वह पूर्वाङ्ग के गन्धार से दूर होगी । वादी स्वर मध्यम है और वह भी बीच-बीच में मुक्त रहेगा । कोई गायक नायकी में तीव्र धैवत लेते हैं तथा अपना राग बागेश्री के बहुत निकट ले जाते हैं। 'नि ध नि प, म प, ग म, नि ध नि प, म, नि प, ग म, प ग म रे सा' ऐसा कुछ प्रकार उसका रहता है, किन्तु उनसे हम विवाद नहीं करेंगे। उनका प्रकार उनके लिये व हमारा हमारे लिये उचित होगा। नायकी का स्वरूप ऐसा होगा:—'सा, रे प ग, म, रे सा, रे नि सा, रे प ग म, म, म, प, सां नि प, ग म, रे, सा, रे प ग, म, रे, सा ।' विवादग्रस्त रागों के सम्बन्ध में जो बात मैंने कही थी वह तुम्हारे ध्यान में होगी कि:—

बहुषु कानडाख्येषु भेदेषु लक्ष्यवर्त्मनी ।
मतानैक्यं सदा दृष्टं वितंडामूलकं भृशम् ॥
प्रायःस्वरौ धगौ तत्र सर्वत्र वादकारणम् ।
केवलं लक्ष्यमादृत्य भवेत्तत्र प्रवर्तनम् ॥

नायकी राग को रात्रि के तीसरे प्रहर में गाने का प्रचलन है। कोमल धैवत लेकर गाया हुआ प्रकार मैंने इस प्रकार सुना था:—'सा, ग, ग म, रे, सा, प म प, सां, ध ध नि प, म, म, प ग, प नि, म प ग ग, म, रे सा ।' किन्तु इसे हम पसन्द नहीं करते, बस इतना ही कहना चाहते हैं।

'साहाना' यह राग नाम किस भाषा का है, यह नहीं कहा जा सकता। इतना तो स्पष्ट है कि यह यावनिक है । 'साहना' राग को महाराष्ट्र में 'शहाणा' कहते हैं। इसी प्रकार दक्षिण के ग्रन्थकार अडाना को 'अडाना' कहते हैं। 'सहाना' और 'अडाणा' ये दोनों राग उत्तर में अति प्राचीन हैं। तरंगिणी में ये दोनों नाम दिखाई देते हैं। कल्र-द्रुमकार कहता है:—

मलार अडाना मेलके कानरा देहु मिलाय ।
रागसहाना सुहावना शुभमंगल में गाय ॥

एक गायक ने एक बड़ी हास्यास्पद उक्ति कही थी। उसने कहा कि 'शोभना' शब्द का अपभ्रन्श 'सुहावना' और उसका अपभ्रंश मुसलमानों ने 'साहना' किया होगा। परन्तु यह उक्ति निराधार है । 'साहना' राग के अवरोह में तीव्र धैवत का प्रयोग क्षम्य माना माना जाता है। इस राग में रि प संगति होनी ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं । साहाना राग का स्वरस्वरूप ऐसा है:—'नि ध नि प, ध म प, प, सां, नि नि प, म प, ग, म, प ग म प, ग म रे सा, सा, म, प, ध प प, ग, म ।' 'सा म, म प ध प ग म' इस टुकड़े से सुघराई पृथक हो सकेगी। साहाना राग में इतना सारंग का अङ्ग नहीं होता, जितना सुघराई में होता है। सुघराई में 'ध प, ग म रे सा, सा, रे म प ग ग म रे सा।" यह स्वरसमुदाय अच्छा लगता है। साहाना राग का अन्तरा ऐसा होगा:—

'म प नि सां, सां, नि सां, नि सां रें सां, सां, नि प, नि नि प, नि म प, सां, नि प, म प, ग ग म' इत्यादि। सूहा एवं सुघराई रागों में, 'ग ग म, प ग म, रे सा नि प, ग ग म' यह भाग अच्छी प्रकार से सम्हाल कर रखना चाहिये। सुघराई राग रात्रि के साहाना राग का दिनगेय जवाब है, ऐसा कहा हुआ भी मैंने एक बार सुना था। तो फिर सूहा और सुघराई भिन्न कैसे हैं, देखो:—सूहा में धैवत वर्ज्य है । और सुघराई में उसी का अल्प प्रयोग चल सकता है । और यदि ऐसा कोई न करे तो सूहा में मध्यमवादी और सुघराई में पंचमवादी है, यह भेद है ही । सहाना में पंचम वादी है, धैवत उत्तरांग में लिया जाता है तथा मध्यम बीच बीच में मुक्त रहता है। सुघराई में सारंगांग अधिक है। 'सुहा व सुघराई' राग का समय दिन का दूसरा प्रहर है तथा सहाना का समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। अडाना, सहाना और नायकी में तार षड्ज विशेष चमकता हुआ रखना

चाहिये। कोई कोई सुघराई में धैवत का प्रयोग नहीं करते फिर भी वे अपना राग सूहा से पृथक रखते हैं उदाहरणार्थः—

प म प प मम म म म म
(१) ऩि प प, ग़, म, नि प, म प, ग़ ग़ म, म, ऩि प, प, ग़ म, ग़, म प, ग़ म

प प प प प
रे सा। सां सां रें सां, रें सां, ऩि प॥ म प, ऩि प, नि सां, ऩि प, नि सां रें सां, ऩि प, म प

प मम प
नि सां, रें, सां, ऩि प, ग़ ग़ म, नि प।

प नि प मम सा प
(२) म, प सां, सां, ऩि प, म, प, प रे, म, ग़ ग़ म, रे, सा, ऩि सा, रे म, प, ऩि

प प ध
प, नि सां रें सां, सां, ऩि प,। म प, प ऩि प, नि सां, सां, रें, सां, सां रें, ऩि ऩि प, म प,

प प
ऩि प, नि सां, रें सां रें, सां, नि प।

इन प्रकारों में सारंगांग कितना है, वह देखा?

अब हम 'देवसाख' अथवा 'देवशाख' राग पर थोड़ा सा विचार करें। 'देवसाख' राग प्राचीन 'देशाख्य' अथवा 'देशाख' राग का अपभ्रंश माना जाता है। 'देशाख' राग अति प्राचीन है। इसका उल्लेख शार्ङ्गदेव ने भी किया है। दक्षिण के ग्रन्थानुसार 'देशाख' राग का मेल 'सा ग़ ग म प ध नि सां' है। लोचन ने देशाख का थाट इस प्रकार दिया है:—'सा रे ग म प ऩि नि सां।' यह हमारा खमाज थाट होगा, परन्तु इसमें धैवत नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि देशाख में धैवत वर्ज्य है। आज देशाख काफी थाट में माना जाता है। अर्थात् उसका वह तीव्र ग आज प्रचार में नहीं है। लोचन ने थाट का नाम 'मेघ' बताया है। देशाख का स्वरूप कुछ मेघ जैसा दीखता है। उसका आरोहावरोह स्वरूप ऐसा होगा:—'ऩि सा, रे म, प नि सां। सां ऩि प, म, प ग़ म, रे

मम प म
सा।' स्वरस्वरूप साधारणतः ऐसा होगा:—सा सा म रे सा, ऩि सा ग़ ग़, प, ऩि प, ग़ म रे सा, सा ऩि सा।' इसमें 'ग़ प' की सङ्गति ध्यान में रखो। आगे 'म प, प ऩि प, सां,

प मं मं प मम
सां, रें सां, नि सां, सां, ऩि प, ग़ं ग़ं मं रें सां, ऩि प, ग़ ग़ म, रे सा।' तार सप्तक में जाने पर मेघ जैसा प्रकार दिखाई देगा। देवसाख अप्रसिद्ध रागों में से है। खां साहेब वजीर खां ने मुझे एक गीत इस राग में सुनाया था। उसका स्वरूप ऐसा था, 'रे सा, प

मम म म प म
ग़ म, रे सा, ग़ ग़ प, ग़ म रे सा, प, प, ग़ म, रे सा, ऩि सा, ग़, प, ऩि प, सां, प, ग़

म
म प, ग़ म रे सा।" सूहा, सुघराई तथा देवसाख ये तीनों राग दिन के दूसरे प्रहर में गाये जाते हैं।

कौंसीकानड़ा का एक प्रकार काफी थाट में माना जाता है। इसमें कहीं-कहीं बागेश्री जैसा भाग दीखेगा; परन्तु कौंसी बागेश्री से पृथक राग है। इस राग का स्वर-

म म म नि॒
स्वरूप इस प्रकार है:—'प म, प ध ग॒, म प, ग॒ म, रे, सा, रे नि॒ सा, ग॒, म, रे सा, सा,
नि॒ नि॒ नि॒ नि॒ नि॒
ध ध, ध नि॒ प, ध नि सां, रें सां, सां, ध नि॒ प, म, प ध म। नि सां, सां, रें नि॒ सां,
प नि॒ नि॒
नि॒ प, म ध ध, नि॒ प, ध नि रें सां, ध म. प ध म।' यह स्वरूप सर्वथा स्वतन्त्र है। वस्तुतः इसमें बागेश्री का भाग नहीं दिया तो भी चलेगा। फिर भी किसी के द्वारा इस राग में 'सां नि॒ ध प, म ध नि॒ ध, प, ध म' इस प्रकार के प्रयोग भी मैंने देखे हैं। कौंसी में वादी मध्यम है। समय रात्रि का तीसरा प्रहर है। कौंसी का दूसरा प्रकार आसावरी थाट में मानने का व्यवहार है।

अब हम काफी थाट के सारंग अङ्ग के रागों पर विचार करें। सर्व प्रथम मधमादसारंग तथा बिंद्राबनीसारंग ये दोनों प्रकार हम लेंगे! इन दोनों प्रकारों के आरोह में ग तथा ध वर्ज्य हैं, यह हमेशा ध्यान में रखो। ये समप्रकृतिक राग हैं। 'सा रे म प' स्वर दोनों में सामान्य हैं। अतः इन रागों में भेद हुआ भी तो उत्तरांग में होगा। इन दोनों रागों में ऋषभ वादी तथा पंचम संवादी मानते हैं। तो फिर इन रागों में भेद कौनसा है ? यह प्रश्न स्वतः उत्पन्न होता है। यही प्रश्न अखिल भारतीय संगीत परिषद दिल्ली में उठा था। तब वहां एकत्रित प्रसिद्ध गुणी लोगों ने यह निर्णय दिया कि मधमादसारंग के आरोह तथा अवरोह में निषाद कोमल होगा तथा बिंद्राबनी में दोनों निषाद लिये जायेंगे। फिर भी प्रत्यक्ष प्रयोग में कुछ गुणी लोगों ने मधमादसारंग के आरोह में तीव्र निषाद का प्रयोग देखा तब एक ऐसा भी निर्णय किया कि बिंद्राबनी के अवरोह में धैवत का थोड़ा स्पर्श करने से वह राग मधमादसारंग से पृथक होगा। ये दोनों राग पृथक-पृथक गाने कठिन हैं। अतः प्रचार में बहुधा बिंद्राबनी ही सुनने में आता है और उसमें दोनों निषाद रहते हैं। यद्यपि आज भी ध्रुपद गायन में ये राग निराले रखे जाते हैं, तथापि ख्यालादि गीतों में ऐसा करना आसान नहीं। मधमाद सारंग का स्वरूप
प सां सां
ऐसा होगा:—'नि॒ प, म प रे, सा, रे सा, नि॒ सा, रे, प, म प, नि॒ प। नि॒ नि॒ सां, सां, नि॒
प म म
सां, सां, नि॒ नि॒ प, नि॒ सां रें रें सां, म प, नि॒ प, रे रे म प, सां, नि॒ प, रे, म प।'

इस राग में पंचम तथा ऋषभ की संगति सुन्दर दीखती है। बिंद्राबनी का स्वरूप ऐसा है:—

म, मपधपमरे, मरे, सा, रे, म, प, नि॒ प म रे, म म प, सां, नि॒ प, नि॒ प म रे, सा।
प प सां सां
म प, नि॒ प, नि सां, सां, नि सां रें मं रें सां, नि॒ प, म रे, मपनिसांरेंसां, नि नि सां, सां नि॒,
प
म प, नि सां, रें मं रें सां, म प नि॒ प म रे, रे सा। यह स्वरूप तार सप्तक में विशेष जाता है तथा इसमें 'म रे' की विचित्र संगति है, ऐसा गायक कहते हैं। दूसरा एक स्वरूप देखो:—
नि॒ म
'सा नि॒, म॒ प॒ नि॒ सा, रे प म रे, सा, सा रे म, म प, प, ध प, म रे, रे म, प, प, म रे, सा।'

'बड़हंस' भी एक सारंग प्रकार माना जाता है। किसी का कहना है कि 'बलहंस' तथा 'सारंग' ये भिन्न प्रकार हैं। किन्तु हम तो यही समझकर चलें कि बड़हंससारंग एक सारंग प्रकार है। और सारंग प्रकार होने से इसमें गन्धार वर्ज्य रहेगा ही। अब प्रश्न रह जाता है धैवत का। इस स्वर के सम्बन्ध में हमेशा की भांति विवाद रहता ही है। धैवत को आरोह में 'ध नि सां' इस प्रकार से कोई नहीं लेते। वह 'ध प' अथवा 'ध नि़ प' इस प्रकार से अवरोह में आवश्यकता पड़ने पर लिया जाता है। बड़हंस की एक खास पहिचान यह है कि उसमें मध्यम बीच-बीच में मुक्त रहता है तथा 'सा नि़' अथवा 'सां नि़' ऐसा एक भाग निषाद पर बीच-बीच में समाप्त करने में आता है। वादी ऋषभ है तथा समय द्वितीय प्रहर का है। बड़हंस का लोचन ने भी उल्लेख किया है, यह तुम्हें स्मरण होगा ही। यह राग भी भारत संगीत परिषद् के समक्ष चर्चा का विषय बना था। परिषद ने यह निर्णय दिया कि बड़हंस के अवरोह में धैवत का अल्प प्रयोग करने में कोई हानि नहीं। इसके अतिरिक्त मुक्त मध्यम इस राग में रहता है, ऐसा भी प्रत्यक्ष प्रयोग में

                                                        प   ध
वहां दिखाई दिया। बड़हंस का स्वरस्वरूप ऐसा होगा:—'नि़ नि़ प, म रे, सा, रे म, म प,
          सां   सा
नि़ प, नि सां रें सां, नि़ म, नि़ प, म, रे सा, सा नि़, सा, रे म, म प। म प, नि़ प,
                                       म   म
नि सां, सां, सां रें सां, सां नि़, प, पम नि़ प, रे, सा, सा नि़, सा, रे म प।' कुछ ख्याल गायक बड़हंस में क्वचित तीव्र गन्धार का प्रयोग करते हुए मैंने सुने हैं। परन्तु वह प्रकार विशेष सुनने में नहीं आता।

'शुद्धसारंग' राग बिलकुल अप्रसिद्ध है। इसमें दोनों मध्यम का प्रयोग होता है। अवरोह में धैवत आता है। अकेला तीव्र मध्यम आरोह में कम आता है। वादी ऋषभ है तथा समय द्वितीय प्रहर का ही है। कुल मिलाकर इसका स्वरूप सारंग जैसा ही है। प्राचीन ग्रन्थकार इस स्वरूप को 'सारंग' नाम देते हैं। वे इस राग में दोनों मध्यम बताते हैं परन्तु धैवत वर्ज्य मानते हैं। निषाद दोनों का प्रयोग करने के लिये उनकी सहमति है। प्रचार में अवरोह में धैवत लेते हुए गायक मैंने सुने हैं, स्वरस्वरूप ऐसा है:-

                                                                    सा
सा रे म रे, प, मं प, ध प, म रे सा, नि़ प़, नि़ सा, रे, म, रे, सा। सा रे म प, म प, ध प, म रे, नि़ प, म रे, सा, नि़ प़ नि़ सा, रे, म रे, सा। इत्यादि। स्पष्ट है कि यह राग सरल एवं स्वतन्त्र है।

'मियां की सारंग' राग भी अप्रसिद्ध रागों में गिना जाता है। इस राग में मियां-मल्लार की कुछ छाया दिखाने में विशेषता है। मियां की मल्लार में गन्धार कोमल है, वह इस राग में बिलकुल नहीं आना चाहिये। तब वह छाया 'नि़ ध' इन दो स्वरों से उत्पन्न करनी पड़ेगी, यह तथ्य ध्यान में आ ही जायेगा। अब स्वरस्वरूप देखो:—'रे सा,
नि़   ध़   रे
ध़ नि़ प़, प़, नि़ ध़, सा। नि़ सा, सा, नि़ ध़ नि़ सा, सा रे, म म, प, प, ध प, म रे सा।
म ध   ध   प
प, नि़ ध, नि़ ध, सां, नि सां, रें सां, नि़ ध, सां, रें पं, मं रें, सां, नि़ प, म रे सा॥

यह राग अच्छी तरह गाने के लिये बहुत कुशलता की आवश्यकता है। अब दूसरा एक स्वरूप देखो:—

'सा नि॒ ध॒, सा, रे, म रे, सा, रे सा, (सा) नि॒ ध॒, नि॒ प॒, म॒ प॒ नि॒ सा, नि॒ ध॒ नि॒ सा, रे म रे, प म रे, सा।'

पहला स्वरूप खां साहेब वजीरखां के गीत के आधार पर मैंने कहा तथा दूसरा जयपुर के मोहमंदअली खां द्वारा कहे गये गीत के आधार पर कहा है।

'लंकादहन' यह सारंग प्रकार विशेष दुर्मिल है। गायक भी इसके स्पष्ट लक्षण बताने को तैयार नहीं होते। फिर भी इसमें थोड़ा सा कोमल गन्धार का प्रयोग होता है, जो सर्वमान्य दीखता है। खां साहेब वजीरखां ने मुझे एक चीज इस राग में बताई थी, जिसमें उन्होंने कोमल गन्धार लिया था। दूसरे गायक ने यह राग ऐसा गाया:—'प, नि॒ सा, रे सा, नि॒ प॒, (म)ग॒ (म)ग॒ म रे सा, सा (प)नि॒ प॒, नि॒ सा, सा सा रे (म)ग॒, म रे सा। म म नि सां, सां, नि सां, सां मं रें सां, नि॒ प, प रे म प, म रे, नि॒ सा, (म)ग॒ (म)ग॒ म, रे सा।' इस राग के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं दी जा सकती। इसको वजीर खां साहेब ने इस प्रकार गाया था:—'सा, रे म, म प, प, (प)नि॒ नि॒ प प, म रे सा, रे म रे सा, सां (नि)नि॒ ध नि॒ प, म प, (म)ग॒ म रे सा। म प नि सां, सां, रें मं रें सां, (प)नि॒ प, म, म, प, प, सां नि॒ ध नि॒ प, (म)ग॒ म रे सा।' यह स्वरूप विवादग्रस्त है, ऐसा उन्होंने भी कहा।

'सामंत सारंग' एक सारंग प्रकार है, ऐसी सर्वत्र मान्यता है। इसके पूर्वाङ्ग में तो सारंग स्पष्ट है। उत्तरांग में 'नि॒ ध प' ऐसा एक टुकड़ा आता है। उसका संयोग 'रे म प, सां, नि॒ ध प' ऐसे उत्तरांग से हुआ तो वहां देस राग की छाया दीखने लगती है। अवरोह में धैवत लेने के सम्बन्ध में बहुमत दिखाई देता है। भारत संगीतपरिषद ने सामंत में अथवा सामंत के अवरोह में धैवत मान्य किया था। स्वरस्वरूप ऐसा होगा:—

'प म, प (म)नि॒ प, रे रे, सा, नि॒ सा, रे म, प, म, नि॒ ध प। मप, निसां, सां, निसां, रें रें, सां, नि॒प, म, नि॒ ध प।' हृदय पण्डित ने सामंत का आरोहावरोह ऐसा कहा है:—'सा रे म प नि॒ सां। सां नि॒ प म रे सा।' इसको हमारे गायक मधमाद कहते हैं। कोई धैवत सामंत में 'सां, ध नि॒ प' ऐसा लेने को कहते हैं। 'मधमाद' नाम 'मध्यमादि' इस संस्कृत नाम के अपभ्रन्श से हुआ है।

'पट मंजरी राग सारङ्ग प्रकार नहीं, यह ध्यान में रखो। उसमें थोड़ा सा भाग सारङ्ग जैसा दीखता है अतः सुविधा के लिये उसको सारङ्ग अङ्ग में ले लिया गया है।

पटमंजरी के विभिन्न प्रकार हैं, ऐसा कुछ गायक कहते हैं। कोई कहते हैं इसमें पांच राग एकत्रित होते हैं। Capt. Willard का कथन है कि पटमंजरी में मारू, धवल, धनाश्री और कुमारो का योग है किन्तु वह प्रकार सुनने में नहीं आता। पटमंजरी के दो प्रकार सुनने में आते हैं—एक शुद्ध स्वरों का और दूसरा काफी थाट का। कै० मुहम्मदअली

नि॒

खां जयपुर वाले ने मुझे एक प्रकार बताया था:—नि़ सा, नि़ सा रे सा, ध़ प़, सा,

म प म सां

नि़ सा, रे म प, म म प, ग॒ रे ग॒ म ग॒, रे सा, रे नि़ सा। नि सां, सां, नि सां, प, म प,

म

प, सा, नि़ सा, रे सा, प़ नि़ प़, नि़ सा, रे म, प, प, म प, ध ग॒ रे ग॒ म ग॒, रे, सा। दूसरा प्रकार बिलावल जैसा है, वह मुझे बड़ौदा के फैजमुहम्मद खां ने सुनाया था, वह बिलकुल अप्रसिद्ध है। पटमंजरी को अप्रसिद्ध रागों में गिनते हैं। हम जयपुर के मुहम्मद अली खां का मत स्वीकार करेंगे।

अब हम काफी थाट के 'मल्लार' अङ्ग की ओर बढ़ें। इस अङ्ग में बहुत से मल्लार प्रकार आते हैं। वस्तुतः स्वतन्त्र 'मल्लार' प्रकारों में ये पांच माने जाते हैं:— १–शुद्धमल्लार २–गौडमल्लार ३–मियां की मल्लार ४–मेघमल्लार तथा ५–सूरमल्लार। बाकी के मिश्र प्रकार समझे जाते हैं। मल्लार को गायक 'मौसमी राग' कहते हैं। मल्लार राग को वर्षाऋतु में गाने का रिवाज है।

"Numerous songs in these Mallars describe the clouds thunder the rain, and the winds and the birds of the rainy season पपिया, चातक, & मोर, Several songs describe the conditions of ladies at home who are separated from their lovers & husbands"

मेघदूत में भी ऐसा कहा है:—

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः।
कंठाश्लेषप्रणयिनिजने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥

'शुद्ध मल्लार' राग औडव है इसमें ग, नि स्वर वर्ज्य हैं, वादी मध्यम है। बहुधा सभी मल्लार प्रकारों में 'म⁀रे' अथवा 'रे प' सङ्गति रहती है। सा म तथा प स्वर प्रबल रहते हैं। कुछ मल्लारों में दोनों गन्धार लेते हैं तथा कुछ में एक कोमल गन्धार ही आता है। तीव्र निषाद आरोह में तथा कोमल अवरोह में लिये जाते हैं। अनेक प्रकारों में तार

म

स्थान चमकता हुआ रहता है। 'ग॒ म रे सा' यह टुकड़ा बहुत से प्रकारों में दिखाई देता है। 'शुद्धमल्लार' प्रसिद्ध राग नहीं कहा जा सकता। गायक से मल्लार की फरमाइश की जाय तो वे बहुधा गौडमल्लार अथवा मियां की मल्लार आरम्भ करते हैं। यही दो मल्लार प्रचार में अधिक प्रसिद्ध हैं। कोई बड़ा नामी गायक हुआ तो वह 'सूरदासी' अथवा 'सूरमल्लार' गायेगा। शुद्धमल्लार का स्वरस्वरूप ऐसा होगा:—

सा रे म, म प, प, म प ध सां, ध प, म, सा रे म, म, ध म, सा रे म, सां, ध प, म प ध सां ध प, रें सां, सां रें सां, रें सां, ध प, म प, ध सां ध प, म प म, सा रे म। रे प, प, म प, ध सां, रें सां, मं रें सां, रें सां, सां, ध म, म प ध सां ध प म, सा रे म।

इस राग को बिलावल थाट के दुर्गा राग से पृथक रखने का ध्यान रखना चाहिये। बीच-बीच में 'सा रे म, म प, प, म प ध सां ध प, म,' ऐसा भाग लेने से दुर्गा दूर होगा। सां रें ध, सां, प ध म, रे प' यह तान दुर्गा की है। मल्लार राग का लोचन तक ने वर्णन किया है वह उसने मेघ मेल में लिया है। मेघ मेल के स्वर उसने ऐसे बताये हैं- 'सा रे ग म प नि नि' लोचन ने भी मल्लार का सम्बन्ध वर्षाऋतु से बताया है। जैसेः— 'मेघसंचारे मल्लारः परिकीर्तितः ।' हृदय ने मल्लार के लक्षण ऐसे दिये हैं:—

सरिपमपधा निश्च सधपा धपमा ममौ ।
रिसावौडुवतां यातो मल्लारो रागपुंगवः ॥

इस लक्षण में गन्धार वर्ज्य है। यद्यपि धैवत है, तो भी वह मेल लक्षणानुसार कोमल निषाद होगा, यह तुम जानते ही हो। 'मलहारी' भी एक राग है, जिसे कुछ संस्कृत ग्रन्थकार भैरव थाट का प्रकार बताते हैं। अहोवल पण्डित ने मल्लार के जो लक्षण दिये हैं, वे विचारणीय हैं। वह कहते हैं:—

षड्जादिमूर्छनोपेतः षड्जत्रयसमन्वितः ॥
गनिहीनोऽपि मल्लारो वर्षासु सुखदायकः ॥
यतो वर्षासुगेयोऽयं मेघ इत्यपि कीर्तितः ॥
अकालरागगानेन जातदोषं हरत्ययम् ॥

इस मल्लार के लक्षण हमारे शुद्धमल्लार से भली प्रकार मिलते हैं। परन्तु हमारे प्रचार में मेघमल्लार में ग तथा ध स्वर वर्ज्य माने जाते हैं। मेघ के सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे ही।

'गौडमल्लार' राग अत्यन्त लोकप्रिय है। अनेक गायक इसे गाते हैं। गौडमल्लार के दो प्रकार हैं। एक में गन्धार तीव्र रहता है तथा दूसरे में वही कोमल रहता है। कोमल गन्धार का प्रकार रामपुर के प्रसिद्ध गायक गाते हैं। ख्याल गायक बहुधा तीव्र गन्धार वाला प्रकार गाते हैं। वादी मध्यम है। कोमल गन्धार लेने वाले गायकों को उत्तरांग में 'सां नि प' अथवा 'ध नि प' तथा पूर्वाङ्ग में 'ग॒ म रे सा' ऐसा करना ही पड़ेगा। 'सां नि ध प' ऐसा सरल प्रकार तो शोभा देगा ही नहीं। उसमें 'सां नि ध नि प' हो सकता है। कोमल गन्धार वाला प्रकार गायक इस प्रकार गाते हैं:—

सां म ग म म ऩि
सा, रे म रे, प, म प, ध सां, ध ऩि प, ग॒ ग॒ म, ऩि प, म प, ग॒, म, रे, सा, ध नि
मं ऩि प प म म
सां, रें सां, रें पं ग॒ं ग॒ं मं रें सां, सां, ध ऩि प, म प ध सां, ऩि प म प, ग॒ ग॒ म, ऩि प,
म
ग॒ म, रे सा।

इस प्रकार में तीन बातों की ओर ध्यान देना आवश्यक है:—

नि
(१) 'ध ऩि प, म प ध सां'; 'ग॒ म रे सा'; 'म रे प'

(२) आरोह में रे प संगति तथा अवरोह में म रे संगति।

(३) बीच-बीच में मध्यम मुक्त रखना।

सां
'ऩि प, म प, प, ध सां ध ऩि प' इतना भाग आते ही गौडमल्लार श्रोताओं को प्रतीत होने लगेगा। तीव्र गन्धार वाला राग सर्वत्र प्रचलित है ही वह इस प्रकार है:-'रे ग रे म ग रे सा, रे ग रे ग म प म ग, रे रे प म प, म प, ध सां, ध प, म प म ग।' इसके सम्बन्ध में विशेष कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार में 'रे ग रे म ग' गौड तथा 'रे प म प ध सां' मल्लार दोनों का योग है, ऐसा गायक कहते हैं। तीव्र गन्धार प्रयुक्त स्वरूप के लिये 'रागलक्षण' में थोड़ा बहुत आधार मिलेगा। इस ग्रन्थकार ने गौड-मल्लार को बिलावल मेल में (शंकराभरण मेल में) लिया है और उसका आरोहावरोह इस प्रकार कहा है:—

सा रे म प ध सां। सां नि ध प म ग रे सा।

'मियां की मल्लार' को तानसेन ने प्रचलित किया, ऐसा समझा जाता है। यह प्रकार अत्यन्त मनोहर है, इसमें संशय नहीं। इस राग में दोनों निषाद क्वचित् प्रसङ्गों

नि ध
पर क्रमशः (एक के बाद दूसरा) आते हैं। इस राग का सारा वैचित्र्य 'सा, ऩि॒ ध॒ ऩि॒ ध॒

ध म म म
ऩि॒ सा,' ऩि नि॒ सा, 'रे सा, रे प ग॒ ग॒ म रे, सा' इस भाग में है अतः इसे पहले साध लेना

चाहिये। यही भाग पुनः मध्य सप्तक में 'म ऩि ध ऩि ध नि सां, नि सां, रें सां, मं रें सां

म म
रें पं मं रें सां, ऩि ध ऩि ध ऩि प, म प सां, ग॒ ग॒ म रे सा। इस प्रकार से आता है। यह विशेषता साध लेने पर मियां की मल्लार सध गया समझना चाहिये। इस राग के लिये प्राचीन संस्कृत ग्रन्थाधार तो हैं ही नहीं। वादी मध्यम कहा जाता है। कोई रे प संवाद मानते हैं। कारण इस राग में कानडांङ्ग है और वह बुरा भी नहीं दीखेगा।

'मेघ मल्लार' राग सभी गायकों को आता है, यह नहीं कहा जा सकता। इसमें गन्धार तथा धैवत वर्ज्य मानने वाले भी हैं। हृदय पंडित मेघ के लक्षण इस प्रकार बताते हैं:—

सरीपमौ पधनिसा रिसौ निधपमा ममौ ।
रिसौ रिसौ निधपमाः पसौ मेघो हि षाडवः ॥

यहां गन्धार तथा धैवत वर्ज्य हैं, कारण इस वर्णन का धैवत अर्थात् कोमल निषाद होगा। कुछ गुणी लोगों के मत से मेघ में जो कोमल गन्धार जैसा भास होता है वह ऋषभ के विलक्षण आन्दोलन से प्रतीत होता है। वे कहते हैं कि वस्तुतः वहां 'रे रे म रे' ऐसा प्रकार है। उनके इस कथन में भी बहुत कुछ तथ्य है। वहां मियां की मल्लार में जैसा 'रे प ग ग म रे सा' यह भाग है, वैसा नहीं है, यह कोई भी कह सकता है। मेघ का एक प्रकार जिसमें तीव्र धैवत लिया जाता है, वह भी मैंने सीखा है। उसमें ऋषभ पर मध्यम के 'कण' ही मेरे गुरु ने बताये थे। धैवत न लेने के सम्बन्ध में आज समाज में बहुमत दिखाई देगा। मेघ का स्वरूप ऐसा होगा:—

रे रे म रे सा नि़ प़, सा, सा रे रे. रे प म, रे, सा रे म रे, सा नि़ प़, म प सां, नि प, म रे सा। म प, नि सां, सां, रें सां, नि सां, रें मं रें, सां, नि प, सां, नि प, रे रे म रे सा।

दूसरे एक गीत के आधार पर स्वरस्वरूप कहता हूं, सुनोः—

"सां, सां, नि प, रे रे, रे रे म रे, सा, रे सा, नि़ सा रे म रे, म प, नि प, सां, नि सां, रें मं रें, सां, नि प।" सारांश यह कि मेघ में गन्धार तथा धैवत वर्ज्य करने पड़ते हैं। पूर्वाङ्ग में "रे रे रे म रे" ऐसा प्रकार होगा तथा उत्तरांग में "नि प" यह सङ्गति होगी, बस इतनी बातें ध्यान में रखो।

"सूरमल्लार" राग सूरदास ने प्रचलित किया था, ऐसा माना जाता है। यह राग गाने के भी एक दो प्रकार हैं। उनमें गन्धार वर्ज्य एवं अल्पत्व है, ऐसा कुछ गायक कहते हैं। "नि म" की सङ्गति वैचित्र्यदायक है। उसी में बीच-बीच में "प म नि प" ऐसा भाग जोड़ देते हैं, तब यह कृत्य बहुत अच्छा दिखता है। पूर्वाङ्ग में सारंग जैसा भास होता है। "प प रे सा, "नि़ सा रे म, प, नि प, सां" यह भाग सूरमल्लार

म म म
में अच्छा दिखेगा। मेघ का "रे रे रे म रे सा" ऐसा प्रकार इसमें नहीं लाना चाहिये। कुछ गायक सूरमल्लार के उत्तरांग में थोड़ा सा धैवत का स्पर्श करते हैं। जैसे—"सां

नि म, प म नि ध प," "प म नि प म रे सा" मुख्यत: "सां, नि म प, म नि प" इन स्वरों के आते ही श्रोता समझने लगते हैं कि गायक सूरमल्लार गा रहा है।

रामपुर के शाहजादे सादत अलीखां साहेब ने ऐसा एक प्रकार गाया था:—
रे सा म
ग रे म प, नि ध नि म प, म प, नि सां, रें सां नि ध नि प म रे, सा रे, म प ग म,
सा
रे सा।" इसको उन्होंने एक सूरमल्लार प्रकार बताया था, ऐसा मुझे याद है। परन्तु हमारे यहां ऐसा कोमल गन्धार नहीं लिया जाता। मेरी समझ से कोमल ग वर्ज्य करने का नियम ही हम पालन करें तो उचित होगा। विवादी मानकर उसका अल्पप्रयोग करना बात दूसरी है। हमारे यहां प्रचार में गन्धार तथा धैवत दोनों स्वर वर्ज्य करने वाले भी अनेक गायक हैं। सूरमल्लार में वादी मध्यम है। यह स्वर बीच-बीच में "सा रे म" ऐसा मुक्त भी रहता है और शोभा भी देता है। कोई-कोई गायक सूर-मल्लार को "सूर सारङ्ग" कहते हैं; किन्तु हम यह नाम पसन्द नहीं करते। इस राग में

म रे की सङ्गति रक्तिवर्धक होती है।

"रामदासी मल्लार" राग सर्वथा अप्रसिद्ध है। कहा जाता है इसका प्रकार बाबा रामदास ने किया। ये रामदास अकबर बादशाह के समकालीन थे, ऐसा समझा जाता है। रामदासी मल्लार में दोनों गन्धार तथा दोनों निषाद हैं। धैवत का थोड़ा सा प्रयोग

भी इस राग में होता है। इस राग का स्वरूप ऐसा है:—"प ग म रे सा, रे नि सा, सा
म ग म
रे ग, म, प, म प, ग ग म रे, प म नि प, ग म रे सा। प ध नि, सां, सां, सां रें सां, नि
प ग म
सां, नि प, म, म, प ग, म, प म, नि प, ग म रे सा।" मेरे एक स्नेही द्वारा सम्पादित

नि
एक और स्वरूप ऐसा है:—"सा म, म, प म, म ग, प म, ग म, प ग म रे, प, म नि प,
म
म रे, सा, सा रे सा, ग म रे प, प, म, ग म, रे, म रे, सा।"

मल्लार के चार पांच अप्रसिद्ध प्रकार जो और शेष रहे, उन सब के सरगम मैंने तुमको बताये ही हैं। "मीराबाई की मल्लार" में दोनों गन्धार तथा दोनों धैवत

म म
आते हैं। इसका संक्षिप्त स्वरूप ऐसा होगा:—"म रे, सा रे, नि सा, ग ग म रे, प, म प,
नि नि नि
नि ध नि सां, रें सां, ध ध नि प, म प, सां ध नि प, म प ग म, म प, नि प, रे म प ध

म प ।" यह प्रकार हमेशा से विवादग्रस्त रहा है। फिर भी यह स्वरस्वरूप मुझे अच्छे घरानेदार गायक से मिला है इसलिये इसको ध्यान में रखो।

"चरजू की मल्लार" राग के पूर्वाङ्ग में म रे की सङ्गति है। उत्तरांग में "सां नि ध प, ग रे" ऐसा प्रकार होता है। स्वरस्वरूप ऐसा होगाः—"सा, म रे, म प, सां, नि ध, प, ग रे, रे ग सा, ध प, सां नि ध, प ग रे, ग रे ग सा। म प, नि सां, सां, रें गं रें सां, नि सां, प नि प, सां नि ध प, ग रे, रे ग सा।"

यहां मल्लार में थोड़ा सा सिन्दूरा का भाग मिला हुआ सा दिखाई देगा, यह राग मुझे स्व० छमन साहेब ने बताया था।

"चंचलससमल्लार" राग में भी म रे तथा कोमल गन्धार प्रयुक्त टुकड़ा "ग ग म रे, सा," रहता है। यह राग अति दुर्मिल है। यह मुझे रामपुर के मुहम्मद हुसैन खां बीनकार ने नवाब साहेब की आज्ञा से बताया था। इसका स्वरूप ऐसा है:—"सा, रे प, म रे सा, रे सा, सा, नि रे सा, नि प प, म प, सा, नि सा, रे, ग ग म रे, सा। म प सां, सां, नि म प, सां, नि सां, म प नि सां, रें, नि, सां, प नि, म प, रे म, सा रे, सा।"

"धुलिया मल्लार" राग स्व० छमनसाहेब से ही मुझे मिला था। उसकी सरगम मैं तुमको बता चुका हूँ। इन तीन चार रागों में गीत गाने वाले थोड़े ही होने से विशेष जानकारी देना कठिन है। चरजू, चंचलसस, धुंडिया अथवा धोंडू ये बड़े नायक हो गये हैं, ऐसा कहा जाता है।

"नट मल्लार" में छायानट तथा मल्लार का योग है। इस राग की सरगम भी मैं बता चुका हूं। ये अन्तिम चार पांच प्रकार 'लक्ष्य सङ्गीत' में तथा 'अभिनवरागमंजरी' में नहीं दिये गये। उनके सरगम तुमको आते ही हैं और गीत आगे कहने ही वाला हूं। इतनी ही सामिग्री से सब राग तुम बहुत ही सुन्दरता से गा सकोगे। "सा, रे ग म (म) रे, नि सा, रे" छायानट का यह भाग तुम्हें विदित ही है। इन मल्लार प्रकारों के अतिरिक्त देसमल्लार, जयजयवन्तीमल्लार आदि कुछ मिश्र प्रकार भी क्वचित दृष्टिगत होते हैं, परन्तु उनके सम्बन्ध में हम यहां चर्चा नहीं करेंगे। उन प्रकारों में अवयवीभूत रागों के अङ्ग स्पष्ट दिखाई देने योग्य हैं, अतः उन अङ्गों से राग नाम निश्चित करना कठिन नहीं।

काफी थाट जन्य रागों का केवल वर्गीकरण तथा उनकी पारस्परिक भिन्नता को रखने के लिये यह श्लोक उपयोगी होगा:—

हिंदुस्थानीयपद्धत्यां रागाः काफ्याह्वमेलजाः ।
पंचांगेषु विभक्ताः स्युर्लक्ष्यमार्गानुसारतः ॥
काफ्यंगं प्रथमं प्रोक्तं धनाश्र्यंगं द्वितीयकम् ।
सारंगांगं तृतीयं स्याच्चतुर्थं कानडाह्वयम् ॥
स्यात्पंचमं मलाराख्यं भूरिरक्तिप्रदायकम् ।
अथो वक्ष्ये क्रमाद्रागांस्तान् पंचांगानुसारतः ॥
काफी सिंदूरकः पीलू रागाः काफ्यंगमंडिताः ।
धनाश्रीधानिका भीमपलासी हंसकंकणी ॥
प्रदीपकी मता एता धनाश्र्यंगपरिष्कृताः ।
बागीश्वरी बहारश्च सूहा सुघ्राइका तथा ॥
नायकी साहना तद्वद् शाख्यः कौशिकाह्वयः ।
रागाः प्रकीर्तितास्तज्ज्ञैः कानडांगसुशोभनाः ॥
शुद्धसारंगसामंतौ मध्यमादिस्तथैव च ।
वृन्दावनी बडहंसो मीयांसारंगनामकः ॥
लंकाग्रदहनः पटमंजरी काफिमेलजा ।
रागा एते मता अष्टौ सारंगांगविभूषिताः ॥
मल्लारः शुद्धपूर्वोऽथ मीयांमल्लारसंज्ञितः ।
गौंडमल्लारको मेघः सूरमल्लारनाटकौ ॥
रामदासी तथा चजू चंचलाख्यौ च धूलिया ।
मीरामल्लारकः प्रोक्ता मल्लारांगप्रदर्शिनः ॥

इस श्लोक में जन्य रागों का केवल वर्गीकरण हुआ। अब उनका संक्षिप्त पृथक्करण देखो:—

काफीरागः सदा पूर्णः पीलुर्द्वादशसुस्वरा ।
आरोहे गनिहीनासौ सिंदूरा शास्त्रसंमता ॥
धन्यासी रिधरिक्तोक्ता रोहणे पंचमांशिका ।
तथैव संमता भीमपलासी मध्यमांशिका ॥
आरोहे चावरोहेऽपि धानी स्याद्रिधवर्जिता ।
पंचमांशा द्विगांधारा विचित्रा हंसकंकणी ॥
गद्वया मध्यमांशा च लोके प्रदीपकी स्मृता ।
आरोहेऽरिर्बहाराख्योऽड्डाणांगेन परिष्कृतः ॥

वागीश्वरी त्वपारोहे संपूर्णा कैश्चिदीरिता ।
धवर्जिता मता सूहा मध्यमांशा च मुक्तमा ॥
प्रतिलोमे धसंस्पर्शा पांशा सुग्राह्यका जने ।
नायकी धैवतोना स्याद्रिपसंगतिशोभना ॥
सहाना तु सुसंपूर्णा निपसंगमनोहरा ।
गांधारांदोलिता कौंसी वागीश्वर्यंगमंडिता ॥
धरिक्तो देवशाखः स्याद्गपसंगविचित्रकः ।
मद्वंद्वः शुद्धसारंगो मध्यमादिर्धगोज्झितः ॥
प्रतिलोमे धसंस्पर्शा वृन्दावनी मता जने ।
मुक्तमो बडहंसः स्याद्धस्पर्शो गीयते क्वचित् ॥
गवर्जितो मतो लक्ष्ये सामंतो देसकांगकः ।
मल्लारांगो भवेन्मीयांसारंगो निधशोभनः ॥
मृदुगः श्रूयते लोके लंकादहननामकः ।
ईषन्मृदुगसंस्पर्शा संपूर्णा पटमंजरी ॥
शुद्धमल्लारकः प्रोक्तोऽगनिर्गानविशारदैः ।
तीव्रगांधारसंयुक्तो गौंडमल्लारको जने ॥
मंडितः कानडांगेन मीयांमल्लारसंज्ञितः ।
धगोनः सूरमल्लारो धैवत्स्पर्शोऽथवा क्वचित् ॥
मेघमल्लारनामासौ नित्यं लक्ष्ये धगोज्झितः ।
गद्वंद्वं संमतं तत्र रामदासिमलारके ॥
गद्वयं धद्वयं चापि मीरामल्लारनामके ।
छायानट्टाश्रयः प्रोक्तो नटमल्लारसंज्ञितः ॥
चंचलाद्यससाख्योऽपि चर्चाह्वयोऽथ धूलिया ।
अप्रसिद्धा मता एते नित्यं स्युर्वादमूलकाः ॥

अब हम आसावरी थाट के रागों की ओर दृष्टिपात करें। प्रथम आसावरी मेल के स्वरों के सम्बन्ध में कहना ठीक होगा। उत्तर की ओर आसावरी में ऋषभ कोमल मानते हैं, यह निर्विवाद है। वहां भी आसावरी में तीव्र ऋषभ का प्रयोग करने वाले अनेक ख्याल गायक हैं। कुछ ध्रुपदियों को तो मैंने दोनों ऋषभ का प्रयोग करते हुए भी सुना है। ग्वालियर में ख्याल गायन का बहुत प्रचार है, वहां आसावरी तीव्र ऋषभ लेकर ही गाते हैं। किसी ख्याल में कोमल ऋषभ अथवा दोनों ऋषभ आये तो वे उस प्रकार को 'कोमल ऋषभ की आसावरी' कहते हैं। महाराष्ट्र में ख्याल गायन अधिक

लोकप्रिय है। अतः लोकमत के अनुसार हम आसावरी मेल में ऋषभ तीव्र स्वीकार करते हैं। उत्तर के गायकों एवं ग्रन्थों के मतानुसार आसावरी में ऋषभ कोमल ही रखना उचित है। आसावरी का पहले भी रूपान्तर हो चुका है। लोचन, हृदय, सोमनाथ पण्डित के ग्रन्थों में आसावरी में रे, ध कोमल तथा ग, नि तीव्र कहे गये हैं। सारांश यह कि हम आज के प्रचार को देखकर आसावरी में ऋषभ तीव्र लेना निश्चित करते हैं।

आसावरी मेल से आसावरी राग उत्पन्न होता है। इसके आरोह में गन्धार तथा निषाद वर्ज्य होते हैं। आसावरी का समय दिन का दूसरा प्रहर मानते हैं। इस प्रहर के रागों के आरोह में बहुधा गन्धार वर्ज्य ही रहता है, उदाहरणार्थ, जौनपुरी, गांधारी, देसी

नि नि म

देखो। आसावरी में वादी धैवत है। स्वरस्वरूप ऐसा होगाः–'सा ध ध, नि ध, प, ध ग प, ग,

सा म नि नि नि नि म सा

रे, सा, रे म प, ध ध प, सां ध ध प, म प नि ध प, ध म प, ग, रे सा।

नि मं सां नि सां

म प ध, सां, सां, सां ध, सां, रें गं, रें सां, रें सां, रें सां, नि ध, प, म प ध गं रें

म सा

सां, रें सां, नि ध, प, म प ध म प ग, प ग, रे सा। यह संक्षिप्त स्वरूप है।

'जौनपुरी' एक यावनिक प्रकार है। इसको अमीर खुसरू के अनुयाइयों ने प्रचलित किया, ऐसा कहा जाता है। इस राग की प्रकृति अधिकांश आसावरी जैसी ही है। गायक कहते हैं कि कोमल ऋषभ लिये जाने वाले आसावरी से भिन्न राग उत्पन्न करने के लिये गुणी लोगों ने जौनपुरी राग प्रचलित किया तथा उसमें तीव्र ऋषभ लेने का उन्होंने निश्चय किया। परन्तु आसावरी में यदि तीव्र ऋषभ लिया गया तो इस राग से उसकी उलझन होने लगती है। इस कारण गायकों ने ऐसा संशोधन किया कि आसावरी के आरोह में ग तथा नि स्वर वर्ज्य माने जायें और जौनपुरी में केवल गन्धार

म सा

वर्ज्य माना जाये। इसके अतिरिक्त जौनपुरी के पूर्वाङ्ग में 'प ग रे म प' ऐसा एक छोटासा टुकड़ा गायक लेते हैं, यह आसावरी में कभी नहीं आ सकता, यह बात तो नहीं, परन्तु यह जौनपुरी का रागवाचक समझा जाता है। जौनपुरी में वादी धैवत है। समय दिन का दूसरा प्रहर है। जौनपुरी का आरोहावरोह, 'सा रे म प ध नि सां। सां नि ध प म

नि

ग रे सा। ऐसा होगा। स्वरस्वरूप इस प्रकार होगाः—'म प नि ध, प, ध प, ध म प,

म सा म सा

ग, रे म प, नि ध, प, म प ध म प ग, रे सा, रे म प, नि ध प। म प ध, नि सां, सां, नि सां, ध नि सां रें सां, रें नि ध, नि ध, प, म प, गं, रें सां, रें सां, नि ध प, म प नि

सा

ध प, म प ध म प ग, रे, सा।

'गांधारी' प्राचीन राग है। यह अधिकांश जौनपुरी जैसा दीखता है; परन्तु रामपुर के गायक इसमें दोनों ऋषभ लेते हैं। आरोह में तीव्र ऋषभ तथा अवरोह में कोमल आता है। इसमें भी वादी धैवत है। समय आसावरी का ही है। यह राग गायक

प　　　　　　म सा　　　प
हमेशा नहीं गाते। इसका स्वरस्वरूप ऐसा है:—'नि ध प, ध म प, ग, रे म प, नि ध, प,
म　　　　　　　　　नि
ध म, प ग, रे, सा, रे म प, नि ध, नि ध प। म प, ध सां, नि सां, ध नि सां, रें गं रें सां,
ग
नि ध, सां नि ध, प, म नि ध, प, ध म प ग, रे, रे, सा। इस स्वरूप में जौनपुरी में आने
म सा
वाला, 'ग रे म प' यह भाग है, इसे ध्यान में रखो। यह गांधारी में भी रागवाचक समझना चाहिये।

कोई गायक 'देवगांधार' को एक निराला प्रकार मानते हैं तथा उसमें वे दोनों गन्धार का प्रयोग करते हैं। उस प्रकार की एक सरगम मैंने तुमको बताई थी। मुसलमान गायक देवगन्धार को अलग से बहुत कम ही गाते हैं। वे तीव्र गन्धार को 'सा ग म' इस प्रकार बीच में ही ले लेते हैं। कोई गांधारी को ही देवगांधार मानते हैं। संस्कृत ग्रन्थों में देवगांधार राग के स्वर बिलकुल निराले कहे गये हैं।

'देसी' एक अति लोकप्रिय राग है। इसके आरोह में गांधार तथा धैवत ये दोनों स्वर वर्ज्य होने के कारण इस का स्वरूप सर्वथा स्वतन्त्र है। इस राग को 'परमेल प्रवेशक' राग भी कहते हैं, कारण इस राग से आगे ग तथा ध वर्ज्य किये जाने वाले राग सारङ्ग में सहज ही चले जाते हैं। देसी में कुछ भाग सारङ्ग का दीखता ही है। 'देशी' दो तीन प्रकार से गाई जाती है। ये सब भेद उस के धैवत से उत्पन्न होते हैं। कोई देसी में धैवत तीव्र लेते हैं और कोई दोनों धैवत लेते हैं। केवल पूर्वाङ्ग में सब एकमत हैं। देसी का
सा　　　म　　　सा　　　म　　　　　　　　नि
पूर्वाङ्ग ऐसा है:—'नि़ सा, रे प ग, रे, नि़ सा रे म प रे म प,' उत्तराङ्ग में ध प, नि ध प,
म　　रे　　　　म　　　　　　　　　　　सा
ग रे, नि़ सा, रे प ग रे, नि़ सा। सां प, ध प, ग रे, प ग रे, नि़ सा, रे प ग रे नि़ सा।

इसमें सां प, की सङ्गति मधुर है।

'कोमल देसी' भी एक प्रकार है, जो मैंने तुम्हें बताया था। इसमें दोनों ऋषभ आते हैं, परन्तु आरोह में तीव्र ऋषभ का अल्प प्रयोग होता है। सारी रंजकता कोमल रे, ध स्वरों पर अवलम्बित है। देसी में पंचम वादी है। रामपुर के गायक 'रे म प रे म प' की ऐसी पुनरावृत्ति अधिक पसन्द करते हैं।

'सिंधभैरवी' राग में प्रचार में दोनों ऋषभ का प्रयोग दिखाई देता है। वादी धैवत है। तीव्र ऋषभ बारम्बार आगे लाना पड़ता है। इस राग का स्वरूप संक्षेप में ऐसा
नि　　म　　　　रे
दिखाया जा सकता है:—'प सां ध प, ध प ग रे, नि़ सा, ग रे, ग ग म, प, प, सां नि ध
म
प, ग रे म ग रे, नि़ सा।" दूसरा एक प्रकार देखो:—'प़ ग रे ग सा रे नि़ सा ग रे, प़, ध़ नि़ सा, नि़ ध़ प़, ग़ म़ प़ ध़ म़ प़।' यह प्रकार षड्ज परिवर्तन से हुआ है, ऐसा दीखता ही है। सिंध भैरवी को गायक क्षुद्र गीतों वाला राग समझते हैं।

'खट' राग में दोनों गन्धार, दोनों निषाद, दोनों धैवत तथा दोनों ऋषभ लिये हुए प्रचार में कभी-कभी दिखाई देते हैं। तीव्र गन्धार लगने वाले स्वरूप में थोड़ी भैरव की छाया दीखती है। तीव्र धैवत लेते हैं तो वह केवल आरोह में ही। कोई इस राग को केवल आसावरी के स्वरों से ही गाते हैं; परन्तु अन्तरा में तीव्र धैवत खासतौर से वैचित्र्य के लिये लिया जाता है। इस राग में गांधार तथा धैवत हमेशा आन्दोलित रहते हैं। इस राग के भिन्न-भिन्न संरगम मैंने तुमको बताये ही थे, तथा उनके स्वरकरण भी कहे थे।

कुछ गायक जौनपुरी, गांधारी, देसी, खट को तोडी प्रकारों में गिनते हैं। तोडी के बहुत से प्रकार हैं। ग्रन्थों में तोडी थाट हमारे भैरवी थाट जैसा वर्णित किया गया है, यह तुम्हें विदित ही है।

'दरबारीकानडा' राग विशेष लोकप्रिय है। यह अनेक गायकों को आता है। इसको प्रथम तानसेन ने लोकप्रिय किया, ऐसा समझा जाता है। इस राग

नि नि म सा
का आरोहावरोह ऐसा है:—'सा रे म प धु नि सां। सां धु नि प, म प, गु, रे, सा।'
म सा
केवल 'गु, रे रे, सा, नि सा रे धु, नि सा' इतने स्वर कहते ही दरबारीकानडा दीखने लगता है। दरबारी का समप्रकृतिक राग अडाणा है। इन दोनों रागों में भेद गायक ऐसा बताते हैं कि 'दरबारी नीचे को देखती है और अड़ाना ऊपर को देखता है।' उनके कहने का भावार्थ इतना ही है कि दरबारी का चलन मुख्यतः मन्द्र तथा मध्य स्थानों में है तथा अडाना का चलन मध्य एवं तार स्थान में है। उनका ऐसा कहना यथार्थ ही है। दरबारी में वादी ऋषभ मानते हैं। दरबारी का स्वरूप प्रसिद्ध ही है।

'अडाना' राग भी लोकप्रिय है। यह तार स्थान में गाया हुआ विशेष सुन्दर दिखाई देता है। इसका वादी तार षड्ज मानते हैं। आरोहावरोह स्वरूप ऐसा है:—'सा रे
सा
म प, धु सां। सां धु नि प, गु म रे सा।' अडाना में:—'गु रे रे, सा यह भाग नहीं आयेगा। इसके आते ही दरबारी सामने आ जायेगा। इस स्वरूप से अडाना को तुरन्त
नि नि नि नि म
पहचाना जा सकता है:—'सां धु, नि सां, रें सां, धु धु नि प, म प सां, धु, नि प, म प, गु
सा नि मं नि
म, रे सा, सा रे म प धु, रें, सां गुं मं रें सां, नि सां, धु नि सां।' यह राग सरल ही माना जाता है। इस में उत्तमोत्तम ख्याल, ध्रुपद तथा धमार सुनने में आते हैं।

'कौंसीकानडा' आसावरी थाट का कौंसी प्रकार है। यह अप्रसिद्ध है। इसके पूर्वाङ्ग में थोड़ा सा भीमपलासी जैसा तथा उत्तरांग में मालकंस जैसा आभास होता है। वादी स्वर मध्यम है। दरबारी, अडाना तथा कौंसी रात्रि के तीसरे प्रहर में गाये जाते हैं। कौंसी का स्वरूप इस प्रकार है:—

नि
सा म, म, प, म गु, म गु, रे सा, नि सा, रे सा, नि धु, नि सा, म, प गु, म गु रे सा। म
नि म नि
धु नि सां, सां, नि सां, नि सां, मं गुं रें सां, सां नि धु म, गु म धु नि सां, रें सां, नि धु म, म गु, रे, सा।

एक कौंसी प्रकार काफी थाट में गाया जाता है तथा उसमें कुछ बागेश्री अङ्ग रहता है, यह मैंने कहा ही था। जो लोग नायकीकानडा में कोमल धैवत लेते हैं वे अपना राग इस आसावरी मेल में मानेंगे। वे धैवत ऐसा लेते हैं:—'सां ध़ नि़ प' परन्तु हम नायकी में धैवत सर्वथा वर्ज्य करते हैं। अतः इस कोमल धैवत लिये जाने वाले प्रकार से हमको कोई मतलब नहीं।

स्थूल दृष्टि से आसावरी मेल के जन्य रागों के दो वर्ग होंगे। पहला वह जिसमें आसावरी अङ्ग के राग हैं तथा दूसरा वह जिसमें कानडा अङ्ग के राग हैं। पहिले वर्ग में आसावरी, जौनपुरी, गांधारी, देवगांधार, खट, देसी तथा सिंध-भैरवी राग आयेंगे और दूसरे वर्ग में दरबारी, अडाना और कौंसी राग आयेंगे।

लक्ष्यसङ्गीत में आसावरी मेल में 'भीलफ' नाम का भी एक राग कहा गया है। भीलफ एक अप्रसिद्ध राग है, ऐसा भी कहा जा सकता है। उसकी प्रकृति कुछ खट राग जैसी है। उसमें भी धैवत वादी मानते हैं। भीलफ को दो प्रकार से गाते हैं। एक में आसावरी अङ्ग तथा दूसरे में भैरवांग दीखता है। पहिले प्रकार में दोनों धैवत रहते हैं। धैवत तथा गंधार आन्दोलित हैं। कोई भैरवांग प्रकार में ऋषभ बिलकुल वर्ज्य करते हैं। इन प्रकारों के सरगम मैंने तुमको बता ही दिये हैं।

अब आसावरी के जन्य रागों के सम्बन्ध में क्या क्या बातें ध्यान में रखनी चाहिये, वह देखो:—

> आसावरी तथा जौनपुरी गांधारिभीलफौ ॥
> सिंधभैरविकासंज्ञा ह्यडाणाखटकौशिकाः ॥
> दरबारीकानडाख्या देशिका विबुधप्रिया ।
> आसावरी मेलनोत्था रागा एते सुसंमताः ।

फिर आगे:—

> आसावरी तथा जौनपुरी गांधारिभीलफौ ।
> सिंधुभैरविका देसी षड्राग इति सप्त ते ॥
> आसावर्यंगसम्पन्ना इति लक्ष्यज्ञसम्मतम् ।
> दरबारी तथा कौंसी नायकी मृदुधैवता ॥
> अडाणाख्योऽपि रागास्ते कानडांगा मता बुधैः ॥

अब इस राग की पारस्परिक भिन्नता सुनो:—

> आसावर्यां गनी नस्तःप्रारोह ऋषभद्वया ।
> गांधारी कीर्तिताऽऽरोहे जौनपुरी गवर्जिता ॥

झीलफे धैवतद्वंद्वं षड्रागेऽपि तथैव च ।
आरोहे न धगौ देश्यां पूर्णा सिंध्वाख्यभैरवी ॥
मंद्रमध्यसुसंचारा दरबारी मता जने ।
मध्यतारसुसंचारोऽड्डाणः सर्वत्र विश्रुतः ॥
कौसी सुसंमता लक्ष्ये मालकंसांगधारिणी ।
एवमासावरीमेलजाता रागा दशेरिताः ॥

ये लक्षण सर्वथा संक्षिप्त हैं, परन्तु तुम्हारे जैसे कुशल विद्यार्थी को अधिक विस्तृत लक्षणों की आवश्यकता होगी, ऐसा मैं नहीं समझता।

अब हम भैरवी मेल के राग देखें। इस मेल के कुछ ही राग प्रचार में गुणी लोग गाते हैं। लक्ष्य सङ्गीत में ऐसा कहा गया है:--

भैरवी मालकोशश्च ह्यासावरी धनाश्रिका ।
भूपालो झीलफो रागो जंगूलो मोटकी तथा ॥
शुद्धसामंतनामापि दाक्षिणात्यगुणिप्रियः ।
वसंताद्यमुखारीच रागा भैरविमेलजाः ॥

इनमें से भूपाल, झीलफ, जंगूला, मोटकी तथा शुद्धसामंत राग तुम्हारे सुनने में क्वचित् ही आयेंगे। इसीलिये मैंने उनकी चर्चा नहीं की थी। कोई आसावरी में कोमल ऋषभ लेते हैं, यह मैंने कहा ही था। जो आसावरी भैरवी मेल में लेते हैं; वे भी उसके आरोह में ग तथा नि स्वर वर्ज्य करते हैं।

"भूपाल" नामक राग को संस्कृत ग्रन्थकारों ने भैरवी मेल में बताया है। उसमें म तथा नि स्वर वर्ज्य हैं। उसका स्वरूप कुछ ऐसा है:—"ध सां, सां, रें सां, ध प, सां रें सां, ध प, ग, ध प, ग, प ग, रे, सा। प ध, सां, रें सां, गं रें सां, ध सां रें गं रें सां, ध प, ग, ध गं रें सां, ध प, ग, प ग, रे सा।" यह बिलकुल अप्रसिद्ध स्वरूप है।

झीलफ राग के सम्बन्ध में मैं जो कह चुका हूं वह पर्याप्त है। एक गायक ने झीलफ को भैरवी मेल में बताकर गाया था, उसमें आधा भाग भैरवी का तथा आधा भैरव का था। उसका प्रकार ऐसा था:—

नि (कण) ... म (कण)

ग म, प, प, म प, ध नि ध, म, नि ध, प, म प ग म ध प, म प म ग, रे, सा, सा रे ग, म, प ग म।

नि नि (कण)

म प ध ध, नि सां, सां, नि सां, सां नि ध प, ध म प, ग, म, म नि ध प, म प म

म (कण)

ग, रे, सा, सा रे ग, म, प ग म ॥

कोई कह सकता है कि इस प्रकार में भैरव तथा आसावरी मेल का योग है। वह मेल उत्तरांग में होगा, ऐसा कहा जाय तो अनुचित नहीं। "नि ध, प" यह भाग आसावरी जैसा अवश्य दिखेगा।

जंगूला तथा मोटकी इन दो रागों की हमने चर्चा नहीं की तथा ये तुम्हारे सुनने में आयेंगे, इसकी भी संभावना नहीं दिखती। अतः इन्हें हम छोड़ देते हैं।

"शुद्धसामंत" राग दक्षिण का है। यह बहुत कम सुनने में आता है। इसके आरोह में ग, नि वर्ज्य हैं तथा अवरोह में नि वर्ज्य है। अर्थात् इसका आरोहावरोह "सा रे म प ध सां। सां ध प म ग रे सा।" होगा। यह राग दक्षिण की ओर से हमारी पद्धति में सम्मिलित हुआ है।

"बसंत मुखारी" राग भी हमारे यहाँ दक्षिण से आया है। इस राग का पूर्वाङ्ग भैरव का है तथा उत्तरांग भैरवी का।

इस भैरवी थाट में वस्तुतः तुमको यह तीन राग भली प्रकार ध्यान में रखने हैं:- १-भैरवी, २-मालकंस और ३-बिलासखानी तोडी। इनमें से बिलासखानी तोडी तुम्हारे सुनने में क्वचित ही आयेगी। इसलिये नहीं कि यह राग अप्रसिद्ध है, अपितु इसको उत्तम प्रकार से गाने वाले बहुत कम हैं।

भैरवी राग तो सरल एवं सम्पूर्ण है ही तथा वह सभी गायकों को आता है। अतः उसके सम्बन्ध में और जानकारी देने की आवश्यकता नहीं। केवल "ग, सा रे सा, ध नि सा, ग, म ग रे सा" इतने स्वर कहने पर भैरवी दिखने लगती है। वादी कोई मध्यम और कोई धैवत मानते हैं। हम मध्यम पसन्द करते हैं।

"मालकंस" राग बिलकुल स्वतन्त्र है। इसमें रे तथा प स्वर वर्ज्य हैं। मध्यम वादी है। स्वरूप ऐसा है:—"सा, ध नि सा, म, म ग, म ध नि ध, म, ग, म ग सा। म ग, म ध, नि सां, सां, गं सां, सां नि ध, म ध नि ध म, ग, म ग, सा।" यह राग सरल रागों में गिना जाता है।

"बिलासखानी तोडी" राग का स्वरूप ऐसा है:—"सा, रे नि, सा, रे ग, रे ग, म ग, रे, सा, सा रे ध, नि ध, सा, रे ग, म ग, रे ग, रे, सा। ध प, नि ध म, प ग, रे ग, म ग, रे सा, सा ध, सा रे ग, रे ग, म ग, रे, सा।" इस राग में रे, ग स्वरों से तोडी का भास उत्पन्न करने में कुशलता है। कोमल मध्यम तथा निषाद स्वर दुर्बल तथा धं, ग स्वर प्रबल रहते हैं।

मंजरी में ऐसा कहा है:—

भैरवी मालकोशाख्य आसावरी धनाश्रिका।
तोडी बिलासखान्याद्या भैरवीमेलनोत्थिताः॥

इनमें से भैरवी, मालकोश तथा बिलासखानी रागों के सम्बन्ध में इतनी जानकारी ध्यान में रखोः—

भैरवी स्यात् सदापूर्णा मालकोशोऽरिपो मतः ।
तोडी बिलासखान्याद्या तोड्यंगभैरवी स्वयम् ॥

अब अन्तिम थाट तोड़ी के जन्य रागों को देखें:—

मंजरीकार कहता है:—

तोडी गुर्जरिकाख्याता मुलतानी तथैव च ।
त्रयो रागा मतास्तज्ज्ञैस्तोडीमेलसमुद्भवाः ॥

वास्तव में इस थाट से निकलने वाले ये तीनों राग मुख्यतः विद्यार्थियों के लिये हमेशा ध्यान में रखने योग्य हैं। ये सर्वथा स्वतन्त्र हैं। फिर भी तोड़ी तथा गुर्जरी ये समप्रकृतिक हैं। इनमें भेद केवल पंचम का है। तोडी में पंचम वर्ज्य करने से गुर्जरी-तोडी होती है।

'नि़, सा रे ग, रे ग, रे सा, नि़ सा रे ध़, नि़ ध़ ग, मं ग, ध प मं ग, रे ग रे सा।' यह तोड़ी हुई। इसमें का पंचम निकाल दिया तो शेष प्रकार गुर्जरी का होगा। तोड़ी प्रातर्गेय राग है। इसमें वादी धैवत है। 'मुलतानी' सायंगेय राग है। इसे गाने में कुछ कुशलता की आवश्यकता है। मुलतानी के आरोह में रे तथा ध स्वर वर्ज्य हैं। वादी पंचम है। उसका स्वरूप ऐसा है:—'नि़ सा, मं ग, मं प, मं प ध प, मं ग, मं ग, ग मं प, नि ध प, मं ग, ग मं प मं ग, रे सा।' यह राग सरल रागों में गिना जाता है।

तोडी लोके सदा पूर्णा गुर्जरी पंचमोज्झिता ।
मूलतान्यां रिधौ न स्तः प्रारोहे गीतविन्मते ॥

प्रिय मित्र ! अब हम अपना संभाषण शीघ्र समाप्त करेंगे। प्रचलित संगीत के सम्बन्ध में जितनी जानकारी तुमको होनी आवश्यक थी, उतनी मैं तुम्हें दे चुका हूं। अब ताल तथा नवीन गीत रचना के नियमों पर बोलना उचित होगा; परन्तु वह इस समय सम्भव नहीं है। ख्याल, ध्रुपद, धमार आदि रचनाओं के कुछ नियम दृष्टिगत होते हैं। अमुक राग में ख्याल रचना करने के लिये कौन से स्वर से प्रारम्भ होना चाहिये और वैसा करने पर उस गीत के अस्ताई (स्थाई) में कितने आवर्तन (आवृत्ति) होने चाहिये, सम कौन से स्वर पर होनी चाहिये, पुनः अस्ताई से जोड़ने की क्रिया कैसे करनी चाहिये आदि बातें बुद्धिमान व्यक्तियों को स्वतः अनुभव से आजाती हैं। इस प्रकार के कुछ नियम उदाहरण सहित तुमको बताने की मेरी इच्छा थी; परन्तु वह इस समय सम्भव नहीं। ये सब कृत्य धीरे-धीरे अनुभव से तुमको भी सध जायगा, ऐसा मेरा विश्वास है। संगीत एक प्रकार की नाद भाषा है, ऐसा जो कहा जाता है वह गलत नहीं। प्रत्येक गीत में संगीत के विभिन्न वाक्यों की सुसंगत रीति से रचना होती है।

वे गीत सीखते समय उनके वाक्यों की ओर ध्यानपूर्वक देखना पड़ता है। यह 'Laws of music Composition' (गीत रचना के नियम) विदित होने पर प्राचीन ग्रन्थों में जो अनेक राग उनके आरोहावरोह सहित कहे हुए दिखाई देते हैं वे भी पुनः प्रचार में सहज ही लाये जा सकते हैं। अस्तु, मेरी तो आयु हो चुकी है, अतः इस विषय की अधिक सेवा मेरे हाथों से आगे कितनी व कैसी हो सकेगी, यह नहीं कहा जा सकता। कारण, यह सब भगवान की इच्छा पर निर्भर है। फिर भी मैंने अपनी उम्र में जो ज्ञान सम्पादित किया, उसका एक बड़ा भाग तुमको देने से मेरी बहुत कुछ जिम्मेदारी कम हो गई है। तुम तरुण, विद्यासम्पन्न, बुद्धिमान तथा संगीत प्रेमी हो, अतः मेरे द्वारा पूर्ति की हुई सामिग्री में जिन बातों का अभाव तुम्हें दिखाई देगा, तुम उसकी पूर्ति स्वसंपादित ज्ञान से सहज ही कर सकोगे।

कुछ महत्वपूर्ण बातों के सम्बन्ध में मेरे द्वारा की गई शोध अभी तक निर्णयात्मक अवस्था में नहीं पहुँच सकी है, यह तथ्य समय-समय पर मेरे भाषणों से तुम्हारे ध्यान में आगया होगा; उसी प्रकार कुछ बातें संभव होने पर भी मेरे हाथों से पूर्ण नहीं हो सकीं। उदाहरणार्थ:—

(१) सामवेद के समय के स्वरों की तुलना आगे के ग्रन्थकारों के स्वरों से कहां तक हो सकती है, यह देखना।

(२) रत्नाकरादि प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित रागों का सुबोध स्पष्टीकरण उन ग्रन्थों में दी गई सामग्री से करके दिखाने का प्रयत्न करना।

(३) प्राचीनकाल में 'रागरागिनी पुत्र' आदि व्यवस्था किन तत्वों पर हुई होगी, उसकी योग्यायोग्यता तथा वैसी व्यवस्था प्रचलित संगीत में हो सकती है कि नहीं, ऐसा करना विशेष हितकारी होगा अथवा नहीं, इन प्रश्नों पर भली प्रकार विचार करके कुछ स्पष्टीकरण करना।

(४) राग व रस का प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टि से सम्बन्ध पुनः प्रस्थापित करने का प्रयत्न करना।

(५) श्रुति व स्वरों का प्राणियों के शरीर पर होने वाला परिणाम तथा उस परिणाम के लिये गीत के बोलों की कितनी व कैसी आवश्यकता है, इस सम्बन्ध में समाधानकारक एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण से स्पष्टीकरण करना।

(६) नाट्य संगीत का उत्तम निरीक्षण करके उसमें कौनसे संशोधन की आवश्यकता है, यह निश्चित करने का प्रयत्न करना।

(७) श्रुति तथा स्वर का नवीन शास्त्रीय पद्धति से निरीक्षण करना, अति कोमल तीव्रतरादिक स्वरों का विशिष्ट रसोत्पत्ति में क्या उपयोग हो सकता है, इसका विचार विद्वज्जनों की परिषद में करना।

(८) दिनगेय तथा रात्रिगेय रागों का शास्त्र सम्मत एवं सामंजस्य पूर्ण सम्बन्ध प्रस्थापित करना।

(९) प्रत्येक राग का काल निर्णीत करके, वह काल नियम प्राचीनकाल से संगीत में क्यों व कैसे आया? यह निश्चित करके समाज के सामने प्रस्तुत करना।

(१०) प्रचलित नृत्य पद्धति के गुणदोष खोजकर इस कला का उत्कर्ष किस प्रकार होगा, इस सम्बन्ध में उपाय सोचना।

(११) दक्षिण तथा उत्तर के संगीत का ऐसा सुयोग करके दिखाना कि जिससे दोनों पद्धतियों का हित होकर संगीत को उत्तम राष्ट्रीयत्व प्राप्त हो।

(१२) प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थों के भाषान्तर मराठी में करा कर पुस्तकें प्रकाशित करना एवं अपने शहर में एक बड़ा संगीत पुस्तकालय स्थापित करना।

(१३) अपने शहर में एक प्रकार के संगीत विद्यालय स्थापित करना तथा उनमें योग्य विद्वानों की नियुक्ति करके उनको युगानुकूल चलाकर दिखाना।

(१४) विशेष कलावन्तों के लड़कों के लिये एक पृथक विद्यालय स्थापित करना तथा उनमें घरानेदार एवं अनुभवी कलावन्तों को नियुक्त करके परम्परागत कला को जीवित रखने का प्रयत्न करना।

(१५) प्राचीन अथवा अर्वाचीन अप्रसिद्ध रागों के 'रेकार्ड' लेकर उन्हें पुस्तक-संग्रहालयों में रखना तथा उनका उपयोग समस्त शोधकर्ता विद्यार्थी कर सकें, ऐसी व्यवस्था करना। आदि-आदि।

यह तथा ऐसी और भी कुछ बातें अभी रह गई हैं। तुम तरुण एवं उत्साही हो, इसलिये मुझे आशा है कि तुम इनकी ओर ध्यान देकर यश प्राप्त करोगे। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये बहुत प्रयत्न की आवश्यकता होगी, बहुत स्वार्थ त्याग करना होगा, एवं बहुत सी भली बुरी टीका टिप्पणी सहन करनी पड़ेंगी। परन्तु मुझे विश्वास है कि तुमने यदि कठिन परिश्रम करने का और फलाफल ईश्वर को सौंपने का निश्चय कर लिया तो तुमको पर्याप्त सफलता तथा यश प्राप्त होगा। मैं जीवित रहा तो तुम्हारे कार्य में यथाशक्ति एवं यथामति सहयोग देने के लिये सदैव तत्पर रहूँगा। परन्तु यह सब अब ईश्वर के आधीन है। जितनी सेवा मुझसे लेने का उसने निश्चय किया होगा, उतनी वह लेगा ही। अस्तु, इस प्रसंग पर दी गई जानकारी तुम्हारे लिये पर्याप्त होगी, ऐसा समझकर अब मैं तुमसे आज्ञा लेता हूँ।

भातखण्डे संगीत शास्त्र

—:(हि० सं० प०):—

चतुर्थ भाग

*** समाप्त ***

